॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

दशमो भागः ।

आख्यातिकः ॥

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।
पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां सप्तमो भागः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां दशमम्पुस्तकम् ।

मुनशी समर्थदान के प्रबन्धसे
वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ ।

संवत् १९३९ पौष कृष्णा ९

पहिली बार १००० पुस्तक छपी

विषयसूचीपत्रम्

ओ३म्

अथ भूमिका

यह अष्टाऽध्यायी का छठा भाग और पठन पाठन व्यवस्था में आठवां पुस्तक है। आख्यात उस को कहते हैं कि जो समग्र प्रकृति प्रत्ययों के संयोग से भाव, कर्म्म, कर्त्ता, भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान काल, एक, द्वि, और बहुत अर्थों के वाचक हैं। इस ग्रन्थ में मुख्य करके आख्यात शब्दों ही का व्याख्यान किया है इस से इस को आख्यातिक कहते हैं (प्रश्न) धातु किन को कहते हैं (उत्तर) जो सत्ता आदि विविध प्रकार के अर्थों को धारण करें (प्र०) वे कौन हैं (उ०) भू आदि शब्द (प्र०) भू आदि शब्द के प्रकार के होते हैं (उ०) दो प्रकार के एक सामान्यार्थ वाची और दूसरे विशेषार्थ वाची। सामान्यार्थ वाची उन को कहते हैं कि जिन का योग सब विशेषार्थ वाचकों के साथ रहे जैसे (योऽस्ति स भवति। यो भवति स करोति) जो है सो होता और जो होता है सो ही करता है और जो नहीं है उस का होना क्या और जो नहीं होता उस के करने का तो क्या ही सम्भव है। दूसरे विशेषार्थ वाचक उन को कहते हैं कि जिन का प्रयोग विशेष व्यवहारों में किया जावे जैसे (देवदत्तः किं करोति। स ब्रूते पचति भुंक्ते पठति ददाति वा इत्यादि) जैसे किसी से किसी ने पूंछा कि देवदत्त क्या करता है वह उत्तर देवे कि पकाता भोजन करता पढ़ता अथवा दान देता है (प्र०) आख्यात का क्या लक्षण है (उ०) (भावप्रधानमाख्यातम्) जो धातु से परे लकारों के स्थान में तिङ् आदि आदेश किये जाते हैं वे भावप्रधान अर्थात् भू आदि धातुओं के सत्ता आदि अर्थों के वाचक होते हैं उन्हों को आख्यात कहते हैं (प्र०) कितने अर्थों में लकारों के स्थान में तिङ् आदि आदेश होते हैं (उ०) तीन अर्थात् भाव कर्म्म और कर्त्ता अर्थों में। भाव दो प्रकार का होता है एक आभ्यन्तर दूसरा बाह्य। आभ्यन्तर भाव उस को कहते हैं कि जो धात्वर्थ मात्र में स्थित होकर सामान्य अर्थ का वाचक होता है। जिस के एक होने से एक ही वचन होता है जैसे (आस्यते भवता भवद्भ्यां भवद्भिर्वा। आसितव्यम्। भवितव्यम्। इत्यादि) इस में कदापि द्विवचन और बहुवचन का प्रयोग नहीं होसकता। और बाह्य भाव उस को कहते हैं कि जिस में एक द्वि और बहुवचन के प्रयोग होवें जैसे (पच्यते ओदनः। पच्येते ओदनौ। पच्यन्ते ओदना इति। कृदभिहितो भावो द्रव्यवद्भवति। महाभाष्य। अ०। ३। पा०। १। सू०। ६७॥) द्रव्यों के समान इस के अनेक प्रकार होने से एक द्वि और बहुवचनांत प्रयोग होते हैं जैसे (भावः। भावौ। भावाः। पाकः। पाकौ। पाकाः। इत्यादि) कर्म्म उस को कहते

हैं कि जो कर्त्ता के करने से ही क्रिया जाय जैसे (देवदत्तः कटं करोतीत्यादि) यहां कर्त्ता के किये विना चटाई कदापि नहीं बन सकती । कर्त्ता उस को कहते हैं कि जो स्वाधीन साधनों से युक्त होकर क्रिया करने में स्वतन्त्र होवे जैसे देवदत्त कर्त्ता चटाई कर्म और करना क्रिया है इस में विशेष यह है कि (इदं विचार्यते। भावकर्मकर्त्तारः सार्वधातुकार्था वा स्युर्विकरणार्था वेति। एवंतर्हीदं स्यात्। यदा भावकर्मणोर्लस्तदाकर्त्तरि विकरणाः । यदा कर्त्तरि लस्तदा भावकर्मणोर्विकरणाः) महाभाष्य । अ० ३ । पा० १ । सू० ६७ ॥ यह विचारना चाहिये कि भाव,कर्म, और कर्त्ता अर्थों में तिङ् प्रत्यय हों वा विकरण शप् आदि होवें । इस की व्यवस्था इस प्रकार समझनी चाहिये कि जब भाव कर्म अर्थों में लकार हों तब तो कर्त्ता में विकरण और जब कर्त्ता में लकार हों तब भाव कर्म अर्थों में विकरण होवें। अर्थात् एक तिङन्त क्रिया में दोनों अर्थ रहें जैसे । ग्रामं गच्छति । यहां कर्त्ता में लकार और कर्म में द्वितीया और कर्म के साथ शप् प्रत्यय का एकाधिकरण समझना चाहिये। इसी प्रकार सर्वत्र जानो (प्र०) किन धातुओं से लकार किन अर्थों में होते हैं (उ०) अकर्मक धातुओं से भाव और कर्त्ता अर्थ में तथा सकर्मक धातुओं से कर्म और कर्त्ता अर्थ में होते हैं (प्र०) अकर्मक और सकर्मक धातुओं का क्या लक्षण है (उ०) (कर्मस्वभावकानां कर्मस्थक्रियाणां च कर्त्ता कर्मवद्भवतीति वक्तव्यम् । कर्तृस्थभावकानां कर्तृस्थक्रियाणां च कर्त्ताकर्मवन्मासूदिति । कर्मस्वभावकानां। आसयति देवदत्तं शाययति देवदत्तं स्थापयति देवदत्तम्। कर्मस्थक्रियाणाम् । गामवरुणद्धि । करोति कटम् । पचत्योदनम् । कर्तृस्थभावकानाम्। चिन्तयति मन्त्रयते । कर्तृस्थक्रियाणाम् । गच्छति धावति हसति) महाभाष्य । अ० । ३। पा० १। सू० ८७। आ०। ५। धातु दो प्रकार के होते हैं एक सकर्मक दूसरे अकर्मक। सकर्मक उन को कहते हैं कि जिनका भाव और क्रिया कर्त्ता से भिन्न के लिये हों और जिन का भाव और क्रिया कर्त्ता ही के लिये हों वे अकर्मक कहाते हैं। सकर्मकभावयुक्त धातुओं के उदाहरण (आसयति देवदत्तं शाययति देवदत्तं स्थापयति देवदत्तम् । इत्यादि) यहां देवदत्त संज्ञक कर्म ही में बैठना सोना और स्थित होना रूप भाव है । कर्मस्थ क्रियधातुओं के उदाहरण (गामवरुणद्धि करोति कटं पचत्योदनम् । इत्यादि) यहां गौ चटाई और ओदन रूप कर्म ही में रोकना बनना और पकना रूप क्रिया हैं इस से इस प्रकार के धातु सकर्मक कहाते हैं । अकर्मकों में कर्तृस्थभावक धातुओं के उदाहरण (देवदत्तश्चिन्तयति, मन्त्रयते, अस्ति, भवति, तिष्ठति, आस्ते, चेत्यादि) यहां चिन्तन विचारना होना ठहरना और बैठना आदि भाव

कर्त्ता ही में हैं। कर्तृस्थक्रियधातुओं के उदाहरण (गच्छति, धावति, हसति, क्रुध्यति, शाम्यति, इत्यादि) यहां चलना दौड़ना हसना क्रोध और शान्ति आदि क्रिया कर्त्ता ही में रहती है इस लिये इस प्रकार के धातु अकर्म्मक कहाते हैं। * क्रिया का लक्षण (का पुनः क्रिया। ईहा। का पुनरीहा। चेष्टा। का पुनश्चेष्टा। व्यापारः। सर्वथा भवाञ्छब्दैरेव शब्दान् व्याचष्टे न किंचिदर्थजातं निदर्शयत्येवं जातीयका क्रियेति। क्रिया नामेयमत्यन्ता परिदृष्टा अशक्या पिण्डी भूता निदर्शयितुम्। यथा गर्भो निर्लुठितः। साऽसावनुमानगम्या कोऽसावनुमानः। इह सर्वेषु साधनेषु सन्निहितेषु यदा पचतीत्येतद्भवति सा नूनं क्रिया। अथवा यया देवदत्त इह भूत्वा पाटलिपुत्रे भवति सा नूनं क्रिया) महाभाष्य। अ० १। पा०३। सू० १ आ० १। क्रिया उस को कहते हैं कि जो कुछ आत्मा मन प्राण इन्द्रिय और शरीर में चेष्टा होती है जैसे कोई मनुष्य चलते हुए हाथ को देख कर अनुमान करता है कि जिस से यह हाथ चलता है वही क्रिया है। जो अनुमान से जानने योग्य है वह आंख आदि इन्द्रियों से ग्रहण करने में कैसे आ सकती है किन्तु विज्ञान ही से दिखलाई देती है। धातु और प्रत्ययस्थ अनुबन्धों के प्रयोजन। जिन धातुओं के उदात्त अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, लृ, ए, और ओ, ये अनुबन्ध इत् संज्ञक होते हैं उन से परस्मैपद और जिन के पूर्वोक्त ही अनुदात्त अकारादि स्वर इत् संज्ञक हों उन और व्यञ्जनों में ङकार जिन का इत् संज्ञक होता है उन से भी आत्मनेपद होता है। जिस का स्वरित अकारादि तथा ञकार इत् संज्ञक हों उन से आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों होते हैं। जिन का आकार इत् जाता है उन और जिन का ईकार इत् जाता है उन से परे निष्ठा संज्ञक प्रत्ययों को इट् का आगम नहीं होता। जिनका ह्रस्व इकार इत् जाता है उन को नुम् का आगम होता है। जिन का उकार इत् जाता है उन से परे क्त्वा प्रत्यय को इट् का आगम विकल्प करके और निष्ठा प्रत्यय को इडागम नहीं होता। जिन का ऊकार इत् जाता है उन से परे सामान्य आर्द्धधातुक प्रत्यय को इट् का आगम विकल्प करके और निष्ठा प्रत्यय को इट् का आगम नहीं होता।

* सकर्म्मक और अकर्म्मक धातुओं की व्यवस्था कई प्रकार से समझी जाती है। मुख्य तो यही है कि जिस प्रकरण में प्रयुक्त क्रिया हो उस का अर्थ किसी कर्म्म के साथ सम्भवित होवे तो सकर्म्मक नहीं तो अकर्म्मक। और जो धातु सकर्म्मक हैं वे ही कभी देश काल और वस्तु के भेद से अकर्म्मक और अकर्म्मक सकर्म्मक भी हो जाते हैं। और जितने धातु अकर्म्मक हैं वे सब किसी पदार्थ के आश्रय से सकर्म्मक हो जाते हैं जैसे। अध्वानमास्ते। यह आस धातु अकर्म्मक है इस का मार्ग ही कर्म्म हो जाता है। इस प्रकरण को कारकीय ग्रन्थ के कर्म्मकारक प्रकरण में भी लिख चुके हैं। अर्थात् जिस २ की कर्म्म संज्ञा वहां कर दी है उस २ अर्थ का जिस २ धातु के साथ सम्भव हो उस २ को सकर्म्मक अन्य सब अकर्म्मक जानने चाहिये॥

जिन का ह्रस्व ऋकार इत् जाता है चङ्परक णिच् परे हो तो उन के उपधा को ह्रस्व नहीं होता। जिन का ऌकार इत् जाता है उन से परे च्लि प्रत्यय के स्थान में अङ् आदेश होता है। जिन का एकार इत् जाता है उन को इडादि सिच् के परे परस्मैपद में वृद्धि नहीं होती है। जिन का ओकार इत् जाता है उन से परे निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता है। जिन का ञि इत् जाता है उन से परे वर्त्तमान काल में क्त प्रत्यय होता है। जिन का टु इत् जाता है उन से परे अथुच् प्रत्यय होता है। जिन का डु इत् जाता है उन से क्त्रि प्रत्यय होता है। और जिन का ष इत् जाता है उन से स्त्री लिङ्ग में अङ् प्रत्यय होता है। इत्यादि प्रयोजन जानो। अब संक्षेप से प्रत्ययस्थ अनुबन्धों के प्रयोजन कहते हैं। जिन का ककार और ङकार इत् जाता है वे प्रत्यय परे हों तो अङ्ग को गुण और वृद्धि नहीं होती। वचि स्वपि आदि धातुओं को सम्प्रसारण और अन्तोदात्त स्वर भी होता है। और कित् ङित् के परे ग्रह आदि धातुओं को संप्रसारण भी होता है। और ञित् णित् प्रत्यय के परे अजन्त अङ्ग तथा उपधाभूत अकार को वृद्धि होती और प्रकृति को आद्युदात्त स्वर भी होता है। चित् का अन्तोदात्तस्वर प्रयोजन है टित् का प्रयोजन ङीप् प्रत्यय। डित् का प्रयोजन टिलोप। तित् का प्रयोजन स्वरित स्वर होता है। आगमों के प्रयोजन। टित् कित् और मित् ये तीन प्रकार के आगम होते हैं। इन के नियम ये हैं कि प्रकृति और प्रत्यय के समुदाय में टित् आगम जिस को विधान करें उस के आदि का अवयव कित् आगम जिस को विधान करें उस के अन्त का अवयव और मित् आगम जिस को विधान करें उस के अन्त्य अच् से परे होता है (प्र०) आदि और अन्त का क्या लक्षण है (उ०) (यस्मात् पूर्वं नास्ति परमस्ति स आदिरित्युच्यते। यस्मात् पूर्वमस्ति परं च नास्ति सोऽन्त इत्युच्यते) महाभाष्य। अ०। १। पा०। १। सू०। २१। जिस के पूर्व कुछ न हो और पर हो वह आदि कहाता है। और जिस के पूर्व कुछ है और पर नहीं है उस को अन्त कहते हैं (प्र०) कौन २ धातु सेट् और कौन २ अनिट् होते हैं (उ०) (अथ के पुनरनुदात्ताः। आदन्ता अदरिद्राः। इवर्णान्ताश्च श्वि डी शी दीधीवेवीङः। उकारान्ताः। यु रु णु क्षु क्ष्णूर्णुवर्जम्। ऋदन्ताश्चाजागृ वृङ् वृञः। शक्लृः कवर्गान्तानाम्। पचि वचि सिचि मुचि रिचि विचि प्रच्छि यजि भजि भञ्जि रञ्जि सृजि त्यजि भुजि स्वञ्जि मस्जि रुजि युजि णिजि विजि सञ्जि स्वञ्जयश्चवर्गान्तानाम्। अदि सदि शदि हदि छिदि तुदि नुदि खिदि भिदि स्कन्दि क्षुदि खिद्यति पद्यति विन्ति विद्यति राधि युधि बुधि शुधि क्रुधि रुधि साधि

व्यधि बन्धि सिध्यति हनि मन्यतयस्तवर्गान्तानाम् । तपि तिपि वपि शपि क्षुपि लुपि लिपि स्वप्यापि च्चिपि सृपि तृपि दृपि यभि रभि लभि यमि रमि नमि गमय: पवर्गान्तानाम् । रुशि रिशि दिशि विशि लिशि स्पृशि दृशि क्रुशि मृशि दंशि पुष्यति त्विषि कृषि श्लिषि विषि पिषि शिषि शुषि तुषि दुषि द्विषि घसि वसि दहि दिहि वहि दुहि नहि रुहि लिहि मिहयश्चोषान्तानाम् । वसि: प्रसारणी) महा० अ० । ७ । पा० । २ । सू० । १० । आकारान्तों में एक दरिद्रा धातु को छोड़ के शेष सब अनिट् हैं इवर्णान्तों में श्रि श्वि डी शी दीधी वेवी इन छ: धातुओं को छोड़ के शेष अनिट् उवर्णान्तों में यु रु णु नु स्नु ऊर्णु इन छ: धातुओं को छोड़ के शेष अनिट् । ऋवर्णान्तों में जागृ वृङ् और वृञ् धातुओं को छोड़ के बाकी अनिट् कवर्गान्तों में एक शकि धातु अनिट् बाकी सब सेट् । चवर्गान्तों में यथाक्रम से पठित पचि आदि बाईस २२ धातु अनिट् बाकी सब सेट् । तवर्गान्तों में यथा पठित अदि आदि २७ सत्ताईस धातु अनिट् अन्य सब सेट् । पवर्गान्तों में तिपि आदि यथा पठित २० बीस धातु अनिट् । अन्य सब सेट् । और ऊषान्त अर्थात् श ष स और ह जिन के अन्त में हों उन में रुशि आदि ३१ इकत्तीस धातु अनिट् । अन्य सब सेट् हैं इन में वस धातु वह समझना चाहिये कि जिस को सम्प्रसारण होता है अर्थात् आच्छादनार्थवाची का ग्रहण नहीं समझना । पूर्वोक्त सेट् अनिट् धातुओं की व्यवस्था महाभाष्यकार ने इस प्रकार लिखी है परन्तु उस में सब धातुओं का इक् प्रत्ययान्त निर्देश किया है इस से कौन धातु कौन गण का सेट् अनिट् व्यवस्था में समझना चाहिये इस बात का बोध ठीक २ नहीं होता सो इस के विशेष व्याख्यान गणस्थ धातुओं में देखने से विदित होगा । और इस विषय में किन्हीं प्राचीन शिष्ट वैयाकरणों की बनाई कारिका भी हैं सो आगे लिखते हैं ॥

अनिट् स्वरान्तो भवतीति दृश्यतामिमांस्तु सेट: प्रवदन्ति तद्विद: ।
अदन्तमृदन्तमृताञ्च वृङ्वृञौ श्विडीङिवर्णेष्वथ शीङ्श्रिञावपि॥१॥

गणस्थमूदन्तमुतां च रुस्नुवौ क्षुवन्तयोर्णौतिमथो युणुच्णव: ।
इति स्वरान्ता निपुणं समुच्चितास्ततो हलन्तानपि सन्निबोधत ॥२॥

धातु दो प्रकार के होते हैं एक स्वरान्त दूसरे व्यंजनान्त उन में स्वरान्त एकाच् धातु सब अनिट् होते हैं । परन्तु अकारान्त, दीर्घ ऋकारान्त, ह्रस्व ऋकारान्तों में वृङ् वृञ् इवर्णान्तों श्वि, डीङ्, शीङ्, और श्रिञ्, गणों में पढ़े ऊकारान्त सब

तथा उवर्णान्तों में रु, स्नु, च्नु, ऊर्णु, यु, णु, और क्ष्णु, इन सब को छोड़ के अर्थात् ये अकारान्त आदि जो गिनाये हैं सब सेट् हैं । इस के आगे हलन्त । *

शकिस्तु कान्तेष्वनिडेक इष्यते घसिश्च सान्तेषु वसिः प्रसारणी ।
रभिस्तु भान्तेष्वथ मैथुने यभिस्ततस्तृतीयो लभिरेव नेतरे ॥३॥

ककारान्तों में एक शक, सकारान्तों में घस, और निवासार्थ वाला वस, तथा भकारान्तों में रभ, लभ, और मैथुन अर्थ में यभ, ये तीन धातु अनिट् हैं बाकी सब सेट् समझने चाहिये ।

यमिर्यमन्तेष्वनिडेक इष्यते रमिश्च यश्च श्यनि पठ्यते मनिः ।
नमिश्चतुर्थो हनिरेव पंचमो गमिश्च षष्ठः प्रतिषेधवाचिनाम् ॥४॥

मकारान्तों में यम, रम, नम, गम, ये चार और नकारान्तों में हन तथा दिवादि गण में पढ़ा मन, ये दो धातु अनिट् हैं ॥

पचिं वचिं विचिरिचिरञ्जिपृच्छतीन्, निजिं सिचिं मुचिभजि-
भञ्जिभ्रस्जतीन् । त्यजिं यजिं युजि रुजिसञ्जिमज्जतीन्,
भुजिं स्वजिं सृजिविजौ विद्ध्यनिट् स्वरान् ॥ ५ ॥

चकारान्तों में पच, वच, रिच, सिच, मुचि, ये छः । छकारान्तों में एक पृच्छ जकारान्तों में रंज, निज, भज, भञ्ज, भ्रस्ज, त्यज, यज, युज, रुज, सञ्ज, मस्ज, भुज, स्वञ्ज, सृज, विज, ये पन्द्रह धातु अनिट् हैं बाकी सब सेट् समझना चाहिये ।

अदिं हदिं स्कन्दिभिदिच्छिदिक्षुदीन्, शदिं सदिं स्विद्यति-
पद्यती खिदिम् । तुदिं नुदिं विद्यति विन्तइत्यपि,
प्रतीहि दान्तान्दश पञ्च चानिटः ॥ ६ ॥

दकारान्तों में अद, हद, स्कन्द, भिद, छिद, क्षुद, शद, सद, स्विद, पद, विद, ये तीनों दिवादि गण के तथा विद, रुधादि गण का भी खिद, तुद, नुद, ये पन्द्रह धातु अनिट् हैं

रुधिस्सराधिर्युधिबन्धिसाधयः क्रुधिक्षुधी शुध्यतिबुध्यती व्यधिः ।
इमे तु धान्ता दश येऽनिटो मतास्ततःपरं सिध्यतिरेव नेतरे ॥ ७ ॥

---

* स्वरान्तों में महाभाष्यकारने अनेकाच् की अपेक्षा छोड़ के आकारान्तों में दरिद्रा और इवर्णान्तों में दीधीङ् वेवीङ् धातु गिनाये हैं और कारिका बनाने वालों का अभिप्राय यह है कि (एकाच उपदेशेऽनु०) सूत्र जो एकाच् ग्रहण है उस का आश्रय लेकर ये धातु सेट् और ये अनिट् हैं अर्थात् दोनों प्रकार का व्याख्यान ठीक है इस महाभाष्य और कारिकाओं में परस्पर कुछ विरोध नहीं आसकता ॥

धकारान्तों में रुध, राध, युध, बन्ध, साध, क्रुध, क्षुध, दिवादि गण का शुध, बुध, तथा सिध और व्यध, ये ग्यारह धातु अनिट् हैं ॥

तपिं तिपिं चापिमथो वपिं स्वपिं लिपिं लुपिं तृप्यतिदृप्यती सृपिम्।
स्वरेण नीचेन शपिंक्षुपिं क्षिपिं प्रतीहि पान्तान्पठितांस्त्रयोदश ॥८॥

पकारान्तों में तप, तिप, आप, वप, स्वप, लिप, लुप, दिवादि गण के तृप, दृप, ये दो । सृप, शप, छुप, क्षिप, ये तेरह धातु अनिट् हैं ॥

दिशिं दृशिं दंशिमथो मृशिं स्पृशिं रिशिं रुशिं क्रोशतिमष्टमं विशिम्।
लिशिं च शान्ताननिटःपुराणगाः पठन्ति पाठेषु दशैव नेतरान् ॥९॥

शकारान्तों में दिश, दृश, दंश, मृश, स्पृश, रिश, रुश, क्रुश, विश, लिश, ये दश धातु अनिट् हैं ॥

शिषिंपिषिंशुष्यतिपुष्यतीत्विषिं विषिंश्लिषिंतुष्यतिदुष्यतीद्विषिम्।
इमान्दशैवोपदिशन्त्यनिड्विधौ गणेषुषान्तान्कृषिकर्षतीतथा ॥१०॥

षकारान्तों में शिष, पिष, त्विष, विष, श्लिष, द्विष, दिवादि गण के शुष, पुष, तुष, दुष, ये चार और तुदादि और भ्वादि दोनों गण का कृष ये ग्यारह धातु अनिट् हैं ॥

दिहिंदुहिंमेहतिरोहती वहिर्नहिस्तु षष्ठो दहतिस्तथा लिहिः।
इमेऽनिटोऽष्टाविहमुक्तसंशया गणेषु हान्ताःप्रविभज्यकीर्त्तिताः॥११॥

हकारान्तों में दिह, दुह, मिह, रुह, वह, नह, दह, लिह, ये आठ धातु अनिट् हैं । जहां सेट् गिनाये हैं वहां बाकी अनिट् और जहां अनिट् गिनाये हैं वहां बाकी सेट् समझ लेना चाहिये । इस ग्रन्थ में जितने सेट् अनिट् धातु हैं उन सब की व्यवस्था मुख्य तो यही समझनी चाहिये और उदात्तोपदेश से सेट् और अनुदात्तोपदेश से अनिट् समझते हैं । जो धातु उपदेश में उदात्त हैं उन पर कोई चिन्ह नहीं होता और जो उपदेश में अनुदात्त होते हैं उन के आदि वर्ण के नीचे अनुदात्त की तिर्छी रेखा कर देते थे और परस्मैपद आत्मने पद के लिये यह संकेत था कि जिन का अन्त्य वर्ण अनुदात्त चिन्हित इत् हो और जो उपदेश में ङित् हों उन से आत्मनेपद शेषों से परस्मैपद और जिन के अन्त्य वर्ण स्वरित् संज्ञक इत् हों उन तथा जो उपदेश में ञित् हों उन से उभयपद समझते थे । इस से बहुत लाघव के साथ सब बोध होजाता था

अववियां की प्रवृत्ति कम हो जाने के कारण यह परम्परा विगड़ गई है । अब इस ग्रन्थ में । अनुदात्त से अनिट् अनुदात्तेत् से आत्मनेपद और उदात्त से सेट् उदात्तेत् से परस्मैपद समझते हैं फिर भी आत्मनेपदी और परस्मैपदी शब्द भी सर्वत्र अत्यन्त सुगम होने के लिये लिख दिये हैं कि जिस से किसी को भ्रम न पड़ सके । इन सब प्रकारों से इत् संज्ञक वर्णों और सेट् अनिट् को व्यवस्था को ठीक २ जान के पढ़ने पढ़ाने वाले सब लोग शुद्ध प्रयोगों से व्यवहार और अर्थज्ञान से उपयुक्त हों। जो धातु उपदेश में उदात्त (सेट्) हैं उन से परे आर्द्धधातुक प्रत्ययों को इडागम होजाता और जो उपदेश में अनुदात्त (अनिट्) हैं उन से परे आर्द्धधातुक संज्ञक प्रत्ययों को इडागम नहीं होता है । इस ग्रन्थ में ग्यारह लकार अर्थात् लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ्, क्रम से लिखे हैं अन्य ग्रन्थों में लेट् लकार केवल वैदिक प्रयोग विषयक है सो नहीं लिखा है यहां विस्तार पूर्वक इस के प्रयोग लिखेंगे लिङ् दोवार इस लिये लिखा है कि इस के दो प्रकार के अर्थों में दो प्रकार के प्रयोग होते हैं । और दशगण अर्थात् भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि, और चुरादि, क्रमसे लिखे हैं । इस के पीछे बारह प्रक्रिया अर्थात् णिजन्त, सनन्त, यङन्त, यङ्लुगन्त, नामधातु, कण्ड्वादि, प्रत्ययमाला, आत्मनेपद, परस्मैपद, भावकर्म्म, कर्म्मकर्त्ता, और लकारार्थ, ये भी क्रम से विस्तारपूर्वक लिखेजावेंगे । और इतना ही तिङन्त का विषय है इसी को आख्यात भी कहते हैं । और जो सूत्र सामान्य करके सब धातुओं में लगते हैं उन को प्रथम२ एक ही वार लिखेंगे और जो किन्हीं विशेष धातुओं में लगते हैं उन को एक वार लिख कर पीछे जहां उन का सम्बन्ध होगा वहां २ इस ग्रन्थ की सूत्र संख्या जो उन के आगे लिखी होगी व्याख्या में रख दिया करेंगे उस के अनुसार उन सूत्रों का सम्बन्ध सब लोग वहां २ देख लेवें ॥

इति भूमिका ॥

———:o:———

ओ३म्

अथाख्यातिकः

—— ३*६ ——

[भू] सत्तायाम् (होना) उदात्त उदात्तेत् परस्मैभाषः। यह धातु परस्मैपदी है। भू शब्द सत्ता (होने) अर्थ का वाचक है। इस अर्थ को कहने के योग्य होने से भू शब्द समर्थ है जो इस से किसी अर्थ का बोध न होता तो असमर्थ समझा जाता फिर असमर्थ से कोई कार्य्य भी नहीं होसकता इस विषय की परिभाषा (समर्थः पदविधिः) सन्धिविषय में लिख चुके हैं। और शब्द का लक्षण भी नामिक की भूमिका में लिखा है भू शब्द सत्ता अर्थ के साथ समर्थ हुआ तो इस की धातुसंज्ञा हो कर कृत् प्रत्ययों की उत्पत्ति आदि कार्य्य होते हैं॥

१—भूवादयो धातवः॥ अ०॥ १। ३। १॥

यह सूत्र प्रातिपदिक संज्ञा का अपवाद है क्यों कि सामान्य अर्थवान् शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा कही है उस में यह धातु संज्ञा विशेष है। भू शब्द से लेके जो दश गणों में शब्द पढ़े हैं उन सब की धातु संज्ञा होती है इस से भू शब्द की धातु संज्ञा होकर॥ १॥

२—धातोः॥ अ०॥ ३। १। ९१॥

सब धातुसंज्ञक शब्दों से तव्यत् आदि प्रत्यय होते हैं॥ २॥

३—कृदतिङ्॥ अ०॥ ३। १। ९३॥

धातु से विहित जो प्रत्यय हैं वे कृत्संज्ञक हों। यहां तिङन्त की अपेक्षा में॥ ३॥

४—वर्त्तमाने लट्॥ अ०॥ ३। २। १२३॥

आरम्भ से लेके जब तक क्रिया की समाप्ति न हो तब तक वर्त्तमान काल समझना चाहिये उस वर्त्तमान अर्थ के वाचक धातुओं से लट् प्रत्यय हो। अब ये कृत्संज्ञक लट् आदि प्रत्यय भाव कर्म्म और कर्त्ता इन तीन अर्थों में सामान्य करके होते हैं उन का विभाग॥ ४॥

५—लः कर्म्मणि च भावे चाऽकर्म्मकेभ्यः॥ अ०॥ ३। ४। ६९॥

सकर्म्मक धातुओं से कर्म्म और कर्त्ता अर्थ में तथा अकर्म्मक धातुओं से भाव और कर्त्ता अर्थ में लकार होते हैं यहां भू धातु से कर्त्ता अर्थ में लट् आया भू—लट्। इस अवस्था में॥ ५॥

६—हलन्त्यम् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३ ॥

उपदेश में धातु आदि के समुदाय का जो अन्त्य वर्ण है वह इत्संज्ञक होवे ॥ ६ ॥

७—तस्य लोपः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ९ ॥

इत् संज्ञावाले वर्ण का लोप हो जाता है। यहां टकार की इत्संज्ञा और लोप हो कर प्रत्यय के आदि लकार की भी इत्संज्ञा (लशक्वतद्धिते) सूत्र से प्राप्त है सो अगले सूत्र में लकार के स्थान में आदेश विधानरूप ज्ञापक से नहीं होती ॥ ७ ॥

८—लस्य ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७७ ॥

लकार के स्थान में वक्ष्यमाण आदेश हों ॥ ८ ॥

९—तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७८ ॥

तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस्, त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहि, महिङ्, ये अठारह १८ आदेश लकार के स्थान में होते हैं ॥ ९ ॥

१०—लः परस्मैपदम् ॥ अ० ॥ १ । ४ । ९९ ॥

लकार के स्थान में जो अठारह १८ आदेश हैं वे परस्मैपद संज्ञक हों। इस से सामान्य करके विधान है परन्तु इस के अपवाद (तङानां०) सूत्र से तङ् आदि नव ९ की आत्मनेपद संज्ञा की है इस से तिप् पर्य्यन्त नव ९ को ही परस्मैपद संज्ञा जानो अब भू धातु से परस्मैपद हों वा आत्मनेपद इस सन्देह की निवृत्ति के लिये ॥ १० ॥

११—शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदम् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७८ ॥

जिन धातुओं से आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय कहे हैं उन को छोड़ के शेष धातुओं से परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय हों। यहां भू से तिप् आदि नव प्रत्यय प्राप्त हुए ॥ ११ ॥

१२—तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः ॥ अ० ॥ १ । ४ । १०१ ॥

तिङ् संबन्धी जो तिप् आदि प्रत्यय हैं वे यथाक्रम से तीन ३ प्रथम मध्यम और उत्तम संज्ञक हों अर्थात् (तिप्, तस्, झि, प्रथम) (सिप्, थस्, थ, मध्यम) और (मिप्, वस्, मस्, उत्तम) जानो ॥ १२ ॥

१३—तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः ॥ अ० ॥ १।४।१०२॥

वे ही तिङ् संबन्धी तिप् आदि के तीन २ समुदाय प्रत्येक एकवचन, द्विवचन, और बहुवचन, संज्ञक हों अर्थात् तिप् एकवचन, तस् द्विवचन, और झि बहुवचन, इसी प्रकार सिप् आदि में जानो ॥ १३ ॥

१४—युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः ॥ अ० ॥ १।४।१०५ ॥

तिङन्त क्रिया का अर्थ जिस युष्मद्पदवाच्य में रहे तो उस युष्मद् शब्द उपपद के रहते सन्ते युष्मद् शब्द का प्रयोग हो वा न हो तो भी धातु से मध्यम पुरुष हो ॥ १४ ॥

१५—अस्मद्युत्तमः ॥ अ० ॥ १।४।१०७ ॥

तिङन्त के साथ एकाधिकरण अस्मत् शब्द उपपद हो उस का प्रयोग हो वा न हो तो भी धातु से उत्तम पुरुष हो ॥ १५ ॥

१६—शेषे प्रथमः ॥ अ० ॥ १।४।१०८ ॥

युष्मद् और अस्मद् से भिन्न तिङन्त के साथ एकाधिकरण नाम उपपद हो उस का प्रयोग हो वा न हो तो भी धातु से प्रथम पुरुष हो। यहां शेष कर्त्ता की विवक्षा में लकार के स्थान में जो तिबादि आदेश हैं उन में से प्रथम पुरुष का एकवचन तिप् आया (भू—तिप्) इस अवस्था में ॥ १६ ॥

१७—यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् ॥ अ० ॥ १।४।१३ ॥

जिस धातु वा प्रातिपदिक से जिस प्रत्यय का विधान हो वही प्रत्यय परे हो तो तदादि शब्दरूप अर्थात् जिस से परे जो प्रत्यय करें उसी प्रत्यय के परे पूर्व जो शब्दरूप है सो अङ्ग संज्ञक हो और उस प्रत्यय का आदि अर्थात् प्रकृति और प्रत्यय के बीचमें जो विकरण प्रत्यय है उस को भी अङ्ग संज्ञा होजावे ॥१७॥

१८—तिङ्शित् सार्वधातुकम् ॥ अ० ॥ ३।४।११३ ॥

धातु के अधिकार मात्र में कहे जो तिङ् और शित् प्रत्यय वे सार्वधातुक संज्ञक हों इस से तिप् आदि को सार्वधातुक संज्ञा हुई ॥ १८ ॥

१९—कर्त्तरि शप् ॥ अ० ॥ ३।१।६८ ॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों तो धातु से परे शप् प्रत्यय हो इस से भू और तिप् के बीच में शप् प्रत्यय होकर (भू—शप्—तिप्) इस अवस्था में दोनों हल् पकारों को (६) से इत् संज्ञा और (७) से लोप होकर (भू—श—ति) रहा ॥ १९ ॥

२० — लशक्वतद्धिते ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८ ॥

प्रत्यय के आदि जो लकार शकार और कवर्ग उन की इत् संज्ञा होवे। इस से (श्) की इत् संज्ञा होकर (७) से लोप होगया (भू—अ—ति) इस अवस्था में ॥ २० ॥

२१ — सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८४ ॥

गुण वृद्धि आदि संज्ञा और इक् ही के स्थान में नियम होना संधिविषय में लिख चुके हैं। सार्वधातुक और आर्द्धधातुक संज्ञक प्रत्यय परे हों तो इगन्त अङ्ग के स्थान में गुण आदेश हो। इस से ऊकार का अन्तरतम ओकार गुण होकर (भो—अ—ति) इस अवस्था में ॥ २१ ॥

२२ — एचोऽयवायावः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ७८ ॥

एच् प्रत्याहार के स्थान में अय्, अव्, आय्, आव्, ये चार आदेश यथासंख्य करके हों। ओकार को अव् होकर। भवति। द्विवचन की विवक्षा में (भव—तस्) तिङ् प्रत्ययों की विभक्ति संज्ञा नासिक में हो चुकी है। इस का फल ॥ २२ ॥

२३ — न विभक्तौ तुस्माः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४ ॥

यहां तस् के सकार की इत् संज्ञा प्राप्त है उस का निषेध करते हैं। विभक्ति में जो तवर्ग सकार और मकार वे इत्संज्ञक न हों। तिङन्त की पदसंज्ञा भी कर चुके हैं नामिक में ॥ २३ ॥

२४ — ससजुषो रुः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ६६ ॥

पदान्त सकार और सजुष् शब्द के अन्त वर्ण को रुँ आदेश हो ॥ २४ ॥

२५ — उपदेशेऽजनुनासिक इत् ॥ अ० ॥ १ । ३ । २ ॥

उपदेश में जो अनुनासिक अच् है उस की इत् संज्ञा हो। इस से उकार की इत् संज्ञा होकर (भव—तर्) ॥ २५ ॥

२६ — खरवसानयोर्विसर्ज्जनीयः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १५ ॥

खर् प्रत्याहार के परे तथा अवसान में वर्त्तमान जो रेफ उस के स्थान में विसर्ज्जनीय आदेश हो। इस से रेफ को विसर्ग होकर। भवतः। भव—झि। यहां ॥ २६ ॥

२७ — झोऽन्तः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ३ ॥

प्रत्यय के आदि अवयव झकार को अन्त आदेश होवे। तकार में अकार उच्चारणार्थ है किन्तु आदेश हलन्त ही होता है। भव—अन्त—इ। दोनों अकारों को पररूप एकादेश हो कर। भवन्ति। भव + सिप् = भवसि। भव + थस् = भवथः। भव + थ = भवथ। भव + मिप् ॥ २७ ॥

२८—अतो दीर्घो यञि ॥ अ० ॥ ७ । ३ । १०१ ॥

यञादि सार्वधातुक प्रत्यय परे हों तो अदन्त अङ्ग को दीर्घ आदेश होवे। यहां शप् के अकार की अङ्ग संज्ञा होकर दीर्घ होता है। भवामि। भव+वस्=भवावः। भव+मस्=भवामः। स भवति। तौ भवतः। ते भवन्ति। त्वं भवसि। युवां भवथः। यूयं भवथ। अहं भवामि। आवां भवावः। वयं भवामः। इन लकारों का क्रम वर्णक्रमसे चलाया करते हैं जैसे। अ, इ, उ, ऋ, ए, ओ, ये छः टित् और ऐसा ही क्रम ङित् लकारों में भी जानो। इस क्रम के अनुसार लट् के आगे लिट् प्राप्त हुआ। जितने सूत्र प्रथम लकार में लिख दिये उन को अब नहीं लिखें गे जो २ विशेष आते जावें गे उन को लिखें गे ॥ २८ ॥

२९—परोक्षे लिट् ॥ अ० । ३ । २ । ११५ ॥

यहां भूत और अनद्यतन की अनुवृत्ति आती है। परोक्ष अनद्यतन भूतकाल में हुए कार्यों के वाचक धातुओं से लिट् लकार होवे। परोक्ष शब्द का अर्थ ॥२९॥

का०-परोभावः परस्याक्षे परोक्षे लिटि दृश्यताम्।
उत्वं वाऽऽदेः पराद्क्ष्णः सिद्धं वाऽस्मान्निपातनात् ॥

जिस से विषयों के साथ ज्ञान की व्याप्ति हो उस को अक्षि कहते हैं अर्थात् पांच ज्ञान इन्द्रियों का ग्रहण अक्षि शब्द से समझना चाहिये। और इन्द्रियों से जो परे हो उस को परोक्ष कहते हैं। अक्ष शब्द के परे पर शब्द को परो आदेश अथवा अकार को उकार वा परोक्ष शब्द को पृषोदरादि मान के इस सूत्र में निपातन किया है ॥

भा०-कथं जातीयकं पुनः परोक्षं नाम। केचित्तावदाहुर्वर्षशतवृत्तं परोक्षमिति। अपरआहुर्वर्षसहस्रवृत्तं परोक्षमिति। अपरआहुः कुड्यकटान्तरितं परोक्षमिति। अपरआहुर्द्व्यहवृत्तं त्र्यहवृत्तं वेति ॥

जो अपने सामने न हुआ हो उस परोक्ष की कितनी अवधि समझनी चाहिये इस विषय में बहुत ऋषि लोगों का भिन्न २ विचार है। कोई कहते हैं कि जो सौ १०० वर्ष पहिले होचुका हो कोई कहते हैं कि जो हजार १००० वर्ष प्रथम होगया हो कोई कहते हैं कि जो भित्ति और चटाई के आड़ में हो और कोई कहते हैं कि दो वा तीन दिन पहिले हुआ हो उस को परोक्ष समझना चाहिये। सो यह सब प्रकार से परोक्ष हो सकता है क्यों कि मुख्य परोक्ष के साथ

सब का सम्बन्ध होसकता है। भू- लिट्। यहां टकार इकार की इत्संज्ञा और लोप होकर लकार के स्थान में तिप् आदि नव होजाते हैं॥

३०—लिट् च॥ अ०॥ ३। ४। ११५॥

यह सूत्र सार्वधातुक संज्ञा का अपवाद है। लिट् के स्थान में जो तिप् आदि आदेश हैं वे आर्द्धधातुक संज्ञक हों। यहां एक संज्ञा का अधिकार तो है ही नहीं इस कारण पक्ष में सार्वधातुक संज्ञा भी प्राप्त है इस लिये एव शब्द की अनुवृत्ति समझनी चाहिये कि आर्द्धधातुक संज्ञा ही हो अन्य नहीं॥ ३०॥

३१—परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः॥ अ०॥ ३। ४। ८२॥

धातु से परे लिट् लकार के स्थान में परस्मैपदसंज्ञक जो तिप् आदि आदेश उन को णल् आदि नव आदेश यथासंख्य करके होजावें। भू- णल्॥ ३१॥

३२—चुटू॥ अ०॥ १। ३। ७॥

प्रत्यय के आदि जो चवर्ग टवर्ग उन की इत् संज्ञा हो। यहां णकार लकार की इत्संज्ञा और लोप होके। भू-अ। इस अवस्था में द्विर्वचन, यणादेश, गुण, वृद्धि, आदि कार्य्य भी प्राप्त हैं इन सब का बाधक वुक् होता है॥ ३२॥

३३—भुवो वुग्लुङ्लिटोः॥ अ०॥ ६। ४। ८८॥

अजादि लुङ् और लिट् लकार परे हों तो भू अङ्ग को वुक् का आगम होता है। उक् मात्र की इत् संज्ञा होकर। भूव्-अ॥ ३३॥

३४—एकाचो द्वे प्रथमस्य॥ अ०॥ ६। १। १॥

यह अधिकार सूत्र है। धातु के प्रथम एकाच् अवयव को द्वित्व होवे॥ ३४॥

३५—अजादेर्द्वितीयस्य॥ अ०॥ ६। १। २॥

यहां भी एकाच् की अनुवृत्ति आती है। अजादि धातुओं के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व होवे॥ ३५॥

३६—लिटि धातोरनभ्यासस्य॥ अ०॥ ६। १। ८॥

लिट् लकार परे हो तो अनभ्यास धातु के प्रथम एकाच् और अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव को द्विर्वचन होवे। इस में विशेष यह है कि जहां धातुओं में अनेक अच् होते हैं वहां प्रथम एकाच् और द्वितीय एकाच् अवयव का कहना बन सकता है और जिन में एक ही अच् है वहां उसी एकाच् अवयव को द्वित्व होजाता है। यहां भी एकाच् अवयव भूव् मात्र को द्विर्वचन हो कर भूव्-भूव्-अ। यहां॥ ३६॥

३७—पूर्वोऽभ्यासः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४ ॥

द्विर्वचन का जो पूर्व भाग है वह अभ्यास संज्ञक हो। प्रथम भूव् को अभ्यास संज्ञा हो कर ॥ ३७ ॥

३८—हलादिः शेषः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६० ॥

अभ्यास का आदि हल् शेष रहे अन्य हलों का लोप हो जावे इस से प्रथम भूव् के (व्) का लोप होके । भू— भूव्— अ ॥ ३८ ॥

३९—ह्रस्वः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५९ ॥

अभ्यास के अच् को ह्रस्व आदेश हो ह्रस्व उकार हुआ ॥ ३९ ॥

४०—भवतेरः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७३ ॥

लिट् लकार परे हो तो भू धातु के अभ्यास को अकार आदेश हो ह्रस्व उकार को प्रमाणकृत आन्तर्य मान के ह्रस्व अकार हो कर । भ— भूव्— अ ॥४०॥

४१—अभ्यासे चर्च ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ५४ ॥

अभ्यास में जो झल् उन को चर् और जश् आदेश हों यहां भकार को बकार हो जाता है ॥ ४१ ॥

४२—असिद्धवदत्राभात् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २२ ॥

इस सूत्र से ले कर इस पाद की समाप्ति पर्य्यन्त एक प्रयोग में दो कार्य्य प्राप्त हों तो पर कार्य को असिद्ध मान के पूर्व विहित कार्य भी हो जावे। इस से वुक् के आगम को असिद्ध मान के उवङ् आदेश प्राप्त होता है इस लिये ॥ ४२ ॥

४३—वा०—वुग्युटावुवङ्यणोः कर्तव्ये सिद्धौ वक्तव्यौ ॥

उवङ् और यणादेश करने में वुक् और युट् का आगम यथासंख्य करके असिद्ध न माने जावें किन्तु सिद्ध ही समझने चाहिये। इस से उवङ् नहीं होता बभूव। बभूव्—अतुस्। यहां द्विर्वचन और वुगागम से प्रथम ही गुण प्राप्त है ॥४३॥

४४—इन्धिभवतिभ्यां च ॥ अ० ॥ १ । २ । ६ ॥

इन्धि और भू धातु से परे जो अपित् लिट् वह कित् संज्ञक हो। तिप् सिप् मिप् के स्थान में जो आदेश होते हैं वे पित् अन्य सब अपित् समझे जाते हैं। पित् विषय में गुण वृद्धि के बाधक वुक् को अवकाश मिल जाने से यहां अपित् विषय में परत्व से गुण प्राप्त है ॥ ४४ ॥

४५—क्ङिति च ॥ अ० ॥ १ । १ । ५ ॥

कित् गित् और ङित् प्रत्यय परे हों तो इक् के स्थान में गुण वृद्धि न हों इस गुण का निषेध होकर । बभूव्+अतुस्=बभूवतुः । बभूव्+उस्=बभूवुः बभूव्—थल् ॥ ४५ ॥

४६—आर्द्धधातुकस्येड्वलादेः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ३५ ॥

अङ्ग से परे जो वलादि आर्द्धधातुक उस को इट् का आगम हो थल् आदि इट् होकर । बभूविथ । बभूव्+अथुस्=बभूवथुः । बभूव्+अ=बभूव बभूव्+णल्=बभूव । बभूव्+इट्+व=बभूविव । बभूव्+इट्+म=बभूवि इस के पश्चात् क्रम से प्राप्त लुट् ॥ ४६ ॥

४७—अनद्यतने लुट् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५ ॥

जिस समय से विचार करने लगें तब से अर्द्धरात्रि पर्य्यन्त अद्यतन अर्द्धरात्रि के पश्चात् हुए कार्य्य को अनद्यतन कहते हैं सो भूत भविष्यत् दोनों साथ सम्बन्ध रखता है । भविष्यत् अनद्यतन अर्थ के वाचक धातु से लुट् लव होवे । भू—लुट् ॥ ४७ ॥

४८—स्यतासी लृलुटोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३३ ॥

यहां किसी अनुबन्ध विशेष की सूचना नहीं की इस से (लृ) कार के लृट् लृङ् दोनों का बोध होता है । और यह सूत्र शप् आदि विकरण प्रत्ययों अपवाद है लुट् लकार परे हो तो धातु से स्य और तासि प्रत्यय यथासं करके हों । यहां लुट् के परे तासि हुआ । भू—तासि—लुट् ॥ ४८ ॥

४९—आर्द्धधातुकं शेषः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ११४ ॥

धात्वधिकार में कहे तिङ् और शित् प्रत्ययों से भिन्न जो प्रत्यय वे आर्द्धधा संज्ञक होते हैं । इस से तासि प्रत्यय की आर्द्धधातुक संज्ञा और लुट् के स्थ में तिबादि आदेश होकर । भू+तासि—तिप् । यहां तासि में अनुनासिक इ की इत्संज्ञा और लोप होकर ॥ ४९ ॥

५०—लुटः प्रथमस्य डारौरसः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ८५ ॥

लुट् लकार के प्रथम पुरुष को डा, रौ, और रस् आदेश यथासंख्य करके तिप् के स्थान में डा आदेश होकर डकार की इत् संज्ञा होने से तास् प्रत्यय आस् मात्र का लोप होकर । भू—इत्—आ । यहां ॥ ५० ॥

५१–पुगन्तलघूपधस्य च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८६ ॥

सार्वधातुक और आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हों तो पुगन्त और लघु वर्ण जिस की उपधा में हो उस को गुण हो इस से इट् के आगम को लघूपधमान के गुण प्राप्त हुआ इस लिये ॥ ५१ ॥

५२–दीधीवेवीटाम् ॥ अ० ॥ १ । १ । ६ ।

दीधी, और वेवी धातु तथा इट् का आगम इन को गुण वृद्धि न हों। फिर आर्द्धधातुक तास् के परे भू को गुण और अवादेश होकर। भविता ॥ ५२ ॥

५३–रि च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५१ ॥

रेफादि प्रत्यय परे हो तो तास् अस्ति के सकार का लोप होजावे। भवितास् + रौ = भवितारौ। भवितास् + रस् = भवितारः ॥ ५३ ॥

५४–तासस्त्योर्लोपः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५० ॥

सकारादि प्रत्यय परे हो तो तास् और अस्ति के सकार का लोप होजावे जैसे। भवितास् + सिप् = भवितासि। भवितास् + थस् = भवितास्थः। भवितास् + थ = भवितास्थ। भवितास् + मिप् = भवितास्मि। भवितास् + वस् = भवितास्वः। भवितास् + मस् = भवितास्मः ॥ ५४ ॥

५५–लृट् शेषे च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३ ॥

क्रियार्था क्रिया उपपद हो वा नहो तो भी भविष्यत् अर्थ के वाचक धातु से लृट् लकार होवे। भू–लृट्। यहां (५०) स्य प्रत्यय, गुण, तिबादि आदेश स्य प्रत्यय को इट् का आगम और अवादेश होकर ॥ ५५ ॥

५६–आदेशप्रत्यययोः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ५९ ॥

इण् कवर्ग से परे जो आदेश और प्रत्यय का अवयव सकार उस को मूर्द्धन्य आदेश हो जावे जैसे। भवि + स्य + तिप् = भविष्यति। भविष्यतः। भविष्यन्ति। भविष्यसि। भविष्यथः। भविष्यथ। भविष्यामि। भविष्यावः। भविष्यामः ॥ ५६ ॥

५७–लिङर्थे लेट् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७ ॥

यहां छन्द की अनुवृत्ति आती है। जो विधि आदि और हेतु हेतुमान् लिङ् लकार के अर्थ हैं उन में धातु मात्र से वैदिकप्रयोगविषयक लेट् लकार होवे। यहां भू धातु से लेट्, तिबादि, आदेश हो कर। भू– तिप्। इस अवस्था में शप् विकरण प्राप्त है ॥ ५७ ॥

५८–सिब्बहुलं लेटि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३४ ॥

धातु से सिप् प्रत्यय हो लेट् लकार परे हो तो बहुल करके । विकल्प का पर्य्याय वाची बहुल ग्रहण समझना चाहिये । इसी से पक्ष में शप् भी होता है । सिप् में से इप् मात्र की इत् संज्ञा हो जाती है ॥ ५८ ॥

५९–वा०–सिब्बहुलं णिद्वक्तव्यः ॥

सिप् प्रत्यय बहुल (विकल्प) से णित् समझना चाहिये सिप् को आर्द्धधातुक मान के इडागम हो जाता है ॥ ५९ ॥

६०–अचो ञ्णिति ॥ अ० ॥ ७ । २ । ११५ ॥

अजन्त अङ्ग को वृद्धि हो ञित् णित् प्रत्यय परे हों तो ऊकार को औ वृद्धि होकर । भ्–औ–इ–स्–ति । यहां ॥ ६० ॥

६१–लेटोऽडाटौ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९४ ॥

लेट् लकार को अट् और आट् का आगम पर्य्याय से हों सो पित् हों । अर्थात् अपित् प्रत्यय से पृथक् पित्त्व धर्म आगम में समझा जावे । टकार की इत् संज्ञा होकर । भावि+स्+अ+तिप्=भाविषति । भाविष्+आट्+ति=भाविषाति ॥ ६१ ॥

६२–इतश्च लोपः परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९७ ॥

लेट् लकार सम्बन्धी परस्मैपद विषयक इकार का लोप विकल्प करके हो अवसान में झलों के स्थान में चर् आदेश विकल्प करके होते हैं । भाविषत् । भाविषात् । भाविषद् । भाविषाद् । जिस पक्ष में णित् संज्ञा के न होने से वृद्धि नहीं होती वहां । भविषति । भविषाति । भविषत् । भविषात् । भविषद् । भविषाद् । और सिप् प्रत्यय के विकल्प से जिस पक्ष में शप् होता है वहां । भवति । भवाति । भवत् । भवात् । भवद् । भवाद् । (तस्) अन्य सब कार्य्य पूर्व के समान । भाविषतः । भाविषातः । भविषतः । भविषातः । भवतः । भवातः । (झि) भाविषन्ति । भाविषान्ति । इकार लोप होने के पश्चात् संयोगान्त तकार का लोप होकर । भाविषन् । भाविषान् । भविषन्ति । भविषान्ति । भविषन् । भविषान् । भवन्ति । भवान्ति । भवन् । भवान् (सिप्) भाविषसि । भाविषासि । यहां इकार लोप के पश्चात् सकार को विसर्जनीय होजाते हैं । भाविषः । भाविषाः । भविषसि । भविषासि । भविषः । भविषाः । भवसि । भवासि । भवः । भवाः । (थस्) भाविषथः । भाविषाथः । भविषथः । भविषाथः । भवथः । भवाथः । (सिप्) यहां अट् पक्ष में भी एकादेश को पूर्व का अन्त अवयव मानने से अदन्त

अङ्ग को दीर्घ होकर एक ही प्रकार के प्रयोग होते हैं। भाविषामि२। भाविषाम्२। भविषामि२। भविषाम्२। भवामि२। भवाम्२। (वस्) (मस्) ॥ ६२ ॥

६३—सउत्तमस्य ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९८ ॥

लेट् लकार सम्बन्धी उत्तम पुरुष के सकार का विकल्प कर के लोप होवे भाविषाव२। भाविषावः२। भविषाव२। भविषावः२। भवाव२। भवावः२। भाविषाम२। भाविषामः२। भविषाम२। भविषामः२। भवाम२। भवामः२ ॥ ६३ ॥

६४—लोट् च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६२ ॥

विधि आदि अर्थों में धातु से लोट् लकार हो। और ॥ ६४ ॥

६५—आशिषि लिङ्लोटौ ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७३ ॥

आशीर्वाद अर्थ में भी लिङ् लोट् लकार हों। भव–ति। इस अवस्था में ॥ ६५ ॥

६६—एरुः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८६ ॥

लोट् लकार के इकार को उकार आदेश होजावे। भवतु ॥ ६६ ॥

६७—तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ७ । १ । ३५ ॥

आशीर्वाद अर्थ में जो तु और हि उन को तातङ् आदेश विकल्प करके होवे। यहां तात् आदेश के कहने और तृतीयाध्याय के चतुर्थ पाद में (एरुः) सूत्र के आगे पढ़ने से लोट् के अन्त्य इकार को उ आदेश विकल्प करके हो ही जाता फिर इतने गौरव और अन्यत्र पढ़ने से ज्ञापक होता है कि तातङ् आदेश में ङित् करण अन्त्य अल् के स्थान में होने के लिये नहीं किन्तु गुण वृद्धि के निषेध और सम्प्रसारण आदि कार्य्य होने के लिये है। अङ् मात्र की इत्संज्ञा होकर। भवतात् ॥ ६७ ॥

६८—लोटो लङ्वत् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८५ ॥

लोट् लकार को लङ्वत् कार्य्य हो। लङ्वत् शब्द में वति प्रत्यय षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियों के स्थान में होसकता है। सो यहां षष्ठ्यर्थ में वति समझना चाहिये सप्तम्यर्थ में नहीं क्यों कि लङ् के परे जो अट् का आगम आदि कार्य्य होते हैं वे लोट् के परे न हों ॥ ६८ ॥

६९—तस्थस्थमिपान्तान्तन्तामः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०५ ॥

ङित् लकार के जो तस्, थस्, थ, और मिप्, उन को ताम्, तम्, त, और अम्, आदेश यथासंख्य करके हों जैसे। भवताम्। भव–झि (६६) से उ होकर भवन्तु। भव–सिप् ॥ ६९ ॥

७०—सेर्ह्यपिच्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८७ ॥

लोट् लकार का जो सि उस को अपित् हि आदेश होवे। पित्त्व धर्म का अतिदेश आदेश में प्राप्त है इस लिये अपित् कहा है (६७) तातङ् होकर भवतात्। पक्ष में ॥ ७० ॥

७१—अतो हेः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०५ ॥

अदन्त अङ्ग से परे जो हि उस का लुक् होजावे। भव। भव+थस्=भवतम्। भव+थ=भवत ॥ ७१ ॥

७२—मेर्निः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८९ ॥

लोट् लकार का जो मि उस को नि आदेश हो। यहां इकार उच्चारण रूप ज्ञापक से ही उकारादेश नहीं होता है। भव+मिप्=भवानि ॥ ७२ ॥

७३—नित्यं ङितः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९९ ॥

ङित् लकार के उत्तम पुरुष का जो सकार उस का नित्य ही लोप होवे। भवाव। भवाम ॥ ७३ ॥

७४—अनद्यतने लङ् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १११ ॥

अनद्यतन भूत अर्थ के वाचक धातु से लङ् लकार होवे ॥ ७४ ॥

७५—लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ७१ ॥

लुङ् लङ् और लृङ् लकार परे हों तो धातु को उदात्त अट् का आगम हो। भू के आदि में होता है ॥ ७५ ॥

७६—इतश्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०० ॥

ङित् लकार का जो परस्मैपद विषयक इकार उस का लोप होवे। अभवत्। अभव+तस्=अभवताम्। (६८) से ताम्। अभवन्। अभवः। अभवतम्। अभवतम् अभव+मिप्=अभवम् (८६) से अम् और पररूप एकादेश होता है। अभवाव। अभवाम ॥ ७६ ॥

७७—विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्

॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६१ ॥

विधि (प्रेरणा) निमन्त्रण—किसी से (प्रतिज्ञाकरना) आमन्त्रण (यथेष्ठ-आचरण) अधीष्ट (सत्कार पूर्वक ठहराना) संप्रश्न (सम्यक् पूछना) प्रार्थना (मांगना) इन अर्थों में धातु से लिङ् लकार होवे। भव—तिप् ॥ ७७ ॥

७८—यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०३ ॥

यह सूत्र सीयुट् का अपवाद है। परस्मैपदविषयक लिङ् लकार को यासुट् का आगम हो सो उदात्त और ङित् संज्ञक होजावे । इस आगम को उदात्त विधान करने से ज्ञापक होता है कि अन्य आगम जिन में स्वर विशेष का विधान न किया हो वे सब अनुदात्त होते हैं। और लकार के स्थान में जो तिप् आदि आदेश होते हैं वे ङित् नहीं होते क्योंकि उन के ङित् होने से उन को हुआ आगम भी ङित् हो ही जाता फिर ङित् कहने से यही ज्ञापक होता है कि यहां स्थानिवद्भाव नहीं होता ॥ ७८ ॥

७९—सुट् तिथोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०७ ॥

लिङ् लकार के जो तकार थकार उन को सुट् का आगम हो । सुट् का आगम यासुट् का बाधक इस लिये नहीं होता कि लिङ् को यासुट् और तकार थकार को सुट् कहने से विषय भेद होजाता है । और एक विषय में उत्सर्गापवाद की प्रवृत्ति होती है ॥ ७९ ॥

८०—लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७९ ॥

सार्वधातुक विषयक अनन्त्य सकार का लोप होजावे । इस से यासुट् और सुट् दोनों के सकारों का लोप होजाता है और आशिष् लिङ् में परस्मैपद और आत्मनेपद में आर्द्धधातुक विषय के होने से ये सकार बने रहते हैं। भव–या–तिप् ॥ ८० ॥

८१—अतो येयः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ८० ॥

अदन्त अङ्ग से परे जो सार्वधातुक का अवयव या उस को इय् आदेश होवे । (लोपो व्योर्वलि) सूत्र से हल् यकार का लोप होकर । भव+इ+तिप्=भवेत् । भव+इ+तस्=भवेताम् ॥ ८१ ॥

८२—झेर्जुस् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०८ ॥

लिङ् लकार का जो झि उस को जुस् आदेश होवे जकार की इत्संज्ञा ॥ ८२ ॥

८३—उस्यपदान्तात् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ९६ ॥

अपदान्त अवर्ण से उस् परे हो तो पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश होजावे । इस की प्राप्ति तो है परन्तु परत्व और नित्यत्व से इय् आदेश होजाता है फिर प्राप्ति नहीं रहती । इस सूत्र का काम अदादि गण में पड़ेगा कि जहां इय् आदेश की प्राप्ति नहीं होती । भव+इय्+उस्=भवेयुः । भव+इय्+

सिप्=भवेः। भव+इय्+थस्=भवेतम्। भव+इय्+थ=भवेत। भव+इय्+मिप्=भवेयम्। भव+इय्+वस्=भवेव। भव+इय्+मस्=भवेम। आशीर्वाद अर्थ में (६५) सूत्र से लिङ् आया ॥ ८३ ॥

८४—लिङाशिषि ॥ अ० ॥ ३। ४। ११६ ॥

आशीर्वाद अर्थ में जो लिङ् उस के स्थान में जो तिबादि आदेश वे आर्द्धधातुक संज्ञक हों ॥ ८४ ॥

८५—किदाशिषि ॥ अ० ॥ ३। ४। १०४ ॥

परस्मैपद विषयक लिङ् लकार को जो यासुट् का आगम ङित् कहा है वह आशीर्वाद अर्थ में कित् समझना चाहिये। आर्द्धधातुक संज्ञा होने से शप् विकरण प्राप्त नहीं अन्य किसी का विधान नहीं है। यहां पदान्त में संयोग के आदि यासुट् के सकार का, लोप हो जाता है। भू+यास्+तिप्=भूयात्। भू+यास्+तस्=भूयास्ताम्। भू+यास्+झि=भूयासुः। भू+यास्+सिप्=भूयाः। भू+यास्+थस्=भूयास्तम्। भू+यास्+थ=भूयास्त। भू+यास्+मिप्=भूयासम्। भू+यास्+वस्=भूयास्व। भू+यास्+मस्=भूयास्म ॥ ८५ ॥

८६—लुङ् ॥ अ० ॥ ३। २। ११० ॥

सामान्य भूत अर्थ के वाचक धातुओं से लुङ् लकार हो। शप् विकरण की प्राप्ति में ॥ ८६ ॥

८७—च्लि लुङि ॥ अ० ॥ ३। १। ४३ ॥

लुङ् लकार परे हो तो धातु से च्लि प्रत्यय होवे ॥ ८७ ॥

८८—च्लेः सिच् ॥ अ० ॥ ३। १। ४४ ॥

लुङ् लकार परे हो तो च्लि के स्थान में सिच् आदेश हो जावे। इकार चकार की इत्संज्ञा हो जाती है ॥ ८८ ॥

८९—गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ २। ४। ७७ ॥

गाति, स्था, घुसंज्ञक, पा, भू, इन धातुओं से परे जो सिच् उस का लुक् हो जावे। सिच् का लुक् होने पश्चात् उस को स्थानिवत् मान के उस से परे अपृक्त हलादि सार्वधातुक तिप् को इट् का आगम प्राप्त है इस लिये ॥ ८९ ॥

९०—वा०—आह्भुवोरीट्प्रतिषेधः * ॥

आह आदेश और भू से परे जो सिच् का लुक् उस को स्थानिवद्भाव न हो। स्थानिवत् के निषेध से ईट् का आगम नहीं होता। अब भू अङ्ग को तिप् के परे गुण पाता है इस लिये ॥ ९० ॥

९१—भूसुवोस्तिङि ॥ अ० ॥ ७। ३। ८८ ॥

अव्यवहित सार्वधातुक तिङ् परे हों तो भू और सू अङ्गों को गुण न होवे। (७१) सूत्र से अडागम हो कर। अट्+भू+सिच्+तिप्=अभूत्। अभू+तस्=अभूताम्। अभू+वुक्+झि=अभूवन्। अभू+सिप्=अभूः। अभू+थस्=अभूतम्। अभू+थ=अभूत। अभू+वुक्+मिप्=अभूवम्। अभू+वस्=अभूव। अभू+मस्=अभूम ॥ ९१ ॥

९२—न माङ्योगे ॥ अ० ॥ ६। ४। ७४ ॥

माङ् अव्यय शब्द के योग में लुङ्, लङ्, और लृङ्, लकारों को जो अट् और आट् के आगम कहे हैं वे नहीं जैसे। इह मा भूत्। मा भवान् भूत्। मा स्म भवत्। मा स्म भूत्। इत्यादि में अट् का आगम नहीं होता और आट् के आगम का निषेध आगे अजादि धातुओं में दिखाया जावेगा ॥ ९२ ॥

९३—लिङ्निमित्ते लृङ्क्रियाऽतिपत्तौ ॥ अ० ॥ ३। ३। १३९ ॥

जो हेतु, हेतुमद्भाव आदि लिङ् लकार के निमित्त अर्थ हैं उन में क्रिया की असिद्धि गम्यमान हो तो धातु से लृङ् लकार होजावे (७१) अट् और स्य प्रत्यय आदि कार्य्य होकर। अट्+भू+इट्+स्य+तिप्=अभविष्यत्। अभविष्यताम्। अभविष्यन्। अभविष्यः। अभविष्यतम्। अभविष्यत। अभविष्य+मिप्=अभविष्यम्। यहां अम् के अकार के साथ पररूप होजाता है। अभविष्याव। अभविष्याम। अथ तवर्गीयान्ताश्चतुस्सप्तति: [एध] वृद्धौ (बढ़ना) अब यहां से आगे एध आदि तवर्गीयान्त ७४ चौहत्तर धातुओं का व्याख्यान है। भू धातु में जितने सामान्य विषयक सूत्र लिखे हैं वे यहां नहीं लिखे जावेंगे। पूर्ववत् वर्त्तमान अर्थ में लट् आया ॥ ९३ ॥

---

* इस वार्त्तिक को सिद्धान्त कौमुदी वालों ने न समझ के (अस्तिसिचोऽपृक्ते) इस सूत्र का व्याख्यान मूल, महाभाष्य, और काशिका आदि से विपरीत किया है जो कदाचित् उन का व्याख्यान ठीक होवे तो वार्त्तिक व्यर्थ ही जावे और असम्भव अभिप्राय सूत्र से निकाला है इस लिये मान्य नहीं हो सकता क्योंकि ऋषियों के अभिप्राय से विरुद्ध इन के पाण्डित्य को कौन मान सकता है ॥

९४—तङानावात्मनेपदम् ॥ अ० ॥ १ । ४ । १०० ॥

लकार के स्थान में तङ् और आन (शानच्) आदि आत्मनेपद संज्ञक आदेश हों इस से त, से लेकर महिङ् तक नव ९ का ग्रहण है ॥ ९४ ॥

९५—अनुदात्तङित आत्मनेपदम् ॥ अ० ॥ १ । ३ । १२ ॥

अनुदात्त वर्ण जिन का इत् गया हो और ङित् धातुओं से त आदि नव ९ आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय हों। यहां भी एध में अनुदात्त अकार इत् जाता है इस कारण इस से आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय आये शप् विकरण होकर ॥ ९५ ॥

९६—टित आत्मनेपदानां टेरे ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७९ ॥

टित् लकारों के स्थान में जो आत्मनेपद संज्ञक आदेश उन के टिभाग को ए आदेश हो जावे। यहां समुदाय को आदेश विधान नहीं इस कारण अन्त्य अल् के स्थान में नहीं होता। एध्+शप्+त=एधते ॥ ९६ ॥

९७—सार्वधातुकमपित् ॥ अ० ॥ १ । २ । ४ ॥

सार्वधातुक संज्ञक अपित् प्रत्ययों की ङित् संज्ञा हो ॥ ९७ ॥

९८—आतो ङितः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ८१ ॥

अदन्त अङ्ग से परे जो ङित् प्रत्ययों का आकार उस को इय् आदेश हो जावे। आम् भाग को एकार होकर। एध्+शप्+आताम्=एधेते। एध्+शप्+झ=एधन्ते ॥ ९८ ॥

९९—थासः से ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८० ॥

टित् लकार के थास् को से आदेश होवे। एध्+शप्+थास्=एधसे। एध्+शप्+आथाम्=एधेथे। एध्+शप्+ध्वम्=एधध्वे। एध्×शप्×इट्=एधे। यहां गुण एकार के परे पररूप एकादेश होजाता है। एध्+शप्+वहि=एधावहे। एध्+श .+महिङ्=एधामहे ॥ ९९ ॥

१००—इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३६ ॥

लिट् लकार परे हो तो इजादि और गुरुमान् धातुओं से आम् प्रत्यय हो जावे परन्तु ऋच्छ धातु से न होवे ॥ १०० ॥

१०१—आमः ॥ अ० । २ ४ । ८१ ॥

आम् से परे जो लि उस का लुक् हो जावे। इस से लिट् का लुक् हो कर ॥ १०१ ॥

१०२—कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४० ॥

इस सूत्र में लिट् ग्रहण किया है इसी से यहां लुङ् हुए लिट् का रूपातिदेश समझना चाहिये। आमन्त से लिट् लकार परे हो तो कृञ्, भू, और अस् धातुओं का अनुप्रयोग अर्थात् इन सामान्य धातुओं का आम् प्रत्ययान्त एध आदि विशेष धातुओं से परे एक प्रयोग में समावेश किया जावे। आत्मनेपद प्रकरण में अनुप्रयोग शब्द के साथ कृञ् धातु का ग्रहण किया है इसी ज्ञापक से (कृभ्वस्तियोगे०) इस सूत्र से ले के (कृञो०) इस सूत्र में कृञ् के ञकार पर्य्यन्त प्रत्याहार ग्रहण से तीनों धातुओं का अनुप्रयोग किया जाता है। और ये कृञ् आदि तीनों धातु समान्यार्थवाचक और आम् प्रत्ययान्त विशेषार्थवाचक हैं इस कारण एक अर्थ के साथ दोनों धातुओं का सम्बन्ध हो जाता है। यह कृञ् धातु ञित् है ॥ १०२ ॥

१०३—स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६२ ॥

यह सूत्र परस्मैपद का बाधक है। क्रिया का फल कर्त्ता के लिये होवे तो स्वरित और ञित् धातुओं से आत्मनेपद हो अन्यत्र परस्मैपद। इस से क्रिया का फल अन्य के लिये होने में भी कृञ् धातु से परस्मैपद प्राप्त है इस लिये ॥१०३॥

१०४—आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६३ ॥

जिस धातु से आम्प्रत्यय किया हो उस से जो आत्मनेपद होता हो तो अनुप्रयुक्त कृञ् से भी आत्मनेपद और आम्प्रत्ययान्त धातु परस्मैपदी हो तो परस्मैपद ही जावे। यहां एध धातु आत्मनेपदी है इस लिये कृञ् से भी आत्मनेपद प्रत्ययही होते हैं ॥ १०४ ॥

१०५—लिटस्तझयोरेशिरेच् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८१ ॥

लिट् लकार के स्थान में जो त और झ हैं उन को एश् और इरेच् आदेश यथासंख्य करके हो जावें। त संपूर्ण के स्थान में शित् आदेश हो कर। एध—आम्—कृ—ए। इस अवस्था में एकार को कित् संज्ञा होने से गुण वृद्धि तो प्राप्त नहीं परन्तु द्विर्वचन का बाधक परत्व से यणादेश हो जाता है उस को स्थानिरूपवत् मान के पुनः द्विर्वचन होता है। एध—आम्—कृ कृ—ए ॥ १०५ ॥

१०६—उरत् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६६ ॥

अभ्यास के ऋकार को अत् आदेश होवे। ऋ के स्थान में रपर होने नियम से अर् हो कर रेफ का लोप (२८) हो जाता है ॥ १०६ ॥

१०७—कुहोश्चुः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६२ ॥

अभ्यास की जो कवर्ग और हकार उन को चवर्ग आदेश होता है । एध्+आम्+चक्र+ए=एधाञ्चक्रे । एध्+आम्+चक्र+आताम्=एधाञ्चक्राते । एधाञ्चक्र+इरेच्=एधाञ्चक्रिरे ॥ १०७ ॥

१०८—एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ॥ अ० ॥ ७ । २ । १० ॥

उपदेश में जो एकाच् अनुदात्त धातु हो उस से परे वलादि आर्द्धधातुक प्रत्यय को इट् का आगम न हो । इस से थास् के स्थान में से के परे इडागम न हुआ । एधाञ्चक्र+थास्=एधाञ्चकृषे । एधाञ्चक्राथे ॥ १०८ ॥

१०९—इणः षीध्वंलुङ्लिटांधोऽङ्गात् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७८ ॥

इणन्त अङ्ग से परे जो सीध्वम् लुङ् और लिट् का धकार उस को मूर्द्धन्य आदेश हो । धकार का अन्तरतम ढकार हो जाता है । एधाञ्चक्र=ध्वम्=एधाञ्चकृढ्वे । एधाञ्चक्र+इट्=एधाञ्चक्रे । एधाञ्चकृवहे । एधाञ्चकृमहे । भू का अनुप्रयोग पूर्व के समान कि जैसा साधन केवल भू का लिट् में लिख आये हैं । एधाम्बभूव । एधाम्बभूवतुः । एधाम्बभूवुः । एधाम्बभूविथ । एधाम्बभूवथुः एधाम्बभूव । एधाम्बभूविव । एधाम्बभूविम ॥ १०९ ॥

११०—अतआदेः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७० ॥

अभ्यास के आदि अकार को दीर्घादेश होवे । अस् धातु के अभ्यास के अकार को पररूप एकादेश प्राप्त है इस लिये दीर्घादेश कहा है । एध्+आम्+अअस्+णल्=एधामास । एधामासतुः । एधामासुः । एधामासिथ । एधामासथुः । एधामास । एधामास । एधामासिव । एधामासिम । यहां अस धातु को आर्द्धधातुक विषय में भू आदेश अस धातु के अनुप्रयोगवचनसामर्थ्य से ही नहीं होता इस के आगे लुट् प्रथम पुरुष त, आताम्, झ, के स्थान में डा आदि आदेश हो के एधिता । एधितारौ । एधितारः । एधितासि । एधितासाथे ॥ ११० ॥

१११—धि च ॥ अ० ॥ ८ । २ । २५ ॥

धकारादि प्रत्यय परे हो तो सकार का लोप हो जावे । यहां ध्वम् प्रत्यय के परे तास् के सकार का लोप होजाता है एधितास्+ध्वम्=एधिताध्वे ॥१११॥

११२—ह एति ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५२ ॥

एकार परे हो तो तास् और अस्ति के सकार को हकारादेश होवे । एधितास्+इट्=एधिताहे । एधितास्वहे । एधितास्महे । इस के आगे (लृट्) स्य आदि सब

कार्य्य होकर। एध्+इट्+स्य+त=एधिष्यते। एधिष्येते। एधिष्यन्ते। एधिष्यसे। एधिष्येथे। एधिष्यध्वे। एधिष्ये। एधिष्यावहे।एधिष्यामहे। अब इस के आगे क्रम से (लेट्) प्रथम शप् का अपवाद सिप् विकरण ॥ ११२ ॥

११३—वैतोऽन्यत्र ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९६ ॥

आकार को जहां ऐकार कहा है उस विषय को छोड़ के लेट् लकार सम्बन्धी जो एकार उस को ऐकार आदेश विकल्प करके हो जावे। टिभाग को जो एकारादेश कह चुके हैं उसी एकार को यहां ऐकार समझना चाहिये। एध्+इट्+सिप्+अट्+त=एधिषते। एध्+इट्+सिप्+आट्+त=एधिषाते। एधिषते। एधिषाते। शप् पक्ष में। एधते। एधाते। एधते। एधाते ॥ ११३ ॥

११४—आत ऐ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९५ ॥

लेट् लकार सम्बन्धी आकार को ऐकार आदेश नित्य ही हो जावे। इस से (आताम्, आथाम्) के आकार को ऐकार होता है। उस ऐकार के परे अट् आट् को वृद्धि एकादेश हो जाने से रूप भेद नहीं होता। एध्+इट्+सिप्+अट्+आताम्। एधिषैते २। एधैते २ (झ) एधिषन्तै। एधिषान्तै। एधिषन्ते। एधिषान्ते। एधन्तै। एधान्तै। एधन्ते। एधान्ते। (थास्)। एधिषसै। एधिषासै। एधिषसे। एधिषासे। एधसै। एधासै। एधसे। एधासे। (आथाम्) एधिषैथे २ एधैथे २ (ध्वम्) एधिषध्वै। एधिषाध्वै। एधिषध्वे। एधिषाध्वे। एधध्वै। एधाध्वै। एधध्वे। एधाध्वे। (इट्) एधिषै। एधिषे। एधै। एधे। यहां जिस पक्ष में इट् प्रत्यय के एकार को ऐकार आदेश होता है वहां अट् और आट् के आगम को वृद्धि एकादेश हो जाने से प्रयोग भिन्न नहीं होते (वहि) एधिषावहै। एधिषावहे। एधावहै। एधावहे। (महिङ्) एधिषामहै। एधिषामहे। एधामहै। एधामहे। यहां भी जब अट् होता है तब यजादि सार्वधातुक प्रत्ययों के परे दीर्घ हो जाने से एक ही प्रकार के प्रयोग हो जाते हैं (लोट्) ॥ ११४ ॥

११५—आमेतः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९० ॥

लोट् लकार का जो एकार उस को आम् आदेश हो जावे। टिभाग को जो एकार कहा है उसी को यहां आम् आदेश समझना चाहिये। एध्+शप्+त+= एधताम्। एधेताम्। एधन्ताम् ॥ ११५ ॥

११६—सवाभ्यां वामौ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९१ ॥

सकार वकार से परे जो लोट् लकार का एकार उस को व और अम् आदेश यथासंख्य करके हों। एध्+शप्+थास्=एधस्व। एधेथाम्। एधध्वम् ॥ ११६ ॥

११७—एत ऐ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९३ ॥

लोट् लकार के उत्तम पुरुष का जो एकार उस को ऐ आदेश होवे। यह आम् आदेश का बाधक है ॥ ११७ ॥

११८—आडुत्तमस्य पिच्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९२ ॥

लोट् लकार के उत्तम पुरुष को आट् का आगम हो वह पित् होजावे। अपित् सार्वधातुक को पित् आगम होने से गुण आदि कार्य्य और सम्प्रसारण का निषेध हो जाता है। परन्तु यहां भ्वादि गण में इस का कुछ काम नहीं पड़ता क्योंकि यहां तो शप् प्रत्यय को मान के सब काम होते हैं किन्तु अदादि जुहो-त्यादि में काम पड़ेगा। और भू धातु में भी इस आट् के आगम का सम्बन्ध होता है। यहां सर्वत्र शप् के अकार के साथ दीर्घ एकादेश होजाता है। एध्+शप्+आट्+ऐ=एधै। एधावहै। एधामहै। इस के आगे (लङ्) पूर्व के समान अन्य सब कार्य्य जानो ॥ ११८ ॥

११९—आडजादीनाम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ७२ ॥

लुङ् लङ् और लृङ् लकार परे हों तो अजादि धातुओं को आट् का आगम होजावे। अट् का अपवाद आट् का आगम है। वृद्धि एकादेश होकर। आट्+एध्+अ+त=ऐधत। ऐधेताम्। ऐधन्त। ऐधथाः। ऐधेथाम्। ऐधध्वम्। ऐधे। ऐधावहि। ऐधामहि। आगे (लिङ्) ॥ ११९ ॥

१२०—लिङः सीयुट् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०२ ॥

लिङ् लकार को सीयुट् का आगम हो। सो युट् और सुट् दोनों सकारों का लोप (८०) हो कर। एध्+अ+इय्+त=एधेत। एधेयाताम् ॥ १२० ॥

१२१—झस्य रन् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०५ ॥

लिङ् लकार का जो झकार उस को रन् आदेश होजावे। एधेरन्। एधेथाः एधेयाथाम्। एधेध्वम् ॥ १२१ ॥

१२२—इटोऽत् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०६ ॥

लिङ् लकार के स्थान में जो इट् आदेश उस को अत् आदेश होजावे। तपर करण दीर्घ की निवृत्ति के लिये है। एधेय। एधेवहि। एधेमहि। आशिष् लिङ् को आर्द्धधातुक संज्ञा होने से सकार का लोप नहीं होता। सीयुट् और सुट् दोनों सकारों को मूर्द्धन्यादेश (५६) होजाता है। एध्+इट्+सीयुट्×सुट्+त= एधिषीष्ट। यहां मूर्द्धन्य षकार के योग में तवर्ग को टवर्ग होजाता है। औ

आताम् में तकार को कहा सुट् का आगम आकार से परे होता है। एध्+सीयुट्+आसुट्+ताम्=एधिषीयास्ताम्। एधिषीरन्। यहां रेफादि रन् आदेश के परे सीयुट् के यकार का लोप हो जाता है। एधिषीष्ठाः। एधिषीयास्थाम्। एधिषीध्वम्। एधिषीय। एधिषीवहि। एधिषीमहि। इस के आगे (लुङ्) इस में कुछ विशेष नहीं है। आट्+एध्+सिच्+त=ऐधिष्ट। ऐधिषाताम् ॥ १२२ ॥

१२३—आत्मनेपदेष्वनतः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ५ ॥

यह सूत्र अन्त आदेश का बाधक है। अकार भिन्न से परे आत्मनेपदविषयक प्रत्यय के आदि झकार को अत् आदेश होवे। ऐध्+इट्स्+झ=ऐधिषत। ऐधिष्ठाः। ऐधिषाथाम्। ध्वम् के धकार को (१०९) सूत्र से मूर्द्धन्य नहीं होता क्योंकि (इट्) इणन्त अङ्ग नहीं है *। ऐध्+इट्स्+ध्वम्=ऐधिध्वम्। यहां(१११) सकार का लोप हो जाता है। ऐधिषि। ऐधिष्वहि। ऐधिष्महि (लृङ्) इस में कुछ विशेष नहीं। आट्+एध्+इट्+स्य+त=ऐधिष्यत। ऐधिष्येताम्। ऐधिष्यन्त। ऐधिष्यथाः। ऐधिष्येथाम्। ऐधिष्यध्वम्। ऐधिष्ये। ऐधिष्यावहि। ऐधिष्यामहि ॥ [† स्पर्द्ध] सङ्घर्षे (घिसना) और (ईर्ष्या) इस के प्रयोग एध के समान जानने जैसे। स्पर्द्धते। स्पर्द्धेते। इत्यादि परन्तु लिट् के रूप विशेष हैं ॥ १२३ ॥

१२४—शर्पूर्वाः खयः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६१ ॥

अभ्यास संबन्धी शर् जिन के पूर्व हैं वे खय् बाकी रहैं अन्य हलों का लोप हो जावे। स्पर्द्ध्+स्पर्द्ध्+(१०५) एश्=पस्पर्द्धे। पस्पर्द्धाते। पस्पर्द्धिरे। पस्पर्द्धिषे। पस्पर्द्धाथे। पस्पर्द्धिध्वे। पस्पर्द्धे। पस्पर्द्धिवहे। पस्पर्द्धिमहे। स्पर्द्धिता। स्पर्द्धिष्यते। स्पर्द्धिषते। स्पर्द्धिषातै। स्पर्द्धिषते। स्पर्द्धिषातै। इत्यादि। स्पर्द्धताम्। अस्पर्द्धत।

---

* सिद्धान्त कौमुदी में जो (ऐधिढ्वम्) प्रयोग लिखा है सो किसी प्रकार शुद्ध नहीं हो सकता क्योंकि (इट्) इणन्त अङ्ग कैसे समझा जावे (इणः षीध्वं०) सूत्र में अङ्ग ग्रहण का यही प्रयोजन है कि (एधिषीध्वं०) यहां मूर्द्धन्यादेश न हो जावे और लुङ् लकार में कदाचित् सिच् की अङ्ग संज्ञा होने से इट् की भी अङ्ग संज्ञा होजावे सो भी सिच्लोप को असिद्ध वा स्थानिवत् मानें तो। सो असिद्ध की प्राप्ति ही नहीं क्योंकि लोप विधायक सूत्र से मूर्द्धन्य विधायक सूत्र त्रिपादी में भी परे है। स्थानिवत् में सिच् स्थानी है उस को कोई कार्य्य करना नहीं और सिच् को स्थानिवत् मानने से सान्त अङ्ग होगा इणन्त नहीं फिर (ऐधिढ्वम्) प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है।

† एक यह नियम इस ग्रन्थ भर में पढ़ने पढ़ाने वालों को ध्यान में रखना चाहिये कि भू के तुल्य परस्मैपदी धातुओं के प्रयोग और एध के समान आत्मनेपदी धातुओं के प्रयोग समझें। यहां से आगे सब धातुओं के ग्यारहों लकारों के एक २ प्रयोग लकारों के क्रमानुसार लिखेंगे। और जहां विशेष सूत्र लग के विशेष प्रयोग बनेंगे वहां सब रूप लिखदियाकरेंगे और असिद्ध प्रयोग चिन्हित अवयवों के सहित रक्खे जाते हैं वे आगे विशेष२ धातुओं के प्रयोगों ही में रक्खेंगे और जो एक अर्थ में एक प्रकार के बहुत धातु होंगे उन में से एक के प्रयोग लिख दिया करेंगे। उसी के समान दूसरों के समझने होंगे ॥

स्पर्द्धेत। स्पर्द्धिषीष्ट। अस्पर्द्धिष्ट। अस्पर्द्धिष्यत॥ [गाधृ] प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च (सत्कार,-प्राप्त होने की इच्छा, गांठना)। गाधते। अभ्यास के अच् को ह्रस्व और गकार को जकार हो कर। जगाध्+ए=जगाधे। जगाधाते। जगाधिरे। गाधिता। गाधिष्यते। गाधिषते। गाधिषाते। गाधताम्। अगाधत। गाधेत। गाधिषीष्ट। अगाधिष्ट। अगाधिष्यत॥ [बाधृ] विलोड़ने (हठा देना) बाधते। बबाधे। बाधिता। बाधिष्यते। बाधिषते। बाधिषाते। बाधिषते। बाधिषाते। इत्यादि। बाधताम् अबाधत। बाधेत। बाधिषीष्ट। अबाधिष्ट। अबाधिष्यत॥ [नाथृ, नाधृ] याच्ञोपतापैश्वर्याशीःषु। याच्ञा (मांगना) उपताप (पीड़ा) ऐश्वर्य (उत्तम पदार्थ) आशीः (इच्छा) आशीर्वाद अर्थ ही में नाथ धातु से आत्मनेपद और अर्थों में परस्मैपद होता है जैसे। सर्पिषो नाथते। अन्यत्र। नाथति। नाथतः।नाथन्ति। इत्यादि शेष रूप बाध के समान होते हैं॥ [दध्] धारणे (धारण करना) दधते। दधेते। दधन्ते। इत्यादि॥ १२४॥

१२५—अतएकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि॥ अ०॥ ६। ४। १२०॥

जिस लिट् को मान के धातु के अभ्यास को आदेश नहीं हुआ हो उस के परे धातु के अभ्यास का लोप हो और दो हलों के बीच में जो अकार है उस को एकार आदेश हो जावे कित् लिट् परे हो तो जैसे। द+दध्+ए=देधे। देधाते। देधिरे। देधिषे। देधाथे। देधिध्वे। देधे। देधिवहे। देधिमहे। दधिता। दधिष्यते। (लेट्) में विशेष॥ १२५॥

१२६—अत उपधायाः॥ अ०॥ ७। २। ११६॥

अङ्ग के उपधा अकार को ञित् णित् प्रत्ययों के परे वृद्धि हो जावे। इस से णित् पक्ष में वृद्धि होती है। दाधिषते। दाधिषाते। दाधिषते। दाधिषाते। दधिषते। दधिषाते। दधिषते। दधिषाते। दधते। दधाते। दधते। दाधाते। दाधिषैते २। दधिषैते २। दधैते २। इत्यादि। दधताम्। अदधत। दधेत। दधिषीष्ट। अदधिष्ट। अदधिष्यत॥ [स्कुदि] आप्रवणे (कूदना)॥ १२६॥

१२७—इदितो नुम् धातोः॥ अ॥ ७। १। ५८॥

जिस धातु का इ इत् गया हो उस को नुम् का आगम हो। (नुम्) मित् का आगम अन्त्य अच् से परे हुआ। स्कुनुम्+द+शप्+त=स्कुन्दते। स्कुन्देते। स्कुन्दन्ते। लिट् में। चुस्कुन्दे। चुस्कुन्दाते। चुस्कुन्दिरे। स्कुन्दिता। स्कुन्दिष्यते। स्कुन्दिषते। स्कुन्दिषाते। स्कुन्दताम्। अस्कुन्दत। स्कुन्देत। स्कुन्दिषीष्ट। अस्कुन्दिष्ट। अस्कुन्दिष्यत॥ [श्विदि] श्वैत्ये (श्वेत होना) श्विन्दते। शिश्विन्दे। श्विन्दिता।

खिन्दिष्यते।खिन्दिषतै।खिन्दिषातै। खिन्दताम्। अखिन्दत। खिन्देत। खिन्दिषीष्ट। अखिन्दिष्ट।अखिन्दिष्यत॥[वदि]अभिवादनस्तुत्योः(नमस्कार) और (प्रशंसा)वन्दते। ववन्दे। वन्दिता। वन्दिष्यते । वन्दिषतै । वन्दिषातै। वन्दताम्। अवन्दत । वन्देत। वन्दिषीष्ट । अवन्दिष्ट । अवन्दिष्यत ॥ [भदि] कल्याणे सुखे च (शुभ गुणों को प्राप्त होना) और(सुखी होना) भन्दते । बभन्दे। भन्दिता। भन्दिष्यते । भन्दिषतै। भन्दिषातै। भन्दताम्। अभन्दत । भन्देत । भन्दिषीष्ट । अभन्दिष्ट। अभन्दिष्यत॥ [मदि] स्तुति मोद मद स्वप्न कान्ति गतिषु । स्तुति (प्रशंसा करना मोद (हर्ष होना) मद (अभिमान) स्वप्न (सोना) कान्ति (कामना करना) गति (ज्ञान गमन प्राप्ति)मन्देते। ममन्दे। मन्दिता। मन्दिष्यते। मन्दिषतै। मन्दिषातै। मन्दिषते। मन्दिषाते। इत्यादि। मन्दताम्। अमन्दत। मन्देत। मन्दिषीष्ट। अमन्दिष्ट। अमन्दिष्यत ॥ [स्पदि] किञ्चिच्चलने (मन्द २ चलना) स्पन्दते। पस्पन्दे। स्पन्दिता। स्पन्दिष्यते। स्पन्दिषतै। स्पन्दिषातै। स्पन्दताम्। अस्पन्दत। स्पन्देत । स्पन्दिषीष्ट । अस्पन्दिष्ट। अस्पन्दिष्यत॥ [क्लिदि] परिदेवने। (दुःखीहोना) क्लिन्दते । चिक्लिन्दे । क्लिन्दिता क्लिन्दिष्यते । क्लिन्दिषतै क्लिन्दिषातै । क्लिन्दताम् । अक्लिन्दत । क्लिन्देत । क्लिन्दिषीष्ट । अक्लिन्दिष्ट । अक्लिन्दिष्यत ॥ [मुद] हर्षे (आनन्द होना) मोदते । मुमुदे । मोदिता । मोदिष्यते । मोदिषतै । मोदिषातै । मोदताम् । अमोदत । मोदेत । मोदिषीष्ट । अमोदिष्ट । अमोदिष्यत ॥ [दद] दाने(देना) ददते ॥ १२७ ॥

१२८—न शसददवादिगुणानाम्॥ अ० ॥ ६ । ४ । १२६ ॥

दद धातु को लिट् लकार में अकार को एकार और अभ्यास का लोप प्राप्त है इस लिये यह सूत्र है। शस,दद, वकारादि, और गुण हुए अकार को एकार। तथा उन के अभ्यास का लोप न होवे। दद–दद+ए=ददद । ददाते दददिरे । ददिता। ददिष्यते। दादिषतै। दादिषातै। दादिषते । दादिषाते ददिषतै । ददिषातै । ददिषते। ददिषाते। इत्यादि । ददताम् । अददत । ददेत। ददिषीष्ट । अददिष्ट । अददिष्यत । [ष्वद,स्वर्द] आस्वादने। (स्वाद लेना) ॥१२८॥

१२९—धात्वादेः षः सः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ६४ ॥

धातु के आदि षकार को सकारादेश होवे। स्वदते। स्वर्दते। सस्वदे । सस्वर्दे स्वदिता। स्वर्दिता। स्वदिष्यते। स्वर्दिष्यते। स्वादिषतै। स्वादिषातै। स्वर्दिषतै। स्वर्दिषातै। स्वदताम्। स्वर्दताम्। अस्वदत। अस्वर्दत। स्वदेत। स्वर्देत। स्वदिषीष्ट। स्वर्दिषीष्ट। अस्वदिष्ट। अस्वर्दिष्ट। अस्वदिष्यत। अस्वर्दिष्यत ॥ [उर्द]माने क्रीडयां च। (तोलना, खेलना)॥ १२९ ॥

१३०—उपधायां च ॥ अ० ॥ ८ । २ । ७८ ॥

धातु के उपधाभूत हल् जिन से परे हों ऐसे रेफ वकार की उपधा इक् को दीर्घ होजावे। इस से उर्द धातु के उकार को सब लकारों में दीर्घ ऊकार होजाता है। ऊर्दते। और यह धातु इजादि गुरुमान् भी है इस से एध के समान लिट् लकार में आम् प्रत्यय आदि सब कार्य्य होजाते हैं। ऊर्दाञ्चक्रे। ऊर्दाञ्चक्राते। ऊर्दाञ्चक्रिरे। ऊर्दाम्बभूव। ऊर्दामास। ऊर्दिता।ऊर्दिष्यते। ऊर्दिषतै। ऊर्दिषातै। ऊर्दताम्। (११८) और्दत। ऊर्देत। ऊर्दिषीष्ट। और्दिष्ट। और्दिष्यत॥ [कुर्द, खुर्द, गुर्द, गुद,] क्रीडायामेव (खेलने ही में) पूर्व के समान उपधा को दीर्घ होकर। कूर्दते। खूर्दते। गूर्दते। चुकूर्दे। चुखूर्दे। जुगूर्दे। गोदते। जुगुदे। कूर्दिता। कूर्दिष्यते। कूर्दिषतै। कूर्दिषातै। कूर्दताम्। अकूर्दत। कूर्देत। कूर्दिषीष्ट। अकूर्दिष्ट। अकूर्दिष्यत। गोदिता। गोदिष्यते। गोदिषतै। गोदिषातै। गोदताम्। अगोदत। गोदेत। गोदिषीष्ट। अगोदिष्ट। अगोदिष्यत॥ [षूद] क्षरणे (झरना, वा नष्ट, होना) (१२८) सूदते। सुसूदे। सूदिता। सूदिष्यते। सूदिषतै सूदिषातै। सूदताम्। असूदत। सूदेत। सूदिषीष्ट। असूदिष्ट। असूदिष्यत। जो धातु उपदेश में मूर्द्धन्य षकारादि हैं उन की व्यवस्था इस प्रकार समझना चाहिये कि ॥

भा०—अज्दन्त्यपराः सादयः षोपदेशाः। स्मिङ्, स्वदि, स्विदि, स्वंजि, स्वपयश्च। सृपि, सृजि, स्तृ, स्त्या, सेक, सृ, वर्जम् ॥अ०॥ ६।१।६४॥

जिन धातुओं के सकार से अच् तथा दन्त्य अक्षर परे हों वे सब षोपदेश धातु समझने चाहियें। दन्त्य अक्षरों में दन्त्योष्ठ वकार का ग्रहण नहीं होता इसी से ष्वष्क आदि धातु पृथक् पढ़े हैं। और सृप् आदि धातु अज् दन्त्य पर हैं इन को षोपदेश नहीं समझना चाहिये॥ [ह्राद] अव्यक्ते शब्दे (स्पष्ट उच्चारण का न होना) ह्रादते। जह्रादे। ह्रादिता। ह्रादिष्यते। ह्रादिषतै। ह्रादिषातै। ह्रादताम्। अह्रादत। ह्रादेत। ह्रादिषीष्ट। अह्रादिष्ट। अह्रादिष्यत॥ [ह्लादी] सुखे च (सुखहोना) यहां चकार से अव्यक्त शब्द की अनुवृत्ति आती है। और इसी प्रकार जिन जिन धातुओं के अर्थ के पश्चात् चकार पढ़ा हो वहां २ सर्वत्र पूर्व धातु के अर्थ का संबन्ध समझ लेना चाहिये। ह्लादते। जह्लादे। इत्यादि ॥ [स्वाद] आस्वादने (चाखना) स्वादते। सस्वादे [पर्द] कुत्सिते शब्दे (निन्दित शब्द करना) पर्दते। पपर्दे। पर्दिता। पर्दिष्यते। पर्दताम्। अपर्दत। पर्देत। पर्दिषीष्ट। अपर्दिष्ट। अपर्दिष्यत॥ [यती] प्रयत्ने (पुरुषार्थ) यतते। येते। येताते।

येतिरे। यतिता। यतिष्यते। यातिषतै। यातिषातै। यतताम्। अयतत। यतेत यतिषीष्ट। अयतिष्ट। अयतिष्यत॥ [युत्, जुत] भासने (प्रकाशहोना) योतते। युयुते। जोतते जुजुते। योतिता। जोतिता। योतिष्यते। जोतिष्यते। इत्यादि॥ [विथृ, वेथृ] याचने (मांगना) वेथते। विविथे। विवेथे। अभ्यास को ह्रस्व इकार होजाता है। वेथिता। वेथिष्यते॥ [श्रथि] शैथिल्ये (शिथिलता) इदित् को नुम् (१२७) होकर। श्रन्थते। शश्रन्थे। श्रन्थिता। श्रन्थिष्यते॥ [ग्रथि] कौटिल्ये (टेढ़ापन) ग्रन्थते। जग्रन्थे॥ [कत्थ]॥ श्लाघायाम् (प्रशंसा) कत्थते। चकत्थे। कत्थिता। कत्थिष्यते। कत्थिषतै। कत्थिषातै। कत्थताम्। अकत्थत। कत्थेत। कत्थिषीष्ट। अकत्थिष्ट। अकत्थिष्यत। इत्येधादयउदात्ताउदात्तेतआत्मनेपदिनःषट्त्रिंशत्॥

अथाऽष्टत्रिंशत् परस्मैपदिनः। अब तवर्गान्तों में अड़तीस ३८ धातु परस्मैपदी हैं [अत] सातत्यगमने (निरन्तर चलना) परस्मैपद में तिप् आदि नव ९ प्रत्यय आये। अत्+शप्+तिप्=अतति। अततः। अतन्ति। अतसि। अतथः। अतथ। अतामि। अतावः। अतामः। लिट् में द्विर्वचन होने के पश्चात् अभ्यास को दीर्घ (११०) और एकादेश होकर। आत। आततुः। आतुः। आतिथ। आतथुः। आत। आत। आतिव। आतिम। (लुट्) अतिता। अतितारौ। अतितारः। अतितासि। अतितास्थः। अतितास्थ। अतितास्मि। अतितास्वः। अतितास्मः। (लृट्) अतिष्यति। अतिष्यतः। अतिष्यन्ति। अतिष्यसि। अतिष्यथः। अतिष्यथ। अतिष्यामि। अतिष्यावः। अतिष्यामः (लेट्) आतिषति। आतिषाति। अतिषति। अतिषाति। इत्यादि (लोट्) अततु। अततात्। अतताम्। अतन्तु। अत। अततात्। अततम्। अतत। अतानि। अताव। अताम (लङ्) आट् (११९) और उस के साथ वृद्धि होकर। आतत्। आतताम्। आतन्। आतः। आततम्। आतत। आतम्। आताव। आताम (लिङ्) अतेत्। अतेताम्। अतेयुः। अतेः। अतेतम्। अतेत। अतेयम्। अतेव। अतेम (आशिषलिङ्) संयोगादि यास् के सकार का (स्कोः संयोगा०) सूत्र से लोप। अत्यात्। अत्यास्ताम्। अत्यासुः। अत्याः। अत्यास्तम्। अत्यास्त। अत्यासम्। अत्यास्व। अत्यास्म (लुङ्) ॥ १३० ॥

१३१—अस्तिसिचोऽपृक्ते ॥ अ० ॥ ७। ३। ९६ ॥

अस्ति धातु और सिच् प्रत्यय से परे अपृक्त हलादि सार्वधातुक को ईट् का आगम हो। आत्=इट्स्=ईट्=त्। इस अवस्था में ॥ १३१ ॥

१३२—इटईटि ॥ अ० ॥ ८। २। २८॥

इट् से परे सकार का लोप हो ईट् परे हो तो। फिर त्रिपादी में हुए सिच् लोप को असिद्ध मान के सन्धि प्राप्त नहीं है इस लिये ॥ १३२ ॥

१३३—वा०—सिज्लोपएकादेशे सिद्धो वक्तव्यः ॥

दीर्घ एकादेश करने में सिच् के सकार का लोप सिद्ध समझना चाहिये फिर दीर्घ एकादेश होकर। आतीत्। आतिष्टाम् ॥ १३३ ॥

१३४—सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०९ ॥

सिच् प्रत्यय, अभ्यस्त संज्ञक धातु और विद धातुओं से परे जो ङित् लकार का झि उस को जुस् आदेश होवे। यहां सिच् से परे झि को जुस् होता है। आट्+अत्+सिच्+जुस्=आतिषुः ॥ १३४ ॥

१३५—वदव्रजहलन्तस्याचः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ३ ॥

परस्मैपद विषय में सिच् प्रत्यय परे हो तो वद, व्रज, और हलन्त धातुओं के अच् को वृद्धि होवे। यहां अच् ग्रहण इक् की निवृत्ति के लिये है। वद व्रज धातु भी हलन्त हैं इन का पृथक् ग्रहण इस लिये है कि लघु अकार जिन की उपधा में हो उन को विकल्प से वृद्धि कही है सो इन दोनों को नित्य ही होगी इस से अत धातु को वृद्धि प्राप्त हुई ॥ १३५ ॥

१३६—नेटि ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४ ॥

इडादि सिच् परे हो तो पूर्वोक्त हलन्त धातुओं के अच् को वृद्धि न होवे। । अत् धातु को आट् के आगम पक्ष में तो वृद्धि होने न होने में कुछ भेद नहीं परन्तु जहां आट् का निषेध है वहां विशेष है जैसे। माभवानतीत्। अतिष्टाम्। अतिषुः। आतीः। आतिष्टम्। आतिष्ट। आतिषम्। आतिष्व। आतिष्म। आतिष्यत्। आतिष्यताम्। आतिष्यन्। आतिष्यः। आतिष्यतम्। आतिष्यत। आतिष्यम्। आतिष्याव। आतिष्याम ॥ [चिती] संज्ञाने (ठीक २ जानना) (५१) सूत्र से लघूपध चित् धातु को गुण होकर। चित्+शप्+तिप्=चेतति। चेततः। चेतन्ति। चिचेत ॥ १३६ ॥

१३७—असंयोगाल्लिट् कित् ॥ अ० ॥ १ । २ । ५ ॥

असंयोगान्त धातुओं से परे जो अपित् लिट् वह कित् संज्ञक होवे तिप्, सिप्, मिप्, के स्थान में जो आदेश हैं उन को छोड़ के अन्य अपित् समझने चाहिये (४५) से गुण नहीं होता। चिचिततुः। चिचितुः। चिचेतिथ। चिचितथुः। चिचित। चिचेत। चिचितिव। चिचितिम। चेतिता। चेतिष्यति। चेतिषति। चेतिषाति। चेतति। चेताति। चेतत्। चेतात्। इत्यादि। चेततु। चेततात्। अचेतत्। चेतेत् (८५) (४५) चित्यात्। अचेतीत्। अचेतिष्यत् ॥ [च्युतिर्] आसेचने (सींचना) (५१) गुण। च्योतति। चुच्योत। चुच्युततुः। च्योतिता।

च्योतिष्यति । च्योतिषति । च्योतिषाति । इत्यादि । च्योततु । च्योततात् । अच्योतत् । च्योतेत् । च्युत्यात् । च्युत्यास्ताम् । च्युत्यासुः । इत्यादि ॥ १३७ ॥

१३८—इरितो वा ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५७ ॥

जिस धातु का इर् भाग इत् संज्ञक हुआ हो उस धातु से परे च्लि के स्थान में अङ् आदेश विकल्प करके होवे। अट्+च्युत्+अङ्+तिप्=अच्युतत्। अच्युतताम्। अच्युतन्। अच्युतः। अच्युततम्। अच्युतत। अच्युतम्। अच्युताव। अच्युताम। जिस पक्ष में अङ् नहीं होता वहां। अच्योतीत्। अच्योतिष्टाम्। अच्योतिषुः। इत्यादि। अच्योतिष्यत् ॥ [श्च्युतिर्] क्षरणे (झरना, वा नाश होना) श्चोतति। चुश्चोत। इत्यादि च्युत् के समान जानो ॥ [मन्थ] विलोडने (विलोना) मन्थति। मन्थतः। मन्थन्ति। ममन्थ। मन्थिता। मन्थिष्यति। मन्थिषति। मन्थिषाति। मन्थति। मन्थाति। मन्थतु। अमन्थत्। मन्थेत् ॥ १३८ ॥

१३९—अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २४ ॥

कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो जिस का ह्रस्व इकार इत् न गया हो ऐसा जो हलन्त अङ्ग उस की उपधा के नकार का लोप होवे। मन्थ्+यासुट्+तिप्=मथ्यात्। (८५) अमन्थीत्। अमन्थिष्यत् ॥ [कुथि,पुथि,लुथि,मथि] हिंसासंक्लेशनयोः (मारना, और अति दुःख देना) (१२७) नुम् हो के। कुन्थति। चुकुन्थ। कुन्थिता। कुन्थिष्यति। कुन्थिषति। कुन्थिषाति। कुन्थतु। अकुन्थत्। कुन्थेत्। कुन्थ्यात्। इदित् के होने से (कुन्थ्यात्) में (१३९) से नकार का लोप नहीं हुआ। अकुन्थीत्। अकुन्थिष्यत्। पुथि आदि के रूप कुथि के समान होते हैं ॥ [षिधु] गत्याम् (ज्ञान, गमन, प्राप्ति) यहां धातु के आदि षकार को स होकर। सेधति। सेधतः। सेधन्ति। सिषेध। सिसिधतुः। सिसिधुः। सेधिता। सेधिष्यति सेधिषति। सेधिषाति। सेधतु। असेधत्। सेधेत्। सिध्यात्। असेधीत्। असेधिष्यत् ॥ [षिधू] शास्त्रे माङ्गल्ये च (शिक्षा और मङ्गलाचरण) इस धातु के सामान्य रूप तो पूर्व सिध् धातु के समान हैं और दीर्घ ऊकार इत् गया है इस लिये विशेष है ॥ १३९ ॥

१४०—स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४४ ॥

स्वरति, सूति, सूयति, धूञ् और ऊदित धातुओं से परे वलादि आर्द्धधातुक को विकल्प करके इट् का आगम हो (लिट्) सिषेध। सिषिधतुः। सिषिधुः। अनिट् पक्ष में। सिध्–थल् ॥ १४० ॥

१४१—झषस्तथोर्धोऽधः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४० ॥

धा धातु को छोड़ के झष् प्रत्याहार से परे जो त और थ उन को ध आदेश हो। यहां थल् के थकार को ध होकर। सिसिध्+ध=सिषेद्ध। यहां पूर्व धकार

को झष् के परे जश्त्व होजाता है। पक्ष में। सिषेधिथ। सिषिधथुः। सिषिध। सिषेध। सिषिध्व। सिषिधिव। सिषिध्म। सिषिधिम (लुट्) सिध्+तास्+डा= सेद्धा। यहां भी पूर्ववत् तास् के तकार को धकार और पूर्व को जश्त्व होता है। सेद्धारौ। सेद्धारः। सेद्धासि। सेद्धास्थः। सेद्धास्थ। सेद्धास्मि। सेद्धास्वः। सेद्धास्मः। सेट् पक्ष में। सेधिता। सेधितारौ। सेधितारः। इत्यादि (लृट्) सिध्+स्य+ तिप्=सेत्स्यति। यहां खर् के परे (झल्) धकार को (खरि च) सूत्रसे (चर्) तकार होजाता है। सेत्स्यतः। सेत्स्यन्ति। सेधिष्यति। सेधिष्यतः। सेधिष्यन्ति (लेट्) सेत्सति। सेत्साति। सेधिषति। सेधिषाति। सेत्सत्। सेत्सात्। सेत्सद्। सेत्साद्। सेधति। सेधाति। इत्यादि। सेधतु। असेधत्। सेधेत्। सिध्यात्। सिध्यास्ताम्। सिध्यासुः (लुङ्) अनिट् पक्ष में। अट्+सिध्+सिच्+तिप्=असैत्सीत् (१३५) (१३२)॥ १४१॥

१४२—झलो झलि ॥ अ० ॥ ८। २। २६ ॥

झल् से परे जो सकार उस का लोप हो झल् परे हो तो। असिध्+स्+ ताम्=असैद्धाम्। यहां सलोप होने के पश्चात्। ताम् के तकार को ध और पूर्व को जश्त्व होजाता है। असिध्+स्+झि=असैत्सुः। असिध्+स्+ईट्+ सिप्=असैत्सीः। असिध्+स्+थस्=असैद्धम्। असैद्ध। असैत्सम्। असैत्स्व। असैत्स्म। सेट् पक्ष में। असेधीत्। असेधिष्टाम्। असेधिषुः। इत्यादि (लृङ्) अट्+सिध्+इट्+स्य+तिप्=असेत्स्यत्। असेत्स्यताम्। असेत्स्यन्। असेत्स्यः। असेत्स्यतम्। असेत्स्यत। असेत्स्यम्। असेत्स्याव। असेत्स्याम। सेट् पक्ष में। असेधिष्यत्। असेधिष्यताम्। असेधिष्यन्॥ [खादृ] भक्षणे (खाना) इस धातु का ऋकार इत् जाता है। खादति। चखाद। खादिता। खादिष्यति। खादिषति। खादिषाति खादतु। अखादत्। खादेत्। खाद्यात्। अखादीत्। अखादिष्यत्॥ [खद] स्थैर्ये हिंसायां च (स्थिरहोना, मारना) और चकार से भक्षण अर्थ का भी समुच्चय होता है। खदति। खद्+खद्+णल्=चखाद (१२६)। चखदतुः। चखदुः। चखदिथ। चखदथुः। चखद॥ १४२॥

१४३—णलुत्तमो वा ॥ अ० ॥ ७। १। ९१ ॥

उत्तम पुरुष का णल् आदेश विकल्प करके णित् संज्ञक होवे। स्वाभाविक णित् को विकल्प करने से प्राप्तविभाषा है। चखाद। चखद। णित् पक्ष में वृद्धि होती है अन्यत्र नहीं। खदिता। खदिष्यति। खदिषति। खदिषाति। खदतु। अखदत्। खदेत्। खद्यात्॥ १४३॥

१४४—अतो हलादेर्लघोः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७ ॥

परस्मैपद विषयक इडादि सिच् परे हो तो हलादि अङ्ग के लघु अकार को विकल्प करके वृद्धि होवे। अखादीत् । अखदीत् । यहां इडादि सिच् में वृद्धि का निषेध प्राप्त है इसलिये विधान है । अखदिष्यत् ॥ [वद] स्थैर्य्ये (स्थित होना) वदति । ववाद । वेदतुः । वेदुः ॥ १४४ ॥

१४५—थलि च सेटि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १२१ ॥

सेट् थल् परे हो तो लिट् लकार को मान के जिस धातु के आदि को कोई आदेश न हुआ हो उस के अभ्यास का लोप और दो हलों के बीच में जो अकार है उस को एकारादेश हो जावे । वद्+वद्+इट्+थल्=वेदिथ। वेदथुः । वेद। ववाद । ववद । वेदिव । वेदिम । वदिता। वदिष्यति । वादिषति । वादिषाति। वदिषति । वदिषाति । वदति । वदाति । वदतु । अवदत् । वदेत । वद्यात् अवादीत् (१४४) अवदीत् ॥ [गद] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) गदति । जगाद । जगदतुः । गदिता । गदिष्यति । अगादीत् । अगदीत् । इत्यादि ॥ [रद] विलेखने (काटना और जोतना) रदति । रराद । रदिता । अरादीत् । अरदीत् ॥ [णद] अव्यक्ते शब्दे (अप्रकट शब्द होना) ॥ १४५ ॥

१४६—णो नः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ६५ ॥

धातु के आदि णकार को नकारादेश होवे । नदति । ननाद । नेदतुः । नेदुः । नेदिथ । नेदथुः । नेद । ननाद । ननद । नेदिव । नेदिम । नदिता। नदिष्यति। नादिषति । नादिषाति । नदतु । अनदत् । नदेत् । नद्यात् । अनादी । अनदीत् । णोपदेश धातुओं की व्यवस्था ॥ भा०—सर्वे नादयो णोपदेशाः । नृति,नन्दि,नर्दि, नक्कि,नाटि,नाथृ,नाधृ,नृवर्जम् ॥अ०॥ ६ । १ । ६५॥ नकारादि धातु सब णोपदेश समझने चाहिये परन्तु नृति आदि धातुओं को छोड़ के । अर्थात् नृति आदि णोपदेश नहीं क्योंकि णोपदेशों को कहा कार्य्य नृति आदिको नहीं होगा ॥ [अर्द] गतौ *याचने च (मांगना) अर्दति । अर्दतः । अर्दन्ति ॥ १४६ ॥

१४७—तस्मान्नुड्द्विहलः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७१ ॥

दीर्घ किये हुए अभ्यास के आकार से परे जो द्विहल् धातु उस को नुट् का आगम होवे । नुट् टित् होने से अभ्यास से परे द्वितीय भाग के आदि में होता

(*) इस बात पर भी ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि (गति, हिंसा) आदि अर्थ जो अनेक धातुओं में बहुधा आते हैं उन के अर्थ भाषा में बार २ नहीं लिखेंगे और जिस अर्थ के साथ चकार पढते हैं वहां पूर्व धातु के अर्थ का समुच्चय सर्वत्र समझना चाहिये ॥

है। आ+नुट्+अर्द+णल्=आनर्द। आनर्दतुः। आनर्दुः। आनर्दिथ। आनर्दथुः। आनर्द२। आनर्दिव। आनर्दिम। अर्दिता। अर्दिष्यति। अर्दिषति। अर्दिषाति। अर्दतु। आर्दत्। अर्देत्। अर्द्यात्। आर्दीत्। आर्दिष्टाम्। आर्दिषुः। आर्दिष्यत्॥ [नर्द, गर्द] शब्दे (शब्द होना) नर्दति। गर्दति। ननर्द। जगर्द। नर्दिता। नर्दिष्यति। नर्दिषति। नर्दिषाति। नर्दतु। अनर्दत्। नर्देत्। नर्द्यात्। अनर्दीत्। अनर्दिष्यत्॥ [तर्द] हिंसायाम् (मारना) तर्दति। ततर्द॥ [कर्द] कुत्सिते शब्दे (निन्दित शब्द करना) कर्दति। चकर्द। अकर्दीत्॥ [खर्द] दन्दशूके (दांतों से काटना) खर्दति। चखर्द। अखर्दीत्। अखर्दिष्यत्॥ [अति, अदि] बन्धने (बांधना) (१२७) अन्तति। अन्दति। आ+अन्त्+णल् (१४७) =आनन्त। आनन्द। अन्तिता। अन्तिष्यति। अन्तिषति। अन्तिषाति। अन्ततु। आन्तत्। अन्तेत्। अन्त्यात्। आन्तीत्। आन्तिष्यत्॥ [इदि] परमैश्वर्ये (विद्या, धन, पुत्रादि की प्राप्ति) इद्+शप्+तिप् (इन्दति। यह धातु नुमागम होने के पश्चात् इजादि गुरुमान हो जाता है। फिर (१००) (१०१) (१०२) (१०३) इत्यादि सूत्रों से। इन्द्+आम्+कृ+णल्=इन्दाञ्चकार। इन्दाञ्चक्रतुः। इन्दाञ्चक्रुः॥ १४७॥

१४८—कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि॥ अ०॥ ७। २। १३॥

कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु, श्रु, इन धातुओं से परे जो लिट् वलादि आर्द्धधातुक उस को इट् का आगम न होवे। कृ आदि सब धातु अनिट् हैं इन से परे सामान्य आर्द्धधातुक को इट् का निषेध हो ही जाता फिर यह सूत्र नियमार्थ है कि जितने अनिट् धातु हैं उन सब से परे लिट् को इडागम होजावे इन कृ आदि से परे न हो। इसी नियम से। एधाञ्चकृषे। एधाञ्चकृवहे। एधाञ्चकृमहे। जर्दाञ्चकृषे। इत्यादि में इट् नहीं होता और थल् में विशेष है॥ १४८॥

१४९—ऋतो भारद्वाजस्य॥ अ०॥ ७। २। ६३॥

तास् प्रत्यय के परे नित्य अनिट् जो ऋकारान्त धातु उस से परे थल् वलादि आर्द्धधातुक को भारद्वाज आचार्य के मत में इट् का आगम न होवे। इन्दाञ्चकृ+थल्=इन्दाञ्चकर्थ। थल् के पित् होने से गुण होजाता है। इन्दाञ्चक्रथुः। इन्दाञ्चक्र। इन्दाञ्चकार (१४३) इन्दाञ्चकर। इन्दाञ्चकृव। इन्दाञ्चकृम। इन्दिता। इन्दिष्यति। इन्दिषति। इन्दिषाति। इन्दतु। ऐन्दत्। इन्देत्। इन्द्यात्। ऐन्दीत्। ऐन्दिष्यत्॥ [विदि, भिदि] अवयवे (अवयव करना) बिन्दति। भिन्दति। बिबिन्द। बिभिन्द। बिन्दिता। बिन्दिष्यति। बिन्दिषति। बिन्दिषाति। बिन्दतु।

अविन्दत्। विन्देत्। विन्द्यात्। अविन्दीत्। अविन्दिष्यत्॥ [गडि] वदनैकदेशे (मुख का अवयव) गण्डति। जगण्ड। गण्डिता। गण्डिष्यति॥ [णिदि] कुत्सायाम् (निन्दा) निन्दति। निनिन्द॥ [टुनदि] समृद्धौ (सम्पत् का होना) नन्दति। ननन्द। नन्दिता। नन्दिष्यति॥ १४९॥

१५०—आदिर्ञिटुडवः॥ अ०॥ १।३।५॥

धातु के आदि जो ञि, टु, और डु इन की इत् संज्ञा हो। यहां टुनदि धातु के टु को इत्संज्ञा हो कर लोप हो जाता है॥ [चदि] आह्लादने दीप्तौ च (आनन्द और प्रकाश का होना) चन्दति। चचन्द॥ [त्रदि] चेष्टायाम् (अवयवों का चलाना) त्रन्दति। तत्रन्द। त्रन्दिता॥ [कदि, क्रदि, क्लदि] आह्वाने रोदने च (बुलाना, रोना) कन्दति। क्रन्दति। क्लन्दति। चकन्द। चक्रन्द। चक्लन्द। कन्दिता। कन्दिष्यति। कन्दिषति। कन्दिषाति। कन्दतु। अकन्दत्। कन्देत्। कन्द्यात्। अकन्दीत्। अकन्दिष्यत्॥ [क्लिदि] परिदेवने (क्लेशहोना) क्लिन्दति। चिक्लिन्द। क्लिन्दिता॥ [शुन्ध] शुद्धौ (पवित्र करना) शुन्धति। शुशुन्ध शुन्धिता। शुन्धिष्यति। शुन्धिषति। शुन्धिषाति। शुन्धतु। अशुन्धत्। शुन्धेत्। शुन्ध्+यासुट्+तिप्=शुध्यात् (१३९) । अशुन्धीत्। अशुन्धिष्यत्॥ अतादय उदात्ता उदात्तेतोऽष्टत्रिंशत् परस्मैपदिनः समाप्ताः॥

अथ द्वानवतिः कवर्गीयान्ताः। अब आगे कवर्गीयान्त ९२ धातुओं का व्याख्यान है उन में प्रथम शीकृ आदि ४२ बयालीस आत्मनेपदी हैं॥ [शीकृ] सेचने (सींचना) ऋकार की इत् संज्ञा। एध् के समान प्रयोग सिद्धि जानो। शीकते। शिशीके। शीकिता। शीकिष्यते। शीकिषते। शीकिषाते। शकीताम्। अशीकत। शीकेत। शीकिषीष्ट। अशीकिष्ट। अशीकिष्यत॥ [लोकृ] दर्शने (देखना) लोकते। लोकेते। लोकन्ते। लोकसे। लोकेथे। लोकध्वे। लोके। लोकावहे। लोकामहे। लुलोके। लुलोकाते। लुलोकिरे। लुलोकिषे। लुलोकाथे। लुलोकिध्वे। लुलोके। लुलोकिवहे। लुलोकिमहे। लोकिता। लोकितारौ। लोकितारः। लोकितासे। लोकितासाथे। लोकिताध्वे। लोकिताहे। लोकितास्वहे। लोकितास्महे। लोकिष्यते। लोकिष्येते। लोकिष्यन्ते। लोकिष्यसे। लोकिष्येथे। लोकिष्यध्वे। लोकिष्ये। लोकिष्यावहे। लोकिष्यामहे। लोकिषतै। लोकिषातै। लोकिषते। लोकिषाते। लोकतै। लोकातै। लोकते। लोकाते। लोकिषैते २। लोकैते २। लोकिषन्तै। लोकिषान्तै। लोकिषन्ते। लोकिषान्ते। लोकन्तै। लोकान्तै। लोकन्ते। लोकान्ते। लोकिषसै। लोकिषासै। लोकिषसे।

लोकिषासे । लोकसै । लोकासै । लोकसे । लोकासे । लोकिषैथे २ । लोकैथे२ । लोकिषध्वे । लोकिषाध्वे । लोकिषध्वे । लोकिषाध्वे । लोकध्वे । लोकाध्वै । लोकध्वे। लोकाध्वे । लोकिषै२ । लोकिषे२ । लोकै२। लोके२। लोकिषावहै२। लोकिषावहे२। लोकावहै२। लोकावहे२। लोकिषामहै२। लोकिषामहे२। लोकामहै२। लोकामहे२। लोकताम् । लोकेताम् । लोकन्ताम् । लोकस्व । लोकेथाम् । लोकध्वम् । लोकै । लोकावहै । लोकामहै ॥ अलोकत । अलोकेताम् । अलोकन्त । अलोकथाः । अलोकेथाम् । अलोकध्वम् । अलोके । अलोकावहि । अलोकामहि ॥ लोकेत । लोकेयाताम् । लोकेरन् । लोकेथाः । लोकेयाथाम् । लोकेध्वम् । लोकेय। लोकेवहि। लोकेमहि ॥ लोकिषीष्ट । लोकिषीयास्ताम् । लोकिषीरन् । लोकिषीष्ठाः । लोकिषीयास्थाम् । लोकिषीध्वम् । लोकिषीय । लोकिषीवहि। लोकिषीमहि । अलोकिष्ट । अलोकिषाताम् । अलोकिषत । अलोकिष्ठाः । अलोकिषाथाम् । अलोकिध्वम् । अलोकिषि । अलोकिष्वहि । अलोकिष्महि ॥ अलोकिष्यत । अलोकिष्येताम्। अलोकिष्यन्त । अलोकिष्यथाः । अलोकिष्येथाम् । अलोकिष्यध्वम् । अलोकिष्ये । अलोकिष्यावहि । अलोकिष्यामहि ॥ [श्लोकृ] सङ्घाते (इकट्ठा करना) इस धातु का अर्थ योगरूढ़ होने से धर्म का सञ्चय (कीर्त्ति) और पद वाक्यों का संचय (श्लोक) कहाता है । श्लोकते । शुश्लोके । श्लोकिता । श्लोकिष्यते । श्लोकिषतै । श्लोकिषातै । श्लोकतम्। अश्लोकत। श्लोकेत । श्लोकिषीष्ट। अश्लोकिष्ट । अश्लोकिष्यत ॥ [द्रेकृ, ध्रेकृ] शब्दोत्साहयोः (शब्दकरना, और उत्साह होना) द्रेकते। दिद्रेके। द्रेकिता। द्रेकिष्यते। द्रेकिषतै । द्रेकिषातै । द्रेकताम् । अद्रेकत । द्रेकेत । द्रेकिषीष्ट । अद्रेकिष्ट । अद्रेकिष्यत । ध्रेकते । दिध्रेके ॥ [रेकृ] शङ्कायाम् । (सन्देह करना) रेकते । रिरेके । रेकिता । रेकिष्यते ॥ [सेकृ, स्रेकृ, स्रकि, श्रकि, श्लकि] गत्यर्थाः । इन तीनों का गति अर्थ है। सेकते । सिसेके । स्रेकते । सिस्रेके । स्रङ्कते । सस्रङ्के । श्रङ्कते । शश्रङ्के । श्लङ्कते । शश्लङ्के ॥ [शकि] शङ्कायाम् (संशय होना) शङ्कते । शशङ्के ॥ [अकि] लक्षणे (चिन्ह) अङ्कते । अङ्क्+अङ्क्+एश्=आनङ्के (११०) (१४७)। आनङ्काते । आनङ्किरे। अङ्किता । अङ्किष्यते ॥ [वकि] कौटिल्ये (टेढ़ाहोना) वङ्कते । ववङ्के । वङ्किता । वङ्किष्यते । वङ्किषतै । वङ्किषातै। वङ्कताम् । अवङ्कत । वङ्केत । वङ्किषीष्ट । अवङ्किष्ट । अवङ्किष्यत ॥ [मकि] मण्डने (भूषण) मङ्कते । ममङ्के ॥ [ककि] लौल्ये (चलितहोना) कङ्कते । चकङ्के । [कुक, वृक,] आदाने (लेना) कोकते । चुकुके । वर्कते । ववृके ॥ १५० ॥

१५१—वा०—ऋदुपधेभ्यो लिटः कित्वं गुणात्पूर्वविप्रतिषेधेन ॥

जिन को उपधा में ऋकार हो उन धातुओं से परे लिट् प्रत्यय गुण होने से पूर्व

विप्रतिषेध कर के कित्वत् हो जावे। प्रयोजन यह है कि ऋदुपध धातुओं से भी लुट् आदि आर्द्धधातुक प्रत्ययों के परे गुण को अवकाश है। और अपित् लिट् अतुस् आदि में संप्रसारण वा गुण का निषेध होना कित्व को अवकाश है और (ववृक्षे) आदि में परत्व से गुण प्राप्त है सो न हो जावे॥[चक] तृप्तौ प्रतिघाते च (तृप्ति होना और मारना) चकते। चेके। चेकाते। चेकिरे। चकिता। चकिष्यते। चाकिषते। चाकिषाते। चकिषते। चकिषातै। चाकिषतै। चाकिषाते। चकिषते। चकिषाते। चकतै। चकातै। चकतै। चकातै। चाकिषैते २। चकिषैते २ चकैते २। इत्यादि। चकताम्। अचकत। चकेत। चकिषीष्ट। अचकिष्ट। अचकिष्यत॥ [ककि, वकि, श्वकि, त्रकि, ढौकृ, त्रौकृ, ष्वष्क, वस्क, मस्क, टिकृ, टीकृ, तिकृ, तीकृ, रघि, लघि,] गत्यर्थाः। ये १५ पन्द्रह धातु गति (ज्ञान, गमन, प्राप्ति) अर्थ में हैं। कङ्कते। चकङ्के। वङ्कते। ववङ्के। श्वङ्कते। शश्वङ्के। त्रङ्कते। तत्रङ्के। ढौकते। डुढौके। त्रौकते। तुत्रौके॥ १५१॥

१५२—वा०—सादेशे सुब्धातुष्ठिवुष्वष्कतीनां सत्वप्रतिषेधः॥

सुब्धातु (नामधातु) ष्ठिवु, और ष्वष्क धातुओं के आदि षकार को दन्त्य सकार न होवे (सुब्धातु) षोड इवाचरति, षोढीयति। षण्ढीयति। ष्ठिवु धातु आगे आवेगा (ष्वष्क) ष्वष्कते। ष्वष्केते। ष्वष्कन्ते। षष्वष्के। ष्वष्किता। ष्वष्किष्यते। ष्वष्किषतै। ष्वष्किषातै। ष्वष्कताम्। अष्वष्कत। ष्वष्केत। ष्वष्किषीष्ट। अष्वष्किष्ट। अष्वष्किष्यत। वस्कते। ववस्के। मस्कते। ममस्के। टेकते। टिटिके। टिटिकाते। टिटिकिरे। टेकिता। टेकिष्यते। टेकिषतै। टेकिषातै। टेकताम्। अटेकत। टेकेत। टेकिषीष्ट। अटेकिष्ट। अटेकिष्यत। टीकते। टिटीके। तेकते। तितिके। तीकते। तितीके। रङ्घते। ररङ्घे। लङ्घते। ललङ्घे॥ [लघि] भोजननिवृत्तौ च (लङ्घन करना) [अघि, वघि, मघि,] गत्याक्षेपे (निन्दित चलना) अङ्घते। आनङ्घे। आनङ्घाते। आनङ्घिरे। अङ्घिता। अङ्घिष्यते। वङ्घते। ववङ्घे। मङ्घते। ममङ्घे॥ [मघि] कैतवे च [धूर्त्तपना]॥ [राघृ, लाघृ, द्राघृ, ध्राघृ,] सामर्थ्ये (समर्थ होना) राघते। रराघे। लाघते। ललाघे। द्राघते। दद्राघे। ध्राघते। दध्राघे॥ [द्राघृ] आयामे च (विस्तार होना) [श्लाघृ] कत्थने (प्रशंसा करना) श्लाघते। शश्लाघे। श्लाघिता। श्लाघिष्यते। श्लाघिषतै। श्लाघिषातै। श्लाघताम्। अश्लाघत। श्लाघेत। श्लाघिषीष्ट। अश्लाघिष्ट। अश्लाघिष्यत। इति शीकादय उदात्ता अनुदात्तेतो द्विचत्वारिंशदात्मनेभाषाः समाप्ताः॥

अथ परस्मैपदिनः। शीक आदि सेट् आत्मनेपदी ४२ बयालीस धातु पूरे हुए। अब आगे फक्क आदि परस्मैपदी ५० धातु लिखते हैं [फक्क] नीचैर्गतौ

(मन्द २ चलना,वा अयोग्य व्यवहार करना) फक्कति । पफक्क । फक्किता । फक्किष्यति । फक्किषति । फक्किषाति । फक्कतु । अफक्कत । फक्केत । फक्क्यात् । अफक्कीत् । अफक्किष्यत् ॥ [तक] सहने (हसना) तकति । तताक । तेकतुः । तेकुः । तेकिथ । तेकथुः । तेक । तताक । ततक । तेकिव । तेकिम । तकिता । तकिष्यति । ताकिषति । ताकिषाति । तकिषति । तकिषाति । तकति । तकाति । तकतु । अतकत् । तकेत् । तक्यात् । अताकीत् । अतकीत् । अताकिष्टाम् । अतकिष्टाम् । अतकिष्यत् ॥ [तकि] कृच्छ्र जीवने (कठिनता से जीवना) तङ्कति । ततङ्क । तङ्किता ॥ [बुक्क] भषणे (भूंसना) बुक्कति । बुबुक्क । बुक्किता । बुक्किष्यति ॥ [कख] हसने । कखति । चकाख । कखिता । अकाखीत् । अकखीत् ॥ [ओखृ, राखृ,लाखृ,द्राखृ,ध्राखृ,] शोषणालमर्थयोः (सूखना,भूषण,पर्य्याप्ति, और निषेध) ऋकार की इत्संज्ञा । ओखति । राखति । ओखाञ्चकार (१००) इत्यादि सूत्र लगते हैं । ओखिता । ओखिष्यति । ओखिषति । ओखिषाति । ओखतु । औखत् । ओखेत् । ओख्यात् । औखीत् । औखिष्यत् ॥ [उख, उखि, वख, वखि, मख, मखि, णख, णखि, रख, रखि, लख, लखि, इख, इखि, ईखि, वल्गु, रगि, लगि, अगि, वगि, मगि, तगि, त्वगि, श्रगि, श्लगि, इगि, रिगि, लिगि,] गत्यर्थाः । ओखति । उ-ओख्-णल् । इस अवस्था में ॥ १५२ ॥

१५३—अभ्यासस्याऽसवर्णे ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ७८ ॥

असवर्ण अच् परे हो तो अभ्यास के इवर्ण उवर्ण को इयङ् उवङ् आदेश हों यह सूत्र यणादेश का बाधक है । और गुण हो जाने से यह धातु इजादि गुरुमान् तो हो जाता है । परन्तु सन्निपात परिभाषा अर्थात् जो जिस के आश्रय से समर्थ होता है वह उस का विरोधी न होना चाहिये । यहां लिडादेश (णल्) प्रत्यय को मान के गुण होता है । आम् प्रत्यय के होने से उसी लिडादेश णल् का लुक् हो जावे । इस लिये आम् नहीं होता । उ+ओख्+णल्=उवोख । ऊखतुः । यहां सवर्ण अच् के परे उवङ् नहीं होता सवर्णदीर्घ एकादेश हो जाता है । ऊखुः । उवोखिथ । ऊखथुः । ऊख । उवोख । ऊखिव । ऊखिम । ओखिता । ओखिष्यति । ओखिषति । ओखिषाति । ओखतु । ओखतात् । औखत् । ओखेत् । उख्यात् । औखीत् । औखिष्यत् । उङ्खति । उङ्खाञ्चकार । उङ्खाञ्चक्रतुः । उङ्खाञ्चक्रुः । उङ्खाम्बभूव । उङ्खामास । ववाख । ववतुः (१२८) वङ्खति । ववङ्ख । मखति । ममाख । मेखतुः । मेखुः । मखिता । मखिष्यति । माखिषति । माखिषाति । मखिषति । मखिषाति । मखति । मखाति । माखिषत् । माखिषात् । माखिषद् । माखिषाद् । मखिषत् । मखिषात् । मखिषद् । मखिषाद् । मखत् । मखात् । मखद् । मखाद् ।

इत्यादि । अमाखीत् । अमखीत् । नखति । ननाख । नेखतुः । नङ्खति । ननङ्ख । एखति । इयेख (१५३) एखिता । एखिष्यति । ऐखिषति । ऐखिषाति । एखतु । एखतात् । ऐखत् । एखेत् । इख्यात् । ऐखीत् । ऐखिष्यत् । इङ्खति । इङ्खाञ्चकार । ऐङ्खीत् । इङ्खाञ्चकार । वल्गति । ववल्ग । रङ्गति । ररङ्ग । लङ्गति । ललङ्ग । अङ्गति । आनङ्ग (१४०) वङ्गति । ववङ्ग । इङ्गति । इङ्गाञ्चकार । इङ्गामास । इङ्गाम्बभूव । इङ्गिता । इङ्गिष्यति । इत्यादि ॥ [रिख, त्रख, त्रिखि, शिखि] इत्यपि केचित् । रिख आदि चार धातु किन्ही आचार्यों के मत में पूर्व उख आदि धातुओं के समान गत्यर्थ हैं । रेखति । रिरेख । रिरिखतुः । रेखिता । रेखिष्यति । रेखिषति । रेखिषाति । रेखतु । अरेखत् । रेखेत् । रिख्यात् । अरेखीत् । अरेखिष्यत् । त्रखति । तत्राख । त्रङ्खति । तत्रङ्ख । शिङ्खति । शिशिङ्ख ॥ [त्वगि] कम्पने च (कांपना) त्वङ्गति । तत्वङ्ग ॥ [युगि, जुगि, वुगि] वर्जने (वर्ज देना) युङ्गति । युयुङ्ग ॥ (घघ) हसने (हंसना) घघति । जघाघ । जघघ । घाघिषति । घाघिषाति । घघिषति । घघिषाति । अघाघीत् । अघघीत् । अघघिष्यत् ॥ [मघि] मण्डने (समाधान करना) मङ्घति । ममङ्घ ॥ [लघि] शोषणे । लङ्घति । ललङ्घ ॥ [शिघि] आघ्राणे (सूंघना) शिङ्घति । शिशिङ्घ । शिङ्घिता । शिङ्घिष्यति । शिङ्घिषति । शिङ्घिषाति । शिङ्घतु । अशिङ्घत् । शिङ्घेत् । शिङ्घ्यात् । अशिङ्घीत् । अशिङ्घिष्यत् ॥ इति फक्कादय उदात्ता उदात्तेतो द्विपंचाशत् समाप्ताः ॥ फक्क आदि ५२ धातु समाप्त हुए ॥

अथ चवर्गीयान्तास्त्रिनवतिः । अब यहां से आगे ९३ चानवे धातुओं का व्याख्यान है ॥ [वर्च] दीप्तौ (प्रकाशहोना) वर्चते । वर्चिता । वर्चिष्यते । वर्चिषते । वर्चिषाते । वर्चताम् । अवर्चत । वर्चेत । वर्चिषीष्ट । अवर्चिष्ट । अवर्चिष्यत ॥ [षच] सेचने सेवने च (सींचना, सेवाकरना) सचते । सेचे । सेचाते । सेचिरे । सचिता । सचिष्यते । साचिषते । साचिषाते । साचिषते । साचिषाते । सचिषते । सचिषाते । सचिषते । सचिषाते । सचते । सचाते । सचते । सचाते । सचताम् । असचत । सचेत । सचिषीष्ट । असचिष्ट । असचिष्यत ॥ [लोचृ] दर्शने (देखना) लोचते । लुलोचे । लोचिषते । लोचिषाते ॥ [शच] व्यक्तायां वाचि (स्पष्टबोलना) शचते । शेचे । शाचिषते । शाचिषाते । अशचिष्ट ॥ [श्वच, श्वचि] गतौ । श्वचते । श्वञ्चते । शश्वचे । शश्वञ्चे । श्वाचिषते ॥ [कच] बन्धने (बांधना) कचते । चकचे । कचिता । कचिष्यते । काचिषते । काचिषाते । कचताम् । अकचत । कचेत । कचिषीष्ट । अकचिष्ट । अकचिष्यत ॥ [कचि, काचि] दीप्तिबन्धनयोः (प्रकाश और बांधना) काञ्चते । काञ्चते । चकञ्चे । चकाञ्चे ॥ [मच, मुचि] कल्कने

(अभिमानकरना) मचते । मुञ्चते । मेचे । मुमुञ्चे । मचिता । मचिष्यते । माचिषते । माचिषातै । मचताम् । अमचत । मचेत । मचिषीष्ट । अमचिष्ट । अमचिष्यत ॥ [मचि] धारणोच्छ्रायपूजनेषु (धारणा, बढ़ना, सत्कार करना) मञ्चते । ममञ्चे । मञ्चिषतै । मञ्चिषातै ॥ [पचि] व्यक्तीकरणे (प्रकट करना) पञ्चते । पपञ्चे । पञ्चिषतै । पञ्चिषातै ॥ [ष्टुच] प्रसादे (प्रसन्न होना) स्तोचते । तुष्टुचे । स्तोचिषतै । स्तोचिषातै । स्तोचताम् । अस्तोचत । स्तोचेत । स्तोचिषीष्ट । अस्तोचिष्ट । अस्तोचिष्यत ॥ [ऋज] गति स्थानार्जनोपार्जनेषु । (गति) ज्ञान, गमन, प्राप्ति, स्थिति, सञ्चय, समीप में वस्तु जोड़ना) अर्जते । ऋज्+ऋज्+एश्=आनृजे । (१०६) (२८) (११०) (१४७) आनृजाते । आनृजिरे । अर्जिता । अर्जिष्यते । अर्जिषतै । अर्जिषातै । अर्जताम् । आर्जत । अर्जेत । अर्जिषीष्ट । आर्जिष्ट । आर्जिष्यत ॥ [ऋजि, भृजी] भर्जने (भूंजना) ऋञ्जते । भर्जते । ऋञ्जाञ्चक्रे । बभृजे । ऋञ्जिता । भर्जिता । ऋञ्जिष्यते । आर्ञ्जिष्ट । अभर्जिष्ट ॥ [एजृ, भ्रेजृ, भ्राजृ] दीप्तौ (प्रकाश होना) एजते । एजाञ्चक्रे । एजाम्बभूव । एजामास । एजिता । एजिष्यते । एजिषतै । एजिषातै । एजताम् । ऐजत । एजेत । एजिषीष्ट । ऐजिष्ट । ऐजिष्यत । भ्रेजते । बिभ्रेजे । भ्राजते । बभ्राजे । इत्यादि ॥ [ईज] गतिकुत्सनयोः (गति, निन्दा) ईजते । ईजाञ्चक्रे । ईजाम्बभूव । ईजामास । ईजिता । ईजिष्यते । ईजिषतै । ईजिषातै । ईजताम् । ऐजत । ईजेत । ईजिषीष्ट । ऐजिष्ट । ऐजिष्यत । इति वर्चादयउदात्ता अनुदात्तेत एकविंशतिः समाप्ताः ॥

अथ द्विसप्ततिर्व्रज्यन्ताः परस्मैपदिनः । अब यहां से आगे परस्मैपदी ७२ बहत्तर धातुओं का व्याख्यान है ॥ [शुच] शोके (शोचना) शोचति । शुशोच । शुशुचतुः । शोचिता शोचिष्यति । शोचिषति । शोचिषाति । शोचिषत् । शोचिषात् । शोचिषद् । शोचति । शोचाति । शोचतु । अशोचत् । शोचेत् । शुच्यात् । अशोचीत् । अशोचिष्यत् ॥ [कुच] शब्देतारे (एकरस शब्द होना) कोचति । चुकोच । कोचिषति । कोचिषाति ॥ [कुञ्च, क्रुञ्च] गतिकौटिल्याल्पीभावयोः (टेढ़ा चलना, थोड़ा होना) कुञ्चति । क्रुञ्चति । चुकुञ्च । चुक्रुञ्च । कुच्यात् (१३८) क्रुच्यात् ॥ [लुञ्च] अपनयने (दूर करना) लुञ्चति । लुलुञ्च । लुञ्चिता । लुच्यात् (१३८) अलुञ्चुत् । अलुञ्चिष्यत् ॥ [अञ्चु] गतिपूजनयोः (पूजा) अञ्चति । अञ्चिषति । अञ्चिषाति । अच्यात् * ॥ वञ्चु, चञ्चु, तञ्चु, त्वञ्चु, म्रुञ्चु,

* अञ्चुधातु के नकार का लोप गति अर्थ में ही होता है और (नाञ्चेः पूजायाम् । अ० । ६ । ४ । ३० ।) इस सूत्र से पूजा अर्थ में नकार का लोप नहीं होता वहां (अञ्च्यात्) प्रयोग होता है ॥

म्लुञ्चु, म्रुचु, म्लुचु] गत्यर्थाः । वञ्चति । वच्यात् । चच्यात् । तच्यात् । त्वच्यात् । म्रुच्यात् । म्लुच्यात् ॥ १५३ ॥

१५४—जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५८ ॥

जॄ, स्तम्भु, म्रुचु, म्लुचु, ग्रुचु, ग्लुचु, ग्लुञ्चु और श्वि धातुओं से परे जो च्लि प्रत्यय उस के स्थान में अङ् आदेश विकल्प करके होवे । अम्रुचत् । अम्रोचीत् । अम्लुचत् । अम्लोचीत् ॥ [ग्रुचु, ग्लुचु, कुजु, खुजु,] स्तेयकरणे (चोरी करना) ग्रोचति । जुग्रोच । जुग्रुचतुः । ग्रोचिता । ग्रोचिष्यति । ग्रोचिषति । ग्रोचिषाति । ग्रोचतु । अग्रोचत् । ग्रोचेत् । ग्रुच्यात् । अग्रुचत् । अग्रोचीत् । ग्लोचति । ग्लुच्यात् । अग्लुचत् । अग्लोचीत् । कोजति । चुकोज । कुज्यात् । अकोजीत् । खुज्यात् । अखोजीत् । [ग्लुञ्चु षस्ज] गतौ । ग्लुञ्चति । जुग्लुञ्च । ग्लुच्यात् (१३९) अग्लुचत् । अग्लोचीत् । सज्जति * ससज्ज । संज्जिता । सज्जिष्यति । सज्जिषति । सज्जिषाति । सज्जतु । असज्जत् । सज्जेत् । सज्ज्यात् । असज्जीत् । असज्जिष्यत् ॥ सज्जतिः स्वरितेदित्येके । किन्हीं आचार्यों के मत में यह सज्ज धातु स्वरितेत् अर्थात् आत्मनेपदी भी है इस से । सज्जते । ससज्जे । इत्यादि प्रयोग भी होते हैं ॥ [गुजि] अव्यक्ते शब्दे (अप्रकट सब्द का होना) गुञ्जति । जुगुञ्ज । गुञ्ज्यात् । अगुञ्जीत् । अगुञ्जिष्यत् ॥ [अर्च] पूजायाम् । अर्चति । आनर्च (११०) (१४७) अर्चिता । अर्चिष्यति । अर्चिषति । अर्चिषाति । अर्चतु । आर्चत् । अर्चेत् । अर्च्यात् । आर्चीत् । आर्चिष्यत् ॥ [म्लेच्छ] अव्यक्ते शब्दे । म्लेच्छति । मिम्लेच्छ ॥ [लछ, लाछि] लक्षणे (चिन्ह) लच्छति । ललच्छ । लच्छिता । लच्छिष्यति । लच्छिषति । लच्छिषाति । लच्छतु । अलच्छत् । लच्छेत् । लच्छ्यात् । अलच्छीत् । अलच्छिष्यत् । लाञ्छति । ललाञ्छ ॥ [वाछि] इच्छायाम् । वाञ्छति । ववाञ्छ ॥ [आछि] आयामे (विस्तार) आञ्छति । आञ्छ । आञ्छिता । आञ्छिष्यति । आञ्छिषति । आञ्छिषाति । आञ्छतु । आञ्छत् । आञ्छेत् । आञ्छ्यात् । आञ्छीत् । आञ्छिष्यत् ॥ [ह्रीछ] लज्जायाम् । ह्रीच्छति । जिह्रीच्छ ॥ [हुर्छा] कौटिल्ये (कुटिलपन) (१३०) इस सूत्र से रेफ की उपधा को दीर्घ होकर । हूर्च्छति । जुहूर्च्छ । हूर्च्छिता । हूर्च्छिष्यति । हूर्च्छिषति । हूर्च्छिषाति । हूर्च्छतु । अहूर्च्छत् । हूर्च्छेत् । हूर्च्छ्यात् । अहूर्च्छीत् । अहूर्च्छिष्यत् ॥ [मुर्छा] मोहसमुच्छ्राययोः (अज्ञान, बढ़ना) मूर्च्छति । मुमूर्च्छ ॥ [स्फुर्छा] विस्तृतौ (विस्तार) स्फूर्च्छति । पुस्फूर्च्छ (१२४) अस्फूर्च्छीत् ॥ [युच्छ] प्रमादे । युच्छति ।

* सस्ज धातु के हल् सकार को (स्तोःश्चुना श्चुः) इस सूत्र से शकार और उस शकार को (झलां जश् झशि) इस सूत्र से जकार होजाता है ॥

चिचयिथ (१५८) (१४९) चिचेथ । चिचियथुः । चिचिय । चिचाय । चिचय । चिचियिव । चिचियिम । चेता । चेतारौ । चेतारः । चेष्यति ।चेषति ।चैषाति । चेषति । चेषाति । चयतु । अचयत् । चयेत् ॥ १५९ ॥

१६०—अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २५ ॥

कृत् संज्ञक प्रत्यय और सार्वधातुक विषय को छोड़ के यकारादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो अजन्त अङ्ग को दीर्घ आदेश हो। चि+यासुट्+तिप्=चीयात्। चीयास्ताम् । चीयासुः । चीयाः । अचैषीत् । अचैष्टाम् । अचैषुः । अचैषीः । अचैष्टम् । अचैष्ट । अचैषम् । अचैष्व । अचैष्म । अचेष्यत् ॥ [चीज] अव्यक्ते शब्दे चीजति। चिचीज। अचीजीत् । अचीजिष्यत् ॥ [लज, लजि] भर्जने (भूंजना) लजति। ललाज । ललज । लाजिषति । लाजिषाति । अलाजीत् । अलजीत् । लञ्जति।ललञ्ज॥[लाज,लाजि] भर्त्सने च(धमकाना)लाजति।ललाज। ललाजतुः । लाञ्जति ॥ [जज, जजि] युद्धे (लड़ाई) जजति । जजाज। जजज। जाजिषति। जाजिषाति । अजाजीत् । अजजीत् । जञ्जति । जजञ्ज ॥ [तुज] हिंसायाम् । तोजति । तुतोज । तुतुजतुः । तोजिता ॥ [तुजि] पालने च। चकार से हिंसा अर्थ भी जानो । तुञ्जति । तुतुञ्ज ॥ [गज, गजि, गृज, गृजि, मुज, मुजि] शब्दार्थाः (शब्द होना) गजति । गञ्जति । गर्जति । गृञ्जति । मोजति।मुञ्जति । जगाज । जगञ्ज । जगर्ज । जगृञ्ज। मुमोज । मुमुञ्ज । अगाजीत्।अगजीत्॥ [गज] मदे च (अहंकार) चकार से शब्दार्थ भी है ॥ [वज, व्रज] गतौ । वजति । ववाज। ववजतुः । ववजुः । ववाज । ववज। वाजिषति । वाजिषाति । वजतु । अवजत् । वजेत् । वज्यात् । अवाजीत् । अवजीत् । अवजिष्यत् । व्रजति । वव्राज । अव्राजीत् (१३५) नित्य वृद्धि होती है ॥ १६० ॥

१६१—तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । ७ ॥

तुज आदि जिन धातुओं के अभ्यास को वेद में दीर्घादेश आवे उस की सिद्धि इस सूत्र से समझनी चाहिये । तूतुजानः । जागाज । मूमोज । वावाज। वाव्राज । दाधार । मामहानः।इत्यादि । यह सूत्र सामान्य करके प्रवृत्त होता है

इति शुचादय उदात्ता उदात्तेतः श्वि वर्जं परस्मैपदिनः समाप्ताः ॥

अथ टवर्गीयान्ता द्वाविंशत्यधिकं शतम् । अब टवर्गान्त १२२ एकसौ बाईस धातुओं का व्याख्यान है उन में से प्रथम ३६ धातु आत्मनेपदी हैं ॥ [अट्ट] अतिक्रमण हिंसनयोः (उल्लंघना,मारना) अट्टते । आनट्टे । अट्टिता । अट्टिष्यते । अट्टिषतै । अट्टिषातै । अट्टताम् । आट्टत । अट्टेत । अट्टिषीष्ट। आट्टिष्ट । आट्टिष्यत ॥

[वेष्ट] वेष्टने (लपेटना) वेष्टते । विवेष्टे । अवेष्टिष्ट ॥ [चेष्ट] चेष्टायाम् (क्रिया) चेष्टते । चिचेष्टे । अचेष्टिष्ट ॥ [गोष्ट, लोष्ट] सङ्घाते (समुदाय) गोष्टते । जुगोष्टे । गोष्टिता । गोष्टिष्यते । गोष्टिषतै । गोष्टिषातै । गोष्टताम् । अगोष्टत । गोष्टेत । गोष्टिषीष्ट । अगोष्टिष्ट । अगोष्टिष्यत । लोष्टते । लुलोष्टे ॥ [घट्ट] चलने । घट्टते । जघट्टे । घट्टिता ॥ [स्फुट] विकसने (फैलना) स्फोटते । पुस्फुटे । स्फोटिता । स्फोटिष्यते । स्फोटिषतै । स्फोटिषातै । स्फोटताम् । अस्फोटत । स्फोटेत । स्फोटिषीष्ट । अस्फोटिष्ट । अस्फोटिष्यत ॥ [अठि] गतौ । अण्ठते । आनण्ठे ॥ [वठि] एकचर्य्यायाम् (एक का सेवन) वण्ठते । ववण्ठे ॥ [मठि, कठि] शोके (शोचना) मण्ठते । ममण्ठे । कण्ठते । चकण्ठे । कण्ठिता । कण्ठिष्यते । कण्ठिषतै । कण्ठिषातै । कण्ठताम् । अकण्ठत । कण्ठेत । कण्ठिषीष्ट । अकण्ठिष्ट । अकण्ठिष्यत ॥ [मुठि] पालने (रक्षा) मुण्ठते । मुमुण्ठे ॥ [हेठ] विबाधायाम् (मूर्खता) हेठते । जिहेठे ॥ [एठ] च । एठते । एठाञ्चक्रे । एठाम्बभूव । एठामास ॥ [हिडि] गत्यनादरयोः (चलना, तिरस्कार) हिण्डते । जिहिण्डे । हिण्डिता । हिण्डिष्यते । हिण्डिषतै । हिण्डिषातै । हिण्डताम् । अहिण्डत । हिण्डेत । हिण्डिषीष्ट । अहिण्डिष्ट । अहिण्डिष्यत ॥ [हुडि] सङ्घाते । हुण्डते । जुहुण्डे ॥ [कुडि] दाहे (जलना) कुण्डते । चुकुण्डे ॥ [वडि] विभाजने (विभाग करना) वण्डते । ववण्डे ॥ [मडि] च । मण्डते ॥ [भडि] परिभाषणे (बहुत बोलना) भण्डते । बभण्डे । भण्डिता । भण्डिष्यते । भण्डिषतै । भण्डिषातै । भण्डताम् । अभण्डत । भण्डेत । भण्डिषीष्ट । अभण्डिष्ट । अभण्डिष्यत ॥ [पिडि] सङ्घाते । पिण्डते । पिपिण्डे ॥ [मुडि] मार्जने (शोधना) मुण्डते । मुमुण्डे ॥ [तुडि] तोडने (तोड़ना) तुण्डते ॥ [हुडि] वरणे (ग्रहण करना) हरण इत्येके । किन्हीं आचार्य्यों के मत में यह धातु हरने अर्थ में है । हुण्डते । जुहुण्डे ॥ [चडि] कोपे (क्रोध) चण्डते । चचण्डे । चण्डिता । चण्डिष्यते । चण्डिषतै । चण्डिषातै । चण्डताम् । अचण्डत । चण्डेत । चण्डिषीष्ट । अचण्डिष्ट । अचण्डिष्यत ॥ [शडि] रुजायां सङ्घाते च (रोग, समुदाय) शण्डते । शशण्डे ॥ [तडि] ताडने (ताड़ना) तण्डते । ततण्डे ॥ [पडि] गतौ । पण्डते । पपण्डे ॥ [कडि] मदे (अहंकार) कण्डते । चकण्डे ॥ [खडि] मन्थे । खण्डते । चखण्डे ॥ [हेडृ, होडृ] अनादरे (तिरस्कार) हेडते । होडते । जिहेडे । जुहोडे ॥ [वाडृ] आप्लाव्ये (सब प्रकार चलना) वाडते । ववाडे ॥ [द्राडृ, ध्राडृ] विशरणे (मारना) द्राडते । दद्राडे । ध्राडते । दध्राडे ॥ [शाडृ] श्लाघायाम् (अपनी प्रशंसा) शाडते । शशाडे ॥ इत्यष्टादय उदात्ता उदात्तेतः षट्त्रिंशत् समाप्ताः । ये अष्ट आदि ३६ धातु समाप्त हुए ॥

अथ परस्मैपदिनः षडशीतिः । अब ८६ छाशी धातु परस्मैपदी कहते हैं ॥ [शीटृ] गर्वे (अभिमान) शीटति । शुशीट । शीटिता । शीटिष्यति । शीटिषति । शीटिषाति । शीटतु । अशीटत् । शीटेत् । शीट्यात् । अशीटीत् । अशीटिष्यत् ॥ [यौटृ] बन्धने (बांधना) यौटति ॥ [म्लेटृ, म्रेडृ] उन्मादे (उन्मत्त होना) म्लेटति । मिम्लेट । म्रेडति । मिम्रेड ॥ [कटे] वर्षावरणयोः (वर्षना, ढांकना) इस धातु का एकार इत्संज्ञक होता है प्रयोजन आगे लिखा है । कटति । चकाट । चकटतुः । चकटुः । कटिता । कटिष्यति । काटिषति । काटिषाति । कटिषति । कटिषाति । कटति । कटाति । कटतु । अकटत् । कटेत् । कट्यात् । विकल्प करके वृद्धि (१४४) प्राप्त है इस लिये ॥ १६१ ॥

१६२—ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५ ॥

हकारान्त, मकारान्त, यकारान्त, क्षण, श्वस, जागृ, णयन्त, श्वि, और एकार जिन का इत् गया हो उन धातुओं को वृद्धि न हो इडादि सिच् परे हो तो । अकटीत् । अकटिष्यत् ॥ [चटे] इत्येके । किन्ही आचार्यों के मत में कटे धातु के अर्थ में चटे भी है । चटति । अचटीत् ॥ [अट, पट] गतौ । अटति । आट । आटतुः । आटुः । आटीत् । आटिष्यत् । पटति । पपाट । पेटतुः । पेटुः । पेटिथ । पेटथुः । पेट । पपाट । पपट । पेटिव । पेटिम । पटिता । पटिष्यति । पाटिषति । पाटिषाति । पटतु । अपटत् । पटेत् । पट्यात् । अपाटीत् । अपटीत् । अपटिष्यत् ॥ [रट] परिभाषणे (बहुत बोलना) रटति । रराट । रेटतुः । रेटुः । अराटीत् । अरटीत् । अरटिष्यत् ॥ [लट] बाल्ये (बालकपन) लटति । ललाट । लेटतुः । लाटिषति । लाटिषाति । लटतु । अलटत् । लटेत् । लट्यात् । अलाटीत् । अलटीत् । अलटिष्यत् ॥ [शट] रुजाविशरणगत्यवसादनेषु । (रोग, हिंसा, गति, पीड़ा) शटति । शशाट । शटिता । शटिष्यति । अशाटीत् । अशटीत् । अशटिष्यत् ॥ [वट] वेष्टने (लपेटना) वटति । ववाट । ववटतुः (१२८) अवाटीत् । अवटीत् ॥ [किट, खिट] त्रासे (भय) केटति । खेटति । चिकेट । चिकिटतुः । चिखिटुः । अकेटीत् । अखेटीत् ॥ [शिट, षिट,] अनादरे (तिरस्कार) शेटति । सेटति । सिषेट ॥ [जट, झट] सङ्घाते (समुदाय) जटति । जजाट । जेटतुः । अजाटीत् । अजटीत् । जझाट । जझटतुः ॥ [भट] भृतौ (सेवा) भटति । बभाट ॥ [तट] उच्छ्राये (ऊंचाई) ॥ [खट] काङ्क्षायाम् (इच्छा) चखाट । अखाटीत् ॥ [णट] नृतौ (नांचना) नटति । ननाट । नेटतुः ॥ [पिट] शब्दसङ्घातयोः (शब्द, समूह) पेटति । पिपेट । अपेटीत् ॥ [हट] दीप्तौ च (प्रकाश) हटति । जहाट । अहाटीत् । अहटीत् ॥

[षट] अवयवे (विभाग करना) सटति । ससाट । सेटतुः । असाटीत् । असटीत् ॥ [लुट] विलोडने (विलोना) लोटति । लुलोट ॥ [चिट] परप्रेष्ये (दूसरे की सेवा करना) चेटति । चिचेट । चेटिता । चेटिष्यति । चेटिषति । चेटिषाति । चेटतु । अचेटत् । चेटेत् । चिट्यात् । अचेटीत् । अचेटिष्यत् ॥ [विट] शब्दे । वेटति । विवेट ॥ [विट] आक्रोशे (कोशना) वेटति । विवेट ॥ [हिट] इत्येके । किन्हीं आचार्यों के मत में विट के स्थान में हिटधातु आक्रोश अर्थ में है । हेटति । जिहेट ॥ [इट, किट, कटी] गतौ । एटति । केटति । कटति । इयेट (१५३) चिकेट । चकाट । कटिता । कटिष्यति । काटिषति । काटिषाति। कटतु । अकटत् । कटेत् । कट्यात् । अकाटीत् । अकटीत् । अकटिष्यत् ॥ [मडि] भूषायाम् (शोभा) मण्डति । ममण्ड ॥ [कुडि] वैकल्ये (व्याकुलता) कुण्डति । चुकुण्ड ॥ [मुट, पुट,] मर्दने (मलना) मोटति । पोटति । मुमोट । पुपोट । मोटिता । मोटिष्यति । मोटिषति । मोटिषाति । मोटतु । अमोटत् । मोटेत् । मुट्यात् । अमोटीत् । अमोटिष्यत् ॥ [चुडि] अल्पीभावे (थोड़ा होना) चुण्डति । चुचुण्ड ॥[मुडि] खण्डने (काटना) मुण्डति । मुमुण्ड । मुण्डिता । मुण्डिष्यति । मुण्डिषति । मुण्डिषाति । मुण्डतु । अमुण्डत् । मुण्डेत् । मुण्ड्यात् । अमुण्डीत् । अमुण्डिष्यत्॥[पुडि] चेत्येके। किन्ही ऋषियों के मत में पुडि धातु भी मुडि के समान खण्डन अर्थ में है ॥ [रुटि, लुटि] स्तेये (चोरी) रुण्टति । लुण्टति । रुरुण्ट । लुलुण्ट । लुण्टिता । लुण्टिष्यति । लुण्टिषति । लुण्टिषाति । लुण्टतु । अलुण्टत् । लुण्टेत् । लुण्ट्यात् । अलुण्टीत् । अलुण्टिष्यत् ॥ [रुठि, लुठि] इत्येके । किन्ही आचार्यों के मत में रुठि लुठि धातु भी चोरी अर्थ में हैं । रुण्ठति । लुण्ठति । रुरुण्ठ । लुलुण्ठ ॥ [स्फुटिर्] विशरणे (मारना) स्फोटति । पुस्फोट । स्फोटिता। स्फोटिष्यति । स्फोटिषति । स्फोटिषाति । स्फोटतु । अस्फोटत् । स्फोटेत् । स्फुट्यात् । अस्फुटत् । अस्फोटीत् (१३८) अस्फोटिष्यत् ॥ [पठ] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) पठति । पपाठ । पेठतुः। पेठुः । पेठिथ । पठिता । पठिष्यति । पाठिषति । पाठिषाति । पठिषति । पठिषाति । पठतु । अपठत् । पठेत् । पठ्यात् । अपाठीत् । अपठीत् । अपठिष्यत् ॥ [वठ] स्थौल्ये (मोटा होना) वठति । ववाठ । ववठतुः । ववठुः । वठिता । वठिष्यति । वाठिषति । वाठिषाति । वठतु । अवठत् । वठेत् । वठ्यात् । अवाठीत् । अवठीत् । अवठिष्यत् ॥ [मठ] मद निवासयोः (अभिमान, वसना) मठति । ममाठ । मेठतुः । अमाठीत् । अमठीत् ॥ [कठ] कृच्छ्रजीवने (दुःख से जीवना) कठति । चकाठ। चकठतुः । अकाठीत् । अकठीत् ॥ [हठ] प्लुतिशठत्वयोः (कूदना,मूर्खपन) हठति । जहाठ।

जहठतुः । अहाठीत् । अहठीत् । अहठिष्यत् ॥ बलात्कार इत्येके । किन्ही आचार्यों के मत में हठ धातु बल से करने अर्थ में है। [रुठ, लुठ, उठ,] उपघाते (समीप से मारना) रोठति । लोठति । रुरोठ । लुलोठ । रोठिता । रोठिष्यति । रोठिषति । रोठिषाति । रोठतु । अरोठत् । रोठेत् । रुठ्यात् । अरोठीत् । अरोठिष्यत् । ओठति । उवोठ (१५२) ऊठतुः । ऊठुः । उवोठिथ । औठीत् । औठिष्यत् ॥ [ऊठ] इत्येके । किन्ही आचार्यों के मत में यह ऊठ दीर्घ ऊकारान्त धातु है ह्रस्व नहीं । ऊठति । ऊठाञ्चकार । ऊठाम्बभूव । ऊठामास ॥ [पिठ] हिंसासंक्लेशनयोः (हिंसा, अतिदुःख) पेठति । पिपेठ । पेठिता । पेठिष्यति । पेठिषति । पेठिषाति । पेठतु । अपेठत् । पेठेत् । पिठ्यात् । अपेठीत् । अपेठिष्यत् । [शठ] कैतवे च (चुगली) चकार से हिंसा और संक्लेशन अर्थ भी जानो । शठति । शशाठ । शेठतुः । शठिता । शठिष्यति । शाठिषति । शाठिषाति । शठतु । अशठत् । शठेत् । शठ्यात् । अशाठीत् । अशठीत् । अशठिष्यत् ॥ [शुठ] प्रतिघाते (मारते हुए को मारना) शोठति । शुशोठ ॥ [शुठि] इत्येके । किन्ही लोगों के मत में शुठि (इदित्) धातु भी प्रतिघात अर्थ में है । शुण्ठति । शुशुण्ठ ॥ [कुठि] च । यहां चकार से प्रतिघात अर्थ का सम्बन्ध होता है । कुण्ठति । चुकुण्ठ ॥ [लुठि] आलस्ये प्रतिघाते च । यहां पूर्वोक्त प्रतिघात अर्थ का समुच्चय चकार से किया और अतिस्पष्ट होने के लिये प्रतिघात शब्द पढ़ भी दिया है । लुण्ठति । लुलुण्ठ ॥ [शुठि] शोषणे (सोखना) शुण्ठति ॥ [रुठि, लुठि] गतौ । रुण्ठति । लुण्ठति । [चुड्ड] भावकरणे (अभिप्राय जताना) चुड्डति । चुचुड्ड ॥ [अड्ड] अभियोगे (सर्वथा योग होना) अड्डति आनड्ड ॥ [कड्ड] कार्कश्ये (कठोरपन) कड्डति । चकड्ड । अकड्डीत् ॥ [क्रीडृ] विहारे (खेलना) क्रीडति । चिक्रीड । क्रीडिता । क्रीडिष्यति । क्रीडिषति । क्रीडिषाति । क्रीडतु । अक्रीडत् । क्रीडेत् । क्रीड्यात् । अक्रीडीत् । अक्रीडिष्यत् ॥ [तुडृ] तोडने (तोड़ना) तोडति । तुतोड । [तूडृ] इत्येके । तूडति । तुतूड । तूडिता । तूडिष्यति । तूडिषति । तूडिषाति । तूडतु । अतूडत् । तूडेत् । तूड्यात् । अतूडीत् । अतूडिष्यत् ॥ [हुडृ, हूडृ, होडृ,] गतौ । होडति । जुहोड । जुहुडतुः । होडिता । होडिष्यति । होडिषति । होडिषाति । होडतु । अहोडत् । होडेत् । हुड्यात् । अहोडीत् । अहोडिष्यत् । हूडति । जुहूड । जुहोड । जुहोडतुः । जुहोडुः ॥ [रौडृ] अनादरे (तिरस्कार) रौडति । ररौड ॥ [रोडृ, लोडृ] उन्मादे (उन्मत्तपन) रोडति । ररोड । लोडति । लुलोड ॥ [अड] उद्यमने (उद्यम) अडति । आड । आडतुः । आडुः ॥ [लड] विलासे । लडति । ललाड । लेडतुः । लडिता । लडिष्यति । लाडिषति । लाडिषाति ।

लडतु। अलडत्। लडेत्। लाड्यात्। अलाडीत्। अलडीत्। अलडिष्यत्॥[कडि] मदे (अहंकार) कडति। चकाड। चकडतुः॥ [कडि] इत्येके। कण्डति। चकण्ड॥ [गडि] वदनैकदेशे (मुख का अवयव) गण्डति। जगण्ड। गण्डिता। गण्डिष्यति। गण्डिषति। गण्डिषाति। गण्डतु। अगण्डत्। गण्डेत्। गण्ड्यात्। अगण्डीत्। अगण्डिष्यत्। इति शौटादय उदात्ता उदात्तेतो द्वाशीतिः परस्मैपदिनः समाप्ताः। ये ८२ बयासी परस्मैपदी धातु समाप्त हुए॥

अथ पवर्गीयान्ता द्वाशीतिः। तत्रानुदात्तेतः स्तोभत्यन्ताश्चतुस्त्रिंशत्। अब पवर्गान्त ८२ बयासी धातुओं का व्याख्यान है उन में पहिले ३४ चौतीस धातु आत्मनेपदी हैं [तिपृ, तेपृ, ष्टिपृ, ष्टेपृ,] क्षरणार्थाः (झरना) इन में प्रथम तिप् धातु अनिट् है सो भूमिका में सेट् अनिट् व्यवस्था को देखो। तेपते। तेपेते। तेपन्ते। तितिपे। तितिपाते। तितिपिरे। और लिट् वलादि आर्द्धधातुक में (१४८) सूत्र के नियम से इडागम होजाता है। तितिपिषे। तितिपाथे। तितिपिध्वे। तितिपे। तितिपिवहे। तितिपिमहे। तिप्+तास्+लुट् (१०८) सूत्र से इडागम का निषेध होकर। तेप्ता। तेप्तारौ। तेप्तारः। तेप्तासे। तेप्तासाथे। तेप्ताध्वे। तेप्ताहे। तेप्तास्वहे। तेप्तास्महे। तेप्स्यते। तेप्स्येते। तेप्स्यन्ते। तेप्सते। तेप्साते। तेप्सते। तेप्साते। तेपतै। तेपातै। तेपते। तेपाते। तेपताम्। अतेपत। तेपेत। १६२॥

१६३—लिङ्सिचावात्मनेपदेषु॥ अ०॥ १।२।११॥

इग्वान् हलन्त धातु से परे जो झलादी लिङ् और सिच् सो कित्वत् हों आत्मनेपद विषय में। यहां कित् संज्ञा होने से (४५) गुण नहीं होता। तिप्सीष्ट। तिप्सीयास्ताम्। तिप्सीरन्। लुङ् में। अट्+तिप्+सिच्+त (१४२)=अतिप्त। अतिप्साताम्। अतिप्सत। अतिप्थाः। अतिप्साथाम्। अतिब्ध्वम् (१११) अतिप्सि। अतिप्स्वहि। अतिप्स्महि। अतेप्स्यत। अतेप्स्येताम्। अतेप्स्यन्त। तितेपे। तिपृ और तेपृ धातु में लिट् में ही रूपभेद होता है। तेपिता। तेपिष्यते। तेपिषते। तेपिषातै। तेपताम्। अतेपत। तेपेत। तेपिषीष्ट। अतेपिष्ट। अतेपिष्यत। स्तेपते। तिष्टिपे। तिष्टिपाते। तिष्टिपिरे। स्तेपिता। स्तेपिष्यते। स्तेपिषते। स्तेपिषातै। स्तेपताम्। अस्तेपत। स्तेपेत। स्तेपिषीष्ट। अस्तेपिष्ट। अस्तेपिष्यत। तिष्टेपे। तिष्टेपाते। तिष्टेपिरे [थिपृ, थेपृ,] इत्यन्ये। थेपते। तिथिपे। तिथेपे। [तेपृ] कम्पने (कांपना) [ग्लेपृ] दैन्ये (दीनता) ग्लेपते। जिग्लेपे [टुवेपृ] कम्पने। टु की इत्संज्ञा। वेपते। विवेपे। वेपिता। वेपिष्यते। वेपिषतै। वेपिषातै। वेपताम्। अवेपत। वेपेत। वेपिषीष्ट। अवेपिष्ट। अवेपिष्यत [केपृ, गेपृ, ग्लेपृ,]

यहां चकार से कम्पन अर्थ का समुच्चय होता है। क्षेपते। गेपते। ग्लेपते। [मेपृ, रेपृ, लेपृ] गतौ। मेपते। रेपते। लेपते। [हेपृ, धेपृ,] च। गति अर्थ में हैं। हेपते। जिहेपे। धेपते। दिधेपे। धेपिता। धेपिष्यते। धेपिषतै। धेपिषातै। धेपताम्। अधेपत। धेपेत। धेपिषीष्ट। अधेपिष्ट। अधेपिष्यत॥ [त्रपूष्] लज्जायाम्। त्रपते। त्रपेते। त्रपन्ते॥ १६३॥

१६४—तॄफलभजत्रपश्च॥ अ०॥ ६। ४। १२२॥

तॄ, फल, भज, और त्रप धातुओं के अकार को एकारादेश और अभ्यास का लोप होवे। त्रप्+त्रप्+एश=त्रेपे। त्रेपाते। त्रेपिरे। त्रेपिषे। त्रेपाथे। त्रेपिध्वे। त्रेपे। त्रेपिवहे। त्रेपिमहे। इस धातु का षकार इत् जाता है उस का तो प्रयोजन कृदन्त में आवेगा। और ऊकार इत् जाने से ऊदित् होकर (१४०) सूत्र से वलादि आर्द्धधातुक को विकल्प से इडागम होता है। त्रपिता। त्रप्ता। त्रप्तारौ। त्रप्तारः। त्रपिष्यते। त्रप्स्यते। त्रापिषतै। त्रापिषातै। त्रपिषतै। त्रपिषातै। त्रापिषते। त्रापिषाते। त्रपिषते। त्रपिषाते। त्रापसतै। त्रापसातै। त्रापसते। त्रापसाते। त्रपसतै। त्रपसातै। त्रपसते। त्रपसाते। त्रपतै। त्रपातै। त्रपते। त्रपाते। इसी प्रकार बीस २ प्रयोग आतां आदि सब प्रत्ययों में जानो। त्रपताम्। अत्रपत। त्रपेत। त्रपिषीष्ट। त्रप्सीष्ट। अत्रपिष्ट। अत्रप्त (१४२) अत्रप्साताम्। अत्रप्सत। अत्रपिष्यत। अत्रप्स्यत [कपि] चलने (चलना) कम्पते। चकम्पे। कम्पिता। कम्पिष्यते। कम्पिषतै। कम्पिषातै। कम्पताम्। अकम्पत। कम्पेत। कम्पिषीष्ट। अकम्पिष्ट। अकम्पिष्यत [रबि, लबि, अबि] शब्दे। रम्बते। ररम्बे। लम्बते। ललम्बे। अम्बते। आनम्बे। [लबि] अवस्रंसने च (लटकना) चकार से शब्द [कबृ] वर्णे (रंग) कबतै। चकबे। कबिता। कबिष्यते। काबिषतै। काबिषातै। कबताम्। अकबत। कबेत। कबिषीष्ट। अकबिष्ट। अकबिष्यत [क्लीबृ] अधार्ष्ट्ये (भोलापन) क्लीबते। चिक्लीबे [चीबृ] मदे (अहङ्कार) चीबते। चिचीबे [शीभृ] कत्थने (कहना) शीभते। शिशीभे [चीभृ] च। यहां चकार से कत्थन अर्थ का समुच्चय होता है [रेभृ] शब्दे। रेभते। रिरेभे [अभि, रभि,] इत्येके। अम्भते। आनम्भे। रम्भते। ररम्भे [ष्टभि, स्कभि] प्रतिबन्धे (बांधना) स्तम्भते। तस्तम्भे। स्तम्भिता। स्तम्भिष्यते। स्तम्भिषते। स्तम्भिषातै। स्तम्भताम्। अस्तम्भत। स्तम्भेत। स्तम्भिषीष्ट। अस्तम्भिष्ट। अस्तम्भिष्यत। स्कम्भते। चस्कम्भे। स्तम्भ धातु में इतना विशेष है कि जो उद् उपसर्ग इस के पूर्व हो तो उस के सकार को पूर्वसवर्ण (उदःस्थास्तम्भोः पूर्वस्य) सूत्र से तकार होजाता है। उत्तम्भते। उत्तम्भेते। इत्यादि [जभी, जृभि,] गात्रविनामे (शरीर का मरोरना) जभी धातु का दीर्घ ईकार इत् जाता है॥१६४॥

१६५—रधिजभोरचि ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६१ ॥

अजादि प्रत्यय परे हो तो रध और जभ धातु को नुम् का आगम हो। जम्भते। जजम्भे। जम्भिता। जम्भिष्यते। जम्भिषते। जम्भिषाते। जम्भताम्। अजम्भत। जम्भेत। जम्भिषीष्ट। अजम्भिष्ट। अजम्भिष्यत। जृम्भते। जजृम्भे। [शल्भ] कत्थने। शल्भते। शशल्भे। [वल्भ] भोजने। वल्भते। ववल्भे। [गल्भ] धार्ष्ट्ये (धीटता) गल्भते। जगल्भे। [स्रम्भु] प्रमादे (प्रमत्तपन) स्रम्भते। सस्रम्भे। यह स्रम्भ धातु तालव्यादि भी है। श्रम्भते [ष्टुभु] स्तम्भे (रोकना) स्तोभते। तुष्टुभे। स्तोभिता। स्तोभिष्यते। स्तोभिषते। स्तोभिषाते। स्तोभताम्। अस्तोभत। स्तोभेत। स्तोभिषीष्ट। अस्तोभिष्ट। अस्तोभिष्यत। इति तिपादय उदात्ता अनुदात्तेतस्तिपिवर्जमात्मनेभाषा अष्टचिंशत् समाप्ताः। ये पवर्गान्तों में तिपआदि ३८ धातु समाप्त हुए॥

अथ द्वाचत्वारिंशत्परस्मैपदिनः। अब बयालीस ४२ धातु परस्मैपदी कहते हैं [गुपू] रक्षणे (रक्षा करना) ॥ १६५ ॥

१६६—गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः ॥ अ० ॥ ३ । १ । २८ ॥

गुपू, धूप, विच्छ, पण, और पन धातुओं से स्वार्थ में आय प्रत्यय हो। यहां ऊदित् गुपू धातु से आय प्रत्यय होकर। गुपू—आय। यहां आय प्रत्यय को (४९) आर्द्धधातुक संज्ञा और (५१) गुण होके। गोपाय ॥ १६६ ॥

१६७—सनाद्यन्ता धातवः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३२ ॥

सन् आदि प्रत्यय जिन के अन्त में हों ऐसे प्रकृति प्रत्यय समुदायों को धातु संज्ञा हो। सन्, क्यच्, काम्यच्, क्यङ्, क्यष्, आचार अर्थ का क्विप्, णिच्, यङ्, यक्, आय, ईयङ्, णिङ्, ये सब सनादि प्रत्यय कहाते हैं। यहां गोपाय को धातु संज्ञा होकर इस से लट् आदि लकारों की उत्पत्ति और भू आदि धातुओं के समान इस को भी धातु संज्ञा के सब कार्य होते हैं। गोपाय+शप्+तिप्+गोपायति। गोपायतः। गोपायन्ति। गोपायसि। गोपायथः। गोपायथ। गोपायामि। गोपायावः। गोपायामः। यहां शप् के अकार के साथ गोपाय के अकार को पररूप एकादेश होजाता है ॥ १६७ ॥

१६८—आयादय आर्द्धधातुके वा ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३१ ॥

आर्द्धधातुक प्रत्ययों की विवक्षा में गोपाय आदि धातुओं से आय आदि प्रत्यय विकल्प करके हों। गोपाय—लिट्। यहां ॥ १६८ ॥

१६९—कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि ॥अ०॥ ३ । १ । ३५ ॥

लिट् लकार परे हो तो कास धातु और प्रत्ययान्त धातुओं से आम् प्रत्यय हो, वेद विषय में न हो ॥ १६९ ॥

१७०—वा०—कास्यनेकाज्ग्रहणं कर्त्तव्यम्

(कासप्र०) इस सूत्र पर वार्तिक कार प्रत्यय ग्रहण के स्थान में अनेकाच् ग्रहण करते हैं अर्थात् (कासनेकाज आममंत्रे लिटि) ऐसा सूत्र करना चाहिये इस का प्रयोजन आगे । आवेगा अनेकाच् कहने से प्रत्ययान्त धातुओं का भी ग्रहण हो जाता है । यहां गोपाय प्रत्ययान्त धातु से आम् प्रत्यय होकर । गोपाय-आम्-लिट् । यहां ॥ १७० ॥

१७१—आर्द्धधातुके ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४६ ॥

यह अधिकार सूत्र है ॥ १७१ ॥

१७२— अतो लोपः ॥अ०॥ ६ । ४ । ४८ ॥

आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हों तो अदन्त अङ्ग का लोप हो यहां गोपाय के अन्त्य अकार का लोप होकर। गोपाय+आम्+कृ+कृ+णल्=गोपायाञ्चकार (१०२) इत्यादि सूत्र लगते हैं । गोपायाञ्चक्रतुः । गोपायाञ्चक्रुः । गोपायाम्बभूव । गोपायामास । और जिस पक्ष में (१६८) सूत्र से आय प्रत्यय नहीं होता वहां । जुगोप । जुगुपतुः । जुगुपुः । यह धातु ऊदित् है इस कारण वलादि आर्द्धधातुक में (१४०) सूत्र से विकल्प करके इडागम होता है । जुगोपिथ । जुगोप्थ । जुगुपथुः । जुगुप । जुगोप । जुगुपिव । जुगुप्व । जुगुपिम । जुगुप्म । (लुट्) गोपायिता । गोपायितारौ । गोपायितारः । आय प्रत्यय के अभाव पक्ष में । गोपिता । गोपितारौ । गोपितारः । अनिट् पक्ष में गोप्ता । गोप्तारौ । गोप्तारः । गोपायिष्यति । गोपिष्यति । गोप्स्यति । गोपायिषति । गोपायिषाति । गोपिषति । गोपिषाति । गोप्सति । गोप्साति । गोपायति । गोपायाति । गोपायतु । अगोपायत् । गोपायेत् । गोपाय्यात् (१०२) । गोपाय्यास्ताम् । गोपाय्यासुः । गुप्यात् । अगोपायीत् । अगोपीत् । अगौप्सीत् । अगौप्ताम्(१४२) अगौप्सुः । अगौप्सीः।अगौप्तम्।अगौप्त । अगौप्सम्। अगौप्स्व। अगौप्स्म । अगोपायिष्यत् । अगोपिष्यत् । अगोप्स्यत् । [धूप] सन्तापे (दुःख होना) धूपायति । धूपायतः । धूपायाञ्चकार। धूपायाम्बभूव । धूपायामास (१६९) इत्यादि सूत्र लगते हैं । दुधूप (१६८) दुधूपतुः । धूपायिता । धूपिता । धूपायिष्यति । धूपिष्यति । धूपायिषति । धूपायिषाति । धूपिषति । धूपिषाति । धूपायतु

अधूपायत् । धूपायेत् । धूपाय्यात् । धूप्यात् । अधूपायीत् । अधूपीत् । अधूपायिष्यत् । अधूपिष्यत् [जप, जल्प] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) जपति । जल्पति । जजाप । जेपतुः । जेपुः । जपिता । जपिष्यति । जापषति । जापिषाति । जपतु । अजपत् । जपेत् । जप्यात् । अजापीत् । अजपीत् । अजपिष्यत् । [जप] मानसे च (विचार पूर्वक मन में जपना) [चप] सान्त्वने (शान्त होना) चपति [षप] समवाये (सम्बन्ध होना) सपति [रप, लप] व्यक्तायां वाचि । रपति । लपति । प्रलपति [चुप] मन्दायां गतौ (धीरे २ चलना) चोपति । चुचोप । चोपिता । चोपिष्यति । चोपिषति । चोपिषाति । चोपतु । अचोपत् । चोपेत् । चुप्यात् । अचोपीत् । अचोपिष्यत् [तुप, तुम्प, त्रुप, त्रुम्प, तुफ, तुम्फ, त्रुफ, त्रुम्फ] हिंसार्थाः तोपति । तुतोप । तोपिता । तोपिष्यति । तोपिषति । तोपिषाति । तोपतु । अतोपत् । तोपेत् । तुप्यात् । अतोपीत् । अतोपिष्यत् । तुम्पति । तुतुम्प । तुतुम्पतुः । यहां संयोगान्त तुम्प धातु से परे लिट् (१३७) कित्वत् नहीं होता इस से न लोप भी नहीं हुआ और प्र उपसर्ग से परे (प्रात्तुम्पतौ गवि कर्त्तरि) यह पारस्कर प्रभृति गण का सूत्र है । गौ कर्त्ता हो तो प्र उपसर्ग से परे तुम्प धातु को सुट् का आगम होजाता है । प्रस्तुम्पति । और गण सूत्र में श्तिप् का निर्देश करने से । प्रतोतुम्पीति । यहां यङ्लुक् में सुट् नहीं होता । तुप्यात् । त्रुप्यात् । तुफ्यात् । त्रुफ्यात् (१३९) अतुम्पीत् । अतुम्पिष्यत् ॥ [पर्प, रफ, रफि, अर्ब, पर्ब, लर्ब, बर्ब, मर्ब, कर्ब, खर्ब, गर्ब, शर्ब, षर्ब, चर्ब] गतौ [चर्ब] अदने च । चर्ब धातु (खाने) और गति दोनों अर्थ में है । पर्पति । पपर्प । रफति । रम्फति । अर्बति । आनर्ब । अर्बिता । अर्बिष्यति । अर्बिषति । अर्बिषाति । अर्बतु । आर्बत् । अर्बेत् । अर्ब्यात् । आर्बीत् । आर्बिष्यत् । पर्बति । लर्बति । बर्बति । मर्बति । कर्बति । खर्बति । गर्बति । शर्बति । सर्बति । चर्बति । चचर्ब । चर्बिता । चर्बिष्यति । चर्बिषति । चर्बिषाति । चर्बतु । अचर्बत् । चर्बेत् । चर्ब्यात् । अचर्बीत् । अचर्बिष्यत् ॥ [कुबि] आच्छादने (ढांकना) कुम्बति । चुकुम्ब ॥ [लुबि, तुबि] अर्दने (गति और मांगना) लुम्बति । तुम्बति । लुलुम्ब । तुतुम्ब ॥ [चुबि] वक्त्र संयोगे । चुम्बति । चुचुम्ब ॥ [षृभु, षृम्भु] हिंसार्थौ । सर्भति । ससर्भ । सर्भिता । सर्भिष्यति । सर्भिषति । सर्भिषाति । सर्भतु । असर्भत् । सर्भेत् । सृभ्यात् । असर्भीत् । असर्भिष्यत् । सृम्भति । ससृम्भ । सृभ्यात् ॥ [षिभु, षिम्भु] इत्येके । किन्ही लोगों के मत में ये दोनों धातु भी हिंसार्थक हैं । सेभति । सिम्भति । सिभ्यात् ॥ [शुभ, शुम्भ] भाषणे (बोलना) भासने, इत्येके (प्रकाश)

हिंसायामित्यन्ये * । शोभति । शुशोभ । शोभिता । शोभिष्यति । शोभि
शोभिषाति । शोभतु । अशोभत् । शोभेत् । शुभ्यात् । अशोभीत् । अशोभि
शुम्भति । शुशुम्भ । शुभ्यात् ॥ इति शुपादय उदात्ता उदात्तेत एकचत्वारिंशत्सम
ये शुप आदि ४१ इकतालीस धातु समाप्त हुए ॥

अथानुनासिकान्ता द्विचत्वारिंशत् । तत्रानुदात्तेतो दश । अब अ
कान्त ४२ बयालीस धातु कहते हैं उन में प्रथम घिणि आदि दश आत्मने
[घिणि, घुणि, घृणि,] ग्रहणे (ग्रहण करना) घिणते । यहां
आगम होकर (ष्टुना ष्टुः) सूत्र से नुम् के (तवर्ग) नकार को (
णकार हो जाता है । घिणते । घिणन्ते । जिघिणे । घिणिता । घिणि
घिणिषते । घिणिषाते । घिणताम् । अघिणत । घिणेत । घिणिषीष्ट । अघि
अघिणिष्यत । घुणते । घृणते [घुण, घूर्ण] भ्रमणे (विचरना) घोणते ।
घोणिता घोणिष्यते । घोणिषते घोणिषाते घोणताम् । अघोणत । घ
घोणिषीष्ट । अघोणिष्ट । अघोणिष्यत । घूर्णते । जुघूर्णे [पण] व्यवहा
च (लेना, देना और प्रशंसा) [पन] च । यहां चकार से स्तुति अर्थ
सम्बन्ध होता है व्यवहार का नहीं इसी लिये पन धातु पृथक् पढ़ा है न
इकट्ठा ही पढ़ते । पण तथा पन धातु अनुदात्तेत् हैं सो पन धातु से स्तु
में ही आय प्रत्यय (१६६) सूत्र से होता है इस के साहचर्य से पण धातु
आय प्रत्यय स्तुति अर्थ में ही होता है और व्यवहार अर्थ में इस को आ
होने का अवकाश मिलने से आय प्रत्ययान्त पण धातु से आत्मनेपद
होता । पण+आय+शप्+तिप्=पणायति । पणायतः । पणायन्ति ।
ञ्चकार । पणायाम्बभूव । पणायामास (१६८) पेणे । पेणाते । पेणिरे ।
यितासि । पणितासे । पणायिष्यति । पणिष्यते । पणायतु । अपणायत्
येत् । पणाय्यात् । पणिषीष्ट । अपणायीत् । अपणिष्ट । अपणायिष्यत् ।
ष्यत । व्यवहार अर्थ में । पणते । पणेते । पणन्ते । पन धातु स्तुति अर्थ में
पनायति । पनायाञ्चकार । पनायाम्बभूव । पनायामास । पेने । पेनाते ।
पनायितासि । पनितासे । पनायिष्यति । पनिष्यते । पनायिषति । पनायि
पानिषते । पानिषाते । पनायतु । अपनायत् । पनायेत् । पनाय्यात् । प
अपनायीत् । अपनिष्ट । अपनायिष्यत् । अपनिष्यत । [भाम] क्रोधे ।
बभामे । भामितासे । भामिष्यते । भामिषते । भामिषाते । भामताम् । अ
भामेत । भामिषीष्ट । अभामिष्ट । अभामिष्यत । [क्षमूष्] सहने (

* (इत्येके) और (इत्यन्ये) इत्यादि शब्द धातु पाठ में बहुधा आया करते हैं । उन क
वार लिख दिया है अब आगे वार २ नहीं लिखेंगे ॥

चमते। यह भी धातु उदित् है। चचमे। चचमाते। चचमिरे। चचमिषे। चचंसे (१४०) इट् का आगम विकल्प करके होता है। चचमाथे। चचमिध्वे। चचन्ध्वे। चचमे ॥ १७२ ॥

१७३—म्वोश्च ॥ अ० ॥ ८। २। ६५ ॥

म और व परे हों तो मकारान्त धातु के मकार को नकारादेश होवे। यहां व, म के परे चम् धातु के मकार को न हो कर मूर्द्धन्य षकार से परे णत्व हो जाता है। चचण्वहे। चचमिवहे। चचण्महे। चचमिमहे। चमिता। चन्ता। चन्तारौ। चन्तारः। चन्तासे। चमिष्यते। चंस्यते। चामिषतै। चामिषातै। चमिषतै। चमिषातै। चामिषते। चामिषाते। चमिषते। चमिषाते। चांसतै। चांसातै। चांसते। चांसाते। चंसतै। चंसातै। चंसते। चंसाते। चमतै। चमातै। चमते। चमाते। इसी प्रकार बीसर प्रयोग (आताम्) आदि सब प्रत्ययों में जानो। चमताम्। अचमत। चमेत। चमिषीष्ट। चंसीष्ट। अचमिष्ट। अचंस्त। अचमिष्यत। अचंस्यत। यहां सर्वत्र अनिट् पक्ष में चम धातु के मकार को अनुस्वार हो जाता है॥ [कमु] कान्तौ (इच्छा) ॥ १७३ ॥

१७४—कमेर्णिङ् ॥ अ० ॥ ३। १। ३० ॥

कम धातु से णिङ् प्रत्यय हो स्वार्थ में। पश्चात् (१६७) धातुसंज्ञा और णिङ् प्रत्यय के परे (१२६) कम की अकार को वृद्धि होके कामि धातु से णिङ् प्रत्यय के ङित् होने से आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं। कम्+णिङ्+शप्+त=कामयते। कामयेते। कामयन्ते। कामि-आम्-लिट् ॥ १७४ ॥

१७५—अयामन्तात्वाय्येत्न्विष्णुषु ॥ अ० ॥ ६। ४। ५५ ॥

आम्, अन्त, आलु, आय्य, इत्नु और इष्णु प्रत्यय परे हों तो णि के स्थान में अय् आदेश हो (१७७) सूत्र से लोप पाया था सो न हो अर्थात् लोप का अपवाद यह सूत्र है। कामयाञ्चक्रे (१६९) कामयाञ्चक्राते। कामयाञ्चक्रिरे। कामयाम्बभूव। कामयामास (१६८) सूत्र से णिङ् प्रत्यय के अभाव पक्ष में। चकमे। चकमाते। चकमिरे। कामयिता। कामयितारौ। कामयितारः। कामयितासे। कमितासे। कामयिष्यते। कमिष्यते। कामयिषतै। कामयिषातै। कामिषतै। कामिषातै। कामयताम्। अकामयत। कामयेत। कामयिषीष्ट। कमिषीष्ट। कामि-च्लि-लुङ्। यहां च्लि प्रत्यय के स्थान में सिच् प्रत्यय प्राप्त है उस का अपवाद ॥ १७५ ॥

१७६—णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि चङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४८ ॥

ण्यन्त, श्रि, द्रु और स्रु धातुओं से परे च्लि प्रत्यय के स्थान में चङ् आदेश हो कर्त्ता में लुङ् परे हो तो । अट्—काम्—इ—चङ्—त । इस अवस्था में ॥ १७६ ॥

१७७—णेरनिटि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५१ ॥

अनिडादि आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हों तो णि का लोप हो जावे । इसी विषय में (१५६) सूत्र से यण् आदेश पर त्व से प्राप्त है ॥ १७७ ॥

१७८—वा०—ण्यल्लोपावियङ्यण्गुणवृद्धिदीर्घेभ्यः पूर्वविप्रतिषेधेन भवतः ॥

णिलोप और (१७२) सूत्र से अकार का लोप ये दोनों कार्य, इयङ्, यण्, गुण, वृद्धि और दीर्घ से पूर्वविप्रतिषेध करके हो जाते हैं । णिलोप को (कार्यते) यहां अवकाश है । क्योंकि कारि धातु से यक् प्रत्यय के परे भावकर्म प्रक्रिया में णि का लोप हो जाता है और (श्रियौ) यहां इयङ् आदेश को (विव्यतुः । विव्युः) यहां यण् आदेश को, (चेता, स्तोता) यहां गुण को; (सखायौ) यहां वृद्धि को और (चीयते, स्तूयते) यहां दीर्घादेश को अवकाश है और (णेरनिटि) सूत्र से ये सब इयङ् आदि कार्य परे हैं । इन सब कार्य्यों का और णिलोप का जहां एक प्रयोग में आकर झगड़ा पड़ता है वहां परविप्रतिषेध मानने से इयङ् आदि कार्य प्राप्त हैं वार्त्तिक कार के प्रमाण से पूर्वविप्रतिषेध मान के णिलोप होजाता है इयङ् आदि नहीं होते । जैसे । अट्+तक्षि+चङ्+तिप् =अततक्षत् । यहां (१५८) सूत्र से इयङ् आदेश प्राप्त है उस को बाध के णिलोप होता है । आट्+आटि+चङ्+तिप्=आटिटत् । यहां (१५६) से यणादेश प्राप्त है उस से पूर्वविप्रतिषेध करके णिलोप होजाता है । कारि+युच्+टाप्=कारणा । यहां (२१) सूत्र से परत्व से गुण पाता है उस का अपवाद होकर णिलोप होता है । कारि+ण्वुल्+सु=कारकः । यहां (६०) सूत्र से वृद्धि प्राप्त है उस से पूर्वविप्रतिषेध करके णिलोप होजाता है और । कारि+यक्+त=कार्यते । यहां (१६०) सूत्र से परत्व से दीर्घ प्राप्त है उस से भी पूर्व विप्रतिषेध कर के णिलोप होजावे इस लिये (ण्यल्लोपावि०) यह वार्त्तिक है । और (कामि—चङ्—त) यहां तो (१५६) सूत्र से यणादेश परत्व से प्राप्त है उस से पूर्वविप्रतिषेध करके (१७७) सूत्र से णिलोप हो जाता है । फिर । अट्—काम्—चङ्—त । इस अवस्था में ॥ १७८ ॥

१७९—णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १ ॥

चङ्परक णि के परे जिस की अङ्ग संज्ञा है उस की उपधा को ह्रस्वादेश होजावे। यहां (काम्) को ह्रस्व होकर। अट्–कम्–चङ्–त। इस अवस्था में १७९॥

१८०—चङि ॥ अ० ॥ ६ । १ । ११ ॥

चङ् प्रत्यय परे हो तो अनभ्यास धातु के प्रथम एकाच् अवयव को और अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व होजावे। अट्–कम्–कम्–चङ्–त। यहां (कम्) भाग को द्वित्व हुआ॥ १८०॥

१८१—सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ९३ ॥

धातु का लघु अक्षर जिस से परे हो ऐसा जो अभ्यास उस को जिस चङ् के परे अक् प्रत्याहार में किसी वर्ण का लोप न हुआ हो ऐसा णि परे हो तो सन्वत् कार्य हो अर्थात् सन् प्रत्यय के परे जो कार्य होता है सो अभ्यास को भी होजावे। चङ् प्रत्यय के परे जो णि का लोप होता है वह भी अक् लोप है परन्तु इसी सूत्र में चङ् जिस से परे हो ऐसे णि की अपेक्षा होने से णिलोप से अन्य अग्लोप समझा जाता है। और णिलोप को स्थानिवत् मान के इस सूत्र के अर्थ की प्रवृत्ति होती है॥ १८१॥

१८२—सन्यतः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७९ ॥

सन् प्रत्यय परे हो तो अभ्यास के अकार को इकार आदेश हो। अट्–किम् कम्–चङ्–त। इस अवस्था में॥ १८२॥

१८३—दीर्घो लघोः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ९४ ॥

धातु के लघु अभ्यास को दीर्घ आदेश हो अनग्लोपी चङ्परक णि परे हो तो। यहां (कि) को दीर्घ और (१०७) से ककार को चकार तथा (३८) से अभ्यास के हल् मकार का लोप और चङ् में (च्, ङ्) का लोप होकर। अट्+ची+कम्+अ+त=अचीकमत। अचीकमेताम्। अचीकमन्त। अचीकमथाः। अचीकमेथाम्। अचीकमध्वम्। अचीकमे। अचीकमावहि। अचीकमामहि। और जिस पक्ष में आयादि णिङ् प्रत्यय (१६८) नहीं होता वहां॥ १८३॥

१८४—वा०—कमेरुपसङ्ख्यानम् ॥ ६ । १ । ४८ ॥

केवल कम धातु से परे जो च्लि उस के स्थान में चङ् आदेश होवे। अट्+कम्+कम्+चङ्+त=अचकमत (१८०) अचकमेताम्। अचकमन्त। अचकमथाः। अचकमेथाम्। अचकमध्वम्। अचकमे। अचकमावहि। अचकमामहि। इति घिण्यादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषा दश समाप्ताः। ये घिणि आदि दश धातु समाप्त हुए॥

अथ द्वात्रिंशत् परस्मैपदिनः। अब ३२ धातु अनुनासिकान्त परस्मैपदी कहते हैं [अण,रण,वण,भण,मण,कण,क्वण,व्रण,भ्रण,ध्वण] शब्दार्थाः। अणति। रणति। वणति। आण। आणतुः। आणुः। अणिता। अणिष्यति। आणिषति। आणिषाति। अणतु। आणत्। अणेत्। अण्यात्। आणीत्। आणिष्यत्। ववाण। ववणतुः (१२८) ववणुः। वणिता। वणिष्यति। वाणिषति। वाणिषाति। वणतु। अवणत्। वणेत्। वण्यात्। अवाणीत्। अवणीत्। अवणिष्यत्। भणति। बभाण। बभणतुः। अभाणीत्। अभणीत्। मणति। कणति। क्वणति। व्रणति। भ्रणति। ध्वणति॥ [धण] इत्येके। धणति। दधाण। दधणतुः। धणिता। धणिष्यति। धाणिषति। धाणिषाति। धणतु। अधणत्। धणेत्। धण्यात्। अधाणीत्। अधणीत्। अधणिष्यत्॥ [ओणृ] अपनयने (हटाना) ओणति। ओणाञ्चकार। ओणाम्बभूव। ओणामास। ओणिता। ओणिष्यति। ओणिषति। ओणिषाति। ओणतु। औणत्। ओणेत्। ओण्यात्। औणीत्। औणिष्यत्॥ [शोणृ] वर्णगत्योः (रंग और गति) शोणति। शुशोण॥ [श्रोणृ] सङ्घाते (समुदाय) श्रोणति। शुश्रोण॥ [श्लोणृ] च। सङ्घात अर्थ में। श्लोणति। शुश्लोण। [पैणृ] गतिप्रेरणश्लेषणेषु (गति,प्रेरणा और मिलाना) पैणति। पिपैण। पिपैणतुः। पिपैणुः। पैणिता। पैणिष्यति। पैणिषति। पैणिषाति। पैणतु। अपैणत्। पैणेत्। पैण्यात्। अपैणीत्। अपैणिष्यत्॥ [ध्रण,वण] शब्दे। यहां ध्रन धातु उपदेश में नान्त है पीछे रेफ से परे णत्व होजाता है। ध्रणति। वणति। ववाण। वेणतुः॥ [कनी] दीप्तिकान्तिगतिषु (प्रकाश,इच्छा और गति) कनति। चकान। चकनतुः। कनिता। कनिष्यति। कानिषति। कानिषाति। कनतु। अकनत्। कनेत्। कन्यात्। अकानीत्। अकनीत्। अकनिष्यत्। [ष्टन,वन] शब्दे। स्तनति। तस्तान। तस्तनतुः। स्तनिता। स्तनिष्यति। स्तानिषति। स्तानिषाति। स्तनतु। अस्तनत्। स्तनेत्। स्तन्यात्। अस्तानीत्। अस्तनीत्। अस्तनिष्यत्। वनति॥ [वन,षण] संभक्तौ (भक्ति) वन धातु का दूसरा अर्थ होने से फिर पढ़ा है। सनति। ससान। सेनतुः। सेनुः। यह बात सब धातुओं में समझना चाहिये कि जहां लिट् लकार को मान के अभ्यास को कुछ आदेश होता है वहीं (१२५) सूत्र से (अनादेशादि) निषेध लगता है कि जैसे। बभणतुः। बभणुः। और जहां धातु के आदि षकार को स और णकार को न होजाता है वहां निषेध नहीं लगता इसी से। सेनतुः। सेनुः। यहां एत्वाभ्यसलोप (१२५) होता है। सनिता। सनिष्यति। सानिषति। सानिषाति। सनतु। असनत्। सनेत्॥ १८४॥

१८५—ये विभाषा ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४३ ॥

यकारादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो जन, सन, और खन
आकार आदेश विकल्प करके हो । अलोन्त्य परिभाषा के आश्रय से
नकार के स्थान में होता है (८५) से यासुट् कित् होता है । सन्+यात्
तिप्=सायात् । सन्यात् । असानीत् । असनीत् । असनिष्यत् [अम
गति आदि (गति, शब्द और सम्भक्ति) अर्थों में अम् धातु है । अमति
आमतुः । आमुः । अमिता । अमिष्यति । आमिषति । आमिषाति
आमत् । अमेत् । अम्यात् । आमीत् । आमिष्यत् [द्रम, हम्म, मीव
द्रमति । दद्राम । हम्मति । जहम्म । मीमति । मिमीम । द्रम धातु
अकारोपध है । इस में विकल्प से वृद्धि (१४४) प्राप्त है सो (१६२)
होतो । अद्रमीत् । अद्रमिष्यत् (मीमृ) शब्दे च । यहां चकार गति
दोनों अर्थ का बोध होने के लिये है [चमु, छमु, जमु, झमु] अदने (खान

१८६—ष्ठिवुक्लमुचमां शिति ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७५

ष्ठिवु, क्लमु, और चमु धातुओं के अच् को दीर्घ आदेश हो शित्
हों तो । इस सूत्र से इन धातुओं को सामान्य करके दीर्घ प्राप्त है ॥

१८७—वा०—दीर्घत्वमाङि चमइति वक्तव्यम् ॥

आङ् पूर्वक हो चम धातु को दीर्घ हो सर्वत्र नहीं । आचामति ।
आचामन्ति । आङ् का नियम इस लिये किया है कि । उच्चमति ।
यहां दीर्घ न हो । चचाम । चेमतुः । चेमुः । आचचाम । आचेमतुः ।
चमिता । चमिष्यति । चामिषति । चामिषाति । चमतु । आचामतु
आचामत् । चमेत् । आचामेत् । चम्यात् । आचमीत् (१६२) आ
छमति । चच्छाम । चच्छमतुः । अच्छमीत् । जमति । जजाम । जेमतु
जमिता । जमिष्यति । जामिषति । जामिषाति । जमतु । अजमत्
जम्यात् । अजमीत् । झमति । जझाम । जझमतुः [जिमु] इत्येके
जिजेम [क्रमु] पादविक्षेपे (पग फेंकना) ॥ १८७ ॥

१८८—वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः ॥ अ० ॥

भ्राश, भ्लाश, भ्रमु, क्रमु, क्लमु, त्रसि, त्रुटि और लष धातुओं
कार के श्यन् प्रत्यय हो कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों तो । और प
होजाता है । इस सूत्र में प्राप्ताप्राप्तविभाषा है क्योंकि इन में जो धात

अप्राप्त है। और श्यन् प्रत्यय तथा अन्य सब विकरण प्रत्यय (स्य, तास्, सिप्) आदि शप् प्रत्यय के अपवाद हैं ॥ १८८ ॥

१८९—क्रमः परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७६ ॥

परस्मैपद संज्ञक शित् प्रत्यय परे हों तो क्रम धातु के अच् को दीर्घ होवे। क्रम्+श्यन्+तिप्=क्राम्यति। क्रम्+शप्+तिप्=क्रामति। और परस्मैपद का ग्रहण इस लिये है कि। आक्रमते आदित्यः। यहां पदव्यवस्था से आत्मनेपद में दीर्घ न होवे। चक्राम। चक्रमतुः। चक्रमुः। क्रमिता। क्रमिष्यति। क्रामिषति। क्रामिषाति। क्राम्यतु। क्रामतु। अक्राम्यत्। अक्रामत्। क्रामेत्। क्राम्येत्। क्रम्यात्। अक्रमीत्। अक्रमिष्यत्॥ इत्यणादय उदात्ता उदात्तेतो द्वात्रिंशत् परस्मैभाषाः समाप्ताः। ये ३२ बत्तीस धातु परस्मैपदी समाप्त हुए॥

अथ यवर्गीयान्ता अष्टाविंशत्यधिकं शतम्। अब एकसौ अट्ठाईस१२८ धातु यवर्गीयान्त कहते हैं [अय,वय,पय,मय,चय,तय,णय] गतौ। अय्+शप्+त=अयते॥१८९॥

१९०—दयायासश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३७ ॥

दय, अय और आस धातुओं से आम् प्रत्यय हो लिट् लकार परे हो तो। अय्+आम्+कृ+कृ+एश्=अयाञ्चक्रे। अयाञ्चक्राते। अयाञ्चक्रिरे। अयितासे। अयिष्यते। आयिषतै। आयिषातै। अयताम्। आयत। अयेत। १९० ॥

१९१—विभाषेटः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७९ ॥

इण् से परे जो इट् उस से परे जो सीध्वं,लुङ् और लिट् का धकार उस को मूर्द्धन्य आदेश विकल्प करके होजावे। धकार के स्थान में अन्तरतम आदेश ढकार होजाता है। अयिषीष्ट। अयिषीयास्ताम्। अयिषीरन्। अयिषीष्ठाः। अयिषीयास्थाम्। अयिषीढ्वम्। अयिषीध्वम्। अयिषीय। अयिषीवहि। अयिषीमहि। आयिष्ट। आयिषाताम्। आयिषत। आयिष्ठाः। आयिषाथाम्। आयिढ्वम्। आयिध्वम्। आयिषि। आयिष्वहि। आयिष्महि। आयिष्यत ॥ १९१ ॥

१९२—उपसर्गस्यायतौ ॥ अ० ॥ ८ । २ । १९ ॥

अय धातु के परे पूर्व जो उपसर्ग उस के रेफ को लकार आदेश हो। जैसे प्र+अयते। प्लायते। पलायते। पलायाञ्चक्रे। निस् और दुस् उपसर्गों के सकार को रुत्व त्रिपादी में होता है उस को असिद्ध मानने से। निरयते। दुरयते। प्रयोग होते हैं। और जहां निर्, दुर् उपसर्ग हों वहां। निलयते। दुलयते। रूप बनते हैं। वयते। ववये (१२८) वयिता। वयिष्यते। वायिषतै। वायिषातै। वयताम्। अवयत। वयेत। वयिषीष्ट। वयिषीढ्वम्। वयिषीध्वम्। अवयिढ्वम्।

अवयिध्वम्। अवयिषत। पयते। पेये। पेयाते। पेयिरे। पयिषीढ्वम्। पयिषीध्वम्। अपयिढ्वम्। अपयिध्वम्। इसी प्रकार मय आदि को जानो [णय] रक्षणे च। णय धातु के गति और रक्षा दोनों अर्थ हैं। नयते। नेये। नयिता। नायिषते। नायिषाते। नयताम्। अनयत। नयेत। नयिषीष्ट। नयिषीढ्वम्। नयिषीध्वम्। अनयिढ्वम्। अनयिध्वम्। अनयिषत [दय] दानगतिरक्षणहिंसादानेषु (देना, गति, रक्षा और लेना) दयते। दयाञ्चक्रे (१९०) दयिता। दयिष्यते। [रय] गतौ रयते। रेये [ऊयी] तन्तु सन्ताने (सूतका फैलाना) ऊयते। ऊयाञ्चक्रे। [पूयी] विशरणे दुर्गन्धे च (मारना और दुर्गन्ध करना) पूयते। पुपूये। पूयिता। [क्नूयी] शब्दे उन्दे च (शब्द और गीलापन) क्नूयते। चुक्नूये [क्ष्मायी] विधूनने (कम्पाना) क्ष्मायते। चक्ष्माये॥ [स्फायी, ओप्यायी] वृद्धौ (बढ़ना) स्फायते। पस्फाये। ऊयी आदि धातुओं में दीर्घ ईकार इत् जाता है और प्यायी धातु में ओकार और ईकार दोनों की इत्संज्ञा होती है। प्यायते॥ १९२॥

१९३—लिड्यङोश्च ॥ अ० ॥ ६। १। २९ ॥

लिट् लकार और यङ् प्रत्यय परे हों तो प्यायी धातु को पी आदेश हो। प्याय-लिट्। इस अवस्था में प्रथम द्विर्वचन प्राप्त है उस को बाध के पी आदेश हो जाता है। पीछे इस की प्राप्ति बनी रहने से द्वित्व होता है। पी+पी+एश्=पिप्ये (१५६) से यणादेश होता है। पिप्याते। पिप्यिरे। पिप्यिषे। प्यायिता। प्यायिष्यते। प्यायिषतै। प्यायिषातै। प्यायताम्। अप्यायत। प्यायेत। प्यायिषीष्ट। प्यायिषीढ्वम्। प्यायिषीध्वम् (१९१)॥ १९३॥

१९४—दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ३। १। ६१ ॥

दीपी, जनी, बुध, पूरी, तायृ और प्यायी धातुओं से परे जो च्लि प्रत्यय उस के स्थान में विकल्प करके चिण् आदेश होवे त शब्द परे हो तो। यहां प्यायी धातु से परे होता है अन्य धातु आगे आवेंगे। अट्-प्याय्-चिण्-त। इस अवस्था में॥ १९४॥

१९५—चिणो लुक् ॥ अ० ॥ ६। ४। १०४ ॥

चिण् से परे जो प्रत्यय उस का लुक् हो। यहां चिण् से परे (त) का लुक् होता है। अट्+प्याय्+चिण्=अप्यायि। यहां (च्, ण्) की इत्संज्ञा और लोप हो जाता है। और जिस पक्ष में च्लि के स्थान में चिण् नहीं होता वहां। अप्यायिष्ट। अप्यायिषाताम्। अप्यायिषत। अप्यायिष्ठाः। अप्यायिषाथाम्।

अप्यायिढ्वम्। अप्यायिध्वम् (१९१) अप्यायिषि। अप्यायिष्वहि। अप्यायिष्महि। अप्यायिष्यत ॥ [तायृ] सन्तान पालनयोः (अपत्य,और रक्षा) तायते। तायेते। तायन्ते। तताये। ततायिढ्वे। ततायिध्वे। तताये। ततायावहे। ततायामहे। तायितासे। तायिष्यते। तायिषते। तायिषाते। तायताम्। अतायत। तायेत। तायिषीष्ट। अतायिष्ट। अतायिष्यत [शल] चलनसंवरणयोः (चलना और ढांकना) शलते। शेले। शेलाते। शेलिरे। शलितासे। शलिष्यते। शालिषते। शालिषाते। शलताम्। अशलत। शलेत। शलिषीष्ट। शलिषीढ्वम्। शलिषीध्वम्। अशलिष्ट। अशलिढ्वम्। अशलिध्वम्। अशलिष्यत [वल,वल्ल] संवरणे संचरणे च (संवरण और सम्यक् विचरना) वलते। वल्लते। ववले (१२८) ववल्ले। वलिता। वलिष्यते। वालिषते। वालिषाते। वलताम्। अवलत। वलेत। वलिषीष्ट। अवलिष्ट। अवलिष्यत [मल,मल्ल] धारणे (पदार्थों का धारण करना) मलते। मल्लते। मेले। मेलाते। मेलिरे। ममल्ले। मलिता। मलिष्यते। मालिषते। मालिषते। मलताम्। अमलत। मलेत। मलिषीष्ट। अमलिष्ट। अमलिष्यत [भल, भल्ल] परिभाषणहिंसादानेषु (बहुत बोलना, मारना और देना) भलते। भल्लते। बभले। बभल्ले। भलितासे। भलिष्यते। भालिषते। भालिषाते। भलताम्। अभलत। भलेत। भलिषीष्ट। अभलिष्ट। अभलिष्यत [कल] शब्दसंख्यानयोः (शब्द और गणना) कलते। चकले। चकलिढ्वे। चकलिध्वे। कलितासे। कलिष्यते। कालिषते। कालिषाते। कलताम्। अकलत। कलेत। कलिषीष्ट। कलिषीढ्वम्। कलिषीध्वम्। अकलिष्ट। अकलिढ्वम्। अकलिध्वम्। अकलिष्यत [कल्ल] अव्यक्ते शब्दे (अप्रकट बोलना) कल्लते। चकल्ले [तेवृ,देवृ] देवने (खेलना) तेवते। देवते। तितेवे। दिदेवे। तितेविढ्वे (१९१) तितेविध्वे। तेवितासे। तेविष्यते। तेविषते। तेविषाते। तेवताम्। अतेवत। तेवेत। तेविषीष्ट। तेविषीढ्वम्। तेविषीध्वम्। अतेविष्ट। अतेविढ्वम्। अतेविध्वम् [षेवृ, गेवृ, ग्लेवृ, पेवृ, मेवृ, म्लेवृ] सेवने (सेवन) सेवते। सिषेवे। गेवते। जिगेवे। ग्लेवते। जिग्लेवे। पेवते। पिपेवे। मेवते। मिमेवे। म्लेवते। मिम्लेवे [शेवृ, खेवृ, केवृ] इत्येके। शेवते। शिशेवे। खेवते। चिखेवे। केवते। चिकेवे [रेवृ] प्लवगतौ (शीघ्र चलना) रेवते। रिरेवे। रेवितासे। रेविष्यते। रेविषते। रेविषाते। रेवताम्। अरेवत। रेवेत। रेविषीष्ट। अरेविष्ट। अरेविष्यत ॥ इत्ययादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः सप्तत्रिंशत्समाप्ताः। ये अय आदि ३७ (सैंतीस) धातु समाप्त हुए ॥

अथ परस्मैपदिन एकनवतिः। अब यवर्गान्तों में ९१ (इक्कानवे) धातु परस्मैपदी कहते हैं [मव्य] बन्धने (बांधना) मव्यति। ममव्य। ममव्यतुः।

मव्यिता। मव्यिष्यति। मव्यिषति। मव्यिषाति। मव्यतु। अमव्यत्। मव्येत्। मव्यात्। अमव्यीत्। अमव्यिष्यत् [सूर्क्ष्य, ईर्क्ष्य, ईर्ष्य] ईर्ष्यार्थाः (ईर्षा) सूर्क्ष्यति। ईर्क्ष्यति। ईर्ष्यति। ईर्क्ष्याञ्चकार। ईर्ष्याञ्चकार। ईर्ष्याम्बभूव। ईर्ष्यामास। ईर्ष्यिता। ईर्ष्यिष्यति। ईर्ष्यिषति। ईर्ष्यिषाति। ईर्ष्यतु। ऐर्ष्यत्। ईर्ष्येत्। ईर्ष्यात्। ऐर्ष्यीत्। ऐर्ष्यिष्यत् [हय] गतौ। हयति। जहाय। जहयतुः। हयिता। हयिष्यति। हायिषति। हायिषाति। हयतु। अहयत्। हयेत्। हय्यात्। अहयीत् (१६२) वृद्धि नहीं होती [शुच्य,चुच्य] अभिषवे (यंत्र से सार रूप रस खींचना) शुच्यति। चुच्यति [हर्य] गतिकान्त्योः (गति और इच्छा) हर्यति। जहर्य [अल] भूषणपर्याप्तिवारणेषु (भूषण,सामर्थ्य और निषेध) अलति। आल। आलतुः। आलुः। अलिता। अलिष्यति। आलिषति। आलिषाति। अलतु। आलत्। अलेत्। अल्यात् ॥ १९५ ॥

१९६—अतो ल्रान्तस्य ॥ अ० ॥ ७ । २ । २ ॥

अकार के समीप जो रेफ और लकार तदन्त अङ्ग के अकार को वृद्धि हो परस्मैपद विषय में सिच् प्रत्यय परे हो तो (१४४) सूत्र से विकल्प करके वृद्धि प्राप्त है उस का यह अपवाद है। मा भवानालीत्। आलिष्टाम्। आलिषुः। अकार के समीप रेफ लकार इस लिये कहे हैं कि। अवभ्रीत्। यहां अकार के समीप भकार है रेफ नहीं [ञिफला] विशरणे (मारना) इस धातु में (ञि) और (आ) दो वर्ण इत् जाते हैं। फलति। पफाल। फेलतुः। फेलुः। यहां अभ्यास के झल् फकार को चर् पकार होता है इस कारण अनादेशादि के न होने से (१२५) एत्वाभ्यासलोप नहीं प्राप्त है सो (१६४) सूत्र से हो जाता है। फलिता। फलिष्यति। फालिषति। फालिषाति। फलतु। अफलत्। फलेत्। फल्यात्। अफालीत् (१९६) अफलिष्यत् [मील, श्मील, स्मील, क्ष्मील,] निमेषणे (नेत्रों को शीघ्र खोलना मींचना] मीलति। मिमील। मीलिता। मीलिष्यति। मीलिषति। मीलिषाति। मीलतु। अमीलत्। मीलेत्। मील्यात्। अमीलीत्। अमीलिष्यत्। श्मीलति। शिश्मील। स्मीलति। सिस्मील। क्ष्मीलति। चिक्ष्मील। [पील] प्रतिष्टम्भे (रोकना) पीलति। पिपील [नील] वर्णे (नीला रंग) नीलति। निनील [शील] समाधौ (निरन्तर योगाभ्यास करना) शीलति। शिशील [कील] बन्धने (बांधना) कीलति। चिकील [कूल] आवरणे (ढांकना) कूलति। चुकूल। कूलिता। कूलिष्यति। कूलिषति। कूलिषाति। कूलतु। अकूलत्। कूलेत्। कूल्यात्। अकूलीत्। अकूलिष्यत् [शूल] रुजायां

सङ्घाते च (पीड़ा और समूह) शूलति [तूल] निष्कर्षे (बाहर निकालना) तूलति । तुतूल [पूल] सङ्घाते । पूलति । पुपूल [मूल] प्रतिष्ठायाम् । मूलति । [फल] निष्पत्तौ (सिद्ध होना] फलति । पफाल । फेलतुः । फेलुः (१६४) अफालीत् (१८६) [चुल्ल] भावकरणे (अभिप्राय जनाना) चुल्लति । चुचुल्ल [फुल्ल] विकसने (फूलना) फुल्लति । पुफुल्ल [चिल्ल] शैथिल्ये भावकरणे च (शिथिलता और अभिप्रायजनाना) चिल्लति। चिचिल्ल। चिल्लिता। चिल्लिष्यति। चिल्लिषति । चिल्लिषाति । चिल्लतु । अचिल्लत् । चिल्लेत् । चिल्ल्यात् । अचिल्लीत्। अचिल्लिष्यत् [तिल] गतौ। तेलति। तितेल। तितिलतुः। तेलिता। तेलिष्यति। तेलिषति। तेलिषाति। तेलतु। अतेलत्। तेलेत्। तिल्यात्। अतेलीत्। अतेलिष्यत् [तिल्ल] इत्यन्ये। तिल्लति [वेल्ल, चेल्ल, केल्ल, खेल्ल, क्ष्वेल्ल, वेल्ल] चलने (चलना) वेलति। विवेल। विवेलतुः। वेलिता। वेलिष्यति। वेलिषति। वेलिषाति। वेलतु। अवेलत्। वेलेत्। वेल्यात्। अवेलीत्। अवेलिष्यत्। चेलति। चिचेल। केलति। चिकेल। खेलति। चिखेल। क्ष्वेलति। चिक्ष्वेल। वेल्लति। विवेल्ल [पेल्ल, फेल्ल, खेल्ल, शेल्ल, षेल्ल] गतौ। खेल्ल धातु दूसरी बार अर्थ भिन्न होने से पढ़ा है। पेलति। पिपेल। फेलति। पिफेल। शेलति। शिशेल। सेलति। सिषेल [स्खल] सञ्चलने (चलायमान होना) स्खलति। चस्खाल (१२४) स्खलिता। स्खलिष्यति। स्खलिषति। स्खलिषाति। स्खलतु। अस्खलत्। स्खलेत्। स्खल्यात्। अस्खालीत् (१८६) अस्खलिष्यत् [खल] संचये। खलति। चखाल। अखालीत् [गल] अदने (खाना) गलति। जगाल। अगालीत् [षल] गतौ। सलति। ससाल। सेलतुः। सेलुः। असालीत् [दल] विशरणे (मारना) दलति। ददाल। देलतुः। दलिता। दलिष्यति। दालिषति। दालिषाति। दलतु अदलत्। दलेत्। दल्यात्। अदालीत्। अदलिष्यत् [श्वल, श्वल्ल] आशुगमने (शीघ्रचलना) श्वलति। शश्वाल। अश्वालीत्। श्वल्लति। शश्वल्ल [खोल्ल, खोर्ऋ] गतिप्रतिघाते (चलने से रुक जाना) खोलति। चुखोल। खोरति। चुखोर। अखोलीत्। अखोरीत् [धोर्ऋ] गतिचातुर्ये (चतुराई से चलना) धोरति। दुधोर। अधोरीत् [त्सर] छद्मगतौ (टेढ़ा चलना) त्सरति। तत्सार। तत्सरतुः। त्सरिता। त्सरिष्यति। त्सारिषति। त्सारिषाति। त्सरतु। अत्सरत्। त्सरेत्। त्सर्यात्। अत्सारीत् (१८६) अत्सरिष्यत् [क्मर] हूर्च्छने (कुटिलता) क्मरति। चक्मार। चक्मरतुः। अक्मारीत् [अभ्र, वभ्र, मभ्र, चर] गत्यर्थाः। अभ्रति। वभ्रति। मभ्रति। चरति। आचरति। प्रचरति। विचरति। आनभ्र। (१४७) यहां अभ्यास को

दीर्घ और उस से परे ह्विहल् धातु को नुट् का आगम (११०) इन सूत्रों से होता है। ववभ्र । आभ्रीत्। अवभ्रीत् । अमभीत् । यहां अकार के समीप रेफ के न होने से (१९६) सूत्र से वृद्धि नहीं होती। चचार । चेरतुः । चरिता। चरिष्यति। चारिषति। चारिषति। चरतु। अचरत्। चरेत्। चर्य्यात्। अचारीत् (१९६) अचरिष्यत् [चर] भक्षणे च। चर धातु का यह दूसरा अर्थ होने से पुनः पढ़ा है [ष्ठिवु] निरसने (थूकना) इस धातु के आदि षकार को (१५२) वार्त्तिक से सकार नहीं होता और (१८६) सूत्र से इकार को दीर्घ होकर । ष्ठीवति । तिष्ठेव । तिष्ठिवतुः । तिष्ठिवुः । और इस धातु का दूसरा वर्ण किन्हीं आचार्यों के मत में ठकार ही है अर्थात् जब ठकार है तो षोपदेश नहीं और जब थकार है तब षोपदेश है ठकार पक्ष में । टिष्ठेव । टिष्ठिवतुः । टिष्ठिवुः । इत्यादि प्रयोग अभ्यास ही में विशेष होंगे। टिष्ठेविथ । टिष्ठिवथुः । टिष्ठिव । टिष्ठेव । टिष्ठिविव । टिष्ठिविम । ष्ठेविता। ष्ठेविष्यति। ष्ठेविषति। ष्ठेविषाति। ष्ठीवति। ष्ठीवाति । ष्ठीवतु । अष्ठीवत् । ष्ठीवेत् ॥ १९६ ॥

१९७—हलि च ॥ अ० ॥ ८ । २ । ७७ ॥

हल् प्रत्याहार में कोई वर्ण परे हो तो रेफान्त और वकारान्त धातु की उपधा जो इक् उस को दीर्घ आदेश होवे। ष्ठिव्+यासुट्+सुट्+तिप्=ष्ठीव्यात्। यहां यासुट् का यकार हल्प्रत्याहार में है। अष्ठेवीत्। अष्ठेविष्टाम्। अष्ठेविष्यत् [जि] जये (उन्नति को प्राप्त होना) यह धातु अनिट् और अकर्मक है। क्योंकि इवर्णान्तों में जो सेट् पढ़े हैं उन में इस का पाठ नहीं । और इस धातु का स्वार्थ कर्त्ता से भिन्न अन्य किसी में नहीं घटता इस कारण अकर्मक है । जि+शप्+तिप्= जयति (२१) सूत्र से गुण और अय् आदेश होता है । जयतः। जयन्ति ॥ १९७ ॥

१९८—सन्लिटोर्जेः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ५७ ॥

सन् और लिट् प्रत्यय परे हों तो जि धातु के अभ्यास से परे उत्तरभाग को कवर्गादेश हो। जि–णल् । इस अवस्था में प्रथम (६०) सूत्र से वृद्धि हो कर द्वित्व होता है । जै+जै+णल्=जिगाय । यहां परभाग के जकार को गकार हो जाता है । जिग्यतुः । जिग्युः (१५६) सूत्र से यणादेश होता है। जिगेथ (१५७) सूत्र से थल् में इट् का निषेध और । जिगयिथ (१४८) सूत्र से भारद्वाज के मत में ऋकारान्तों के निषेध का नियम होने से इडागम हो जाता है । जिग्यथुः । जिग्य । जिगाय (१४३) जिगय । जिग्यिव । जिग्यिम । (लुट्) जेता जेतारौ । जेतारः । जेतासि । जेतास्थः । जेतास्थ । जेतास्मि । जेतास्वः । जेतास्मः । (लृट्) जेष्यति । जेष्यतः । जेष्यन्ति । जेष्यसि । जेष्यथः । जेष्यथ । जेष्यामि ।

जेष्याव: । जेष्याम: । (लेट्) जैषति । जैषाति । जैषत् । जैषात् । जैषद् । जैषाद् । जेषति । जेषाति । जेषत् । जेषात् । जेषद् । जेषाद् । जयति । जयाति । जयत् । जयात् । जयद् । जयाद् । इत्यादि । इसी प्रकार तस् आदि में जानो । जयतु । जयतात् । जयताम् । जयन्तु । जय । जयतात् । जयतम् । जयत । जयानि । जयाव । जयाम । अजयत् । अजयताम् । अजयन् । अजय: । अजयतम् । अजयत । अजयम् । अजयाव । अजयाम । जयेत् । जयेताम् । जयेयु: । जये: । जयेतम् । जयेत । जयेयम् । जयेव । जयेम । (१६०) सूत्र से दीर्घ हो कर । जीयात् । जीयास्ताम् । जीयासु: । जीया: । जीयास्तम् । जीयास्त । जीयासम् । जीयास्व । जीयास्म । अट् + जि + सिच् + तिप् = अजैषीत् (१५८) सूत्र से इकार को वृद्धि हो जाती है । अजैष्टाम् । अजैषु: । अजैषी: । अजैष्टम् । अजैष्ट । अजैषम् । अजैष्व । अजैष्म । अजेष्यत् । अजेष्यताम् । अजेष्यन् [जीव] प्राणधारणे (प्राणों का धारण करना) जीवति । जिजीव । जीविता । जीवष्यति । जीविषति । जीविषाति । जीवतु । अजीवत् । जीवेत् । जीव्यात् । अजीवीत् । अजीविष्यत् । जीव धातु के गुरूपध होने से (५१) सूत्र से गुण नहीं होता [पीव, मीव, तीव, णीव,] स्थौल्ये (मोटापन) पीवति । मीवति । तीवति । नीवति ॥ [चिवु, च्वेवु,] निरसने (फेंकना) चेवति । चिचेव । चिच्चिवतु: । चिच्चिवु: । चेविता । चेविष्यति । चेविषति । चेविषाति । च्वेवतु । अच्वेवत् । च्वेवेत् । चीव्यात् (१८७) सूत्र से वकार की उपधा को दीर्घ होता है । च्येव्यात् । अच्वेवीत् । अच्वेविष्यत् [उर्वी, तुर्वी, थुर्वी, दुर्वी, धुर्वी,] हिंसार्था: (१२०) सूत्र से रेफ की उपधा उकारों को दीर्घ आदेश हो जाता है । ऊर्वति । ऊर्वाञ्चकार ऊर्वाञ्चक्रतु: । ऊर्वाञ्चक्रु: । ऊर्वाञ्चकर्थ । ऊर्वाम्बभूव । ऊर्वामास । ऊर्विता । ऊर्विष्यति । ऊर्विषति । ऊर्विषाति । ऊर्वतु । और्वत् । ऊर्वेत् । ऊर्व्यात् । और्वीत् । और्विष्यत् । तूर्वति । तुतूर्व । तुथूर्व । दूर्वति । दुदूर्व । धूर्वति । दुधूर्व । [गुर्वी] उद्यमने (उद्यम) गूर्वति । जुगूर्व । [मुर्वी] बन्धने (बांधना) मूर्वति । मुमूर्व [पुर्व, पर्व, मर्व] पूरणे (पूरा होना) पूर्वति । पुपूर्व । पर्वपि । पपर्व । पर्विता । पर्विष्यति । पर्विषति । पर्विषाति । पर्वतु । अपर्वत् । पर्वेत् । अपर्वीत् । अपर्विष्यत् [चर्व] अदने (खाना) चर्वति । चचर्व [भर्व] हिंसायाम् । भर्वति । बभर्व [कर्व, खर्व, गर्व] दर्पे (अहंकार करना) कर्वति । चकर्व । खर्वति । चखर्व । गर्वति । जगर्व । [अर्व, शर्व, षर्व] हिंसायाम् । अर्वति । आनर्व । आनर्वतु: । शर्वति । सर्वति । [इवि] व्याप्तौ (व्याप्त होना) इन्वति । इस धातु में नुम् के नकार को परसवर्ण की प्राप्ति न होने से वकार में मिलजाता है । इन्वाञ्चकार । इन्वाम्बभूव ।

इन्वामास । इन्विता । इन्विष्यति । इन्विषति । इन्विषाति । इन्वतु । ऐन्वत् । इन्वेत् । इन्व्यात् । ऐन्वीत् । ऐन्विष्यत [पिवि, मिवि, णिवि] सेवने सेचने च (सेवनकरना और सींचना) पिन्वति । पिपिन्व । मिन्वति । मिमिन्व । निन्वति । निनिन्व [हिवि, दिवि, धिवि, जिवि] प्रीणनार्थाः (तृप्ति होना) हिन्वति । जिहिन्व । दिन्वति । दिदिन्व । दिन्विता । दिन्विष्यति । दिन्विषति । दिन्विषाति । दिन्वतु । अदिन्वत् । दिन्वेत् । दिन्व्यात् । अदिन्वीत् । अदिन्विष्यत् ॥ १९८ ॥

१९९—धिन्विकृण्व्योर च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८० ॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक प्रत्यय परे हों तो धिन्वि और कृण्वि धातु से उप्रत्यय और इन धातुओं को अकार आदेश हो जावे । अकार आदेश सामान्य विधान होने से अलोऽन्त्य परिभाषा के बल से अन्त्य अल् वकार के स्थान में होता है और यह उ प्रत्यय शप् का अपवाद है । उ प्रत्यय को तिङ् और शित् से भिन्न होने के कारण (४९) आर्द्धधातुक संज्ञा होती है । धि—न्—अ—उ (१७२) सूत्र से अकार का लोप हो कर । धिन्—उ—तिप् । इस अवस्था में उ (आर्द्धधातुक) प्रत्यय को मान के धि के इकार को (५१) गुण प्राप्त है सो (अचः परस्मिन् पूर्वविधौ) इस परिभाषा सूत्र से अकारलोप के स्थानिवत् होने से गुण नहीं होता फिर उप्रत्यय को (२१) सूत्र से गुण हो कर । धिन्+उ+तिप्=धिनोति । धिन्+उ+तस्=धिनुतः । यहां (८७) सूत्र से तस् को ङित् संज्ञा हो कर (४५) से गुण का निषेध होता है । धिन्वन्ति । धिनोषि । धिनुथः । धिनुथ । धिनोमि ॥ १९९ ॥

२००—लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०७ ॥

संयोग जिस के पूर्व न हो ऐसा जो प्रत्यय का उकार उस का विकल्प करके लोप हो व और म परे हों तो । धिनु+वस्=धिन्वः । धिन्मः । धिनुवः । धिनुमः । दिधिन्व । दिधिन्वतुः । धिन्विता । धिन्विष्यति । धिन्विषति । धिन्विषाति । धिनवति । धिनवाति । यहां (२१) गुण हो कर ओकार को अट् आट् निमित्त अव् आदेश होता है । धिनोतु । धिनुतात् । धिनुताम् । धिन्वन्तु ॥ २०० ॥

२०१—उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०६ ॥

संयोगी अत्तर जिस के पूर्व न हों ऐसा जो प्रत्यय का उकार तदन्त अङ्ग से परे जो हि उस का लुक् होवे । धिनु+हि=धिनु । धिनुतात् । धिनुतम् । धिनुत । धिनु+मिप्=धिनवानि । यहां (७२) से (नि) आदेश और (११८) से आट् का आगम पित् होकर वस् मस् में भी गुण होजाता है । धिनवाव ।

धिनवाम । अधिनोत् । अधिनुताम् । अधिन्वन् । अधिनोः । अधिनुतम् । अधिनुत । अधिनवम् । अधिन्व । अधिनुव । अधिन्म । अधिनुम । विधिलिङ् में अदन्त अङ्ग से परे यासुट् के न होने से (८१) से इय् आदेश नहीं होता। धिनुयात् । धिनुयाताम् । धिनुयुः । धिनुयाः । धिनुयातम् । धिनुयात । धिनुयाम् । धिनुयाव । धिनुयाम । और यहां (७८) से यासुट् के ङित् होने से (४५) से गुण का निषेध होता है और आशिष्लिङ् को (८४) आर्द्धधातुक संज्ञा होने से उ प्रत्यय नहीं होता । धिन्व्यात् । धिन्व्यास्ताम् । धिन्व्यासुः । अधिन्वीत् । अधिन्विष्टाम् । अधिन्विषुः । अधिन्विष्यत् । जिन्वति । जिजिन्व । जिन्विता । जिन्विष्यति । जिन्विषति । जिन्विषाति । जिन्वतु । अजिन्वत् । जिन्वेत् । जिन्व्यात् । अजिन्वीत् । अजिन्विष्यत् [रिवि, रवि, धवि] गत्यर्थाः । रिण्वति । रिरिण्व । रण्वति । ररण्व । यहां नुम् के नकार को णत्व होता है । धन्वति । दधन्व [कृवि] हिंसाकरणयोश्च (हिंसा और करना) चकार से यह धातु गत्यर्थ भी है । और धिवि धातु में जो सूत्र लगते हैं वे सब इस में भी जानो परन्तु ॥ २०१ ॥

२०२—वा०—ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम् ॥ ८ । ४ । १ ॥

ऋवर्ण से परे जो नकार उस को णकार आदेश सामान्य से अट् कवर्ग, पवर्ग, आङ् और नुम् के व्यवधान में भी हो । इस वार्त्तिक से नुम् के नकार को सर्वत्र ऋकार से परे णत्व होता है । कृ+नुम्+व्+उ+तिप्=कृणोति । कृणुतः । कृण्वन्ति । कृणोषि । कृणुथः । कृणुथ । कृणोमि । कृण्वः । कृणुवः । कृण्मः । कृणुमः । चकृण्व । चकृण्वतुः । कृण्विता । कृण्विष्यति । कृण्विषति कृण्विषाति । कृणवति । कृणवाति । कृणोतु । अकृणोत् । अकृण्व । अकृणुव । अकृण्म । अकृणुम । कृणुयात् । कृण्व्यात् । अकृण्वीत् । अकृण्विष्यत् [मव] (बन्धने) बांधना मवति । ममाव । मेवतुः । मेवुः । मविता । मविष्यति । माविषति । माविषाति । मवतु । अमवत् । मवेत् । मव्यात् । अमावीत् । अमवीत् । अमविष्यत् । [अव] रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनक्रियेच्छादीप्त्यवाप्त्या-लिङ्गनहिंसादानभागवृद्धिषु (गति, रक्षा, शोभा, प्रीति, तृप्ति, बोधहोना, प्रवेश करना, सुनना, अध्यक्षका कार्य साधना, मांगना, चेष्टा, इच्छा, प्रकाश, प्राप्ति, लिपटना, हिंसा, देना, विभाग करना और बढ़ाना) अवति । आव । आवतुः । आवुः । अविष्यति । आविषति । आविषाति । अवतु । आवत् । अवेत् । अव्यात् । आवीत् । आविष्यत् ॥ इति मव्यादाय उदात्ता उदात्तेतो जयति वर्ज परस्मैभाषाः षष्ठवतिः । ये ९६ मव्य आदि धातु समाप्त हुए ॥

[धावु] गतिशुद्ध्योः (गति और शुद्धि) यह धातु स्वरितेत् है अर्थात् इस का अन्त्य वर्ण स्वरित इत्संज्ञक होता है (१०३) सूत्र से क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो आत्मनेपद अन्यत्र परस्मैपद होता है । इस लिये उभयपद के प्रयोग होते हैं । धावते। धावेते । धावन्ते। धावति । धावतः। धावन्ति। दधावे। दधाव । धाविताहे । धावितास्मि। धाविष्यते। धाविष्यति। धाविषते। धाविषाते। धाविषति । धाविषाति । धावताम् । धावतु । अधावत । अधावत् । धावेत। धावेत्। धाविषीष्ट। धाव्यात्। अधाविष्ट। अधावीत्। अधाविष्यत। अधाविष्यत् ॥

अथोष्मान्ता आत्मनेपदिनो द्विपञ्चाशत् । अब ऊष्मान्त अर्थात् श, ष, स, ह, ये वर्ण जिन के अन्त में हों ऐसे ५२ (बावन) धातु कहते हैं [धुक्ष, धिक्ष] सन्दीपनक्लेशनजीवनेषु (प्रकाश, दुःख और जीवन) धुक्षते । दुधुक्षे । धिक्षते । दिधिक्षे । धुक्षिताहे । धुक्षिष्यते । धुक्षिषते । धुक्षिषाते । धुक्षताम् । अधुक्षत । धुक्षेत । धुक्षिषीष्ट । अधुक्षिष्ट । अधुक्षिष्यत [वृक्ष] वरणे (ग्रहण करना) वृक्षते । ववृक्षे। [शिक्ष] विद्योपादाने (विद्या का ग्रहण करना) शिक्षते । शिशिक्षे [भिक्ष] भिक्षायामलाभे लाभे च (भीख मांगना मिले वा न मिले) भिक्षते । बिभिक्षे । [क्लेश] अव्यक्तायां वाचि बाधन इत्यन्ये (अस्पष्ट बोलना) और किसी २ के मत में दुःख देने अर्थ में भी है। क्लेशते । चिक्लेशे। क्लेशितासे । क्लेशिष्यते। क्लेशिषते । क्लेशिषाते। क्लेशताम्। अक्लेशत । क्लेशेत । क्लेशिषीष्ट । अक्लेशिष्ट। अक्लेशिष्यत [दक्ष] वृद्धौ शीघ्रार्थे च (बढ़ना और शीघ्रता करना) दक्षते । ददक्षे [दीक्ष] मौण्ड्येज्योपनयननियमव्रतादेशेषु (मुण्डन, यज्ञ, यज्ञोपवीत धारण, नियम, सत्य भाषण आदि वा चान्द्रायण आदि तथा ब्रह्मचर्य्यादि का उपदेश) दीक्षते । दिदीक्षे [ईक्ष] दर्शने (विचार पूर्वक देखना) ईक्षते । ईक्षाञ्चक्रे । ईक्षाम्बभूव । ईक्षामास [ईष] गतिहिंसादर्शनेषु (गति, हिंसा, और देखना) ईषते । ईषाञ्चक्रे । ईषाम्बभूव । ईषामास । ईषितासे । ईषिष्यते । ईषिषते । ईषिषाते । ईषताम् । ऐषत । ईषेत । ईषिषीष्ट । ऐषिष्ट । ऐषिष्यत [भाष] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) भाषते । बभाषे । भाषिता । भाषिष्यते । भाषिषते । भाषिषाते । भाषताम् । अभाषत । भाषेत । भाषिषीष्ट । अभाषिष्ट । अभाषिष्यत [वर्ष] स्नेहने (चिकनाई) वर्षते । ववर्षे [गेषृ] अन्विच्छायाम् (खोजना) गेषते । जिगेषे [ग्लेषृ] इत्येके । ग्लेषते । जिग्लेषे [पेषृ] प्रयत्ने । पेषते । पिपेषे । पेषिता । पेषिष्यते । पेषिषते । पेषिषाते । पेषताम् । अपेषत । पेषेत । पेषिषीष्ट । अपेषिष्ट । अपेषिष्यत [जेषृ, णेषृ, एषृ, प्रेषृ,] गतौ । जेषते । नेषते । एषते । एषाञ्चक्रे । एषाम्बभूव एषामास । प्रेषते [रेषृ, हेषृ, ह्रेषृ] अव्यक्ते शब्दे (गड़बड़ शब्द होना) रेषते ।

दिरेपे । ह्रेषते । जिह्रेषे । ह्रेषते । जिह्रेषे [कासृ] शब्दकुत्सायाम् (निन्दित शब्द का होना) कासते । कासाञ्चक्रे । कासाम्बभूव । कासामास (१६८) (१७०) सूत्र वार्त्तिकों से यहां आम् प्रत्यय होता है । कासितासे । कासिष्यते । कासिषते । कासिषातै । कासताम् । अकासत । कासेत । कासिषीष्ट । अकासिष्ट । अकासिष्यत [भासृ] दीप्तौ । भासते । बभासे [णासृ,रासृ] शब्दे । नासते । रासते । ररासे । रासितासे । रासिष्यते । रासिषते । रासिषातै । रासताम् । अरासत । रासेत । रासिषीष्ट । अरासिष्ट । अरासिष्यत [णस] कौटिल्ये (कुटिलता) नसते । नेसे । नेसाते [भ्यस] भये (डरना) भ्यसते । बभ्यसे [आङ:शसि] इच्छायाम् । इस धातु के पूर्व आङ् उपसर्ग इस लिये पढ़ा है कि इसी आङ् उपसर्ग का नियम रहे अन्य उपसर्ग इस के पूर्व न लगे । आशंसते । आशशंसे । आशंसिता । आशंसिष्ट [ग्रसु,ग्लसु] अदने (खाना) ग्रसते । ग्लसते । जग्रसे । जग्लसे । ग्रसिता । ग्रसिष्यते । ग्रासिषते । ग्रासिषातै । ग्रसताम् । अग्रसत । ग्रसेत । ग्रसिषीष्ट । अग्रसिष्ट । अग्रसिष्यत [ईह] चेष्टायाम् (क्रिया) ईहते । ईहाञ्चक्रे । ईहाम्बभूव । ईहामास । ईहितासे । ईहिष्यते । ईहिषते । ईहिषातै । ईहताम् । ऐहत । ईहेत । ईहिषीष्ट । ऐहिष्ट । ऐहिष्यत [वहि, महि] वृद्धौ (बढ़ना) वंहते । मंहते । ववंहे । वंहिता । वंहिष्यते । वंहिषते । वंहिषातै । वंहताम् । अवंहत । वंहेत । वंहिषीष्ट । अवंहिष्ट । अवंहिष्यत [अहि] गतौ । अंहते । आनंहे । आनंहाते । अंहिता । अंहिष्यते अंहिषते । अंहिषातै । अंहताम् । आंहत । अंहेत । अंहिषीष्ट । आंहिष्ट आंहिष्यत [गर्ह,गल्ह] कुत्सायाम् (निन्दा) गर्हते । गल्हते । जगर्हे । जगल्हे [बर्ह,बल्ह] प्राधान्ये (श्रेष्ठता) बर्हते । बबर्हे । बल्हते । बबल्हे [वर्ह, वल्ह परिभाषणहिंसाच्छादनेषु (बहुत बोलना, हिंसा, और दबाना) वर्हते । वल्हते पूर्व दोनों धातुओं और इन दोनों में इतना ही भेद है कि पहिले दोनों में पवर्ग बकार और इन दोनों में यवर्गी है [प्लिह] गतौ (चलना) प्लेहते । पिप्लिहे प्लेहिता । प्लेहिष्यते । प्लेहिषते । प्लेहिषातै । प्लेहताम् । अप्लेहत । प्लेहेत । प्लेहिषीष्ट अप्लेहिष्ट । अप्लेहिष्यत [वेहृ, जेहृ, वाहृ] प्रयत्ने (पुरुषार्थ) वेहते । विवेहे विवेहिढ्वे । विवेहिध्वे । वेहिता । वेहिष्यते । वेहिषते । वेहिषातै । वेहताम् अवेहत । वेहेत । वेहिषीष्ट । वेहिषीढ्वम् । वेहिषीध्वम् । अवेहिष्ट । अवेहिढ्वम् अवेहिध्वम् । अवेहिष्यत । जेहते । जिजेहे । अजेहिष्ट । वाहते । ववाहे [द्राहृ निद्राक्षये (जागना) द्राहते । दद्राहे । दद्राहिढ्वे । दद्राहिध्वे । द्राहितासे द्राहिषते । द्राहिषातै । द्राहताम् । अद्राहत । द्राहेत । द्राहिषीष्ट अद्राहिष्ट । अद्राहिढ्वम् । अद्राहिध्वम् । अद्राहिष्यत । निक्षेपइत्यन्ये । किन्न

ोगों के मत में यह धातु किसी के निकट धन रखने अर्थ में है [काशृ] दीप्ती
प्रकाश होना) काशते । चकाशे । काशितासे । काशिष्यते । काशिषते । का-
शषाते । काशताम् । अकाशत। काशेत । काशिषीष्ट । अकाशिष्ट। अकाशिष्यत
ऊह] वितर्के (अनेक प्रकार के तर्क उठाना) ऊहते । ऊहाञ्चक्रे । ऊहाम्बभूव ।
हामास । ऊहिता । ऊहिष्यते । ऊहिषते । ऊहिषाते । ऊहताम् । औहत ।
हेत । ऊहिषीष्ट । औहिष्ट । औहिढ्वम् । औहिध्वम् । औहिष्यत [गाहू]
लोडने (विलोना) यह भी धातु ऊदित् है । गाहते । गाहेते । गाहन्ते । गाहसे ।
ाहेथे । गाहध्वे । गाहे । गाहावहे । गाहामहे। जगाहे । जगाहाते । जगाहिरे।
गाहिषे । और जिस पक्ष में (१४०) इट् नहीं होता वहां । जगाह्–से ।
स अवस्था में ॥ २०२ ॥

२०३—हो ढः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३१ ॥

झल् जिस से परे हो वा पदान्त में जो हकार उस को ढकार आदेश हो ।
हां गाह धातु के हकार को ढकार होकर ॥ २०३ ॥

२०४—एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३७ ॥

झलादि स और ध्व परे हों तो वा पदान्त में धातु का अवयव जो झषन्त
काच् बश् प्रत्याहार में कोई वर्ण हो उस को भष् आदेश हो । यहां गाह् धातु
(बश्) गकार को (भष्) घकार होजाता है । बश् प्रत्याहार में (ब,ग,ड,द)
ार वर्ण हैं और भष् प्रत्याहार में भी (भ,घ,ढ,ध) चार वर्ण हैं इन का यथा-
ख्य क्रम तो लगता है परन्तु (ड) स्थानी के न होने से ढ आदेश कहीं नहीं
ाता । अब । जघाढ्–से । इस अवस्था में ॥ २०४ ॥

२०५—षढोः कः सि ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४१ ॥

सकारादि प्रत्यय परे हो तो षकार और ढकार को ककार आदेश हो जावे
हां ढकार होकर । जघाक्+से=जघाक्षे (५६) से षत्व होजाता है और
सी ककार षकार के संयोग को (च) बोलते हैं । परन्तु यह लिखने और
ोलने की परिपाटी यथार्थ नहीं । ठीक तो यही है कि लिखने और बोलने में
क्–ष्) के स्वरूप स्पष्ट विदित हों । जगाहाथे । जगाहिढ्वे (१८१) जगाहिध्वे ।
ौर जिस पक्ष में (१४०) से इट् का आगम नहीं होता वहां । जघाढ्–ध्वे ।
स अवस्था में तवर्ग ध्वे के धकार को ढकार होजाता है पीछे ॥ २०५ ॥

२०६—ढो ढे लोपः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १३ ॥

ढकार का लोप हो ढकार परे हो तो इस से गाह् धातु के ढकार का लोप हो कर । जगाढ्वे । जगाहे । जगाहिवहे । जगाह्वहे । जगाहिसहे । जगाह्महे । (लुट्) गाहिता । गाहितारौ । गाहितारः । गाहितासे । अनिट् पक्ष में । गाह्+तास्+डा=गाढा । यहां (१४१) से तास् के तकार को धकार और (२०३) ढत्व (ष्टुना ष्टुः) से धकार को ढकार और प्रथम ढकार का (२०६) लोप होता है । गाढारौ । गाढारः । गाढासे । गाढासाथे । गाढाध्वे । गाढाहे । गाढास्वहे । गाढास्महे । गाहिष्यते । गाहिष्येते । गाहिष्यन्ते । अनिट् पक्ष में । गाह्+स्य+ते । घाक्ष्यते । घाक्ष्येते । घाक्ष्यन्ते । गाहिषतै । गाहिषातै । गाह्+स्+अट्+त= घाक्षतै । घाक्षातै । गाहतै । गाहातै । गाहतै । गाहातै । गाहताम् । अगाहत । गाहेत । गाहिषीष्ट । घाक्षीष्ट । गाहिषीढ्वम् । गाहिषीध्वम् । घाक्षीध्वम् । अगाहिष्ट । अगाहिषाताम् । अगाहिषत । अनिट् पक्ष में । अट्+गाह्+सिच्+त=अगाढ । यहां (१४२) से सिच् के सकार का लोप (१४१) से तकार को धकार और पूर्वोक्त रीति से सब काम जानो । अगाह्+सिच्+आताम्=अघाक्षाताम् । अघाक्षत । अगाह्+सिच्+थास्=अगाढाः । अघाक्षाथाम् । अगाहिढ्वम् । अगाहिध्वम् । अघाढ्वम् । अघाक्षि । अघाक्ष्वहि । अघाक्ष्महि । अगाहिष्यत । अघाक्ष्यत । अघाक्ष्येताम् । अघाक्ष्यन्त [ग्लृह] ग्रहणे (ग्रहण) गर्हते । जग्लृहे । जग्लृहाते । जग्लृहिरे । यह भी धातु ऊदित् है और गाह् के समान सब काम हकारान्त के होंगे । जग्लृहिषे । जघृक्षे । जग्लृहाथे । जग्लृहिढ्वे । जग्लृहिध्वे । जघृढ्वे । जग्लृहे । जग्लृहिवहे । जग्लृह्वहे । जग्लृहिमहे । जग्लृह्महे । गर्हितासे । गर्ढा । गर्ढारौ । गर्ढारः । गर्ढासे । गर्हिष्यते । घर्क्ष्यते । घर्क्ष्येते । घर्क्ष्यन्ते । गर्हिषतै । गर्हिषातै । घर्क्षतै । घर्क्षातै । गर्हतै । गर्हातै । गर्हताम् । अगर्हत । गर्हेत । गर्हिषीष्ट । घृक्षीष्ट (१६३) कित्वत् हो जाने से गुण नहीं होता । गर्हिषीढ्वम् । गर्हिषीध्वम् । घृक्षीध्वम् । अगर्हिष्ट । अगर्हिषाताम् । अगर्हिषत । अनिट् पक्ष में । अट्—ग्लृह्—च्लि—त । इस अवस्था में ॥ २०६ ॥

२०७—शल इगुपधादनिटः क्सः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४५ ॥

इक् जिस की उपधा में हो ऐसा जो शलन्त धातु उस से परे जो च्लि प्रत्यय उस के स्थान में क्स आदेश हो । यह सूत्र (८८) का अपवाद है । क्स में से

ककार की इत्संज्ञा हो कर । अट्+गृह्+स+त=अघृक्षत । अट्–गृह्–स–आताम् । इस अवस्था में ॥ २०७ ॥

२०८—क्सस्याचि ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७२ ॥

क्स प्रत्यय का लोप हो अजादि प्रत्यय परे हो तो । यहां लोप रूप आदेश अन्त्य अल् के स्थान में होता है । अट्+गृह्+स्+आताम्=अघृक्षाताम् । अघृक्षन्त । अघृक्षथाः । अघृक्षाथाम् । अगर्हिढ्वम् । अगर्हिध्वम् । अघृच-ध्वम् । अट्+गृह्+क्स+इट्=अघृक्षि । यहां भी अजादि इट् प्रत्यय के परे क्स के अकार का लोप होजाता है । अघृक्षावहि । अघृक्षामहि । अगर्हिष्यत । अघर्क्ष्यत [ग्लह] च । यह धातु भी ग्रहण अर्थ में हो है । ग्लहते । जग्लहे । ग्लहिता । ग्लहिष्यते । ग्लाहिषते । ग्लाहिषाते । ग्लहताम् । अग्लहत । ग्लहेत । ग्लहिषीष्ट । अग्लहिष्ट । अग्लहिष्यत [घुषि] कान्ति करणे (इच्छा करना) घुंषते । जुघुंषे । घुंषिता । घुंषिष्यते । घुंषिषते । घुंषिषाते । घुंषताम् । अघुंषत । घुंषेत । घुंषिषीष्ट । अघुंषिष्ट । अघुंषिष्यत । इति घुषादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषा द्विपंचाशत् समाप्ताः । ये घुष आदि आत्मनेपदी ५२ (बावन) धातु समाप्त हुए ॥

अथ परस्मैपदिनः पञ्चनवतिः । अब ९५ (पचानवे) धातु परस्मैपदी कहते हैं [घुषिर्] अविशब्दने । इस शब्द में से तीन प्रकार का अर्थ होता है एक तो विशब्दन (प्रतिज्ञा) उस का निषेध,दूसरा अवि (भेड़) का शब्द होना और तीसरा वि (पक्षी) के शब्द का निषेध अर्थात् अन्य प्राणी का शब्द होना । घोषति । जुघोष । घोषितासि । घोषिष्यति । घोषिषति । घोषिषाति । घोषतु । अघोषत् । घोषेत् । घुष्यात् । और इस धातु में इर् भाग की इत्संज्ञा होती है । इस कारण (१३८) से च्लि के स्थान में अङ् विकल्प करके होता है । अघुष्+अङ्+तिप्=अघुषत् । अघुषताम् । अघुषन् । अघुषः । अघुषतम् । अघुषत । अघुषम् । अघुषाव । अघुषाम । सिच् पक्ष में । अघोषीत् । अघोषिष्टाम् । अघो-षिषुः । अघोषिष्यत् [अक्षू] व्याप्तौ (व्यापकता) ॥ २०८ ॥

२०९—अक्षोऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७५ ॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हो तो अक्षू धातु से श्नु प्रत्यय विकल्प करके होवे । यह सूत्र (१९) का अपवाद है । इस कारण पक्ष में शप् ही होता है । श्नु प्रत्यय के शकार की इत्संज्ञा हो के । अक्ष्+नु+तिप्=अक्ष्णोति । यहां नु के उकार को (२१) गुण होता है । अक्ष्णुतः । अक्ष्णुवन्ति । यहां (१५९) से

श्नु प्रत्यय को उवङ् आदेश होता है । अक्ष्णोषि । अक्ष्णुथः । अक्ष्णुथ । अक्ष्णोमि । अक्ष्णुवः । अक्ष्णुमः (२००) संयोग पूर्व होने से उकार का लोप विकल्प से नहीं होता । जिस पक्ष में श्नु प्रत्यय नहीं होता वहां शप् । अक्षति । अक्षतः । अक्षन्ति । आनक्ष । आनक्षतुः । आनक्षुः । यह भी धातु ऊदित् है इस कारण इट् का विकल्प होता है । आनक्षिथ । अनिट् पक्ष में । आनक्ष्–थल् । इस अवस्था में ॥ २०९ ॥

२१०—स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ॥ अ० ॥ ८ । २ । २९ ॥

पदान्त में वा झल् जिस से परे हो ऐसा जो संयोग उस की आदि के जो स्, और क् हैं उन का लोप होवे यहां संयोग की आदि ककार है और झल् थकार परे है उस (क्) का लोप हो कर थल् के थकार को (ष्टुना ष्टुः) सूत्र से ठकार हो जाता है । आनष्ठ । आनक्षथुः । आनक्ष । आनक्षिव । आनक्ष्व । आनक्षिम । आनक्ष्म । अक्षिता । अक्षितारौ । अनिट् पक्ष में । अक्ष्+तास्+डा=अष्टा । अष्टारौ । अष्टारः । अक्षिष्यति । अक्ष्–स्य–तिप् । यहां (२१०) संयोगादि ककार का लोप, मूर्द्धन्य ष् को (२०५) क् और षत्व होकर । अक्ष्यति । अक्ष्यतः । अक्ष्यन्ति । अक्षिषति । अक्षिषाति । अक्षति । अक्षाति । अक्ष्णवति । अक्ष्णवाति । इत्यादि । अक्ष्णोतु । अक्ष्णुतात् । अक्ष्णुताम् । अक्ष्णुवन्तु (१५९) अक्ष्णुहि । यहां संयोग पूर्वक उकार के होने से हि का लुक् (२०१) नहीं होता । अक्ष्णुतात् । अक्ष्णुतम् । अक्ष्णुत । अक्ष्णवानि । अक्ष्णवाव । अक्ष्णवाम । यहां आट् के आगम के पित् (११८) होने से श्नु को गुण हो जाता है । अक्षतु । आक्ष्णोत् । आक्ष्णुताम् । आक्ष्णुवन् । आक्ष्णोः । आक्ष्णुतम् । आक्ष्णुत । आक्ष्णवम् । आक्ष्णुव । आक्ष्णुम । आक्षत् । अक्ष्णुयात् । अक्ष्णुयाताम् । अक्ष्णु+यासुट्+जुस्=अक्ष्णुयुः । यहां (८१) इय् आदेश की प्राप्ति न होने से (८३) सूत्र से पररूप एकादेश हो जाता है । अक्ष्णुयाः । अक्ष्णुयातम् । अक्ष्णुयात । अक्ष्णुयाम् । अक्ष्णुयाव । अक्ष्णुयाम । अक्षेत् । अक्षेताम् । अक्षेयुः । अक्ष्यात् । अक्ष्यास्ताम् । अक्ष्यासुः । माभवानक्षीत् । अक्षिष्टाम् । अक्षिषुः (१३६) से वृद्धि नहीं होती और अनिट् पक्ष में तो वृद्धि (१३५) होजाती है । आक्ष्+सिच्+ईट्+तिप्=आक्षीत् । आक्ष्+सिच्+तस्=आष्टाम् । यहां संयोगादि ककार का लोप (२१०) और सिच् के सकार का लोप (१४२) होता है । अक्ष्+सिच्+जुस्=आक्षुः । यहां केवल संयोगादि ककार का लोप ही होता है । आक्ष्+सिच्+ईट्+सिप्=आक्षीः । आष्टम् । आष्ट । आक्षम् । आक्ष्व । आक्ष्म । आक्षिष्यत् । आक्ष्यत् । आक्ष्यताम् । आक्ष्यन् [तक्षू, त्वक्षू] तनूकरणे (सूक्ष्मकरना) ॥ २१० ॥

२११—तनूकरणे तक्षः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७६ ॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों तो तनू करण अर्थ में वर्त्तमान तक्ष धातु से श्नु प्रत्यय विकल्प करके हो । यह सूत्र भी शप् का ही अपवाद है । और यह धातु भी ऊदित् है इस लिये सब लकारों में इस का साधुत्व अक्षू धातु के समान जानना चाहिये । तक्ष्णोति । तक्ष्णुतः । तक्ष्णुवन्ति । तक्षति । ततक्ष । ततक्षतुः । ततक्षुः । ततक्षिथ । ततष्ठ । तक्षिता । तष्टा । तष्टारौ । तष्टारः । तक्षिष्यति । तक्ष्यति । तक्षिषति । तक्षिषाति । तक्षति । तक्षाति । तक्ष्णवति । तक्ष्णवाति । तक्ष्णोतु । तक्षतु । अतक्ष्णोत् । अतक्षत् । तक्ष्णुयात् । तक्षेत् । तक्ष्यात् । अतक्षीत् । अतक्षिष्टाम् । अतक्षिषुः । अताक्षीत् । अताष्टाम् । अताक्षुः । अतक्षिष्यत् । अतक्ष्यत् । त्वक्षू धातु के प्रयोग आर्द्धधातुक विषय में ऊदित् के होने से तक्षू के तुल्य होते हैं और सार्वधातुक में कुछ विशेष नहीं । त्वक्षति । तत्वक्ष । तत्वक्षिथ । तत्वष्ठ । त्वक्षिता । त्वष्टा । त्वक्षिष्यति । त्वक्ष्यति । त्वक्षिषति । त्वक्षिषाति । त्वक्षति । त्वक्षाति । त्वक्षतु । अत्वक्षत् । त्वक्षेत् । त्वक्ष्यात् । अत्वक्षीत् । अत्वाक्षीत् । अत्वाष्टाम् । अत्वाक्षुः । अत्वक्षिष्यत् । अत्वक्ष्यत् [उक्ष] सेचने (सींचना) उक्षति । उक्षाञ्चकार । उक्षाम्बभूव । उक्षामास । उक्षिता । उक्षिष्यति । उक्षिषति । उक्षिषाति । उक्षतु । औक्षत् । उक्षेत् । उक्ष्यात् । औक्षीत् । औक्षिष्यत् [रक्ष] पालने । रक्षति । ररक्ष । रक्षिता । रक्षिष्यति । रक्षिषति । रक्षिषाति । रक्षतु । अरक्षत् । रक्षेत् । रक्ष्यात् । अरक्षीत् । अरक्षिष्यत् । [णिक्ष] चुम्बने (चूंबना) निक्षति । निनिक्ष । [त्रक्ष,स्त्रक्ष,णक्ष] गतौ । त्रक्षति । तत्रक्ष । स्त्रक्षति । सस्त्रक्ष । नक्षति । ननक्ष । [वक्ष] रोषे (रिषाना) वक्षति । ववक्ष । वक्षिता । वक्षिष्यति । वक्षिषति । वक्षिषाति । वक्षतु । अवक्षत् । वक्षेत् । वक्ष्यात् । अवक्षीत् । अवक्षिष्यत् । सङ्घातइत्यन्ये । किन्हीं लोगों के मत में यह धातु संघात अर्थ में है [मृक्ष] सङ्घाते मृक्षति । ममृक्ष [म्रक्ष] इत्येके । किन्हो के मत में यह धातु रेफवान् है ऋकारवान् नहीं [तक्ष] त्वचने (ढापना) तक्षति [पक्ष] परिग्रह इत्येके (हठकरना) किन्ही का मत है । पक्षति । पपक्ष [सूर्क्ष्य] आदरे (मान्यकरना) सूर्क्ष्यति । सुसूर्क्ष्य । [काक्षि, वाक्षि, माक्षि] काङ्क्षायाम् (अभिलाषा) काङ्क्षति । वाङ्क्षति । माङ्क्षति [द्राक्षि, ध्राक्षि, ध्वाक्षि] घोरवाशिते च (पाप में बसना) द्राङ्क्षति । दद्राङ्क्ष । ध्राङ्क्षति । दध्राङ्क्ष । ध्वाङ्क्षति । दध्वाङ्क्ष [चूष] पाने (चूषना) चूषति । चुचूष । चूषिता । चूषिष्यति । चूषिषति । चूषिषाति । चूषतु । अचूषत् । चूषेत् । चूष्यात् । अचूषीत् । अचूषिष्यत् [तूष] तुष्टौ (सन्तोष करना) तूषति । तुतूष [पूष] वृद्धौ (बढ़ना) पूषति । पुपूष [मूष] स्तेये (चोरी)

लूषति । लुलूष [लूष, रूष,] भूषायाम् । (शोभा) लूषति । रूषति । लुलूष । रुरूष [शूष] प्रसवे (उत्पत्ति) शूषति । शुशूष [यूष] हिंसायाम् । यूषति । युयूष [जूष] च । जूषति । जुजूष [भूष] अलङ्कारे (गहना) भूषति । बुभूष । भूषिता । भूषिष्यति । भूषिषति । भूषिषाति । भूषतु । अभूषत् । भूषेत् । भूष्यात् । अभूषीत् । अभूषिष्यत् [जष] रुजायाम् (रोग) जषति । जषाञ्चकार । जषाम्बभूव । जषामास [ईष] उञ्छे (उंछना) ईषति । ईषाञ्चकार । ईषाम्बभूव । ईषामास [कष, खष, शिष, जष, झष, शष, वष, मष, रुष, रिष] हिंसार्थाः । इन सब में शिष धातु अनिट् है । कषति । चकाष । चकषतुः । कषिता । कषिष्यति । काषिषति । काषिषाति । कषतु । अकषत् । कषेत् । कष्यात् । अकाषीत् । अकषीत् । अकषिष्यत् । खषति । चखाष । शेषति । शिशेष । शिशिषतुः । शिशेषिथ । यहां (१४८) सूत्र के नियम से इट् हो जाता है नहीं तो प्राप्ति नहीं थी । शेष्टा । शेष्टारौ । शेष्टारः । शेक्ष्यति । शेक्षति । शेक्षाति । शेषति । शेषाति । शेषतु । अशेषत् । शेषेत् । शिष्यात् । अट्+शिष्+क्स+तिप्=अशिक्षत् । अशिक्षताम् । अशिक्षन् । अशिक्षः । अशिक्षतम् । अशिक्षत । अशिक्षम् । अशिक्षाव । अशिक्षाम । यहां च्लि के स्थान में क्स आदेश (२०७) से हो जाता है । अशेक्ष्यत् । जषति । जजाष । जेषतुः । जेषुः । जषिता । जषिष्यति । जाषिषति । जाषिषाति । जषतु । अजषत् । जषेत् । जष्यात् । अजाषीत् । अजषीत् । झषति । जझाष । शषति । शशाष । शेषतुः । वषति । ववाष । ववषतुः (१२८) से एत्वाभ्यासलोप का निषेध होता है । मषति । ममाष । मेषतुः । रोषति । रुरोष । रेषति । रिरेष । ये दोनों धातु सेट् ही हैं परन्तु तकारादि आर्द्धधातुक में विशेष है ॥ २११ ॥

२१२—तीषसहलुभरुषरिषः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४८ ॥

इषु, सह, लुभ, रुष, और रिष धातुओं से परे जो तादि आर्द्धधातुक उस को इट् का आगम विकल्प कर के हो । इस सूत्र में प्राप्तविभाषा इस लिये है कि सर्वत्र नित्य इट् प्राप्त है उस का विकल्प विशेष विषय में किया है । रोषिता । रोष्टा । रोष्टारौ । रोष्टारः । रेषिता । रेष्टा । रेषिष्यति । रेषिषति । रेषिषाति । रेषतु । अरेषत् । रेषेत् । रिष्यात् । अरेषीत् । अरेषिष्यत् । [भष] भर्त्सने (धमकाना) भषति । बभाष । [उष] दाहे (जलन) ओषति । ओषतः । ओषन्ति ॥ २१२ ॥

२१३—उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३७ ।

उष, विद, और जागृ धातुओं से आम् प्रत्यय विकल्प करके हो लिट् लकार परे हो तो वेद विषय को छोड़ के । यह बात सर्वत्र के लिये ध्यान में रखनी

चाहिये कि जिन २ एध आदि धातुओं से आम् प्रत्यय किया है वहां २ सर्वत्र वेद में आम् प्रत्यय का निषेध है जैसे । एध+एध+एश् । इयेधे (१५२) इत्यादि प्रयोगों की योजना वैदिक प्रयोगों में समझ लेनी चाहिये। ओषाञ्चकार। उवोष । ऊषतुः । और वेद में भी । उवोष । ही होगा । ओषिता । ओषिष्यति । ओषिषति । ओषिषाति । ओषतु । औषत् । ओषेत् । उष्यात् । औषीत् । औषिष्यत् [जिषु, विषु, मिषु] सेचने (सींचना) जेषति । जिजेष । विष धातु अनिट् है । वेषति । विवेष । विवेषिथ । विवेषिव । विवेषिम । वेष्टा । वेक्ष्यति । वेक्षति । वेक्षाति । वेषति । वेषाति । वेषतु । अवेषत् । वेषेत् । विष्यात् । अविष्+क्स+तिप्=अविक्षत् । अविक्षताम् । अविक्षन् । अवेक्ष्यत् [पुष] पुष्टौ । पुषधातु अनिट् कारिका में दिवादि गण का निर्देश किया है इस कारण यह सेट् है। पोषति । पुपोष । पोषिता । पोषिष्यति । पोषिषति । पोषिषाति । पोषतु । अपोषत् । पोषेत् । पुष्यात् । अपोषीत् । अपोषिष्यत् [श्रिषु, श्लिषु, प्रुषु, प्लुषु] दाहे । श्रेषति । श्लेषति । शिश्रेष । शिश्लेष । प्रोषति । पुप्रोष । प्लोषति । पुप्लोष । श्लिष धातु भी अनिट् व्यवस्था में दिवादि गण का ही पढ़ा है [पृषु, वृषु, मृषु,] सेचने। पर्षति । वर्षति । मर्षति । पपर्ष । पपृषतुः । पपृषुः । पर्षिता । पर्षिष्यति । पर्षिषति । पर्षिषाति । पर्षति । पर्षाति । पर्षतु । अपर्षत् । पर्षेत् । पृष्यात् । अपर्षीत् । अपर्षिष्यत् [मृषु] सहने च । इतरौ हिंसासंक्लेशनयोश्च । मृषुधातु के सहना और सींचना तथा पृषु,वृषु,धातुओं के सींचना, हिंसा और संक्लेशन तीनों अर्थ हैं [घृषु] संघर्षे (घिसना) घर्षति । जघर्ष [हृषु] अलीके (झूठ) हर्षति । जहर्ष [तुस,ह्रस,ह्लस,रस] शब्दे । तोसति । तुतोस । तोसिता । तोसिष्यति । तोसिषति । तोसिषाति । तोसतु । अतोसत् । तोसेत् । तुस्यात् । अतोसीत् । अतोसिष्यत् । ह्रसति । जह्रास । ह्लसति । जह्लास । रसति । ररास । रेसतुः । रेसुः । रसिता । रसिष्यति । रासिषति । रासिषाति । रसतु । अरसत् । रसेत् । रस्यात् । अरसीत् । अरासीत् । अरसिष्यत् [लस] श्लेषणक्रीडनयोः (मिलना और खेलना) लसति । ललास । लेसतुः [घस्लृ] अदने (खाना) घसति । जघास । जघस्-अतुस् । इस अवस्था में ॥ २१३ ॥

२१४—गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि ॥ अ० ॥ ६।४।९८॥

गम, हन, जन, खन, और घस धातुओं की उपधा अकार का लोप हो अङ्भिन्न अजादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो । यहां घकारस्थ अकार का लोप होकर (खरि च) सूत्र से घ् को (क्) करते समय (अचःपरस्मिन् पूर्वविधौ)

सूत्र से अकार को स्थानिवत् होने से चर् आदेश न हो सके सो (न पदान्त०) सूत्र से चर् विधि में स्थानिवत् का निषेध होकर चर् होता है। पीछे षत्व होकर। जक्षतुः। जक्षुः। घस्-थल्। इस अवस्था में ॥ २१४ ॥

२१५-उपदेशेऽत्वतः ॥ अ० ॥ ७। २। ६२ ॥

तास् प्रत्यय के परे नित्य अनिट् उपदेश में जो अकारवान् धातु है उस से परे जो थल् उस को इट् का आगम न हो (१४८) सूत्र के नियम से लिट् मात्र में इट् प्राप्त है उस का विशेष विषय में यह अपवाद है। जघस्थ। और भारद्वाज के मत में ऋकारान्तों को तास्वत्थल्य के नियम (१४८) से उपदेश में अकारवान् और अजन्तों को इडागम हो जाता है। जघसिथ। जक्षथुः। जक्ष। जघास। जघस। जक्षिव। जक्षिम। घस्ता। घस्तारौ। घस्तारः। घस्-स्य-तिप्। इस अवस्था में ॥ २१५ ॥

२१६—सः स्यार्द्धधातुके ॥ अ० ॥ ७। ४। ४९ ॥

सकारादि आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हों तो सकार को तकार आदेश हो। यहां घस् के सकार को तकार होकर। घत्स्यति। घत्स्यतः। घत्स्यन्ति। घत्स्यसि। घात्सति। घात्साति। घत्सति। घत्साति। घसति। घसाति। घसतु। अघसत्। घसेत्। घस्यात् ॥ २१६ ॥

२१७—पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ ३। १। ५५ ॥

* दिवादि गण के पुष आदि, द्युतादि और ॡ जिन का इत् गया हो उन धातुओं से परे जो च्लि प्रत्यय उस के स्थान में अङ् आदेश हो परस्मैपद विषय में कर्त्ता विषय में लुङ् लकार परे हो तो। यहां ऌदित् घस् धातु से अङ् होकर। अट्+घस्+अङ्+तिप्=अघसत्। अघसताम्। अघसन्। अघसः। अघसतम्। अघसत। अघसम्। अघसाव। अघसाम। अघत्स्यत्। अघत्स्यताम्। अघत्स्यन् [जर्ज, चर्च, झर्झ,] परिभाषणहिंसातर्जनेषु (अधिक बोलना, हिंसा और धमकाना) जर्जति। जजर्ज। जर्जिता। जर्जिष्यति। जर्जिषति। जर्जिषाति। जर्जतु। अजर्जत्। जर्जेत्। जर्ज्यात्। अजर्जीत्। अजर्जिष्यत्। चर्चति। झर्झति। जझर्झ [पिसृ, पेसृ] गतौ। पेसति। पिपेस। पिपिसतुः। पिपिसतुः। पेसिता। पेसिष्यति। पेसिषति। पेसिषाति। पेसतु। अपेसत्। पेसेत्। पिस्यात्। अपेसीत्। अपेसिष्यत् [हसे] हसने (हसना) इस धातु

* इस सूत्र में इस भ्वादिगण के पुषादि धातुओं का ग्रहण इस कारण नहीं होता कि पुषादि के अन्तर्गत द्युतादि धातु भी आजाते फिर द्युतादि ग्रहण ज्ञापक से दिवादि गण के पुषादिकों का ग्रहण होता है॥

एकार इत् जाता है। हसति। जहास। जहसतुः। हसिता। हसिष्यति। सेषति। हासिषाति। हसतु। अहसत्। हसेत्। हस्यात्। अहसीत् (१६२) सिष्यत् [णिश] समाधौ (समाहित होना) नेशति। निनेश। नेशिता। शष्यति। नेशिषति। नेशिषाति। नेशतु। अनेशत्। नेशेत्। निश्यात्। शीत्। अनेशिष्यत् [मिश, मश] शब्दे रोषकृते च (शब्द और रिष करना) ति। मशति। ममाश। मेशतुः। मशिता। मशिष्यति। माशिषति। शिषाति। मशतु। अमशत्। मशेत्। मश्यात्। अमाशीत्। अमशीत्। शिष्यत् [शव] गतौ। शवति। शशाव। शेवतुः। अशावीत्। अशवीत्। अशवि- त् [शश] प्लुतगतौ (कूद २ कर चलना) शशति। शशाश। शेशतुः। अशाशीत्। शीत् [शसु] हिंसायाम्। शसति। शशास। शशसतुः (१२८) एत्वाभ्यास- प का प्रतिषेध होजाता है। शशसुः। शशसिथ। अशासीत्। अशसीत् [शंसु] तौ (गुणों का वर्णन) शंसति। शशंस। अशंसीत् [चह] परिकल्कने (सर्वथा खंपन) चहति। चचाह। चेहतुः। चेहुः। चहिता। चहिष्यति। चाहिषति। हिषाति। चहतु। अचहत्। चहेत्। चह्यात्। अचहीत् (१६२) अचहिष्यत्। मह] पूजायाम् (सत्कार) महति। ममाह। मेहतुः। अमहीत् [रह] त्यागे छोड़ना) रहति। रराह। रेहतुः। रहिता। रहिष्यति। राहिषति। राहिषाति। हतु। अरहत्। रहेत्। रह्यात्। अरहीत् (१६२) अरहिष्यत् [रहि] गतौ। रंहति। रंह। रंह्यात् [दृह, दृहि, बृह, बृहि] वृद्धौ। दर्हति। दृंहति। बर्हति। बृंहति। ददर्ह। दृहतुः। दर्हिता। दर्हिष्यति। दर्हिषति। दर्हिषाति। दर्हतु। अदर्हत्। दर्हेत्। ह्यात्। अदर्हीत्। अदर्हिष्यत् [बृहि] शब्दे च। बृंहति [बृहिर्] इत्येके। बर्हति। बर्ह। अबृहत् (१३८) अबर्हीत् [तुहिर्, दुहिर्, उहिर्] अर्दने (गति और मांगना) तोहति। तुतोह। तुतुहतुः। तोहिता। तोहिष्यति। तोहिषति। तोहिषाति। तोहतु। अतोहत्। तोहेत्। तुह्यात्। अतुहत्। अतोहीत्। अतोहिष्यत्। दोहति। दुदोह। अदुहत्। अदोहीत्। अनिट् व्यवस्था में जो दुह धातु पढ़ा है वह दिह धातु के साहचर्य से अदादि का समझना चाहिये। ओहति। उवोह। ऊहतुः। ओहिता। माभवानुहत्। औहीत्। औहिष्यत् [अर्ह] पूजायाम् (सत्कार) अर्हति। आनर्ह। आनर्हतुः। आनर्हुः। अर्हिता। अर्हिष्यति। अर्हिषति। अर्हिषाति। अर्हतु। आर्हत्। अर्हेत्। अर्ह्यात्। आर्हीत्। आर्हिष्यत्। इति घुषिरादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः समाप्ताः। ये घुषिर् आदि ८५ धातु समाप्त हुए॥

अथ कृपूपर्यन्ताः षड्विंशत्यात्मनेपदिनः। अब २६ धातु आत्मनेपदी कहते हैं [द्युत] दीप्तौ (प्रकाशहोना) द्योतते। द्युत्–द्युत्–एश्। इस अवस्था में ॥ ११७ ॥

२१८—द्युतिस्वाप्योः संप्रसारणम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६७ ॥

द्युति और स्वापि धातु के अभ्यास को संप्रसारण हो । इस सूत्र में णिच् प्रत्ययान्त स्वापि धातु का ग्रहण है । सो णिजन्त प्रक्रिया में आवेगा । द्यु-द्युत–एश् । यहां प्रथम द्यु के यकार के स्थान में (इ) संप्रसारण हो कर । द्-इ-उ–द्युत्–एश् ॥ २१८ ॥

२१९—संप्रसारणाच्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १०८ ॥

संप्रसारण से अच् परे हो तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होवे । यहां (इ) संप्रसारण से परे उकार को पूर्वरूप हो कर । दि+द्युत्+एश्= दिद्युते । दिद्युताते । दिद्युतिरे । द्योतितासे । द्योतिष्यते । द्योतिषते । द्योतिषाते । द्योतताम् । अद्योतत । द्योतेत । द्योतिषीष्ट ॥ २१९ ।

२२०—द्युद्भ्यो लुङि ॥ अ० ॥ १ । ३ । ९१ ॥

द्युत आदि धातुओं से परे जो लुङ् लकार उस के स्थान में परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय विकल्प करके हों । ये द्युत आदि धातु सामान्य करके आत्मनेपदी हैं लुङ् में परस्मैपद किसी से प्राप्त नहीं इस कारण इस सूत्र में अप्राप्तविभाषा है । फिर परस्मैपद विषय में अङ् हो कर । अद्युतत् । अद्युतताम् । अद्युतन् । अद्युतः । अद्युततम् । अद्युतत । अद्युतम् । अद्युताव । अद्युताम । आत्मनेपद पक्ष में । अद्योतिष्ट । अद्योतिषाताम् । अद्योतिषत । अद्योतिष्यत । यहां से लेकर क्लृपू धातु पर्य्यन्त सब धातुओं में (२२०) (२१७) ये दोनों सूत्र लुङ् लकार में लगा करेंगे [श्विता] वर्णे (श्वेतवर्ण) इस धातु का आकार इत् संज्ञक होता है उस का फल कृदन्त में आवेगा । श्वेतते । शिश्विते । श्वेतितासे । श्वेतिष्यते । श्वेतिषते । श्वेतिषाते । श्वेतताम् । अश्वेतत । श्वेतेत । श्वेतिषीष्ट । अश्वितत् । अश्वेतिष्ट । अश्वेतिष्यत [ञिमिदा] * स्नेहने (प्रीति) यहां (१५०) सूत्र से ञि की इत्संज्ञा और आकार भी इस धातु का इत् जाता है । मेदते । मिमिदे । मिमिदाते । मिमिदिरे । मेदिता । मेदिष्यते । मेदिषते । मेदिषाते । मेदताम् । अमेदत । मेदेत । मेदिषीष्ट । अमिदत् । अमेदिष्ट ।

---

* इस धातु पर जो भट्टोजिदीक्षित ने (मिदेर्गुणः) सूत्र लगाया है सो सर्वथा व्यर्थ है क्योंकि यह सूत्र दिवादि गण के मिद धातु से श्यन् प्रत्यय के अपित् होने से (५१) गुण प्राप्त नहीं होता वहां लगता है । और काशिकाकार ने भी दिवादि गण के ही उदाहरण इस सूत्र पर दिये हैं । और लिट् लकार प्रथम पुरुष एक वचन (एश्) में शित् करण सर्वादेशार्थ है गुण होने के लिये नहीं और यह बात कभी नहीं हो सकती कि जो अन्त में शित् हो उस को शित् कार्य न हों क्यों कि चानश् आदि की सार्वधातुक संज्ञा होती ही है । इस कारण एश् में भी गुण की प्राप्ति नहीं हो सकती फिर यह सूत्र इस धातु पर लिखना अत्यन्त विरुद्ध है ॥

असेदिष्यत [ञिष्विदा] स्नेहनमोचनयोः (प्रीति और छोड़देना) यहां भी पूर्ववत् ञि और आ इत् जाते हैं। स्वेदते। सिष्विदे। अस्विदत्। अस्वेदिष्ट। अस्वेदिष्यत [ञिक्ष्विदा] इत्येके। क्ष्वेदते। चिक्ष्विदे। अक्ष्विदत्। अक्ष्वेदिष्ट। [रुच] दीप्तावभिप्रीतौ च (प्रकाश और अत्यन्तप्रीति) रोचते। रुरुचे। रुरुचाते। रुरुचिरे। रोचितासे। रोचिष्यते। रोचिषते। रोचिषाते। रोचताम्। अरोचत। रोचेत। रोचिषीष्ट। अरुचत्। अरोचिष्ट। अरोचिष्यत [घुट] परिवर्त्तने (सब ओरसे वर्तना) घोटते। जुघुटे। घोटितासे। घोटिष्यते। घोटिषते। घोटिषाते। घोटताम्। अघोटत। घोटेत। घोटिषीष्ट। अघुटत्। अघोटिष्ट। अघोटिष्यत [रुट,लुट,लुठ,उठ] उपघाते (मारना) रोटते। रुरुटे। लोटते। लुलुटे। लोठते। लुलुठे। ओठते। ऊठे। ऊठाते। ऊठिरे। अरुटत्। अरोटिष्ट। अलुटत्। अलोटिष्ट। अलुठत्। अलोठिष्ट। औठत्। औठिष्ट। [शुभ] दीप्तौ। शोभते। शुशुभे। शोभितासे। शोभिष्यते। शोभिषते। शोभिषाते। शोभताम्। अशोभत। शोभेत। शोभिषीष्ट। अशुभत्। अशोभिष्ट। अशोभिष्यत। [क्षुभ] संचलने (चलायमान होना) क्षोभते। चुक्षुभे। अक्षुभत्। अक्षोभिष्ट। [णभ,तुभ] हिंसायाम्। नभते। नेभे। नेभाते। नेभिरे। नभितासे। नभिष्यते। नाभिषते। नाभिषाते। नभताम्। अनभत। नभेत। नभिषीष्ट। अनभत्। अनभिष्ट। अनभिष्यत। अतुभत्। अतोभिष्ट [स्रंसु, ध्वंसु, भ्रंसु] अवस्रंसने (गिरना) [ध्वंसु] गतौ च। स्रंसते। सस्रंसे। ध्वंसते। दध्वंसे। भ्रंसते। बभ्रंसे। लुङ् लकार में अङ् प्रत्यय के परे (१३८) सूत्र से नकार के अनुस्वार का लोप हो कर। अस्रसत्। अस्रंसिष्ट। अध्वसत्। अध्वंसिष्ट। अभ्रसत्। अभ्रंसिष्ट [भ्रशु, भ्रंशु] अधःपतने (नीचे गिरना)भ्रशते। भ्रंशते। बभ्रशे। बभ्रंशे। भ्रशितासे। भ्रशिष्यते। भ्राशिषते। भ्राशिषाते। भ्रशताम्। अभ्रशत। भ्रशेत। भ्रशिषीष्ट। अभ्रशत् २ अभ्रशिष्ट। अभ्रंशिष्ट। अभ्रशिष्यत [स्रंभु] विश्वासे। स्रम्भते। सस्रम्भे। अस्रभत्। अस्रम्भिष्ट [वृतु] वर्त्तने (वर्त्तना) वर्त्तते। ववृते। वर्त्तन्ते। वर्त्तसे। वर्त्तेथे। वर्त्तध्वे। वर्त्ते। वर्त्तावहे। वर्त्तामहे। ववृते। ववृताते। ववृतिरे। ववृतिषे। ववृताथे। ववृतिध्वे। ववृते। ववृतिवहे। ववृतिमहे। वर्त्तितासे ॥ २२० ॥

२२१—वृद्भ्यः स्यसनोः ॥ अ० ॥ १। ३। ९२ ॥

वृतु आदि पांच धातुओं से परे स्य और सन् प्रत्यय के विषय में परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय विकल्प करके हों। यहां लृट् लकार में परस्मैपद तिप् आदि हो कर। वृत्—स्य—तिप्। इस अवस्था में इट् का आगम प्राप्त है इस लिये ॥२२१॥

२२२—न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५९ ॥

वृतु आदि चार धातुओं से परे जो सकारादि आर्द्धधातुक उस को इट् का आगम न हो परस्मैपद विषय में। फिर (५१) से गुण हो कर। वर्त्स्यति। वर्त्स्यतः। वर्त्स्यन्ति। जिस पक्ष में परस्मैपद प्रत्यय नहीं होते वहां। वर्तिष्यते। वर्तिष्येते। वर्तिष्यन्ते। वर्तिषते। वर्तिषाते। वर्तताम्। वर्तेताम्। वर्तन्ताम्। अवर्तत। वर्तेत। वर्तिषीष्ट। अवृतत्। अवर्तिष्ट। अवर्त्स्यत्। अवर्तिष्यत [वृधु] वृद्धौ (बढ़ना) [शृधु] शब्दकुत्सायाम् (निन्दित शब्द होना) इन दोनों धातुओं में वृतु के समान साधुत्व जानो। वर्धते। वर्धेते। वर्धन्ते। ववृधे। वर्धितासे। वर्त्स्यति। यहां दन्त्योष्ठ वकार के होने से भकार (२०४) नहीं होता। वर्धिष्यते। वर्धिषते। वर्धिषाते। वर्धताम्। अवर्धत। वर्धेत। वर्धिषीष्ट। अवृधत्। अवर्धिष्ट। अवर्त्स्यत्। अवर्धिष्यत। शर्धते। शशृधे। शर्त्स्यति। शर्धिष्यते। अशृधत्। अशर्धिष्ट। अशर्त्स्यत्। अशर्धिष्यत [स्यन्दू] प्रस्रवणे (झरना) यह धातु ऊदित् है इस कारण वलादि आर्द्धधातुक विषय में इट् का आगम विकल्प से (१४०) होता है। स्यन्दते। स्यन्देते। स्यन्दन्ते। सस्यन्दे। सस्यन्दाते। सस्यन्दिरे। सस्यन्दिषे। सस्यन्त्से। सस्यन्दाथे। सस्यन्दिध्वे। सस्यन्ध्वे। यहां (झरो झरि सवर्णे) इस सूत्र से न् से परे दकार का लोप विकल्प करके होता है। सस्यन्दे। सस्यन्दिवहे। सस्यन्दिमहे। सस्यन्द्वहे। सस्यन्‍न्महे। यहां दकार को अनुनासिक (यरोऽनुनासिके०) सूत्र से विकल्प करके होता है। स्यन्दिता। स्यन्दितारौ। स्यन्दितारः। स्यन्दितासे। स्यन्ता। यहां भी (झरो झरि) सूत्र से दकार लोप होता है। और लृट् में स्य प्रत्यय के परे परस्मैपद (२२१) होके (१४०) सूत्र अन्तरंग भी है तो भी उस के विकल्प को बाध के (२२२) सूत्र में चतुर्ग्रहण सामर्थ्य से परस्मैपद विषय में निषेध ही होता है। स्यन्त्स्यति। स्यन्दिष्यते। स्यन्त्स्यते। स्यन्दिषते। स्यन्दिषातै। स्यन्तते। स्यन्त्साते। स्यन्दताम्। अस्यन्दत। स्यन्देत। स्यन्दिषीष्ट। स्यन्त्सीष्ट। अट्+स्यन्द्+अङ्+तिप् (२२०) (२१७) (१३९)=अस्यदत्। अस्यदताम्। अस्यदन्। आत्मनेपद विषय में। अस्यन्दिष्ट। अस्यन्दिषाताम्। अनिट् पक्ष में। अस्यन्त। अस्यन्त्साताम्। अस्यन्त्सत। अस्यन्थाः। अस्यन्त्साथाम्। अस्यन्ध्वम्। अस्यन्त्सि। अस्यन्त्स्वहि। अस्यन्त्स्महि। अस्यन्त्स्यत्। अस्यन्दिष्यत। अस्यन्त्स्यत [कृपू] सामर्थ्ये (समर्थ होना) ॥२२२॥

२२३—कृपो रो लः ॥ अ० ॥ ८ । २ । १८ ॥

कृप धातु के गुण हुए और ऋकार विशिष्ट जो रेफ है उन दोनों को लकार आदेश होता है। यहां ऋकार में जितना अंश रेफ का है उस को ल होकर

क्लृप् धातु होता है। फिर गुण (५१) होकर। कल्पते। कल्पेते। कल्पन्ते। चक्लृपे। चक्लृपाते। चक्लृपिरे। यह भी धातु ऊदित् है इस कारण इडागम भी विकल्प करके होता है। चक्लृपिषे। चक्लृप्से। चक्लृपिध्वे। चक्लृब्ध्वे। चक्लृपिवहे। चक्लृब्वहे। चक्लृपिमहे। चक्लृप्महे। चक्ल्टब्महे॥ २२३॥

२२४—लुटि च क्लृपः॥ अ०॥ १। ३। ९३॥

लुट् लकार, स्य और सन् प्रत्यय परे हों तो क्लृप् धातु से परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय विकल्प करके होवें। यहां परस्मैपद पक्ष में॥ २२४॥

२२५—तासि च क्लृपः॥ अ०॥ ७। २। ७२॥

क्लृप् धातु से परे जो तास् और सकारादि आर्द्धधातुक प्रत्यय उन को इट् का आगम न होवे परस्मैपद विषय में। कल्प्ता। कल्प्तारौ। कल्प्तारः। कल्प्तासि। कल्पितासे। कल्प्तासे। कल्प्स्यति। कल्पिष्यते। कल्प्स्यते। कल्पिषते। कल्पिषातै। कल्प्सते। कल्प्सातै। कल्पताम्। अकल्पत। कल्पेत। कल्पिषीष्ट। कल्प्सीष्ट। अक्लृपत्। अकल्पिष्ट। अक्लृप्त (१४२) सकार का लोप होता है। अकल्प्स्यत्। अकल्पिष्यत। अकल्प्स्यत (वृत्) सम्पूर्णो द्युतादिर्वृतादिश्च। ये द्युत आदि और वृतु आदि धातु समाप्त हुए॥

अथ त्वरत्यन्ता आत्मनेपदिनः। अब त्वर धातु पर्यन्त १६ धातु आत्मनेपदी कहते हैं [घट] चेष्टायाम्। घटते। जघटे। जघटाते। घटितासे। घटिष्यते। घाटिषते। घाटिषातै। घटताम्। अघटत। घटेत। घटिषीष्ट। अघटिष्ट। अघटिष्यत [व्यथ] भयसञ्चलनयोः (डरना और चंचल होना) व्यथते। व्यथेते। व्यथन्ते॥ २२५॥

२२६—व्यथो लिटि॥ अ०॥ ७। ४। ६८॥

व्यथ धातु के अभ्यास को सम्प्रसारण हो लिट् लकार परे हो तो। व्यथ् के (य्) को इ सम्प्रसारण होके (२१९) से पूर्वरूपएकादेश होता है। व्यथ्+व्यथ्+एश्=विव्यथे। विव्यथाते। विव्यथिरे। व्यथितासे। व्यथिष्यते। व्याथिषते। व्याथिषातै। व्यथताम्। अव्यथत। व्यथेत। व्यथिषीष्ट। अव्यथिष्ट। अव्यथिष्यत। [प्रथ] प्रख्याने (प्रसिद्धि) प्रथते। पप्रथे। अप्रथिष्ट [प्रस] विस्तारे। प्रसते। पप्रसे [म्रद] मर्दने (मलना) म्रदते। मम्रदे [स्खद] स्खदने (दौड़ना) स्खदते। चस्खदे [चजि] गतिदानयोः (गति और देना) चञ्जते। चचञ्जे। [दक्ष] गतिहिंसनयोः (गति और मारना) दक्षते। ददक्षे। दक्षितासे। दक्षिष्यते। दक्षिषते। दक्षिषातै। दक्षताम्। अदक्षत। दक्षेत। दक्षिषीष्ट।

अद्‌क्षिष्ट । अद्‌क्षिष्यत [क्षप] क्षपायां गतौ च । क्षपते । क्षपिते । क्षपन्ते । चक्षपे । [कदि,क्रदि,क्लदि] वैक्लव्ये वैकल्य इत्यन्ये (विविध प्रकार की गति और संख्या) ये तीनों धातु तवर्गान्तों में परस्मैपदी आह्वान और रोदन अर्थ में लिख चुके हैं फिर इन का यहां लिखना मित्‌संज्ञा, अर्थभेद, और आत्मनेपद आदि के लिये है और इस प्रकरण (घट धातु से ले के फण, गतौ पर्यन्त) में बहुत ऐसे धातु लिखे हैं जिन में से किन्हीं को पूर्व लिख चुके कोई आगे के गणों में आवेंगे और बहुतेरे ऐसे भी हैं जो कहीं नहीं आवेंगे । मित् संज्ञा का गणसूत्र इसी प्रकरण में आगे लिखा है। कन्दते । क्रन्दते । क्लन्दते । चकन्दे । चक्रन्दे । चक्लन्दे । कन्दितासे । कन्दिष्यते । कन्दिषते । कन्दिषाते । कन्दताम् । अकन्दत । कन्देत । कन्दिषीष्ट । अकन्दिष्ट । अकन्दिष्यत [कद,क्रद,क्लद] इत्यन्ये । कदते । क्रदते । क्लदते । चकदे । चक्रदे । चक्लदे । कदितासे । कदिष्यते । कादिषते । कादिषाते । कदताम् । अकदत । कदेत । कदिषीष्ट । अकदिष्ट । अकदिष्यत । [ञित्वरा] सम्भ्रमे (सम्यक् भ्रान्ति) त्वरते । तत्वरे । त्वरिता । त्वरिष्यते । त्वारिषते । त्वारिषाते । त्वरताम् । अत्वरत । त्वरेत । त्वरिषीष्ट । अत्वरिष्ट । अत्वरिष्यत । इति घटादयः षित उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः षोडश समाप्ताः । ये घट आदि १६ धातु षित् संज्ञक समाप्त हुए षित् का प्रयोजन कृदन्त में आवेगा ॥

अथ फणान्ताः परस्मैपदिनः । अब फण धातु पर्यन्त परस्मैपदी कहते हैं [ज्वर] रोगे । ज्वरति । जज्वार [गड] सेचने (सींचना) गडति । जगाड । जगडतुः । गडितासि । गडिष्यति । गाडिषति । गाडिषाति । गडतु । अगडत् । गडेत् । गड्यात् । अगाडीत् । अगडीत् । अगडिष्यत् [हेड] वेष्टने (लपेटना) हेडति । जिहेड । यह धातु अनादर अर्थ में आत्मनेपद विषय में आ चुका है इस धातु को अनादर अर्थ में मित् संज्ञा नहीं होगी वहां । हेडयति । और मित्संज्ञा में ह्रस्व होकर । हिडयति [वट,भट] परिभाषणे । वटति । ववाट । ववटतुः । वटितासि । वटिष्यति । वाटिषति । वाटिषाति । वटतु । अवटत् । वटेत् । वट्यात् । अवटीत् । अवाटीत् । अवटिष्यत् । भटति । बभाट [णट] नृतौ (नांचना) नटति । ननाट । यह धातु इसी अर्थ में परस्मैपदी आचुका है फिर यहां पढने से यही प्रयोजन है कि नृत्य में भी दो भेद हैं एक नाटक दूसरा नाचना । सो यहां नाचने अर्थ में मित् संज्ञा होती है [ष्टक] प्रतिघाते (मारना) स्तकति । तस्ताक [चक] तृप्तौ । चकति । चचाक । चेकतुः । चेकुः । अचाकीत् । अचकीत् [कखे] हसने । कखति । अकखीत् (१६२) [रगे] शङ्कायाम् । रगति । रराग । रेगतु । रेगुः । रगिता । रगिष्यति । रागिषति । रागिषाति । रगतु ।

अरगत् । रगेत् । रग्यात् । अरगीत् । अरगिष्यत् [लगे] सङ्गे (मिलाना) लगति। अलगीत् [ह्रगे,ह्लगे,षगे,ष्टगे] सम्वरणे (ढांकना) ह्रगति । ह्लगति । सगति। स्तगति । अह्रगीत् । अह्लगीत् । असगीत् । अस्तगीत् [कगे] नोच्यते। कग धातु को विशेष अर्थ में मित्संज्ञा नहीं कहते क्योंकि यह धातु सामान्यार्थवाची है । कगति । चकाग । अकगीत् [अक,अग] कुटिलायां गतौ (टेढ़ा चलना) अकति । अगति [कण, रण] गतौ । कणति । चकाण । रणति। रराण । रेणतुः । अकाणीत् । अकणीत् । अराणीत् । अरणीत् [चण, शण, श्रण,] दाने च [शण] गतावित्यन्ये । किन्हीं के मत में शण धातु केवल गत्यर्थ ही है दानार्थ नहीं। चण और श्रण धातुओं के दान और गति दोनों अर्थ हैं [श्नथ, श्लथ,क्नथ क्लथ] हिंसार्थाः । श्नथति । श्लथति । क्नथति । क्लथति [चन] च । चकार से हिंसा अर्थका सम्बन्ध होता है। चनति। चचान। चेनतुः । चनिता । चनिष्यति। चानिषति। चानिषाति । चनतु । अचनत् । चनेत् । चन्यात् । अचानीत् । अचनीत् । अचनिष्यत् [वनु] च नोच्यते। एक वनु धातु तनादि गण में भी पढ़ा है। परन्तु उसका पाठ यहां मित्संज्ञा के लिये नहीं इसी कारण इस के अपूर्व होने से इस का विशेष अर्थ यहां मित्संज्ञा प्रकरण में नहीं कहते और तनादि गण का वनु धातु इसी प्रकरण में आगे पढ़ा है। वनति। ववान। अवानीत् । अवनीत् । [ज्वल] दीप्तौ । ज्वलति । जज्वाल । जज्वलतुः । जज्वलुः। अज्वालीत् (१८६) अज्वलिष्यत् [ह्वल, ह्मल] सञ्चलने । ह्वलति । ह्मलति । जह्वाल । जह्माल। अह्वालीत् । अह्वलीत् । अह्मालीत् [स्मृ] आध्याने (प्राप्ति की इच्छापूर्वक-स्मरण करना) यह धातु इसी गण में आगे चिन्ता अर्थ में लिखा है। इस के प्रयोग भी वहीं लिखे हैं । यहां आध्यान अर्थ में मित्संज्ञा होती है [दॄ] भये (डर) [नॄ] नये (नम्रता) ये दोनों धातु क्र्यादि गण में आवें गे [श्रा] पाके (पकाना) यह अदादि गण का है । मारण तोषण निशामनेषु [ज्ञा] (मारना, सन्तोष और प्रत्यक्ष ज्ञान) इन अर्थों में ज्ञा धातु की मित् संज्ञा है अन्यत्र नहीं। और यह धातु भी क्र्यादि गण का है [चलिः] कम्पने (कांपना) यह धातु पीछे आचुका है [छदिः] ऊर्जने (बल,वा प्राणपोषण) यह चुरादि गण में आवेगा । जिह्वोन्मथने [लडिः] (जीभ चलाना) यह भी चुरादि का है [मदी] हर्षग्लेपनयोः (आनन्द और दीनता) यह दिवादि गण का है [ध्वन] शब्दे । यह इसी गण में आगे लिखा है [दलि, वलि, स्खलि, रणि, ध्वनि, त्रपि, क्षपयश्च] इन में ध्वन और रण दोनों धातु आचुके । और दल धातु विशरण, वल सम्वरण, स्खल संचलन और त्रपूष् लज्जा अर्थ में आचु के हैं।

और जो धातु आगे इसी गण में आवेगा उसका घुगन्त चपि निर्देश किया है [स्वन] अवतंसने । यह धातु शब्द अर्थ में आगे लिखा है ॥ घटादयो मितः ॥ घट चेष्टा यां धातु से लेकर जितने धातु लिख चुके हैं उन सब की मित्संज्ञा होवे इस मित्-संज्ञा का प्रयोजन णिजन्त तथा कर्मकर्तृ प्रक्रिया और णमुल् प्रत्यय में आवेगा। [जनी, जृष्, क्नसु, रञ्जोऽमन्ताश्च] जनी, जृष्, और रंज ये तीनों दिवादि गण के हैं । और क्नस धातु यहां नवीन सामान्यार्थवाची पढ़ा है। अम् जिन के अन्त में हो ऐसे क्रम्, जम्, गम्, रम्, नम्, आदि सब गणों के धातु मित् संज्ञक होते हैं । क्नसति । चक्नास । क्नसिता । क्नसिष्यति। क्नासिषति । क्नासिषाति । क्नसतु । अक्नसत् । क्नसेत् । क्नस्यात् । अक्नासीत् । अक्नसीत् । अक्नसिष्यत् [ज्वल,ह्वल,ह्मल,-नमामनुपसर्गाद्वा] इन में ज्वल,ह्वल,और ह्मल, धातु तो इसी मित्संज्ञा प्रकरण में लिखचुके हैं और नमधातु अमन्त है इन सब की नित्य मित्संज्ञा प्राप्त है उस का विकल्प होने से प्राप्तविभाषा है। परन्तु ये धातु उपसर्ग से परे न हों इतना विशेष है [ग्ला, स्ना, वनु, वमाञ्च] अनुपसर्ग पूर्वक ग्ले, स्ना, वनु और वम धातु की मित् संज्ञा विकल्प करके होवे इस सूत्र में प्राप्ताप्राप्त विभाषा यों है कि ग्ला वनु और स्ना धातु की मित् संज्ञा प्राप्त नहीं और वम धातु को अमन्त होने से प्राप्त है उन दोनों का विकल्प किया है [न कम्यमिचमाम्] कम्,अम्,और चम्, धातुओं की मित्संज्ञा अमन्त होने से नित्य प्राप्त है सो न होवे [शमो दर्शने] शम धातु को दर्शन अर्थ में मित्संज्ञा न होवे । निशामयति [यमोऽपरिवेषणे] यम धातु को अपरिवेषण अर्थात् भोजन से अन्य अर्थमें मित्संज्ञा न होवे [स्खदि-रवपरिभ्याञ्च] अव और परि उपसर्गों से परे जो स्खद धातु उस को मित्संज्ञा न होवे [फण] गतौ । फणति । पफाण ॥ २२६ ॥

२२७—फणां च सप्तानाम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १२५ ॥

फण, राजृ, भ्राजृ, भ्राशृ, भ्लाशृ, स्यमु और स्वन इन सात धातुओं के अवर्ण को एकारादेश और अभ्यास का लोप विकल्प करके हो कित् संज्ञक लिट् और सेट् थल् परे हों तो। इन धातुओं को एत्वाभ्यासलोप किसी सूत्र से प्राप्त नहीं इस लिये यह अप्राप्तविभाषा है। फेणतुः । फेणुः । पफणतुः । पफणुः। फेणिथ । पफणिथ । फणिता । फणिष्यति । फाणिषति । फाणिषाति । फणतु । अफणत् । फणेत् । फण्यात् । अफणीत् । अफाणीत् । अफणिष्यत् (इत) घटादयः समाप्ताः । ये घट आदि मित्संज्ञक धातु समाप्त हुए ॥

[राजृ] दीप्तौ । उदात्तः स्वरितेत् । यह धातु स्वरितेत् है अर्थात् क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो आत्मनेपद (१०२) होता और अन्यत्र परस्मैपद इस

प्रकार उभयपद के प्रयोग जानो। राजते। राजेते। राजन्ते। राजति। राजतः। राजन्ति। रेजे (२२७) रराजे। रराज। रेजतुः। रराजतुः। राजितासे। राजितासि। राजिष्यते। राजिष्यति। राजिषतै। राजिषातै। राजिषति। राजिषाति। राजतु। राजताम्। अराजत। अराजत्। राजेत। राजेत्। राजिषीष्ट। राज्यात्। अराजिष्ट। अराजीत्। अराजिष्यत। अराजिष्यत् [टुभ्राजृ, टुभ्राशृ, टुभ्लाशृ] दीप्तौ। उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेपदिनः। ये तीनों धातु आत्मनेपदी सेट् हैं। इन धातुओं के टु की इत्संज्ञा (१५०) भ्राजते। भ्रेजे (२२७) बभ्राजे भ्राजितासे। भ्राजिष्यते। भ्राजिषतै। भ्राजिषातै। भ्राजताम्। अभ्राजत। भ्राजेत। भ्राजिषीष्ट। अभ्राजिष्ट। अभ्राजिष्यत। भ्राश तथा भ्लाश धातु से विकल्प करके श्यन् (१८८) पक्ष में शप् होता है। भ्राश्यते। भ्राश्येते। भ्राश्यन्ते। भ्राशते। भ्रेशे। बभ्राशे। भ्राशितासे। भ्राशिष्यते। भ्राशिषतै। भ्राशिषातै। भ्राश्यतै। भ्राश्यातै। भ्राशतै। भ्रशातै। भ्राश्यताम्। भ्राशताम्। अभ्राश्यत। अभ्राशत। भ्राश्येत। भ्राशेत। भ्राशिषीष्ट। अभ्राशिष्ट। अभ्राशिष्यत। भ्लाश्यते। भ्लाशते। भ्लेशे। बभ्लाशे ॥

अथ स्यमादयः परस्मैपदिनः षड्विंशतिः। अब स्यम आदि २६ (छब्बीस) धातु परस्मैपदी कहते हैं [स्यमु, स्वन, ध्वन] शब्दे। स्यमति। सस्याम। स्येमतुः। (२२७) सस्यमतुः। स्यमितासि। स्यमिष्यति। स्यामिषति। स्यामिषाति। स्यमतु। अस्यमीत् (१६२) अस्यमिष्यत्। स्वनति। स्वेनतुः। सस्वनतुः। अस्वानीत्। अस्वनीत् (१४४) यहां तक फणादि सात धातु जो (२२७) सूत्र में कहे हैं समाप्त हुए। ध्वनति। दध्वान। दध्वनतुः। ध्वनितासि। ध्वनिष्यति। ध्वानिषति। ध्वानिषाति। ध्वनतु। अध्वनत्। ध्वनेत्। ध्वन्यात्। अध्वानीत्। अध्वनीत्। अध्वनिष्यत् [षम, ष्टम] अवैकल्ये (सुस्थिर होना) समति। ससाम। सेमतुः। असमीत् (१६२) स्तमति। तस्ताम। तस्तमतुः। अस्तमीत्। [ज्वल] दीप्तौ। ज्वलति। जज्वाल। अज्वालीत् (१८६) [चल] कम्पने (कांपना) चलति। चचाल। चेलतुः। चलितासि। चलिष्यति। चालिषति। चालिषाति। चलतु। अचलत्। चलेत्। चल्यात्। अचालीत् (१८६) अचलिष्यत् [जल] घातने (मारना) जलति। जजाल। जेलतुः। अजालीत् (१८६) [टल, ट्वल] वैक्लव्ये (विरुद्ध चाल) टलति। टटाल। टेलतुः। ट्वलति। टट्वाल। टट्वलतुः। अटालीत्। अट्वालीत्। अट्वलिष्यत् [ष्ठल] स्थाने। स्थलति। तस्थाल। अस्थालीत्। [हल] विलेखने (खोदना वा जोतना) हलति। जहाल। अहालीत् [णल] गन्धे। बन्धन इत्येके। नलति। ननाल। नेलतुः। अनालीत् [पल] गतौ।

पलति । पेलतुः । अपालीत् [वल] प्राणने धान्यावरोधे च (जीवन और धानों का रोकना) वलति । ववाल । वेलतुः । वेलुः । अवालीत् [पुल] महत्त्वे (बड़ा होना) पोलति । पुपोल । पुपुलतुः । अपोलीत् [कुल] संस्त्याने बन्धुषु (भाई-बन्धुओं का समूह) कोलति । चुकोल । चुकुलतुः । कोलितासि । कोलिष्यति । कोलिषति । कोलिषाति । कोलतु । अकोलत् । कोलेत् । कुल्यात् । अकोलीत् । अकोलिष्यत् [शल, हुल, पत्लृ] गतौ । शलति । शशाल । शेलतुः । शेलुः । अशालीत् (१९६) होलति । जुहोल । अहोलीत् । पतति । पपात । पेततुः । पतितासि । पतिष्यति । पातिषति । पातिषाति । पततु । अपतत् । पतेत् । पत्यात् । इस पत धातु का लृ इत् जाता है इस से अङ् (२१७) होकर ॥२२७॥

२२८—पतः पुम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १९ ॥

अङ् परे हो तो पत धातु को पुम् का आगम होवे । पुम् (मित्) होने से अन्त्य अच् पकार से परे होता है । अट्+पपुम्त्+अङ्+तिप्=अपप्तत् । पुम् में से उम् भाग की इत्संज्ञा होती है । अपप्तताम् । अपप्तन् । अपप्तः । अपप्ततम् । अपप्तत । अपप्तम् । अपप्ताव । अपप्ताम । अपतिष्यत् [क्वथे] निष्पाके (अच्छे प्रकार पकाना) क्वथति । चक्वाथ । एदित् होने से । अक्वथीत् (१६२) [मथे] विलोडने । मथति । ममाथ । मेथतुः । मथिता । मथिष्यति । माथिषति । माथिषाति । मथतु । अमथत् । मथेत् । मथ्यात् । अमथीत् । अमथिष्यत् [टुवमं] उद्गिरणे (उगिलना) टु इत् (१५०) वमति । ववाम । ववमतुः (१२८) एत्वाभ्यासलोप का निषेध । वमिता । वमिष्यति । वामिषति । वामिषाति । वमतु । अवमत् । वमेत् । वम्यात् । अवमीत् (१६२) अवमिष्यत् [भ्रमु] चलने । यहां (१८८) से विकल्प करके श्यन् होता है । भ्रम्यति । भ्रमति ॥ २२८ ॥

२२९—वा जॄभ्रमुत्रसाम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १२४ ॥

कित् लिट् और सेट् थल् परे हों तो जॄ, भ्रमु और त्रस धातुओं के अभ्यास का लोप और इन को एकारादेश विकल्प करके होवे । इन धातुओं में एत्वाभ्यासलोप किसी सूत्र से प्राप्त नहीं था इस कारण यहां अप्राप्तविभाषा है । बभ्राम । भ्रेमतुः । बभ्रमतुः । बभ्रमुः । अभ्रमीत् [चर] संचलने (अच्छे प्रकार चलना) चरति । चचार । चचरतुः । चरितासि । चरिष्यति । चारिषति । चारिषाति । चरतु । अचरत् । चरेत् । चर्यात् । अचारीत् (१९६) अचरिष्यत् ।

इति स्यमादय उदात्ता उदात्तेतः समाप्ताः ॥

अथ द्वावनुदात्तेतौ। अब दो धातु आत्मनेपदी कहते हैं। उन में सह धातु सेट् और रमु अनिट् है [षह] मर्षणे (सहना) सहते। सहेते। सहन्ते। सेहे। सेहाते। सहिता ॥ २२९ ॥

२३०—सहिवहोरोदवर्णस्य ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ११२ ॥

सह और वह धातु के अवर्ण को ओकार आदेश होवे ढकार का लोप हुआ हो तो। यहां (२१२) सूत्र से इट् के निषेध पक्ष में लुट् में तास् प्रत्यय के परे सह के हकार को ढ (२०३) और ढलोप (२०६) से होकर। सह्+तास्+डा=सोढा। सोढारौ। सोढारः। सोढासे। सोढासाथे। सोढाध्वे। सोढाहे। सोढास्वहे। सोढास्महे। सहिष्यते। साहिषते। साहिषातै। सहताम्। असहत। सहेत। सहिषीष्ट। असहिष्ट। असहिष्यत [रमु] क्रीडायाम् (खेलना) यह धातु अनिट् है। रमते। रमेते। रमन्ते। रेमे। रेमाते। रेमिरे। रेमिषे। रन्तासे। रंस्यते। रांसते। रांसातै। रमताम्। अरमत। रमेत। रंसीष्ट। अरंस्त। अरंसाताम्। अरंस्यत ॥

अथ कसन्ताः सप्त परस्मैपदिनः [षदॢ] विशरणगत्यवसादनेषु (मारना, गति और क्लेश होना) ॥ २३० ॥

२३१—पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्त्तिसर्त्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७८ ॥

पा, घ्रा, ध्मा, स्था, म्ना, दाण्, दृशि, ऋ, सृ, शद, और सद धातुओं को पिब, जिघ्र, धम, तिष्ठ, मन, यच्छ, पश्य, ऋच्छ, धौ, शीय, और सीद आदेश यथासंख्य करके होवें शित् प्रत्यय परे हों तो। यहां शप् के परे सद को सीद होकर। सीदति। सीदतः। सीदन्ति। ससाद। सेदतुः। सेदुः। यह भी धातु अनिट् है। सेदिथ (१४९) ससत्थ (२१५) सेदथुः। सेद। ससाद। सेदिव। सेदिम। सत्ता। सत्तारौ। सत्तारः। सत्तासि। सत्स्यति। सात्सति। सात्साति। सत्सति। सत्साति। सीदति। सीदाति। सीदतु। असीदत्। सीदेत्। सद्यात्। ऌदित् होने से अङ् (२१७) असदत्। असदताम्। असदन्। असदः। असदतम्। असदत। असदम्। असदाव। असदाम। असत्स्यत् [शदॢ] शातने (तीक्ष्णता होनी) ॥२३१॥

२३२—शदेः शितः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६० ॥

शित् प्रत्यय विषयक शद धातु से आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय हों (जिन लकारों में शप् होता है वहां) यह सूत्र परस्मैपद का अपवाद है। शीय (२३१)

आदेश। शीयते। शीयेते। शीयन्ते। शीयसे। शशाद। शेदतुः। शेदुः। शेदिथ। शशत्थ (१४९।२१५) शत्तासि। शत्स्यति। शात्सति। शात्साति।शत्सति। शत्साति। शीयतै। शीयातै। शीयते। शीयाते। शीयताम्। अशीयत। शीयेत। शद्यात्। ऌदित् होने से अङ् (२१७) अशदत्। अशदताम्। अशदन्। अशत्स्यत् [क्रुश] आह्वाने रोदने च (बुलाना और रोना) क्रोशति। चुक्रोश। चुक्रुशतुः। चुक्रुशुः। चुक्रोशिथ (१४८) सूत्र के नियम से इट्। क्रुश–तास्–डा। यहां ॥ २३२ ॥

२३३—व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः ॥ अ० ॥ ८। २। ३६ ॥

व्रश्च, भ्रस्ज, सृज,मृज, यज, राज, भ्राज, और छकारान्त शकारान्त धातुओं के अन्त्य वर्ण को ष आदेश होवे झल् परे हो वा पदान्त में। इस सूत्र में राज और भ्राज धातु का ग्रहण पदान्त में षत्व होने के लिये है क्यों कि इन दोनों के सेट् होने से झलादि आर्द्धधातुक में इट् के व्यवधान में प्राप्ति नहीं होती। यहां प्रकृत में शान्त क्रुश धातु के शकार को मूर्द्धन्य और (ष्टुना ष्टुः) सूत्र से तास् के तकार को टकार होकर। क्रोष्टा। क्रोष्टारौ। क्रोष्टारः। क्रुश्+स्य+ति= क्रोक्ष्यति (२०५) इसी प्रकार लेट् में जानो। क्रुश्+स्+अट्+तिप्=क्रोक्षति। क्रोक्षाति। क्रोशति। क्रोशाति। क्रोशतु। अक्रोशत्। क्रोशेत्। क्रुश्यात्। अट्+ क्रुश्+क्स+तिप्=अक्रुक्षत् (२०७) अक्रुक्षताम्। अक्रुक्षन्। अक्रुक्षः। अक्रोक्ष्यत्। ये षद् आदि तीन धातु अनिट् थे [कुच] सम्पर्चनकौटिल्यप्रतिष्टम्भविलेखनेषु (छूना,टेढ़ाई,रोक रखना और खोदना) कोचति। चुकोच। चुकुचतुः। कोचिता। कोचिष्यति। कोचिषति। कोचिषाति। कोचतु। अकोचत्। कोचेत्। कुच्यात्। अकोचीत्। अकोचिष्यत् [बुध] अवगमने (ज्ञान होना) बोधति। बुबोध। बुबुधतुः। बुबुधुः। बोधिता। बोधिष्यति। बोधिषति। बोधिषाति। बोधतु। अबोधत्। बोधेत्। बुध्यात्। अबोधीत्। अबोधिष्यत् [रुह] बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च (बीज की उत्पत्ति और प्रकट होना) रोहति। रुरोह। रुरुहतुः। यह धातु भी अनिट् है। रुह्+तास्+डा=रोढा (२०३) (१४१) और (ष्टुनाष्टुः) (२०६) रोढारौ। रोढारः। रोढासि। रोह्+स्य+ति=रोक्ष्यति (२०३) (२०५) रोक्ष्यतः। रोक्ष्यन्ति। रोक्षति। रोक्षाति। रोहति। रोहाति। रोहतु। अरोहत्। रोहेत्। रुह्यात्। अट्+रुह्+क्स+तिप्=अरुक्षत् (२०७) अरुक्षताम्। अरुक्षन्। अरोक्ष्यत् [कस] गतौ। कसति। चकास। चकसतुः। कसितासि। कसिष्यति। कासिषति। कासिषाति। कसतु। अकसत्। कसेत्। कस्यात्। अकासीत्। अकसीत्। अकसिष्यत् [वृत्] ज्वलादिगणः समाप्तः। ज्वल दीप्तौ धातु से लेकर

यहांतक ज्वलादि गण कहाता है। इस का प्रयोजन कृदन्त में आवेगा। और ये षद आदि परस्मैपद सात धातु समाप्त हुए॥

अथ गूह्यन्ताःस्वरितितोऽष्टत्रिंशत्। अब गुह पर्यन्त स्वरितेत् (जिन से क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो आत्मनेपद अन्यत्र परस्मैपद होता है वे उभयपदी) ३८ (अड़तीस) धातु कहते हैं [हिक्क] अव्यक्ते शब्दे। हिक्कते। हिक्कति [अञ्चु] गतौ याचने च (गति और मांगना) अञ्चते। अञ्चति। आनञ्चे। आनञ्च। अच्यात्। (१३९) [अचु] इत्येके। अचते। अचति। आचे। आच। अचितासे। अचितासि। अचिष्यते। अचिष्यति। आचिषतै। आचिषातै। आचिषति। आचिषाति। अचताम्। अचतु। आचत। आचत्। अचेत। अचेत्। अचिषीष्ट। अच्यात्। आचिष्ट। आचीत्। आचिष्यत। आचिष्यत् [अचि] इत्यपरे। इस में इतना ही भेद है कि इदित् होने से। अञ्च्यात् (१३९) नलोप नहीं होता [टुयाचृ] याच्ञायाम् (मांगना) याचते। याचति। ययाचे। ययाच। याचितासे। याचितासि। याचिष्यते। याचिष्यति। याचिषतै। याचिषातै। याचिषति। याचिषाति। याचताम्। याचतु। अयाचत। अयाचत्। याचेत। याचेत्। याचिषीष्ट। याच्यात्। अयाचिष्ट। अयाचीत्। अयाचिष्यत। अयाचिष्यत् [रेटृ] परिभाषणे (बहुत बोलना) रेटते। रेटति। रिरेटे। रिरेट [चते, चदे] याचने। चतते। चदते। चतति। चदति। चेते। चेदे। चचात। चेततुः। अचतीत्। (१६२) अचदीत्। [प्रोथृ] पर्य्याप्तौ (सामर्थ्य) प्रोथते। प्रोथति। पुप्रोथे। पुप्रोथ [मिदृ, मेदृ] मेधाहिंसनयोः (तीक्ष्ण बुद्धि और मारना) मेदते। मेदति। मिमिदे। मिमेदे। मिमेद। मिमिदतुः। मिमेदतुः [मिधृ, मेधृ] सङ्गमे च (मेल करना) और चकार से पूर्वोक्त दोनों अर्थ का समुच्चय जानो। मेधते। मेधति। मिमिधे। मिमेधे। मिमेध। मिमिधतुः। मिमेधतुः [मिथृ, मेथृ] मेधाहिंसनयोरित्येके। मेथते। मेथति [णिदृ, णेदृ] कुत्सासन्निकर्षयोः (निन्दा और समीप होना) नेदते। नेदति। नेदतः। निनिदे। निनेदे। निनिदतुः। निनेदतुः [शृधु, मृधु] उन्दने (गीलापन) शर्धते। मर्धते। शर्धति। मर्धति। शशृधे। शशृधतुः [बुधिर्] बोधने (बोधहोना) बोधते। बोधति। अबोधिष्ट। यहां आत्मनेपद विषय में (१९४) सूत्र से जन धातु के साहचर्य से दिवादि के बुध का ग्रहण होता है इस लिये चिण् न हुआ। अबुधत्। इरित् होने से अङ् (१३८) अबोधीत्। [उबुन्दिर्] निशामने (सुनाना) इस धातु में उ और इर् भाग की इत् संज्ञा होजाती है। बुन्दते। बुन्दति। बुबुन्दे। बुबुन्दतुः। अबुन्दिष्ट। अबुदत् (१३८) (१३९) अबुन्दीत् [वेणृ] गतिज्ञानचिन्तानिशामनवादित्रग्रहणेषु (गति, ज्ञान,

चिन्ता और वाजों (ढोलआदि) का ग्रहण करना [विन्‌] इत्येके । वेणते । वेनते । वेणति । वेनति । विवेने । विवेणे । विवेणतुः । वेणितासि । वेणितासे । वेणिष्यते । वेणिष्यति । वेणिषते । वेणिषाते । वेणिषति । वेणिषाति । वेणताम् । वेणतु । अवेणत । अवेणत् । वेणेत । वेणेत् । वेण्यात् । वेणिषीष्ट । अवेणिष्ट । अवेणीत् । अवेणिष्यत । अवेणिष्यत् [खनु] अवदारणे (खोदना) खनति । खनते । चखने । चखान । अतुस् में उपधालोप (२१४) चख्नतुः । चख्नुः । खनितासे । खनितासि । खनिष्यते । खनिष्यति । खानिषते । खानिषाते । खानिषति । खानिषाति । खनताम् । खनतु । अखनत । अखनत् । खनेत । खनेत् । खनिषीष्ट । खन्+यासुट्+सुट्+तिप् (१८५) न् को आकार विकल्प से होकर=खायात् । खन्यात् । अखनीत् । अखानीत् (१४४) अखनिष्ट । अखनिष्यत । अखनिष्यत् [चीवृ] आदानसंवरणयोः (ग्रहण, आच्छादन) चीवते । चीवति । चिचीवे । चिचीव । [चायृ] पूजानिशामनयोः (सत्कार और सुनाना) चायते । चायति । चचाये । चचाय । यहां वेद में कुछ विशेष है ॥ २३३ ॥

२३४—चायः की ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३५ ॥

चायृ धातु को वेद में बहुल करके की आदेश होवे । यहां द्विर्वचन होने से प्रथम ही अनेकाल् होने से चाय्मात्र के स्थान में की होकर पश्चात् द्विर्वचन होता है । की+की+एश्=चिक्ये । चिक्यतुः । चिक्युः । चचाय । बहुल ग्रहण से कहीं होता है कहीं नहीं भी होता [व्यय] गतौ । व्ययते । व्ययति । वव्यये । वव्याय । यकारान्त होने से वृद्धि का निषेध (१६२) अव्ययीत् । अव्ययिष्ट । [दाशृ] दाने (देना) दाशते । दाशति । ददाशे । ददाश । दाशितासे । दाशितासि । दाशिष्यते । दाशिष्यति । दाशिषते । दाशिषाते । दाशिषति । दाशिषाति । दाशताम् । दाशतु । अदाशत । अदाशत् । दाशेत । दाशेत् । दाशिषीष्ट । दाश्यात् । अदाशिष्ट । अदाशीत् । अदाशिष्यत । अदाशिष्यत् [मेषृ] भये (डर) गतावित्येके । मेषति । मेषते । मिमेषे । मिमेष [म्रेषृ, भ्लेषृ] गतौ । म्रेषते । म्रेषति । भ्लेषते । भ्लेषति [अस] गतिदीप्त्यादानेषु (गति, प्रकाश और लेना) असते । असति । आस । आसतुः । आसुः । आसे । आसाते । आसिरे [अष] इत्येके । किन्हीं के मत में पूर्वोक्तदन्त्य सकारान्त धातु नहीं मूर्द्धन्य षकारान्त है । अषति । अषते । [स्पश] बाधनस्पर्शनयोः (दुःख देना और स्पर्श करना) स्पशति । स्पशते । पस्पशे । पस्पाश (१२४) अस्पशिष्ट । अस्पाशीत् । अस्पशीत् [लष] कान्तौ (इच्छा) लष्यति । लषति । लषते । लष्यते (१८८) श्यन् । ललाष । लेषतुः । लेषुः । लेषे ।

लेषाते । लेषिरे । लषितासे । लषितासि । लषिष्यते । लषिष्यति । लाषिषते । लाषिषाते । लाषिषति । लाषिषाति । लषताम् । लषतु । अलषत् । लषेत् । लष्यात् । लषिषीष्ट । अलषिष्ट । अलाषीत् । अलषीत् । अलषिष्यत । अलषिष्यत् । [चष] भक्षणे (खाना) चषति । चषते । चेषतुः । चेषे [छष] हिंसायाम् । छषति । छषते । चच्छषतुः । चच्छषे [झष] आदानसम्वरणयोः (लेना, आच्छादन) झषति । झषते । जझाष । जझषे [भ्रक्ष, भ्लक्ष] अदने । भ्रक्षति । भ्रक्षते । भ्लक्षति । भ्लक्षते । बभ्रक्ष । बभ्रक्षे [भक्ष] इत्येके । भक्षति । भक्षते [दासृ] दाने दासति । दासते । ददास । ददासे [माहृ] माने (तोलना) माहति । माहते । ममाह । ममाहे । अमाहिष्ट । अमाहीत् [गुहू] सम्वरणे (आच्छादन करना) गुह्-शप्-तिप् । यहां ॥ २३४ ॥

२३५—ऊदुपधाया गोहः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ८९ ॥

गुण का निमित्त अजादि प्रत्यय परे हो तो गुह धातु की उपधा को ऊकार आदेश होवे । इस सूत्र में गुण किये गुह का ग्रहण इस लिये किया है कि जहां इस को गुण होता है वहीं ऊकार होवे अन्यत्र नहीं । ऊकार होने के पश्चात् लघूपध के न होने से गुण नहीं होता । गूहति । गूहतः । गूहन्ति । गूहते । गूहेते गूहन्ते । जुगूह । जुगुहतुः । जुगुहुः । जुगुहिथ । जुगोढ (२०३) (१४१) (२०६) जुगुहथुः । जुगुह । जुगूह । जुगुहिव । जुगुह्व । जुगुहिम । जुगुह्म । जुगुहे । जुगुहाते । जुगुहिरे । जुगुहिषे । जुगुह्+से=जुघुक्षे (२०३) (२०४) (२०५) जुगुहाथे । जुगुहिध्वे । जुगुहिढ्वे । जुघुढ्–ढ्वे । यहां प्रथम ढकार का लोप (२०६) होकर ॥ २३५ ॥

२३६— ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ॥ अ० ॥ ६ । ३ । १११ ॥

जहां रेफ और ढकार का लोप हुआ हो वहां पूर्व अण् को दीर्घ होवे । यहां घु के उकार को दीर्घ होकर । जुघूढ्वे । जुगूहे । जुगुहिवहे । जुगुह्वहे । जुगुहिमहे । जुगुह्महे । गूहितासि । गूहितासे । अनिट् पक्ष में । गुह्+तास्+डा=गोढा । यहां अजादि प्रत्यय के न होने से उपधा को ऊकार (२३५) नहीं होता । गोढारौ । गोढारः । गोढासि । गोढासे । गूहिष्यति । गूहिष्यते । घोक्ष्यति । घोक्ष्यतः । घोक्ष्यन्ति । घोक्ष्यते । गूहिषति । गूहिषाति । घोक्षति । घोक्षाति । गूहति । गूहाति । गूहिषतै । गूहिषातै । घोक्षतै । घोक्षातै । गूहतै । गूहातै । गूहताम् । गूहतु । अगूहत । अगूहत् । गूहेत । गूहेत् । गूहिषीष्ट । अनिट् पक्ष में । गुह्+सीयुट्+सुट्+त (२०३ । २०४ । २०५ । ५६ । १६३ । ४५)=घुक्षीष्ट । घुक्षीयास्ताम् । घुक्षीरन् । गूहिषीढ्वम् । गूहिषीध्वम् । घुक्षीध्वम् । गुह्यात् ।

अगूहिष्ट । अगूहिषत । अगूहीत् । और अनिट् पक्ष में । अट्—गुह्—क्स—त । इ
अवस्था में ॥ २३६ ॥

२३७—लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७३

आत्मनेपद विषय में दन्त्य अक्षर परे होतो दुह्, दिह्, लिह् और गुह धा
ओं से परे जो क्स प्रत्यय उस का लुक् विकल्प करके होवे प्रत्यय मात्र का लु
और लोप अन्त्य अल् के स्थान में होता है । यहां दन्त्य अक्षर त,ध्वम् और था
के परे क्स का लुक् होता है । अट्+गुह्+क्स+त (२३७ । २०३ । १४१) ष्टु
और (२३६)=अगूढ । अघुक्षत । अघुक्षाताम् (२०८) अघुक्षन्त । अगुह्+क्स+था
(२३७ । २०३ । १४१)=अगूढाः । अघुक्षथाः । अघुक्षाथाम् । अगुह्+क्स+ध्
(२३७ । २०३ । २०४ । २०६ । २३६)=अघूढ्वम् । अघुक्षि । अघुक्षावहि । अघुक्षामहि
अगूहिष्यत । अगूहिष्यत् । अघोक्ष्यत । अघोक्ष्यत् । इति हिक्कादय उदात्ताः स्वरिते
उभयतोभाषाःसमाप्ताः । ये हिक्कआदि अड़तीस उभयपदी धातु समाप्त हुए ॥

अथाजन्ता उभयपदिनः पञ्च । अब अजन्त उभयपदी पांच धातु कहते
[श्रिञ्] सेवायाम् (सेवा करना) यह धातु सेट् है । ञ् की इत्संज्ञा होने
(१०३) उभयपद इसी प्रकार सर्वत्र ञित् धातुओं से उभयपद जानो । श्रि
शप्+तिप् (२१) गुण=श्रयति । श्रयतः । श्रयन्ति । श्रयसि । श्रयते । श्रयेते
श्रयन्ते । शिश्राय । शिश्रियतुः (१५९) शिश्रिये । श्रयितासि । श्रयितासे । श्रयिष्यति
श्रयिष्यते । श्रायिषति । श्रायिषाति । श्रयति । श्रयाति । श्रायिषते । श्रायिषातै
श्रयतु । श्रयताम् । अश्रयत् । अश्रयत । श्रयेत् । श्रयेत । श्रीयात् (१६०) दीर्घ
श्रयिषीष्ट । अशिश्रियत् (१७६) चङ् (१८०) द्वित्व (१५९) इयङ् । अशिश्रियताम्
अशिश्रियन् । अशिश्रियः । अशिश्रियत । अशिश्रियेताम् । अशिश्रियन्त । अश्र
ष्यत् । अश्रयिष्यत [भृञ्] भरणे (धारण और पोषण) गुण होकर । भरति
भरते । बभार । बभ्रतुः । बभ्रुः । यहां यणादेश होता है विशेष नियम के हो
से सामान्य लिट् में इट् का निषेध (१४८) भारद्वाज के मत में थल् में इट्
निषेध (१४९) और अन्य ऋषियों के मत में थल् में इट् का निषेध (१५
होकर । बभर्थ । बभ्रथुः । बभ्र । बभार । बभर । बभृव । बभृम । बभ्रे । बभ्राते
बभ्रिरे । बभृषे । बभृढ्वे । बभृवहे । बभृमहे । भर्त्तासि । भर्त्तासे ॥ २३७ ॥

२३८—ऋद्धनोः स्ये ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७० ॥

ह्रस्व ऋकारान्त और हन धातु से परे जो स्य वलादिआर्द्धधातुक उस
इट् का आगम होवे । भरिष्यति । भरिष्यते । भार्षति । भार्षाति । भरति
भराति । भार्षते । भार्षातै । भरतु । भरताम् । अभरत् । अभरत । भरेत् । भरेत ॥२३

२३९—रिङ् शयग्लिङ्क्षु ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २८ ॥

श, यक् और यकारादि कित् ङित् आर्द्धधातुक लिङ् लकार परे हो
ऋकारान्त अङ्ग को रिङ् आदेश हो । ङित् होने से अन्त्य अल् ऋकार के स्थ
में होता है । और यह सूत्र रीङ् विधान का अपवाद है। म्रियात्। म्रियास्ता
म्रियासुः । आत्मनेपद विषय में॥ २३९ ॥

२४०—उश्च ॥ अ० ॥ १ । २ । १२ ॥

ऋवर्णान्त धातु से परे आत्मनेपद विषय में जो झलादि लिङ् और सिच्
कित्वत् हों। कित् होने से गुण वृद्धि का निषेध(४५)हो कर। भृषीष्ट। भृषीयास्ता
भृषीरन् । भृषीष्ठाः । भृषीयास्थाम् । भृषीढ्वम् । भृषीय । भृषीवहि । भृषीम
अभार्षीत् (१५८) वृद्धि । अभार्ष्टाम् । अभार्षुः । अभार्षीः । आभार्ष्टम् । अभा
अभार्षम् । अभार्ष्व । अभार्ष्म । आत्मनेपद विषय में सिच् कित्वत् (२४०) होक
अट्–भृ–सिच्–त । इस अवस्था में ॥ २४० ॥

२४१—ह्रस्वादङ्गात् ॥ अ० ॥ ८ । २ । २७ ॥

ह्रस्वान्त अङ्ग से परे जो सिच् उस का लोप होवे झल् परे हो तो । अभृ
अभृषाताम् । यहां झलादि प्रत्यय के न होने से सिच् का लोप नहीं हो
अभृषत । अभृथाः । अभृषाथाम् । अभृढ्वम् । अभृषि । अभृष्वहि । अभृष
अभरिष्यत् (२३८) इट् । अभरिष्यत [हृञ्] हरणे (पहुंचाना ग्रहण, च
और नाश करना आदि) [धृञ्] धारणे (धारण करना) इन दोनों धा
का भृञ् धातु के समान साधुत्व जानो। हरति। हरते। जहार । जह्रतुः । जह
जहार । जहर । जह्रव । जह्रम । जह्रे । जह्राते । जहृषे । जहृढ्वे । जहृव
हर्त्तासि । हर्तासे । हरिष्यति (२३८) इट् । हरिष्यते । हार्षति । हार्षा
हार्षते । हार्षाते । हरतु । हरताम् । अहरत् । अहरत । हरेत् । हरेत । ह्रिय
(२३९) रिङ् । हृषीष्ट (२४०) कित्वत् । हृषीढ्वम् । अहार्षीत् (१५८) वृद्धि । अ
(२४१)सिच् लोप । अहृषाताम् । अहृषत । अहरिष्यत् । अहरिष्यत । धरति । दध
और (१६१) सूत्र में तुजादि धातु सामान्य करके लिये जाते हैं जिन में वै
प्रयोगों में अभ्यास को दीर्घादेश देख पड़े वे सब तुजादि गणस्थ जानो ।
कारण । दाधार । ऐसा भी प्रयोग वेद में होता है । दध्रतुः । दधर्थ । द
दधृषे । धर्त्तासि । धर्त्तासे । धरिष्यति । धरिष्यते । धार्षते । धार्षाते । धार्षा
धरतु । धरताम् । अधरत् । अधरत । धरेत् । ध्रियात् । धृषीष्ट । धृषीढ्व
अधार्षीत् । अधृत । अधृषाताम् । अधृषत । अधृढ्वम् । अधरिष्यत् । अधरिष्य

[णीञ्] प्रापणे (लेचलना) नयति। नयते। निनाय। नी+नी+अतुस्=निन्यतुः (१५६) यण्। निन्युः। निनयिथ (१४८) निनेथ (१५७) निन्यथुः। निन्य। निनाय। निनय। निन्यिव। निन्यिम। निन्ये। निन्याते। निन्यिरे। नेतासि। नेतासे। नेयति। नेष्यते। नेषति। नेषाति। नयति। नयाति। नेषतै। नेषातै। नेषतै। नेषातै। नेषते। नेषाते। नयतै। नयातै। नयतु। नयताम्। अनयत्। अनयत। नयेत्। नयेत। नीयात्। नीयास्ताम्। नेषीष्ट। अनैषीत्। अनेष्ट। अनेषाताम्। अनेष्यत्। अनेष्यत। भरत्वादयश्चत्वारोऽनुदात्ताः॥

अथाजन्ताः परस्मैपदिनः। अब अजन्त परस्मैपदी धातु कहते हैं [धेट्] पाने (पीना) ट् की इत्संज्ञा और एकार को अय् आदेश होकर। धे+शप्+तिप्= धयति। धयतः। धयन्ति॥ २४१॥

२४२—आदेच उपदेशेऽशिति॥ अ०॥ ६। १। ४५॥

अशित् अर्थात् आर्द्धधातुक विषय में उपदेश में जो एजन्त धातु उस को आकार होवे। आकारान्त धातु सब अनिट् हैं। धा=णल्। इस अवस्था में॥२४२॥

२४३—आत औ णलः॥ अ०॥ ७। १। ३४॥

आकारान्त धातु से परे जो णल् उस को औकार आदेश होवे। धा—औ। द्वित्व हो कर। दधौ। धा—अतुस्। यहां॥ २४३॥

२४४—आतो लोप इटि च॥ अ०॥ ६। ४। ६४॥

अजादि कित् ङित् आर्द्धधातुक और इट् परे हों तो आकारान्त अङ्ग का लोप होवे। इस लोप के पहिले द्वित्व की प्राप्ति तो है फिर सब विधियों से लोप विधि के अति बलवान् होने से प्रथम लोप ही होता है फिर एकाच् के न होने से द्वित्व (३४) नहीं प्राप्त है इस लिये॥ २४४॥

२४५—द्विर्वचनेऽचि॥ अ०॥ १। १। ५९॥

द्विर्वचन का निमित्त अजादि प्रत्यय परे हो तो अच् के स्थान में जो आदेश है सो स्थानिरूप होजावे। यहां रूपातिदेश मानने से आकार का पुनरागमन हो कर द्विर्वचन होता है। धा+धा+ अतुस् =दधतुः। यहां द्विर्वचन होने के पश्चात् दूसरे धा के आकार का लोप हुआ है। दधुः। दधा+इट्+थल्=(२४४) दधिथ (१४८) भारद्वाज के मत में इट् का विधान और। दधाथ (१५७) इट् का निषेध। दधथुः। दध। दधौ। दधिव। दधिम। धाता। धातारौ। धातारः। धातासि। धास्यति। धास्यतः। धास्यन्ति। धासति। धासाति। धयति। धयाति। धयतु। अधयत्। धयेत्॥ २४५॥

२४६—दाधा घ्वदाप् ॥ अ० ॥ १ । १ । २० ॥

दारूप और धारूप जो धातु तथा इन की जो प्रकृति हैं उन की घुसंज्ञा होवे। दाप् और दैप् धातु को छोड़ के। इस का फल ॥ २४६ ॥

२४७—एर्लिङि ॥ अ० ॥ ६ । ६ । ६७ ॥

घुसंज्ञक धातु, मा, स्था, गा, पा, ओहाक्, सा इन धातुओं के आकार को एकार आदेश होवे कित् ङित् लिङ् परे हो तो धे को आकार (२४२) होता है उसी आकार को ए होकर। धेयात्। धेयास्ताम्। धेयासुः। धेयाः। धेयास्तम्। धेयास्त। धेयासम्। धेयास्व। धेयास्म ॥ २४७ ॥

२४८—विभाषा धेट्श्व्योः॥ अ० ॥ ३ । १ । ४९ ॥

धेट् और श्वि धातु से परे जो च्लि प्रत्यय उस के स्थान में चङ् आदेश विकल्प करके होवे। अट्+धा+धा+चङ्+तिप्=अदधत् (१८०) द्वित्व और (२४४) आ का लोप। अदधताम्। अदधन्। अदधः। अदधतम्। अदधत। अदधम्। अदधाव। अदधाम। अब जिस पक्ष में चङ् न हुआ वहां उत्सर्ग सिच् हो कर ॥ २४८ ॥

२४९-विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७८ ॥

घ्रा, धेट्, शा, छा और सा इन धातुओं से परे जो सिच् उस का विकल्प करके लुक् हो परस्मैपद विषय में। धेट् धातु की घुसंज्ञा होने से (८९) सूत्र से सिच् लुक् नित्य प्राप्त और अन्य धातुओं से अप्राप्त है इन दोनों का विकल्प होने से प्राप्ताप्राप्तविभाषा इस सूत्र में समझनी चाहिये सिच् का लुक् होकर। अट् + धा + तिप्=अधात्। अधाताम्। अधा + झि। यहां जुस् आदेश किसी से प्राप्त नहीं है इसलिये ॥ २४९ ॥

२५०-आतः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ११० ॥

जिस से परे सिच् का लुक् हुआ हो ऐसे आकारान्त धातु से परे जो झि उस को जुस् आदेश होवे। सिच् लुक् होने के पश्चात् प्रत्ययलक्षण कार्य्य मान के जुस् (१३४) हो जाता फिर यह सूत्र नियमार्थ है कि सिजलुगन्त से परे प्रत्ययलक्षण मान के आकारान्त धातुओं से परे हो जुस् हो अन्य से नहीं। अभूवन्। यहां भी सिच्लुक् (८९) हुआ है तो भी प्रत्ययलक्षण मान के जुस् नहीं होता। अट्+धा+जुस्=अधुः (८३) पररूप एकादेश। अधाः। अधातम्। अधात। अधाम्। अधाव। अधाम। सिच्लुक् (२४९) विकल्प से होता है जिस पक्ष में न हुआ वहां ॥ २५० ॥

२५१—यमरसनमातां सक्च ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७३ ॥

यम, रम, नम और आकारान्त धातुओं से परे जो सिच् उस को इट् का आगम और इन धातुओं को सक् का आगम होवे परस्मैपद विषय में । अट्+धा+सक्+इट्+सिच्+ईट्+तिप्=अधासीत् । सिच् के सकार का लोप (१३२) होजाता है । अधासिष्टाम् । अधासिषुः । अधासीः । अधासिष्टम् । अधासिष्ट । अधासिषम् । अधासिष्व । अधासिष्म । अधास्यत् । अधास्यताम् । अधास्यन् [ग्लै, म्लै] हर्षक्षये (आनन्द का नाश) ग्लै+शप्+तिप्=ग्लायति । ग्लायतः । ग्लायन्ति । लिट् आदि आर्द्धधातुक लकारों में धेट् के समान साधुत्व जानो । जग्लौ । जग्लतुः । मम्लौ । मम्लतुः । जग्लिथ । जग्लाथ । जग्लौ । जग्लिव । जग्लिम । ग्लातासि । ग्लास्यति । ग्लासति । ग्लासाति । ग्लायतु । अग्लायत् । ग्लायेत् । आशिषि लिङ् में एकारादेश (२४७) नित्य प्राप्त है ॥ २५१ ॥

२५२—वाऽन्यस्य संयोगादेः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६८ ॥

(२४७) सूत्र में कहे घुसंज्ञक आदि से अन्य संयोगादि आकारान्त धातुओं के आकार को एकार विकल्प करके हो कित् ङित् लिङ् परे हो तो । ग्लेयात् । ग्लायात् । म्लेयात् । म्लायात् । लुङ् में (२५१) सक् और इट् हो कर । अग्लासीत् । अग्लासिष्टाम् । अम्लासीत् । अग्लास्यत् [द्यै] न्यक्करणे (नीचों का तिरस्कार करना) द्यायति । दद्यौ । दद्यिथ । दद्याथ । द्याता । द्यास्यति । द्यासति । द्यासाति । द्यायतु । अद्यायत् । द्यायेत् । द्येयात् । द्यायात् । अद्यासीत् । अद्यासिष्टाम् । अद्यासिषुः । अद्यास्यत् [द्रै] स्वप्ने (सोना) द्रायति । दद्रौ । द्राता । द्रेयात् । द्रायात् । अद्रासीत् [ध्रै] तृप्तौ । ध्रायति । दध्रौ । ध्रेयात् । ध्रायात् । अध्रासीत् [ध्यै] चिन्तायाम् (विचारना) ध्यायति । दध्यौ । ध्याता । ध्यास्यति । ध्यासति । ध्यासाति । ध्यायतु । अध्यायत् । ध्यायेत् । ध्येयात् । ध्यायात् । अध्यासीत् । अध्यास्यत् [रै] शब्दे । रायति । ररौ । रातासि । रायात् । अरासीत् [स्त्यै, ष्ट्यै] शब्दसङ्घातयोः (शब्द और समुदाय) इन दोनों में एक धातु षोपदेश है उस को भी सत्व होने पश्चात् एक ही प्रकार के रूप होते हैं षोपदेश का फल णिजन्त और सन्नन्त प्रक्रिया में आवेगा । स्त्यायति । तस्त्यौ । स्त्येयात् । स्त्यायात् । अस्त्यासीत् [खै] खदने (खाना) खायति । चखौ । चखतुः । चखुः । चखिथ । चखाथ । खातासि । खास्यति । खासति । खासाति । खायतु । अखायत् । खायेत् । खायात् । अखासीत् । अखास्यत् [क्षै, जै, षै] क्षये (नाश) क्षायति । चक्षौ । क्षेयात् । क्षायात् । अक्षासीत् । जायति । जजौ । जायात् । अजासीत् । यहां भी

षे धातु को आकार हो कर सा हो जाता है परन्तु (२४७ । २४८) सूत्रों में सा धातु के ग्रहण से दिवादि गण का (षो) लिया जाता है । सायति । ससौ । सायात् । असासीत् [कै, गै] शब्दे । कायति । चकौ । कायात् । अकासीत् । गायति । जगौ । गायात् । अगासीत् [शै, श्रै] पाके (पकाना) शायति । शशौ । शायात् । अशासीत् । श्रायति । शश्रौ । श्रातासि । श्रास्यति । श्रासति । श्रासाति । श्रायति । श्रायाति । श्रायतु । अश्रायत् । श्रायेत् । श्रेयात् (२४७) श्रायात् । अश्रासीत् । अश्रास्यत् [पै, ओवै] शोषणे (शोखना) पायति । पपौ । पपतुः । पपुः । पपिथ । पपाथ । पपथुः । पप । पपौ । पपिव । पपिम । पातासि । पास्यति । पासति । पासाति । पायति । पायाति । पायतु । अपायत् । पायेत् । और पा धातु से भी उपदेश में आकारान्त पा धातु का ग्रहण(२४७)सूत्रमें होता है । पायात् । इस कारण एत्व न हुआ अपासीत् ।अपासिष्टाम् । अपासिषुः । अपास्यत् । ओवै धातु में ओकार इत् जाता है प्रयोजन कृदन्त में आवेगा । वायति । ववौ । वायात् । अवासीत् [ष्टै] वेष्टने (लपेटना) स्तायति । तस्तौ । स्तेयात् । स्तायात् । अस्तासीत् [ष्णै] वेष्टने शोभायां चेत्येके किन्हो के मत में ष्णै धातु का शोभा अर्थ भी है। स्नायति । सस्नौ । स्नेयात्। स्नायात् । अस्नासीत् । अस्नास्यत् [दैप्) शोधने (शोधना) इस में प् की इत्संज्ञा होती है और घु संज्ञा का निषेध होने से एकार का निषेध (२४७) और सिच् लुक् (८८) नहीं होता । दायति। ददौ । दायात् । अदासीत् [पा] पाने (पीना) यहां पा के स्थान में पिब आदेश (२३१) पिबति । पिबतः । पिबन्ति । पपौ । पपतुः । पपुः । पपिथ । पपाथ । पातासि । पास्यति । पासति । पासाति । पिबति । पिबाति । पिबतु । अपिबत् । पिबेत् । पेयात् । पेयास्ताम् । पेयासुः । अट्+पा+तिप्=अपात् (८८) सिच् का लुक् । अपाताम् । अपुः । अपास्यत्[घ्रा]गन्धोपादाने (गन्ध का ग्रहण वा गन्ध के द्वारा किसी पदार्थ का ग्रहण करना) घ्रा के स्थान में (२३१) जिघ्र आदेश । जिघ्रति । जिघ्रतः । जिघ्रन्ति । जघ्रौ । जघ्रतुः । घ्राता । घ्रास्यति । घ्रासति । घ्रासाति । जिघ्रति । जिघ्राति । जिघ्रतु । अजिघ्रत् । जिघ्रेत् । संयोगादि होने से एकार का विकल्प (२५२) घ्रेयात् । घ्रायात् । और सिच् लुक् का विकल्प (२४८) अघ्रात् । अघ्राताम् । अघ्रुः । अघ्राः । अघ्रातम् । अघ्रात । अघ्राम् । अघ्राव । अघ्राम । अघ्रासीत् । अघ्रासिष्टाम् । अघ्रासिषुः । अघ्रास्यत् [ध्मा] शब्दाग्निसंयोगयोः (शब्द और अग्नि के साथ वायु का संयोग) ध्मा के स्थान में धम(२३१) आदेश । धमति । धमतः । धमन्ति । दध्मौ । दध्मतुः । दध्मुः । दध्मिथ । दध्माथ । दध्मथुः ।

दध्म । दध्मौ । दध्मिव । दध्मिम । ध्मातासि । ध्मास्यति । ध्मासति । ध्मासाति । धमति । धमाति । धमतु । अधमत् । धमेत् । ध्मेयात् । ध्मायात् । अध्मासीत् । अध्मास्यत् [ष्ठा] गतिनिवृत्तौ (ठहर जाना) (२३१) से तिष्ठ होकर । तिष्ठति । तिष्ठतः । तिष्ठन्ति । तस्थौ । तस्थतुः । स्थातासि । स्थास्यति । स्थासति । स्थासाति । तिष्ठति । तिष्ठाति । तिष्ठतु । अतिष्ठत् । तिष्ठेत् । स्थेयात् (२४७) एकारादेश होता है । अस्थात् (८८) सिच् लुक् । अस्थाताम् । अस्थुः । अस्थास्यत् [म्ना] अभ्यासे (अभ्यास करना) मन आदेश (२३१) मनति । मम्नौ । म्नाता । म्नास्यति । म्नासति । मनति । मनाति । मनतु । अमनत् । मनेत् । म्नेयात् । म्नायात् । अम्नासीत् । अम्नास्यत् [दाण्] दाने (देना) दाण् को यच्छ (२३१) यच्छति । यच्छतः । यच्छन्ति । प्रयच्छति । ददौ । दातासि । दास्यति । दासति । दासाति । यच्छति । यच्छाति । यच्छतु । अयच्छत् । यच्छेत् । इस धातु में णकार अनुबन्ध यच्छ आदेश विधायक सूत्र में विशेष बोध के लिये है । निरनुबन्ध दारूप की घुसंज्ञा (२४६) होकर एकार (२४७) होता है । देयात् । देयास्ताम् । और घुसंज्ञा से ही सिच् लुक् । अदात् । अदाताम् । अदुः । अदाः । अदास्यत् ॥ २५२ ॥

२५३—ऋतश्च संयोगादेर्गुणः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १० ॥

लिट् लकार परे हो तो ऋकारान्त संयोगादि धातु को गुण होवे । लिट् को कित् संज्ञा (१३७) होने से गुण (४५) नहीं प्राप्त है इस लिये यह सूत्र है । और णल् प्रत्यय में जहां वृद्धि प्राप्त है वहां इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती पूर्वविप्रतिषेध मान कर वृद्धिही हो जाती है । जह्वार । जह्वरतुः । जह्वरुः । थल् में । भारद्वाज के मत में इट् का निषेध (१४८) और अन्यों के मत में इट् (१५७) नहीं होता । जह्वर्थ । जह्वरथुः । जह्वर । जह्वार । जह्वर । जह्वरिव । जह्वरिम । ह्वर्तासि । लिट् में गुण (२३८) ह्वरिष्यति । ह्वार्षति । ह्वार्षाति । ह्वर्षति । ह्वर्षाति । ह्वरति । ह्वराति । ह्वरतु । अह्वरत् । ह्वरेत् ॥ २५३ ॥

२५४—गुणोऽर्त्तिसंयोगाद्योः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २९ ॥

ऋधातु और संयोगादि ऋकारान्त धातु को गुण होवे यक् और कित् आर्द्धधातुक लिङ् परे हो तो ह्वर्यात् । ह्वर्यास्ताम् । ह्वर्यासुः । लुङ् में वृद्धि (१५८) हो कर । अह्वार्षीत् । अह्वार्ष्टाम् । अह्वार्षुः । अह्वार्षीः । अह्वार्ष्टम् । अह्वार्ष्ट । अह्वार्षम् । अह्वार्ष्व । अह्वार्ष्म । अह्वरिष्यत् [स्वृ] शब्दोपतापयोः (शब्द और पीड़ा देना) स्वरति । स्वरतः । स्वरन्ति । वलादि लिट् लकार में विकल्प से इट्

(१४०) सस्वार । सस्वरतुः (२५३) गुण । सस्वरुः । सस्वरिथ । सस्वर्थ । सस्वर । सस्वार । सस्वर ॥ २५४ ॥

२५५—श्र्युकः किति ॥ अ० ॥ ७ । २ । ११ ॥

श्रिञ् और एकाच् उगन्त धातु से परे जो कित् आर्द्धधातुक उस को इट् का आगम न होवे (१४०) सूत्र यद्यपि इस सूत्र से पर है तथापि उस विकल्प को बाध के पीछे विधान के प्रथम निषेध प्रकरण के आरम्भ सामर्थ्य से इट् का निषेध इस सूत्र से प्राप्त है फिर (१४८) सूत्र के नियमानुसार वस् मस् में नित्य इट् होता है । सस्वरिव । सस्वरिम । स्वरिता । स्वर्त्ता । स्वरिष्यति । यहां परत्व से नित्य इट् (२३८) होता है । स्वार्षति । स्वार्षाति । स्वरतु । अस्वरत् । स्वरेत् । स्वर्यात् (२५४) अस्वारीत् । अस्वारिष्टाम् । अस्वार्षीत् । अस्वार्ष्टाम् । अस्वरिष्यत् । [स्मृ] चिन्तायाम् (स्मरण करना) स्मरति । सस्मार । सस्मरतुः । सस्मरुः । सस्मर्थ । स्मर्त्ता । स्मरिष्यति । स्मार्षति । स्मार्षाति । स्मरतु । अस्मरत् । स्मरेत् । स्मर्यात् । अस्मार्षीत् । अस्मार्ष्टाम् । अस्मरिष्यत् [वृ] संवरणे (ढांकना) वरति । वरतः । वरन्ति । ववार । वव्रतुः । वव्रुः । ववर्थ । वर्त्तासि । वरिष्यति । वार्षति । वार्षाति । वरतु । अवरत् । वरेत् । व्रियात् (२३९) रिङ् । अवार्षीत् । अवरिष्यत् । [सृ] गतौ (२३१) से सृ को धौ आदेश शीघ्र चलने में हो कर । धावति । धावतः । अन्यत्र । सरति । ससार । सस्रतुः । सस्रुः । ससर्थ (१४८) सूत्र के नियम से इट् का निषेध । सस्रिव । सस्रिम । सर्त्ता । सरिष्यति । सार्षति । सार्षाति । धावति । धावाति । धावतु । सरतु । अधावत् । असरत् । धावेत् । सरेत् । स्रियात् । स्रियास्ताम् ॥ २५५ ॥

२५६ —सर्त्तिशास्त्यर्त्तिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५६ ॥

सृ, शासु, और ऋधातु से परे जो च्लि प्रत्यय उस के स्थान में अङ् आदेश होवे परस्मैपद विषय में । इस से अङ् हो कर । अट्—सृ—अङ्—तिप् । इस अवस्था में अङ् के ङित् होने से गुण की प्राप्ति नहीं है इस लिये ॥ २५६ ॥

२५७-ऋदृशोऽङि गुणः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १६ ॥

ऋवर्णान्त और दृश धातु को गुण होवे अङ् परे होतो । यहां ऋवर्णान्त सृ धातु को अर् गुण हो कर । असरत् । असरताम् । असरन् । असरः । असरतम् । असरत । असरम् । असराव । असराम । असरिष्यत् । असरिष्यताम् । असरिष्यन् । [ऋ] गतिप्रापणयोः । यहां प्रापण अर्थ के पृथक् कहने से गमन और प्राप्ति दोनों अर्थ इस धातु से समझे जाते हैं अर्थात् ज्ञान अर्थ नहीं (२३१) से ऋच्छ

आदेश हो कर। ऋच्छति। ऋच्छतः। ऋच्छन्ति। ऋ–णल्। यहां परत्व से ऋ को आर् वृद्धि हो कर आकार को द्वित्व और सवर्ण दीर्घ हो कर। आर ॥२५७॥

२५८—ऋच्छत्यॄताम् ॥ अ० ॥ ७। ४। ११ ॥

तुदादि गण का ऋच्छ, ऋ और ॠकारान्त धातुओं को गुण हो लिट् परे हों तो यहां भी कित् लिट् में गुण नहीं प्राप्त है इस लिये यह सूत्र है। अर्+अर्+अतुस्=आरतुः। आरुः। (१४८) सूत्र के नियम से लिट् में सर्वत्र नित्य इट् प्राप्त है। भारद्वाज के मत में थल् में इट् का निषेध (१४९) प्राप्त और अन्य लोगों के मत में थल् में इट् का निषेध (१५७) प्राप्त है इन सब का अपवाद ॥२५८॥

२५९—इडत्त्यर्त्तिव्ययतीनाम् ॥ अ० ॥ ७। २। ६६ ॥

अद्, ऋ और व्येञ् इन धातुओं से परे थल् को नित्य इडागम होवे आरिथ। आरथुः। आर २। आरिव। आरिम। यहां व, म में (१४८) सूत्र के नियम से ही नित्य इट् होता है। अर्त्ता। अर्त्तारौ। अर्त्तारः। अर्त्तासि। अरिष्यति (२३८) इट्। आर्षति। आर्षाति। अर्षति। अर्षाति। अर्षत्। अर्षात्। ऋच्छति। ऋच्छाति। ऋच्छतु। आर्च्छत्। ऋच्छेत्। अर्यात् (२५४) गुण। लुङ् में च्लि के स्थान में अङ् (२५६) और अङ् के परे गुण (२५७) होकर। आरत्। आरताम्। आरन्। आरः। आरतम्। आरत। आरम्। आराव। आराम। आरिष्यत् [गॄ,घृ] सेचने (सींचना) गरति। घरति। जगार। जग्रतुः। जगर्थ। जघर्थ। जग्रिव। जग्रिम। गर्त्तासि। गरिष्यति। गार्षति। गार्षाति। गरतु। अगरत्। गरेत्। ग्रियात् (२३९) रिङ्। घ्रियात्। अगार्षीत् (१५८) वृद्धि हो कर। अगार्ष्टाम्। अगार्षुः। अघार्षीत्। अगरिष्यत् [ध्वृ] हूर्छने। ध्वरति। ध्वरतः। ध्वरन्ति। दध्वार। दध्वरतुः (२५३) गुण। दध्वरुः। ध्वर्त्ता। ध्वरिष्यति। ध्वार्षति। ध्वार्षाति। ध्वरतु। अध्वरत्। ध्वरेत्। ध्वर्यात् (२५४) गुण। ध्वर्यास्ताम्। ध्वर्यासुः। अध्वार्षीत्। अध्वार्ष्टाम्। अध्वरिष्यत् [स्रु] गतौ। स्रवति। स्रवतः। स्रवन्ति। सुस्राव। सुस्रुवतुः (२५९) उवङ्। सुस्रुवुः। सुस्रोथ। सुस्रुवथुः। सुस्रुव। सुस्राव। सुस्रव (१४८) सूत्र के नियम से इट् का निषेध। सुस्रुव। सुस्रुम। स्रोतासि। स्रोष्यति। स्रोषति। स्रोषाति। स्रोषति। स्रोषाति। स्रवति। स्रवाति। स्रवतु। अस्रवत्। स्रवेत्। स्रूयात् (१६०) दीर्घ लुङ् में (१७९) सूत्र से च्लि के स्थान में चङ् और द्विर्वचन (१८०) हो कर। अट्+स्रु+स्रु+चङ्+तिप्=असुस्रुवत्। अस्रोष्यत् [षु] प्रसवैश्वर्य्ययोः (उत्पत्ति और सामर्थ्य का होना) सवति। सुषाव। सुषुवतुः। सुषुवुः। सुषोथ। सुषुविव। सोता। सोष्यति। सौषति

सोषाति । सवति । सवाति । सवतु । असवत् । सवेत् । स
असौषीत् । असौष्टाम् । असौषुः । असोष्यत् [स्रु] स्रवणे (स्रु
प्राप्त है उस का बाधक ॥ २५९ ॥

२६०—श्रुवः शृ च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७

श्रु धातु से श्नु प्रत्यय और श्रु धातु को शृ आदेश होवे ।
को इत्संज्ञा होकर शित् होने से सार्वधातुक संज्ञा होजाती
णत्व (२०२) होकर । शृ+णु+तिप् (२१) गुण=शृणो
प्रत्यय में उवङ् (१५९) आदेश प्राप्त है इस लिये ॥ २६० ॥

२६१—हुश्नुवोः सार्वधातुके ॥ अ० ॥ ६ ।

संयोग जिस के पूर्व न हो ऐसे हु और श्नु प्रत्ययान्त अ
को यण् आदेश होवे अजादि सार्वधातुक परे हो तो । शृण्वन्ति
शृणुथ । शृणोमि । शृणु+वस्=शृण्वः (२००) उकार लोप व
शृण्मः । शृणुमः । शुश्राव । शुश्रुवतुः (१५९) उवङ् । शुश्रुवुः ।
शुश्रुव । शुश्राव । शुश्रव । शुश्रुव । शुश्रुम । श्रोता । श्रोतारौ । श
श्रोष्यति । श्रोषाति । शृणवति । शृणवाति । शृणोतु । शृ
शृण्वन्तु । शृणु (२०१) हिलुक् । शृणुतात् । शृणुतम् । श
शृणवाव । शृणवाम । अशृणोत् । अशृणुताम् । अशृण्वन् । अ
अशृणुत । अशृणवम् । अशृण्व । अशृणुव । अशृण्म । अशृणुम
याताम् । शृणुयुः । शृणुयाः । शृणुयातम् । शृणुयात । श
शृणुयाम । श्रूयात् (१६०) दीर्घ । अश्रौषीत् (१५८) वृद्धि अ
अश्रोष्यत् [ध्रु] स्थैर्ये (स्थिर होना) ध्रवति । दुध्राव । दुध्रुव
विथ । दुध्रुविव । ध्रोता । ध्रोष्यति । ध्रोषति । ध्रोषाति ।
ध्रवतु । अध्रवत् । ध्रवेत् । ध्रूयात् । अध्रौषीत् । अध्रोष्यत् [द्रु,
द्रवति । दुद्राव । दुद्रव । दुद्रुवतुः । दुद्रुवतुः । दुद्रोथ । द
दुद्रोथ । यहां (१४८) नियम से नित्य इट् का निषेध होजात
के मत में ऋकारान्त के निषेध का नियम होने से थल् में
भी क्रादि नियामक सूत्र अपवाद जानो । द्रोता । द्रोतासि
द्रोषाति । द्रवतु । अद्रवत् । द्रवेत् । द्रूयात् । दूयात् । अद्रौषी

(१८८) जिगाय । जिग्यतुः । जिग्युः । जिगेथ । जिगयिथ । जिज्ञाय । जिज्ञियतुः । जिज्ञेथ । जिज्ञयिथ । जेतासि । ज्ञेतासि । जेष्यति । ज्ञेष्यति । जेषति । जेषाति । जयतु । अजयत् । जयेत् । जीयात् (१८०) दीर्घ । अजैषीत् । अजेष्यत् । अज्ञैषीत् । अज्ञेष्यत् । इति घेटादयोऽनुदात्ता उदात्तेतः परस्मैपदिनः षट्चत्वारिंशत् समाप्ताः । ये घेट् आदि ४६ धातु अनिट् परस्मैपदी समाप्त हुए ॥

अथ डीङन्ता ङितस्त्रयोविंशतिः । अब डीङ् पर्यन्त २३ धातु आत्मनेपदी कहते हैं [ष्मिङ्] ईषद्धसने (थोड़ा हंसना) स्मयते (२१) गुण । स्मयेते । स्मयन्ते । सिष्मिये । सिष्मियिढ्वे । सिष्मियिध्वे । स्मेतासे । स्मेष्यते । स्मेषते । स्मेषाते । स्मयतै । स्मयातै । स्मयताम् । अस्मयत । स्मयेत । स्मेषीष्ट । स्मेषीढ्वम् । अस्मेष्ट । अस्मेढ्वम् । अस्मेष्यत [गुङ्] अव्यक्ते शब्दे । गवते । जुगुवे । जुगुविढ्वे । जुगुविध्वे । गोतासे । गोष्यते । गोषते । गोषाते । गवतै । गवातै । गवताम् । अगवत । गवेत । गोषीष्ट । गोषीढ्वम् । अगोष्ट । अगोढ्वम् । अगोष्यत [गाङ्] गतौ । इस धातु के अनुबन्ध का लोप होने पश्चात् आकारान्त के रहने से शप् के अकार के साथ सवर्णदीर्घ एकादेश होता है । गा+शप्+त= गाते । गाते । गाते (१२३) अत् । गासे । गाथे । गाध्वे । गे । गावहे । गामहे । गा+एश् । यहां आकारलोप (२४४) और द्विर्वचन की व्यवस्था (२४५) होकर । जगे । जगाते । जगिरे । जगिषे । जगाथे । जगिध्वे । जगे । जगिवहे । जगिमहे । गाता । गास्यते । गासतै । गासातै । गासते । गासाते । गातै २ । गाताम् ३ । अगात । अगाताम् । अगात । गेत । गेयाताम् । गेरन् । गासीष्ट । अगास्त । अगासाताम् । अगासत । अगास्थाः । अगासाथाम् । अगाध्वम् । अगासि । अगास्वहि । अगास्महि । अगास्यत [उङ्, कुङ्, खुङ्, गुङ्, घुङ्, ङुङ्] शब्दे । अवते । ऊवे । ऊवाते । ऊविरे । ऊविढ्वे । ऊविध्वे । ओतासे । ओष्यते । ओषते । ओषातै । अवतै । अवातै । अवताम् । अवेताम् । अवन्ताम् । आवत । अवेत । ओषीष्ट । ओषीढ्वम् । औष्ट । औषाताम् । औषत । औढ्वम् । औष्यत । कवते । चुकुवे । कोतासे । कोष्यते । कोषतै । कोषातै । कवताम् । अकवत । कवेत । कोषीष्ट । अकोष्ट । अकोष्यत । खवते । चुखुवे । गवते । जुगुवे । घवते । जुघुवे । ङवते । ञुङुवे । ङोता । ङोष्यते । ङोषते । ङोषाते । ङवताम् । अङवत । ङवेत । ङोषीष्ट । अङोष्ट । अङोष्यत [च्युङ्, ज्युङ्, प्रुङ्, प्लुङ्,] गतौ [क्रुङ्] इत्येके [रुङ्] गतिरेषणयोः (गति और हिंसा) च्यवते । ज्यवते । प्रवते । प्लवते । क्रवते । रवते । रुरुवे । रुरुविढ्वे । रुरुविध्वे । और रु धातु सेट् अनिट् व्यवस्था में पढ़ा है वहां यु, रु आदि अदादि धातुओं के साहचर्य से अदादि का

ही रु धातु भी लिया जाता है। रोतासे। रोष्यते। रोषते। रोषाते। रवताम्। अरवत। रवेत। रोषीष्ट। रोषीढ्वम्। अरोष्ट। अरोढ्वम्। अरोष्यत [धृङ्] अवध्वंसने (नाशकरना) धरते। दध्रे। धर्त्तासे। धरिष्यते (२३८) इट्। धार्षते। धार्षाते। धरताम्। अधरत। धरेत। धृषीष्ट (२४०) इस से कित् वत् होकर (४५) गुण का निषेध होता है। अधृत (२४० । २४१) अधृषाताम्। अधृषत। अधरिष्यत [मेङ्] प्रणिदाने (किसी पदार्थ के बदले में दूसरा वस्तु देना) मयते। मयेते। मयन्ते। ममे (२४२ । २४४ । २४५) ममाते। ममिरे। मातासे। मास्यते। मासतै। मासातै। मयताम्। अमयत। मयेत। मासीष्ट। अमास्त। अमासाताम्। अमासत। अमास्यत [देङ्] रक्षणे। दयते ॥ २६१ ॥

२६२—दयतेर्दिगि लिटि ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ९ ॥

दयति धातु को दिगि आदेश होवे लिट् लकार परे होतो। इस सूत्र में (दय, दानगतिरक्षणहिंसादानेषु) इस लिखित धातु का ग्रहण इस लिये नहीं होता कि दय धातु से लिट् में आम् प्रत्यय कहचुके हैं। और यह सूत्र द्विर्वचन का अपवाद है। दिगि+एश्=दिग्ये (१५६) यण्। दिग्याते। दिग्यिरे। दातासे। दास्यते। दासतै। दासातै। दयताम्। अदयत। दयेत। दासीष्ट। दा धातु की प्रकृति होने से इस की घु संज्ञा (२४६) होकर ॥ २६२ ॥

२६३—स्थाघ्वोरिच्च ॥ अ० ॥ १ । २ । १७ ॥

स्था धातु और घु संज्ञक धातुओं को इकारादेश और इन से परे जो सिच् प्रत्यय सो कित्वत् हो आत्मनेपद विषय में। स्था धातु प्रथम लिख चुके हैं। परन्तु वहां आत्मनेपद के न होने से इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई पदव्यवस्था प्रक्रिया में काम आवेगा। यहां दा धातु के आकार को इकार होकर। अट्+दि+सिच्+त=अदित (२४१) सूत्र से सिच् के सकार का लोप। अदिषाताम। अदिषत। अदिथाः। अदिषाथाम्। अदिध्वम्। अदिषि। अदिष्वहि। अदिष्महि। [श्यैङ्] गतौ। श्यायते। शिश्ये। श्यातासे। श्यास्यते। श्यासतै। श्यासातै। श्यायताम्। अश्यायत। श्यायेत। श्यासीष्ट। अश्यास्त। अश्यास्यत [प्यैङ्] वृद्धौ (बढ़ना) प्यायते। पप्ये। प्यातासे। अप्यास्त। अप्यास्यत [त्रैङ्] पालने। (रक्षा) त्रायते। तत्रे। त्राता। त्रास्यते। त्रासतै। त्रासातै। त्रायतम्। अत्रायत। त्रायेत। त्रासीष्ट। अत्रास्त। अत्रास्यत। ष्मिङ्प्रभृतयोऽनुदात्ता आत्मनेपदिनः। ष्मिङ् से यहांतक सब धातु अजन्त अनिट् जानो ॥

[पूङ्] पवने (शुद्धि) पवते। पुपुवे। पुपुविढ्वे। पुपुविध्वे। पवितासे।

पविष्यते । पाविषते । पाविषाते । पविषते । पविषाते । पवते । पवाते । पवताम् । अपवत । पवेत । पविषीष्ट । अपविष्ट । अपविष्यत [मूङ्] बन्धने (बांधना) मवते । [डीङ्] विहायसागतौ (आकाश में उड़ना) डयते । डिड्ये । डयिता । डयिष्यते । डायिषते । डायिषाते । डायिषते । डायिषाते । डयताम् । अडयत । डयेत । डयिषीष्ट । अडयिष्ट । अडयिष्यत । ये पूङ् आदि तीन धातु सेट् हैं ॥ [तॄ] प्लवनसंतरणयोः (कूदना और तरना) उदात्तः परस्मैपदी । यह धातु सेट् परस्मैपदी है । तरति । तरतः । तरन्ति । ततार । यहां प्रथम वृद्धि हो कर द्वित्व होता है । तॄ—अतुस् । यहां अप्राप्त गुण (२५८) और एत्वाभ्यास लोप (१६४) हो कर । तेरतुः । तेरुः । तेरिथ । तेरथुः । तेर । ततार । ततर । तेरिव । तेरिम ॥ २६३ ॥

२६४—वॄतो वा ॥ अ० ॥ ७ । २ । ३८ ॥

वृङ् वृञ् और ॠकारान्त धातुओं से परे जो इट् का आगम उस को विकल्प करके दीर्घ होवे । परन्तु लिट् लकार परे न हो । तरीतासि । तरितासि । इस सूत्र में लिट का निषेध इस लिये है कि ।तेरिथ ।यहां दीर्घ न होवे ।तरीष्यति। तरिष्यति।तारीषति । तारीषाति । तारिषति । तारिषाति । तरीषति । तरीषाति , तरिषति । तरिषाति । तरति । तराति । तरतु । अतरत् । तरेत् ॥२६४॥

२६५—ॠत इद्धातोः ॥ अ० ॥ ७ । १ । १०० ॥

ॠकारान्त धातु अङ्ग को इत् आदेश होवे । इस इत् आदेश के कहने में कुछ विशेष नहीं है । परन्तु जहां गुण वृद्धि की प्राप्ति है वहां तो परविप्रतिषेध मान के गुण वृद्धि ही होते हैं और जहां गुण वृद्धि की प्राप्ति नहीं वहां इत्व होता है । तिर्+या+तिप्=तीर्यात् (१८७) दीर्घ । तीर्यास्ताम् । तीर्यासुः ॥ २६५ ॥

२६६ –सिचि च परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४० ॥

परस्मैपद विषय में सिच् परे होतो वृङ् वृञ् और ॠकारान्त धातुओं से परे इट् को दीर्घ न होवे (२६४) सूत्र से सर्वत्र दीर्घ प्राप्त है उस का विशेष विषय में बाधक है । अतारीत् । अतारिष्टाम् । अतारिषुः । अतरीष्यत् ॥

अथाष्टावनुदात्तेतः । अब आठ ८ धातु सेट् आत्मनेपदी कहते हैं [गुप] गोपने । यहां गोपन धातु का स्वार्थ लिया जाता है सन् के विना इस का प्रयोग स्वतन्त्र कहीं नहीं आता सन्नन्त का अर्थ निन्दा होता है वही इस का स्वार्थ है । [तिज] निशाने । इस धातु का स्वार्थ सहन अर्थ है ॥ २६६ ॥

२६७—गुप्तिज्किद्भ्यः सन् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५ ॥

गुप्, तिज् और कित् इन तीन धातुओं से स्वार्थ में सन् प्रत्यय हो। गुप् धातु से निन्दा और तिज से सहने अर्थ में सन् प्रत्यय जानो । गुप्+सन् ॥ २६७ ॥

२६८—सन्यङोः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ९ ॥

सन् और यङ् प्रत्यय परे हों तो अनभ्यास धातु के प्रथम एकाच् अवयव को और अजादि के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व होवे । जुगुप्स (१०७) अभ्यास को चवर्गादेश होकर इस को धातु संज्ञा (१६७) होकर अनुदात्त अनुबन्ध के केवल गुप् आदि में चरितार्थ न होने से सन्नन्त धातुओं से भी आत्मनेपद होते हैं । जुगुप्स+शप्+त=जुजुप्सते । जुगुप्सेते । जुगुप्सन्ते । जुगुप्साञ्चक्रे (१६९ । १७०) जुगुप्साम्बभूव । जुगुप्सामास । जुगुप्सितासे । जुगुप्सिष्यते । जुगुप्सिषतै । जुगुप्सिषातै । जुगुप्सताम् । अजुगुप्सत । जुगुप्सेत । जुगुप्सिषीष्ट । अजुगुप्सिष्ट । अजुगुप्सिष्यत । तिज्—तिज्—सन् । यहां । द्वितीय चवर्ग जकार को (खरिच) सूत्र से क् होकर सन् के सकार को ष (२०५) होकर । तितिक्ष+शप्+त= तितिक्षते । तितिक्षाञ्चक्रे । तितिक्षामास । तितिक्षाम्बभूव । तितिक्षितासे । इत्यादि [मान] पूजायाम् (सत्कार) [बध] बन्धने (बांधना) ॥ २६८ ॥

२६९—मान्बध्दान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६ ॥

मान, बध, दान, और शान धातुओं से सन् प्रत्यय होवे । और सन् प्रत्यय के परे इन के अभ्यास को दीर्घ होवे मान धातु से जानने की इच्छा में और बध धातु से चित्तविकार अर्थ में सन् जानो । मान धातु के अभ्यास को प्रथम ह्रस्व (३९) होकर अभ्यास के अकार को इकार (१८२) होता है उसी इकार को (मानबध०) सूत्र से दीर्घ जानो । मीमांसते । मीमांसेते । मीमांसन्ते । मीमांसाञ्चक्रे । मीमांसाम्बभूव । मीमांसामास । बध्+बध्+सन्+शप्+त=बीभत्सते (२०४) भष् भाव अभ्यास को दीर्घ और चर्त्व हो कर । बीभत्सेते । बीभत्साञ्चक्रे । बीभत्सितासे । बीभत्सिष्यते । बीभत्सिषतै । बीभत्सिषातै । बीत्सताम् । अबीभत्सत । बीभत्सेत । बीभत्सिषीष्ट । अबीभत्सिष्ट । अबीभत्सिष्यत । गुप् आदि धातुओं से परे सन् प्रत्यय को इट् का आगम (४६) और पूर्व को गुण प्राप्त है सो गुप् आदि धातुओं से परे सन् प्रत्यय के न कहने से सन् को आर्द्धधातुक संज्ञा नहीं होती जो धातु से विहित हैं उन्हीं प्रत्ययों की आर्द्धधातुक संज्ञा (४९) कही है । और आर्द्धधातुक संज्ञा के न होने से इट् और गुण दोनों ही नहीं होते । गुपादयश्चत्वार उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः । ये गुप आदि ४ चार सेट्

आत्मनेपदी धातु समाप्त हुए [रभ] राभस्ये (शीघ्र करना) रभते । रभेते । रेभे । रेभाते । रभ्+तास्+डा—रब्धा (१४१) धत्व और भकार को जश् बकार होता है। रब्धारौ । रब्धासे । रप्स्यते (चर्) राप्सते । राप्साते। रभताम् । अरभत । रभेत । रप्सीष्ट । अरब्ध (१४२) स लोप । अरप्साताम् । अरब्धाः । अरप्साथाम्। अरब्ध्वम् । अरप्सि । अरप्स्वहि । अरप्स्महि । अरप्स्यत [डुलभष्] प्राप्तौ । डु की इत्संज्ञा (१५०) और ष् की इत्संज्ञा का प्रयोजन कृदन्त में आवेगा । लभते । लभेते । लभन्ते । लभसे । लेभे । लेभाते । लेभिरे । लेभिषे । लब्धासे । लप्स्यते । लाप्सते । लाप्साते । लभताम् । अलभत । लभेत । लप्सीष्ट । अलब्ध । अलप्साताम् । अलप्स्यत [ष्वञ्ज] परिष्वङ्गे (लपेटना) ॥ २६९ ॥

२७०—दंशसञ्जस्वञ्जां शपि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २५ ॥

दंश, सञ्ज और स्वञ्ज धातुओं के उपधा नकार का लोप होवे शप् प्रत्यय परे हो तो । स्वजते । स्वजेते । स्वजन्ते । यह धातु संयोगान्त है इस कारण इस से परे लिट् को कि संज्ञा (१३७) नहीं प्राप्त है और कित्संज्ञा के न होने से उपधा नकार का लोप भी नहीं पाता इस लिये ॥ २७० ॥

२७१—वा०—श्रन्थिग्रन्थिदम्भिस्वञ्जीनामिति वक्तव्यम् ॥

श्रन्थ, ग्रन्थ, दम्भ, स्वञ्ज इन धातुओं से परे जो लिट सो कित्वत् हो । यहां स्वञ्ज धातु से परे कित्व हो कर उपधा नकार का लोप (१३८) होकर । सस्वजे । सस्वजाते । सस्वजिरे । इस धातु के अनिट् होने से । स्वञ्ज्+तास्+ डा= स्वङ्क्ता । कुत्व चर्त्व और परसवर्ण । स्वङ्क्तासे । स्वङ्क्ष्यते । स्वङ्क्षते । स्वङ्क्षाते। स्वजताम् । अस्वजत । स्वजेत । स्वङ्क्षीष्ट । अस्वङ्क्त । अस्वङ्क्ष्यत [हद]पुरीषोत्सर्गे (हगना) हदते । जहदे । जहदाते । जहदिरे । हत्ता । हत्स्यते ।हात्सते। हात्साते । हदताम् । अहदत । हदेत । हत्सीष्ट । अहत्त । अहत्साताम् । अहत्सत । अहत्स्यत । रभादयश्चत्वारोऽनुदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः । ये रभ आदि अनिट् आत्मनेपदी चार धातु समाप्त हुए ॥

अथ परस्मैपदिनः पंचदश । अब १५ पन्द्रह धातु परस्मैपदी कहते हैं [ञिष्विदा] अव्यक्ते शब्दे उदात्तः । परस्मैपदी । स्वेदति ।सिस्वेद ।सिस्विदतुः। सिस्विदुः । स्वेदिता । स्वेदिष्यति। स्वेदिषति । स्वेदिषाति । स्वेदतु । अस्वेदत् । स्वेदेत् ।स्विद्यात् । अस्वेदीत् । अस्वेदिष्यत् [स्कन्दिर्] गतिशोषणयोः (गति और शोखना)स्कन्दति।चस्कन्द। चस्कन्दतुः । चस्कन्दिथ ॥ २७१ ॥

२७२—झरो झरि सवर्णे ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ६५ ॥

हल् से परे जो झर् उस का लोप हो सवर्णी झर् परे हो तो । स्कन्द् + थल् = स्कन्थ । यहां नकार से परे दकार का लोप होता है । स्कन्तासि । स्कन्त्स्यति । स्कन्त्सति । स्कन्त्साति । स्कन्दतु । अस्कन्दत् । स्कन्देत् । स्कद्यात् (१३९) नकार का लोप लुङ् में इरित् होने से अङ् (१३८) विकल्प । अस्कदत् (१३९) नलोप । पक्ष में । अस्कान्त्सीत् । अस्कान्ताम् । अस्कान्त्सुः (१३५) वृद्धि । अस्कान्त्सीः । अस्कान्तम् । अस्कान्त । अस्कान्त्सम् । अस्कान्त्स्व । अस्कान्त्स्म [यभ] मैथुने (स्त्रीसंग करना) यभति । यभतः । यभन्ति । ययाभ । येभतुः । येभुः । येभिथ (२१५) ययब्ध । यब्धासि । यप्स्यति । याप्सति । याप्साति । यभति । यभाति । यभतु । अयभत् । यभेत् । यभ्यात् । अयाप्सीत् । अयाब्धाम् । अयाप्सुः । अयाप्सीः । अयाब्धम् । अयाब्ध । अयाप्सम् । अयाप्स्व । अयाप्स्म । अयप्स्यत् [णम] प्रह्वत्वे शब्दे (नम-के बोलना) नमति । ननाम । नेमतुः । नेमुः । नेमिथ । ननन्थ । नेमथुः । नेम । ननाम । ननम । नेमिव । नेमिम । नन्तासि । नंस्यति । नांसति । नांसाति । नमति । नमाति । नमतु । अनमत् । नमेत् । नम्यात् । यह धातु अनिट् तो है परन्तु लुङ् लकार में इट् और सक् का आगम (२५१) होजाता है । अनंसीत् । अनंसिष्टाम् । अनंसिषुः । अनंस्यत् [गम्लृ,सृप्लृ] गतौ ॥ २७२ ॥

२७३—इषुगमियमां छः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७७ ॥

इष,गम और यम धातुओं को छकारादेश होवे शित् प्रत्यय परे हो तो । यहां अन्त्य अल् गम के मकार को छकार होकर । गच्छति । गच्छतः । गच्छन्ति । जगाम । जग्मतुः । जग्मुः (२१४) उपधालोप । जगमिथ । जगन्थ (२१५) गन्ता । गन्तारौ । गन्तारः । गन्तासि ॥ २७३ ॥

२७४—गमेरिट् परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५८ ॥

परस्मैपदविषय में गम धातु से परे सकारादि आर्द्धधातुक को इट् का आगम होवे । गमिष्यति । गमिष्यतः । गमिष्यन्ति । गच्छति । गच्छाति । गच्छत् । गच्छात् । गच्छतु । अगच्छत् । गच्छेत् । गम्यात् । लुङ् लकार में (२१७) सूत्र से अङ् और अङ् के परे उपधालोप का निषेध (२१४) होने से उपधालोप नहीं होता । अगमत् । अगमताम् । अगमन् । अगमः । अगमतम् । अगमत । अगमम् । अगमाव । अगमाम । अगमिष्यत् । सर्पति । सर्पतः । सर्पन्ति । ससर्प । सस्रपतुः । ससर्पिथ । सस्रपथुः ॥ २७४ ॥

२७५—अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५९ ॥

कित्भिन्न झलादि प्रत्यय परे हो तो ऋकार जिस की उपधा में हो ऐसा जो उपदेश में अनुदात्त (अनिट्) धातु उस को अम् का आगम होवे विकल्प करके । मित् आगम अन्त्य अच् से परे होता है । सृअम्+प्+तासि+डा= स्रप्ता । सर्प्ता । स्रप्तासि । सर्प्तासि । अम् के अकार को मान के यण् होता और पक्ष में गुण (५१) हो जाता है । स्रप्स्यति । सर्प्स्यति । स्रप्सति । स्रप्साति । सर्प्सति । सर्प्साति । सर्पति । सर्पाति । सर्पतु । असर्पत् । सर्पेत् । सृप्यात् । असृपत् (२१७) अङ् । असृपताम् । असृपन् । असृप: । असृपतम् । असृपत । असृपम् । असृपाव । असृपाम । अस्रप्स्यत् । असर्प्स्यत् [यम] उपरमे (शान्त होना) (२७३) छकारादेश हो कर । यच्छति । यच्छत: । यच्छन्ति । ययाम । येमतु: । येमिथ । ययन्थ । येमिव । यन्तासि । यंस्यति । यांसति । यांसाति । यच्छतु । अयच्छत् । यच्छेत् । यम्यात् । लुङ् में (१५१) इट् और सक् । अयंसीत् अयंसिष्टाम् । अयंसिषु: । अयंस्यत् [तप] सन्तापे । (दु:ख भोगना) तपति । ततापं । तेपतु: । तप्ता । तप्स्यति । ताप्सति । ताप्साति । तपति । तपाति । तपतु । अतपत् । तपेत् । तप्यात् । अताप्सीत् । अताप्ताम् । अताप्सु: । अताप्सी: । अतप्स्यत् । [त्यज] हानौ (हानि होनी) त्यजति । त्यजत: । त्यजन्ति । तत्याज । तत्यजिथ । तत्यक्थ । तत्यजिव । वैदिक प्रयोग विषय में त्यज आदि निम्न लिखित धातुओं के प्रयोग कुछ विशेष होते हैं । यद्यपि प्रथम स्पर्द्ध धातु पर ही इस सूत्र को लिखना था तोभी सर्वत्र समझ लेना चाहिये ॥ २७५ ॥

२७६—अपस्पृधेथामानृचुरानृहुश्चिच्युषेतित्याजश्राता: श्रितमाशीराशीर्त्ता: ॥ अ० ॥ ६ । १ । । ३६ ॥

(अपस्पृधेथाम्) इस प्रयोग में लङ् लकार उत्तम पुरुष के द्विवचन में (स्पर्द्ध, संघर्षे) धातु को द्विर्वचन रेफ को सम्प्रसारण और अनभ्यास के अकार का लोप निपातन से किया है । अट्+स्पर्द्ध+स्पर्द्ध+आथाम्=अपस्पृधेथाम् । और दूसरा प्रकार यह भी है कि अप उपसर्ग पूर्वक स्पर्द्ध धातु के रेफ को सम्प्रसारण और अकार का लोप ही निपातन है वेद में माङ् का योग न हो तो भी अट् का निषेध है । (आनृचु:) और (आनृहु:) यहां (अर्च, पूजायाम्) और (अर्ह, पूजायाम्) इन दोनों धातुओं से लिट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन (उस्) में रेफ को संप्रसारण अकार का लोप तत्पश्चात् द्वित्व निपातन से और (१०६) सूत्र से अभ्यास के ऋकार को अकार होता है (चिच्युषे) यहां (च्युङ्, गतौ) धातु से लिट्

लकार मध्यम पुरुष के एक वचन में अभ्यास को सम्प्रसारण और इट् का अभाव निपातन से किया है [तित्याज] यहां इसी त्यज धातु के अभ्यास को सम्प्रसारण निपातन से किया है। तित्यजतुः। इत्यादि (श्राताः) यहां (श्रीञ् पाके) धातु को कृदन्त क्त प्रत्यय के परे श्रा भाव निपातन किया है (श्रितम्) और यहां भी उक्त धातु को क्त के परे श्रिभाव है (श्राशीः) (आशीर्त्तः) यहां भी आङ् पूर्वक उक्त श्रीञ् धातु को क्विप् और (क्त) प्रत्यय के परे शीर् आदेश हुआ है। त्यक्तासि। त्यक्ष्यति। त्यक्षति। त्यक्षाति। त्यजतु। अत्यजत्। त्यजेत्। त्यज्यात्। अत्याक्षीत्। अत्याक्ताम्। अत्याक्षुः। अत्याक्षीः। अत्याक्तम्। अत्याक्त। अत्याक्षम्। अत्याक्ष्व। अत्याक्ष्म। अत्यक्ष्यत् [षञ्ज] सङ्गे (मेल) (२७०) सूत्र से उपधानकार का लोप होकर। सजति। सजतः। ससञ्ज। ससञ्जतुः। ससञ्जिथ। ससङ्क्थ। सङ्क्तासि। सङ्क्ष्यति। सङ्क्षाति। सजतु। असजत्। सजेत्। सज्यात्। असाङ्क्षीत्। असाङ्क्ताम्। असाङ्क्षुः। (१२५) वृद्धि। असङ्क्ष्यत् [दृशिर्] प्रेक्षणे (अच्छे प्रकार देखना) पश्य (२३१) आदेश सूत्र से होकर। पश्यति। पश्यतः। पश्यन्ति। ददर्श। ददृशतुः। ददृशुः॥ २७६॥

२७७—विभाषा सृजिदृशोः॥ अ०॥ ७। २। ६५॥

सृज और दृश धातु से परे जो थल् उस को विकल्प करके इडागम होवे। इट् पक्ष में। ददर्शिथ। अनिट् पक्ष में। दृदृश्—थल्। यहां॥ २७७॥

२७८—सृजिदृशोर्झल्यमकिति॥ अ०॥ ६। १। ५८॥

कित् भिन्न झलादि प्रत्यय परे हो तो सृज और दृश धातुओं को अम् आगम होवे। यह सूत्र (२७५) सूत्र का अपवाद है क्योंकि (२७५) सूत्र में सामान्य ऋदुपध धातुओं को अम् आगम विकल्प से कहा है उस का यह विशेष है। ददृअम्+श्+थल्=दद्रष्ठ। ऋकार को यण् और (२३२) सूत्र से शकार को षकार होता है। ददृशथुः। ददृश। ददर्श। ददृशिव। ददृशिम। द्रष्टासि। द्रक्ष्यति। द्राक्षति। द्राक्षाति। पश्यति। पश्याति। पश्यतु। अपश्यत्। पश्येत्। दृश्यात् (१३८) सूत्र से अङ् का विकल्प होकर अङ् पक्ष में। अदर्शत् (२५७) गुण और जिस पक्ष में अङ् नहीं होता वहां (२०७) सूत्र से च्लि के स्थान में क्स प्राप्त है इस लिये॥ २७८॥

२७९—न दृशः॥ अ०॥ ३। १। ४७॥

दृश धातु से परे च्लि के स्थान में क्स आदेश न होवे। फिर अम् (२७८) और वृद्धि (१२५) होकर। अद्राक्षीत्। अद्राष्टाम्। अद्राक्षुः। अद्राक्षीः। अद्राष्टम्।

अद्राष्ट । अद्राक्षम् । अद्राक्ष्व । अद्राक्ष्म । अद्रक्ष्यत् [दंश] दशने (काटखाना) नकार लोप (२७०) दशति । दशतः । दशन्ति । ददंश । ददंशतुः । ददंशिथ । ददंष्ठ (२३३) ष को ष । दंष्टासि । दङ्क्ष्यति । दङ्क्षति । दङ्क्षाति । दशति । दशाति । दशतु । अदशत् । दशेत् । दश्यात् (१३८) अदाङ्क्षीत् । अदांष्टाम् । अदाङ्क्षुः । अदङ्क्ष्यत् [कृष] विलेखने (जोतना, खींचना, वा खोदना) कर्षति । चकर्ष । चकृषतुः । चकर्षिथ । क्रष्टासि । यहां विकल्प से अम् (२७५) और पक्ष में गुण होता है । क्रक्ष्यति । कर्क्ष्यति । क्रक्षति । क्रक्षाति । कर्क्षति । कर्क्षाति । कर्षति । कर्षाति । कर्षतु । अकर्षत् । कर्षेत् । कृष्यात् । लुङ् में च्लि के स्थान में नित्य क्स (२०७) प्राप्त है इस लिये ॥ २७९ ॥

२८०—वा०—स्पृशमृशकृषतृपदृपां च्लेः सिज्वा ॥

स्पृश, मृश, कृष, तृप और दृप धातुओं से परे च्लि के स्थान में सिच् विकल्प करके हो अर्थात् एक पक्ष में क्स और दूसरे पक्ष में सिच् भी रहे । जिस पक्ष में सिच् हुआ वहां वृद्धि (१३५) और अम् होकर । अक्राक्षीत् । अक्राष्टाम् । अकार्क्षीत् । अकार्ष्टाम् । अकार्क्षुः । और जिस पक्ष में क्स होता है वहां । अकृक्षत् । अकृक्षताम् । अकृक्षन् । अकर्क्ष्यत् [दह] भस्मीकरणे (भस्म कर देना) दहति । ददाह । देहतुः । देहिथ । ददग्ध । दग्धासि । धक्ष्यति । धक्षति । धक्षाति । दहति । दहाति । दहतु । अदहत् । दहेत् । दह्यात् । अधाक्षीत् । अदाग्धाम् । अधाक्षुः । अधाक्षीः । अदाग्धम् । अदाग्ध । अधाक्षम् । अधाक्ष्व । अधाक्ष्म । अधक्ष्यत् [मिह] सेचने (सींचना) मेहति । मिमेह । मिमेहिथ । मेढा । मेक्ष्यति । मेक्षति । मेक्षाति । मेहति । मेहाति । मेहतु । अमेहत् । मेहेत् । मिह्यात् । अमिक्षत् (२०७) क्स । अमिक्षाताम् । अमिक्षन् । अमेक्ष्यत् । इति स्कन्दादयोऽनुदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः । ये अनिट् परस्मैपदी धातु समाप्त हुए ॥

[कित] निवासे रोगापनयने च (निवास और रोगों को हटाना) (२६७) सूत्र से सन् और द्वित्व (२६८) होकर । चिकित्सति । इस धातु का सन्नन्त में केवल रोगापनयन ही अर्थ घटता है । और विपूर्वक सन्नन्त केवल संशय अर्थ में ही आता है । विचिकित्सति । सन्देहं करोतीत्यर्थः । और निवास अर्थ में चुरादिस्थ होने से णिच् होकर । केतयति । प्रयोग बनता है । चिकित्साञ्चकार । चिकित्साम्बभूव । चिकित्सामास । चिकित्सिता । चिकित्सिष्यति । चिकित्सिषति । चिकित्सिषाति । चिकित्सतु । अचिकित्सत् । चिकित्सेत् । चिकित्स्यात् । अचिकित्सीत् । अचिकित्सिष्यत् । उदात्तः परस्मैपदी । यह धातु सेट् परस्मैपदी है परन्तु कोई २ लोग इस को आत्मनेपदी भी कहते हैं उन के मत में । चिकित्सते । चिकित्साञ्चक्रे । आदि रूप होंगे ।

इतोवहत्यन्ताः स्वरितेतः। अब यहां से वह धातु पर्य्यन्त स्वरितेत् (उभयपदी) कहते हैं क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो आत्मनेपद (१०२) अन्यत्र परस्मैपद होते हैं [दान] खण्डने (काटना) [शान] तेजने (तीक्ष्ण करना) इन दोनों धातुओं से सन् और अभ्यास को दीर्घ (२६९) और द्वित्व (२६८) हो कर। दीदांसते। दीदांसति। शीशांसते। शीशांसति। दीदांसाञ्चक्रे। दीदांसाञ्चकार। दीदांसितासे। दीदांसितासि। अदीदांसिष्ट। अदीदांसीत्। ये दोनों धातु सेट् हैं [डुपचष्] पाके इस धातु के डु और ष् इत् जाते हैं। पचते। पचति। पचतः। पचन्ति। पपाच। पेचतुः। पेचिथ। पपक्थ। पेचे। पेचाते। पक्तासे। पक्तासि। पक्ष्यते। पक्ष्यति। पाचतै। पाचातै। पचै। पचातै। पाचति। पाचाति। पचति। पचाति। पचताम्। पचतु। अपचत। अपचत्। पचेत्। पचेत। पक्षीष्ट। पच्यात्। अपक्त। अपक्षाताम्। अपाक्षीत्। अपाक्ताम्। अपाक्षुः। अपक्ष्यत। अपक्ष्यत् [षच] समवाये (संबन्ध करना) यह धातु सेट् है। सचते। सचति। ससाच। सेचतुः। सेचिथ। सेचे। सचितासे। सचितासि। असचिष्ट। असाचीत्। असचीत् [भज] सेवायाम् (सेवा करना) भजते। भजति। बभाज। भेजतुः (१६४) एत्वाभ्यासलोप। भेजिथ। बभक्थ। भेजे। भक्तासि। भक्तासे। भक्ष्यते। भक्ष्यति। भक्षीष्ट। भज्यात्। अभक्त। अभाक्षीत्। अभाक्ताम्। अभक्ष्यत। [रञ्ज] रागे (रंगना) ॥ २८० ॥

२८१-रञ्जेश्च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २६ ॥

रञ्ज धातु के अनुनासिक का लोप हो शप् परे होतो। रजते। रजति। ररञ्ज। ररञ्ज। रङ्क्तासे। रङ्क्ष्यति। अरङ्क्त। अराङ्क्षीत्। अराङ्क्ताम्। अरङ्क्ष्यत्। [शप] आक्रोशे (कोसना) शपते। शपति। शशाप। शेपतुः। शेपिथ। शशप्थ। शप्तासे। शप्तासि। शप्स्यते। शप्स्यति। शापसतै। शापसातै। शपतै। शपातै। शापसति। शापसाति। शपति। शपाति। शपताम्। शपतु। अशपत। अशपत्। शपेत्। शप्सीष्ट। शप्यात्। अशप्त। अशप्साताम्। अशप्सत। अशापसीत्। अशाप्ताम्। अशाप्सुः। अशप्स्यत। अशप्स्यत् [त्विष] दीप्तौ (प्रकाश) त्विषते। त्विषति। तित्वेष। तित्विषतुः। तित्वेषिथ। तित्विषे। त्वेष्टासे। त्वेष्टासि। त्वेक्ष्यते। त्वेक्षते। त्वेक्षातै। त्वेक्षतै। त्वेक्षाति। त्वेषतै। त्वेषातै। त्वेक्षति। त्वेक्षाति। त्वेषति। त्वेषाति। त्विषताम्। त्विषतु। अत्विषत। अत्विषत्। त्विषेत। त्विषेत्। त्विक्षीष्ट (१६३) कित् होकर (४५) गुण का निषेध हो जाता है। त्विक्षीयास्ताम्। त्विक्षीरन्। अत्विक्षत (२०७) क्स। अत्विक्षाताम् (२०८) क्सलोप। अत्विक्षत। अत्विक्षत्। अत्विक्षताम्। अत्विक्षन्। अत्वेक्ष्यत। अत्वेक्ष्यत्। [यज] देवपूजा

सङ्गतिकरणदानेषु (विद्वानों का सत्कार, मेल करना और दान करना) यजते। यजति ॥ २८१ ॥

२८२—लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७ ॥

लिट् लकार परे हो तो (२८३) सूत्र में पढ़े वचि आदि और (२८६) सूत्र में कहे ग्रहि आदि धातुओं के अभ्यास को संप्रसारण होवे। इस सूत्र में अभ्यास को सम्प्रसारण कहने से द्वित्व होने पश्चात् सम्प्रसारण होता है। यह सूत्र अकित् विषय में संप्रसारण होने के लिये है। यज्+यज्+णल्=इयाज। यहां अभ्यास के यकार को इ हुआ है। और कित् विषय में ॥ २८२ ॥

२८३—वचिस्वपियजादीनां किति ॥ अ० ॥ ६ । १ । १५ ॥

वच, स्वप, और यजादि धातुओं को संप्रसारण होवे। यज धातु से ले कर भ्वादि गण के अन्त पर्य्यन्त यजादि समझने चाहिये। यहां द्वित्व होने से प्रथम ही संप्रसारण होता है। इ-अज्-अतुस् (२१८) पूर्वरूप एकादेश हो कर द्वित्व की पुनः प्राप्ति होने से इज् मात्र को द्वित्व होता है। इज्+इज्+अतुस्=ईजतुः। सवर्णदीर्घ एकादेश होता है। ईजुः। इयजिथ। इयष्ठ (२३३) ष आदेश। ईजथुः। ईज। इयाज। इयज। ईजिव। ईजिम। ईजे। ईजाते। ईजिरे। यष्टासे। यष्टासि। यक्ष्यते। यक्ष्यति। याक्षते। याक्षाते। यजते। यजाते। याक्षति। याक्षाति। यजति। यजाति। यजताम्। यजतु। अयजत। अयजत्। यजेत। यजेत्। यक्षीष्ट। इज्यात् (२८३) संप्रसारण। अयष्ट। अयक्षाताम्। अयक्षत। अयष्ठाः। अयाक्षीत्। अयाष्टाम्। अयाक्षुः। अयक्ष्यत। अयक्ष्यत् [टुवप] बीज सन्ताने (बीज बोना खेत में वा स्त्री में) छेदने च। यह धातु काटने अर्थ में भी है। वपते। वपति। पूर्ववत् लिट् में संप्रसारण (२८२) हो कर। उवाप। ऊपतुः (२८३) ऊपुः। उवपिथ। उवप्थ। ऊपे। ऊपाते। ऊपिरे। वप्तासे। वप्तासि। वप्स्यति। वप्स्यते। वाप्सते। वाप्साते। वाप्सति। वाप्साति। वपति। वपाति। वपताम्। वपतु। अवपत। अवपत्। वपेत। वपेत्। वप्सीष्ट। उप्यात् (२८३) सम्प्रसारण। अवाप्सीत्। अवाप्ताम्। अवाप्सुः। अवप्त। अवप्साताम्। अवप्सत। अवप्स्यत। अवप्स्यत् [वह] प्रापणे (पहुंचाना) वहति। वहते। उवाह (२८२) ऊहतुः। (२८३) ऊहुः। उवहिथ। उवोढ (२३०) अवर्ण को ओकार। ऊहथुः। ऊह। उवाह। उवह। ऊहिव। ऊहिम। ऊहे। ऊहाते। ऊहिरे। वोढासि। वोढासे। वक्ष्यति। वक्ष्यते। वाक्षतै। वाक्षातै। वक्षतै। वक्षातै। वाक्षते। वाक्षाते। वक्षते। वक्षाते। वहतै। वहातै। वाक्षति। वाक्षाति। वक्षति। वक्षाति। वहति।

वहाति। वहतु । वहताम् । अवहत् । अवहत । वहेत । वहेत् । उह्यात् (२८३) सम्प्रसारण । वत्तीष्ट। अवाचात् । अवोढाम् । अवाक्षुः । अवाक्षीः । अवोढम्। अवोढ। अवाक्षम्। अवाक्ष्व। अवाक्ष्म। अवोढ । अवक्षाताम् । अवक्षत । अवोढाः। अवक्षाथाम् । अवोढ्वम्। अवक्षि । अवक्ष्वहि । अवक्ष्महि । अवक्ष्यत् । अवक्ष्यत । पचादयोऽनुदात्ताः स्वरितेत उभयपदिनः सचतिवर्जम् । सच धातु को छोड़ के पच आदि सेट् उभयपदी धातु हैं [वस] निवासे (वसना) वसति । वसतः । वसन्ति। उवास ॥२८३॥

२८४—शासिवसिघसीनां च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६० ॥

इण् और कवर्ग से परे शास, वस और घस धातु के सकार को षकार आदेश होवे । घस धातु का । जक्षतुः । प्रयोग लिख चुके हैं वहां आदेश का सकार न होने से (५६) सूत्र की प्राप्ति नहीं है इस लिये इस का सम्बन्ध वहां भी समझना चाहिये यहां । ऊषतुः । वस के सकार को षकार होता है । ऊषुः । उवसिथ । उवस्थ । वस्तासि । वत्स्यति (२१६) स को त होता है । वात्सति । वात्साति । वसति । वसाति । वसतु । अवसत् । वसेत् । उष्यात् । अवात्सीत् । अवात्ताम् । अवात्सुः । अवत्स्यत् [वेञ्] तन्तुसन्ताने (वस्त्र बिनना) वयते । वयति । एकार को अय् आदेश हो जाता है ॥ २८४ ॥

२८५—वेञो वयिः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४१ ॥

वेञ् धातु को वयि आदेश विकल्प करके होवे लिट् लकार परे हो तो । वयि आदेश में इकार उच्चारणार्थ है उस को इत्संज्ञा हो कर । वय्+वय+णल्= उवाय (२८२) अभ्यास को संप्रसारण ॥ २८५ ॥

२८६—ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६ ॥

ग्रह, ज्या, वयि, व्यध, वश, व्रश्चू, प्रच्छ, और भ्रस्ज धातुओं को संप्रसारण हो ङित् और चकार से कित् संज्ञक प्रत्यय परे हों तो । वेञ् धातु को वयि आदेश (२८५) होता है । उस में व और य दोनों संप्रसारण के स्थानी हैं । वय्—अतुस् । यहां परत्वसे यकार को प्राप्त है इस लिये ॥ २८६ ॥

२८७—लिटि वयो यः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३८ ॥

लिट् लकार परे हो तो वय धातु के यकार को संप्रसारण न होवे किन्तु ॥२८७॥

२८८—वश्चास्याऽन्यतरस्यां किति ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३९ ॥

कित् लिट् परे हो तो इस वय धातु के यकार को वकार आदेश विकल्प करके होवे । जिस पक्ष में वकार हुआ वहां प्रथम अभ्यास के वकार को संप्रसारण हो

कर। उव्+उव्+अतुस्=ऊवतुः। ऊवुः। तास प्रत्यय के परे वयि आदेश के न होने से (१५७) और (१४९) सूत्रों से थल् में इट् का विकल्प नहीं होता किन्तु नित्य इट्। उवयिथ। ऊवथुः। और जिस पक्ष में यकार को वकार (२८८) नहीं हुआ वहां। ऊयतुः। ऊयुः। ऊयथुः। ऊय। ऊय। उवाय। उवय। ऊयिव। ऊयिम। वयि आदेश को स्थानिवत् होने से ञित् हो कर आत्मनेपद (१०३) होते हैं। यकार को वकार पक्ष में। ऊवे। ऊवाते। ऊविरे। अब जिस पक्ष में वेञ् को वयि आदेश (२८५) नहीं होता वहां एकार को आकारादेश (२४२) हो कर अकित् विषय में (२८२) और कित् विषय में (२८३) से संप्रसारण प्राप्त है इस लिये ॥ २८८ ॥

२८९—वेञः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४० ॥

लिट् लकार परे हो तो वेञ् धातु को संप्रसारण न होवे फिर धेट् आकारान्त के समान। ववौ। ववतुः। ववुः। वविथ। ववाथ। ववथुः। वव। ववौ। वविव। वविम। ववे। ववाते। वविरे। वातासि। वातासे। वास्यति। वास्यते। वयति। वयते। वास्यते। वायातै। वयतु। वयताम्। अवयत्। अवयत। वयेत्। वयेत। ऊयात्। वासीष्ट। अवासीत्। अवासिष्टाम्। अवासिषुः (२५१) अवास्त। अवासाताम्। अवासत। अवास्यत्। अवास्यत [व्येञ्] संवरणे। व्ययति। व्ययते। आर्द्धधातुक विषय में व्येञ् धातु को भी आकारादेश (२४२) प्राप्त है इस लिये ॥ २८९ ॥

२९०—न व्यो लिटि ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४६ ॥

व्येञ् धातु को आकार आदेश न होवे लिट् लकार परे हो तो। व्ये+व्ये+णल्=विव्याय। यहां अभ्यास के यकार को संप्रसारण (२८२) परत्व से प्राप्त और उसी का लोप (३८) सूत्र से प्राप्त है। यद्यपि लोप विधि सब विधियों से बलीय है तथापि (उभयेषाम्) ग्रहण (२८२) का यही प्रयोजन होने से कि (३८) से प्राप्त लोप को भी बाध के संप्रसारण ही होवे। अभ्यास के यकार को संप्रसारण होता है। कित् विषय में प्रथम संप्रसारण हो कर। वि+वि+अतुस्=विव्यतुः (१५६) यण्। विव्युः। विव्ययिथ (२५९) नित्य इट्। विव्यथुः। विव्य। विव्याय। विव्यय। विव्यिव। विव्यिम। विव्ये। विव्याते। विव्यिरे। व्यातासि। (२४२) आकारादेश। व्यातासे। व्यास्यति। व्यास्यते। व्यास्यतै। व्यासातै। व्ययतै। व्ययातै। व्यासति। व्यासाति। व्ययति। व्ययाति। व्ययतु। व्ययताम्। अव्ययत्। अव्ययत। व्ययेत्। व्ययेत। वीयात् (२८३) संप्रसारण

ओकार दीर्घ (१६०) व्यासीष्ट । अव्यासीत् । अव्यासिष्टाम् । अव्यास्त । अव्यास्यत् ।
[ह्वेञ्] स्पर्धायां शब्दे च (ईर्षा और बुलाना) ह्वयति । ह्वयते । ॥ २९० ।

२९१—अभ्यस्तस्य च ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३३ ॥

अभ्यस्त होने वाले ह्वा धातु को द्वित्व होने से प्रथम ही संप्रसारण होवे । अकित् विषय में अभ्यास ही को संप्रसारण प्राप्त है इस लिये यह सूत्र है। संप्रसारण हो कर द्वित्व होता है । जुहाव । जुहुवतुः । जुहुवुः (१५८) संप्रसारण किये उकार को उवङ् होता है । जुहोथ । जुहविथ । जुहुवथुः । जुहुव । जुहाव । जुहव । जुहुविव । जुहुविम । जुहुवे । जुहुवाते । ह्वातासि । ह्वातासे । ह्वास्यति । ह्वास्यते । ह्वासतै । ह्वासातै । ह्वयतै । ह्वयातै । ह्वासति । ह्वासाति । ह्वयति । ह्वयाति । ह्वयतु । ह्वयताम् । अह्वयत् । अह्वयत । ह्वयेत् । ह्वयेत । हूयात् । (२८३) संप्रसारण और दीर्घ (१६०) ह्वासीष्ट ॥ २९१ ।

२९२—लिपिसिचिह्वश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५३ ॥

लिप, सिच, और ह्वा धातु से परे जो च्लि प्रत्यय उस के स्थान में अङ् आदेश होवे । अह्वत् (२४४) आकार लोप । अह्वताम् । अह्वन् ॥ २९२ ॥

२९३—आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५४ ॥

लिप, सिच और ह्वेञ् धातु से परे च्लि के स्थान में अङ् विकल्प करके हो आत्मनेपद विषय में । अह्वत । अह्वेताम् । अह्वन्त । अह्वथाः । अह्वास्त । अह्वासाताम् । अह्वास्यत् । अह्वास्यत । वेञादयस्त्रयोऽनुदात्ता उभयपदिनः । ये वेञ् आदि तीन धातु अनिट् उभयपदी हैं ॥

अथ द्वौ परस्मैपदिनौ । अब दो धातु सेट् परस्मैपदी कहते हैं [वद] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) वदति । वदतः । वदन्ति । उवाद (२८२) ऊदतुः । ऊदुः । उवदिथ । वदितासि । वदिष्यति । वादिषति । वादिषाति । वदति । वदाति । वदतु । अवदत् । वदेत् । उद्यात् (२८३) अवादीत् (१३५) वृद्धि । अवादिष्टाम् । अवादिषुः । अवदिष्यत् [टुओश्वि] गतिवृद्ध्योः (गति और बढ़ना) इस में से टु और ओकार को इत्संज्ञा होती है । श्वयति । श्वयतः । श्वयन्ति ॥ २९३ ॥

२९४—विभाषा श्वेः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३० ॥

लिट् और यङ् परे हों तो श्वि धातु को विकल्प करके संप्रसारण होवे । यङ् के परे संप्रसारण किसी से प्राप्त नहीं है और कित् लिट् में (२८३) से और

अक्तित् विषय में (२८२) संप्रसारण नित्य प्राप्त है उस का विकल्प करने से प्राप्ताप्राप्त विभाषा इस सूत्र में जानो। सो जिस पक्ष में इस सूत्र से संप्रसारण होता है वहीं अभ्यास को भी (२८२) होता है निषेध पक्ष में अभ्यास को भी नहीं होता। शुशाव। शुशुवतुः। शुशुवुः (१५९) शुशविथ। शुशुवथुः। शुशुव। शुशाव। शुशव। शुशुविव। शुशुविम। सम्प्रसारण के निषेध पक्ष में। शिश्वाय। शिश्वियतुः (१५९) इयङ्। शिश्वयिथ। श्वयितासि। यहां गुण होकर अयादेश होता है। श्वयिष्यति। श्वायिषति। श्वायिषासि। श्वयति। श्वयाति। श्वयतु। अश्वयत्। श्वयेत्। शूयात् (२८३) सम्प्रसारण होकर दीर्घ (१६०) लुङ् में अङ् का विकल्प (१५४) होकर अङ् पक्ष में ॥ २९४ ॥

२९५—श्वयतेरः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १८ ॥

श्वि धातु के इकार को अकार आदेश होवे अङ् परे हो तो। अट्+श्वि+अङ्+तिप्=अश्वत्। यहां अङ् के अकार के साथ पर रूप होता है। अश्वताम्। अश्वन्। अश्वः। अश्वतम्। अश्वत। अश्वम्। अश्वाव। अश्वाम। जिस पक्ष में अङ् (१५४) न हुआ वहां चङ् (२४८) और द्वित्व (१८०) होकर। अशिश्वियत्। (१५९) इयङ्। अशिश्वियताम्। अशिश्वियन्। अब जिस पक्ष में चङ् भी (२४८) न हुआ वहां वृद्धि का निषेध (१६२) होकर। अश्वयीत्। अश्वयिष्टाम्। अश्वयिषुः। अश्वयिष्यत्। वृत्। ये यजादि धातु समाप्त हुए। और इस भ्वादि गण को आकृतिगण मानते हैं इसी से। चुलुम्पति। आदि प्रयोग समझने चाहिये। इति शब्विकरणा भ्वादयः समाप्ताः। ये शप् विकरण वाले भू आदि धातु समाप्त हुए॥

२९६—ऋतेरीयङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । २९ ॥

ऋत धातु से ईयङ् प्रत्यय हो स्वार्थ में इस धातु का स्वार्थ निन्दा वा कृपा है। और यह सौत्र धातु है अर्थात् किसी गण का नहीं। ऋत–ईय्। इस को धातु संज्ञा (१६७) होकर भ्वादि को आकृति गण मानने से शप् होता है। ऋतीयते। ऋतीयेते। ऋतीयन्ते। यहां ईयङ् प्रत्यय के ङित् होने से गुण नहीं होता। और ईयङ् प्रत्यय के ङित् होने से ही ऋतीय धातु से आत्मनेपद होते हैं। ऋतीयाञ्चक्रे। ऋतीयामास। ऋतीयाम्बभूव। आर्द्धधातुक की विवक्षा में ईयङ् प्रत्यय (१६८) विकल्प करके होता है। जिस पक्ष में ईयङ् न हुआ वहां। ऋत्+ऋत्+णल्=आनर्त्त। यहां। शेष होने से परस्मैपद। आनृततुः। आनृतुः (१४७) नुट् (११०) अभ्यास को दीर्घ (१०६) अकार। आनर्त्तिथ। आनृतथुः। ऋतीयितासे।

अर्त्तितासि। ऋतीयिष्यते। अर्त्तिष्यति। ऋतीयिषते। ऋतीयिषाते। अर्त्तिषति। अर्त्तिषाति। ऋतीयताम्। आर्त्तीयत। ऋतीयेत। ऋतीयिषीष्ट। ऋत्यात्। आर्त्तीयिष्ट। आर्त्तीत्। आर्त्तिष्टाम्। आर्त्तीयिष्यत। आर्त्तिष्यत् [अद] भक्षणे (खाना) ॥ २९६ ॥

२९७—अदिप्रभृतिभ्यः शपः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७२ ॥

अद आदि धातुओं से परे जो शप् उस का लुक् होवे। जहां २ लुक् कहते हैं वहां २ प्रत्यय मात्र का होता है। अद्+शप्+तिप्=अत्ति। अत्तः। अदन्ति। अत्सि। अत्थः। अत्थ। अद्मि। अद्वः। अद्मः॥ २९७ ॥

२९८—बहुलं छन्दसि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७३ ॥

वेदविषय में अद आदि धातुओं से परे शप् का लुक् बहुल करके होवे। बहुल के कहने से जिन से परे कहा है उन से परे नहीं भी होता। अदति। हनति। इत्यादि। और जिन से नहीं कहा वहां भी हो जाता है। त्राध्वं नो देवाः। यहां त्रैङ् भ्वादिस्थ धातु से शप् का लुक् हुआ है। त्रायध्वम्। लोकमें होता है॥२९८॥

२९९—लिट्यन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४० ॥

लिट् लकार परे हो तो अद धातु को घस्लृ आदेश विकल्प करके होवे। जघास। घस्+अतुस् (२८४) से उपधालोप हो कर। उस उपधालोप को चर् विधि के प्रति स्थानिवत् का निषेध होने से घकार को चर् क् होता है उस ककार से परे षत्व (२८४) हो कर। जक्षतुः। जक्षुः। जघसिथ। जघस्थ। जक्षथुः। जक्ष। जघास। जघस। जक्षिव। जक्षिम। आद। आदतुः। आदुः। थल् में नित्य इट् (२५९) आदिथ। आदथुः। आद। आद। आदिव। आदिम। अत्ता। अत्तासि। अत्स्यति। अत्सति। अत्साति। अदति। अदाति। अत्तु। अत्तात्। अत्ताम्। अदन्तु ॥ २९९ ॥

३००—हुझल्भ्यो हेर्धिः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०१

हु और झलन्त धातुओं से परे जो हि उस को धि आदेश होवे। यहां झलन्त अद् से परे धि हो कर। अद्+हि=अद्धि। अत्तात्। अत्तम्। अत्त। अदानि। अदाव। अदाम ॥ ३०० ॥

३०१—अदः सर्वेषाम् ॥ अ० ॥ ७ । ३ । १०० ॥

अद धातु से परे जो अपृक्त हलादि सार्वधातुक उस को अट् का आगम हो सब आचार्यों के मत में। यह अपृक्त हलादि सार्वधातुक लङ् लकार के तिप् और

सिप् दो ही में मिलता है । आट्+अद्+अट्+तिप्=आदत् । आत्ताम् । आदन् । आदः । आत्तम् । आत्त । आदम् । आद्व । आद्म । अद्यात् । अद्याताम् । अद्या+उस्=अद्युः (८३) पररूपएकादेश । अद्याः । अद्यातम् । अद्यात । अद्याम् । अद्याव । अद्याम । अद्यात् । अद्यास्ताम् । अद्यासुः ॥ २०१ ॥

३०२—लुङ्सनोर्घस्लृ ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३७ ॥

लुङ् लकार और सन् प्रत्यय परे हों तो अद धातु को घस्लृ आदेश होवे । लृदित् घस्लृ आदेश के पढ़ने से च्लि के स्थान में अङ् (२१७) अघसत् । अघसताम् । अघसन् । आत्स्यत् [हन] हिंसागत्योः (मारना और गति) शप् का लुक् (२९७) हन्ति ॥ ३०२ ॥

३०३—अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३७ ॥

उपदेश में जो अनुदात्त (अनिट्) धातु, वन और तनु से ले कर जो धातु हैं उन सब के अनुनासिक का लोप होवे झलादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो । अनुदात्तोपदेश अनुनासिकान्त । यम, रम, नम, गम, हन और दिवादि गण का मन ये छः धातु हैं और तनोत्यादि अनुनासिकान्त । तनु, षणु, क्षणु, क्षिणु, ऋणु, तृणु, घृणु, वनु और मनु ये नौ धातु हैं और वनति धातु भ्वादिगण का लिया है इन सब के अन्त्य अनुनासिक का लोप जहां २ झलादि कित् ङित् हों वहां २ होता है यहां हन धातु से परे तस् को ङित् संज्ञा (९७) होने से । हन्+तस्=हतः । यहां अनुनासिक लोप हुआ है । हन्–झि ॥ ३०३ ॥

३०४—हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ५४ ॥

हन् धतु के हकार को कवर्ग आदेश होवे ञित् णित् और नकार परे हों तो । यहां झि के झकार को अन्त आदेश होने के पश्चात् उपधाअकार का लोप (२१४) होकर केवल नकार के परे ह को घ । घ्नन्ति । हंसि । हथः । हथ । हन्मि । हन्वः । हन्मः । हन्+हन्+णल्=जघान (३०४) णित् के परे ह को कुत्व । जघ्नतुः (२१४) उपधा लोप और न के परे ह को कुत्व (३०४) जघ्नुः ॥३०४॥

३०५—अभ्यासाच्च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ५५ ॥

अभ्यास से परे हन धातु के हकार को कुत्व होवे । जघनिथ । जघन्थ । यहां कुत्व (३०४) नहीं प्राप्त है । जघ्नथुः । जघ्न । जघान । जघन । जघ्निव । जघ्निम । हन्ता । हन्तारौ । हन्तारः । हन्तासि । हनिष्यति । हनिष्यतः (२३८)

अप्राप्त इट्। हांसति। हांसाति। हंसति। हंसाति। हनति। हनाति। हन्तु। हतात्। हताम्। घ्नन्तु ॥ ३०५ ॥

३०६—हन्तेर्जः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३६ ॥

हन् धातु को ज आदेश होवे हि परे होतो। अब हन् धातु के स्थान में ज आदेश होने के पश्चात् हि का लुक् (७१) प्राप्त है उस ज आदेश को असिद्ध (४२) मान कर नहीं होता। जहि। हतात्। हतम्। हत। हनानि। हनाव। हनाम। अहन्। यहां हल् नकार से परे अपृक्त तिप् के तकार का लोप होता है। अहताम्। अघ्नन्। अहन्। अहतम्। अहत। अहनम्। अहन्व। अहन्म। हन्यात्। हन्याताम्। हन्युः। हन्याः ॥ ३०६ ॥

३०७—आर्द्धधातुके ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३५ ॥

यह अधिकार सूत्र है ॥ ३०७ ॥

३०८—हनो वध लिङि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४२ ॥

हन् धातु को वध आदेश होवे आर्द्धधातुक विषय में लिङ् परे हो तो। वध अकारान्त होता है। वध्यात् (१७२) अकार लोप। वध्यास्ताम्। वध्यासुः। वध्याः। वध्यास्तम् ॥ ३०८ ॥

३०९—लुङि च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४३ ॥

आर्द्धधातुक विषयक लुङ् परे हो तो भी हन धातु को वधादेश होवे। इस सूत्र का पृथक् निर्देश इस से अगले सूत्र में अनुवृत्ति के लिये है। अवधीत्। वध आदेश के अदन्त होने से सिच् के परे अकारलोप (१७२) होकर उस के स्थानिवत् होने से वृद्धि (१३५) नहीं होती। अवधिष्टाम्। अवधिषुः। अवधीः। अहनिष्यत् (२३८) अहनिष्यताम्। अहनिष्यन्। अदिहनौ अनुदात्तावुदात्तौ परस्मैपदिनौ। अद और हन दोनों धातु अनिट् परस्मैपदी हैं ॥

अथ चत्वारः स्वरितेतः। अब चार धातु उभयपदी कहते हैं [द्विष] अप्रीतौ (वैर करना) द्वेष्टि। द्विष्टः। द्विषन्ति। द्वेक्षि। द्विष्ठः। द्विष्ठ। द्वेष्मि। द्विष्वः। द्विष्मः। द्विष्टे। द्विषाते। द्विषते। द्विक्षे। द्विड्ढ्वे। द्विषे। द्विष्वहे। द्विष्महे। दिद्वेष। दिद्विषतुः। दिद्विषे। द्वेष्टासि। द्वेष्टासे। द्वेक्ष्यति। द्वेक्ष्यते। द्वेषते। द्वेषाते। द्वेषतै। द्वेषातै। द्वेक्षति। द्वेक्षाति। द्वेषति। द्वेषाति। द्वेष्टु। द्विष्टात्। द्विष्टाम्। द्विषन्तु। द्विड्ढि। द्विष्टात्। द्विष्टम्। द्विष्ट। द्वेषाणि। द्वेषाव। द्वेषाम द्विष्टाम्। द्विषाताम्। द्विषताम्। द्विक्ष्व। द्विषाथाम्। द्विड्ढ्वम्। द्वेषै।

द्विषावहै । द्विषामहै । अद्वेट् । तिप् के तकार का लोप (हल्ङ्या०) होता है । अद्विष्टाम् ॥ ३०९ ॥

३१०—द्विषश्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ११२ ॥

शाकटायन आचार्य्य ही के मत में द्विष धातु से परे लङ् लकार के झि को जस् आदेश होवे । अद्विषुः । अन्य लोगों के मत में । अद्विषन् । अद्वेट् । अद्विष्टम् । अद्विष्ट । अद्विषम् । अद्विष्व । अद्विष्म । अद्विष्ट । अद्विषाताम् । अद्विषत । द्विष्यात् । द्विष्याताम् । द्विष्युः । द्विषीत । द्विषीयाताम् । द्विषीरन् । द्विषीथाः । द्विष्यात् । द्विष्यास्ताम् । द्विक्षीष्ट । द्विक्षीयास्ताम् । द्विक्षीरन् (१६३) कित्व । अद्विक्षत् । अद्विक्षताम् । अद्विक्षन् (२०७) क्स । अद्विक्षत । अद्विक्षाताम् (२०८) क्स लोप । अद्वेक्ष्यत् । अद्वेक्ष्यत [दुह] प्रपूरणे (लमकारना) ॥ ३१० ॥

३११—दादेर्धातोर्घः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३२ ॥

दकारादि धातुओं के हकार को घकार आदेश हो झल् परे हो वा पदान्त में दुह्+तिप्=दोग्धि (१४१) त को ध और घ को जश्त्व । दुग्धः । दुहन्ति । धोक्षि (२०४) दुग्धः । दुग्ध । दोह्मि । दुह्वः । दुह्मः । दुग्धे । दुहाते । दुहते । धुक्षे । दुहाथे । धुग्ध्वे । दुहे । दुह्वहे । दुह्महे । दुदोह । दुदुहतुः । दुदोहिथ । दुदुहे । दोग्धा । धोक्ष्यति । धोक्ष्यते । धोक्षते । धोक्षाते । दोहते । दोहाते । धोक्षति । धोक्षाति । दोहति । दोहाति । दोग्धु । दुग्धात् । दुग्धाम् । दुहन्तु । दुग्धि । दुग्धात् । दुग्धम् । दुग्ध । दोहानि । दोहाव । दोहाम । दुग्धाम् । दुहाताम् । दुहताम् । धुक्ष्व । दुहाथाम् । धुग्ध्वम् । दोहै । दोहावहै । दोहामहै । अधोक् । यहां पदान्त में संयोगान्त हल् तकार का लोप हो कर कुत्व होजाता है । अदुग्धाम् । अदुहन् । अधोक् । अदोहम् । अदुग्ध । अदुहाताम् । अधुग्ध्वम् । दुह्यात् । दुह्याताम् । दुह्युः । दुहीत । दुहीयाताम् । दुहीरन् । दुह्यात् । दुह्यास्ताम् । धुक्षीष्ट । (१६३) धुक्षीयास्ताम् । धुक्षीरन् । अधुक्षत् (२०७) क्स । अधुक्षताम् । अधुक्षन् । अधुक्षः । अधुक्षत । अधुक्षाताम् (२०८) अधुक्षन्त । विकल्प से क्स लुक् (२३७) अदुग्ध । अदुग्धाः । अधुक्षथाः । अधुग्ध्वम् । अधुक्षध्वम् । अधोक्ष्यत् । अधोक्ष्यत । [दिह] उपचये(बढ़ना) सब कार्य और प्रयोग दुह के तुल्य जानो । देग्धि । अधिक्षत् । अदिग्ध । अधिक्षत (लिह) आस्वादने (स्वाद लेना) लिह+तिप्= लेढि(२०३ । १४१ । २०६) लीढः(२३६) लिहन्ति । लेक्षि (२०५) लीढः । लीढ । लेह्मि । लिह्वः । लिह्मः । लीढे । लिहाते । लिहते । लिक्षे । लिहाथे । लीढ्वे । लिहे । लिह्वहे । लिह्महे । लिलेह । लिलिहतुः । लिलेहिथ । लिलिहे । लिलिहाते ।

लिलिहिरे । लीढासि । लीढासे । लेक्ष्यति । लेक्ष्यते । लेक्षते । लेक्षाते । लेक्षति । लेक्षाति । लेढु । लीढात् । लीढाम् । लिहन्तु । लीढि । लीढात् । लीढम् । लीढ । लेहानि । लेहाव । लेहाम । अलेट् । अलीढाम् । लिह्यात् । लिक्षीष्ट । अलिक्षत् । अलिक्षत (२३०) अलीढ । अलिक्षाताम् । अलिक्षन्त । अलिक्षथाः । अलीढाः । अलेक्ष्यत् । अलेक्ष्यत । द्विषादयोऽनुदात्ताः स्वरितेत उभयपदिनः । ये द्विष आदि अनिट् उभयपदी धातु हैं [चक्षिङ्] व्यक्तायां वाचि, अयं दर्शनेऽपि (स्पष्टबोलना और देखना) इस धातु में जो अनुदात्त इकार है उस की इत् संज्ञा होजाती है फिर अनुदात्तेत् के होने से आत्मनेपद हो ही जाता फिर ङकार पढ़ने से अनुदात्तेत् धातुओं से आत्मनेपद विधान का अनित्य ज्ञापक होता है । और इस का इकार अन्त में इत् नहीं गया इस कारण नुम् नहीं होता । चक्ष्+ते=चष्टे (२१०) संयोगादि ककार का लोप । चक्षते । चक्षाते । चक्षे । चक्षाथे । चड्ढ्वे । चक्षे । चक्ष्वहे । चक्ष्महे ॥ २११ ॥

३१२—चक्षिङः ख्याञ् ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५४ ॥

सामान्य आर्द्धधातुक विषय में चक्षिङ् धातु को ख्याञ् आदेश होवे ॥ ३१२ ॥

३१३—वा लिटि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५५ ॥

लिट् लकार में चक्षिङ् धातु को ख्याञ् विकल्प करके होवे । पूर्व सूत्र से सर्वत्र नित्य प्राप्त है उस का विकल्प करनेसे प्राप्त विभाषा है । ख्याञ् हो कर आकारान्त के समान प्रयोग और ञित् होने से उभयपद (१०३) चख्यौ (२४३) चख्यतुः (२४४ । २४५) चख्युः । चख्यिथ । चख्याथ । चख्ये । चख्याते ॥ ३१३ ॥

३१४—वा०—ख्शादिर्वा ॥

यह ख्याञ् आदेश जो कहा है सो ख्शाञ् आदेश कहना चाहिये । फिर ख्याञ् धातु के प्रयोग किस प्रकार बनने चाहिये ॥ ३१४ ॥

३१५—वा०—असिद्धे शस्य यवचनं विभाषा ॥

असिद्ध अर्थात् अष्टमाऽध्याय के अन्त के तीन पादों में ख्शाञ् के शकार को विकल्प करके यकार होवे । सो जब यकार होगा तब ख्याञ् के प्रयोग और ख्शाञ् रहेगा वहां ख् को चर्त्व क् हो कर । चक्शौ । चक्शतुः । चक्शे । चक्शाते । ख्शाञ् आदेश विधान करके असिद्ध प्रकरण में शकार को यकार कहने से जो २ कार्य सपाद सप्ताऽध्यायी में ख्या धातु को कहे हैं वे इस को नहीं होते । क्यों कि सपाद सप्ताऽध्यायी में वह ख्याञ् नहीं किन्तु ख्शाञ् है । इस प्रकार के कई प्रयोजन महाभाष्य कारने (३१२) सूत्र पर गिनाये हैं । अब

जिस पक्ष में ख्शाञ् आदेश (२१२) नहीं हुआ वहां । चचक्षे । चचक्षाते । चचक्षिरे । ख्यातासि । ख्यातासे । क्शातासि । क्शातासे । ख्यास्यति । ख्यास्यते । क्शास्यति । क्शास्यते । ख्यासति । ख्यासाति । क्शासति । क्शासाति । ख्यासते । ख्यासाते । क्शासते । क्शासाते । चक्षते । चक्षाते । चक्षते । चक्षाते । चष्टाम् । चक्षाताम् । चक्ष्व । चक्षाथाम् । चड्ढ्वम् । चक्षै । चक्षावहै । चक्षामहै । अचष्ट । अचक्षाताम् । अचक्षत । अचष्ठाः । अचक्षाथाम् । अचड्ढ्वम् । अचक्षि । अचक्ष्वहि । अचक्ष्महि । चक्षीत । चक्षीयाताम् । चक्षीरन् । ख्यायात् । ख्येयात् । क्शायात् । क्शेयात् (२५२) एत्वविकल्प । ख्यासीष्ट । क्शासीष्ट ॥ ३१५ ॥

३१६—अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५२ ॥

असु दिवादि गण का वच और ख्या अदादि गण के धातुओं से परे च्लि के स्थान में अङ् होवे । सो जिस पक्ष में यकार होता है वहां अङ् जानो । अख्यत् । अख्यताम् । अख्यन् । अख्यत । अख्यतम् । अख्यन्त । ख्शाञ् पक्ष में । अक्शासीत् (२५१) अक्शास्त । अख्यास्यत् । अख्यास्यत । अक्शास्यत ॥ ३१६ ॥

३१७—वा०—वर्जने प्रतिषेधः ॥

वर्जन अर्थ में चक्षिङ् धातु को ख्शाञ् आदेश न होवे । संचक्षितासे । संचक्षिष्यते । संचक्षिषीष्ट । समचक्षिष्ट । सम् उपसर्ग पूर्वक इस धातु का वर्जन अर्थ होता है । अथ पृचन्ता अनुदात्तेतश्चतुर्दश । अब पृची धातु पर्यन्त १४ धातु आत्मनेपदी कहते हैं [ईर] गतौ कम्पने च (गति और कांपना) ईर्ते । प्रेर्ते । ईराते । ईर्षे । ईराथे । ईर्ध्वे । ईरे । ईर्वहे । ईर्महे । ईराञ्चक्रे । ईरितासे । ईरिष्यते । ईरिषते । ईरिषाते । ईरते । ईराते । ईर्ताम् । ईराताम् । ईरताम् । ऐर्त । ईरीत । ईरीयाताम् । ईरीरन् । ईरिषीष्ट । ऐरिष्ट । ऐरिष्यत [ईड] स्तुतौ (स्तुति करना) [ईश] ऐश्वर्ये (मालिक का होना) ईट्टे । षत्व । ईडाते । ईडते । ईट्से । ईण्टे (२२३) षत्व । ईशाते । ईशते ॥ ३१७ ॥

३१८—ईशः से ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७७ ॥

ईश धातु से परे जो सार्वधातुक उस को इट् का आगम होवे । ईशिसे ॥ ३१८ ॥

३१९—ईडजनोर्ध्वे च ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७८ ॥

ईश, ईड, और जन धातुओं से परे जो से और ध्वे वलादि सार्वधातुक उन को इट् आगम हो । पूर्व सूत्र की यहां सब अनुवृत्ति आती है इन दोनों सूत्रों से बराबर कार्य होता है फिर एक सूत्र पढ़ते पृथक् २ पढ़ने से आचार्य की

विचित्र क्रिया दीख पड़ती है। ईडिषे। ईडाथे । ईडिध्वे। ईडे। ईशे। ईडाञ्चक्रे। ईशाञ्चक्रे। ईडामास। ईडाम्बभूव। ईशामास । ईशाम्बभूव । ईडितासे। ईशितासे। ईट्टाम् । ईडाताम्। ईडताम्। ईडिष्व (३१८) ईशिष्व। ईडिध्वम्। ईशिध्वम्। यहां एकदेश एकार को विकृतमान कर इट् हो जाता है और से ध्वे (३१८। ३१८) एकारान्त पढ़ने से ही लङ् लकार में इट् नहीं होता। ऐट्ट। ऐडाताम्। ऐडत। ऐड्ढ्वम्। ईडीत। ईशीत [आस] उपवेशने (बैठना) आस्ते। आसाते। आसते। आसाञ्चक्रे (१८०) आम्। आसाम्बभूव। आसामास। आसितासे। आसिष्यते। आसिषतै। आसिषातै। आस्ताम्। आस्स्व। आध्वम्। आस्त। आसीत। आसिषीष्ट। आसिष्ट। आशिष्यत [आङःशासु] इच्छायाम्। बहुधा आङ्पूर्वक ही इस धातु के प्रयोग आते हैं इस लिये आङ् इस के साथ लगा दिया है। आशास्ते। आशासाते। आशासते। आशशासे। आशशासाते। आशासितासे। आशास्ताम्। आशास्स्व। आशाध्वम्। आशासै। आशासावहै। आशासामहै। आशास्त। आशासीत। आशासिषीष्ट। आशासिष्ट [वस] आच्छादने (ढांकना) वस्ते। वसाते। वसते। ववसे। ववसाते (१२८) एत्वाभ्यासलोप निषेध। वसितासे। वसिष्यते। वासिषतै। वासिषातै। वसतै। वसातै। वस्ताम्। वसाताम्। वस्स्व। वध्वम्। अवस्त। वसीत। वसिषीष्ट। अवसिष्ट। अवसिष्यत [कसि] गतिशासनयोः (गति और शिक्षा) कंस्ते। कंसाते। कंसते। कन्ध्वे। चकंसे। कंस्ताम्। कंस्स्व। कन्ध्वम्। अकंस्त। कंसीत [कस] इत्यन्ये। कस्ते। कसाते। चकसे। चकसाते। कस्ताम्। कस्स्व। कध्वम्। अकस्त। कसीत। अकसिष्ट [कश] इत्येके। कष्टे (२३३) षत्व। कशाते। चकशे। चकशाते। कशितासे। कशिष्यते। काशिषतै। काशिषातै। कष्टाम्। कशाताम्। कशताम्। कक्ष्व। कड्ढ्वम्। अकष्ट। कशीत। कशिषीष्ट। अकशिष्ट। अकशिष्यत। [णिसि] चुम्बने (चूंबना) निंस्ते। निंसाते। निनिंसे। निंसितासे। निंसिष्यते। निंसिषतै। निंसिषातै। निंस्ताम्। निंस्स्व। निन्ध्वम्। अनिंस्त। निंसीत। निंसिषीष्ट। अनिंस्त। अनिंसिष्यत [णिजि] शुद्धौ। निङ्क्ते। निञ्जाते। निङ्क्षे। निनिञ्जे। निञ्जितासे [शिजि] अव्यक्ते शब्दे। शिङ्क्ते। शिशिञ्जे [पिजि] वर्णे (श्वेतआदि) पिङ्क्ते। सम्पर्चनइत्येके। यह धातु किसी के मत में स्पर्श करने अर्थ में है। उभयत्रेत्यन्ये। कोई कहते हैं कि वर्ण और सम्पर्चन दोनों अर्थ हैं। अवयव इत्यपरे। अव्यक्ते शब्द इतीतरे। किन्ही के मत में अवयव और कोई के मत में अव्यक्त शब्द अर्थ में पिजि धातु है [पृजि] इत्येके। पूर्वोक्त सब अर्थों में पिजि के स्थान में कोई लोग पृजि धातु कहते हैं। पृङ्क्ते। [वृजी]

वर्जने (निषेध करना) वृक्ते । वृजाते । वृजते । वृक्षे । वृग्ध्वे । ववृजे । वर्जिता । वर्जिष्यते । वर्जिषते । वर्जिषाते । वृजतै । वृजातै । वृक्ताम् । वृक्ष्व । वृग्ध्वम् । अवृक्त । वृजीत । वर्जिषीष्ट । अवर्जिष्ट । अवर्जिष्यत [पृची] सम्पर्चने (सम्बन्ध) पृक्ते । पृचाते । ईरादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः । ये ईर आदि धातु समाप्त हुए ॥

[षूङ्] प्राणिगर्भविमोचने (गर्भस्थप्राणियों का जन्म) सूते । सुवाते (१५९) उवङ् । सुवते । सुषुवे (१४०) सूत्र में सूति करके इसी सू धातु का ग्रहण है । इस कारण इट् का विकल्प होता है । सुषुविषे । सुषूषे । सुषुविढ्वे । सुषुविध्वे । सुषूढ्वे । सविताासे । सोतासे । सविष्यते । सोष्यते । साविषतै । साविषातै । सविषते । सविषाते । साविषते । साविषाते । सविषते । सविषाते । सोषतै । सोषातै । सोषतै । सोषातै । सोषते । सोषाते । सोषते । सोषाते । सुवतै । सुवातै । सुवतै । सुवाते । सूताम् । सुवाताम् । सुवताम् । सुवै (८१) गुण निषेध । सुवावहै । सुवामहै । असूत । सुवीत । सविषीष्ट । सोषीष्ट । सविषीढ्म् । सविसीध्वम् । सोषीढ्म् । असविष्ट । असोष्ट । असविढ्म् । असविध्वम् । असोढ्म् । असविष्यत । असोष्यत । [शीङ्] स्वप्ने (सोना) ङित्वत् (८७) होने से गुण नहीं प्राप्त है इस लिये ॥३१९॥

३२०—शीङः सार्वधातुके गुणः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २१ ॥

शीङ् धातु को गुण होवे सामान्य सार्वधातुक परे हों तो । यह सूत्र (४५) सूत्र के निषेध का अपवाद है । शेते । शी + आताम् = शयाते । गुण होकर अयादेश होता है ॥ ३२० ॥

३२१—शीङो रुट् ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६ ॥

शीङ् धातु से परे झकार के स्थान में जो अत् आदेश उस को रुट् का आगम होवे । टित् आगम उस को आदि में होकर । शेरते । शेषे । शयाथे । शेध्वे । शये । शेवहे । शेमहे । शिश्ये (१५६) यण् । शिश्यिढ्वे । शिश्यिध्वे । शयितासे । शयिष्यते । शायिषते । शायिषातै । शेताम् । शयाताम् । शेरताम् । शेष्व । शयाथाम् । शेध्वम् । शयै । शयावहै । शयामहै । अशेत । अशयाताम् । अशेरत । शयीत । शयीयाताम् । शयीरन् । शयिषीष्ट । शयिषीढ्वम् । शयिषीध्वम् । अशयिष्ट । अशयिढ्वम् । अशयिध्वम् । अशयिष्यत । आत्मनेभाषावुदात्तौ । शीङ् और षूङ् दोनों धातु सेट् आत्मनेपदी हैं ॥

अथ स्तौत्यन्ताः परस्मैपदिनो द्वादश । अब स्तु धातु पर्यन्त १२ बारह धातु परस्मैपदी कहते हैं [यु] मिश्रणे अमिश्रणे च (मिलाना वा पृथक् करना) ॥३२१॥

३२२—उतो वृद्धिर्लुकि हलि ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८९ ॥

हलादि पित् सार्वधातुक परे हो तो लुक् विषय में उकारान्त अङ्ग को वृद्धि होवे परन्तु अभ्यस्त संज्ञक उकारान्त को पूर्वोक्त लक्षणों में भी वृद्धि न होवे। यु+तिप्=यौति । युतः । युवन्ति (१५९) यौषि । युथः । युथ । यौमि । युवः । युमः । युयाव । युयुवतुः । युयविथ । यविता‌सि । यविष्यति । याविषति । याविषाति । यविषति । यविषाति । यवति । यवाति । यौतु । युतात् । युहि । यवानि । यवाव । यवाम । अयौत् । अयुताम् । अयुवन् । अयोः । अयुतम् । अयुत । अयवम् । युयात् । यहां विशेष विधायक जो यासुट् को ङित्व (७८) है वह पित् का बाधक होने से वृद्धि (३२२) नहीं होती । युयाताम् । युयुः । यूयात् (१६०) दीर्घ । अयावीत् । अयाविष्टाम् । अयाविषुः (१५८) अयविष्यत् [णु] स्तुतौ । नौति । नौषि । नौमि । नविता‌सि । नाविषति । नाविषाति । नौतु । अनौत् । नुयात् । नूयात् । अनावीत् । अनविष्यत् [रु] शब्दे ॥ ३२२ ॥

३२३—तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ९५ ॥

तु, रु, स्तु, शम और अम धातुओं से परे जो हलादि सार्वधातुक उस को विकल्प करके ईट् का आगम होवे (अम,गत्यादिषु) यह धातु भ्वादि गण में लिख चुके हैं । उस से परे वेद में शप् का लुक् (२९७) होने पश्चात् हलादि सार्वधातुक मिलता है । अभ्यमीति । अभ्यमति । प्रयोग होंगे । और शम धातु दिवादि गण का है । रु+ईट्+तिप्=रवीति । रौति । रुवीतः । उवङ् (१५९) रुतः । रुवन्ति । यहां हलादि के न होने से ईट् न हुआ । और इस सूत्र में सार्वधातुक की अनुवृत्ति पूर्व से चली आती थी फिर सार्वधातुक ग्रहण का यही प्रयोजन है कि अपित् सार्वधातुक में भी हो जावे । रवीषि । रौषि । रुवीथः । रुथः । रुवीथ । रुथ । रवीमि । रौमि । रुवीमः । रुमः । रवीतु । रौतु । अरवीत् । अरौत् । [टुचु] शब्दे । चौति । चुतः । चुचाव । चौतु । चूयात् । शेष यु के समान [क्ष्णु] तेजने (तीक्ष्ण करना) क्ष्णौति । क्ष्णुतः । चुक्ष्णाव । क्ष्णूयात् । अक्ष्णावीत् [ष्णु] प्रस्रवणे (झरना) स्नौति । सुस्नाव । स्नविता । स्नौतु । स्नूयात् । उदात्ताः परस्मैपदिनः । यु आदि धातु सेट् परस्मैपदी हैं [ऊर्णुञ्] आच्छादने (ढांकना) ॥ ३२३ ॥

३२४—ऊर्णोतेर्विभाषा ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ९० ॥

हलादि पित् सार्वधातुक परे हो तो ऊर्णु धातु को विकल्प करके वृद्धि होवे (३२२) सूत्र से नित्य वृद्धि प्राप्त है इस लिये यह प्राप्तविभाषा जानो । ऊर्णौति

ऊर्णोति । ऊर्णुतः । ऊर्णुवन्ति । यहां हलादि के न होने से वृद्धि नहीं होती । ऊर्णोषि । ऊर्णौषि । ऊर्णुते । ऊर्णुवाते । ऊर्णुवते । ऊर्णु धातु के इजादि गुरु-मान् होने से लिट् में आम् प्रत्यय (१००) प्राप्त है इस लिये ॥ ३२४ ॥

३२५—का०—वाच्य ऊर्णोर्णुवद्भावो यङ्प्रसिद्धिः प्रयोजनम् । आमश्च प्रतिषेधार्थमेकाचश्चेडुपग्रहात् ॥

ऊर्णुञ् धातु को णुवत् भाव कहना चाहिये । अर्थात् जैसे एकाच् हलादि (णु,स्तुतौ) धातु को कार्य्य होते हैं वैसे इस को भी होवें । प्रयोजन यह है कि एक तो यङ् प्रत्यय एकाच् हलादि से होता है वह इस से भी होवे और इजा-दि गुरुमान् के न होने से आम् प्रत्यय (१००) न होवे । और (श्र्युकःकिति) सूत्र में उगन्त एकाच् धातुओं से परे कित् आर्द्धधातुक को इट् का निषेध कहा है सो इस को भी एकाच् मान कर निषेध हो जावे । ऊर्णुतः । ऊर्णुवान् । इत्यादि में । अब यहां आम् का निषेध हो कर । ऊर्णु—णल् । यहां णु को वृद्धि हो कर । अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव र्णु मात्र को द्वित्व (३५ । ३६) प्राप्त है इस लिये ॥ ३२५ ॥

३२६—न न्द्राः संयोगादयः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३ ॥

अच् से परे संयोग के आदि जो न् द् और र् इन को द्वित्व न होवे इस से रेफ को द्वित्व का निषेध होकर णु शब्द को द्वित्व होता है । ऊर्णुनाव । रेफ को द्वित्व हो जाता तो अभ्यास का आदि हल् वही रेफ है उस से परे अन्य हल् णकार का लोप (३८) हो जाता । ऊर्णुनुवतुः । ऊर्णुनुवुः ॥ ३२६ ॥

३२७—विभाषोर्णोः ॥ अ० ॥ १ । २ । ३ ॥

ऊर्णुधातु से परे जो इडादि प्रत्यय सो विकल्प करके ङित्वत् हो । ऊर्णुनु-विथ । ङित् पक्ष में गुण का निषेध (४५) ऊर्णुनविथ । ऊर्णुनुवे । ऊर्णुनुवाते । ऊर्णुनुविषे । ऊर्णुनविषे । ऊर्णुवितासि । ऊर्णवितासि । ऊर्णुवितासे । ऊर्णवितासे । ऊर्णुविष्यति । ऊर्णविष्यति । ऊर्णुविष्यते । ऊर्णविष्यते । ऊर्णुविषति । ऊर्णुविषाति । ऊर्णुविषत् । ऊर्णुविषात् । ऊर्णाविषति । ऊर्णाविषाति । ऊर्णविषति । ऊर्णविषाति । ऊर्णवति । ऊर्णवाति । ऊर्णुविषतै । ऊर्णुविषातै । ऊर्णुविषते । ऊर्णुविषाते । ऊर्णाविषतै । ऊर्णाविषातै । ऊर्णविषतै । ऊर्णविषातै । ऊर्णौतु । ऊर्णोतु । ऊर्णुतात् । ऊर्णुताम् । ऊर्णुवन्तु । ऊर्णुहि । ऊर्णुतात् । ऊर्णुतम् । ऊर्णुत । ऊर्णवानि । ऊर्णवाव । ऊर्णवाम । ऊर्णुताम् । ऊर्णुवाताम् । ऊर्णुवताम् । ऊर्णुस्व । ऊर्णवै । ऊर्णवावहै । ऊर्णवामहै ॥ ३२७ ॥

३२८—गुणोऽपृक्ते ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ९१ ॥

ऊर्णुञ् धातु को गुण हो अपृक्त हलादि सार्वधातुक परे हो तो । अपृक्त विषय में भी वृद्धि (३२४) प्राप्त है उस का अपवाद यह सूत्र है । और्णोत् । और्णोः । और्णवम् । और्णुत । और्णुवाताम् । और्णुवत । ऊर्णुयात् । ऊर्णुयाताम् । ऊर्णुयुः । ऊर्णुवीत । ऊर्णुवीयाताम् । ऊर्णूयात् (१६०) दीर्घ । ऊर्णुविषीष्ट । ऊर्णविषीष्ट । ऊर्णविषीढ्वम् । ऊर्णुविषीध्वम् ॥ ३२८ ॥

३२९—ऊर्णोतेर्विभाषा ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६ ॥

परस्मैपद विषय में इडादि सिच् परे हो तो ऊर्णु धातु को विकल्प करके वृद्धि होवे पक्ष में गुण हो जाता है । और्णावीत् । और्णाविष्टाम् । और्णाविषुः । और्णुवीत् । और्णुविष्ट । और्णविष्ट । और्णुविष्यत् । और्णविष्यत् । और्णुविष्यत । और्णविष्यत [द्यु] अभिगमने (सन्मुख चलना) (३२२) वृद्धि । द्यौति । द्युतः । दुद्याव । दुद्युवतुः । दुद्यविथ । द्योतासि । द्योष्यति । द्यौषति । द्योषाति । द्योषति । द्योषाति । द्यवति । द्यवाति । द्यौतु । द्युहि । द्यवानि । अद्यौत् । द्युयात् । द्यूयात् । अद्योषीत् (१५८) वृद्धि । अद्योष्यत् [षु] प्रसवैश्वर्ययोः (उत्पत्ति और संपत्ति का होना) सौति । सोता । सौतु ॥ ३२९ ॥

३३०—स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु * ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७२ ॥

स्तु, सु और धूञ् धातु से परे जो सिच् उस को इट् का आगम होवे परस्मैपद विषय में । असावीत् । असाविष्टाम् । असाविषुः । असावीः (१५८) वृद्धि । [कु] शब्दे । कौति । चुकाव । कोता । कोष्यति । कौषति । कोषाति । कौतु अकौत् । कुयात् । कूयात् । अकोषीत् । अकोष्यत् [तु] गतिवृद्धिहिंसासु । तौति । तवीति (३२३) तुवीतः । तुतः । तुवन्ति । तुताव । तुतविथ । तुतोथ । तोतासि । तोष्यति । तौषति । तौषाति । तवीतु । तौतु । तुवीतात् । तुतात् । तुवीताम् । तुताम् । अतवीत् । अतौत् । अतवीः । अतौः । तुयात् । तुवीयात् । तुवीयाताम् । तुवीयुः । तूयात् । तूयास्ताम् । अतौषीत् । अतौष्टाम् । अतोष्यत् । येद्यु आदि चार धातु अनिट् परस्मैपदी हैं [ष्टुञ्] स्तुतौ । स्तवीति । (३२३) स्तौति । स्तुवीतः । स्तुतः । स्तुवीते । स्तुवाते । स्तुवते । स्तुवीषे । स्तुषे । स्तुवीध्वे । स्तुध्वे । स्तुवे । स्तुवीवहे । स्तुवहे । स्तुवीमहे । स्तुमहे । तुष्टाव । तुष्टुवतुः ।

---

* इस सूत्र को भट्टोजिदीक्षित ने भ्वादिगण के सु धातु पर लिखा है सो स्तु धातु के साहचर्य से लुग्विकरण अदादि के सु धातु का ग्रहण होना चाहिये इस लिये वहां लिखना ठीक नहीं है ॥

तुष्टुवुः । तुष्टोथ (१४८) इट् निषेध । स्तोतासि । स्तोतासे ।स्तोष्यति । स्तोष्यते । स्तोषति । स्तोषाति । स्तोषति । स्तोषाति । स्तोषते । स्तोषाते । स्तोषते । स्तोषाते । स्तौतु । स्तवीतु । स्तुवीताम् । स्तुताम् । अस्तवीत् । अस्तौत् । अस्तुवीत । अस्तुत । स्तुवीयात् । स्तुयात् । स्तुवीत । स्तुवीयाताम् । स्तूयात् । स्तूयास्ताम् । स्तोषीष्ट । स्तोषीढ्वम् ।अस्तावीत् (३३०) इट् । अस्ताविष्टाम् । अस्ताविषुः । अस्तावीः (३३०) सूत्र में परस्मैपद के कहने से आत्मनेपद में इट् नहीं होता । अस्तोष्ट। अस्तोषाताम् ।अस्तोषत । अस्तोष्यत् । अस्तोष्यत [ब्रूञ्] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) ॥ ३३० ॥

३३१—ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८४ ॥

ब्रूञ् धातु से परे लट् लकार के परस्मैपद संज्ञक आदि के तिप् आदि पांच वचनों को णल् आदि पांच आदेश यथासंख्य करके होवें और उन्हीं आदेशों के सम्बन्ध में ब्रूञ् धातु को आह आदेश होजावे । इस सूत्र में दूसरी वार ब्रू धातु इस लिये पढ़ा है कि आह आदेश किसी प्रत्यय के स्थान में न होजावे । ब्रू+तिप्=आह । आहतुः । आहुः । प्राहुः । आह+थल् ॥ ३३१ ॥

३३२—आहस्थः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३५ ॥

आह धातु के हकार को थकार आदेश होवे झल् परे हो तो । आत्थ । प्रथम थकार को चर्त्व तकार हो जाता है । आहथुः (३३१) सूत्र में आदि के पांच वचनों के कहने से । ब्रूथ । यहां प्रत्यय और धातु को आदेश नहीं होते ॥ ३३२ ॥

३३३—ब्रुवईट् ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ९३ ॥

ब्रूञ् धातु से परे जो हलादि पित् सार्वधातुक उस को ईट् का आगम होवे । ब्रवीति । आत्थ । यहां ब्रूञ् को स्थानिवत् मानने से ईट् प्राप्त है परन्तु (३३२) सूत्र से हकार को थकार विधान सामर्थ्य से नहीं होता । ब्रूतः । ब्रुवन्ति । ब्रवीषि । ब्रूथः । ब्रूथ । ब्रवीमि । ब्रूवः । ब्रूमः । ब्रूते । ब्रुवाते । ब्रुवते ॥ ३३३ ॥

३३४-ब्रुवो वचिः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५३ ॥

आर्द्धधातुक विषय में ब्रूञ् धातु को वचि आदेश होवे । इकार व्यंजन की सहायता के लिये है । वच+वच+णल्=उवाच (२८३) सम्प्रसारण । ऊचतुः । ऊचुः (२८२) उवचिथ । उवक्थ । ऊचे । ऊचाते । ऊचिरे । वक्तासि । वक्तासे । वक्ष्यति । वक्ष्यते । वाचति । वाचाति । वचति । वचाति। ब्रवति । ब्रवाति। वाचते वाचाते । वचते । वचाते । वचते । वचाते । ब्रुवते । ब्रुवाते । ब्रुवते । ब्रुवाते ।

ब्रवीतु । ब्रूतात् । ब्रूताम् । ब्रुवन्तु । ब्रूहि । ब्रूतात् । ब्रूतम् । ब्रूत । ब्रवाणि । ब्रवाव । ब्रवाम । ब्रूताम् । ब्रुवाताम् । ब्रुवताम् । ब्रवै । ब्रवावहै । ब्रवामहै । अब्रवीत् । अब्रूताम् । अब्रुवन् । अब्रूत । ब्रूयात् । ब्रूयाताम् । ब्रूयुः । ब्रुवीत । ब्रुवीयाताम् । ब्रुवीरन् । उच्यात् (२३४) वचि (२८२) सम्प्रसारण । उच्यास्ताम् । वचीष्ट । लुङ् में अङ् (३१६) हो कर ॥ २३४ ॥

३३५—वच उम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २० ॥

अङ् परे होतो वच धातु को उम् का आगम होवे । मित् आगम अन्त्य अच् से परे हो कर । अट्+व-उम् च्+अङ्+तिप्=अवोचत् । अवोचताम् । अवोचन् । अवोचत । अवोचेताम् । अवोचन्त । अवक्ष्यत् । अवक्ष्यत । आशिषि लिङ् में वच आदि कई धातुओं के प्रयोग वैदिक विषय में कुछ विशेष होते हैं ॥ ३३५ ॥

३३६—लिङ्याशिष्यङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८६ ॥

आशीर्वाद अर्थ में लिङ् परे हो तो वेद विषय में सामान्य धातुओं से अङ् प्रत्यय होवे ॥ ३३६ ॥

३३७—छन्दस्युभयथा ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११७ ॥

वेद विषय में जिन प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा कही है उन को आर्द्धधातुक और जिन की आर्द्धधातुक संज्ञा कही है उन की सार्वधातुक संज्ञा भी होवे । प्रकृत में आशीर्वाद अर्थ में लिङ् की आर्द्धधातुक संज्ञा (८४) कह चुके हैं उस को सार्वधातुक संज्ञा भी होवे (भा०—स्थागागमिवचिविदिशकिरुहयः प्रयोजनम्) स्था, गा, गम, वच, वद, शक और रुह इन धातुओं से बहुधा आशिष् लिङ् में अङ् होता है । यह नियम नहीं है कि इन्हीं धातुओं से होवे अन्य से नहीं (स्था) उपस्थ+ अङ्+यासुट्+मिप्=उपस्थेयम् (२४४) आकार लोप और सार्वधातुक संज्ञा मान के इय् आदेश (८१) (गा) गै धातु भ्वादि गण में लिख चुके हैं उसी को यहां जानो । उपगा+अङ्+यासुट+अम्=उपगेयम् । पूर्ववत् (गम) गम्+अङ+इय्+मस्=गमेम । यहां लिङ् की सार्वधातुक संज्ञा होने से इय् और अङ् की आर्द्धधातुकसंज्ञा मान के गम् को छकारादेश (२७२) नहीं होता (वच) वउम्च्+अङ्+यास्+मस्=वोचेम (विद) विद्+अङ्+इय्+मिप्= विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् (शकि) शक्+अङ्+इय्+मिप्=शकेयम् (रुह्) रुह+अङ्+इय्+मिप्=रुहेयम् ॥ ३३७ ॥

३३८—दृशेरग्वक्तव्यः ॥

दृश धातु से अक् प्रत्यय कहना चाहिये । दृश्+अक्+इय्+अम्=दृशेयम् जो यहां (३३६) सूत्र से अङ् होता तो अकित् होने से अम् (२७८) होजाता इस लिये अक् पढ़ा है ॥

अथ शास्त्यन्ताः परस्मैपदिनः। इङ्त्वात्मनेपदी। अब शासु धातु पर्यंत परस्मैपदी कहते हैं परन्तु इङ् धातु एक आत्मनेपदी है [इण्] गतौ । एति ।इतः॥ ३३८॥

३३९—इणो यण् अ० ॥ ६ । ४ । ८१ ॥

इण् धातु को यण् आदेश होवे अच् परे होतो । यन्ति । यह सूत्र इयङ् (१५८) का अपवाद है । इ+णल्=इयाय । यहां इकार को ऐकार वृद्धि और ऐको द्वित्व होकर इयङ् (१५३) होता है ॥ ३३९ ॥

३४०—दीर्घइणः किति ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६९ ॥

इण् धातु के अभ्यास को दीर्घ आदेश होवे कित् लिट् परे होतो। इ—अतुस्। इस अवस्था में यण् होकर। यण् को स्थानि रूप (२४५) मान कर द्वित्व होता है। ईयतुः । ईयुः । इययिथ । इयेथ । ईयथुः । ईय । इयाय । इयय । ईयिव । ईयिम । एतासि । एष्यति । ऐषति । ऐषाति । एषति। एषाति। अयति । अयाति । एतु। इतात् । इताम् । यन्तु (३३९) यण् । इहि । इतात् । इतम् । इत । अयानि । अयाव । अयाम । ऐत् । ऐताम् । आयन् । ऐः । ऐतम् । ऐत । आयम् । ऐव । ऐम । इयात् । इयाताम् । इयुः । ईयात् (१६०) दीर्घ । ईयास्ताम् ॥ ३४० ॥

३४१—एतेर्लिङि ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २४ ॥

उपसर्ग मे परे इण् धातु के अण् को ह्रस्व होवे कित् लिङ् परे हो तो। उदियात् । समियात् । अन्वियात् । सम्+आ+इ+यासुट्+तिप्=समेयात् । यहां एकार अण् नहीं है इस लिये ह्रस्व नहीं होता ॥ ३४१ ॥

३४२—इणो गा लुङि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४५ ॥

इण् धातु को गा आदेश होवे लुङ् लकार परे हो तो । गा होकर सिच् का लुक् (८९) सूत्र में गाति करके यही गा आदेश लिया जाता है । अगात्। अगाताम् । अगुः [इङ्] अध्ययने (पढ़ना) इस धातु के प्रयोग नित्य अधि उपसर्ग पूर्वक ही आते हैं । अधि+इ+त=अधीते । सवर्णदीर्घ एकादेश होता है । अधीयाते । अधीयते । इयङ् (१५८) अधीषे । अधीयाथे । अधीध्वे । अधीये। अधीवहे । अधीमहे ॥ ३४२ ॥

३४३—गाङ् लिटि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४९ ॥

इङ् धातु को गाङ् आदेश होवे लिट् लकार की विवक्षा में। अधि+गा+एश्=अधिजगे। यहां प्रथम आकार लोप (२४४) होकर स्थानिरूप (२४५) मान के द्वित्व होता है। अधिजगाते । अधिजगिरे। अधिजगिषे। अध्येतासे। यहां अधि के इकार को यण् हो जाता है । अध्येष्यते । अध्यैषते। अध्यैषातै। अध्येषतै। अध्येशातै। अध्यैषते । अध्यैषाते। अध्येषते। अध्येषाते। अधीताम्। अधीयाताम् । अधीयताम्। अध्ययै । अध्ययावहै । अध्ययामहै। अध्यैत। अध्यैयाताम्। यहां परत्व से प्रथम इयङ् (१५९) और पीछे आट् हो कर उस के साथ वृद्धि होती है। अध्यैयत। अध्यैथाः । अध्यैयाथाम्। अध्यैध्वम्। अध्यैयि । अध्यैवहि। अध्यैमहि। अधीयीत। अधीयीयाताम्। अधीयीरन्। अधीयीध्वम्। अधीयीय। अध्येषीष्ट। अध्येषीयास्ताम्। अध्येषीढ्वम् ॥ २४३ ॥

३४४—विभाषा लुङ्लृङोः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५० ॥

इङ् धातु को गाङ् आदेश विकल्प करके होवे लुङ् और लृङ् लकार परे हों तो। गाङ् आदेश पक्ष में ॥ २४४ ॥

३४५—गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् ॥ अ०॥ १ । २ । १ ॥

गाङ् और कुटादि धातुओं से परे जो ञित् णित् भिन्न प्रत्यय वे ङित्वत् हों। यहां लुङ् में सिच् और लृङ् में स्य ङित्वत् होकर ॥ २४५ ॥

३४६—घुमास्थागापाजहातिसां हलि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६६ ॥

घुसंज्ञक (२४६) मा, स्था, गा, पा, ओहाक् और षो धातु के आकार को ईकारादेश होवे हलादि कित् ङित् आर्द्धधातुक परे हो तो। अध्यगीष्ट। अध्यगीषाताम्। अध्यगीषत। अध्यगीष्ठाः। अध्यगीढ्वम्। जिस पक्ष में गाङ् (३४४) न हुआ वहां। अध्यैष्ट। अध्यैषाताम्। अध्यैढ्वम्। अध्यगीष्यत। अध्यगीष्येताम्। अध्यगीष्यन्त। अध्यैष्यत। [इक्] स्मरणे (स्मरण करना) यह भी धातु अधि उपसर्ग पूर्वक ही है इस में कारक विषयक (अधीगर्थदयेशांकर्मणि) सूत्र का प्रमाण है। अध्येति। अधीतः। अधीयन्ति। अध्येषि। अधीथः। अधीथ। अधीयुः। अध्येतासि। अध्येष्यति। अध्येषति। अध्यैषाति। अध्येषति।

अध्येयाति । अध्येतु । अधीतात् । अधीताम् । अधीयन्तु । अधीहि । अध्ययानि । अध्ययाव । अध्ययाम । अध्यैत् । अध्यायन् । अध्यैः । अध्यायम् । अधीयात् । अधीयाताम् । अधीयुः । अधीयात् । अधीयास्ताम् ॥ ३४६ ॥

३४७—वा०—इण्वदिक इति वक्तव्यम्* ॥

आर्द्धधातुक अधिकार में इक् धातु को इण् के तुल्य कार्य होवें अर्थात् लुङ् लकार में जो इण् धातु को गा आदेश (३४२) कहा है सो इक् को भी होवे। अध्यगात्। अध्यगाताम्। अध्यगुः। अध्येष्यत् [वी] गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु (गति, व्याप्ति, गर्भ होना, इच्छा, फेंकना और खाना) वेति। वीतः। वियन्ति (१५९) इयङ्। वेषि। विवाय। विव्यतुः। विव्युः। विवयिथ। विवेथ। वेता। वेष्यति। वेषति। वेषाति। वेषति। वेषाति। वयति। वयाति। वेतु। वीतात्। वीहि। वयानि। अवेत्। अवीताम्। अवियन्। अवेः। वीयात्। वीयाताम्। वीयुः। वीयास्ताम्। अवैषीत्। अवैष्टाम्। अवैषुः। अवेष्यत्। इस वी धातु में मिला उन्हीं अर्थों में ई धातु भी मानते हैं। एति। ईतः। इयन्ति। इयाय। ईयतुः। एता। एष्यति। ऐषति। ऐषाति [या] प्रापणे (प्राप्त होना) याति। यातः। यान्ति। ययौ। ययतुः। ययुः। ययिथ। ययाथ। यातासि। यास्यति। यासति। यासाति। यातु। अयात्। अयाताम् ॥ ३४७ ॥

३४८—लङः शाकटायनस्यैव ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १११ ॥

आकारान्त धातु से परे जो लङ् लकार का झि उस को जुस् आदेश होवे शाकटायन आचार्यहों के मत में। अयुः (८३) पररूपएकादेश। अयाः। अयातम्। अयात। अयाम्। अयाव। अयाम। यायात्। यायाताम्। यायास्ताम्। अयासीत्। अयासिष्टाम्। अयासिषुः। अयास्यत् [वा] गतिगन्धनयोः (गति और सूचना) वाति। वातः। वान्ति। वासि। ववौ। वातासि। वास्यति। वासति। वासाति। वातु। वाहि। अवात्। अवासीत्। अवास्यत् [भा] दीप्तौ

---

* इस वार्त्तिक को भट्टोजिदीक्षित ने लट् लकार में लगा के और [अधियन्ति] प्रयोग इक् धातु को यण् [१३९] करके बनाया और पीछे यह भी लिखा है कि कोई लोग इस को आर्द्धधातुक विषय में कहते हैं उन के मत में (अधीयन्) होगा। सो यह महाभाष्य से विरुद्ध होने के कारण माननीय नहीं भाष्यकार ने इस वार्त्तिक को [३४२] सूत्र पर लिखकर लुङ् लकार के उदाहरण दिये हैं और (३४२) सूत्र भी आर्द्धधातुक अधिकार में होने से लट् लकार में इक् धातु को इण्वत् कार्य कदापि नहीं होसकता फिर (अधियन्ति) प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है।

(प्रकाश) भाति। बभौ [ष्णा] शौचे। स्नाति। सस्नौ। स्नेयात् (२५२) स्नायात्। अस्नासीत् [श्रा] पाके। श्रेयात्। श्रायात् [द्रा] कुत्सायां गतौ च (निन्दा और गति) द्रेयात्। द्रायात् [प्सा] भक्षणे (खाना) प्साति। पप्सौ। प्सेयात्। प्सायात्। [पा] रक्षणे। पायास्ताम् (२५२) सूत्र में पा धातु से पिबति का ग्रहण होने से इस धातु को एकारादेश (२५२) नहीं होता। अपासीत् (८९) सूत्र में भी पिबति का ही ग्रहण होने से सिच् लुक् नहीं होता [रा] दाने। राति [ला] आदाने। लाति। लायात् [दाप्] लवने (काटना) दाति। दायास्ताम्। घु संज्ञा के (२४६) न होने से ईकार आदेश और। अदासीत्। सिच् लुक् (८९) नहीं होता [ख्या] प्रकथने (अच्छे प्रकार कहना) इस धातु के प्रयोग सार्वधातुक विषय में ही समझने चाहिये क्यों कि आर्द्धधातुक विषय में चक्षिङ् धातु को ख्याञ् आदेश (३१२) कह चुके हैं उसी के प्रयोग आते हैं। ख्याति। ख्येयात्। ख्यायात्। [प्रा] पूरणे (तृप्त करना) प्राति। प्रेयात्। प्रायात्। अप्रासीत् [मा] माने (समाजाना) माति। ममौ। ममिथ। ममाथ। मातासि। मास्यति। मासति। मासाति। मातु। माहि। अमात्। मेयात् (२४७) मेयास्ताम्। अमासीत्। अमास्यत् [वच] परिभाषणे (व्याख्यान करना) वक्ति। वक्तः। वचन्ति। वक्षि। वक्थः। वच्मि। उवाच (२८२) संप्रसारण। ऊचतुः (२८३) ऊचुः। उवचिथ। उवक्थ। वक्तासि। वक्ष्यति। वाक्षति। वाक्षाति। वक्तु। वग्धि। वचानि। अवक्। अवक्ताम्। अवचन्। अवक्। वच्यात्। उच्यात् (२८३) उच्यास्ताम्। अवोचत्। अङ्। और (३३५) उम् आगम। ये इण् आदि अनिट् परस्मैपदी धातु समाप्त हुए [विद] ज्ञाने ॥ ३४८ ॥

३४९—विदो लटो वा ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८३ ॥

विद धातु से परे लट् लकार संबन्धी परस्मैपद संज्ञक प्रत्ययों के स्थान में णल् आदि ९ आदेश यथासंख्य और विकल्प करके होवें। वेद। विदतुः। विदुः। वेत्थ। विदथुः। विद। वेद। विद्व। विद्म। पक्ष में। वेत्ति। वित्तः। विदन्ति। आम् प्रत्यय विधायक (२१३) सूत्र में विद धातु अकारान्त निपातन भाष्यकार ने किया है आम् प्रत्यय के परे विद धातु के अकार का लोप (१७२) हो कर स्थानिवत् होने से आम् प्रत्यय को मान कर गुण नहीं होता। विदाञ्चकार। विदाञ्चक्रतुः। विदाञ्चक्रुः। पक्ष में। विवेद। विविदतुः। विविदुः। विवेदिथ। वेदितासि। वेदिष्यति। वेदिषति। वेदिषाति। वेदति। वेदाति। वेत्तु। विद्यात्। विद्याम् ॥ ३४९ ॥

३५०—विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्* ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४१ ॥

लोट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में । विदाङ्कुर्वन्तु । विकल्प से निपातन किया है । विद धातु से आम् प्रत्यय कृञ् का अनुप्रयोग और उ प्रत्यय विकरण आदि निपातन से होते हैं । और पक्ष में । विदन्तु । भी होता है । विद्धि । वित्तात् । वित्तम् । वित्त । वेदानि । वेदाव । वेदाम । अवेत् । अवित्ताम् । अविदुः (१३४) झि को जुस् ॥ ३५० ॥

३५१—दश्च ॥ अ० ॥ ८ । २ । ७५ ॥

धातु के पदान्त दकार को रु आदेश विकल्प कर के होवे सिप् परे होतो । अवेः । रु को विसर्जनीय । पक्ष में । अवेत् । अवित्तम् । अवित्त । अवेदम् । अविद्व । अविद्म । विद्यात् । विद्युः । विद्यास्ताम् । अवेदीत् । अवेदिष्टाम् । अवेदिषुः । अवेदिष्यत् [अस] भुवि । यह धातु भूधातु के अर्थ में है । अस्ति ॥ ३५० ॥

३५२ – श्नसोरल्लोपः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १११ ॥

श्नम् प्रत्यय और अस् धातु के अकार का लोप होवे कित् ङित् सार्वधातुक परे होतो । अस्+तस्=स्तः । सन्ति । असि (५४) स्थः । स्थ । अस्मि । स्वः । स्मः ॥ ३५२ ॥

३५३—अस्तेर्भूः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५२ ॥

अस धातु को भू आदेश होवे सामान्य आर्द्धधातुक विषय में अर्थात् आर्द्धधातुक लकारों में भूधातु के ही प्रयोग होते हैं अस के नहीं । बभूव । बभूवतुः । बभूविथ । भवितासि । भविष्यति । भाविषति । भाविषाति । असति । असाति । असत् । असात् । अस्तु । स्तात् । स्ताम् । सन्तु (३५२) अस्—हि । यहां ॥३५३॥

३५४—घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११९ ॥

घु संज्ञक और अस धातु को एकारादेश और घु संज्ञक के अभ्यास का लोप होवे हि परे होतो । असधातु के अन्त्य अल् सकार के स्थान में एकारादेश होता

---

* इस सूत्र में जो इति शब्द पढ़ा है उस से शब्द के स्वरूप का बोध होता है और इति शब्द का यही प्रयोजन सर्वत्र आता है । काशिका कार आदि और भट्टोजिदीक्षित ने लिखा है कि इति शब्द पढ़ने से पुरुष और वचन की विवक्षा नहीं कि लोट् के प्रथम पुरुष बहुवचन का ही प्रयोग निपातन किया होवे किन्तु लोट् लकार के सब प्रयोगों में निपातन किया है । विदाङ्करोतु । आदि भी प्रयोग होते हैं सो यह व्याख्यान माननीय नहीं है क्यों कि सूत्र और महाभाष्य से विरुद्ध है । इस से अगले (अभ्युत्सादयां०) सूत्र में ऐसे ही आम् प्रत्ययान्त निपातन किये हैं वहां भी इति शब्द पढ़ा है उस का व्याख्यान इन लोगों ने भी स्वरूप बोधक ही रक्खा है । इस से इन का व्याख्यान पूर्वापर विरुद्ध भी है ।

है पीछे एकारादेश को असिद्ध (४२) मान कर हि को धि (२००) और अकार का लोप (२५२) होता है। एधि। स्तात्। स्तम्। स्त। असानि। असाव। असाम। लङ् में ईट (१३१) आसीत्। यहां भी तस् आदि में लोप के बलीय होने से अकारलोप (२५२) हो कर अजादि के न होने से आट् (११८) नहीं प्राप्त है सो अकार लोप को असिद्ध (४२) मानकर आट् हो जाता है। आस्ताम्। आसन्। आसीः। आस्तम्। आस्त। आसम्। आस्व। आस्म। स्यात्। स्याताम्। स्युः। स्याः। भूयात्। भूयास्ताम्। अभूत्। अभूताम्। अभूवन्। अभविष्यत्। [मृजूष्] शुद्धौ (पवित्रता) यह धातु ऊदित् है ॥ २५४ ॥

२५५—मृजेर्वृद्धिः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ११४ ॥

मृज धातु की इक् को वृद्धि होवे सामान्य प्रत्ययों के परे। ऋकार को आर् वृद्धि। मार्ष्टि (२३३) षत्व। मृष्टः। ॥ २५५ ॥

२५६—वा०—इहान्ये वैयाकरणा मृजेरजादौ संक्रमे विभाषा वृद्धिमारभन्ते॥

यह वार्त्तिक (इकोगुणवृद्धी) सूत्र पर है इस व्याकरण शास्त्र में बहुतेरे वैयाकरण लोग मृज धातु को अजादि कित् ङित् प्रत्ययों के परे विकल्प कर के वृद्धि कहते हैं। मार्जन्ति। मृजन्ति। मार्क्षि। मृष्ठः। मृष्ठ। मार्ज्मि। मृज्वः। मृज्मः। ममार्ज। ममार्जतुः। ममृजतुः। ममार्जुः। ममृजुः। ऊदित् होने से इट् का विकल्प (१४०) ममार्जिथ। ममार्ष्ठ। ममार्जथुः। ममृजथुः। ममार्ज। ममृज। ममार्ज। ममर्ज। ममार्जिव। ममृजिव। ममृज्व। ममार्जिम। ममृजिम। ममृज्म। मार्जितासि। मार्ष्टासि। मार्जिष्यति। मार्क्ष्यति। मार्जिषति। मार्जिषाति। मार्क्षति। मार्क्षाति। मार्जति। मार्जाति। मार्ष्टु। मृष्टात्। मृष्टाम्। मार्जन्तु। मृजन्तु। मृड्ढि। यहां षत्व होने के पश्चात् (२३३) जश्त्व ष्टुत्व होते हैं। मार्जानि। मार्जाव। मार्जाम। अमार्ट्। अमृष्टाम्। अमार्जन्। अमृजन्। अमार्जम्। मृज्यात्। मृज्याताम्। मृज्यास्ताम्। अमार्जीत्। अमार्जिष्टाम्। अमार्क्षीत्। अमार्ष्टाम्। अमार्क्षुः। अमार्जिष्यत्। अमार्क्ष्यत् [रुदिर्] अश्रुविमोचने (रोना) ॥ २५६ ॥

२५७—रुदादिभ्यः सार्वधातुके ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७६ ॥

रुद, स्वप्, श्वस्, अन और जक्ष इन पांच धातुओं से परे वलादि सार्वधातुक को इट् का आगम होवे। रोदिति। रुदितः। रुदन्ति। रोदिषि। रुदिथः।

रुदिथ । रोदिमि । रुदिवः । रुदिमः । रुरोद । रुरुदतुः । रुरुदुः । रुरोदिथ । रोदितासि । रोदिष्यति । रोदिषति । रोदिषाति । रोदति । रोदाति । रोदितु । रुदिहि । रोदानि । रोदाव । रोदाम ॥ ३५७ ॥

३५८—रुदश्च पञ्चभ्यः ॥ अ० । ७ । ३ । ९८ ॥

रुद आदि उक्त पांच धातुओं से परे हलादि पित् अपृक्त सार्वधातुक को ईट् होवे । अरोदीत् । अरोदीः ॥ ३५८ ॥

३५९—अड् गार्ग्यगालवयोः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ९९ ॥

गार्ग्य और गालव आचार्यों के मत में रुद आदि पांच धातुओं से परे उक्त सार्वधातुक को अट् का आगम होवे। यह ईट् और अट् इट् के आगम का निषेध है । अरोदत् । अरुदताम् । अरुदन् । अरोदः । अरुदितम् । अरुदित । अरोदम् । अरुदिव । अरुदिम । प्रकृति और प्रत्यय की विशेष अपेक्षा रखनेवाले अट् और ईट् आगमों से अन्तरङ्ग होने के कारण यासुट प्रथम हो जाता है फिर ईट् और अट् की प्राप्ति नहीं है । रुद्यात् । रुद्याताम् । रुद्यास्ताम् । इरित् होने से अङ् विकल्प (१३८) अरुदत् । अरुदिताम् । अरुदन् । अरोदीत् । अरोदिष्टाम् । अरोदिषुः [ञिष्वप] शये (सोना) स्वपिति (३५६) इट् । स्वपितः । स्वपन्ति । सुष्वाप (२८२) संप्रसारण । सुषुपतुः (२८३) सुषुपुः । सुष्वपिथ । सुष्वपथ । स्वप्तासि । स्वप्स्यति । स्वाप्सति । स्वाप्साति । स्वप्सति । स्वप्साति । स्वपति । स्वपाति । स्वपितु । स्वपितात् । स्वपिहि । अस्वपीत् (३५८) अस्वपत् (३५९) अस्वपिताम् । अस्वपन् । अस्वपीः । अस्वपः । अस्वपम् । स्वप्यात् । स्वप्याताम् । सुप्यात् । सुप्यास्ताम् (२८३) अस्वाप्सीत् । अस्वाप्ताम् । अस्वाप्सुः । अस्वाप्सीः । अस्वाप्तम् । अस्वाप्त । अस्वाप्सम् । अस्वाप्स्व । अस्वाप्स्म । अस्वप्स्यत् [श्वस] प्राणने (ऊपर का श्वास) श्वसिति । श्वसितः । श्वसन्ति । शश्वास । शश्वसतुः । शश्वसुः । शश्वसिथ । श्वसितासि । श्वसिष्यति । श्वासिषति । श्वासिषाति । श्वसितु । श्वसिहि । अश्वसीत् । अश्वसत् । अश्वसीः । अश्वसः । श्वस्यात् । अश्वसीत् (१६२) वृद्धि का निषेध । अश्वसिष्यत् [अन] च । यह धातु भी प्राणन अर्थ में है । अनिति । आन । आनतुः । अनितु । आनीत् । आनत् । आनीः । आनः । अन्यात् । आनीत् । आनिष्टाम् । आनिष्यत् [जक्ष] भक्षहसनयोः (खाना और हंसना) जक्षिति । जक्षितः ॥ ३५९ ॥

३६०—जक्षित्यादयः षट् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ६ ॥

जक्ष धातु से ले कर वेवीङ् पर्यन्त सात धातुओं की अभ्यस्त संज्ञा होवे ।

इस सूत्र में अतद्गुण संविज्ञान बहुव्रीहि है। अर्थात् जक्ष धातु जिन के आदि में हो ऐसे अन्य छः धातु और जक्ष सातवां हुआ। अभ्यस्त का फल ॥ ३६० ॥

३६१— अदभ्यस्तात् ॥ अ० ॥ ७ । १ । ४ ॥

अभ्यस्त संज्ञक धातुओं से परे जो प्रत्यय का आदि झकार उस को अत् आदेश होवे। यह अन्त आदेश का बाधक है। जक्षति । जक्षिषि । जजक्ष । जजक्षिथ । जक्षितासि । जक्षिष्यति । जक्षिषति । जक्षिषाति । जक्षति । जक्षाति । जक्षितु । जक्षत । जक्षिहि । अजक्षीत् । अजक्षत् । अजक्षिताम् । अजक्षुः (१३४) अभ्यस्त होने से जुस् । अजक्षीः । अजक्षः । जक्ष्यात् । जक्ष्यातम् । जक्ष्यास्ताम् । अजक्षीत् । अजक्षिष्यत् । ये रुदादि पांच धातु समाप्त हुए॥

[जागृ] निद्राक्षये (जागना) इस धातु के अन्त्य ऋकार का लोप नहीं होता क्योंकि वह उपदेश में अनुनासिक नहीं पढ़ा है। जागर्ति । जागृतः । जाग्रति । अभ्यस्त संज्ञा (३६०) होने से प्रत्ययादि झकार को अत् । जागर्षि । जागृथः । जागृथ । जागर्मि । जागृवः । जागृमः । लिट् में विकल्प से आम् (२१३) जगराञ्चकार । जागराम्बभूव । जागरामास । पक्ष में यह धातु दो स्वर वाला है इस लिये प्रथम एकाच् अवयव जामात्र को द्वित्व होता है। जजागार ॥ ३६१ ॥

३६२—जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८५ ॥

जागृ धातु को गुण होवे वृद्धिविषय और निषेध विषय में। परन्तु वि, चिण्, णल् और ङित् प्रत्ययों के परे न होवे। वि कार के उणादि का विन् प्रत्यय लिया है। इस सूत्र से तीन प्रकार का नियम निकलता है। एक तो कित् ङित् प्रत्ययों में गुण नहीं प्राप्त है वहां कित् में होना ङित् में नहीं। विन् प्रत्यय में गुण प्राप्त है वहां न होना। जागृविः। चिण् और णल् को छोड़ के अन्यत्र वृद्धि विषय में गुण होना वृद्धि नहीं। फिर चिण् और णल् में वृद्धि ही होती है। जजागरतुः । जजागरुः । जजागरिथ । जागरितासि । जागरिष्यति । जागरिषति । जागरिषाति । जागर्त्तु । जागृतात् । जागृताम् । जाग्रतु । जागृहि । जागराणि । जागराव । जागराम । अजागः । अजागृताम् । अभ्यस्त होने से जुस् (१३४) ॥३६२॥

३६३—जुसि च ॥ अ० ॥ ७ । ३ ॥ ८३ ॥

अजादि जुस् परे हो तो इगन्त अङ्ग को गुण होवे। अजागरुः । यहां ङित् होने से गुण नहीं प्राप्त है इसलिये यह सूत्र है। अजागः । अजागरम् । जागृयात् । जागृयाताम् । जागृयुः । अजादि के कहने से यहां जुस् में गुण नहीं होता।

जागर्यात् । जागर्यास्ताम् । जागर्यासुः । लुङ् में । अट्—जागृ—इस्—ईट्—तिप् । इस अवस्था में जागृ धातु के ऋकार को यणादेश प्राप्त है उस का बाधक गुण (२१) प्राप्त और गुण का अपवाद वृद्धि (१५८) प्राप्त है उस का भी अपवाद गुण (३६२) होता है फिर अर् गुण हो कर हलन्त होने से वृद्धि (१२५) प्राप्त है उस का निषेध (१३६) होकर विकल्प से वृद्धि (१४४) प्राप्त है उस का बाधक नित्य वृद्धि (१८६) प्राप्त है उस का भी निषेध (१६२) होजाता है । अजागरीत् । अजागरिष्टाम् । अजागरिषुः [दरिद्रा] दुर्गतौ (बुरा हाल) दरिद्राति ॥ ३६३ ॥

३६४—इद्दरिद्रस्य ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११४ ॥

हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे हो तो दरिद्रा धातु को इकारादेश हो । अन्त्य अल् आकार को होता है । दरिद्रितः ॥ ३६४ ॥

३६५—श्नाभ्यस्तयोरातः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११२ ॥

श्ना प्रत्यय और अभ्यस्त संज्ञक धातुओं के आकार का लोप हो कित् ङित् सार्वधातुक परे हो तो। दरिद्रति। दरिद्रासि । दरिद्रिथः । दरिद्रिथ । दरिद्रामि। दरिद्रिवः । दरिद्रिमः (१६८ । १७०) सूत्रों से दरिद्रा धातु को अनेकाच् मान कर आम् प्रत्यय होता है । दरिद्राञ्चकार । दरिद्राम्बभूव । दरिद्रामास । वेद में आम् प्रत्यय नहीं होता वहां । ददरिद्रौ । ददरिद्रतुः । ददरिद्रुः ॥ ३६५ ॥

३६६—वा०—दरिद्रातेरार्द्धधातुके लोपो वक्तव्यः ॥

आर्द्धधातुक प्रत्ययों की विवक्षा में दरिद्रा धातु के आकार का लोप होवे । प्रयोजन यह है कि इट् और अजादि कित् ङित् आर्द्धधातुक में आकार लोप (२४४) होता है इस वार्त्तिक से हलादि कित् ङित् आर्द्धधातुक में भी हो जाता है। ददरिद्रिथ । दरिद्रितासि । दरिद्रिष्यति । दरिद्रिषाति । दरिद्रातु । दरिद्रितात्। दरिद्रिताम् । दरिद्रतु । दरिद्रिहि । दरिद्राणि । अदरिद्रात् । अदरिद्रिताम् । अदरिद्रुः । दरिद्रियात् । दरिद्रियाताम् । दरिद्रियुः। दरिद्र्यात् । दरिद्र्यास्ताम्। यहां हलादि कित् आर्द्धधातुक में लोप (३६६) होता है ॥ ३६६ ॥

३६७—वा०—अद्यतन्यां वेति वक्तव्यम् ॥

लुङ् लकार में दरिद्रा धातु के आकार का लोप विकल्प करके होवे । पूर्व आचार्यों के मत में अद्यतनी संज्ञा लुङ् लकार की है । अदरिद्रीत् । अदरिद्रिष्टाम् । अदरिद्रासीत् (२५२) अदरिद्रिषत् ॥ ३६७ ॥

३६८—का०—न दरिद्रायके लोपो दरिद्राणे च नेष्यते ।
दिदरिद्रासतीत्येके दिदरिद्रिषतीति वा ॥

आर्द्धधातुक में सामान्य करके जो लोप (३६५) कहा है सो। दरिद्रायकः। यहां ऋदन्त खुल् प्रत्यय में तथा। दरिद्राणम्। यहां ल्युट् प्रत्यय में आकार लोप न होवे और सन् प्रत्यय के परे विकल्प करके होवे। दिदरिद्रिषति। दिदरिद्रासति। [चकासृ] दीप्तौ (प्रकाश) चकास्ति। चकास्तः। चकासति। चकासांचकार। (१७०) आम्। चकासाम्बभूव। चकासामास। चकासितासि। चकासिष्यति। चकासिषति। चकासिषाति। चकास्तु। चकासतु। चकास्–हि। यहां प्रथम हि को धि आदेश (३००) हो कर धकार के परे स लोप (१११) हो जाता है। चकाधि। चकासानि। अचकास्–त्। यहां संयोगान्त तकार का लोप होकर ॥३६८॥

३६९—तिप्यनस्तेः ॥ अ० ॥ ८ । २ ॥ ७३ ॥

अस धातु को छोड़ के अन्य धातु के पदान्त सकार को दकार आदेश होवे तिप् परे होतो। अचकात्। अचकाद्। अचकास्ताम्। अचकासुः ॥ ३६९ ॥

३७०—सिपि धातो रुर्वा ॥ अ० ॥ ८ । २ । ७४ ॥

पदान्त धातु के सकार को विकल्प करके रु हो सिप् परे हो तो। पक्ष में पूर्व सूत्र से दकार होता है। अचकाः। अचकात्। चकास्यात्। चकास्यास्ताम्। अचकासीत्। अचकासिष्टाम्। अचकासिष्यत् [शासु] अनुशिष्टौ (शिक्षा देना) शास्ति ॥ ३७० ॥

३७१—शास इदङ्हलोः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३४ ॥

शास धातु की उपधा को इकार आदेश होवे अङ् और हलादि कित् ङित् अर्द्धधातुक परे होतो। शिष्टः (२८४) षत्व। शासति। शास्सि। शिष्ठः। शिष्ठ। शास्मि। शिष्वः। शिष्मः। शशास। शशासतुः। शशासुः। शासितासि। शासिष्यति। शासिषति। शासिषाति। शास्तु। शिष्टात्। शिष्टाम्। शासतु ॥ ३७१ ॥

३७२—शा हौ ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३५ ॥

शास धातु को शा आदेश होवे हि परे हो तो। शा आदेश अनेकाल् होने से संपूर्ण के स्थान में होता है। शा आदेश को असिद्ध (४२) मान कर हि को धि आदेश (३००) होजाता है। शाधि। शिष्टात्। शिष्टम्। शिष्ट। शासानि। अशात् (३६९) अशिष्टाम्। अशासुः। अशात्। अशाः (३७०) शिष्यात्। शिष्यातातम्। शिष्यास्ताम्। लुङ् में (२५६) सूत्र से अङ् होकर इकार (३७१) अशिषत्। अशिषताम्। अशिषन्। अशासिष्यत्। इति विदादय उदात्ताः परस्मैपदिनः।

ये विद आदि सेट् परस्मैपदी धातु हैं परन्तु स्वप धातु अनिट् है। अब आगे पांच धातु वैदिक विषयक कहते हैं उन के प्रयोग लोक में नहीं आते [दीधीङ्] दीप्ति देवनयोः (प्रकाश और क्रीड़ा आदि) [वेवीङ्] वेतिना तुल्ये। वीगति व्याप्ति०।इस लिखित धातु के अर्थों में वेवीङ् धातु भी है। दीधीते। दीध्याते। (१५६) यण्। दीध्यते। दीधीषे। दीध्याथे। दीधीध्वे। दीध्ये। दीधीवहे। दीधीमहे। वेवीते। वेव्याते। दिदीध्ये। वेद में निषेध होने के कारण आम् प्रत्यय (१६८) लिट् में नहीं होता। दिदीध्याते। दिदीध्यिरे ॥ ३७२ ॥

३७३—यीवर्णयोर्दीधीवेव्योः ॥ अ० ॥ ७। ४। ५३ ॥

दीधी और वेवी धातु के अन्त्य वर्ण का लोप होवे यकारादि और इवर्ण परे हों तो।दिदीधिषे। विवीव्ये। विवीविषे। दिदीधिवहे। विवीविवहे। दीधितासे (५२) गुण निषेध। वीवितासे। दीधिष्यते। दीधिषते। दीधिषातै। दीध्यतै। दीध्यातै। दीधीताम्। दीध्यै। अदीधीत। दीधीत। दीधिषीष्ट। अदीधिष्ट। अदीधिष्यत। उदात्तावात्मनेपदिनौ। ये दोनों धातु सेट् आत्मनेपदी हैं ॥

अथ त्रयः परस्मैपदिनः [षस,सस्ति] स्वप्ने (सोना) सस्ति। सस्तः। ससन्ति। सस्सि। ससास। सेसतुः। ससितासि। ससिष्यति। सासिषति। सासिषाति। सस्तु। असत् (२६९) असस्ताम्।अससन्।असः। असत् (२७०) अससम्। सस्यात्। सस्याताम्। सस्युः। सस्यास्ताम्। असासीत्। अससीत्। अससिष्यत्। सस्ति धातु में इदित् होने से नुम्। संस्त–ति। इस अवस्था में संयोगादि सकार का लोप (२१०) होकर हल से परे तकार लोप (२७२) होता है। सन्ति। सन्तः। संस्तन्ति। सन्त्सि। सन्यः। सन्य। सन्त्मि। सन्त्व। सन्त्म। ससंस्त। ससंस्तिथ। संस्तितासि। संस्तिष्यति। संस्तिषति। संस्तिषाति। सन्तु। संस्तात्। संस्ताम्। संस्तन्तु। असन्। असन्ताम्। असंस्तन्। असन्। संस्त्यात्। संस्त्याताम्। संस्त्यास्ताम्। असंस्तीत्। असंस्तिष्टाम्। असंस्तिष्यत् [वश] कान्तौ (इच्छा वा शोभा) वष्टि (२३३) षत्व। उष्टः (२८६) सम्प्रसारण। उशन्ति। वक्षि। उष्ठः। उष्ठ। वश्मि। उश्वः। उश्मः। उवाश (२८२) ऊशतुः (२८३) ऊशुः। उवशिथ। वशिता। वशिष्यति। वाशिषति। वाशिषाति। वष्टु। उष्टात्। उष्टाम्। उशन्तु। उड्ढि। वशानि। अवट्। औष्टाम्। औशन्। अवशम्। उश्यात्। उश्याताम्। उश्यास्ताम्। अवाशीत्। अवशीत्। अवशिष्यत्। ये षस आदि तीन धातु परस्मैपदी समाप्त हुए ॥

[चर्करीतञ्च] इस निर्देश से यङ्लुगन्त धातुओं से परस्मैपद और शप् का लुक् होता है। सो यङ्लुगन्त प्रक्रिया का विषय है [ह्नुङ्] अपनयने (दूरकरना)

ह्नुते । ह्नुवाते । ह्नुषे । जुह्नुवे । जुह्नुविषे । जुह्नुविढ्वे । जुह्नुविध्वे । ह्नोतासे । ह्नोष्यते । ह्नोषतै । ह्नोषातै । ह्नुताम् । ह्नवै । अह्नुत । ह्नुवीत । ह्नोषीष्ट । अह्नोष्ट । अह्नोष्यत । अनुदात्त आत्मनेपदी । यह धातु अनिट् आत्मनेपदी है ॥

इतिलुग्विकरणा अदादयः समाप्ताः ॥

यह लुक् विकरण वाला अदादि गण समाप्त हुआ ॥

अथ जुहोत्यादिगणः ॥

[हु] दानादनयोः । आदानेचेत्येके (देना, खाना और ग्रहण करना) यहां दान अर्थ से अग्नि में हवन करना भी लिया जाता है । और इस धातु को भाष्यकारने तृप्ति अर्थ में भी माना है ॥ ३७३ ॥

३७४–जुहोत्यादिभ्यः श्लुः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७५ ॥

हु आदि धातुओं से शप् के स्थान में श्लु होवे । श्लु संज्ञा भी प्रत्यय के अदर्शन की ही होती है इस कारण शप् का लोप हो जाता है । हु–तिप् । यहां ॥ ३७४॥

३७५—श्लौ ॥ अ० ॥ ६ । १ । १० ॥

अनभ्यास धातु के प्रथम एकाच् अवयव और अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व हो श्लु परे हो तो । जुहोति । जुहुतः । अभ्यस्त (२६०) होने से प्रत्ययादि झ को अत् (२६१) और यण् (२६१) हो कर । जुह्वति । जुहोषि । जुहुथः । जुहुथ । जुहोमि । जुहुवः । जुहुमः ॥ ३७५ ॥

३७६—बहुलं छन्दसि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७६ ॥

वेद विषय में शप् के स्थान में श्लु आदेश बहुल करके होवे प्रयोजन यह है । हवति । भरति । आदि भी प्रयोग हो जावें ॥ ३७६ ॥

३७७—भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३९ ॥

भी, ह्री, भृ और हु धातुओं से आम् प्रत्यय विकल्प करके होवे लोक विषय में लिट् लकार परे हो तो और आम् के परे श्लुवत् कार्य्य द्विर्वचन भी होवे । जुहवाञ्चकार । जुहवाञ्चक्रतुः । जुहवाम्बभूव । जुहवामास । होतासि । होष्यति । होषति । होषाति । जुहवति । जुहवाति । हवति । हवाति । जुहोतु । जुहुतात् । जुह्वतु । जुहुधि (३००) हि को धि । जुहवानि । अजुहोत् । अजुहुताम् । अजुहवुः । (१३४) जुस् हो कर गुण (२६३) जुहुयात् । जुहुयाताम् । जुहुयुः । हूयात् । (१६०) दीर्घ । अहौषीत् (१५८) वृद्धि । अहौष्टाम् । अहौषुः । अहोष्यत् [ञिभी] भये (डरना) ञि की इत् संज्ञा (१५०) बिभेति ॥ ३७७ ॥

३७८—भियोऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११५ ॥

भी धातु को इकार आदेश विकल्प करके होवे हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे हो तो। दीर्घ ईकार को एक पक्ष में ह्रस्व हो जाता है। बिभितः। बिभीतः। बिभ्यति (२६० । २६१) बिभेषि । बिभिथः । बिभीथः । बिभयाञ्चकार। बिभयामास । बिभयाम्बभूव । पक्ष में । बिभाय । बिभ्यतुः । बिभ्युः । बिभेथ। बिभयिथ । भेतासि । भेष्यति । भेषति । भेषाति । बिभयति । बिभयाति । भयति। भयाति । बिभेतु । बिभितात् । बिभीतात् । बिभिताम् । बिभीताम् । बिभ्यतु । अबिभेत् । अबिभिताम् । अबिभताम् । अबिभयुः । बिभियात् । बिभियाताम् । बिभीयाताम् । भीयात् । अभैषीत् । अभेष्यत् [ह्री] लज्जायाम् (लज्जा) जिह्रेति। जिह्रीतः । जिह्रियति । जिह्रयाञ्चकार । जिह्रयाम्बभूव । जिह्रयामास । जिह्राय। जिह्रियतुः । जिह्रेथ । जिह्रयिथ । ह्रेतासि । ह्रेष्यति । ह्रेषति । ह्रेषाति । जिह्रेतु। जिह्रीतात् । जिह्रियतु । जिह्रीहि । अजिह्रेत् । जिह्रीयात् । ह्रीयात् । अह्रैषीत् । अह्रेष्यत् । जुहोत्यादयोऽनुदात्ताः परस्मैपदिनः । हु आदि धातु अनिट् परस्मैपदी हैं [पॄ] पालनपूरणयोः (पालन और समाप्ति) उदात्तः परस्मैभाषः । यह धातु सेट् परस्मैपदी है । श्लु के परे द्वित्व (२७५) हो कर ॥३७८॥

३७९—अर्तिपिपर्त्योश्च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७७ ॥

ऋ और पॄ धातु के अभ्यास को इकार आदेश होवे श्लु परे हो तो। पिपर्ति। यहां अभ्यास के ऋकार को उकार आदेश (३८०) प्राप्त है उस का बाधक गुण (२१) होता है ॥ ३७९ ॥

३८०—उदोष्ठ्यपूर्वस्य ॥ अ० ॥ ७ । १ । १०२ ॥

ओष्ठस्थानी वर्ण जिस के पूर्व हो ऐसा जो ॠकार तदन्त अङ्ग को उकार आदेश होवे । ॠ के स्थान में रपर उकार हो कर । पिपूर्तः (१९७) दीर्घ । पिपुरति । पिपर्षि । पिपूर्थः । पिपूर्थ । पिपर्मि । पिपूर्वः । पिपूर्मः । पपार । यहां लिट् अतुस् आदि में गुण (२५८) प्राप्त है उस का बाधक ॥ ३८० ॥

३८१—शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १२ ॥

शॄ, दॄ और पॄ धातुओं को विकल्प करके ह्रस्व होवे कित् लिट् परे हो तो पक्ष में गुण (२५८) होता है ह्रस्व पक्ष में गुण नहीं । पप्रतुः । पप्रुः । पक्ष में । पपरतुः । पपरुः । पपरिथ । पप्रथुः । पप्र । पपर । पपार । पपर । पप्रिव । पपरिव । पप्रिम । पपरिम । परीतासि । परितासि (२६४) इट् को दीर्घ विकल्प

परीष्यति । परिष्यति । पारीषति । पारीषाति। पारिषति । पारिषाति । परीषति। परीषाति । परिषति । परिषाति । पिपरति । पिपराति । पिपर्त्तु । पिपूर्त्तात् । पिपूर्त्ताम् । पिपुरतु । पिपूर्धि । पिपराणि । पिपराव । पिपराम । अपिपः । अपिपूर्त्ताम्।अपिपरुः । यहां अभ्यस्त संज्ञा होने से जुस् (१२४) हो कर गुण (३६३) होता है । अपिपः । अपिपूर्तम् । अपिपूर्त । अपिपरम् । अपिपूर्व । अपिपूर्म । पिपूर्यात्।पिपूर्याताम् । पूर्यात् । पूर्यास्ताम् । यहां भी (३८०) उत्व हो कर दीर्घ (१८७) होता है । अपारीत् । अपारिष्टाम् । अपरीष्यत् । अपरिष्यत् । ह्रस्वान्तोऽयमित्येके । किन्हीं लोगों के मत में यह पृ धातु ह्रस्व ऋकारान्त है । पिपर्त्ति । पिपृतः । यहां दीर्घ ॠकार के न होने से उत्व नहीं होता पिप्रति।पपार ।पप्रतुः। पप्रुः । पपरुः । पर्त्ता । ह्रस्वान्त पक्ष में अनिट् है । परिष्यति (२३८) इट् । पिपृयात् । प्रियात् (२३९) प्रियास्ताम् । अपार्षीत् । अपार्ष्टाम् । अपरिष्यत् [डुभृञ्] धारणपोषणयोः । डु की इत्संज्ञा (१५०) ॥ ३८१ ॥

३८२—भृञामित् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७६ ॥

भृञ्, माङ् और ओहाक् इन तीनों धातुओं के अभ्यास को इकार आदेश होवे श्लु परे हो तो । बिभर्ति । बिभृतः। बिभ्रति । बिभृते । बिभ्राते । बिभ्रते । बिभृध्वे । बिभराञ्चकार (३७७) आम् प्रत्यय और आम् के परे श्लुवत् होने से द्वित्व होता है । पक्ष में । बभार । बभ्रतुः । बभर्थ (१४८) इट् का निषेध। बभृव । बभृम । भर्त्तासि । भरिष्यति । भार्षति । भार्षाति । बिभरति । बिभराति । बिभर्त्तु । बिभृहि । बिभराणि । अबिभः । अबिभृताम् । अबिभरुः । बिभृयात् । बिभृयाताम् । भ्रियात् । भ्रियास्ताम् । भृषीष्ट (२४०) अभार्षीत् । अभृत । अभरिष्यत् । अभरिष्यत [माङ्] माने शब्दे च (तोल और शब्द) ॥ ३८२ ॥

३८३—ई हल्यघोः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११३ ॥

घुसंज्ञक धातुओं को छोड़ के श्ना और अभ्यस्त संज्ञक धातुओं के आकार को ईकारादेश होवे हलादि कित्ङित् सार्वधातुक परे हो तो । मिमीते । मिमाते । मिमते । यहां अजादि सार्वधातुक में आकार लोप होजाता है और अभ्यास को इकारादेश (३८२) होता है । मिमीषे । मिमाथे । ममे । ममाते । ममिरे । मातासे । मास्यते । मासतै । मासातै । मिमीताम् । मिमाताम् । मिमताम् । मिमै । अमिमीत । मिमीत । मिमीयाताम् । मासीष्ट । अमास्त । अमास्यत [ओहाङ्] गतौ । माङ् के समान इस के भी प्रयोग होते हैं । जिहीते । जिहाते । जिहते । जहे । जहाते । जहिरे । हातासे । हास्यते । हासतै । हासातै । जिहीताम् ।

अजिहीत । जिहीत । हासीष्ट । अहास्त । अहास्यत । अनुदात्तावात्मनेपदिनौ ये दोनों धातु अनिट् आत्मनेपदी हैं [ओहाक्] त्यागे । यह परस्मैपदी है (३८२) सूत्र यहां नहीं लगता क्यों कि यहां से पूर्व ही भृञ् आदि तीन धातु पूरे होगये। जहाति ॥ ३८३ ॥

३८४—जहातेश्च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११६ ॥

हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे हो तो जहाति धातु के आकार को इकार आदेश विकल्प करके होवे । और पक्ष में ईकार (३८३) होता है । यह सूत्र (३८२) सूत्र का अपवाद होने से प्राप्त विभाषा है।जहितः।जहीतः।जहति। जहासि । जहिथः । जहीथः । जहिथ । जहीथ । जहामि । जहिवः । जहीवः । जहिमः । जहीमः । जहौ । जहतुः । जहिथ । जहाथ । हातासि । हास्यति । हासति । हासाति । जहाति । जहातु । जहितात् । जहीतात् । जहिताम् । जहीताम् । जहतु ॥ ३८४ ॥

३८५—आ च हौ ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११७ ॥

जहाति धातु को आकारादेश हो हि परे हो तो और चकार से इत् और ईत् भी होवे ।जहाहि।जहिहि।जहीहि । जहानि । अजहात् । अजहिताम् । अजहीताम् । अजहुः ॥ ३८५ ॥

३८६—लोपो यि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११८ ॥

यकारादि सार्वधातुक परे हो तो जहाति धातु के आकार का लोप होवे । जह्यात् । जह्याताम् । जह्युः । हेयात् (२४७) हेयास्ताम् । अहासीत् (२५१) अहासिष्टाम् । अहास्यत् [डुदाञ्] दाने (देना) ददाति । दत्तः । यहां (३८३) सूत्र में घुसंज्ञक धातुओं को ईकारादेश का निषेध होने से आकार लोप (३६५) होता है । ददति । ददासि । दत्थः । दत्थ । ददामि । दद्वः । दद्मः । दत्ते । ददाते । ददते । दद्ध्वे । ददे । ददौ । ददतुः । ददे । ददाते । दातासि।दातासे । दास्यति । दास्यते । दासति । दासाति । दासते । दासातै ॥ ३८६ ॥

३८७—घोर्लोपो लेटि वा ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७० ॥

घुसंज्ञक धातुओं के आकार का लोप विकल्प कर के होवे लेट् लकार परे हो तो । ददति । ददाति । ददत् । ददात् । यहां आट् के आगम पक्ष में लोप होने पर भी । ददाति । होता है जो लोप न कहते तो अट् आट् दोनों पक्षमें । ददाति । प्रयोग बनता । और विकल्प कहने से यह प्रयोजन है कि किसी को

ऐसी शंका न हो कि । ददाति । प्रयोग नित्य प्राप्त है उस का लोप कहने से बाधक होगा । ददातु । दत्तात् । दत्ताम् । ददतु । देहि (२५४) एत्वाभ्यास लोप । ददानि । अदत्ताम् । अददुः । दद्यात् । दद्याताम् । दद्युः । देयात् (२४७) घु संज्ञा होने से एत्व । देयास्ताम् । अदात् (८९) सिच् लुक् । अदाताम् । अदुः । दत्ताम् । ददाताम् । ददताम् । दत्स्व । ददै । अदत्त । ददीत । दासीष्ट । अदित । (२६३) इत्व और कित्व । अदिषाताम् । अदिषत । अदास्यत् । अदास्यत [डुधाञ्] धारणपोषणयोः । इस के प्रयोग के डुदाञ् के तुल्य जानो । दधाति ॥ ३८७ ॥

३८८–दधस्तथोश्च ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३८ ॥

द्वित्व किये झषन्त धा धातु के बश् को भष् आदेश होवे । त, थ, स् और ध्व परे हों तो । यहां अनभ्यास के आकार का लोप (३६५) किये पश्चात् अभ्यास के दकार को धकार हो जाता है । धत्ता । दधति । दधासि । धत्थः । धत्थ । दधामि । दध्वः । दध्मः । धत्ते । दधाते । दधते । धत्से । धद्ध्वे । दधौ । दधतुः । धातासि । धातासे । धास्यति । धास्यते । धासते । धासातै । धासति । धासाति । दधति (३८७) दधाति । दधत् । दधात् । दधातु । धत्तात् । धत्ताम् । दधतु । धेहि (२५४) दधानि । धत्ताम् । दधाताम् । धत्स्व । धद्ध्वम् । अदधात् । अधत्ताम् । अदधुः । अधत्त । अदधाताम् । अदधत । अधत्थाः । अधद्ध्वम् । दध्यात् । दधीत । धेयात् (२४७) अधात् । अधाताम् । अधुः (८९) अधित (२६३) अधिषाताम् । अधिषत । अधास्यत् । अधास्यत । अनुदात्तावुभयतो भाषौ । ये दोनों धातु अनिट् उभयपदी हैं ॥

अथ त्रयः स्वरितेतः । अब तीन धातु स्वरितेत् (उभयपदी) कहते हैं [णिजिर्] शौचपोषणयोः (शुद्धि और पुष्टि) ॥ ३८८ ॥

३८९–निजां त्रयाणां गुणः श्लौ ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७५ ॥

निज आदि (निज्, विज्, विष्) तीन धातुओं के अभ्यास को गुण होवे श्लु परे हो तो । नेनेक्ति । यहां तिप् के आश्रय से अनभ्यास को भी गुण होता है । नेनिक्तः । नेनिजति । नेनेक्षि । नेनिक्थः । नेनिक्थ । नेनेज्मि । नेनिज्वः । नेनिज्मः । नेनिक्ते । नेनिजाते । नेनिजते । निनेज । निनिजतुः । निनिजे । निनिजाते । नेक्तासि । नेक्तासे । नेक्ष्यति । नेक्ष्यते । नेक्षति । नेक्षाति । नेक्षते । नेक्षातै । ॥ ३८९ ॥

३९०–नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८७ ॥

अभ्यस्त संज्ञक धातुओं को गुण न होवे अजादि पित् सार्वधातुक परे हो तो । यह सूत्र (५१) सूत्र का अपवाद है अर्थात् लघूपध गुण का निषेध है ।

नेनिजति । नेनिजाति । नेनिजत् । नेनिजात् । नेनिजते । नेनिजाते । नेनेक्तु । नेनिग्धि । नेनिजानि । नेनिक्ताम् । नेनिजाताम् । नेनिजे । नेनिजावहै । अनेनेक् । अनेनिक्ताम् । अनेनिजुः । अनेनेक् । अनेनिजम् (२६०) अनेनिक्त । अनेनिजाताम् । अनेनिजत । नेनिज्यात् । नेनिजीत । निज्यात् । निज्यास्ताम् । निक्षीष्ट । (१६३) अनिजत् (१३८) अनैक्षीत् । अनैक्ताम् । अनिक्त । अनिक्षाताम् । अनेक्ष्यत् । अनेक्ष्यत [विजिर्] पृथग्भावे (अलग होना) णिज धातु के समान सिद्धि । वेवेक्ति । वेविक्तः । वेविक्ते । वेविजाते । विवेज । विविजतुः । विवेजिथ । विविजे । वेक्तासि । वेक्तासे । वेविजति । वेविजाति । वेविजते । वेविजाते । वेवेक्तु । वेविग्धि । वेविजानि । वेविक्ताम् । वेविजै । अवेवेक् । अवेविक्ताम् । अवेविजुः । अवेविजम् । वेविज्यात् । वेविजीत । विज्यात् । विक्षीष्ट (१६३) अविजत् । अवैक्षीत् । अविक्त । अवेक्ष्यत् । अवेक्ष्यत [विष्लृ] व्याप्तौ (व्यापक होना) पूर्ववत् । वेवेष्टि । वेविष्टः । वेविषति । वेवेक्षि । वेविष्टे । वेविषाते । वेविषते । विवेष । विविषे । वेष्टासि । वेष्टासे । वेक्ष्यति । वेक्ष्यते । वेक्षति । वेक्षाति । वेक्षते । वेक्षाते । वेविषति । वेविषाति (२६०) गुण निषेध । वेवेष्टु । वेविष्टात् । वेविष्टाम् । वेविषतु । वेविड्ढि । वेविषाणि । वेविष्टाम् । वेविषाताम् । वेविषताम् । वेविड्ढ्वम् । अवेवेट् । अवेविष्टाम् । अवेविषुः । अवेविषम् । अवेविष्ट । अवेविषाताम् । अवेविषत । वेविष्यात् । वेविषीत । विष्यात् । विष्यास्ताम् । विक्षीष्ट (१६३) विक्षीयास्ताम् । अविषत् (२१७) अविक्षत (२०७) अविक्षाताम् (२०८) अविक्षन्त । अवेक्ष्यत् । अवेक्ष्यत । ये णिज् आदि अनिट् उभयपदी तीन धातु समाप्त हुए ॥

अथाऽऽगणान्तात्परस्मैपदिनश्छान्दसाश्चैकादश । अब इस गण के अन्त तक परस्मैपदी वेद विषयक ११ ग्यारह धातु कहते हैं [घृ] क्षरणदीप्त्योः (अच्छे प्रकार चलना और प्रकाश) ॥ ३६० ॥

३६१—बहुलं छन्दसि ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७८ ॥

वेद विषय में श्लु परे हो तो अभ्यास को इकारादेश बहुल करके होवे जिघर्त्ति । जघर्त्ति । जिघृतः । जघृतः । जिघ्रति । जिघर्म्मि । जघार । जघ्रतुः घर्त्तासि । घरिष्यति (२३८) यह नियम नहीं है कि केवल वैदिक प्रयोगों में लोक वेद के सामान्य सूत्र लगें किन्तु केवल एक विषय के सामान्य विषय में नहीं लगते घार्षति । घार्षाति । जिघ्रति । जिघ्राति । जघ्रति । जघ्राति । जिघर्त्तु । जघर्त्तु अजिघः । अजघः । अजिघरुः । जिघ्रियात् । घ्रियात् (२३६) अघार्षीत् । अघरिष्यत् [हृ] प्रसह्यकरणे (हठ करना) ॥ ३६१ ॥

३८२—वा०—हृग्रहोर्भश्छन्दसि हस्य भत्वम् ॥

हृ और ग्रह धातु के हकार को भकारादेश होवे वेद विषय में ॥ जिभर्त्ति। जभर्त्ति। जभार। जहार। भर्त्ता। भरिष्यति। भार्षति। भार्षाति। जिभर्त्तु। जभर्त्तु। जभ्रतु। जभृहि। अजभः। अजभृताम्। अजभरुः। जभृयात्। ह्रियात्। अभार्षीत्। अभरिष्यत्। सर्वत्र वैदिक प्रयोगों में यह बात समझ लेनी चाहिये कि वेद में जिस प्रकार का प्रयोग जिस धातु का आजाता है उस के अनुकूल सूत्र वार्त्तिकों से सिद्धि समझ ली जाती है कुछ सूत्रों वा वार्त्तिकों के अनुकूल सब वैदिक प्रयोग नहीं लिखने चाहिये इस लिये यहां इन धातुओं के प्रयोग सूक्ष्म ही लिखते हैं [ऋ, सृ] गतौ। ऋ धातु को द्वित्व होने पश्चात् अभ्यास के ऋकार को अकार (१०६) हो कर (३८१) सूत्र से अभ्यास को इकार होजाता फिर (३७८) सूत्र में अर्त्ति ग्रहण सामर्थ्य से यह धातु लोक में भी समझा जाता है। सो इकारादेश भी नित्य होता है। फिर। इ+ऋ+तिप्=इयर्त्ति (१५२) अभ्यास को इयङ् और अनभ्यास को गुण हो जाता है। इयृतः। इय्रति। आर। आरतुः। आरिथ (२५८) अर्त्तासि। अरिष्यति। आर्षति। आर्षाति। इयरति। इयराति। इयर्त्तु। इयृतात्। इयृताम्। इय्रतु। इयृहि। इयराणि। इयराव। इयराम। ऐयः। ऐयृताम्। ऐयरुः। ऐयः। ऐयृतम्। ऐयृत। ऐयरम्। ऐयृव ऐयृम। इयृयात्। अर्यात् (२५४) आरत्। आरताम् (२५६। २५७) आरिष्यत्। ससर्त्ति। सिसर्त्ति। इत्यादि। घ्रादयश्चत्वारोऽनुदात्ताः। ये घृ आदि चार धातु अनिट् हैं [भस] भर्त्सनदीप्त्योः (धमकाना और प्रकाश) बिभस्ति। बभस्ति ॥ ३८२ ॥

३८३—घसिभसोर्हलि च ॥ अ० ॥ ६। ४। १०० ॥

घस और भस धातु के उपधा अकार का लोप होवे हलादि और अजादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो वेद विषय में। बभ्+स्+तस्=बब्धः (१४२) बप्सति। बभास। बिभस्तु। बब्धाम्। बभसानि। अबिभः। अबिब्धाम्। अबिभसुः। बप्स्यात्। बप्स्याताम्। भस्यात्। भस्यास्ताम्। अभासीत्। अभसीत्। अभसिष्यत्। [कि] ज्ञाने। चिकेति। चिकितः। चिकयति। चिकयाति। चिकेतु। चिकिहि। चिकयानि। अचिकेत्। अचिकयुः। चिकियात्। कीयात्। अकैषीत्। यह धातु अनिट् है [तुर] त्वरणे (शीघ्रता) तुतोर्त्ति। तुतूर्त्तः। तुतुरति। तुतुरति। तुतुराति (३८०) तुतोर्त्तु। तुतुराणि। अतुतोः। अतुतुरुः। तुतूर्यात्। तूर्यात्। अतोरीत् [धिष] शब्दे। दिधेष्टि। दिधिष्टः दिधिषति। अदिधेट् [धन] धान्ये। दिधन्ति। दधन्ति। दधनति। दधान। दधनतुः। धनितासि। धनिष्यति।

दधनति । दधनाति । धानिषति । धानिषाति । दिधन्तु । दिधनानि । अदिधन् । अदिधनुः । दधन्यात् । धन्यात् । अधानीत् । अधनीत् । अधनिष्यत् [जन] जनने । जजन्ति ॥ ३९३ ॥

३९४—जनसनखनां सञ्झलोः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४२ ॥

जन, सन और खन धातुओं के अन्त को आकारादेश होवे झलादि सन् और झलादि कित् ङित् परे हों तो जजातः । जज्ञति (२१४) पश्चात् न को ञ् सुल होता है । जजंसि । जजाथः । जजन्मि । जजान । जज्ञतुः (२१४) जानिषति । जानिषाति । जजनति । जजनाति । जजन्तु । जजातात् । जजाहि ॥ ३९४ ॥

३९५—वा छन्दसि ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८८ ॥

वेद विषय में सिप् के स्थान में हि आदेश विकल्प करके पित् होवे जिस पक्ष में पित् होता है वहां । जजन्हि । आकार नहीं होता । जजनानि । अजजन् । अजजाताम् । अजज्ञुः । अजजनम् । जजायात् । जजन्यात् (१८५) अजानीत् । अजनीत् । ये तुर आदि धातु सेट् परस्मैपदी हैं [गा] स्तुतौ (प्रशंसा) जिगाति । जिगीतः जिगति (३६५) जगौ । गातासि । गास्यति । गासति । गासाति । जिगातु । जिगीहि । जिगाहि । अजिगात् । अजिगीताम् । अजिगुः । जिगीयात् । गायात् । अगासीत् । अगास्यत् । यह धातु अनिट् परस्मैपदी है ॥

इति श्लुविकरणो जुहोत्यादिगणः समाप्तः ॥

॥ अथ दिवादिगणः ॥

[दिवु] क्रीड़ाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु (खेलना, जीतने की इच्छा, लेना, देना, प्रकाश, प्रशंसा, आनन्द, अहंकार, निद्रा, शोभा और गति अर्थात् ज्ञान गमन प्राप्ति) अब भृष् धातु पर्य्यन्त सेट् परस्मैपदी धातु क होते हैं ॥ ३९५ ॥

३९६—दिवादिभ्यः श्यन् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६९ ॥

दिव आदि धातुओं से शप् (१९) का बाधक श्यन् प्रत्यय होवे कर्त्ता में सार्वधातुक परे हों तो । दीव्यति (१९७) दीर्घ । दीव्यतः । दीव्यन्ति । दिदेव । दिदिवतुः । दिदेविथ । देवितासि । देविष्यति । देविषति । देविषाति । दीव्यति । दीव्याति । दीव्यतु । अदीव्यत् । दीव्येत् । दीव्यात् । अदेवीत् । अदेविष्यत् [षिवु] तन्तुसन्ताने (सीना) सीव्यति । सिषेव । असेवीत् [स्रिवु] गतिशोषणयोः (गति और शोखना) स्रीव्यति [ष्ठिवु] निरसने (थूकना) ष्ठीव्यति (१५२) सत्व निषेध । तिष्ठेव । टिष्टेव । टिष्ठिवतुः [ष्णुसु] अदने । आदान इत्येके । अदर्शनइत्यपरे ।

स्नुष्यति । सुष्णोस [ष्णसु] निरसने । स्नस्यति । सस्नास । सस्नसतुः [क्नसु] ह्वरणदीप्त्योः (कुटिलता और प्रकाश) क्नस्यति । चक्नास [व्युष] दाहे (जलना) व्युष्यति । वुव्योष [प्लुष] च । प्लुष्यति । पुप्लोष [नृती] गात्र विक्षेपे (नाचना) नृत्यति । ननर्त्त । ननृततुः । ननृतुः । ननर्त्तिथ । नर्त्तितासि ॥ २९६ ॥

२९७—सेऽसिचि कृतचृतछृदतृदनृतः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५७ ॥

कृत, चृत, छृद, तृद और नृत धातुओं से परे जो सिच् भिन्न सकारादि आर्द्धधातुक उस को विकल्प करके इट् का आगम होवे । नर्तिष्यति । नर्त्स्यति । नर्तिषति । नर्तिषाति । नर्त्सति । नर्त्साति । नृत्यति । नृत्याति । नृत्यतु । नृत्य । नृत्यानि । अनृत्यत् । नृत्येत् । नृत्यात् । अनर्त्तीत् । अनर्त्तिष्यत् । अनर्त्स्यत् [त्रसी] उद्वेगे (भय होना) (१८८) सूत्र से श्यन् विकल्प पक्ष में शप् । त्रस्यति । त्रसति तत्रास । विकल्प से एत्वाभ्यास लोप (२२९) हो कर । त्रेसतुः । तत्रसतुः । त्रेसुः । तत्रसुः । त्रसितासि । त्रसिष्यति । त्रासिषति । त्रासिषाति । त्रस्यति । त्रस्याति । त्रसति । त्रसाति । त्रस्यतु । त्रसतु । अत्रस्यत् । अत्रसत् । त्रस्येत् । त्रसेत् । त्रस्यात् । अत्रासीत् अत्रसीत् । अत्रसिष्यत् [कुथ] पूतीभावे (दुर्गन्ध)कुथ्यति । चुकोथ [पुथ] हिंसायाम् । पुथ्यति । पुपोथ [गुध] परिवेष्टने (लपेटना) गुध्यति । जुगोध । जुगुधतुः । गोधितासि । गोधिष्यति । गोधिषति । गोधिषाति । गुध्यतु । अगुध्यत् । गुध्येत् । गुध्यात् । अगोधीत् । अगोधिष्यत् [क्षिप] प्रेरणे (फेंकना) यह धातु अनिट् है । क्षिप्यति । चिक्षेप । चिक्षेपिथ । चिक्षेप्थ । क्षेप्तासि । क्षेप्स्यति । क्षेप्सति । क्षेप्साति । क्षिप्यतु । अक्षिप्यत् । क्षिप्येत् । क्षिप्यात् । अक्षैप्सीत् । अक्षैप्ताम् । अक्षैप्सुः । अक्षेप्स्यत् [पुष्प] विकसने (विभाग होना) पुष्प्यति । पुपुष्प [तिम, तीम, ष्टिम, ष्टीम] आर्द्रीभावे (गीला होना) तिम्यति । तीम्यति । स्तिम्यति । स्तीम्यति । तितेम । तितिमतुः । तितीम । तिस्तेम । तिस्तीम [व्रीड] चोदने लज्जायां च (प्रेरणा और लज्जा) व्रीड्यति । विव्रीड [इष] गतौ । इष्यति । इयेष (१५२)इयङ् । ईषतुः । ईषुः । इयेषिथ । एषितासि । एषिष्यति । एषिषति । एषिषाति । इष्यति । इष्याति । इष्यतु । ऐष्यत् । इष्येत् । इष्यात् । ऐषीत् । ऐषिष्यत् [षह षुह] चक्यर्थे (तृप्त होना वा मारना) सह्यति । सुह्यति । ससाह । सेहतुः । सेहुः । सेहिथ । सुसोह । सहिता । सोढा (२१२ । २३०) सहिष्यति । साहिषति । साहिषाति । सह्यति । सह्याति । सह्यतु । असह्यत् । सह्येत् । सह्यात् । असहीत् (१६२) वृद्धि का निषेध । असहिष्यत् [जृष्, झृष्] वयोहानौ (अवस्था की हानि) इन दोनों धातुओं के अन्त्य षकार की इत्संज्ञा होती है (२६५ । १९७) जीर्यति । जजार । जृ + अतुस्—जेरतुः (२२९) एत्वाभ्यासलोप का

विकल्प और । जजरतुः (२५८) अप्राप्त गुण । जेरुः । जजरुः । जेरिथ । जजरिथ । जेरथुः । जजरथुः । जरीतासि । जरितासि (२६४) जरीष्यति । जरिष्यति । जारीषति । जारीषाति । जारिषति । जारिषाति । जरीषति । जरीषाति । जरिषति । जरिषाति । जीर्यति । जीर्याति । जीर्यतु । अजीर्यत् । जीर्येत् । जीर्यात् । लुङ् में विकल्प से अङ् (१५४) और ऋवर्णान्त को अङ् के परे गुण (२५७) हो कर । अजरत् । अजरताम् । अजरन् । अङ् के निषेध पक्ष में । अजारीत् । अजारिष्टाम् (२६६) अजरीष्यत् । अजरिष्यत् । झीर्यति । जझरतुः । अझरीत् । अझारिष्टाम् । दिवादय उदात्ता उदात्तेतः क्षिपिवर्जं परस्मैपदिनः । ये दिव आदि धातु क्षिप को छोड़ के सेट् परस्मैपदी हैं [षूङ्] प्राणिप्रसवे (प्राणियों की उत्पत्ति) सूयते । सूयेते । सूयन्ते । सुषुवे । क्रयादि लिट् में विकल्प से इट् (१४०) प्राप्त है उस का बाधक निषेध (श्र्युकः किति) है उस का भी अपवाद नियात्मक (१४८) होने से नित्य इट् होता है । सुषुविषे । सुषुविवहे । सुषुविमहे । सोतासे । सवितासे (१४०) सविष्यते । सोष्यते । साविषते । साविषाते । सोषते । सोषाते । सूयतै । सूयातै । सूयताम् । असूयत । सूयेत । सविषीष्ट । सोषीष्ट । असविष्ट । असोष्ट । असविष्यत । असोष्यत [दूङ्] परितापे (दुःख होना) दूयते । दुदुवे । दवितासे । आत्मनेभाषावुदात्तौ । ये दोनों धातु सेट् आत्मनेपदी हैं [दीङ्] क्षये (नाश होना वा घसना) दीयते ॥ ३९७ ॥

३९८—दीङो युडचि क्ङिति ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६३ ॥

दीङ् धातु से परे जो अजादि कित् ङित् आर्द्धधातुक उस को युट् का आगम होवे । दिदीये (४३) वार्तिक से युट् के आगम को सिद्ध मान के यण् (१५६) नहीं होता । दिदीयिषे । दिदीयिढ्वे । दिदीयिध्वे । दिदीयिवहे ॥ ३९८ ॥

३९९—मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५० ।

एच् का निमित्त अशित् वा ल्यप् परे हो तो मीनाति मिनोति और दीङ् धातुओं को आकारादेश होवे । दातासे । दास्यते । दासतै । दासातै । दीयताम् । अदीयत । दीयेत । दासीष्ट । अदास्त । अदास्थाः । इस दीङ् धातु की घुसंज्ञा (२४६) नहीं होती क्योंकि यह न तो दा धा और न उन की प्रकृति है । अदास्यत । [डीङ्] विहायसागतौ (आकाश में उड़ना) डीयते । डीयेते । डिड्ये (१५६) यण् । डयितासे । डयिष्यते । डायिषते । डायिषातै । डीयताम् । अडीयत । डीयेत । डयिषीष्ट । अडयिष्ट । अडयिष्यत [धीङ्] आधारे । धीयते । दिध्ये [मीङ्] हिंसायाम् । मीयते [रीङ्] श्रवणे (सुनना) रीयते । रिर्ये । रेतासे । रेष्यते ।

रेषते । रेषाते । रीयते । रीयाते । रीयताम् । अरीयत । रीयेत । रेषीष्ट । अरेष्ट । अरेष्यत [लीङ्] श्लेषणे (मिलना) लीयते ॥ ३९९ ॥

४००—विभाषा लीयतेः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५१ ॥

एच् विषय में शित् भिन्न प्रत्यय और ल्यप् परे हो तो लीयति धातु को आकारादेश विकल्प करके होवे । लातासे । लेतासे । लास्यते । लेष्यते । एच् विषय के कहने से । लिल्ये । लिल्याते । आदि में आकारादेश नहीं होता । लासते । लासाते । लेषते । लेषाते । लीयताम् । अलीयत । लीयेत । लासीष्ट । लेषीष्ट । अलास्त । अलेष्ट । अलास्यत । अलेष्यत [व्रीङ्] वृणोत्यर्थे (स्वीकार) व्रीयते । विव्रिये । यहां संयोग पूर्व के होने से यण् (१५६) से नहीं होता । वृत् स्वादय ओदितः । षूङ् धातु से लेकर यहां तक ओदित् धातु हैं ओदित् होने का फल कृदन्त में आवेगा [पीङ्] पाने (पीना) पीयते । पिप्ये । पेतासे । पेष्यते । पेषते । पेषाते । पीयताम् । अपीयत । पीयेत । पेषीष्ट । अपेष्ट । अपेष्यत [माङ्] माने (तोलना) मायते । ममे [ईङ्] गतौ । ईयते । अयांचक्रे । अयाम्बभूव । अयामास । एतासे । एष्यते । ऐषते । ऐषाते । ईयताम् । ऐयत । ईयेत । एषीष्ट । ऐष्ट । ऐष्यत [प्रीङ्] प्रीणने (तृप्ति) प्रीयते । पिप्रिये । दीङादय आत्मनेपदिनो डीङ् वर्जमनुदात्ताः । दीङ् आदि धातु आत्मनेपदी डीङ् को छोड़ के अनिट् हैं ॥

अथ परस्मैपदिनश्चत्वारः । अब चार धातु परस्मैपदी कहते हैं [शो] तनूकरणे (महीन करना) ॥ ४०० ॥

४०१—ओतः श्यनि ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७१ ॥

श्यन् प्रत्यय परे हो तो धातु के अन्त्य ओकार का लोप होवे । श्यति । श्यतः । श्यन्ति । शशौ । शशतुः । शशिथ । शशाथ । शातासि । शास्यति । श्यतु । श्य । अश्यत् । श्येत् । शायात् । लुङ् विषय में विकल्प से सिच् लुक् (२४८) अशात् । अशाताम् । अशुः । पक्ष में । अशासीत् (२५१) अशास्यत् [छो] छेदने (छेदना) ओकार लोप (४०१) छ्यति । चच्छौ । छातासि । अन्य पूर्ववत् [षो] अन्तकर्मणि (कर्म की समाप्ति) स्यति । ससौ । सातासि । सास्यति । सासति । सासाति । स्यतु । अस्यत् । स्येत् । सेयात् (२४७) असात् (२४८) असासीत् (२५१) असास्यत् [दो] अवखण्डने (काटना) द्यति (४०१) ददौ । दातासि । दास्यति । दासति । दासाति । द्यतु । अद्यत् । द्येत् । देयात् । घु संज्ञा के होने से (२४७) से एकार । अदात् (८९) सिच् लुक् । अदाताम् । अदुः । अदास्यत् । श्यति प्रभृतयोऽनुदात्ताः । शो आदि चार धातु अनिट् हैं ॥

अथात्मनेपदिनः पंचदश । अब पन्द्रह धातु आत्मनेपदी कहते हैं [जनी] प्रादुर्भावे (उत्पत्ति वा अवस्थान्तर से प्रकट होना) ॥ ४०१ ॥

४०२—**ज्ञाजनोर्जा** ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७६ ॥

शित् प्रत्यय परे हों तो ज्ञा और जन धातु को जा आदेश होवे । अनेकाल् होने से सब के स्थान में होता है । जायते । जन्+एश्=जज्ञे (२१४) उपधा अकार का लोप होकर जन् के संयोग में तवर्ग नकार को चवर्ग ञकार होजाता है । जज्ञाते । जज्ञिरे ।जनितासे । जनिष्यते । जानिषतै । जानिषातै । जायतै । जायातै । जायते । जायातै । जायताम् । अजायत । जायेत । जनिषीष्ट । लुङ् में च्लि के स्थान में चिण् (१८४) और चिण् से परे प्रत्यय का लुक् (१८४) होकर । जन–चिण् । यहां वृद्धि प्राप्त है इस लिये ॥ ४०२ ॥

४०३—**जनिवध्योश्च** ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ३५ ॥

जन और वध धातु की उपधा को वृद्धि न होवे ञित् णित् कृत् और चिण् परे हों तो । अजनि । और जिस पक्ष में चिण् (१८४) से न हुआ वहां । अजनिष्ट । अजनिषाताम् । अजनिषत [दीपी] दीप्तौ । दीप्यते । दिदीपे । दिदीपाते । दीपितासे । दीपिष्यते । दीपिषतै । दीपिषातै । दीप्यताम् । अदीप्यत । दीप्येत । दीपिषीष्ट । अदीपि (१८४ । १८५) अदीपिष्ट । अदीपिष्यत [पूरी] आप्यायने (बढ़ना) पूर्यते । पुपूरे । अपूरि (१८४ । १८५) अपूरिष्ट [तूरी] गतित्वरणहिंसनयोः (शीघ्रचलना और मारना) तूर्यते । तुतूरे । अतूरिष्ट [धूरी, गूरी] हिंसागत्योः । धूर्यते । दुधूरे । गूर्यते । जुगूरे [घूरी, जूरी] हिंसावयोहान्योः (हिंसा और अवस्था की हानि) घूर्यते । जुघूरे । जूर्यते । जुजूरे [शूरी] हिंसास्तम्भनयोः (मारना और रोकना) शूर्यते । शुशूरे [चूरी] दाहे । चूर्यते । चुचूरे । चूरितासे । चूरिष्यते । चूरिषतै । चूरिषातै । चूर्यताम् । अचूर्यत । चूर्येत । चूरिषीष्ट । अचूरिष्ट । अचूरिष्यत [तप] ऐश्वर्ये (सम्पत् का होना) यह धातु अनिट् है।तप्यते ।तेपे ।तेपाते । तेपिरे । तेपिषे । तप्तासे । तप्स्यते । तापसतै । तापसातै । तप्यताम् । अतप्यत । तप्येत । तप्सीष्ट । अतप्त । अतप्साताम् । अतप्सत । अतप्स्यत [वावृतु] वरणे (स्वीकार) यह धातु अनेकाच् है । वावृत्यते । अनेकाच् होने से लिट् में आम् (१७०) वावर्ताञ्चक्रे । वावर्ताम्बभूव । वावर्तामास ।वेद में । ववावृते।ववावृताते । वावर्त्तितासे । वावर्तिष्यते। अवावर्तिष्ट [क्लिश] उपतापे (दुःख) क्लिश्यते । चिक्लिशे । क्लेशितासे । अक्लेशिष्ट [काशृ] दीप्तौ । काश्यते । चकाशे । अकाशिष्ट । अकाशिष्यत [वाशृ] शब्दे । वाश्यते ।

ववाशे । वाशिताशे । वाशिष्यते । वाशिषते । वाशिषाते । वाश्यताम् । अवाश्यत । वाश्येत । वाशिषीष्ट । अवाशिष्ट । अवाशिष्यत । जन्यादयोऽनुदात्तेत आत्मनेपदिनस्तपिवर्जमुदात्ताः । जनी आदि सब धातु आत्मनेपदी और तप को छोड़ के सेट् हैं । अथ पञ्च स्वरितेतः । अब पांच धातु उभयपदी कहते हैं [मृष] तितिक्षायाम् (सहना) मृष्यति । मृष्यते । ममर्ष । ममृषे । मर्षिता । मर्षिष्यति । मर्षिषते । मर्षिषाते । मृष्यतु । मृष्यताम् । अमृष्यत् । अमृष्यत । मृष्येत् । मृष्येत । मृष्यात् । मर्षिषीष्ट । अमर्षीत् । अमर्षिष्ट । अमर्षिष्यत । अमर्षिष्यत् [ईशुचिर्] पूतीभावे (पवित्रता) इस धातु का ई और इर् भाग इत्संज्ञक होता है । शुच्यति । शुच्यते । शुशोच । शुशुचे । अशुचत् (१२८) इरित् होने से अङ् । अशोचीत् । अशोचिष्ट । ये दोनों धातु सेट् उभयपदी हैं [णह] बन्धने (बांधना) नह्यति । नह्यते । ननाह । नेहतुः । नेहुः । नेहिथ । नह्-थल् । यहां अनिट् पक्ष में नह धातु के ह को (२०३) से ढकार पाता है इसलिये ॥ ४०३ ॥

४०४—नहो धः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३४ ॥

नह धातु के हकार को धकार आदेश होवे झल् परे वा पदान्त में । ननद्ध । नेहथुः । नेह । नेहे । नेहाते । नद्धासि । नद्धासे । नत्स्यति । नात्सति । नात्साति । नह्यताम् । अनह्यत । नह्येत । नत्सीष्ट । नह्यात् । अनात्सीत् (१३५) अनाद्धाम् । अनात्सुः । अनात्सीः । अनाद्धम् । अनाद्ध । अनात्सम् । अनात्स्व । अनात्स्म । अनद्ध । अनत्साताम् । अनत्सत । अनद्धाः । अनत्स्यत । अनत्स्यत् [रञ्ज] रागे (रंगना वा अति प्रीति) उपधा अनुनासिक का लोप (१२८) होकर । रज्यति । रज्यते । ररञ्ज । ररञ्जे । रङ्क्तासि । रङ्क्तासे । रङ्क्ष्यति । रङ्क्ष्यते । रङ्क्षीष्ट । अरङ्क्त । अरङ्क्षाताम् । अरङ्क्षत । अराङ्क्षीत् । अराङ्क्ताम् । अराङ्क्षुः [शप] आक्रोशे (कोसना) शप्यति । शप्यते । शशाप । शेपतुः । शेपिथ । शशप्थ । शेपे । शेपाते । शप्तासि । शप्स्यति । शाप्सति । शाप्साति । शाप्सते । शाप्साते । शप्यतु । शप्यताम् । अशप्यत् । अशप्यत । शप्येत् । शप्येत । शप्यात् । शप्सीष्ट । अशाप्सीत् । अशाप्ताम् । अशाप्सुः । अशप्त । अशप्साताम् । अशप्स्यत् । अशप्स्यत । णहादयस्त्रयोऽनुदात्ताः स्वरितेत उभयपदिनः । णह आदि तीन धातु अनिट् उभयपदी हैं । अथैकादशानुदात्तेतः । अब ११ ग्यारह धातु आत्मनेपदी कहते हैं [पद] गतौ । पद्यते । प्रतिपद्यते । प्रपद्यते । पेदे । पेदाते । पेदिरे । पत्तासे । पत्स्यते । पात्सते । पात्साते । पद्यताम् । अपद्यत । पद्येत । पत्सीष्ट ॥ ४०४ ॥

४०५—चिण् ते पदः ॥ अ० ॥ ३ । १ ।६०॥

पद धातु से परे जो च्लि उस के स्थान में चिण् होवे त शब्द परे होतो। अपादि (१८५) अपत्साताम् । अपत्सत । अपत्स्यत । [खिद] दैन्ये (दीनता) खिद्यते। चिखिदे । खित्तासे । खित्सीष्ट (१६३) अखित्त [विद] सत्तायाम् (होना) विद्यते। विविदे ।वित्तासे । वेत्स्यते । वेत्सते । वेत्साते । विद्यताम् । अविद्यत । विद्येत । वित्सीष्ट (१६३) अवित्त । अवित्साताम् । अवेत्स्यत [बुध] अवगमने (ज्ञानहोना) बुध्यते । बुबुधे । बोद्धासे । भोत्स्यते(२०४) भोत्सते ।भोत्साते। बुध्यताम् । अबुध्यत । बुध्येत ।भुत्सीष्ट (१६३) अबोधि (१८४) अबुद्ध । अभोत्स्यत [युध] सम्प्रहारे। (युद्ध करना) युध्यते ।युयुधे । योद्धासे।योत्स्यते ।युत्सीष्ट ।अयुद्ध। अयुत्साताम् [अनोरुध] कामे (कामना) इस धातु के प्रयोग बहुधा अनु पूर्वक आते हैं इसलिये इस के पूर्व अनु उपसर्ग पढ़ा है । अनुरुध्यते। अनुरुरुधे । अनुरोद्धासे।अन्वरुध्यत । अनुरुत्सीष्ट । अन्वरुद्ध । अन्वरुत्साताम् [अण] प्राणने (श्वास का चलना) यह धातु सेट् है । अण्यते। आणे। आणाते । आणिरे। अणितासे ।अणिष्यते। आणिषते । आणिषाते । अण्यताम् । आण्यत । अण्येत । अणिषीष्ट । आणिष्ट। आणिष्यत [मन] ज्ञाने । मन्यते । मेने । मन्तासे । मंसीष्ट अमंस्त [युज] समाधौ (चित्त की वृत्तियों को रोकना) युज्यते। युयुजे । योक्तासे । योक्ष्यते । योक्षते । योक्षाते । युज्यताम् । अयुज्यत । अयुज्यत । युज्येत । युक्षीष्ट । अयुक्त । अयुक्षाताम् । अयोक्ष्यत [सृज] विसर्गे (रचना वा त्यागना) सृज्यते । ससृजे । स्रष्टासे (२३३) ज को षत्व और अम् आगम (२७८) स्रक्ष्यते । स्रक्षते । स्रक्षाते । सृज्यताम् । असृज्यत । सृज्येत । सृक्षीष्ट । असृक्त । असृक्षाताम् । असृक्षत । अस्रक्ष्यत । [लिश] अल्पीभावे (थोड़ा होना) लिश्यते । लिलिशे । लेष्टासे (२३३) षत्व। लेक्ष्यते । लेक्षते । लेक्षाते । लिश्यताम् । अलिश्यत । लिश्येत । लिक्षीष्ट (१६३) अलिष्ट । अलेक्ष्यत । पदादयोऽनुदात्तेत आत्मनेभाषा अण्वतिवर्जमनुदात्ताः । पद आदि सब धातु आत्मनेपदी और अण् को छोड़ के अनिट् हैं। अथा गणान्तात्परस्मैपदिनोऽष्टषष्टिः । अब इस दिवादिगण के अन्त पर्यन्त ६८ अड़सठ धातु परस्मैपदी कहते हैं [राधोऽकर्मकाद्वृद्धावेव] अकर्मक राध धातु से वृद्धि अर्थ में ही श्यन् प्रत्यय हो । राध्यति । रराध । रराधतुः । यहां हिंसा अर्थ के न होने से (४२३) सूत्र नहीं लगता । रराधिथ । राद्धासि । रात्स्यति । रात्सति । रात्साति । राध्यतु । अराध्यत् । राध्येत् । राध्यात् । अरात्सीत् । अराद्धाम् । अरात्सुः । अरात्स्यत् [व्यध] ताड़ने (पीड़ा देना) विध्यति (२८६)

सम्प्रसारण । विध्यतः । विध्यन्ति । विव्याध (२८२) विविधतुः । विविधुः । विव्यधिथ । विव्यद्ध । व्यद्धासि । व्यत्स्यति । व्यत्सति । व्यत्साति । विध्यतु । अविध्यत् । विध्येत् । विध्यात् । अव्यात्सीत् । अव्याद्धाम् । अव्यात्सुः । अव्यात्स्यत् । [पुष] पुष्टौ (पुष्ट करना) पुष्यति । पुपोष । पुपोषिथ । पोष्टासि । पोक्ष्यति । पोक्षति । पोक्षाति । पुष्यतु । अपुष्यत् । पुष्येत् । पुष्यात् । अपुषत् (२१७) अङ् इस सूत्र में पुषादि करके इसी पुष से इस गण के अन्त पर्यन्त धातुओं का ग्रहण होता है । अपुषताम् । अपुषन् । अपोक्ष्यत् [शुष] शोषणे (सोखना) शुष्यति । अशुषत् [तुष] प्रीतौ (प्रसन्नता) तुष्यति । तुष्यतु । अतुषत् [दुष] वैकृत्ये (विकार को प्राप्त होना) दुष्यति । अदुषत् [श्लिष] आलिङ्गने (मिलना) श्लिष्यति । शिश्लेष । श्लेष्टासि । श्लेक्ष्यति । श्लेक्षति । श्लेक्षाति । श्लिष्यतु । अश्लिष्यत् । श्लिष्येत् । श्लिष्यात् ॥ ४०५ ॥

४०६—श्लिष आलिङ्गने ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४६ ॥

श्लिष धातु से परे जो अनिट् च्लि उस के स्थान में क्स आदेश होवे आलिङ्गन ही अर्थ में अन्यत्र नहीं । यह सूत्र (२१७) सूत्र का अपवाद है । और आलिङ्गन अर्थ से यहां स्त्री पुरुष का संयोग समझना चाहिये किन्तु जड़ पदार्थों वा अन्य सम्बन्धियों का मिलना नहीं। अश्लिक्षत् । और जहां आलिङ्गन अर्थ नहीं है वहां अश्लिषत् । प्रयोग होगा । अश्लिक्षताम् । अश्लिक्षन् । अश्लेक्ष्यत् [शक] विभाषितो मर्षणे । सहन अर्थ में शक धातु से विकल्प करके श्यन् प्रत्यय होवे पक्ष में शप् होता है । शक्यति । शकति । शशाक । शेकतुः । शेकिथ । शशक्थ । शक्तासि । शक्ष्यति । शाक्षति । शाक्षाति । शक्यतु । अशक्यत् । शक्येत् । शक्यात् । अशकत् (२१७) अशक्ष्यत् [ञिष्विदा] गात्रप्रक्षरणे (पसीना छूटना) स्विद्यति । सिस्वेद । सिस्वेदिथ । स्वेत्तासि । स्वेत्स्यति । स्वेत्सति । स्वेत्साति । स्विद्यतु । अस्विद्यत् । स्विद्येत् । स्विद्यात् । अस्विदत् । अस्वेत्स्यत् [क्रुध] क्रोधे । क्रुध्यति । चुक्रोध । क्रोद्धासि । अक्रुधत् [क्षुध] बुभुक्षायाम् (भोजन की इच्छा) क्षुध्यति । चुक्षोध । अक्षुधत् [शुध] शौचे (शुद्धि) शुध्यति । शुशोध । शोद्धा । अशुधत् [षिधु] संराद्धौ (सिद्धि होना) सिध्यति । सिषेध । सिषिधतुः । सिषेधिथ । सेद्धासि । सेत्स्यति । सेत्सति । सेत्साति । सिध्यति । सिध्याति । सिध्यतु । असिध्यत् । सिध्येत् । सिध्यात् । असिधत् । असेत्स्यत् । राधादयोऽनुदात्ता: उदात्तेतः परस्मैपदिनः । राध आदि धातु अनिट् परस्मैपदी हैं [रध] हिंसासंराद्ध्योः (हिंसा और सिद्धि) रध्यति । ररन्ध (१६५) नुम् । ररन्धतुः । ररन्धिथ ॥ ४०६ ॥

४०७— रधादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४५ ॥

रध आदि (रध, नश, तृप, दृप, द्रुह, मुह, ष्णुह, ष्णिह) धातुओं से परे वलादि आर्द्धधातुक को विकल्प करके इट् का आगम होवे । ररद्ध । ररन्धिव । रेध्व । ररन्धिम । रेध्म ॥ ४०७ ॥

४०८—नेट्यलिटि रधेः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६२ ॥

लिट् लकार से भिन्न इडादि प्रत्यय परे होतो रध धातु को नुम् का आगम न होवे । इस सूत्र के नियम से इड़ादि लिट् में तो नुम् होता है। जो कदाचित् ऐसा नियम करते कि इडादि लिट् में ही नुम् होवे तो इस से विपरीत नियम का सम्भवथा कि लिट् में जो नुम् हो तो इडादि में ही होवे इस नियम से । ररन्धतुः । आदि में भी निषेध होजाता । रधितासि । रद्धासि । रधिष्यति । रत्स्यति । राधिषति । राधिषाति । रधिषति । रधिषाति । रात्सति । रात्साति । रध्यति । रध्याति । रध्यतु । अरध्यत् । रध्येत् । रध्यात् । अराधीत् । अराधत् । यहां अङ् के परे प्रथम नुम् (१६५) होकर न लोप (१३८) होता है । अरधताम् । अरधिष्यत् । अरत्स्यत् [णश] अदर्शने (नेत्र से न दीखना) नश्यति । ननाश । नेशतुः । नेशुः । थल् के परे (१४८ । २१५) नियम से सेट् पक्ष में । नेशिथ । अनिट् पक्ष में ॥ ४०८ ॥

४०९—मस्जिनशोर्झलि ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६० ॥

झलादि प्रत्यय परे हो तो मस्ज और नश धातु को नुम् का आगम होवे । ननंष्ठ (२३३) षत्व । नेशथुः । नेश । ननाश । ननश । नेशिव । ननंश्व । नेशिम । ननंश्म । नशितासि । नंष्टासि (४०७) नशिष्यति । नङ्क्ष्यति । नङ्क्ष्याति । नश्यतु । अनश्यत् । नश्येत् । नश्यात् । अनशत् । अनशिष्यत् । अनङ्क्ष्यत् [तृप] प्रीणने (तृप्ति) यह धातु अनिट् है । तृप्यति । ततर्प । ततृपतुः । थल् में इट् पक्ष में (४०७) ततर्पिथ । तत्रप्थ (२७५) ततर्प्थ । इसी प्रकार सर्वत्र वलादि आर्द्धधातुक में जानो। तर्पिता । त्रप्ता । तर्प्ता । तर्पिष्यति। त्रप्स्यति । तर्प्स्यति। तर्पिषति । तर्पिषाति । त्रप्सति । त्रप्साति । तर्प्सति । तर्प्साति । तृप्यति । तृप्याति। तृप्यतु । अतृप्यत् । तृप्येत् । तृप्यात् । लुङ् में प्रथम सिच् पक्ष में (२९०) इट् का विकल्प (४०७) होने से । अतर्पीत् । अत्राप्सीत् (२७५) अतार्प्सीत् । और जिस पक्ष में च्लि के स्थान में सिच् (२९०) न हुआ वहां अङ् (२१७) अतृपत् । इस प्रकार चार रूप होते हैं । अतर्पिष्यत् । अत्रप्स्यत् । अतर्प्स्यत् [दृप] हर्षण मोहनयोः (आनन्द और गर्व) इस के प्रयोग तृप के समान जानो । दृप्यति

अदर्पीत्। अद्राप्सीत्। अदार्प्सीत्। अदृपत्। तृप और दृप दोनों धातु अनिट् हैं परन्तु रधादि में होने से यहां विकल्प से इट् होता है [द्रुह] जिघांसायाम् (मारने की इच्छा) द्रुह्यति। दुद्रोह। दुद्रोहिथ (४०७) अनिट् पक्ष में ॥४०९॥

४१०—वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् ॥ अ० ॥ ८। २। ३३ ॥

द्रुह, मुह, ष्णुह और ष्णिह धातुओं के हकार को घकारादेश विकल्प करके होवे झल् परे हो वा पदान्त में पक्ष में ढकार हो जाता है। यह सूत्र भी (२०३) सूत्र का अपवाद है। दुद्रोग्ध। घ को जश्त्व। ढकार पक्ष में। दुद्रोढ। द्रोहिता। द्रोग्धा। द्रोढा। द्रोहिष्यति। ध्रोक्ष्यति। यहां घ और ढ दोनों आदेश का एक ही प्रकार का प्रयोग होता है। घकार पक्ष में उस को चर् ककार और ढकार में भी (२०५) ढ को क हो जाता है। द्रोहिषति। द्रोहिषाति। ध्रोक्षति। ध्रोक्षाति। द्रुह्यतु। अद्रुह्यत्। द्रुह्येत्। द्रुह्यात्। अद्रुहत्। अद्रोहिष्यत्। अध्रोक्ष्यत् [मुह] वैचित्त्ये (विचार शून्य) मुह्यति। मुमोह। मुमोहिथ। मुमोग्ध। मुमोढ। मोहिता। मोग्धा। मोढा। मोहिष्यति। मोक्ष्यति। अमुहत् [ष्णुह] उद्गिरणे (उगलना) स्नुह्यति। सुष्णोह। सुष्णोहिथ। सुष्णोग्ध। सुष्णोढ। सुष्णुहिव। सुष्णुह्व। स्नोहिता। स्नोग्धा। स्नोढा। स्नोहिष्यति। स्नोक्ष्यति। अस्नुहत् [ष्णिह] प्रीतौ (प्रीति करना) स्निह्यति। सिष्णेह। अस्निहत्। वृत्‌रधादयः समाप्ताः। ये रध आदि (४०७) सूत्र में कहे धातु समाप्त हुए। पुषादि तो इस गण की समाप्ति पर्यन्त हैं [शम] उपशमे (शान्ति) ॥ ४१० ॥

४११—शमामष्टानां दीर्घः श्यनि ॥ अ० ॥ ७। ३। ७४ ॥

शम आदि आठ धातुओं के अच् को दीर्घ होवे श्यन् परे हो तो। शाम्यति। शाम्यतः। शाम्यन्ति। शशाम। शेमतुः। शेमिथ। शमिता। शमिष्यति। शामिषति। शामिषाति। शाम्यतु। अशाम्यत्। शाम्येत्। शम्यात्। अशमत् (२१७) अशमिष्यत् [तमु] काङ्क्षायाम् (अभिलाषा) ताम्यति (४११) तताम। तेमतुः। तमितासि। अतमत् [दमु] उपशमे (दाम्यति। अदमत् [श्रमु] तपसि खेदे च (तप करना और क्लेश भोगना) श्राम्यति। अश्रमत् [भ्रमु] अनवस्थाने (स्थिति न होना) (१८८) भ्राम्यति। भ्रमति। बभ्राम। भ्रेमतुः। भ्रेमुः (२२९) एत्वाभ्यासलोप विकल्प पक्ष में। बभ्रमतुः। लुङ् में अङ् (२१७) अभ्रमत्। अन्य सब प्रयोग भ्वादि के समान जानो [क्षमूष्] सहने। यह धातु ऊदित् और षित् है। क्षाम्यति। चक्षाम। चक्षमतुः। चक्षमिथ (१४०) चक्षन्थ। चक्षमिव। चक्षण्व। चक्षमिम। चक्षण्म। क्षमिता। क्षन्ता। क्षमिष्यति। क्षंस्यति।

चांसति । चांसाति । चाम्यतु । अचाम्यत् । अचमत् [क्लमु] ग्लानौ (आनन्द का नाश) क्लाम्यति (१८८) क्लामति (१८६) सूत्र से हो शप् और श्यन् दोनों में दीर्घ हो जाता फिर इस का शमादिकों में यहां पाठ क्रदन्त में घिनुण् प्रत्यय होने के लिये है । चक्लाम । चक्लमतुः । क्लमिता । क्लमिष्यति । क्लाम्यतु । क्लामतु । अक्लमत् [मदी] हर्षे (आनन्द) माद्यति । ममाद । मेदतुः । मेदिथ । मदिता । मदिष्यति । मादिषति । मादिषाति । माद्यतु । अमाद्यत् । माद्येत् । मद्यात् । अमदत् । अमदिष्यत् । इत्यष्टौ शमादयः । ये (४११) सूत्र में कहे शम आदि आठ धातु समाप्त हुए [असु] क्षेपणे (फेंकना) अस्यति । आस । असितासि । अस्यतु ॥ ४११ ॥

४१२—अस्यतेस्थुक् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १७ ॥

अङ् परे हो तो अस्यति धातु को थुक् का आगम होवे । आस्थत् । आस्थताम् । इस धातु से लुङ् में (२१७) सूत्र से अङ् सिद्ध हो है फिर (३१६) सूत्र में असु धातु का ग्रहण आत्मनेपदविषय के लिये है [यसु] प्रयत्ने (पुरुषार्थ) ॥ ४१२ ॥

४१३—यसोऽनुपसर्गात् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७१ ॥

उपसर्गरहित यस धातु से परे श्यन् प्रत्यय विकल्प करके होवे कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हो तो पक्ष में शप् होता है । यस्यति । यसति ॥ ४१३ ॥

४१४—संयसश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७२ ॥

संपूर्वक यस धातु से भी श्यन् प्रत्यय विकल्प करके होवे । संयस्यति । संयसति । ययास । येसतुः । यसिता । यसिष्यति । यासिषति । यासिषाति । यस्यतु । अयस्यत् । यस्येत् । यस्यात् । अयसत् । अयसिष्यत् [जसु] मोक्षणे (छूटना) जस्यति । अजसत् [तसु] उपक्षये (नाश) तस्यति । अतसत् । [दसु] च । पूर्व धातु के अर्थ में । दस्यति । अदसत् [वसु] स्तम्भे (रोकना) वस्यति । ववास । ववसतुः (१२८) अवसत् । वशादिरित्येके । किन्ही के मत में यह धातु पवर्गादि है वहां (१२८) सूत्र न लगने से । बेसतुः । बेसुः । प्रयोग बनते हैं [व्युष] विभागे । व्युष्यति । अव्युषत् । ओष्ठ्यादि दन्त्यान्तोऽयमित्येके । कोई के मत में यह धातु व्युस है । व्युस्यति । अव्युसत् । अयकारं वुस इत्यपरे । कोई के मत में यकार रहित वुस है । वुस्यति । वुवोस । अवुसत् [प्लुष] दाहे । प्लुष्यति । अप्लुषत् [बिस] प्रेरणे (प्रेरणा) बिस्यति । बिबेस । अबिसत् [कुस] संश्लेषणे । कुस्यति । अकुसत् [बुस] उत्सर्गे (त्याग)

बुस्यति। अबुसत् [मुस] खण्डने (काटना) मुस्यति। मुमोस। मुमुसतुः। मोसिता। मोसिष्यति। मोसिषति। मोसिषाति। मुस्यतु। अमुस्यत्। मुस्येत्। मुस्यात्। अमुसत्। अमोसिष्यत् [मसी] परिणामे (विकार) मस्यति। ममास। मेसतुः। अमसत्। [समी] इत्येके। कोई के मत में मसी नहीं समी है। सम्यति। असमत् [लुठ] विलोडने (विलोना) लुठ्यति। अलुठत् [उच] समवाये (नित्य संबन्ध) उच्यति। उवोच। ऊचतुः। ऊचुः। ओचिता। ओचिष्यति। ओचिषति। ओचिषाति। उच्यतु। औच्यत्। उच्येत्। उच्यात्। औचत्। माभवानुचत्। औचिष्यत् [भृशु, भ्रंशु] अधःपतने (नीचे गिरना) भृश्यति। बभर्श। अभृशत्। भ्रंश्यति। बभ्रंश। अभ्रशत्। (१२९) [वृश] वरणे (स्वीकार) वृश्यति। अवृशत् [कृश] तनूकरणे (सूक्ष्म करना) कृश्यति। अकृशत् [ञितृष] पिपासायाम् (पीने की इच्छा) तृष्यति। अतृषत् [हृष] तुष्टौ (सन्तोष) हृष्यति। अहृषत् [रुष, रिष] हिंसायाम् (मारना) रुष्यति। रिष्यति। रुरोष। रिरेष। रोषिता (२१२) रोष्टा। रेषिता। रेष्टा। अरुषत्। अरिषत् [डिप] क्षेपे (फेंकना) डिप्यति। अडिपत् [कुप] क्रोधे। कुप्यति। अकुपत्। [गुप] व्याकुलत्वे (व्याकुलता) गुप्यति। अगुपत् [युप, रुप, लुप] विमोहने (मोहित करना) युप्यति। रुप्यति। लुप्यति। अयुपत्। अरुपत्। यहां लुप धातु सेट् ही है और अनिट् धातुओं में जो लुप गिनाया है वह तुदादिगण का साहचर्य्य से समझा जाता है। अलुपत् [लुभ] गार्द्ध्ये (आकाङ्क्षा) लुभ्यति। लुलोभ। लुलुभतुः। लोभिता (२१२) लोब्धा। अलुभत् [क्षुभ] सञ्चलने (चलायमान) क्षुभ्यति। अक्षुभत् [णभ, तुभ] हिंसायाम्। नभ्यति। ननाभ। नेभतुः। अनभत्। तुभ्यति। अतुभत् [क्लिदू] आर्द्रीभावे (गीलापन) क्लिद्यति। चिक्लेद। चिक्लेदिथ। ऊदित् होने से इट् विकल्प (१४०) चिक्लेत्थ। चिक्लिदिव। चिक्लिद्व। क्लेदिता। क्लेत्ता। अक्लिदत् [ञिमिदा] स्नेहने (प्रीति वा चिकनाई) ॥ ४१४ ॥

४१५—मिदेर्गुणः ॥ अ० ॥ ७। ३। ८२ ॥

मिद धातु के इक् भाग को गुण होवे शित् प्रत्यय परे हों तो। मेद्यति। मेद्यतः। मेद्यन्ति। यहां श्यन् के ङित् होने से गुण प्राप्त नहीं था। मिमेद। मिमिदतुः। अमिदत् [ञिक्ष्विदा] स्नेहनमोचनयोः। क्ष्विद्यति। अक्ष्विदत् [ऋधु] वृद्धौ। ऋध्यति। आनर्ध। आनृधतुः (१४७। ११०) अर्धिता। अर्धिष्यति। अर्धिषति। अर्धिषाति। ऋध्यतु। आर्ध्यत्। ऋध्येत्। ऋध्यात्। आर्धत्। आर्धिष्यत् [गृधु] अभिकाङ्क्षायाम् (मिलने की इच्छा) गृध्यति। जगर्ध। जगृधतुः। अगृधत्। जो मिद वा णभ आदि धातु भ्वादि गण में पढ़ चुके हैं उन का पाठ श्यन्

वा अङ् आदि विशेष कार्यों के लिये किया है इसी प्रकार अन्य सब गणों में जानो। वृत् पुषादयः (२१७) सूत्र में कहे पुषादि धातु पूरे हुए। दिवादिगण भी भ्वादि के समान आकृतिगण है। जिस से। चीयते। मृग्यति। आदि प्रयोग बनते हैं। इति श्यन् विकरणो दिवादिगणः समाप्तः। यह श्यन् विकरण वाला दिवादि गण समाप्त हुआ॥

अथ स्वादिगणः॥

[षुञ्] अभिषवे (यंत्र से रस खींचना वा राज्याधिकार देना) ॥ ४१५ ॥

४१६—स्वादिभ्यः श्नुः॥ अ०॥ ३। १। ७३॥

सु आदि धातुओं से शप् का बाधक श्नु प्रत्यय होवे कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों तो। विकरणस्थ उकार को गुण होकर। सुनोति। सुनुतः। सुन्वन्ति (२६१) सुनोषि। सुनुथः। सुनुथ। सुनोमि। सुन्वः (२००) सुनुवः। सुन्मः। सुनुमः। सुनुते। सुन्वाते। सुन्वते। सुषाव। सुषुवे। सोता। सोष्यति। सोष्यते। सौषति। सौषाति। सौषते। सोषाते। सुनोतु। सुनुतात्। सुनु(२०१) सुनवानि। सुनवाव। सुनवाम। सुनुताम्। असुनोत्। सुनुयात्। सुन्वीत। सूयात्। सोषीष्ट। असावीत् (२३०) असोष्ट। असोष्यत्। असोष्यत [षिञ्] बंधने (बांधना) सिनोति। सिषाय। सिष्ये। सेता। सेष्यति [शिञ्] निशाने (तीक्ष्ण करना) शिनोति। शिनुते [डुमिञ्] प्रक्षेपणे (फेंकना) मिनोति। मिनुते। ममौ(३९८)आकारादेश होकर आकारान्तों के तुल्य रूप जानो। एच् विषय में आकारादेश के कहने से। मिम्यतुः। मिम्युः। आदि में नहीं होता। ममिथ। ममाथ। मिम्ये। मिम्याते। मिमयिरे। माता। मिनोतु। मीयात् (१६०) दीर्घ। मासीष्ट। अमासीत्। अमासिष्टाम्। अमास्त। अमास्यत [चिञ्] चयने (जोड़ना) चिनोति। चिनुतः। चिनुते॥ ४१६॥

४१७—विभाषा चेः॥ अ०॥ ७। ३। ५८॥

सन् और लिट् परे हों तो अभ्यास से परे चिञ् धातु को विकल्प करके कुत्व होवे। चिकाय। चिक्यतुः। चिकयिथ। चिचाय। चिच्यतुः। चिक्ये। चिच्ये। चेता। चेष्यति। चेष्यते। चैषति। चैषाति। चैषते। चैषाते। चिनोतु। चिनुताम्। अचिनोत्। अचिनुत। चिनुयात्। चिन्वीत। चीयात्। चेषीष्ट। अचैषीत्। अचेष्ट। अचेष्यत्। अचेष्यत [स्तृञ्] आच्छादने। स्तृणोति। स्तृणुते। तस्तार। तस्तरतुः (२५३) तस्तरुः। तस्तरिथ। तस्तर्थ। तस्तरे। तस्तराते। स्तर्ता। स्तर्यात् (२५४) स्तर्यास्ताम्॥ ४१७॥

४१८—ऋतश्च संयोगादेः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४३ ॥

संयोगादि ऋकारान्त धातुओं से परे आत्मनेपद विषय में जो लिङ् सिच् उन को विकल्प करके इट् का आगम होवे। स्तरिषीष्ट । पक्ष में स्तृषीष्ट (२४०) अस्तरिष्ट । अस्तृत । अस्तार्षीत् । अस्तार्ष्टाम् [क्षृञ्] हिंसायाम् । क्षृणोति । क्षृणुते । चक्षार । चक्षर्थ (१४८) चक्रे । कर्त्ता । करिष्यति । करिष्यते । कार्षति। कार्षाति । कार्षते । कार्षाते । क्षृणोतु । क्षृणुताम्। अक्षृणोत् । अक्षृणुत । क्षृणुयात् । क्षृणीत ।क्रियात् (२३९) क्षृषीष्ट (२४०) अकार्षीत् । अकृत। अकरिष्यत्।अकरिष्यत [वृञ्] वरणे (स्वीकार) वृणोति । वृणुते । ववार । ववृतुः ॥ ४१८ ॥

४१९—बभूथाततन्थजगृभ्मववर्थेति निगमे॥ अ० ॥ ७ । २ । ६४ ॥

बभूथ, आततन्थ, जगृभ्म, ववर्थ इन शब्दों में थल् के परे वेद विषय में इट् का अभाव निपातन किया है । भू धातु का वेद में । बभूथ ।लोक में । बभूविथ। आङ् पूर्वक तनु धातु का वेद में। आततन्थ।लोक में। आतेनिथ ।ग्रह,उपादाने। जुहोत्यादि धातु का लिट् लकार उत्तम पुरुष के बहुवचन में । जगृभ्म । वेद में जगृहिम । लोक में । तथा इसी वृञ् धातु का । ववर्थ । वेद में और इसी प्रमाण से लोक में इट् होता है । ववरिथ । ववृव । ववृम (१४८) वव्रे । ववृषे । ववृवहे । ववृमहे । वरिता । वरीता (२६४) वरिष्यति । वरीष्यति । वरिष्यते । वरीष्यते । वारीषति । वारीषाति । वारिषति । वारिषाति । वृणोतु । वृणुताम्। अवृणोत् । अवृणुत । वृणुयात् । वृणीत । व्रियात् । व्रियास्ताम् ॥ ४१९ ॥

४२०—लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४२ ॥

वृङ् वृञ् और ॠकारान्त धातुओं से परे जो आत्मनेपदविषयक लिङ् सिच् उन को विकल्प करके इट् का आगम होवे। वृङ् वृञ् ॠकारान्त सब धातु सेट् हैं इस लिये प्राप्त विभाषा है । अब इट् को दीर्घ (२६४) प्राप्त है उस का निषेध ॥ ४२० ॥

४२१—न लिङि ॥ अ० ॥ ७ । २ । ३९ ॥

वृङ् वृञ् और ॠकारान्तों से परे लिङ् के इट् को दीर्घ न होवे । वरिषीष्ट । वरिषीयास्ताम् । अनिट् पक्ष में । वृषीष्ट । अवारीत् । अवारिष्टाम् । अवारिषुः (२६६) अवरिष्ट । अवरीष्ट । अवरीष्यत् । अवरिष्यत् [धुञ्] कम्पने (कांपना) धुनोति । धुनुते । दुधाव । दुधविथ । दुधुवे । धोता । अधौषीत् ।

अधोष्ट। अधोष्यत्।दीर्घान्तोऽपीत्येके * । यह धुञ् धातु किन्हीं आचार्यों के मत में दीर्घ ऊकारान्त भी है। धूनोति। धूनुते। दुधाव। दुधुवे। दुधविथ। दुधोथ। (१४०) इट् विकल्प। कित् लिट् में क्रादि नियम (१४८) से नित्य इट् होता है। दुधुविव। दुधुविम। धविता। धोता। धविष्यति। धोष्यति। धाविषति। धाविषाति। धोषति। धोषाति। धाविषते। धाविषाते। धोषते। धोषाते। धूनोतु। धूनुताम्। अधूनोत्। अधूनुत। धूनुयात्। धून्वीत। धूयात्। धविषीष्ट। धोषीष्ट। अधविष्ट। अधोष्ट। अधावीत्। अधाविष्टाम्(३२०) नित्य इट्। अधविष्यत अधोष्यत्। स्वादय उभयतोभाषा वृञ्वर्जमनुदात्ताः। सु आदि धातु उभयपदी वृञ् को छोड़ के सब अनिट् हैं॥

अथ परस्मैपादिनो नव। अब परस्मैपदी नव ९ धातु कहते हैं [टुदु] उपतापे (क्लेश भोगना) टु की इत्संज्ञा (१५०) दुनोति। दुदाव। दुदविथ। दोतासि। दोष्यति। दोषति। दोषाति। दुनोतु। अदुनोत् दुनुयात्। दूयात्। अदौषीत्। अदोष्यत [हि] गतौ वृद्धौ च। हिनोति॥ ४२१॥

४२२—हेरचङि॥ अ०॥ ७। ३। ५६॥

अभ्यास से परे हि धातु के हकार को कुत्व होवे परन्तु चङ् परे न हो तो। हकार का अन्तरतम घकार होकर। जिघाय। जिघ्यतुः। जिघयिथ। जिघेथ। हिनोतु। अहैषीत् [पृ] प्रीतौ। पृणोति। पर्त्ता। परिष्यति। प्रियात्। अपार्षीत् [स्पृ] प्रीतिसेवनयोः।प्रीतिचलनयोरित्यन्ये। स्पृणोति।पस्पार। पस्परतुः (२५३) पस्परिथ। पस्पर्थ। स्पर्यात्(२५४) अस्पार्षीत् [स्मृ] इत्येके। स्मृणोति। सस्मार। सस्मरिथ। सस्मर्थ। स्मर्यात् (२५५) [आप्लृ]व्याप्तौ (व्यापक होना) आप्नोति। आप्नुतः। आप्नुवन्ति। यहां संयोग पूर्व के होने से श्नु प्रत्यय के उकार को यण् (२६१) तथा। आप्नुवः (२००) लोप नहीं होता। आप्ता। आप्स्यति। आप्सति। आप्साति। आप्नोतु। आप्नुहि (२०१) संयोग पूर्व के होने से हि का लुक् नहीं होता। आप्नोत्। आप्नुयात्। आप्यात्। आपत् (२१७) अङ्। आप्स्यत् [शक्लृ] शक्तौ। शक्नोति। शशाक। शेकतुः। शेकिथ। शशक्थ। शक्ता। शक्ष्यति। शाक्षति। शाक्षाति। शक्नोतु। अशक्नोत्। शक्नुयात्। शक्यात्। अशकत् (२१७) अशक्ष्यत् [राध, साध] संसिद्धौ। राध्नोति। साध्नोति॥ ४२२॥

---

* लोक वेद में सर्वत्र दीर्घान्त धूञ् धातु के प्रयोग बहुधा आते हैं और पाणिनीय (स्तुसुधूञ्०) आदि सूत्रों में दीर्घान्तही आता है फिर यह ठीक नहीं बनता कि किन्हीं के मत में दीर्घान्त हो किन्तु दीर्घान्त सार्वत्रिक और ह्रस्व प्रयुक्त किन्हीं के मत में ह्रस्वान्त होनाचाहिये॥

४२३—राधो हिंसायाम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १२३ ॥

कित् लिट् और सेट् थल् परे हों तो हिंसा अर्थ में वर्तमान राध धातु को एकार आदेश और अभ्यास का लोप होवे । रराध । रेधतुः । अपरेधतुः । अपरेधुः । रेधिथ । अपपूर्वक राध धातु का हिंसा अर्थ होता है । राद्धा । साद्धा । रात्स्यति सात्स्यति । रात्सति । रात्साति । साध्नोति । असात्सीत् । असाद्धाम् । असात्स्यत् । दुनोतिप्रभृतयोऽनुदात्ताः परस्मैभाषाः । दु आदि धातु अनिट् परस्मैपदी हैं । अथ द्वावनुदात्तेतौ । अब दो धातु आत्मनेपदी कहते हैं [अशूङ्] व्याप्तौ सङ्घाते च (व्याप्ति और इकट्ठा करना) अश्नुते । अश्नुवाते ॥ ४२३ ॥

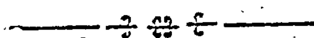
४२४—अश्नोतेश्च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७२ ॥

दीर्घ किये अभ्यास के अवर्ण से परे अशधातु को नुट् का आगम होवे । आनशे । आनशाते । ऊदित् होने से इट् विकल्प (१४०) आनशिषे । आनक्षे । आनशिवहे । आनश्वहे । अशितासे । अष्टासे (२३३) षत्व । अशिष्यते । अक्ष्यते । आशिषते । आशिषाते । आक्षते । आक्षाते । अश्नुताम् । अश्नवै । आश्नुत । अश्नुवीत । अशिषीष्ट । अक्षीष्ट । आशिष्ट । आष्ट । आक्षाताम् । आशिष्यत । आक्ष्यत [ष्टिघ] आस्कन्दने (शोखना) स्तिघ्नुते । तिष्टिघे । स्तेघितासे । अस्तेघिष्ट । अथागणान्तात्परस्मैपदिनः । अब इस गण के अन्त पर्यन्त परस्मैपदी धातु कहते हैं [तिक, तिग] नतौ च (चादास्कन्दने) यहां चकार से आस्कन्दन अर्थ की अनुवृत्ति आती है । तिक्नोति । तिग्नोति । तितेक । तेगितासि । तेगिष्यति । तेगिषति । तेगिषाति । तिग्नोतु । अतिग्नोत् । तिग्नुयात् । तिग्यात् । अतेगीत् । अतेगिष्यत् [षघ] हिंसायाम् । सघ्नोति [ञिधृषा] प्रागल्भ्ये (अतिदृढ़ होना) धृष्णोति । दधर्ष । धर्षिता [दम्भु] दम्भने (अहङ्कार) (१२९) दभ्नोति । ददम्भ (२७१) कित्व हो कर दम्भ धातु के अनुनासिक का लोप(१२९) होकर न लोपको (४२)असिद्ध मानने से (१२५) एत्वाभ्यास लोप नहीं पाता इस लिये ॥ ४२४ ॥

४२५—वा०—दम्भेरेत्वं वक्तव्यम् ॥

दम्भ धातु को एत्व और अभ्यास का लोप हो कित् लिट् और सेट् थल् परे हों तो । देभतुः । देभुः । देभिथ । दम्भिता । दभ्यात् (१२९) [ऋधु] वृद्धौ । ऋध्नोति । आनर्द्ध । अर्द्धिता । अर्द्धिष्यति । अर्द्धिषति । अर्धिषाति । ऋध्नोतु । आर्ध्नोत् । ऋध्नुयात् । ऋध्यात् । आर्धीत् । आर्धिष्यत् (छन्दसि) यह गणसूत्र अधिकार है यहां से आगे इस गण के अन्त पर्यन्त सब धातु वैदिक विषयक हैं [तृप] प्रीणन इत्येके । कोई के मत में प्रीणनार्थ तृप धातु वैदिक है । तृप्णोति । चुभ्नादि

गण में पाठ होने से णत्व होता है। अतर्पीत् [अह] व्याप्तौ । अह्नोति । माभवानहीत् (१६२) [दघ] घातने पालने च (मारना और रक्षा) दघ्नोति । ददाघ । देघतुः । देघिथ । दघिता । दघिष्यति । दाघिषति । दाघिषाति । दघ्नोतु । दघ्नवानि । अदघ्नोत् । दघ्नुयात् । दघ्यात् । अदाघीत् । अदघीत् । अदघिष्यत् [चमु] भक्षणे । चम्नोति [रि, क्षि, चिरि, जिरि, दाश्, दृ,] हिंसायाम् । रिणोति । क्षिणोति । अयं भाषायामपीत्येके । कोई के मत में क्षि धातु लौकिक भी है। ऋक्षीत्येकएवाजादिरित्यन्ये । किन्हीं के मत में रि, और क्षि दो नहीं किन्तु ऋक्षि अजादि अजन्त एक ही दो अक्षर का धातु है ऋक्षिणोति। चिरिणोति । जिरिणोति । दाश्नोति । दृणोति । चिचिराय । चिचिरियतुः । इत्यादि वैदिक प्रयोगों में जैसा प्रयोग आ जावे उस के अनुकूल सूत्रों से सिद्धि समझनी चाहिये । तिकादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैपदिनः । ये तिक आदि धातु सेट् परस्मैपदी हैं (वृत्) इति श्नुविकरणः स्वादिगणः समाप्तः ॥ यह श्नु विकरण वाला स्वादि गण समाप्त हुआ ॥



अथ तुदादयः ॥

[तुद] व्यथने (पीड़ा) ॥ ४२५ ॥

४२६—तुदादिभ्यः शः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७७ ॥

तुदादि धातुओं से परे शप् का बाधक श प्रत्यय होवे कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हो तो । अपित् श के ङित् होने से गुण निषेध सर्वत्र । तुदति । तुदते । तुतोद । तुतोदिथ । तुतुदे । तोत्ता । तोत्स्यति । तोत्स्यते । तुदतु । तुदताम् । अतुदत् । अतुदत । तुदेत् । तुदेत । तुद्यात् । तुत्सीष्ट(१६२)अतौत्सीत् । अतौत्ताम् (१२५) अतुत्त । अतुत्साताम् । अतोत्स्यत् [णुद] प्रेरणे (आज्ञा करना) नुदति । नुदते । नुनोद । नुनुदे [दिश] अतिसर्जने (देना) दिशति । दिशते । देष्टा । देक्ष्यति । देक्ष्यते । देक्षति । देक्षाति । देक्षते । देक्षातै । दिक्षीष्ट । अदिक्षत् । अदिक्षत (२०७) [भ्रस्ज] पाके (पकाना) भृज्जति । भृज्जते (२८६) संप्रसारण सकार को श्चुत्व शकार और शकार को जश्त्व होजाता है ॥ ४२६ ॥

४२७—भ्रस्जोरोपधयोरमन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४७ ॥

भ्रस्ज धातु के रेफ और उपधा के स्थान में रम् का आगम विकल्प करके होवे आर्द्धधातुक विषय में। रम् मित् होने से अन्त्य अच् से परे होता है। और स्थान षष्ठी का निर्देश होने से रेफ और उपधा की निवृत्ति होजाती है। बभर्ज। बभर्जतुः। बभर्जिथ। बभर्ष्ठ(२३३)षत्व और जिस पक्ष में रम् का आगम न हुआ वहां। बभ्रज्ज। बभ्रज्जतुः। बभ्रज्जिथ। बभ्रष्ठ (२१०) संयोगादि सलोप और षत्व (२३३) बभर्जे। बभर्जाते। बभर्जिषे। बभ्रज्जे। भर्ष्टा। भ्रष्टा। भर्क्ष्यति। भ्रक्ष्यति। भर्क्षति। भर्क्षाति। भर्क्षते। भर्क्षाते। भ्रक्षति। भ्रक्षाति। भ्रक्षते। भ्रक्षाते। भृज्जतु। भृज्जताम्। अभृज्जत्। अभज्जत। भृज्जेत्। भृज्जेत। भृज्ज्यात्। कित् ङित् विषय में रमागम को(४२७)को बाधके पूर्वविप्रतिषेध मान कर सम्प्रसारण (२८६) होता है। भृज्ज्यास्ताम्। भर्क्षीष्ट। भ्रक्षीष्ट। अभार्क्षीत्। अभ्राक्षीत्। अभर्ष्ट। अभर्क्षाताम्। अभ्रष्ट। अभ्रक्षाताम्। अभर्क्ष्यत्। अभ्रक्ष्यत्। अभर्क्ष्यत। अभ्रक्ष्यत [क्षिप] प्रेरणे। क्षिपति। क्षिपते। क्षेप्ता। क्षिप्सीष्ट। अक्षैप्सीत्। अक्षिप्त। [कृष] विलेखने (लिखना वा जोतना) कृषति। कृषते। क्रष्टा। कर्ष्टा (२७५) क्रक्ष्यति। कर्क्ष्यति। कृष्यात्। कृक्षीष्ट। सिच् (२८०) पक्ष में अम् (२७५) अक्राक्षीत्। अकार्क्षीत्। पक्ष में क्स (२०७) अकृक्षत्। अकृक्षताम्। आत्मनेपद में कित् (१६३) होने से अम् (२७५) नहीं होता। सिच् पक्ष में (२८०) अकृष्ट। अकृक्षाताम्। अकृक्षत। क्स (२०७) पक्ष में। अकृक्षत। अकृक्षाताम्। अकृक्षन्त। अक्रक्ष्यत्। अक्रक्ष्यत। अकर्क्ष्यत्। अकर्क्ष्यत। षट् तुदादयोऽनुदात्ताः स्वरितेत उभयतोभाषाः। ये तुद आदि छः धातु अनिट् उभयपदी हैं [ऋषी] गतौ। यह धातु सेट् परस्मैपदी है। ऋषति। आनर्ष। आनृषतुः। आर्षीत् [जुषी] प्रीतिसेवनयोः। जुषते। जुजुषे। जोषितासे। जोषिष्यते। जोषिषतै। जोषिषातै। जुषताम्। अजुषत। जुषेत। जोषिषीष्ट। अजोषिष्ट। अजोषिष्यत [ओविजी] भय चलनयोः। बहुधा इस धातु के प्रयोग उद् उपसर्ग पूर्वक ही आते हैं। उद्विजते। उद्विविजे। उद्विविजाते ॥ ४२७ ॥

४२८—विज इट् ॥ अ० ॥ १ । २ । २ ॥

विज धातु से परे जो इडादि प्रत्यय सो ङित्वत् हो। उद्विजिता। उद्विजिष्यते। ङित् होने से लघूपध गुण नहीं होता। उद्विजिषीष्ट। उदविजिष्ट [ओलजी, ओलस्जी] व्रीडायाम् (प्रेरणा और लज्जा) लजते। लेजे। लजितासे। लजिष्यते। लाजिषतै। लाजिषातै। लजताम्। अलजत। लजेत। लजिषीष्ट। अलजिष्ट।

अलज्जिष्यत । लज्जते । ललज्जे । भ्रस्ज धातु के समान श्चुत्व और जश्त्व । जुषादय उदात्ताश्चत्वारोऽनुदात्तेत आत्मनेपदिनः । ये जुष आदि चार धातु सेट् आत्मनेपदी हैं ॥

अथ परस्मैपदिनो दशोत्तरशतम् । अब एक सौ दश ११० धातु परस्मैपदी कहते हैं [ओव्रश्चू] छेदने (काटना) वृश्चति (२८६) सम्प्रसारण । वव्रश्च । वव्रश्चतुः । वव्रश्चुः । वव्रश्चिथ वव्रष्ठ । यहां अभ्यास के रेफ को ऋ सम्प्रसारण (२८२) होकर ऋ को अकार (१०६) होता है उस ऋकार को स्थानिवत् मान ने से सम्प्रसारण के परे पूर्व वकार को सम्प्रसारण नहीं होता । ऊदित् होने से इट् विकल्प (१४०) व्रश्चिता । व्रष्टा । व्रश्चिष्यति । व्रक्ष्यति । व्रश्चिषति । व्रश्चिषाति । व्रचति । व्रचाति । वृश्चतु । अवृश्चत् । वृश्चेत् । वृश्च्यात् । अव्रश्चीत् । अव्राक्षीत् [व्यच] व्याजीकरणे (छल करना) विचति (२८६) विव्याच (२८२) विविचतुः (२८६) व्यचितासि । व्यचिष्यति । व्याचिषति । व्याचिषाति । विचतु । अविचत् । विचेत् । विच्यात् । अव्याचीत् । अव्यचीत् [उछि] उञ्छे (उछना) उञ्छति । उञ्छाञ्चकार । उञ्छाम्बभूव । उञ्छामास । उञ्छिता [उछी] विवासे (परदेश वास) उच्छति [ऋच्छ] गतीन्द्रियप्रलयमूर्त्तिभावेषु (गति, इन्द्रियों का प्रलय और शरीर का बनना) ऋच्छति । आनर्च्छ (२५८) गुण । आनर्च्छतुः आनर्च्छुः । आनर्च्छिथ । ऋच्छिता । [मिच्छ] उत्क्लेशे (पीड़ा) मिच्छति । मिमिच्छ । अमिच्छीत् [जर्ज, चर्च, झर्झ] परिभाषणभर्त्सनयोः (बहुत बोलना वा धमकाना) जर्जति । चर्चति । झर्झति [त्वच] संवरणे (ढांकना) त्वचति । तत्वाच [ऋच] स्तुतौ (गुण कथन) ऋचति । आनर्च । आनृचतुः [उब्ज] आर्जवे (कोमलता) उब्जति । उब्जांचकार [उज्झ] उत्सर्गे (त्याग) उज्झति । उज्झांचकार [लुभ] विमोहने (व्याकुलता) लुभति । लुलोभ । लोभिता (२१२) लोब्धा । लोभिष्यति । लोभिषति । लोभिषाति । लुभतु । अलुभत् । लुभेत् । लुभ्यात् । अलोभीत् । अलोभिष्यत् [रिफ] कत्थनयुद्धनिन्दा हिंसादानेषु (अपनी प्रशंसा, युद्ध निन्दा, हिंसा और ग्रहण करना वा देना) रिफति । रिरेफ । रेफिता । रेफिष्यति । रेफिषति । रेफिषाति । रिफतु । अरिफत् । रिफेत् । रिफ्यात् । अरेफीत् । अरेफिष्यत् [रिह] इत्येके । रिहति । रिरेह । [तृप, तृम्फ] तृप्तौ । तृपति । ततर्प । तर्पिता । तृम्फति । तृप्यात् । तृफ्यात् (१३८) उपधाऽनुनासिक लोप । अतर्पीत् । यहां (२८०) वार्त्तिक में अङ् का अपवाद होने से दिवादि के अन्तर्गत पुषादि के तृप का ग्रहण होता है । इस लिये नित्य सिच् होता है [तृफ, तृम्फ] इत्येके ॥ ४२८ ॥

४२६—वा०—शे तृम्फादीनामुपसंख्यानम् ॥

तृम्फ आदि धातुओं को नुम् हो श प्रत्यय परे हो तो यह वार्तिक (७।१।५९)

सूत्र पर है। तृम्फ आदि धातुओं में जो अनुनासिक सहित हैं उन के भी अनुनासिक का लोप श के परे (१३९) हो जाता है। और नुम् विधान सामर्थ्य से फिर लोप नहीं होता है। तृम्फति। ततृम्फ। तृम्फिता। तृफ्यात् (१३९) [तुप, तुम्प, तुफ, तुम्फ] हिंसायाम्। तुम्पति। तुम्फति। तुप्यात्। तुफ्यात् [दृप, दृम्फ] उत्क्लेशे (पीड़ा) दृम्पति। दृम्फति। दृप्यात्। दृफ्यात् [ऋफ, ऋम्फ] हिंसायाम्। ऋम्फति। आनर्फ। ऋम्फाञ्चकार। ऋफ्यात् [गुफ, गुम्फ] ग्रन्थे (बन्धन) गुम्फति। जुगुम्फ [उभ, उम्भ] पूरणे (पूर्त्ति) उभति। उम्भति। उवोभ। उम्भाञ्चकार। उभ्यात् [शुभ, शुम्भ] शोभार्थे। शुम्भति। शुशुम्भ। शुशोभ। शुभ्यात् (४२९) वार्त्तिक में कहे तृम्फादि धातु पूरे हुए [दृभी] ग्रन्थे। दृभति। ददर्भ। अदर्भीत्। अदर्भिष्यत् [चृती] हिंसाग्रन्थनयोः। चृतति। चचर्त। चचृततुः। चचर्त्तिथ। चर्त्तिता। चर्त्तिष्यति (३९७) चर्त्स्यति। चर्त्तिषति। चर्त्तिषाति। चर्त्सति। चर्त्साति। चृततु। अचृतत्। चृतेत्। चृत्यात्। अचर्तीत्। अचर्तिष्यत् [विध] विधाने। विधति। विवेध। विविधतुः। वेधिता। वेधिष्यति। वेधिषति। वेधिषाति [जुड] गतौ। जुडति। अजोडीत् [जुन] इत्येके। जुनति [मृड] सुखने मृडति। अमर्डीत् [पृड] च। पृडति [पृण] प्रीणने (तृप्ति) पृणति। पपर्ण [वृण] च। वृणति। अवर्णीत्। अवर्णिष्यत् [मृण] हिंसायाम्। मृणति। मर्णिता [तुण] कौटिल्ये। तुणति। तोणिष्यति [पुण] कर्मणिशुभे (शुभकर्म) पुणति। पोणिषति। पोणिषाति [मुण] प्रतिज्ञाने (प्रतिज्ञा) मुणति। मुणतु [कुण] शब्दोपकरणयोः (शब्द और उपकार) कुणति। अकुणत् [शुन] गतौ। शुनति। शुनेत् [द्रुण] हिंसागतिकौटिल्येषु (हिंसा, गति और कुटिलता) द्रुणति। द्रुण्यात् [घुण, घूर्ण] भ्रमणे (डोलना) घुणति। घूर्णति। जुघोण। जुघूर्ण [घुर] ऐश्वर्यदीप्त्योः (धन और प्रकाश) सुरति। सुषोर। सोरिता। सोरिष्यति। सोरिषति। सोरिषाति। सुरतु। असुरत्। सुरेत्। सूर्यात् (१८७) दीर्घ [कुर] शब्दे। कुरति ॥ ४२९ ॥

४३०—न भकुर्छुराम् ॥ अ० ॥ ८। २। ७९ ॥

रेफान्त और वकारान्त भसंज्ञक तथा कुर् और छुर् इन को उपधा इक् को दीर्घ न होवे (१८७) सूत्र से दीर्घ प्राप्त है। उस का अपवाद यह सूत्र है। कुर्यात्*

* यहां भट्टोजिदीक्षित ने लिखा है कि (४३०) सूत्र यहां नहीं लगता क्यों कि वहां कुर् कहने से कृञ् धातु का ग्रहण होता है इस से। कूर्यात्। प्रयोग होता है सो संदिग्ध है क्यों कि जो (लक्षणप्रतिपदोक्तयोः०) इस परिभाषा का आश्रय करें तब तो कृञ् का ग्रहणही न हो क्योंकि कृञ् का कुर् लाक्षणिक और कुर् धातु प्रतिपदोक्त है। इस लिये इस परिभाषा का आश्रय न करें तो भी लाक्षणिक और प्रतिपदोक्त दोनों का ग्रहण होवे फिर ऐसी परिभाषा कौनहै कि जिससे लाक्षणिक कृञ्का ग्रहण होजावे और प्रतिपदोक्त कुर्का नहीं ॥

[खुर] छेदने (दोभाग करना) खुरति । चुखोर । खूर्यात् [मुर] संवेष्टने ।मुरति । मूर्यात् [चुर] विलेखने (क्षौर कर्म) चुरति । चूर्यात् [घुर] भीमार्थशब्दयोः (भयंकर पदार्थ और शब्द)घुरति । घूर्यात् [पुर] अग्रगमने (आगे चलना) पुरति। पूर्यात्[वृह] उद्यमने(उद्यम) वृहति। ववर्ह। ववृहतुः। ऊदित् होनेसे इट् विकल्प । ववर्हिथ । ववर्ढ। ववृहिव । ववृह्व ।वर्हिता । वर्ढा ।वर्हिष्यति । वर्क्ष्यति । वर्हिषति । वर्हिषाति ।वर्क्षति । वर्क्षाति वृहतु । अवृहत् । वृहेत् ।वृह्यात् । अवर्हीत् । अवृक्षत् (२०७) क्स । अवर्हिष्यत् । अवर्क्ष्यत् [वृह] इत्येके इस में इतना विशेष है कि। भर्क्ष्यति (२०४) भर्क्षति । भर्क्षाति । अभृक्षत् । अभर्क्ष्यत् [तृह,स्तृह, तृंहू] हिंसार्थाः । तृहति । स्तृहति । तृंहति । ततर्ह । तस्तर्ह । ततृंह । तर्हिता । तर्ढा । स्तर्हिता । स्तर्ढा । तृंहिता । तृंढा ।तृह्यात् । अतृक्षत् । अस्तृक्षत् [इष] इच्छायाम् । इषति । इयेष। एषिता ।एषिषति ।एषिषाति ।इषतु । ऐषत् । इषेत्। इष्यात् । ऐषीत्। ऐषिष्यत् [मिष] स्पर्धायाम् (ईर्षा) मिषति । मिमेष [किल] श्वैत्यक्रीडनयोः । श्वेताई और क्रीडा । किलति। केलिता [तिल] स्नेहने (चिकनाई) तिलति । तेलिष्यति[चिल] वसने (वस्त्र) चिलति ।चेलिषति । चेलिषाति । चिलतु [चल] विलसने (शोभा)चलति ।अचलत् [इल] स्वप्नक्षेपणयोः (सोना और फेंकना) इलति । इयेल । ईलतुः । ऐलत् । इलेत् [विल] संवरणे (आच्छादन) विलति। विल्यात् [बिल]भेदने (खोदना)बिलति । अवेलीत् [णिल] गहने (गाढ़) निलति । अनेलिष्यत् [हिल] भावकरणे (प्रीति करना) हिलति [शिल,षिल] उञ्छे । शिलति । सिलति [मिल] श्लेषणे (मिलना) मिलति [लिख] अक्षर विन्यासे (अक्षरबनाना) लिखति । लिलेख । लेखिता । लेखिष्यति । लेखिषति । लेखिषाति । लिखतु । अलिखत् । लिखेत् । लिख्यात् । अलेखीत् । अलेखिष्यत् [कुट] कौटिल्ये (कुटिलाई) कुटति । चुकोट । चुकुटतुः (२४५) ङित्व हो कर । चुकुटिथ । कुटिता ।कुटिष्यति । कोटिषति ।कोटिषाति ।कुटिषति । कुटिषाति । यहां णित् पक्ष में ङित्व (२४५) न होने से गुण होता है । और ङित् होने से सब कुटादिकों में गुण का निषेध जानो । कुटतु । अकुटत् । कुटेत् । कुट्यात् । अकुटीत् । अकुटिष्यत् (२४५) सूत्र में कहे कुटादि धातु इसी कुट से कूङ् धातु पर्य्यन्त जानो [पुट] संश्लेषणे । पुटति । पुपोट । पुटिता [कुच] सङ्कोचने (इकट्ठा होना) कुचति । चुकुचिथ [गुज] शब्दे । गुजति । गुजिष्यति [गुड] रक्षायाम् । गुडति । गोडिषति । गोडिषाति । गुडिषति । गुडिषाति [डिप] क्षेपे (फेंकना) डिपति । डिपतु [छुर] छेदने । छुरति । अच्छुरत् । छुर्यात् (४३०)

[स्फुट] विकसने (खिलना) स्फुटति । पुस्फुटिथ [मुट] आक्षेपमर्दनयोः (खण्डन और मलना) मुटति । मुटिता [त्रुट] छेदने (१८८) विकल्प से श्यन् । त्रुट्यति । त्रुटति । त्रुटिष्यति । त्रुट्यतु । त्रुटतु । अत्रुट्यत् । अत्रुटत् । त्रुट्येत् । त्रुटेत् [तुट] कलहकर्म्मणि (विरोध करना) तुटति । तोटिषति । तोटिषाति । तुटिषति । तुटिषाति [चुट, छुट,] छेदने । चुटति । छुटति [जुड] बन्धने (जोड़ना) जुडति । जुडतु [कड] मदे (अहङ्कार) कडति [लुट] संश्लेषणे (मिलना) लुटति । अलुटत् [लुठ] इत्येके । लुठति । लुठेत् [क्रड] घनत्वे (सघन) क्रडति । अक्रडीत् [कुड] बाल्ये (बालकपन) कुडति [पुड] उत्सर्गे (त्याग) पुडति [घुट] प्रतिघाते (घोटना) घुटति । जुघुटिथ । घुटिता [तुड] तोडने (तोड़ना) तुडति । तुडिष्यति [थुड, स्थुड] संवरणे । थुडति । स्थुडति । तुस्थुडिथ [स्फुड] इत्येके । स्फुडति [खुड, छुड] इत्यन्ये । खुडति । छुडति [कुड] संघातइत्येके । कुडति [स्फुर] स्फुरणे (चेतनता) स्फुरति । पुस्फोर [स्फर] इत्येके । स्फरति । [स्फुल] संचलने (चंचलता) स्फुलति [स्फुड, चुड, व्रुड] संवरणे । स्फुडति । चुडति । व्रुडति [क्रुड, भ्रुड] निमज्जनइत्येके । क्रुडति । भ्रुडति । भ्रुडिता । व्रश्चादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषा दशोत्तरशतम् । व्रश्च आदि एक सौ दश ११० धातु सेट् परस्मैपदी हैं [गुरी] उद्यमने । उदात्तोऽनुदात्तेदात्मनेपदी । यह धातु सेट् आत्मनेपदी है । गुरते । जुगुरे । गुरिता । गुरिष्यते । गोरिषते । गोरिषाते । गुरिषते । गुरिषाते । गुरताम् । अगुरत । गुरेत । गुरिषीष्ट । अगुरिष्ट । अगुरिष्यत । इतश्चत्वारः परस्मैपदिनः । यहां से आगे चार धातु परस्मैपदी हैं [णू] स्तवने (स्तुति) नुवति । नुनाव । अनुवीत् [धू] विधूनने (कंपाना) धुवति । दुधाव । दुधुवतुः । धुविता । अधुवीत् । ये दोनों सेट् हैं [गु] पुरीषोत्सर्गे (मल त्यागना) गुवति । जुगाव । जुगुविथ । जुगुथ । गुता । गुष्यति । गोषति । गोषाति । गुषति । गुषाति । गुवतु । अगुवत् । गुवेत् । गूयात् (१६०) अगुषीत् । अगुताम् । (२४१) सिच् लोप । अगुषुः [ध्रु] गतिस्थैर्ययोः (चलना और स्थिति) [ध्रुव] इत्येके । ध्रुवति । इत्यादि । गु के समान रूप जानो । और ध्रुव धातु तो सेट् है । दुध्रुविथ । ध्रुविता । ध्रूयात् (१६७) दीर्घ । अध्रुवीत् [कूङ्] शब्दे [कुङ्] शब्दइत्येके यह धातु दीर्घान्त पक्ष में सेट् और ह्रस्वान्त पक्ष में अनिट् है । कुवते । चुकुविथ । कुविता । अकुविष्ट । ह्रस्व पक्ष में । चुकुविथ । चुकुथ । कुता । अकुत (ह्रत्) । इति कुटादयः समाप्ताः । ये (२४५) सूत्र में कहे कुटादि धातु समाप्त हुए ॥

[पृङ्] व्यायामे (कसरत) यह धातु बहुधा वि और आङ् उपसर्ग

पूर्वक ही प्रयुक्त आता है। व्याप्रियते (२३९ । १५९) व्याप्रियेते । व्याप्रियन्ते । व्यापप्रे । व्यापप्राते । व्यापप्रिषे । पर्त्तासे । परिष्यते । पार्षते । पार्षाते । प्रियताम् । अप्रियत । प्रियेत । पृषीष्ट (२४०) अपृत (२४१) अपृषाताम् । अपृषत [मृङ्] प्राणत्यागे (शरीर छूटना) ॥ ४३० ॥

४३१—म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६१ ॥

मृङ् धातु से परे लुङ् लिङ् और शित् विषय में आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय हों अन्यत्र नहीं। मृङ् धातु के ङित् होने से सर्वत्र आत्मनेपद सिद्ध ही है फिर विशेष विषय में कहने से यह नियम हुआ कि लुङ् लिङ् और शित् से भिन्न लकारों में परस्मैपद ही हों । म्रियते । ममार । मम्रतुः । मम्रुः । ममर्थ । मम्रिव । मम्रिम। मर्त्तासि । मरिष्यति । मार्षति । मार्षाति । म्रियताम् । अम्रियत । म्रियेत । मृषीष्ट । अमृत । अमृषाताम् । अमरिष्यत् ॥

अथ परस्मैपदिनः सप्त । अब सात ७ धातु परस्मैपदी कहते हैं [रि, पि] गतौ । रियति । पियति । रिराय । पिपाय । रिरियतुः । पिपयिथ । पिपेथ । पेता । पेष्यति । पेषति । पैषाति । पियतु । अपियत् । पियेत् । पीयात् । अपैषीत् । अपैष्टाम् । अपेष्यत् [धि] धारणे । धियति । दिधयिथ । दिधेथ । धेता । [चि] निवासगत्योः । चियति । चीयात् । अचैषीत् । यादयोऽनुदात्ताः । ये रिआदि अनिट् हैं [षू] प्रेरणे (आज्ञा) सुवति । सुषाव । सुषविथ । सविता । सविष्यति । साविषति । साविषाति । सुवतु । असुवत् । सुवेत् । सूयात् । असावीत् । असाविष्टाम् । असविष्यत् [कॄ] विक्षेपे (फैलाना) किरति । किरतः(२६५) चकार । चकरतुः । चकरुः (२५८) गुण । करीता (२६४) करिता । करीष्यति । करिष्यति । कारीषति । कारीषाति । कारिषति । कारिषाति । किरतु । अकिरत् । किरेत् । कार्यात् (२६५ । १८७) अकारीत् । अकारिष्टाम् (२६६) अकरीष्यत् । अकरिष्यत् [गॄ] निगरणे (खाना वा उपदेश करना) ॥ ४३१ ॥

४३२—अचि विभाषा ॥ अ० ॥ ८ । २ । २१ ॥

अजादि प्रत्यय परे हो तो गॄ धातु के रेफ को विकल्प करके लकारादेश होवे । गिरति । गिलति । जगाल । जगार । जगलतुः । जगरतुः । गलीता । गलिता । गरीता । गरिता । गीर्यात् । अगालीत् । अगारीत् । अगालिष्टाम् । अगारिष्टाम् । उदात्ताः परस्मैपदिनः । सू आदि धातु सेट् परस्मैपदी हैं [दृङ्] आदरे (सत्कार) यह धातु आङ्पूर्वक बहुधा आता है । आद्रियते (२३९) रिङ् । आद्रियेते । आदद्रे । आदद्रिषे ।

आदर्शासे । आदरिष्यते । आदार्षते । आदार्षातै । आद्रियताम् । आद्रियत । आद्रियेत । आदृषीष्ट (२४०) आदृत । आदृषाताम् । आदरिष्यत [धृङ्] अवस्थाने (स्थिति) ध्रियते । दध्रे । दध्रिषे । अनुदात्तावात्मनेपदिनौ । ये दोनों धातु अनिट् आत्मनेपदी हैं ॥

अथ परस्मैपदिनः षोडश । अब सोलह धातुपरस्मैपदी कहते हैं [प्रच्छ] ज्ञीप्सायाम् (जनाने की इच्छा) पृच्छति । पृच्छतः (२८६) संप्रसारण । पप्रच्छ । पप्रच्छतुः । पप्रच्छिथ । अनिट् पक्ष में । पप्रष्ठ (२३३) षत्व । प्रष्टा । प्रक्ष्यति । प्राक्षति । प्राक्षाति । पृच्छतु । अपृच्छत् । पृच्छेत् । पृच्छ्यात् । अप्राक्षीत् । अप्राष्टाम् । अप्राक्षुः । अप्रक्ष्यत् (वृत्) किरादयः समाप्ताः । ये किरति आदि पांच धातु पूरे हुए इन से समस्त प्रक्रिया में विशेष कार्य्य होते हैं [सृज] विसर्गे (रचना वा त्यागना) सृजति । ससर्ज । ससृजतुः । ससर्जिथ (२७७) सस्रष्ठ (२३३ । २७८) स्रष्टा । स्रक्ष्यति । स्राक्षति । स्राक्षाति । सृजतु । असृजत् । सृजेत् । सृज्यात् । अस्राक्षीत् । अस्राष्टाम् । अस्रक्ष्यत् [टुमस्जो] शुद्धौ । टु और ओकार की इत्संज्ञा । (स्तोः श्चुना श्चुः) सूत्र से स को श और श को ज होकर । मज्जति । ममज्ज । ममज्जिथ । अनिट् पक्ष में (४०९) नम प्राप्त है सो मित् होने से अन्त्य अच् से परे होवे तो सकार के मध्य पाती होने से संयोगादि लोप (२१०) नहीं हो सकता इस लिये ॥ ४३२ ॥

४३३–वा० — मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम्वक्तव्यः ॥

मस्ज धातु के अन्त्य वर्ण जकार से पूर्व नुम् कहना चाहिये । फिर सकार को संयोगादि होने से लोप (२१०) होकर । मस् न् ज् + थल् = ममङ्क्थ । मङ्क्ता । मङ्क्ष्यति । मङ्क्षति । मङ्क्षाति । मज्जतु । अमज्जत् । मज्जेत् । मज्ज्यात् । अमाङ्क्षीत् । अमाङ्क्ताम् । अमाङ्क्षुः । अमङ्क्ष्यत् [रुजो] भङ्गे (टूटना) रुजति । रोक्ता । रोक्ष्यति । अरौक्षीत् । अरौक्ताम् [भुजो] कौटिल्ये (कुटिलता) भुजति । बुभोज । बुभोजिथ । बुभोक्थ । भोक्ता । अभौक्षीत् । अभौक्ताम् [छुप] स्पर्शे । छुपति । छोप्ता । अच्छौप्सीत् [रुश, रिश] हिंसायाम् । रुशति । रिशति । रोष्टा । रेष्टा । अरुक्षत् । अरिक्षत् (२०७) [लिश] गतौ । लिशति । लेक्ष्यति । लिशतु । अलिक्षत् । [स्पृश] संस्पर्शे (छूना) स्पृशति । पस्पर्श । पस्पर्शिथ । स्प्रष्टा (२७५) स्पर्ष्टा । स्प्रक्ष्यति । स्पर्क्ष्यति । स्प्रक्षति । स्प्राक्षाति । स्पर्क्षति । स्पर्क्षाति । स्पृशतु । अस्पृशत् । स्पृशेत् । स्पृश्यात् । अस्प्राक्षीत् । अस्पार्क्षीत् । अस्प्राष्टाम् । अस्पृक्षत् । अस्प्रक्ष्यत् । अस्पर्क्ष्यत् । [विच्छ] गतौ (१६६) आय प्रत्यय (१६७) धातु संज्ञा । विच्छायति । विच्छायतः

आम् प्रत्यय (१६६) विच्छायाञ्चकार । विच्छायांबभूव । विच्छायामास (१६८ विविच्छ । विविच्छतुः । विच्छायितासि । विच्छितासि । विच्छायिष्यति । विच्छि ष्यति । विच्छायिषति । विच्छायिषाति । विच्छिषति । विच्छिषाति । विच्छायतु अविच्छायत् । विच्छायेत् । विच्छाय्यात् । विच्छ्यात् । अविच्छायीत् । अविच्छीत् अविच्छायिष्यत् । अविच्छिष्यत् [विश] प्रवेशने । विशति । वेष्टा । अवेक्षीत् । अवे ष्टाम् [मृश] आमर्शने (विचारना) मृशति । म्रष्टा । मर्ष्टा (२७५) अम्राक्षीत् अमार्क्षीत् । अमृक्षत् [णुद] प्रेरणे । इस धातु को प्रथम इसी गण में लिख चुके दूसरी वार यहां कर्त्रभिप्राय क्रियाफल में भी नित्य परस्मैपद होने के लिये पढ़ है [षद्लृ] विशरणगत्यवसादनेषु । इस धातु को इसी प्रकार का भ्वादि में लि चुके हैं वहीं के तुल्य रूप भी जानो कुछ विशेष नहीं फिर यहां लिखने का य प्रयोजन है कि कृदन्त शतृ प्रत्यय में शप् विकरण वाले को नित्य नुम् और विकरण वाले को विकल्प होता है । और शप् और श विकरण का स्वर भी पृथक् होता है [शद्लृ] शातने । इस को भी भ्वादि में लिख चुके हैं फिर इस का पाठ केवल स्वर के पृथक् होने के लिये है । प्रच्छादयो विच्छिवर्जमनुदात्ताः परस्मैप दिनः । ये प्रच्छ आदि धातु विच्छ को छोड़ के अनिट् और सब परस्मैपदी हैं ॥

अथ षट् स्वरितेतः । अब छः ६ धातु स्वरितेत् (उभयपदी) कहते हैं [मिल सङ्गमे (समागम) (मिल, संश्लेषणे) धातु प्रथम लिख चुके हैं । उस को फि दूसरी वार कर्त्रभिप्राय अर्थ में आत्मनेपद होने के लिये पढ़ा है । मिलति । मि लते । मिमेल । मिमिले । मेलिता । मेलिष्यते । मेलिषते । मेलिषाते । मिलताम् मिलतु । अमिलत् । मिलेत् । मिल्यात् । अमेलीत् । अमेलिष्यत् । यह धातु से है [मुच्लृ] मोक्षणे (छूटना) ॥ ४३३ ॥

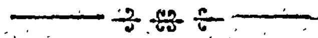
४३४–शे मुचादीनाम् ॥ अ० ॥ ७ । १ । ५६ ॥

श प्रत्यय के परे मुचादि धातुओं को नुम् का आगम होवे । मुञ्चति । मुञ्चते मुमोच । मुमुचे । मोक्ता । मोक्ष्यते । मोक्ष्यति । मोक्षते । मोक्षाते । मोक्षति । मोक्षाति मुञ्चतु । मुञ्चताम् । अमुञ्चत् । अमुञ्चत । मुञ्चेत् । मुञ्चेत । मुच्यात् । मुक्षीष्ट । अमुच (२१७) अङ् । अमुक्त । अमुक्षाताम् । अमोक्ष्यत् । अमोक्ष्यत [लुप्लृ] छेदने लुम्पति । लुंपते । लुप्यात् । अलुपत् । अलुप्त [विद्लृ] लाभे (प्राप्ति) विन्दति विन्दते । विवेद । विविदे । वेत्ता । वेत्स्यति । परिवेत्ता [लिप] उपदेहे (लीपन वा वृद्धि) लिम्पति । लिंपते । लेप्ता । अलिपत् (२८२) अङ् । अलिपत । अलिप्त (२८ [षिच] क्षरणे (सींचना) सिञ्चति । सिञ्चते । सिच्यात् । असिचत् (२८२) असिच

(२८३) असिद्ध । मुचादयोऽनुदात्ताः स्वरितेत उभयपदिनः । ये मुच आदि धातु अनिट् उभयपदी हैं ॥

अथ परस्मैपदिनः [कृती] छेदने । कृन्तति । चकर्त्त । कर्त्तिता । कर्त्तिष्यति (३८७) कर्त्स्यति । कर्तिषति । कर्त्तिषाति । कर्त्सति । कर्त्साति । कृन्ततु । अकृन्तत् । कृन्तेत् । कृत्यात् । अकर्त्तीत् । अकर्त्तिष्यत् । अकर्त्स्यत् [खिद] परिघाते (पीड़ा) यह धातु दीनता अर्थ में दिवादि और रुधादिकों में पढ़ा है । खिन्दति । चिखेद । खेत्ता । खेत्स्यति । खिद धातु अनिट् है [पिशि] अवयवे । पिंशति । पिंशते । पिपेश । पेशिता । पेशिष्यति । पेशिषति । पेशिषाति । पिंशतु । अपिंशत् । पिंशेत् । पिश्यात् । अपेशीत् । अपेशिष्यत् (वृत्) मुचादयः । ये (४२४) सूत्र में कहे मुच आदि धातु पूरे हुए ॥

इति शविकरणस्तुदादिगणः समाप्तः ॥



अथ रुधादिगणः ॥

अथ नव स्वरितेत इरितश्च । अब नौ धातु उभयपदी कहते हैं [रुधिर्] आवरणे (आच्छादन) इर् भाग इत्संज्ञा हो कर ॥ ४२४ ॥

४३५—रुधादिभ्यः श्नम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७८ ॥

रुध आदि धातुओं से शप् का अपवाद श्नम् प्रत्यय हो कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों तो । श्नम मित् प्रत्यय होने से अन्त्य अच् रु से परे धकार से पूर्व होता है। रु+श्नम्+ध्+तिप्=रुणद्धि । शकार मकार की इत्संज्ञा और णत्व होता है । रुन्धः (३५२) अकार लोप । णत्व को असिद्ध मान कर नकार को अनुस्वार और अनुस्वार को परसवर्ण करने में अकारलोप को स्थानिवत्भाव प्राप्त है उस का अनुस्वार और परसवर्ण विधि में निषेध हो जाता है । रुन्धन्ति । रुणत्सि । रुन्धे । रुन्धाते । रुन्धते । रुरोध । रुरुधतुः । रुरोधिथ । रुरुधे । रोद्धा । रोत्स्यति । रोत्स्यते । रोत्सति । रोत्साति । रोत्सते । रोत्सातै । रुणधति । रुणधाति । रुणधातै । रुणधातै । रुणद्धु । रुन्धात् । रुन्धाम् । रुन्धन्तु । रुन्धि । रुणधानि । रुणधाव । रुन्धाम् । रुन्धाताम् । रुणधै । अरुणत् । अरुन्धाम् । अरुन्धन् । अरुणत् । अरुणः । यहां पदान्त धकार को प्रथम जश्त्व हो कर (३५१) सूत्र की दृष्टि में जश्त्व सिद्ध होने से दकार को रु विकल्प से (३५१) होता है । अरुणधम् । रुन्ध्यात् । रुन्ध्याताम् ।

रुध्यात । इरित् होने से अङ् विकल्प (१३८) अरुधत् । अरुधताम् । अरौत्सीत् । अरुद्ध । अरुत्साताम् । अरोत्स्यत [भिदिर्] विदारणे (भेद) भिनत्ति । भिन्ते । बिभेद । बिभिदे । भेत्ता । भेत्स्यति । भेत्सति । भेत्साति । भिनत्तु । अभिनत् । अभिनः । अभिनदम् । अभिन्त । भिन्द्यात् । भिद्यात् । अभिदत् । अभैत्सीत् । अभैत्ताम् । अभित्त [छिदिर्] द्वैधीकरणे (दो भाग करना) छिनत्ति । अच्छिनत् । अच्छिनः । अच्छिदत् । अच्छैत्सीत् । अच्छित्त [रिचिर्] विरेचने (वमन करना) रिणक्ति । रिङ्क्ते । रिरेच । रिरिचे । रेक्ता । रेक्ष्यते । रेचते । रेचाते । रिणक्तु । रिङ्क्ताम् । अरिणक् । अरिचत् । अरिक्त [विचिर्] पृथग्भावे (अलग होना) विनक्ति । विङ्क्ते । अविनक् । अविचत् । अवैक्षीत् । अविक्त [क्षुदिर्] संपेषणे (पीसना) क्षुणत्ति । क्षुन्ते । क्षोत्ता । अक्षुणत् । अक्षुणः । अक्षुदत् । अक्षौत्सीत् । अक्षुत्त [युजिर्] योगे (समाधि) युनक्ति । युङ्क्ते । अयुनक् । अयुजत् । अयौक्षीत् । अयोक्ष्यत् । रुधादयोऽनुदात्ताः स्वरितेतः । रुध आदि धातु अनिट् उभयपदी हैं [उछृदिर्] दीप्तिदेवनयोः (प्रकाश और क्रीड़ा आदि) छृणत्ति । छृन्ते । चच्छर्द । चच्छृदतुः । छर्दिता । छर्दिष्यति । छर्त्स्यति (३८७) छर्दिषति । छर्दिषाति । छर्त्सति । छर्त्साति । छृणत्तु । अच्छृणत् । अच्छृणः । छृन्द्यात् । छृद्यात् । छृत्सीष्ट । अच्छृदत् । अच्छर्दीत् । अच्छर्दिष्ट । अच्छर्दिष्यत् । अच्छर्त्स्यत् [उतृदिर्]हिंसाऽनादरयोः (हिंसा और अनादर) तृणत्ति । इत्यादि । छृदि के समान जानो । ये दोनों धातु उभयपदी सेट् हैं [कृती] वेष्टने (लपेटना) कृणत्ति । यह धातु तुदादि गण में आ चुका है आर्द्धधातुक में वैसे ही प्रयोग जानो [ञिइन्धी] दीप्तौ । उदात्तोदात्तोऽनुदात्तेदात्मनेपदी । यह धातु सेट् आत्मनेपदी है ञि और इकार की इत्संज्ञा हो कर ॥ ४३५ ॥

४३६—श्नान्नलोपः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २३ ॥

श्नम् प्रत्यय से परे नकार का लोप हो । अर्थात् इकार से परे होने के कारण धकार से पूर्व जो न उस का लोप होता है । इन्धे (३५२) नकार लोप । इन्धाते । इन्धते । इन्त्से । इन्धाञ्चक्रे । इन्धाम्बभूव । इन्धामास (१६९) सूत्र से वेद में आम् प्रत्यय का निषेध होने से (४४) सूत्र से लिट् को कित्व हो कर । ईधे (१२८) नलोप । ईधाते । ईधिरे । इन्धिता । इन्धिष्यते । इन्धिषते । इन्धिषाते । इन्धाम् । इन्धाताम् । इन्त्स्व । ऐन्ध । ऐन्धाः । इन्धीत । इन्धिषीष्ट । ऐन्धिष्ट । ऐन्धिष्यत [खिद] दैन्ये (दीनता) खिन्ते । खेत्ता । खिन्ताम् । अखिन्त । खिन्दीत । खित्सीष्ट । अखित्त [विद] विचारणे (विचारना) विन्ते । विविदे । वेत्ता । वेत्स्यते । वेत्सते । वेत्साते विन्ताम् अविन्त । विन्दीत । वित्सीष्ट । अवित्त । अवेत्स्यत । खिदि विदि

अनुदात्तावात्मनेपदिनौ। खिद और विद दोनों धातु अनिट् आत्मनेपदी हैं। अथपरस्मैपदिनो द्वादश। अब बारह १२ धातु परस्मैपदी कहते हैं [शिष्लृ] विशेषणे (विशेषण) शिनष्टि। शिंष्टः। शिंषन्ति। शिशेष। शिशेषिथ। शेष्टा। शेक्ष्यति। शेक्षति। शेक्षाति। शिनष्टु। शिंष्–हि। यहां प्रथम हि को धि और षकार को जश्त्व ड हो कर (२७२) सूत्र से विकल्प करके डकारलोप होता है। शिण्ढि। शिण्ड्ढि। शिनषाणि। अशिनट्। शिंष्यात्। शिष्यात्। लृदित् होने से अङ् (२१७) अशिषत्। अशेक्ष्यत् [पिष्लृ] सञ्चूर्णने (पीसना) पिनष्टि। पिपेष। पेष्टा। पेक्ष्यति। पेक्षति। पेक्षाति। पिनष्टु। पिण्ढि। अपिनट्। पिंष्यात्। पिष्यात्। अपिषत् [भञ्जो] आमर्दने (बल से मलना) भनक्ति। बभञ्ज। बभञ्जिथ। बभङ्क्थ। भङ्क्ता। भङ्क्ष्यति। अभाङ्क्षीत्। अभाङ्क्ताम्। [भुज] पालनाभ्यवहारयोः (रक्षा और भोजन) भुनक्ति। भोक्ता। भोक्ष्यति। अभुनक्। अभौक्षीत्। अभोक्ष्यत्। अनुदात्ताउदात्तेतश्चत्वारः। ये शिष आदि चार धातु अनिट् परस्मैपदी हैं [तृह, हिसि] हिंसायाम् ॥ ४३६ ॥

४३७—तृणह इम् ॥ अ० ॥ ७। ३। ९२ ॥

श्नम् प्रत्ययान्त तृह धातु को इम् का आगम होवे हलादि पित् सार्वधातुक परे हो तो। तृणेढि। तृण्ढः। ततर्ह। तर्हिता। तर्हिष्यति। तर्हिषति। तर्हिषाति। तृणेढु। अतृणेट्। तृंह्यात्। तृह्यात्। अतर्हीत्। हिनस्ति। हिंस्तः। हिंसन्ति। जिहिंस। हिंसिता [उन्दी] क्लेदने (गीलापन) उनत्ति। उन्तः। उन्दन्ति। उन्दाञ्चकार। उन्दांबभूव। उन्दामास। उन्दिता। उनत्तु। उन्धि। औनत्। औन्ताम्। औन्दन्। औनः (२५१) औनत्। औनदम्। उन्द्यात्। उद्यात् (१३९) औन्दीत् [अञ्जू] व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु (मनुष्यादि को स्थूल व्यक्ति, भोजन, शोभा और गति) अनक्ति। अङ्क्तः। अञ्जन्ति। आनञ्ज। आनञ्जिथ। आनङ्क्थ। ऊदित् होने से इट् विकल्प (१४०) अञ्जिता। अङ्क्ता। अञ्जिषति। अञ्जिषाति। अङ्क्षति। अङ्क्षाति। अनक्तु। अङ्ग्धि। अनजानि। आनक्। आङ्क्ताम्। आञ्जन्। अञ्ज्यात्। अज्यात् ॥ ४३७ ॥

४३८—अञ्जेः सिचि ॥ अ० ॥ ७। २। ७१ ॥

अञ्ज धातु से परे जो सिच् उस को नित्य इट् का आगम होवे। ऊदित् होने से इट् का विकल्प (१४०) प्राप्त है उस का यह अपवाद है। आञ्जीत्। आञ्जिष्टाम् [तञ्चू] संकोचने (दही जमाना) तनक्ति। ततञ्चिथ। ततङ्क्थ। तञ्चिता। तङ्क्ता। तनक्तु। अतनक्। अतञ्चीत्। अताङ्क्षीत्। अताङ्क्ताम्।

[ओविजी] भयचलनयोः । विनक्ति । विङ्क्तः । विवेज । विविजिथ (४२८) विजिता । विजिष्यति । वेजिषति । वेजिषाति । विनक्तु । अविनक् । अविजीत्। [वृजी] वर्जने । वृणक्ति । वर्जिता [पृची] संपर्के (स्पर्श करना) पृणक्ति । पपर्च । पपर्चिथ । पर्चिता । पर्चिष्यति । पर्चिषति । पर्चिषाति । पृणक्तु । अपृणक् । पृञ्च्यात् । पृच्यात् । अपर्चीत् । अपर्चिष्यत् ॥

(इत्) इति श्नम्विकरणो रुधादिगणः समाप्तः ॥

॥ अथ तनादिगणः ॥

अथ सप्त स्वरितेतः । अब सात धातु उभयपदी कहते हैं [तनु] विस्तारे ॥ ४३८ ॥

४३९—तनादिकृञ्भ्य उः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७९ ॥

तनादि और कृञ् धातु से उ प्रत्यय हो कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हो तो यह भी सूत्र शप् का अपवाद है । कृञ् धातु भी तनादिगण में ही पढ़ा है इस कारण कृञ् से भी उ प्रत्यय हो ही जाता फिर कृञ् का पृथक् ग्रहण इस लिये है कि तनादिगण के अन्य कार्य कृञ् को नहीं जैसे तनादिकों से परे सिच् का लुक् (४४०) विकल्प से होता है सो कृञ् से न होवे । तनोति । तनुते । तनुवः । तन्वः (२००) ततान । तेने । तनिता । तनिष्यति । तानिषति । तानिषाति । तनोतु । तनु (२०१) तनवानि । तनुताम् । अतनोत् । अतनुत। तनुयात् ।तन्वीत। तन्यात् । तनिषीष्ट । अतानीत् । अतनीत् ॥ ४३९ ॥

४४०—तनादिभ्यस्तथासोः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७९ ॥

तनादि धातुओं से परे जो सिच् उस का लुक् होवे त और थास् परे हों तो । त और थास् आत्मनेपद प्रत्यय के साहचर्य से त भी आत्मनेपद का एकवचन लिया जाता है । इस से । यूयमतनिष्ट । यहां परस्मैपद के मध्यम पुरुष बहुवचन में सिच् लुक् नहीं होता । अतत (२०३) अनुनासिक लोप ।अतनिष्ट । अतनिषाताम् । अतनिषत । अतथाः । अतनिष्ठाः । अतनिषि । अतनिष्यत् । अतनिष्यत [षणु] दाने । सनोति । सनुते । सायात् (१८५) सन्यात् । असात । (२८४) असनिष्ट । असाथाः । असनिष्ठाः [क्षणु] हिंसायाम् । क्षणोति । क्षणुते । अक्षणीत् (१६२) वृद्धि का निषेध । अक्षत । अक्षणिष्ट । अक्षथाः । अक्षणिष्ठाः [क्षिणु] च । क्षेणोति ।यहां उ प्रत्यय के आर्द्धधातुक होने से लघूपध

गुण (५१) होता है । चेणुते । चिचेण । चिच्णिे । चेणितासि । चेणितासे । चेणिषति । चेणिषाति । अचेणीत् । अचित । अचेणिष्ट । अचिथाः । अचेणिष्ठाः [ऋणु] गतौ । अर्णोति । अर्णुतः । अर्णुवन्ति । आनर्ण । आनृणतुः । आनृणे । अर्णितासि । आर्णीत् । आर्त्त । आर्णिष्ट । आर्थाः । आर्णिष्ठाः [तृणु] अदने । तर्णोति । तर्णुते । अतृत । अतर्णिष्ट [घृणु] दीप्तौ । घर्णोति । घर्णुते । जघर्ण । जघृणे । तनादय उदात्ताः स्वरितेत उभयतोभाषाः । ये तन आदि धातु सेट् उभयपदी हैं [वनु] याचने (मांगना) वनुते । ववने (१२८) वनितासे । वनिष्यते । वानिषते । वानिषातै । वनुताम् । वनवै । अवनुत । वन्वीत । वनिषीष्ट । अवत । अवनिष्ट । अवथाः । अवनिष्ठाः । अवनिष्यत [मनु] अवबोधने (निश्चित ज्ञान) मनुते । मेने । अमत । अमनिष्ट । उदात्तावनुदात्तेतावात्मनेपदिनौ । ये दोनों धातु सेट् आत्मनेपदी हैं [डुकृञ्] करणे (करना) अनुदात्त उभयतोभाषः । यह धातु अनिट् उभयपदी है । तस् के परे भी उ प्रत्यय निमित्त कृञ् को अर् गुण हो कर ॥ ४४० ॥

४४१—अत उत्सार्वधातुके ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११० ॥

कृञ् धातु के अकार को उकारादेश होवे किन् ङित् सार्वधातुक परे हों तो । कुरुतः । कुर्वन्ति । यहां भी (१८७) सूत्र से दीर्घ प्राप्त है उस का निषेध (४३०) हो जाता है । करोषि । कुरुथः । कुरुथ । करोमि ॥ ४४१ ॥

४४२—नित्यं करोतेः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०८ ॥

करोति धातु से परे जो प्रत्यय का उकार उस का नित्य ही लोप होवे व म परे हों तो यह सूत्र (२००) का अपवाद है । कुर्वः । कुर्मः । कुरुते । कुर्वाते । चकार । चक्रतुः । चकर्थ (१४८) चकृव । चक्रे । चकृषे । कर्त्ता । करिष्यति । करिष्यते (२३८) कार्षति । कार्षाति । कार्षते । कार्षातै । करोतु । कुरुतात् । कुरु (२०१) करवाणि । करवाव । कुरुताम् । अकरोत् । अकुरुत ॥ ४४२ ॥

४४३—ये च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०९ ॥

कृञ् धातु से परे प्रत्यय के उकार का लोप हो यकारादि प्रत्यय परे हों तो । कुर्यात् । क्रियात् (२३९) कृषीष्ट (२४०) अकार्षीत् । अकार्ष्टाम् । अकृत । अकृथाः । यहां सिच् लुक् नित्य होता है । अकरिष्यत् । अकरिष्यत ॥ ४४३ ॥

४४४—मन्त्रे घसह्वरणशवृदहाद्वृच्कृगमिजनिभ्यो लेः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ८० ॥

वेदविषय मन्त्रभाग में घस, ह्वर, णश, वृ, दह, आकारान्त, वृच्, कृ, गमि

और जन धातुओं से परे जो लि उस का लुक् होवे। लि कर के यहां लुङ् का च्लि प्रत्यय समझा जाता है (घस्लृ, अदने) अक्षन्नमीमदन्त पितरः। अक्षन्। अघसन्। लोक में होता है। ह्वर से (ह्वृ, कौटिल्ये) समझना चाहिये। माह्वाः। अह्वाः। लोक में। अह्वार्षीत्। (णश, अदर्शने) प्रणङ् मर्त्यस्य। प्रणक्। यहां अट् का अभाव है। लोक में। प्रनशत्। ह करके वृङ् और वृञ्, दोनों का ग्रहण होता है। सुरुचो वेन आवः। आवः। आवारीत्। आङ् पूर्वक लोक में (दह, भस्मीकरणे) अधक्। लोक में। अधाक्षीत् (प्रा, पूरणे) आप्रा द्यावापृथिवी। अप्राः। अप्रासीत्। लोक में (वर्क) लोक में। अवर्चीत्। क धातु का। अक्रन्। बहुवचन में और अकः। एकवचन में। गमका। अग्मन्। लोक में। अगमन्। जनका। अज्ञ वा अरय दन्ता:। लोक में। अजनि। अजनिष्ट ॥ ४४४ ॥

४४५—अभ्युत्सादयांप्रजनयांचिकयांरमयामकः पावयांक्रियाद्विदामक्रन्निति छन्दसि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४२ ॥

अभ्युत्सादयां आदि वेद विषय में निपातन किये हैं। सद, जन और र इन ण्यन्त धातुओं से लुङ् लकार में आम् प्रत्यय निपातन किया है। और चि धातु से भी लुङ् में आम् प्रत्यय द्विर्वचन और कुत्व निपातन किया है। अक यह कृञ् धातु का पूर्व सूत्र (४४४) से सिद्ध प्रयोग का सद आदि चारों धातु के अन्त में अनुप्रयोग किया है। जैसे। अभ्युत्सादयामकः। और लोक में। अ दसीषदत्। प्रजनयामकः। प्राजीजनत्। लो०। चिकयामकः। लो०। अचैषी रमयामकः। लो०। अरीरमत्। पावयांक्रियात्। यहां ण्यन्त पूङ् धातु से ! में आम् प्रत्यय और कृञ् धातु का अनुप्रयोग निपातन किया है लोक में। पाव विदामक्रन्। यहां लुङ् लकार के प्रथम पुरुष बहुवचन में विद धातु से आम् प्र कृञ् का अनुप्रयोग और च्लि का लुक (४४४) निपातन किया है। लोक अवेदिषुः। होता है ॥

(इम्) इति तनादिगणः समाप्तः ॥

—:*:—

अथ क्र्यादिगणः ॥

[डुक्रीञ्] द्रव्यविनिमये (द्रव्य का लेना देना) ॥ ४४५ ॥

४४६—क्र्यादिभ्यः श्ना ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८१ ॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों तो क्री आदि धातुओं से श्ना प्रत्यय हो । क्रीणाति । क्रीणीतः (३८३) पर नित्य और अन्तरङ्ग होने से ईकारादेश (३८३) का बाधक झि को अन्त और झ को अत् आदेश हो कर । क्रीणन्ति (३६५) क्रीणासि । क्रीणीते । क्रीणाते । क्रीणते । चिक्राय । चिक्रियतुः । चिक्रयिथ । चिक्रेथ । चिक्रियिव । क्रेता । क्रेष्यति । क्रेष्यते । क्रेषति । क्रेषाति । क्रेषते । क्रेषातै । क्रीणातु । क्रीणीहि । क्रीणानि । क्रीणीताम् । अक्रीणीत । क्रीणीयात् । क्रीणीत । क्रीयात् । क्रेषीष्ट । अक्रैषीत् । अक्रेष्ट । अक्रेष्यत् । अक्रेष्यत [प्रीञ्] तर्पणे कान्तौ च (तृप्ति और शोभा) प्रीणाति । प्रीणीते [श्रीञ्] पाके (पकाना) श्रीणाति । श्रीणीते [मीञ्] हिंसायाम् । मीनाति । मीनीतः । मीनीते एच् विषय में आकारादेश (३९९)ममौ । मिम्यतुः । ममिथ । ममाथ । मिम्ये । माता । मास्यति । मास्यते । मासति । मासाति । मीयात् । मासीष्ट । अमासीत् । अमासिष्टाम् । अमास्त । अमासाताम् [षिञ्] बंधने । सिनाति । सिनीते । सिषाय । सिष्ये । सेता [स्कुञ्] आप्रवणे (कूदना) ॥ ४४६ ॥

४४७—स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८२ ॥

स्तम्भु आदि पांच धातुओं से श्नु और चकार से श्ना प्रत्यय हों कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों तो । स्कुनोति । स्कुनुते । स्कुनाति । स्कुनीते । चुस्काव । चुस्कविथ । चुस्कोथ । स्कोता । अस्कौषीत् । अस्कोष्ट । स्तम्भ आदि चार धातु सौत्र हैं इन का पाठ किसी गण में नहीं है और सब रोकने अर्थ में परस्मैपदी हैं। स्तभ्नोति । स्तभ्नाति (१३९)न लोप । तस्तम्भ । अस्तभत्(१५४) अङ् विकल्प । अस्तम्भीत् । स्तुभ्नोति । स्तुभ्नाति । स्कभ्नोति । स्कभ्नाति । स्कुभ्नोति । स्कुभ्नाति । चस्कम्भ । स्कम्भिता । स्कम्भिष्यति ॥ ४४७ ॥

४४८—हलः श्नः शानज्झौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८३ ॥

हलन्त धातु से परे जो श्ना प्रत्यय उस को शानच् आदेश होवे हि परे हो तो । स्तभान । स्तुभान । स्कभान । स्कुभान । श्नुपक्ष में । स्तभ्नुहि । इत्यादि । अस्कभ्नात् । अस्कभ्नोत् । स्कभ्नीयात् । स्कभ्नुयात् । स्कभ्यात् । अस्कम्भीत् । अस्कम्भिष्यत् ॥ ४४८ ॥

४४९—छन्दसि शायजपि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८४ ॥

वेद विषय में हि परे होतो श्ना प्रत्यय के स्थान में शानच् और शायच् दोनों आदेश हों। गृभाय। स्तभाय। स्कभाय। स्तभान। बधान देव सवितः [युञ्] बन्धने। युनाति। युनीते। युयाव। युयुवे । क्र्यादयोऽनुदात्ताः स्वरितेतः सप्त। क्री आदि सात धातु अनिट् उभयपदी हैं [क्नूञ्] शब्दे। क्नूनाति। क्नूनीते। क्नविता। क्नविष्यति। अक्नावीत्। अक्नविष्ट। [द्रूञ्] हिंसायाम्। द्रूणाति। द्रूणीते। दुद्राव। दुद्रुवे [पूञ्]पवने (पवित्रता) ॥ ४४९ ॥

४५०—प्वादीनां ह्रस्वः ॥ अ० ॥ ७। ३ ॥ ८० ॥

शित् प्रत्यय परे होतो पू आदि धातुओं के अच् को ह्रस्व होवे। पुनाति। पुनीते। पुपाव। पुपुवे। पविता। पविष्यति [मूञ्] बन्धने। मुनाति। मुनीते। माविषति। माविषाति। [लूञ्] छेदने (काटना] लुनाति। लुनीते। लुनातु। लुनीताम्। [स्तॄञ्] आच्छादने। स्तृणाति। स्तृणीते। तस्तार। तस्तरतुः। स्तरीता। स्तरिता। अस्तृणात्। अस्तृणीत। स्तृणीयात्। स्तृणीत। स्तीर्यात्। स्तरिषीष्ट (४२१) स्तृषीष्ट। अस्तारीत्। अस्तारिष्टाम्। (४२०) अस्तरिष्ट। अस्तरीष्ट। अस्तीर्ष्ट। [कॄञ्] हिंसायाम्। कृणाति। कृणीते। चकार। चकरतुः। चकरे (२५८) [वॄञ्] वरणे (स्वीकार) वृणाति। वृणीते। ववार। ववरे। वरिता। वरीता। वूर्यात् (३८०। १९७) वरिषीष्ट। वूर्षीष्ट। अवारीत्। अवारिष्टाम्। अवरिष्ट। अवरीष्ट। अवूर्ष्ट [धूञ्] कम्पने। धुनाति। धुनीते। दुधाव। दुधुवतुः। दुधविथ। दुधोथ (१४०) इट् विकल्प। धविता। धोता। धविष्यति। धोष्यति। अधावीत (२३०) नित्य इट्। अधविष्ट। अधोष्ट। उदात्ता उभयतोभाषा नव। क्नूञ् आदि नव धातु सेट् उभयपदी हैं। अथ वृङन्ताः परस्मैपदिनः। अब वृङ धातु पर्यन्त परस्मैपदी कहते हैं [शॄ] हिंसायाम्। शृणाति। शशार। शश्रतुः। शश्रुः (३८१) दीर्घ पक्ष में। शशरतुः (२५८) गुण। शशरिथ। शश्रिव। शशरिव। शरीता। शरिता। शरिष्यति। शरीष्यति। शारीषति। शारीषाति। शारिषति। शारिषाति। शृणातु। शृणीहि। अशृणात्। शृणीयात्। शीर्यात्। अशारीत्। अशारिष्टाम्। अशरीष्यत्। अशरिष्यत् [पॄ] पालन-पूरणयोः। पृणाति। पप्रतुः। पपरतुः। पूर्यात् (३८०)[वॄ] वरणे। भरण इत्येके वृणाति। वूर्यात्[भॄ]भर्त्सने। भरण इत्यन्ये [मॄ]हिंसायाम्। मृणाति। ममार। [दॄ] विदारणे दृणाति। दद्रतुः। ददरतुः [जॄ] वयोहानौ [झॄ] इत्येके। जृणाति। जीर्यात् [धॄ] इत्यन्ये। धृणाति [नॄ] नये (लेचलना) नृणाति।

ननृतुः । ननरतुः । [कॄ] हिंसायाम् । कृणाति [ॠ] गतौ । ऋणाति । अराञ्चकार । अराम्बभूव । अरामास । अरिता । अरीता । आर्णात् । आर्णीताम् । ईर्यात् । आरीत् । आरिष्टाम् [गॄ] शब्दे । गृणाति । जगुतुः । जगरतुः । गरीता । गरिता । गरिष्यति । गरीष्यति । गारीषति । गारीषाति । गृणातु । गृणीहि । अगृणात् । गृणीयात् । अगारीत् । [ज्या] वयोहानौ (२८६) य को इ सम्प्रसारण और पूर्व रूप एकादेश होता है ॥ ४५० ॥

४५१—हलः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २ ॥

अङ्ग के अवयव हल् से परे जो संप्रसारण उस को दीर्घ होवे । जिनाति । यहां जि को दीर्घ हो कर फिर ह्रस्व (४५०) हो जाता है । जिज्यौ (२८२) जिज्यतुः (२८६) ज्याता । ज्यास्यति । ज्यासति । ज्यासाति । जिनातु । अजिनात् । जिनीयात् । जीयात् (२८६) अज्यासीत् । अज्यास्यत् [व्री] वरणे । व्रिणाति । विव्राय । विव्रियतुः । व्रेता । व्रीयात् [री] गतिरेषणयोः (गति और भेड़िया का शब्द) रिणाति [ली] श्लेषणे । लिनाति (४००) आत्वविकल्प । ललौ । लिलाय । लिल्यतुः । ललिथ । ललाथ । लिलयिथ । लाता । लेता । लास्यति । लेष्यति । लासति । लासाति । लेषति । लेषाति । लिनातु । लिनीहि । अलिनात् । लिनीयात् । लायात् । लेयात् । अलासीत् । अलैषीत् । अलास्यत् । अलेष्यत् [व्ली] वरणे (स्वीकार) व्लीनाति [प्ली] गतौ (वृत्) ये (४५०) सूत्र में कहे प्वादि धातु पूरे हुए [क्षीष्] हिंसायाम् । क्षीणाति । षित् का प्रयोजन कृदन्त में आवेगा [भ्री] भये (डर) [भर] इत्येके) भ्रीणाति । [ज्ञा] अवबोधने । जानाति (४०२) जानीतः । जानन्ति । जानासि । जज्ञौ । जज्ञतुः । जज्ञिथ । जज्ञाथ । ज्ञाता । ज्ञास्यति । ज्ञासति । ज्ञासाति । जानातु । जानीहि । जानानि । अजानात् । जानीयात् । ज्ञेयात् । ज्ञायात् । अज्ञासीत् । अज्ञास्यत् [बन्ध] बन्धने (बांधना] बध्नाति । बबन्धिथ । बबन्ध । बन्धा । बन्धारौ । बन्धारः । भन्त्स्यति । भन्त्सति । भन्त्साति । बध्नातु । बधान (४४८ ।४४९) बधाय । अबध्नात् । बध्नीयात् । बध्यात् । अभान्त्सीत् । अबान्धाम् । यहां भष्भाव विधायक सूत्र (२०४) से सिच्लोप (१४२) पूर्व होने से भष्भाव को असिद्ध मान के सिच्लोप (१४२) हो जाता है । पीछे प्रत्ययलक्षण सूत्र की अपेक्षा में त्रिपादी का सिच् लोप असिद्ध होने से सादि प्रत्यय के न रहने से भष्भाव नहीं होता । अभान्त्सुः । ज्यादयोऽनुदात्ताः परस्मैभाषाः । ये ज्यादि धातु अनिट् परस्मैपदी हैं [वृङ्] संभक्तौ (अच्छी भक्ति) उदात्त आत्मनेपदी । वृणीते । वव्रे । ववृषे । ववृढ्वे । वरीता । वरिता । वृणीताम् । अवृणीत । वृणीत । वरिषीष्ट

(४२० । ४२१) वृषीष्ट । अवरीष्ट । अवरिष्ट । अवृत । अवरीष्यत । अवरिष्यत । इतः परस्मैपदिनः । अब यहां से आगे परस्मैपदी धातु कहते हैं [ग्रन्थ] विमोचनप्रतिहर्षयोः (छूटना और आनन्द) ग्रथ्नाति (२७१) जग्राथ । जग्रथतुः । जग्रथुः । जग्रथिथ । जग्रथ । जग्राथ । ग्रन्थिता । ग्रन्थिष्यति । ग्रन्थिषति । ग्रन्थिषाति । ग्रथ्नातु । ग्रथान । ग्रथाय । अग्रथ्नात् । ग्रथ्नीयात् । ग्रथ्यात् (१३८) अग्रन्थीत् । अग्रन्थिष्टाम् । अग्रन्थिष्यत् [मन्थ] विलोडने । मथ्नाति । मथान । मथाय [ग्रन्थग्रन्थ] संदर्भे । ग्रथ्नाति । ग्रथान । ग्रथ्यात् । अर्थ भिन्न होने से फिर पढ़ा है [कुन्थ] संश्लेषणे । कुथ्नाति । कुथान [मृद] क्षोदे (पीसना) मृद्नाति । मृदान [मृड] च । अयं सुखेपि । मृड्नाति । मृडान [गुध] रोषे (रिसाना) गुध्नाति । गुधान [कुष] निष्कर्षे (खींचना) कुष्णाति । चुकोष । चुकुषतुः । कोषिता । कोषिष्यति । कोषिषति । कोषिषाति । कुष्णातु । कुषाण । अकोषीत् ॥४५१॥

४५२—निरः कुषः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४६ ॥

निर् उपसर्ग पूर्वक कुष धातु से परे वलादि आर्द्ध धातुक को इट् का आगम विकल्प कर के होवे । निष्कोषिता । निष्कोष्टा । निरकोषीत् । निरकुक्षत् (२०७) क्ष [क्षुभ] संचलने (चलायमान) यहां षकार से परे णत्व प्राप्त है इस लिये ॥ ४५२ ॥

४५३—क्षुभ्नादिषु च ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३९ ॥

क्षुभ्ना आदि शब्दों में नकार को णकारादेश न होवे । क्षुभ्नाति । क्षुभ्नीतः । क्षोभिता । क्षुभाण । क्षुभाय । [णभ, तुभ] हिंसायाम् । नभ्नाति । तुभ्नाति । नभान । नभाय । ये दोनों धातु भ्वादि और दिवादि गण में भी आ चुके हैं [क्लिशू] विबाधने (दुःख होना) क्लिश्नाति । चिक्लेश । क्लेशिता । क्लेष्टा (१४०) अक्लेशीत् । अक्लिक्षत् [अश] भोजने । अश्नाति । आश । आशतुः । अशान [उध्रस] उञ्छे । उकार को इत्संज्ञा । ध्रस्नाति । दध्रास । ध्रसिता । ध्रसान [इष] आभीक्ष्ण्ये (बार २ वा शीघ्र होना) इष्णाति । इयेष । ईषतुः । एषिता । एषिष्यति । इषाण । ऐष्णात् । इष्णीयात् । इष्यात् । ऐषीत् [विष] विप्रयोगे (विरुद्ध संयोग) विष्णाति । वेष्टा । यह धातु अनिट् है [प्रुष, प्लुष] स्नेहनसेवनपूरणेषु । प्रुष्णाति । प्लुष्णाति [पुष] पुष्टौ । पोषिता । पुषाण [मुष] स्तेये (चोरी) मुष्णाति । मोषिता । मुषाण [खच] भूतप्रादुर्भावे (हो चुके का फिर होना) खच्नाति । खचान । वान्तोऽयमित्येके । कोई के मत में यह खव धातु है वहां ॥ ४५३ ॥

४५४—च्छ्वोः शूडनुनासिके च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १९ ॥

तुक् आगम के सहित जो छ और व को श और ऊठ् आदेश यथासंख्य करके

हो अनुनासिक, क्विप् और झलादि कित् ङित् प्रत्यय परे होंतो । पीछे ऊठ् के साथ वृद्धि एकादेश हो कर । खौनाति । खौनीतः । चखाव । चखवतुः । खविता । खौनीहि । यहां परत्व से प्रथम ऊठ् हो कर हलन्त के न रहने से हि को धि न हुआ [हेठ] च । चकार से पूर्वोक्त अर्थ लिया जाता है। ष्टुत्व हो कर । हेट्णाति । हेठान । अशादयः पंचविंशतिरुदात्ता उदात्तेतः । ये अश आदि पच्चीस २५ धातु सेट् परस्मैपदी हैं [ग्रह] उपादाने (लेना) उदात्तः स्वरितेत् । ग्रह धातु सेट् उभयपदी है । गृह्णाति (२८६) सम्प्रसारण । गृह्णीते । जग्राह । जगृहतुः । जगृहुः ॥४५४॥

४५५—ग्रहोऽलिटि दीर्घः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ३७ ॥

एकाच् ग्रह धातु से विहित जो इट् उस को दीर्घ होवे परन्तु लिट् परे न हो तो । ग्रहीता । लिट् में निषेध होने से । जग्रहिथ । यहां दीर्घ न हुआ । ग्रहीष्यति । ग्रहीष्यते । ग्राहीषति । ग्राहीषाति । गृह्णातु । गृहाण । अगृह्णात् । गृह्णीयात् । गृह्यात् । ग्रहीषीष्ट । अग्रहीत् (१६२) अग्रहीष्टाम् । अग्रहीष्ट । अग्रहीषाताम् । अग्रहीषत । अग्रहीष्यत् । अगृहीष्यत ॥

(वृत्) इतिश्नाविकरणः क्र्यादिगणः समाप्तः ॥

अथ चुरादि गणः

[चुर] स्तेये (चोरी करना) ॥ ४५५ ॥

४५६—सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् ॥ अ० ॥ ३ । १ । २५ ॥

सत्याप, पाश, रूप, वीणा, तूल, श्लोक, सेना, लोम, त्वच, वर्म, वर्ण, चूर्ण और चुरादि धातुओं से णिच् प्रत्यय होवे । सत्याप आदि चूर्ण पर्यन्त प्रातिपदिकों का वर्णन नामधातु प्रक्रिया में करेंगे। और चुरादि धातुओं से स्वार्थ में णिच् हो कर । चुर्–णिच् । की धातु संज्ञा (१६७) णिच् को मान के गुण (५१) तिप् । शप् को मान के गुण और अयादेश हो कर । चोरयति । चोरयतः । चोरयन्ति ॥४५६॥

४५७—णिचश्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७४ ॥

क्रिया का फल कर्त्ता के लिये होतो णिजन्त धातु से आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय हों । चोरयते । चोरयाञ्चकार । चोरयाञ्चक्रे । चोरयामास । चोरयाम्बभूव । चोरयिता । चोरयिष्यति । चोरयिष्यते । चोरयिषति । चोरयिषाति । चोरयतु । चोरयताम् । अचोरयत् । चोरयेत् । चोर्यात् । चोरयिषीष्ट । लुङ् में (१७६) चङ् (१७८) उपधा को ह्रस्व (१८०) द्वित्व (१८३) अभ्यास को दीर्घ । अचूचुरत् । अचूचुरत [चिति]

स्मृत्याम् (स्मरण) चिन्तयति। अचिचिन्तत्। इस चिति धातु को इदित् पढ़ने से यह ज्ञापक होता है कि चुरादि धातुओं से णिच् प्रत्यय विकल्प से होवे पक्ष में चुरादि कों से शप् भी होवे क्योंकि जो चिन्त धातु पढ़ते तो। चिन्त्यात्। आदि प्रयोगों में नकार लोप (१३८) हो जाता [यचि] संकोचने। यन्चयति। अययन्चत् [स्फुडि] परिहासे। (ठट्ठा करना) स्फुण्डयति। अपुस्फुण्डत् [स्फुटि] इत्येके स्फुण्टयति। [लक्ष] दर्शनाङ्कनयोः (देखना, और चिन्ह) लक्षयति। अललक्षत् [कुद्रि] अनृतभाषणे (झूठबलना) कुन्द्रयति। अचुकुन्द्रत् [लड] उपसेवायाम् [लाड़] लाडयति (१२६) वृद्धि। अलीलडत् [मिदि] स्नेहने। मिन्दयति। अमिमिन्दत्। मिन्द्यात्। [ओलडि] उत्क्षेपे (ऊपर को फेंकना) लण्डयति। किन्हों के मत में ओकार की इत्संज्ञा नहीं होती वहां। ओलण्डयति। उकारादि रयमित्यन्ये। कोई इस धातु को उकारादि कहते हैं। उलण्डयति [जल] अपवारणे (जाल) जालयति। अजीजलत् [लज] इत्येके। लाजयति। अलीलजत्। [पीड] अवगाहने (पीड़ा) पीडयति ॥ ४५७ ॥

४५८—भ्राजभासभाषदीपजीवमीलपीडामन्यतरस्याम्

॥ अ० ॥ ७। ४। ३ ॥

भ्राज आदि धातुओं की उपधा को विकल्प कर के ह्रस्व हो चङ् परक णि परे होतो। अपीपिडत्। अपिपीडत्। यहां जिस पक्ष में ह्रस्व नहीं होता वहां लघु परक अभ्यास के न होने से अभ्यास को दीर्घ (१८३) नहीं होता [नट] अवस्यन्दने [नाचना] नाटयति। अनीनटत् [श्रथ] प्रयत्ने। प्रस्थान इत्येके। कोई के मत में श्रथ धातु प्रस्थान अर्थ में है [बध] संयमने। (बन्धन) बाधयति। अबीबधत् [पॄ] पूरणे। पारयति। पारयते। पारयाञ्चकार। पारयिता। अपीपरत्। इस धातु को दीर्घ ॠकारान्त पढ़ा है सो ह्रस्व कहते तो भी णिच् में वृद्धि हो ही जाती फिर यह ज्ञापक होता है कि इस से शप् भी होवे। परति। परतः। पपार। पपरतुः [ऊर्ज] बलप्राणनयोः (बल और जीवन) ऊर्जयति [पक्ष] परिग्रहे (लेना) पक्षयति। अपपक्षत् [वर्ण, चूर्ण] प्रेरणे। वर्णयति। चूर्णयति [वर्ण] वर्णन इत्येके (व्याख्यान) [प्रथ] प्रख्याने (प्रकट करना) प्राथयति ॥ ४५८ ॥

४५९—अत् स्मृदॄत्वरप्रथम्रदस्तॄस्पशाम् ॥ अ० ॥ ७। ४। ९५ ॥

स्मृ आदि धातुओं के अभ्यास को अकारान्त आदेश हो चङ् परक णि परे होतो। यह सूत्र सन्वद्भाव (१८१) से प्राप्त इत्व (१८२) का अपवाद है। अपप्रथत्। [पृथ] प्रक्षेपे। पर्थयति। पर्थयते। पर्थयाञ्चकार ॥ ४५९ ॥

४६०—उर्ऋत् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७ ॥

धातु की उपधा ऋकार के स्थान में ऋत् आदेश विकल्प से होवे चङ्परक णि परे होतो । यह सूत्र गुणवृद्धि आदि का बाधक है। अपीपृथत्। अपपर्थतत् । अपीपृथत । अपपर्थत [पथ] इत्येके । पाथयति [षम्ब] सम्बन्धने (मेल) सम्बयति। अससम्बत् [शम्ब] च । अशशम्बत् [साम्ब] इत्येके । अससाम्बत् [भक्ष] अदने । भक्षयति [कुट्ट] छेदनभर्त्सनयोः । पूरण इत्येके । कुट्टयति । अचुकुट्टत् [पुट्ट,चुट्ट] अल्पीभावे (थोड़ाहोना) पुट्टयति । चुट्टयति [अट्ट, षुट्ट] अनादरे । अट्टयति । इस धातु को दकारोपध मानने सेउस दकार को ट के संयोग में टकार ही हो कर उस के असिद्ध होने से संयोगादि दकार को द्वित्व नहीं होता । आट्टिटत् । [लुण्ठ] स्तेये । लुण्ठयति [शठ, श्वठ] असंस्कारगत्योः [श्वठि] इत्येके । शाठयति । श्वाठयति । श्वण्ठयति । [तुज, तुजि, पिज, पिजि, लजि, लुजि] हिंसाबलादाननिकेतनेषु (हिंसा, बल आदान और स्थान) तोजयति । अतूतुजत् । पेजयति । अपीपिजत् । तुञ्जयति । अततुंजत् [पिस]गतौ । पेसयति [षान्त्व] सामप्रयोगे (शान्तिकरना) सान्त्वयति [श्वल्क,वल्क] परिभाषणे। श्वल्कयति। [ष्णिह] स्नेहने (प्रीति) स्नेहयति । असिष्णिहत् (स्फिट) इत्येके । स्फेटयति [स्मिट] अनादरे । असिस्मिटत् [ष्मिङ्] अनादर इत्येके । इस में णिच् को छोड़ के केवल स्मिङ् धातु से ङित् करण निष्प्रयोजन होने से णिजन्त से आत्मनेपद ही होते हैं [श्लिष] श्लेषणे । श्लेषयति । अशिश्लषत् [पथि] गतौ । पन्थयति [पिच्छ] कुट्टने (कूटना) पिच्छयति [छदि] सम्वरणे । छन्दयति । [अण] दाने । आणयति [तड] आघाते (ताड़ना) ताड़यति । अतीतड़त् । [खड, खडि, काडि]भेदने । खाडयति । खण्डयति । काण्डयति [कुडि] रक्षणे [गुडि] वेष्टने । रक्षण इत्येके [कुठि, गुठि] चेत्यन्ये । कुण्ठयति । गुण्ठयति । अचुकुण्ठत् [खुडि] खण्डने (काटना) खुण्डयति [वटि] विभाजने (बांटना) वण्टयति [वडि] इत्येके [मडि] भूषायाम् [शोभा] मण्डयति । मण्डयते । मण्डयाञ्चकार । मण्डयिता । मण्डयिष्यति । मण्डयिषति । मण्डयिषाति । मण्डयतु । मण्डयताम् । अमण्डयत् । मण्डयेत् । मण्ड्यात्। अममण्डत् । अमण्डयिष्यत [भडि] कल्याणे । भण्डयते [छर्द] वमने । छर्दयांचक्रे [पुस्त, बुस्त] आदरानादरयोः। पुस्तयितासे [चुद] संचोदने ।चोदयिष्यते [क्नस,धक्क] नाशने। नक्कयिषते । नक्कयिषाते [चक्क,चुक्क] व्यथने । चक्कयताम् [च्चल] शौचकर्मणि (शुद्धिकरना) चालयति। [तल] प्रतिष्ठायाम् । अतालयत [तुल] उन्माने (तोलना) तोलयति । अतूतुलत् [दुल] उत्क्षेपे (फेंकना) दोलयति [पुल] महत्वे । पोलयेत [चुल] समुच्छ्राये।

चोलयिषीष्ट । अचूचुलत [मूल] रोहणे । मूलयति [वुल] निमज्जने (डूबना) अवूवुलत् [कल, विल] क्षेपे (निन्दा) कालयति । वेलयति । [शुल्क] अतिस्पर्शने। शुल्कयति [चपि] गत्याम् । चम्पयति । अचचम्पत् । [क्षपि] क्षान्त्याम् (सहना) क्षम्पयति । अचक्षम्पत् [छजि] कृच्छ्रजीवने (कठिन से जीना) [श्वर्त] गत्याम् । श्वर्तयति [श्वभ्र] च । श्वभ्रयति [ज्ञप] मिच्च। ज्ञप धातु से णिच् प्रत्यय और उस को मित् संज्ञा हो ॥ ४६० ॥

४६१—मितां ह्रस्वः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ९२ ॥

मित्संज्ञक धातुओं की उपधा को ह्रस्व हो णिच् परे हो तो । ज्ञपयति । [यम] च परिवेषणे । परोसने अर्थ में यम धातु से णिच् प्रत्यय और उस को मित्संज्ञा होती है । यमयति (४६०) ह्रस्व [चह] परिकल्कने (मूर्खता) चहयति । अचीचहत् [चप] इत्येके । चपयति । अचीचपत् [रह] त्यागे । रहयति । अरीरहत् [वल] प्राणने (जीवन) वलयति [चिञ्] चयने(इकट्ठा) ॥४६१॥

४६२—चिस्फुरोर्णौ ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५४ ॥

चि और स्फुर धातु के एच् को आकारादेश विकल्प से हो णिच् परे हो तो। आकारादेश होने के पश्चात् ॥ ४६२ ॥

४६२—अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुग्णौ ॥

अ० ॥ ७ । ३ । ३६ ॥

ऋ,ह्री,व्ली,री,क्नूयी,क्ष्मायी और आकारान्त धातुओं को पुक् का आगम हो णिपरे हो तो । चपयति।अचीचपत्।जिस पक्ष में । आकार नहुआ वहां।चययति । इस धातु में ञित् करने से णिच् प्रत्यय का विकल्प होता है क्योंकि ञित् करने का प्रयोजन आत्मनेपद होना णिजन्त से भी उसी अर्थ में हो जाता फिर णिच् से अलग भी आत्मनेपद होने के लिये ञित् पढ़ा हैं । चयते । चयति (नान्ये मितोऽहेतौ) स्वार्थ णिच् में ज्ञप आदि धातुओं से अन्य धातु मितसंज्ञक न हों। इस नियम के करने से प्रयोजन यह है कि जिन शम आदि अमन्तधातुओं को भ्वादि गण में मित्संज्ञा कर चुके हैं उन में से जिस किसी धातु से इस चुरादि गण में स्वार्थ में णिच् करें तो भी मित्संज्ञा न हो केवल ज्ञप आदि धातुओं को ही हो [घट्ट] चलने [मुस्त] संघाते [खट्ट] संवरणे [षट्ट, स्फिट्ट, चुबि] हिंसायाम् । चुम्बयति [पूल] संघाते । पूर्ण इत्येके [पुण] इत्यन्ये । पूलयति । [पुंस] अभिवर्द्धने (बढ़ना) पुंसयति । अपुपुंसत् [टकि] बन्धने ।टंकयति [धूस] कान्तिकरणे [इच्छाकरना] धूसयति । अदुधूसत् [धूष] इत्येके [धूश] इत्यपरे

[कीट] वरणे। कीटयति। अचिकीटत् [चूर्ण] संकोचने। चूर्णयति [पूज] पूजायाम्। अपुपूजत् [अर्क] स्तवने (स्तुति) तपनइत्येके। अर्कयति। आर्चिकत्। [शुठ] आलस्ये। अशूशुठत् [शुठि] शोषणे। शुण्ठयति [जुड़] प्रेरणे [गज, मार्ज] शब्दार्थौ। गाजयति। मार्जयति। अममार्जत् [मर्च] च। मर्चयति [घृ] प्रस्रवणे। घारयति। अजीघरत् [पचि] विस्तारवचने (विस्तार से कहना) पंचयति [तिज] निशाने (तीक्ष्णता) तेजयति [कृत] संशब्दने (कीर्त्ति) ॥४६२॥

४६३—उपधायाश्च ॥ अ० ॥ ७। १। १०१ ॥

धातु की उपधा का जो ऋकार उस को इकारादेश हो। रपर इर् होकर (१३०) सूत्र से दीर्घ होता है। कीर्त्तयति। कीर्त्तयांचकार। अचीकृतत्। अचिकीर्तत् (४६०) [वर्द्ध] छेदनपूरणयोः। वर्द्धयति [कुबि] आच्छादने। कुम्बयति [कुभि] इत्येके। कुम्भयति [लुबि, तुबि] अदर्शने। अर्दनइत्येके [ह्लप] अव्यक्तायां वाचि। ह्लापयति [क्लप] इत्येके। क्लापयति [चुटि] छेदने। चुण्टयति। अचुचुण्टत्। [इल] प्रेरणे। एलयति। ऐलिलत् ॥ ४६३ ॥

४६४—नोनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः ॥ अ० ॥ ३। १। ५१ ॥

ऊन, ध्वन, इल और अर्द इन णिजन्त धातुओं से परे च्लि के स्थान में चङ् आदेश न हो वेदविषय में। यहां (१७६) से चङ् प्राप्त था उस का निषेध है। ऐलयीत् [म्रच्छ] म्लेच्छने (अशुद्ध बोलना) म्रच्छयति। अमम्रच्छत् [म्लेच्छ] अव्यक्तायां वाचि [ब्रूस, बर्ह] हिंसायाम्। ब्रूसयति। बर्हयति [गर्ज, गर्द] शब्दे। गर्जयति। गर्दयति [गर्ध] अभिकाङ्क्षायाम्। गर्धयति [गुर्द, पुर्व] निकेतने (स्थान) गूर्दयति। पूर्वयति। अजुगूर्दत्। अपुपूर्वत् [जसि] रक्षणे। मोक्षणइत्येके। जंसयति। अजजंसत् [ईड] स्तुतौ। ईडयति। ऐडिडत् [जसु] हिंसायाम्। जासयति। अजीजसत् [पिडि] संघाते। पिण्डयति। अपिपिण्डत् [रुष] रोषे [रुट्] इत्येके [डिप] क्षेपे। अडीडिपत् [ष्टुप] समुच्छ्राये। स्तोपयति। अतुष्टुपत्। सेटः परस्मैपदिनएकशतसष्टपञ्चाशच्च। ये चुर आदि १५८ धातु परस्मैपदी हैं। यद्यपि कर्त्तृगामी क्रियाफल में इन से आत्मनेपद होते हैं तो भी अगले धातुओं की अपेक्षा में (जो नित्य आत्मनेपदी हैं) परस्मैपदी हैं [आ कुस्मादात्मनेपदिनः] अब यहां से कुस्म धातु पर्यन्त आत्मनेपदी कहते हैं अर्थात् कर्त्तृगामी क्रियाफल से अन्यत्र भी आत्मनेपद हो हों [चित] संचेतने। चेतयते। अचीचितत [दशि] दंशनदर्शनयोः (काटना और देखना) [दस, दसि] इत्येके। दासयते। दंसयते। अदीदसत। अददंसत [डप, डिप] संघाते। डाप यते। डेपयते। अडीडपत [तत्रि] कुटुम्बधारणे। तन्त्रयते। अततन्त्रत [मत्रि]

गुप्तभाषणे। मन्त्रयते। अममन्त्रत [स्पश] ग्रहणसंश्लेषणयोः। स्पाशयते। अपस्पशत [तर्ज, भर्त्स] तर्जने (डरना) तर्जयते। अततर्जत। भर्त्सयते। अबभर्त्सत [बस्त, गन्ध] अर्दने (मांगना) बस्तयते। गन्धयते [विष्क] हिंसायाम् [हिष्क] इत्येके [निष्क] परिमाणे (तोल) निष्कयते [लल] ईप्सायाम् (लेने की इच्छा] लालयते। लालयाञ्चक्रे। लालयांबभूव। लालयामास [कूण] संकोचने। कूणयते। अचुकूणत [तूण] पूरणे [भ्रूण] आशाविशङ्कयोः (इच्छा और संदेह) भ्रूणयते [शठ] श्लाघायाम् (अपनी प्रशंसा) शाठयते। शाठया शाठयांबभूव। शाठयामास। [यक्ष] पूजायाम्। यक्षयते [स्यम] वितर्के। ति। यते [गुर] उद्यमने। गोरयते। अजूगुरत् [शम, लक्ष] आलोचने (देखना) शम् को लक्षयते [कुत्स] अवक्षेपणे। कुत्सयते। अचुकुत्सत [त्रुट] छेदने। त्रोटयते। खेता) [कुट] इत्येके [गल] स्रवणे (झरना) गालयते। अजीगलत। अगालयिष्ट भ्रंश भण्डने (बहुत बोलना) भालयते [कूट] आप्रदाने। अवसादनइत्येके॥४६१॥ अचुकूटत [कुट्ट] प्रतापने (तपाना) कुट्टयते। अचुकुट्टत [वञ्चु] प्रलम्भने वञ्चयते। अववञ्चत [वृष] शक्तिबन्धने (सन्तानोत्पत्ति का सामर्थ्य) वर्षयते। ते। वृषत। अववर्षत (४६०) [मद] तृप्तियोगे। मादयते। अमीमदत [दिवु] (शब्द) देवयते। अदीदिवत [गॄ] विज्ञाने। गारयते। अजीगरत [वि ख्याननिवासेषु। वेदयते। अवीविदत [मान] स्तम्भे (रोकना) मानयते [यु] जुगुप्सायाम् (निन्दा) यावयते। अयीयवत [कुस्म] नाम्नो वा। ये कुस्म प्रातिपदिक अथवा धातु है और इस का अर्थ बुरा हंसना है। कुस्मयते। अचुकुस्मत। चितादयो द्विचत्वारिंशत्। ये चित आदि ४२ धातु पूरे हुए [चर्च] अध्ययने (पढ़ना) चर्चयति। अचचर्चत् [बुक्क] भाषणे। बुक्कयते [शब्द] उपसर्गादाविष्कारे च। चाङ्गाषणे। उपसर्ग पूर्वक शब्द धातु से परे प्रकट करने और बोलने अर्थ में णिच् होता है। परिशब्दयति [कण] निमीलने (मींचना) काणयति। काणयते॥४६४

४६५-वा०—काण्यादीनां वा॥

चङ् परक णिच् परे होते काणि आदि धातुओं की उपधा को ह्रस्व विकल्प करके हो। अचीकणत्। अचकाणत [जभि] नाशने। जम्भयति। अजजम्भत् [षूद] क्षरणे (झरना) सूदयति [जसु] ताड़ने। जासयति [पश] बन्धने। पाशयति [अम] रोगे। आमयति। आमिमत्। आमिमत [चट, स्फुट] भेदने। चाटयते। स्फोटयते अचीचटत्। अचीचटत। अपुस्फुटत्। अपुस्फुटत [घट] संघाते (समूह) घाटयति। घाटयते। अजीघटत् (हन्त्यर्थाश्च) चुरादि से पहिले नव गणों में जो हिंसार्थक धातु कहे हैं उन सब से स्वार्थ में णिच् होता है। हिंसयति। त्रिंहयति, इत्यादि

[दिवु] मर्दने ।देवयति । अदीदिवत् [अर्ज] प्रतियत्ने (सञ्चय) अर्जयति [घुषिर्] विशब्दने । घोषयति । अजूघुषत । इस धातु में इरित् करने का यह प्रयोजन है कि णिच् प्रत्यय विकल्प से होवे जब णिच नहीं होता वहां अङ् (१३८) से होजाता है । अघुषत् । अघोषीत् [आङः क्रन्द] सातत्ये ।आङ् पूर्वक क्रन्द धातु से निरन्तर अर्थ में णिच् होता है । आक्रन्दयति । आचक्रन्दत् । आचक्रदत ।[लश] शिल्पयोगे (कारीगरी में युक्त) लाशयति। लाशयते ।अलीलशत्। अलीलशत। अला यिष्यत् ।अलाशयिष्यत [तसि,भूष] अलंकारे ।तंसयति।भूषयति[अर्ह]पूजायाम्। धा यति [ज्ञा] नियोगे (नियुक्त करना) आज्ञापयति । आज्ञापयते (४६२) [भज] सूत्र से ।वणे (बहुत सुनाना) भाजयति [शृधु] प्रसहने । शर्धयति । अशीशृधत् । [वर्ह]र्धत् [यत] निकारोपस्कारयोः (स्थान और जोड़ना) यातयति [काल, गल] कुभंग्रति दने । कालयति [रघ] इत्येके [रग] इत्यन्ये [अञ्चु] विशेषणे । अञ्चयति [क्लप] [चिन्हीकरणे (चिह्नकरना) लिंगयति । अलिलिङ्गत् । अलिलिङ्गत [मुद] प्रेरणे । ए(मिलाना) मोदयति । मोदयते । अमूमुदत् । अमूमुदत । अमोदयिष्यत् । ४६४—ग्रथत [त्रस] धारणग्रहणवारणेषु । त्रासयति । अतत्रसत् [उध्रस] उञ्छे । जन,ध। उध्रासयति ।इस धातु में किन्हीं के मत में उकार की इत्संज्ञा हो जाती आदेश न ।प्रमोचनमोदनयोः। मोचयति। मोचयते[वस] स्नेहच्छेदापहरणेषु (प्रीति, ऐलयीत् [और छीनलेना)वासयति। वासयते [चर] संशये । चारयति । अचीचरत्। अचाचरत[च्यु] हसने। सहन इत्येके। च्यावयति। च्यावयते [च्युस]इत्येके । च्यो सयति।च्योसयते [भुवो] अवकल्कने(मिलाना वा विचारना)भावयति [क्लपेश्च] क्लपू धातु से भी सामर्थ्य अर्थ में णिच् प्रत्यय हो। कल्पयति[आस्वदः]सकर्म्मकात्। यहां से लेकर स्वद धातु पर्यन्त सकर्म्मक धातुओं से ही णिच् प्रत्यय कहेंगे [ग्रस] ग्रहणे । ग्रासयति । ग्रासयते [पुष] धारणे । पोषयति ।अपूपुषत् [दल] विदारणे। (खण्डकरना) [पट, पुट, लुट, तुजि, मिजि, पिजि, भजि, लघि, त्रसि, पिसि, कुसि, दसि, कुशि, घट, घटि, बृहि, बर्ह, बल्ह,गुप, धूप, विच्छ, चीव, पुथ, लोक, लोचृ, णद, कुप, तर्क, वृतु, वृधु] भाषार्थाः (बोलना) पाटयति । पोटयति । लोटयति । तुञ्जयति । लोकयति । लोचयति ॥ ४६५ ॥

४६६—नाग्लोपिशास्वृदिताम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २ ॥

णिच् प्रत्यय के परे जिन के अक् का लोप हुआ हो उन, शासु और ऋकार जिन का इत् गया हो उन धातुओं की उपधा को ह्रस्व न हो चङ् परक णिच् परे होतो । अलुलोकत् । अलुलोचत [रट , लजि, अजि, दसि, भृशि, रुशि, रुसि, शीक, नट, पुटि, जिवि, रघि,लघि, अहि, रहि, महि] च[लडि,तड,नल]

च । रोटयति । रञ्जयति । लञ्जयति । नाटयति । जिन्वयति । [पूरी] आप्यायने (बढ़ना) पूरयति [रुज] हिंसायाम् । रोजयति । अरूरुजत् [ष्वद] आस्वादने । स्वादयति । असिष्वदत् [स्वाद] इत्येके । इस में विशेष यह है कि सोपदेश के न होने से अभ्यास से परे षत्व नहीं होता । असिस्वदत् । इत्यास्वदीयाः । स्वदपर्यन्त जो सकर्मक धातु कह चुके हैं सो पूरे हुए [आधृषाद्वा] अब यहां से आगे धृष धातु पर्यन्त सब धातुओं से णिच् प्रत्यय विकल्प कर के होगा पक्ष में सब धातुओं से भ्वादि गण के प्रयोग होंगे [युज, पृच] संयमने । योजयति । योजति । अयूयुजत् । अयौक्षीत् । पर्चयति । अपीपृचत् ।अपपर्चत् । पर्चति । पर्चिता। पर्चिष्यति अपर्चीत् [अर्च] पूजायाम् । अर्चयति । अर्चति । आर्चिचत् । आर्चीत् [षह] मर्षणे (सहना) साहयति । असीसहत् । सहति । असहीत् (१६२) [ईर] क्षेपे । ईरयति । ऐरिरत् [ली] द्रवीकरणे (गीला करना) लाययति । लयति [वृजी] वर्जने । वर्जयति । वर्जति । अवीवृजत् । अववर्जत् । अवर्जीत् [वृञ्] आवरणे (ढांकना) वारयति । वरति । वरते [जॄ] वयोहानौ । जारयति । जरति । जरिता । जरीता [ज्रि] च । ज्राययति । ज्रयति । ज्रेता [रिच] वियोजनसम्पर्चनयोः (पृथक् होना और सम्बन्ध) रेचयति । रेचति । रेक्ता । अरीरिचत् । [शिष] असर्वोपयोगे (बाकी होना) शेषयति । शेषति । शेष्टा । अशीशिषत् । [तप] दाहे । तापयति । तपति । तप्ता । अतीतपत् । अताप्सीत् [तृप] तृप्तौ । तर्पयति । तर्प्ता । त्रप्ता [छृदी] सन्दीपने (प्रकाश होना) छर्दयति । छर्दति । अचीछृदत् । अचच्छर्दत् ।छर्दिष्यति । यहां इट् का विकल्प(२८७)रुधादि के साहचर्य्य से नहीं होता [चृप,छृप,दृप] सन्दीपनइत्येके ।चर्पयति ।छर्पयति ।दर्पयति। दर्पति । अदीदृपत् । अददर्पत् [दृभी] भये । दर्भयति । दर्भति । दर्भिता [दृभ] सन्दर्भे (गांठना) [छद] संवरणे । छादयति । छदति [श्रथ] विमोक्षणे । हिंसायामित्येके । श्राथयति [मी] गतौ । माययति । मयति । मेता [ग्रन्थ] बन्धने । ग्रन्थयति । ग्रन्थति [क्रथ] हिंसायाम् । स्वरितेदित्येके । यह धातु भ्वादिगण में स्वरित् है । क्राथयति । क्रथति । क्रथते [शीक] आमर्षणे (सहना) [चीक] च । चीकयति । चीकति । अचिचीकत् [अर्द] हिंसायाम् । स्वरितेत् । अर्दयति । आर्दिदत् । अर्दति । अर्दते [हिसि] हिंसायाम् । हिंसयति । हिंसति [अर्ह] पूजायाम् (आङःषद) पद्यर्थे (गति) आसादयति । आसीदति (२३१ सीद आदेश।आसत्ता । आसात्सीत् [शुन्ध] शौचकर्मणि । शुन्धयति [छद] अपवारणे स्वरितेत् (बुरेप्रकार हटाना) [जुष] परितर्कणे (इकट्ठा होना वा मारना) परितर्पण इत्यन्ये । जोषयति । जोषति [धूञ्] कम्पने ॥ ४६६ ॥

४६७—वा०—धूञ्प्रीञोर्नुग्वक्तव्यः ॥

णिच् परे हो तो धूञ् और प्रीञ् धातु को नुक् का आगम हो। धूनयति। धवति। धवते। इस वार्त्तिक को कोई आचार्य (धूञ्प्रीणोः) ऐसा पढ़ के क्र्यादिस्थ प्रीञ् धातु के साहचर्य से क्र्यादि का जो धूञ् धातु है उसी को हेतुमान् णिच् के परे नुक् कहते हैं। धावयति। [प्रीञ्] तर्पणे। प्रीणयति। प्रयति। प्रयते [श्रन्थ, ग्रन्थ] सन्दर्भे (गांठना) [आप्लृ] लम्भने (प्राप्ति करना) आपयति। आपति। आपत्। (२१७) आप्ता। स्वरितेदयमित्येके। आपते [तनु] श्रद्धोपकरणयोः (श्रद्धा और उपकार करना) उपसर्गाच्च दैर्घ्ये। विस्तार अर्थ में उपसर्ग से परे णिच् होता है। तानयति। वितानयति। तनति। वितनति। [चन] श्रद्धोपहननयोरित्येके। चानयति। चनति [वद] संदेशवचने। स्वरितेत् (संदेशा कहना) वादयति। वदति। वदते [वच] परिभाषणे (अधिक बोलना) वाचयति। वचति। वक्ता। अवीवचत्। अवाचीत् [मान] पूजायाम्। मानयति। मानति। मानिता [भू] प्राप्तावात्मनेपदी। भावयते। भवति। इस धातु से णिच् के संयोग में ही आत्मनेपद होता है अन्यत्र नहीं [गर्ह] विनिन्दने (निन्दा) गर्हयति [मार्ग] अन्वेषणे (खोजना) मार्गयति [कठि] शोके। कण्ठयति [मृजू] शौचालंकारयोः। मार्जयति। मार्जति। मार्जिता। मार्ष्टा [मृष] तितिक्षायाम्। स्वरितेत्। मर्षयति। मर्षति। मर्षते [धृष] प्रसहने। धर्षयति। धर्षति। इत्याधृषीयाः। धृषपर्यन्त धातुओं से णिच् का विकल्प कह चुके हैं सो पूरे हुए॥

अथादन्ताः। अब अदन्त धातु कहते हैं अर्थात् उन के अकार का लोप (१७२) से णिच् के परे होगा इसी से ये अग्लोपी कहाते हैं [कथ] वाक्यप्रबन्धने (प्रबन्ध से कहना) कथयति। अचकथत्। यहां अग्लोप के होने से वृद्धि नहीं होती [वर] ईप्सायाम् (मिलने की इच्छा) वरयति। अववरत् [गण] संख्याने (गणना) गणयति॥ ४६७॥

४६८—ई च गणः॥ अ०॥ ७। ४। ९७॥

गण धातु के अभ्यास को ईकारादेश और चकार से अकारादेश भी हो चङ् परक णिच् परे हो तो। अजीगणत्। अजगणत् [शठ, श्वठ] सम्यगवभाषणे (अच्छे प्रकार कहना) शाठयति। श्वाठयति। अशशठत्। अशश्वठत् [पट, वट] ग्रन्थे पटयति। वटयति [रह] त्यागे। अररहत् [स्तन, गदी] देवशब्दे। स्तनयति गदयति [पत] गतौ वा। यह धातु विकल्प करके णिजन्त है। वाऽदन्तइत्येके। कोई लोग विकल्प करके अदन्त कहते हैं। पतयति। पतति। पतयांचकार। अपतीत्। पातयति। अपीपतत् [पष] अनुपसर्गात्। यहां पूर्व से गति अर्थ की अनुवृत्ति आती है। पषयति [स्वर] आक्षेपे (निन्दा) स्वरयति [रच] प्रतियत्ने। रचयति।

[कल] गतौ संख्याने च । कलयति [चह] परिकल्कने (अभिमान और मूर्खता) चहयति । अचचहत् [मह] पूजायाम् । महयति [सार, कृप, श्रथ] दौर्बल्ये (निर्बलता) सारयति । कृपयति । श्रथयति [स्पृह] ईप्सायाम् । स्पृहयति [भाम] क्रोधे । अबभामत् । अग्लोपी होने से उपधा ह्रस्व का निषेध(४६६) [सूच] पैशुन्ये (चुगुली करना) सूचयति । असुसूचत् [खेट] भक्षणे । खेटयति । अचिखेटत् । तृतीयान्तइत्येके । कोई के मत में डकारान्त खेड धातु है । खेडयति । अचिखेडत् [खोट] इत्यन्ये [चोट] क्षेपे (निन्दा) अचुक्षोटत् [गोम] उपलेपने (लीपना) गोमयति । अजुगोमत् [कुमार] क्रीडायाम् । कुमारयति । अचुकुमारत् [शील] उपधारणे । अच्छे गुणों का अभ्यास करना) शीलयति । अशिशीलत् [साम] सान्त्वप्रयोगे । अससामत [वेल] कालोपदेशे (नियत समय का उपदेश) वेलयति [काल] इति पृथक् धातुरित्येके । कालयति । अचकालत् । [पल्पूल] लवनपवनयोः (खेत काटना और पवित्र करना) पल्पूलयति । अपपल्पूलत् [वात] सुखसेवनयोः । गतिसुखसेवनेष्वित्येके । वातयति । अववातत् [गवेष] मार्गणे (खोजना) गवेषयति । अजगवेषत् [वास] उपसेवायाम् । वासयति [निवास] आच्छादने । निवासयति । अनिनिवासत् [भाज] पृथक्कर्म्मणि (अलग करना) भाजयति । अबभाजत् [सभाज] प्रीतिदर्शनयोः । प्रीतिसेवनयोरित्येके । सभाजयति । अससभाजत् [ऊन] परिहाणे । ऊनयति । औननत् । वेद में औनयीत् (४६४) चङ् नहीं होता [ध्वन] शब्दे । अदध्वनत् । अध्वनयीत् [कूट] परितापे । कूटयति । अचुकूटत् । परिदाह इत्यन्ये [सङ्केत, ग्राम, कुण, गुण] चामंत्रणे । चकार से कूट धातु की अनुवृत्ति है । सङ्केतयति । ग्रामयति । कुणयति । गुणयति [कूण] संकोचने । अचुकूणत् [स्तेन] चौर्ये (चोरी) अतिस्तेनत् । आगर्वादात्मनेपदिनः । यहां से आगे गर्व धातु पर्यंत आत्मनेपदी हैं [पद] गतौ । पदयते । अपपदत [गृह] ग्रहणे । अजगृहत [मृग] अन्वेषणे । मृगयते [कुह] विस्मापने (सन्देह कराना) कुहयते [शूर, वीर] विक्रान्तौ (पराक्रम दिखाना) शूरयते । अशुशूरत । वीरयते [स्थूल] परिबृंहणे (मोटापन) स्थूलयते [अर्थ] उपयाच्ञायाम् (चाहना) अर्थयते । आर्तथत [सत्र] सन्तानक्रियायाम् (विस्तार) सत्रयते । अससत्रत [गर्व] माने । गर्वयते । अजगर्वत । इत्यागर्वीयाः [सूत्र] वेष्टने (लपेटना) विमोचन इत्यन्ये (छोड़ना) सूत्रयति [मूत्र] प्रस्रवणे । मूत्रयति । अमुमूत्रत् [रूक्ष] पारुष्ये (कठोरपन) रूक्षयति । अरुरूक्षत् [पार, तीर] कर्मसमाप्तौ । पारयति । तीरयति । अपपारत् । अतितीरत् [पुट] संसर्गे (मिलाना) पुटयति [धेक] दर्शन इत्येके । अदिधेकत्

[कत्र] शैथिल्ये । कत्रयति । अचकत्रत् [कर्त्त] इत्यप्येके । कर्त्तयति । प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च । प्रातिपदिक से सामन्य धातु के अर्थ में णिच् प्रत्यय हो और जैसे इष्ठन् तद्धित प्रत्यय के परे कार्य होते हैं वे णिच् प्रत्यय के परे हों जैसे । पटुमाचष्टे, पटयति । यहां इष्ठन् प्रत्यय के समान टिलोप होता है । अपपटत् । तत्करोतितदाचष्टे । जिस प्रातिपदिक से णिच् होता है वह करने वा कहने का अर्थ समझना चाहिये । मृदुं करोत्याचष्टे वा, म्रदयति । यह दूसरा सूत्र पूर्व सूत्र में कहे धात्वर्थ से संबन्ध रखता है । तेनाऽतिक्रामति । तृतीयान्त प्रातिपदिक से (अतिक्रमण) उल्लंघन अर्थ में णिच् प्रत्यय हो । अश्वेनातिक्रामति, अश्वयति । हस्तिनाऽतिक्रामति । हस्तयति, इत्यादि । धातुरूपं च । जिस प्रातिपदिक से णिच् प्रत्यय करें वह जिस धातु से बना हो उसी का रूप णिच् प्रत्यय में होजावे और चकार से अन्य कार्य भी णिच् प्रत्यय के अनुकूल होजावें । कंसवधमाष्टे, कंसं घातयति। यहां वध शब्द हन धातु से बना है वह णिच् प्रत्यय के परे धातु रूप होकर हन धातु का प्रयोग होता है इस विषय की विशेष व्याख्या आगे नाम धातु प्रक्रिया में लिखेंगे । कर्तृकरणाद्धात्वर्थे । कर्त्ता के व्यापार के लिये जो साधन हैं उस से धातु के अर्थ में णिच् प्रत्यय हो । असिना हन्ति, असयति । परशुना हश्चति, परशयति [वल्क] दर्शने । वल्कयति [चित्र] चित्रीकरणे । चित्रयति । अचिचित्रत् । कदाचिद्दर्शने किसी समय देखने अर्थ में भी चित्र धातु से णिच् होता है [अंस] समाघाते । अंसयति [वट] विभाजने [लज] प्रकाशने । लजयति [वटि, लजि] इत्येके । वंटयति । लंजयति [मिश्र] संपर्के (संयोग करना) मिश्रयति [संग्राम] युद्धे । अनुदात्तेत् । संग्रामयते । अससंग्रामत [स्तोम श्लाघायाम् । स्तोमयति [छिद्र] कर्णभेदने (कान का छेदना) छिद्रयति । करणभेदन इत्यन्ये (साधनों का भेद) [कर्ण] इतिधात्वन्तरमित्यन्ये । कर्णयति । [अन्ध] दृष्ट्युपघाते (नेत्र फटना) अन्धयति । उपसंहार इत्यन्ये (समाप्ति) [दण्ड] दण्डनिपातने (दण्डदेना) दण्डयति । अददण्डत् [अंक] पदे लक्षणे च (पग और चिन्ह) अङ्कयति । आञ्चकत् [अङ्ग] च । आञ्जगत् [सुख, दुःख] तत्क्रियायाम् । (सुख और दुःख करना) सुखयति । दुःखयति [रस] आस्वादस्नेहनयोः । रसयति [व्यय] वित्तसमुत्सर्गे (खर्च करना) व्यययति । अवव्ययत् । [रूप] रूपक्रियायाम् (रूप को देखना वा करना) रूपयति । अरुरूपत् । [छेद] द्वैधी करणे (दोभाग करना) अचिच्छेदत् [छद] अपवारण इत्येके । छदयति [लाभ] प्रेरणे (आज्ञा करना) लाभयति । अललाभत् [व्रण] गात्रविचूर्णने (घाव) व्रणयति । अवव्रणत् [वर्ण] वर्णक्रियाविस्तारगुणवचनेषु

(रंगना, फैलाव, स्तुतिकरना) वर्णयति । अववर्णत् । बहुलमेतन्निदर्शनम् । कथ आदि अदन्त धातुओं का पाठ बहुल से जानो अर्थात् बहुल कहने से अन्य धातुओं से भी यहां णिच् होता है जैसे [पर्ण] हरितभावे (हराहोना) पर्णयति । अपपर्णत् [विष्क] दर्शने (देखना) विष्कयति । अविविष्कत् [चप] प्रेरणे । पचयति [वस] निवासे । वसयति [तुत्थ] आवरणे । तुत्थयति । तथा । गण्डयति । आन्दोलयति । प्रेङ्खोलयति । विडम्बयति । अवधीरयति, इत्यादि प्रयोग भी बहुल ग्रहण से होते हैं तथा कोई ऐसा कहते हैं कि दशो गणों के धातुओं के लिये बहुल ग्रहण है इस से सौत्र लौकिक और वैदिक धातु अपठित हैं (जो दशगणों में नहीं पढ़े) उन से भी उन२गणों के प्रयोग होते हैं।और कोई के मत में नवगणों में पढे धातुओं के लिये बहुल है इस से चुरादि गण में अपठित धातुओं से भी स्वार्थ में णिच् होजाता है जैसे। अचीकरत् । और कोई के मत में चुरादि धातुओं से ही णिच् प्रत्यय बहुल कर के होता है॥ णिङङ्गान्निरसने ।अङ्गवाची प्रातिपदिक से फेंकने अर्थ में णिङ् प्रत्यय हो।ङित् करने से आत्मनेपद होता है ।हस्तौ निरस्यति, हस्तयते। पादौ निरस्यति, पादयते,इत्यादि। श्वेताऽश्वाश्वतरगालोडिताह्वरकाणामश्वतरेतकलोपश्च।श्वेताश्व,अश्वतर,गालोडित,आह्वरक,इन प्रातिपदिकों से अतिक्रमण अर्थ में णिङ् प्रत्यय और इन के अश्व, तर, इत और क कार का लोप होजावे । श्वेताश्वमाचष्टे,अतिक्रामति वा,श्वेतयते। अश्वतरमाचष्टे,अश्वयते। गालोडितं वाग्विमर्शमाचष्टे तत्करोत्यतिक्रामति वा,गालोडयते।आह्वरकं करोत्यतिक्रामति वा,आह्वरयते।पुच्छादिषु धात्वर्थ इत्येवसिद्धम्।पुच्छ आदि प्रातिपदिकों से (पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ्) इस सूत्र में णिङ् प्रत्यय कहा है वहां भी धात्वर्थ में प्रातिपदिक मात्र से कहने से णिच् होकर बहुलवचन सामर्थ्य से आत्मनेपद भी होजावेगा फिर पुच्छआदि से णिङ् कहने का कुछ प्रयोजन नहीं और यहां सिद्ध शब्द के मंगलार्थ होने से इस चुरादि गण की समाप्ति जानो । इन दश गणों में भ्वादि गण सब का उत्सर्ग है और नौ गण सब शप् के ही बाधक हैं । जब नव गणों में पढ़े भ्वादि के धातु को अवकाश मिलता है तब शप् ही होता है ।जितने धातु इन दश गणों में लिखे हैं वेही औपदेशिक हैं और इन्हीं से सब प्रकार के शब्द बनते हैं । और आगे १२ प्रक्रिया लिखेंगे उन प्रत्येक में इन सब धातुओं का काम पड़ा करेगा ॥

इति चुरादिगणः समाप्तः ॥

अथ णिजन्त प्रक्रिया ॥

४६९—तत्प्रयोजको हेतुश्च ॥ अ० ॥ १ । ४ ।५५॥

स्वतंत्र कर्त्ता को प्रेरणा करने हारे की हेतु और कर्त्ता दोनों संज्ञा हों॥४६९॥

४७०—हेतुमति च ॥ अ० ॥ ३ । १ । २६ ॥

प्रयोजक कर्त्ता के भेजने आदि व्यवहार अर्थ में धातु से णिच् प्रत्यय हो । सो दशगणों में जितने धातु लिख चुके हैं उन सब से णिच् आदि प्रक्रिया के प्रत्यय होंगे उन सब धातुओं के प्रयोग सर्वत्र नहीं लिखेंगे किन्तु जिन में कुछ विशेष कार्य सूत्रों से होते हैं वे लिखे जावेंगे । भवतीति भवन्, भवन्तं प्रेरयति, भावयति । भावयते । यहां क्रिया का फल कर्त्ता के लिये होने में आत्मनेपद (४५७) होता है । और शप् आदि की उत्पत्ति होती है । भावयांचकार । भावयाम्बभूव। भावयामास । भावयिष्यति । भावयिता । भावयिषति । भावयिषाति । भावयतु । अभावयत् । भावयेत् । भाव्यात् (१७७) णिलोप ॥ ४७० ॥

४७१—ओः पुयण्ज्यपरे ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८० ॥

अवर्ण परक पवर्ग, यण् और जकार परे हों तो सन् प्रत्यय के परे जो अङ्ग उस के अवयव अभ्यास के उवर्ण को इकारादेश हो । अबीभवत् । अपीपवत् । अमीमवत् । अयीयवत् । अरीरवत् । अलीलवत् । अजीजवत् । यहां सर्वत्र यद्यपि सन् प्रत्यय परे नहीं है तो भी (१८१)सनवद् भाव मानकर कार्य होता है ॥ ४७१ ॥

४७२—स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वा ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८१ ॥

स्रवति आदि धातुओं के अभ्यासस्थ उकार को विकल्प करके इकारादेश हो सन् प्रत्यय के परे अवर्ण परक धातु का अक्षर परे हो तो । असिस्रवत् । असुस्रवत् । अशिश्रवत् । अशुश्रवत् । अदिद्रवत् । अदुद्रवत् । अपिप्रवत् । अपुप्रवत् । अपिप्लवत् । अपुप्लवत् । अचिच्यवत् । अचुच्यवत् । अडुढौकत्। अचीचकासत् ।यहां (४६६)सर्वत्र उपधा को ह्रस्व नहीं होता । और चुरादिगण में स्वार्थ णिच् से भी हेतुमान् णिच् प्रत्यय होता है । चोरयन्तं प्रेरयति, चोरयति । अचूचुरत् ॥४७२॥

४७३—णौ च संश्चङोः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३१ ॥

सन् और चङ् जिस से परे हों ऐसा णि परे हो तो श्वि धातु को सम्प्रसारण विकल्प करके हो सम्प्रसारण और उस के आश्रय जो कार्य हैं उन के बलवान् होने से सम्प्रसारण और पूर्वरूप होकर । अशूशवत् । पक्ष में । अशिश्वियत् । आटिटत् । यहां उपधा को ह्रस्व वहिरङ्ग भी है परन्तु ओण् धातु में ऋदित् कर-

णसामर्थ्य मान द्वित्व से पहिले ही ह्रस्व हो जाता है । औन्दिदत् । आड्डिडत् । आर्चिचत् । यहां संयोग के आदि न द और र को द्वित्व (३२६) से नहीं होता । [उब्ज] आर्जवे । धातु उपदेश में दकारोपध है और (भुज न्युब्जौ) सूत्र में निपातन करने से दकार को बकार हो जाता है वह अन्तरङ्ग भी है परन्तु द्वित्व विषय में औपदेशिक का ग्रहण होने से दकारस्थानी बकार को द्वित्व नहीं होता । औब्जिजत् ॥ ४७३ ॥

४७४—रभेरशब्लिटोः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६३ ॥

रभ धातु को नुम् का आगम हो शप् और लिट् भिन्न अजादि प्रत्यय परे हों तो । रम्भयति । अररम्भत् ॥ ४७४ ॥

४७५—लभेश्च ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६४ ॥

पूर्वसूत्रोक्त कार्य लभ धातु को भी हों । लम्भयति । अललम्भत् । अजीहयत् । यहां (४२२) से चङ् के परे अभ्यास को लुत्व का निषेध हो जाता है । स्मारयति । असस्मरत् । दारयति । अददरत् । अतत्वरत् । असस्रदत् । अतस्तरत् । यहां सर्वत्र स्मृ आदि धातुओं के अभ्यास को अकारादेश (४५८) से हो जाता है ॥ ४७५ ॥

४७६—विभाषा वेष्टिचेष्ट्योः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ९६ ॥

चङ्परक णिच् परे हो तो वेष्ट और चेष्ट धातु के अभ्यास को अकारादेश विकल्प करके होवे । अववेष्टत् । अविवेष्टत् । अचचेष्टत् । अचिचेष्टत् । भ्राज आदि धातुओं को उपधा को विकल्प करके ह्रस्व (४५८) सूत्र से हो कर । अबिभ्रजत् । अबभ्राजत् । अबभसत् । अबभासत् । अबिभषत् । अबभाषत् । अदीदिपत् । अदिदीपत् । अजीजिवत् । अजिजीवत् । अपीपिडत् । अपिपीडत् । कण आदि णिजन्त धातुओं की उपधा को चङ्परक णिच् में विकल्प करके ह्रस्व (४६५) से हो जाता है (कण, रण, भण, श्रण लुप, हेठ) ये छः धातु महाभाष्य में काण्यादि गिनाये गये हैं । अचीकणत् । अचकाणत् । इत्यादि ॥ ४७६ ॥

४७७—स्वापेश्चङि ॥ अ० ॥ ६ । १ । १८ ॥

णिजन्त स्वापि धातु को संप्रसारण हो चङ् परे हो तो । स्वापयति । असूषुपत् । ॥ ४७७ ॥

४७८—शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक् ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ३७ ॥

शा आदि धातुओं को युक् का आगम होवे णिच् परे हो तो (४६२) सूत्र से पुक् प्राप्त है उस का यह अपवाद है । शाययति । छाययति । साययति । ह्वाययति । संव्याययति । वाययति । पाययति । अपीप्यत् । ह्वा धातु में विशेष है ॥ ४७८ ॥

४७९—ह्वः सम्प्रसारणम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३२ ॥

सन् और चङ् जिससे परे हों ऐसा णिच् परे हो तो ह्वा धातु को संप्रसारण हो। अजूहवत्। अजुहावत्। यहां (४६५) वार्त्तिक से उपधा ह्रस्व विकल्प होता है। पा धातु में यह विशेष है ॥ ४७९ ॥

४८०—लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्य ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४ ॥

चङ् परक णिच् परे हो तो पिबति अङ्ग की उपधा का लोप और अभ्यास को इकारादेश हो। अपीप्यत्। अर्पयति। ह्रेपयति। व्लेपयति। रेपयति। क्नोपयति। क्ष्मापयति। स्थापयति। दापयति। धापयति। घ्रापयति। यहां सर्वत्र (४६२) सूत्र से णिच् के परे पुक् होता है। स्था धातु में यह विशेष है ॥ ४८० ॥

४८१—तिष्ठतेरित् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५ ॥

चङ् परक णिच् परे हो तो स्था अङ्ग की उपधा को इकारादेश हो। अतिष्ठिपत्। अतिष्ठिपताम्। घ्रा धातु में यह विशेष है ॥ ४८१ ॥

४८२—जिघ्रतेर्वा ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६ ॥

चङ् परक णिच् परे हो तो घ्रा धातु की उपधा को इकारादेश विकल्प करके हो। अजिघ्रिपत्। अजिघ्रपत्। कर्त्तयति। इत्यादि। ऋवर्णोपध धातुओं में (४६०) सूत्र से विकल्प करके ऋत् हो जाता है। अचीकृतत्। अचकर्त्तत्। कीर्त्तयति। अचीकृतत्। अचिकीर्त्तत्। वर्त्तयति। अवीवृतत्। अववर्त्तत्। अमीमृजत्। अममार्जत्। पाति धातु में यह विशेष है ॥ ४८२ ॥

४८३—वा०—पातेर्लुग्वक्तव्यः ॥

णिच् परे हो तो पाति धातु को लुक् आगम हो। पालयति ॥ ४८३ ॥

४८४—वो विधूनने जुक् ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ३८ ॥

णिच् परे हो तो कम्पाने अर्थ में वा धातु को जुक् आगम हो। वाजयति। और जहां कम्पाना अर्थ नहीं है वहां। केशान् वापयति ॥ ४८४ ॥

४८५-लीलोर्नुग्लुकावन्यतरस्यां स्नेहविपातने ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ३९ ॥

णिच् परे हो तो चिकनाई गिराने अर्थ में ली और ला धातु को नुक् और लुक् का आगम यथासंख्य और विकल्प करके हो। घृतं विलीनयति। घृतं विलालयति। जहां स्नेह विपातन नहीं है वहां। विलाययति। विलापयति। इस सूत्र में ईकारान्त ली धातु * का ग्रहण इसलिये है कि जिस पक्ष में (४००) सूत्र से आकारादेश होता है वहां नुक् का आगम न हो ॥ ४८५ ॥

* ईकारान्त कहने से प्रयोजन यह है कि (ली – ई) ऐसा भाष्यकारने प्रश्लेष करके व्याख्यान दिखाया है

४८६—लियः सम्माननशालीनीकरणयोश्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७० ॥

सत्कार तिरस्कार और ठगने अर्थ में णिजन्त ली धातु से आत्मनेपद हो। जटाभिरालापयते। अर्थात् जटाओं से सत्कार को प्राप्त होता है। श्येनो वर्तिकामुल्लापयते। बाज पखेरू बतक का तिरस्कार करता है। कस्त्वामुल्लापयते। कौन तुझ को ठगता है ॥ ४८६ ॥

४८७—बिभेतेर्हेतुभये ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५६ ॥

णिच् प्रत्यय परे हो तो हेतु से भय अर्थ में भी धातु के एच् को विकल्प से आकार आदेश हो ॥ ४८७ ॥

४८८—भीस्म्योर्हेतुभये ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६८ ॥

हेतु भय अर्थ में णिजन्त भी और स्मि धातु से आत्मनेपद हो। आकारादेश पक्ष में। मुण्डो भापयते। और यहां आकारादेश न हुआ वहां यह विशेष है ॥ ४८८ ॥

४८९—भियो हेतुभये षुक् ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ४० ॥

णिच् परे हो तो हेतुभय अर्थ में भी धातु को षुक् आगम हो। जटिलो भीषयते। जटाधारी डरपाता है। यहां भी धातु में महाभाष्यकार ने ईकार का प्रश्लेष माना है इस से आकारान्त भी धातु को षुक् नहीं होता है। स्मि धातु में यह विशेष है ॥ ४८९ ।

४९०—नित्यं स्मयतेः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५७ ॥

णिच् परे हो तो हेतु भय अर्थ में स्मि धातु को नित्य ही आकारादेश हो। जटिलो विस्मापयते। और जहां हेतुभय अर्थ नहीं है वहां। कुञ्चिकयैनं विस्मापयति। यहां कूंची से भय है किन्तु हेतु प्रयोजक कर्त्ता से नहीं है ॥ ४९० ॥

४९१—स्फायो वः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ४१ ॥

णिच् परे हो तो स्फायि अङ्ग को वकारादेश हो। स्फावयति ॥ ४९१ ॥

४९२—शदेरगतौ तः ॥ अ ॥ ७ । ३ । ४२ ॥

णिच् परे हो तो गति भिन्न अर्थ में वर्तमान शद अङ्ग को तकारादेश हो। पुष्पाणि शातयति। और गति अर्थ में तो। गोपालो गाः शादयति। दयति। यहां चलाना अर्थ है ॥ ४९२ ॥

४९३—रुहः पोऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ४३ ॥

णिच् परे हो तो रुह् अङ्ग को पकारादेश विकल्प करके होवे। रोपयति। रोहयति ॥ ४९३ ॥

४८४—क्रीङ्जीनां णौ ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४८ ॥

णिच् प्रत्यय परे होतो क्री, इङ् और जि धातुओं के एच् को आकारादेश हो। आकारादेश हो कर पुक् (४६२) क्रापयति। अध्यापयति। जापयति। इङ् धातु में कुछ विशेष है ॥ ४८४ ॥

४८५—णौ च सँश्चङोः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५१ ॥

सन् और चङ् जिस से परे हों ऐसा णिच् परे होतो इङ् धातु को गाङ् आदेश विकल्प कर के होवे। अध्यजीगपत्। अध्यापिपत् ॥ ४८५ ॥

४८६—सिध्यतेरपारलौकिके ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४९ ॥

णिच् परे होतो सांसारिक पदार्थों की सिद्धि करने अर्थ में वर्त्तमान जो सिध्यति धातु है उस के एच् को आकारादेश हो। अन्नं साधयति। अलौकिकग्रहण इस लिये है कि। तपस्तापसं सेधयति। चापयति। स्फारयति। यहां (४६३) सूत्र से आकारादेश होता है ॥ ४८६ ॥

४८७—प्रजने वीयतेः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५५ ॥

णिच् परे होतो गर्भधारण कराने अर्थ में वर्त्तमान वी धातु के एच् को आकारादेश विकल्प करके हो। पुरोवातो गाः प्रवापयति। प्रवाययति वा। गूहयति (२३५) सूत्र से उपधा को ऊकार होता है ॥ ४८७ ॥

४८८—दोषो णौ ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ९० ॥

णिच् परे होतो दुष् धातु के उपधा ओकार को ऊकारादेश हो। दूषयति॥४८८॥

४८९—वा चित्तविरागे ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ९१ ॥

णिच् परे होतो चित्त बिगाड़ने अर्थ में दुष् धातु के ओकार को विकल्प कर के ऊकारादेश हो। चित्तं दूषयति। दोषयति वा कामः। जितने मित् संज्ञक धातु भ्वादि और चुरादि गण में लिख चुके हैं उन सब को उपधा को ह्रस्व (४६१) से होता है जैसे। घटमानं प्रयोजयति, घटयति। जनयति। जरयति। रञ्जधातु में यह विशेष है ॥ ४८९ ॥

५००—वा०—रञ्जेर्णौ मृगरमणे ॥

णिच् परे होतो मृगरमण अर्थ में रञ्ज धातु के उपधा नकार का लोप हो। मृगान् रजयति। अन्यत्र। रंजयति वस्त्राणि। गच्छन्तं प्रयोजयति गमयति। अजीगमत्। ज्वलयति। ज्वालयति ॥ ५०० ॥

५०१—णौ गमिरबोधने ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४६ ॥

णिच् परे हो तो अबोधन अर्थ में इण् धातु को गमि आदेश हो । यन्तं प्रयोजयति गमयति । बोधन अर्थ में तो । प्रत्याययति । इक् धातु को भी इण्वत् कार्य (३४७) वार्त्तिक से होता है । अधिगमयति ॥ ५०१ ॥

५०२—हनस्तो चिण्णलोः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ३२ ॥

चिण् और णल् भिन्न ञित् णित् प्रत्यय परे हों तो हन् धातु को तकारादेश हो । घातयति । यहां (२०४) से कुत्व हो जाता है । ईर्ष्ययति ॥ ५०२ ॥

५०३—वा०—ईर्ष्यतेस्तृतीयस्य द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

ईर्ष्य धातु के द्वित्व प्रसंग में तृतीय व्यंजन वा तृतीय एकाच् अवयव को द्वित्व आदेश हो । ऐर्ष्यियत् । यहां तृतीय के कहने से यकार को द्वित्व नहीं होता है । नाथयति । अननाथत् ॥ ५०३ ॥

इति णिजन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ सन्नन्तप्रक्रिया ॥

५०४—धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७ ॥

जिस का इच्छा कर्म्म और इच्छा के साथ कर्त्ता हो उस धातु से इच्छा अर्थ में विकल्प करके सन् प्रत्यय हो । पठितुमिच्छति, पिपठिषति । कर्म्मग्रहण इसलिये है कि । गमनेनेच्छति । यहां करण से न हो । समान कर्त्ता इस लिये कहा है कि । देवदत्तस्य भोजनमिच्छति यज्ञदत्तः । विकल्पग्रहण से एक पक्ष में वाक्य भी होता है । पिपठिषांचकार । पिपठिषिता । पिपठिषिष्यति । पिपठिषिषति । पिपठिषिषाति । पिपठिषति । पिपठिषाति । पिपठिषतु । अपिपठिषत् । पिपठिषेत् । पिपठिष्यात् । अपिपठिषीत् । अपिपठिषिष्यत् । अद् धातु को घस्लृ आदेश (३०२) से होता है । अत्तुमिच्छति । जिघत्सति । ईर्ष्य धातु के तृतीय भच् को द्वित्व होता है । ईर्ष्यिषिषति ॥ ५०४ ॥

५०५—रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च ॥ अ० ॥ १ । २ । ८ ॥

रुदादि धातुओं से परे जो सन् और क्त्वा सो कित्वत् हों । रुरुदिषति । विविदिषति । मुमुषिषति । इन में कित् मान कर गुणादेश नहीं होता ॥ ५०५ ॥

५०६—सनि ग्रहगुहोश्च ॥ अ० ॥ ७ । २ । १२ ॥

ग्रह गुह और उगन्त धातुओं से परे जो सन् उस को इट् का आगम न हो । जिघृक्षति । यहां (२८९) से संप्रसा० होता है । जुघुक्षति (२८३) से संप्र० ॥ ५०६ ॥

५०७—किरश्च पञ्चभ्यः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७५ ॥

कॄ गॄ दृङ् धृङ् और प्रच्छ इन पांच धातुओं से परे सलादि सन् आर्द्धधातुक को इट् का आगम हो । पिपृच्छिषति । चिकरिषति । जिगरिषति । जिगलिषति । दिदरिषते । दिधरिषते ॥ ५०७ ॥

५०८—इको झल् ॥ अ० ॥ १ । २ । ९ ॥

इगन्त से परे जो झलादि सन् वह कित् हो । भवितुमिच्छति बुभूषति । पुपूषति । पुपूषते । लुलूषति । लुलूषते ॥ ५०८ ॥

५०९—हलन्ताच्च ॥ अ० ॥ १ । २ । १० ॥

इक् समीपवर्त्ती हल से परे झलादि सन् कित् हो । तितिक्षते । जुघुक्षति । बिभित्सति । इग् ग्रहण इस लिये है कि । यियक्षते । यहां कित् के न होने से संप्रसारण न हुआ झल् इस लिये है कि । विवर्त्तिषते । हल् ग्रहण यहां जातिपरक है इस से । तितृक्षति । तितृंहिषति ॥ ५०९ ॥

५१०—अज्झनगमां सनि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १६ ॥

अजन्त, हन्, और अजादेश गम धातु को दीर्घ हो झलादि सन् परे होतो जेतुमिच्छति जिगीषति । चिकीषति । चिचीषति । यहां (४१७) से कुत्वविकल्प० हन्तुमिच्छति, जिघांसति ॥ ५१० ॥

५११—सनि च ॥ अ० ॥ २ । ४ ॥ ४७ ॥

सन् परे होतो इण् धातु को गमि आदेश अबोधन अर्थ में हो जिगमिषति । बोधन अर्थ में प्रतीषिषति । अधिजिगमिषति (३४७) वा० से इक् को इण्वद्भाव ॥ ५११ ॥

५१२—इङश्च ॥ अ० ॥ २ । ४ ।४८ ॥

सन् परे हो तो इङ् धातु को गमि आदेश हो । अधिजिगांसते । यहां (५०८) से दीर्घ होगया । अजादेश ग्रहण से गम् धातु को दीर्घ नहीं होता है इस से संजिगंसते । यहां उपधा दीर्घ न हुआ ॥ ५१२ ॥

५१३—रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च ॥ अ० ॥ १ । २ । २६ ॥

इकार और उकार जिस की उपधा और हल् आदि तथा रल् अन्त में हो उस से परे सेट् क्त्वा और सन् कित् संज्ञक हों । दिद्युतिषते । दिद्योतिषते । रुरुचिषते । रुरोचिषते । लिलिखिषति । लिलेखिषति । रल्ग्रहण इस लिये है कि । दिदेविषति । इ,उ,उपधा में इस लिये कहा कि। विवर्त्तिषते ।हलादि इस लिये है कि ।एषिषिषति । यहां नित्यद्वित्व को भी बाध कर पूर्व गुणादेश होता है॥५१३॥

५१४—सनीवन्तर्द्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम्

॥ अ० ॥ ७ । २ । ४९ ॥

इवन्त, ऋधु, भ्रस्ज, दम्भु श्रि, स्वृ, यु, ऊर्णु, भर, ज्ञपि, और सन् इन अङ्गों से परे वलादि सन् आर्द्धधातुक को विकल्प कर के इट् का आगम हो । दिदेविषति । दुद्यूषति । सिषिविषति । सुस्यूषति । अर्दिधिषति । अनिट् पक्ष में ॥ ५१४ ॥

५१५—आप्ज्ञप्यृधामीत् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५५ ॥

सकारादि सन् प्रत्यय परे हो तो आप्, ज्ञपि और ऋध अङ्गों के अच् को ईकारादेश होवे ॥ ५१५ ॥

५१६—अत्र लोपोऽभ्यासस्य ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५८ ॥

इस (अ० ॥ ७ । ४ । ५४ ॥) से लेकर (अ० ॥ ७ । ४ । ५८ ॥) इस सूत्र पर्य्यन्त जिन धातुओं से सन् होता है उन के अभ्यास का लोप होवे। आप्तुमिच्छति, ईप्सति । अर्धितुमिच्छति, ईर्त्सति । यहां धकार को चर्त्व और ईकार को रपर भाव होता है । बिभ्रज्जिषति । बिभर्जिषति (४२७) रेफ और उपधा को रम् आगम का विकल्प० । अनिट् पक्ष में । बिभ्रक्षति । बिभर्क्षति ॥ ५१६ ॥

५१७—दम्भ इच्च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५६ ॥

सकारादि सन् परे हो तो दम्भ धातु के अच् को इकार और ईकार होवे। पूर्व सूत्र से अभ्यास लोप और (५०९) सूत्र में हल् करके हल् जाति का ग्रहण होने से सन् को कित्त्व हो कर नकारलोप (१३९) होता है। धिप्सति। धीप्सति। सेट् पक्ष में। दिदम्भिषति । शिश्रीषति। शिश्रयिषति । सुस्वूर्षति (३८०) ऋको उर् आदेश । सिस्वरिषति । यियविषति (४७१) अभ्यास को इत्। युयूषति । कित्व (५०८) हो कर दीर्घ (५१०) होजाता है । ऊर्णुनविषति (३२७) ङित्व का विकल्प । ऊर्णुनुविषति । ऊर्णुनूषति (५१४) सूत्र में भर कहने से भ्वादिगण के भृज् धातु का ग्रहण है । बिभरिषति । बुभूर्षति (३८०) जिज्ञपयिषति । ज्ञीप्सति (५१५) से ईकार और अभ्यास का लोप (५१६) सिसनिषति। सिषासति (३९४) अकारादेश० ॥ ५१७ ॥

५१८—वा०–तनिपतिदरिद्राणामुपसंख्यानम् ॥

तन, पत, और दरिद्रा धातुओं से परे जो वलादि सन् आर्द्धधातुक उस को विकल्प से इट् का आगम होवे ॥ ५१८ ॥

५१९—तनोतेर्विभाषा ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १७ ॥

सन् परे हो तो तन अङ्ग की उपधा को विकल्प करके दीर्घ होवे । तितनिषति । तितांसति । तितंसति ॥ ५१९ ॥

५२०—वा०—आशङ्कायामुपसंख्यानम् ॥

संदेह करने अर्थ में धातु से सन् प्रत्यय हो । पतितुमिच्छति, कूलम् । पिपतिषति श्वामुमूर्षति ॥ ५२० ॥

५२१—सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस् ॥ अ० ॥ ७।४।५४॥

सकारादि सन् परे हो तो मी, मा, घु, रभ, लभ, शक, पत, और पद इन धातुओं के अच् को इस् आदेश होवे । पिस्त्+सन्+तिप्=पित्सति (२१०) से सलोप और (५१६) अभ्यास का लोप हो जाता है । दिदरिद्रिषति । दिदरिद्रासति (मी) से डुमिञ् और मीञ् दोनों का ग्रहण है । मित्सति (२१६) इस् के स को तकार (मा,माने) मित्सति । माङ्, मेङ् । मित्सते । दो, दाण् । दित्सति । देङ्, दित्सते । दाञ्, दित्सति । दित्सते । धेट्, धित्सति । धाञ्, धित्सति । धित्सते । रभ, रिप्सते । लभ, लिप्सते । शक्लृ, शिक्षति । शक, शिक्षति । शिक्षते । पद, पित्सते ॥ ५२१ ॥

५२२—वा०—इस्त्वं सनि राधो हिंसायाम् ॥

सन् परे हो तो हिंसा अर्थ में वर्त्तमान राध धातु के अच् को इस् आदेश और अभ्यास का लोप होवे । प्रतिरित्सति । हिंसा अर्थ से अन्यत्र । आरिरात्सति ॥ ५२२ ॥

५२३—मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५७ ॥

सकारादि सन् परे हो तो अकर्मक मुच धातु को विकल्प से गुण और अभ्यास का लोप होवे प्रयोजन यह है कि जो (५०९) सूत्र से कित्व नित्य प्राप्त है उस का विकल्प हो जावे । मोक्षते । मुमुक्षते वा वत्सः स्वयमेव । अकर्मक ग्रहण इस लिये है कि । मुमुक्षति वत्सं देवदत्तः । यहां गुण न होवे । वृतु आदि चार धातुओं से परे सादि आर्द्धधातुक को इट् का निषेध (२२२) विवृत्सति । (२२१) परस्मैपदविधि । निनर्त्तिषति । निनृत्सति (३९७) से इट् का विकल्प । चिकर्त्तिषति । चिकृत्सति । चिचर्त्तिषति । चिचृत्सति । चिच्छर्दिषति । चिच्छृत्सति ॥ ५२३ ॥

५२४—इट् सनि वा ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४१ ॥

वृङ्, वृञ् और ॠकारान्त धातुओं से सन् को इडागम विकल्प कर के हो । तितरिषति । तितरीषति (२६४) इट् को दीर्घ विकल्प । अनिट् पक्ष में । तितीर्षति । विवरिषति । विवरीषति । वुवूर्षति । विवरिषते । विवरीषते । वुवूर्षते । वृङ् । विवरिषते । विवरीषते । वुवूर्षते । इत्यादि ॥ ५२४ ॥

५२५—स्मिपूङ्रञ्ज्वशां सनि ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७४ ॥

सन् परे होतो स्मिङ्, पूङ्, ऋ, अञ्जू, अशू, इन धातुओं को इट् का आगम होवे। स्मेतुमिच्छति, सिस्मयिषते। पिपविषते। ओःपुयण्ज्यपरे। सूत्र से अभ्यास को इकारादेश होता है। पिपावयिषति। अरिरिषति। अञ्जिजिषति। अशिशिषते। पूञ् पुपूषति। उच्छ, उचिच्छिषति। चुरादिगण तथा अन्य सब धातु हेतुमान् णिजन्तों से भी इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय होता है। जैसे। पाठयितुमिच्छति, पिपाठयिषति। अध्यापयितुमिच्छति, अधिजिगापयिषति (४८५) इङ् को गाङ् आदेशवि०। अध्यापिपयिषति। शिश्रावयिषति। शुशावयिषति (४७३) श्व को सम्प्रसारण०। जुहावयिषति। सम्प्रसारण०। पुस्फारयिषति। चुच्यावयिषति। यियावयिषति। बिभावयिषति। रिरावयिषति। लिलावयिषति। जिजावयिषति। पु,यण्,जि ग्रहण इस लिये है कि। नुनावयिषति। अकार परे इसलिये कहा है कि। बुभूषति (४७२) सूत्र से स्रव आदि के अभ्यास को इत्त्व का विकल्प हो कर। सिस्रावयिषति। सुस्रावयिषति। इत्यादि। तुण्टूषति। सुष्वापयिषति। सिषाधयिषति। तिष्ठासति। सुषुप्सति। प्रतीषिषति। अधीषिषति। एधितुमिच्छति, एदिधिषति। इस प्रक्रिया में भी सामान्य और विशेष सूत्रों में सब धातुओं का संबन्ध कर के प्रयोग व्यवस्था जानो। ॥ ५२५ ॥

इति सन्नन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ यङन्तप्रक्रियाप्रारम्भः

५२६—धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । २२ ॥

क्रिया के बार बार, शीघ्र वा निरन्तर अर्थ में हलादि एकाच् धातुओं से यङ् प्रत्यय होवे (१६६) से धातु संज्ञा और (२६८) से द्वित्व हो कर ॥ ५२६ ॥

५२७—गुणो यङ्लुकोः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८२ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे होतो इगन्त अङ्ग के अभ्यास को गुणादेश हो। पुनः पुनरतिशयेन भृशं वा भवतीति बोभूयते। बोभूयांचक्रे। बोभूयांबभूव। बोभूयामास। बोभूयिता। बोभूयिष्यते। बोभूयिषते। बोभूयिषातै। बोभूयताम्। अबोभूयत। बोभूयेत। बोभूयिषीष्ट। अबोभूयिष्ट। अबोभूयिष्ट। अबोभूयिष्यत।

धातुग्रहण आर्द्धधातुक संज्ञा होने के लिये है। एकाच् ग्रहण इसलिये है कि। पुनः पुनर्जागर्त्ति। यहां यङ् न हो। हलादि ग्रहण इस लिये है कि भृशमीक्षते। जिस धातु * के यङन्त प्रयोग से शीघ्र आदि अर्थ विदित नहीं होते हैं उस से यङ् प्रत्यय नहीं होता जैसे। भृशं शोभते। भृशं रोचते ॥ ५२७ ॥

५२८—वा०—सूचिसूत्रिमूत्र्यट्यर्त्यशूर्णोतीनां ग्रहणं यङ्विधावनेकाज्झलाद्यर्थम् ॥

यङ्विधान में अनेकाच् और हलादि धातुओं के अर्थ सूचि, सूत्रि, मूत्रि, अटि, अर्त्ति, अशू, ऊर्णु इन धातुओं का ग्रहण कर्त्तव्य है अर्थात् (५२६) सूत्र में एकाच् और हलादिग्रहण से सूचि आदि धातुओं से यङ् नहीं प्राप्त है सो हो। सोसूच्यते। सोसूत्र्यते। मोमूत्र्यते ॥ ५२८ ॥

५२९—यस्य हलः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४९ ॥

आर्द्धधातुक विषय में हल् से परे यकार का लोप हो। सोसूच्य+आम्+कृ+एश्=सोसूचाञ्चक्रे। सोसूचिता। सोसूत्रिता। मोमूत्रिता ॥ ५२९ ॥

५३०—दीर्घोऽकितः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८३ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हो तो अङ्ग के अकित् अभ्यास को दीर्घ हो। अट् आदि अजादि धातुओं में यङन्त द्वितीय एकाच् अवयव व्य मात्र को द्वित्व होता है। अटाट्यते। अटाटाञ्चक्रे। अटाटिष्यते ॥ ५३० ॥

५३१—यङि च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ३० ॥

यङ् परे हो तो ऋ और संयोगादि ऋकारान्त धातु को गुणादेश होवे। अरार्यते। अशाश्यते। अराराञ्चक्रे। अरारिता। अशाशिता। ऊर्णोनूयते। बेभिद्यते। बेभिदिता। यहां यकार लोप को स्थानिवत् मानने से उपधा को गुण नहीं होता ॥ ५३१ ॥

५३२—नित्यं कौटिल्ये गतौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । २३ ॥

कुटिलता अर्थ में गत्यर्थक धातुओं से नित्य ही यङ् प्रत्यय हो। अर्थात् क्रियासमभिहार अर्थ में जो यङ् (५२६) कहा है वहां उसी अर्थ में लकारार्थ प्रक्रिया में पाक्षिक लोट् भी होगा परन्तु गत्यर्थ धातुओं से कुटिलगति में ही यङ् ही होगा लोट् नहीं। कुटिलं व्रजति, वाव्रज्यते। वावज्यते ॥ ५३२ ॥

---

* तत्रावश्यमभिधानमाश्रयितव्यं क्रियमाणेपि ह्येकाज्झलादि ग्रहणे यत्रैवैकाचो हलादेश्चोत्पद्यमानेन यङार्थस्याभिधानं न भवति। न भवति तत्रोत्पत्तिः। तद्यथा। भृशं शोभते। भृशं रोचते। महाभाष्य०। अ०। ३ पा० १ आ० २ ॥

५३३—लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यो भावगर्हायाम्

॥ अ० ॥ ३ । १ । २४ ॥

धात्वर्थ की निन्दा में लुप् आदि धातुओं से यङ् प्रत्यय हो। लुप आदि से क्रियासमभिहार में यङ् नहीं होता किन्तु निन्दा में ही होता है। गर्हितं लुम्पति, लोलुप्यते। निन्दितं सीदति,सासद्यते ॥ ५३३ ॥

५३४—चरफलोश्च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८७ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हों तो चर और फल धातु के अभ्यास को नुक् आगम होवे ॥ ५३४ ॥

५३५—वा०—अनुस्वारागमः पदान्तवच्च ॥

नुक् के स्थान में अनुस्वार आगम कहो और उस को पदान्त के समान कार्य हों॥५३५

५३६—उत्परस्यातः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८८ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हो तो चर और फल धातु के अभ्यास से परे अकार को उकारादेश हो। चञ्चूर्यते। चंचूर्यते (१८७) दीर्घ। पम्फुल्यते। पंफुल्यते ॥५३६॥

५३७—जपजभदहदशभञ्जपशां च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८६ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हो तो जप, जभ, दह, दश, भञ्ज और पश धातुओं के अभ्यास को नुक् आगम होवे। कुत्सितं जपति, जञ्जप्यते। जंजप्यते। जंजभ्यते। दंदह्यते। दंदश्यते। पश धातु सौत्र है किसी गण का नहीं। पंपश्यते ॥५३७॥

५३८—ग्रो यङि ॥ अ० ॥ ८ । २ । २० ॥

यङ् परे हो तो गृ धातु के रेफ को लकारादेश हो। गर्हितं गिरति, जेगिल्यते। अतिशयेन पुनः पुनर्वा ददाति, देदीयते। देधीयते। मेमीयते। तेष्ठीयते। जेगीयते। पेपीयते। जेहीयते। अवसेषीयते। यहां सर्वत्र (३४६) से हल् से पूर्व ईकारादेश होता है। शोशूयते। शेश्वीयते। यहां (२८४) से संप्रसारण विकल्प०। अतिशयेन प्यायते, पेपीयते। यहां (१८३) सूत्र से प्यायी धातु को पी आदेश०। सास्मर्यते। सास्वर्यते (२५४) से ऋकार को गुण होता है ॥ ५३८ ॥

५३९—रीङ् ऋतः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २७ ॥

कृत् और सार्वधातुक भिन्न यकारादि और च्वि प्रत्यय परे हो तो ऋकारान्त अङ्ग को रीङ् आदेश हो। चेक्रीयते। जेह्रीयते। देध्रीयते। वेवीयते ॥ ५३९ ॥

५४०—न कवतेर्यङि ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६३ ॥

यङ् परे हो तो कुङ् धातु के अभ्यास को चुत्व न हो अतिशयेन कवते, कोकूयते। अतिशयेन कौति, कुवति वा चोकूयते ॥ ५४० ॥

५४१—कृषेश्छन्दसि ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६४ ॥

यङ् परे हो तो वेद विषय में कृष् धातु के अभ्यास को चुत्व न हो । करीकृष्यते यज्ञकुणपः । अन्यत्र लोक में । चरीकृष्यते कृषीवलः ॥ ५४१ ॥

५४२—नीग्वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दाम् ॥ अ० । ७ । ४ । ८४ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे होंतो वञ्चु, स्रंसु ध्वंसु भ्रंसु, कस, पत, पद, और स्कंद के अभ्यास को नीक् आगम हो । वनीवच्यते (५३०) इस सूत्र में अकित् कहने से दीर्घ नहीं होता । सनीस्रस्यते । दनीध्वस्यते । बनीभ्रस्यते । यहां (१३८)से न लोप० । चनीकस्यते । पनीपत्यते । पनीपद्यते ।चनीस्कद्यते ॥ ५४२ ॥

५४३—नुगतोनुनासिकान्तस्य ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८५ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हो तो अनुनासिकान्त अङ्ग के अकारान्त अभ्यास को नुक् आगम हो । तंतन्यते । जंगम्यते । यंयम्यते । यँय्यम्यते । तपरग्रहण से पूर्वदीर्घ अभ्यास को नुक् नहीं होता । यथा । बाभाम्यते । जाजायते । जञ्जन्यते । यहां (१८५) सूत्र से आकारादेश विकल्प० ॥ ५४३ ॥

५४४—हन्तेर्हिंसायां यङि घ्नीभावो वक्तव्यः ॥

यङ् प्रत्यय परे हो तो हिंसा अर्थ में हन् धातु को घ्नी आदेश हो । अतिशयेन हन्ति, जेघ्नीयते । हिंसा से अन्यत्र । जंघन्यते ॥ ५४४ ॥

५४५—रीगृदुपधस्य च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ९० ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हों तो ऋदुपध धातु के अभ्यास को रीक् का आगम हो । अतिशयेन वर्त्तते, वरीवृत्यते । वरीवृध्यते । नरीनृत्यते । यहां (४५२) इस सूत्र से णत्व का निषेध होता है । चलीक्लृप्यते । यहां (२२३) से लत्व० ॥ ५४५ ॥

५४६—रीगृत्वत इति वक्तव्यम् ॥

(रीगृदु०) यहां ऋकारवान् धातु के अभ्यास को रीक् कहना चाहिये । पुनः पुनर्वृश्चति, वरीवृश्च्यते । परीपृच्छ्यते ॥ ५४६ ॥

५४७—स्वपिस्यमिव्येञां यङि ॥ अ० ॥ ६ । १ । १९ ॥

यङ् परे होतो स्वपि, स्यमि, और व्येञ् धातु को संप्रसारण हो । सोसुप्यते । सेसिम्यते । वेवीयते ॥ ५४७ ॥

५४८—न वशः ॥ अ० ॥ ६ । १ । २० ॥

यङ् परे हो तो वश धातु को संप्रसारण न हो । वावश्यते ॥ ५४८ ॥

५४९—चायः की ॥ अ० ॥ ६ । १ । २१ ॥

यङ् परे हो तो चाय् धातु को की आदेश हो । अतिशयेन चायते, चेकीयते॥५४९॥

५५०—ई घ्राध्मोः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ३१ ॥

यङ् परे हो तो घ्रा, ध्मा धातुओं को ईकारादेश हो। अतिशयेन पुनःपुनर्वा जिघ्रति, जेघ्रीयते । देध्मीयते ॥ ५५० ।

५५१—अयङ् यि क्ङिति ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २२ ॥

यकारादि कित् ङित् प्रत्यय परे होंतो शीङ् धातु को अयङ् आदेश हो । भृशं शेते, शाशय्यते । डोढौक्यते । तोत्रौक्यते । यहां अभ्यास को ह्रस्व हो कर गुण हो जाता है । अतिशयेन शोणति, पिप्रोषते ॥ ५५१ ॥

इति यङन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ यङ्लुगन्तप्रक्रियारम्भः ॥

५५२—यङोऽचि च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७४ ॥

अच् प्रत्यय परे हो तो यङ् का लुक् हो । तथा वेद में बहुल करके लुक्

५५३—न धातुलोप आर्द्धधातुके ॥ अ० ॥ १ । १

आर्द्धधातु निमित्तमानकर जहां धात्ववयव लोप हुआ हो वहां वृ गुण वृद्धि न हों । अतिशयेन यो लोलूयते, स लोलुवः । पोपुवः । दनीध्वंसः (दाधर्त्ति)इस अगले सूत्र में (तेतिक्ते) इस प्रयोग में यद्यपि मान कर आत्मनेपद सिद्ध है तथापि आत्मनेपद निपातन से यङ अन्यत्र यङ्लुगन्त धातुओं मे परस्मैपद होता है ॥ ५५३ ॥

५५४—यङो वा ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ९४ ॥

यङ् से परे हलादि पित् सार्वधातुक को ईट् का आगम विकल्प कर शाकुनिको लालपीति । दुंदुभिर्वावदीति। त्रिधाबद्धोवृषभो रोरवीति। यहां अन्तरङ्ग मानकर द्वित्व से पूर्व यङ् लुक् होता है । प्रत्यय लक्षण से द्वित्व लट्आदि लकारों की उत्पत्ति, परस्मैपद, और विकरणों का उत्सर्ग शप् विकरण होता है ॥ ५५४ ॥

५५५—दाधर्त्तिदर्धर्त्तिदर्धर्षिबोभूतुतेतिक्तेऽलर्ष्यापनीफणत्संसनिष्यदत्करिक्रत्कनिक्रदद्भरिभ्रद्दविध्वतोदविद्युतत्तरित्रतःसरीसृपतंवरीवृत्तन्मर्मृज्यागनीगन्तीतिच ॥अ०॥ ७।४।६५॥

दाधर्त्ति, दर्धर्त्ति, दर्धर्षि, बोभूतु, तेतिक्ते, अलर्षि, आपनीफणत्, संसनिष्यदत्, करिक्रत्, कनिक्रदत्, भरिभ्रत्, दविध्वतः, दविद्युतत्, तरित्रतः, सरीसृपतं, वरीवृजत्, मर्मृज्य, और आगनीगन्ति ये अष्टादश वेद में निपातन हैं दाधर्त्ति, यहां धारि वा धृञ् धातु से श्लु वा यङ् लुक् में अभ्यास को दीर्घ और णिच्लोप निपातन है। दर्धर्त्ति, में श्लु प्रत्यय के परे अभ्यास को रुक् आगम तथा। दर्धर्षि, में भी। बोभूतु, में यङ् लुगन्त भू धातु से लोट् प्रथमैकवचन में गुण का निषेध नि०। यद्यपि (८१) सूत्र से गुण का निषेध हो जाता। फिर यहां गुण के अभाव निपातन से। बोभवीति, आदि में (८१) सूत्र से गुण का निषेध नहीं होता। तेतिक्ते, में यङ्-लुगन्त तिजधातु से आत्मनेपद निपातन किया है। अलर्षि, यहां जुहोत्यादि ऋ धातु से लट् मध्यमैकवचन में अभ्यास के हलादिःशेष रेफ को लत्व नि०। यहां सिप् निर्देश उपलक्षण मात्र है। इस से। अलर्त्ति दक्षः। इत्यादि में उक्त कार्य्य होता है। आपनीफणत्, में आङ् पूर्वक यङ् लुगन्त फण धातु के अभ्यास को नीक् आगम शतृ प्रत्यय में निपातन है। संसनिष्यदत्, में सम्पूर्वक यङ्लुगन्त स्यन्दू को शतृ परे हो तो अभ्यासको निक् आगम निपातन है। यहां सम्पूर्व प्रतंत्र है इस से। आसनिष्यदत्। यहां भी उक्त कार्य्य होता है। करिक्रत्। हन्ति, जेघ्न लुगन्त क्रञ्धातु के अभ्यासको चुत्व न होना तथा उस के ककार को रिक् ०। कनिक्रदत्, में लुङ् में क्रन्द से परे च्लि को अङ् आदेश, धातु द्विर्वचन, चुत्व न होना और निक् आगम नि०। भरिभ्रत् में यङ्लुगन्त भृञ् यङ् भ्यास को जश्त्व और इत्व का होना और रिक् आगम नि०। दविध्वतः, में हो। अतिश ध्वृ धातु के अभ्यास को विक् आगम और ऋलोप शतृपूर्वक जस् विभक्ति के सूत्र से षत्व १०। दविध्वतोरश्मयः सूर्य्यस्य। दविद्युतत्, में यङ्लुगन्त द्युतधातु के अभ्यास रण निषेध अकारादेश और विक् आगम निपातन है। तरित्रतः, में तृ (बीरश्लु विकरण से शतृ प्रत्यय के परे षष्ठी के एकवचन में अभ्यास को रिक् आगम नि०। सरीसृपतम्, में सृप धातु को श्लु विकरण में शतृ प्रत्यय के परे द्वितीया के एकवचन में अभ्यास को रीक् आगम नि०। वरीवृजत् में वृजी धातु को श्लु विकरण से शतृप्रत्यय के परे अभ्यास को रीक् आगम नि०। मर्मृज्य, में मृज धातु से लिट् णल् परे हो तो अभ्यास को रुक्, धातु को युक् नि०। यहां मृज को लघूपध के अभाव से वृद्धि नहीं होती। आगनीगन्ति, में आङ् पूर्व गम धातु को श्लु विकरण से लट् में अभ्यास को चुत्व निषेध और नीक् आगम निपातन किया है। वक्ष्यन्ती वेदागनीगन्ति कर्णम् (दाध०) इस सूत्र में इति शब्द पढ़ने से इस प्रकार के

अन्य प्रयोगों का भी संग्रह होता है (२६१) इस सूत्र में हुश्नु,ग्रहण का मुख्य प्रयोजन यही है कि यङ्लुगन्त में अजादि सार्वधातुक के परे हुन को यणादेश न हो।इस से हु,श्नु ग्रहण ज्ञापक है कि लोक में भी सब लकारों के विषय में यङ्लुक् होता है। यथा अतिशयेन पुनःपुनर्वा भिनत्ति, बेभिदीति यहां (३९०) से गुणनि०। बेभेत्ति।बेभित्तः। बेभिदति। बेभिदीषि। बेभेत्सि। बेभित्थः। बेभित्थ। बेभिदीमि। बेभेद्मि । बेभिद्वः। बेभिद्मः। बेभेदांचकार। बेभेदामास। बेभेदांबभूव। बेभेदिता। बेभेदिष्यति। बेभेदिषति। बेभेदिषाति। बेभिदति। बेभिदाति। बेभिदीतु। बेभेत्तु। अबेभिदीत्। अबेभेत्। अबेभेः। यहां (३५१) से रुत्व विकल्प होता है। अबेभिदीः। बेभिद्यात्। बेभिद्यात्। बेभिद्यास्ताम्। अबेभेदीत्। अबेभेदिष्टाम्। अबेभेदिष्यत्। चेच्छिदीति। चेछेत्ति। इत्यादि। बोभवीति। बोभोति। बोभूतः। बोभुवति। बोभवांचकार। बोभविता। अबोभवीत्। अबोभूताम्। अबोभवुः। यहां (३६२) से गुणादेश०। बोभूयात्। बोभूयाताम्। बोभूयास्ताम्। अबोभूवीत् (८९) से सिच् लुक् तथा (२२) से नित्यत्व मानकर वुक्। अबोभोत्। अबोभूताम्। अबोभवुः। अबोभविष्यत्। अतिशयेन स्पर्द्धते, पास्पर्द्धीति। पास्पर्द्धि। पास्पर्द्धः। पास्पर्द्धति। पास्पर्त्सि। पास्पर्द्धि। यहां (३००) से हि को धि हुआ है। अपास्पर्त्। अपास्पाः। यहां सिप् के परे (३५१) से रुत्व विकल्प हुआ। अपास्पर्त्। अपास्पर्द्। अतिशयेन गाधते, जागाद्धि। जागाधीति। जागात्ति। अजागात्। अजागाः। यहां (२०४) से भष्०। पुनः पुनर्नाथते, नानात्ति। नानाथीति। नानात्तः। चोस्कुन्दीति। चोस्कुन्ति। अचोस्कुन्। अचोस्कुन्ताम्। अचोस्कुन्दुः। अतिशयेन मोदते, मोमुदीति। मोमोदांचकार। मोमोदिता। अमोमुदीत्। अमोमोत्। अमोमुत्ताम्। अमोमुदुः। अमोमुदीः। अमोमोः। अमोमोत्। अमोमोदीत्। पुनः २ कूर्दते, चोकूर्दीति। चोकूर्त्ति। चोकूर्त्तः। चोकूर्दति। अचोकूर्त्। अचोकूर्दीत्। अचोकूः। अचोखूः। अजोगूः। अतिशयेन वञ्चति, वनीवङ्क्ति। वनीवञ्चीति। वनीवक्तः। वनीवचति। अवनीवञ्चीत्। अवनीवन्। अतिशयेन गच्छति, जंगमीति जंगन्ति। जंगतः। यहां (२०३) से अनुनासिक लोप०। जंगमति। जंगन्मि। जंगन्वः। यहां (१७२) से म को न आ०। जंगमिता। यहां एकाच् से निषेध होने से इट्निषेध नहीं होता। जंगहि। यहां (मो नो धातोः) इस सूत्र से मकार को नकार होता है। अजंगमीत्। अजंगमिष्टाम्। यहां लृदित् कार्य (च्लि) को अङ् आदेश नहीं होता। भृशं हन्ति, जंघनीति। जंघन्ति। जंघतः। जंघ्नति।

जंघनिता। जंघहि। अजंघनीत्। अजंघन्। अघ्यात्। यहां द्वित्व आदेश होकर अघ आदेश होता है फिर आदेश स्थानिवत् मान कर अनभ्यास निषेध से अघादेश को द्वित्व नहीं होता है। आङ् पूर्व से (आङो यमहनः) से आत्मनेपद होगा। आजंघते। इत्यादि। अतिशयेन चरति, चंचुरीति। चञ्चूर्त्ति। चञ्चूर्त्तः। चञ्चुरति। अचञ्चुरीत्। अचञ्चूः। चङ् खनीति। चङ् खन्ति। चङ् खातः। यहां (३८४) सूत्रसे आकारादेश। चङ्खाहि। अचंङ्खनीत्। अचङ्खन्। अचङ्खाताम्। अचङ्खनुः। चंखन्यात्। चाङ्खायात्। यहां (१८५) से आकारादेश विकल्प। अचंखनीत्। अतिशयेन यौति, योयोति। योयवीति। यहां (उतोवृद्धि०) इस सूत्र में (नाभ्यस्ता०) इस सूत्र की अनुवृत्ति होने से वृद्धि न हुई। अयोयवीत्। अयोयोत्। योयुयात्। आशीर्लिङ् में (१६०) दीर्घ। योयूयात्। अयोयावीत्। नोनवीति। नोनोति। अतिशयेन जहाति, जाहेति। जाहाति। जाहीतः। यहां (३८३) से ईकारादेश०। जाहति। जाहेषि। जाहासि। जाहीथः। यहां। जहातेश्च, आच्चहौ, लोपोयि, घुमास्था०, एर्लिङि ये पांच सूत्र शुद्धगण के निर्देश से प्रवृत्त नहीं होते हैं जाहीहि। अजाहेत्। अजाहात्। अजाहीताम्। अजाहुः। जाहीयात्। जाहायात्। अजाहासीत्। अजाहासिष्टाम्। अजाहिष्यत्। अतिशयेन स्वपिति, सास्वपीति। सास्वप्ति। यहां यङ् का लुक् होने से (नलुमतांगस्य) इस निषेध से (स्वपिस्यमि०) यह संप्रसारण और शुद्धगण के उच्चारण से (रुदादिभ्यः०) यह इट् नहीं होता। सास्वप्तः। सास्वपति। असास्वपीत्। असास्वप्। सास्वप्यात्। आशीर्लिङ् में। सासुप्यात्। यहां (वचिस्वपि०) इस से संप्रसारण होता है। असास्वापीत्। असास्वपीत्॥ ५५५॥

५५६—रुग्रिकौ च लुकि ॥ अ० ॥ ७। ४। ९१ ॥

यङ् लुक् परे होतो ऋकारोपध धातु के अभ्यास को रुक् रिक् और रीक् आगम हों। अतिशयेन वर्त्तते, वर्वर्त्तीति। वरिवृतीति। वरीवृतीति। वर्वर्त्ति। वरिवर्त्ति। वरीवर्त्ति। वर्वृत्तः। वर्वृतति। वर्वर्त्तामास। वर्वर्त्तिता। वर्वर्त्तिष्यति। वर्वृतति। वरिवृतति। वरीवृतति। वर्वृताति। वरिवृताति। वरीवृताति। वर्वर्त्तिषति। वरिवर्त्तिषति। वरीवर्त्तिषति। वर्वर्त्तिषाति। वरिवर्त्तिषाति। वरीवर्त्तिषाति। अवर्वृतीत्। अवर्वर्त्। अवर्वाः। अवर्वर्त्तीत्। अतिशयेन गर्हते, जर्गर्हीति। जर्गर्ढि। जर्गढः। जर्गर्हति। अजर्घट्। अजर्घड्। अतिशयेन गृह्णाति, जाग्रहीति। जाग्राढि। तस् आदि में ङित् मान कर संप्रसारण होता है। वह बहिरङ्ग है। इस से यहां अभ्यास को रुक् आदि नहीं होते। जागृढः। जागृहति। जाग्रहीषि। जाग्रह्मि। जाग्रहिता। यहां (ग्रहोलिटिदीर्घः) यह नहीं होता। क्यों

यहां एकाच् को अनुदात्त है । जर्गधीति । जर्गर्द्धि । जर्गृद्धः । जर्गृधति । जर्गधीषि । जर्घर्त्सि । अजर्गधीत् । अजघर्त् । यहां इट् के अभावपक्ष में गुण, हल्ङ्यादिलोप, भष्भाव, जश्त्व और चर्त्व होता है । अजर्गृद्धाम् । अजर्घाः । अजर्गधीत् । अजर्गर्धिष्टाम् । अजर्गधिषुः ॥ ५५६ ॥

५५७—ऋतश्च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ९२ ॥

यङ्लुक् परे हो तो ऋकारान्त धातु के अभ्यास को रुक् रिक् और रीक् का आगम हों । अतिशयेन करोति, चर्कर्त्ति । चरिकर्त्ति । चरीकर्त्ति । चर्करीति । चरिकरीति । चरीकरीति । चर्कृतः । चर्क्रति । चर्करांचकार । चर्करिता । चर्करिष्यति । चर्करतु । अचर्करीत् । अचर्कः । चर्क्रियात् । चर्क्रियात् । यहां (२१८) से ऋ को रिङ् हो गया । अचर्कारीत् । ऋ धातु को यङ्लुक् में द्वित्व हुए पीछे (उरत्) इससे अभ्यास को अत्व, रपरत्व, हलादिशेष, रुक्, और रिक् तथा रीक् के स्थान में (१५३) इयङ् होता है । अतिशयेन ऋच्छति, अररीति । अरियरीति । अरियरीति । अरर्त्ति । अरियर्त्ति । अर्ऋतः । अरियृतः । झि में यण् और रुक् के रेफ को "रोरि" कर के लोप होता है "रोरि" लोप करने में अजादेश स्थानिवत् नहीं होता । क्योंकि इस का पूर्वत्रासिद्धीय * कार्य्य में निषेध है । आरति । अरियृति । अररांचकार । आरिता । आरियात् । अरिरियात् । अरीरियात् (ऋतश्च) यहां तपर करण से कॄ, तॄ आदि दीर्घ ॠकारान्तों में रुक् रिक् रीक् नहीं होते । अतिशयेन किरति, चाकर्त्ति । चाकरीति । पुनः पुनस्तरति, तातरीति । तातर्त्ति । तातीर्त्तः । तातिरति । तातरिता । तातरीता । तातीर्ष्टि । अतातरीत् । अतातः । अतातीर्ताम् । अतातरुः । अतातारीत् । अतातारिष्टाम् । इत्यादि । पुनःपुनः पृच्छति, पाप्रच्छीति । पाप्रष्टि । पाप्रष्टः । पाप्रछति । पाप्रश्मि । पप्रश्नः । यहां (छ्वोः शूडनुनासिकेच) इस सूत्र से छ को श् होगया है । अतिशयेन ह्वयते, जाह्वयीति । जाह्वति । जाहूतः (लोपोव्यो०) इस से यलोप० । जाह्वयति । जाह्वयीषि । जाह्वसि । जाह्वामि । यहां (२८) से दीर्घ । पुनः पुनर्ह्वयति, जाह्वयीति जाह्वर्ति । जाह्वतः । जाह्वयति । जाह्वर्ष्टि । अजाहः । अजाह्वयुः । ॥ ५५७ ॥

५५८—ज्वरत्वरश्रिव्यविमवामुपधायाश्च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २० ॥

क्विप्, झलादि और अनुनासिकादि प्रत्यय परे हों तो ज्वरादि धातुओं की उपधा और वकार को ऊठ् आदेश हो । अतिशयेन ज्वरति, जाज्वरीति ।

* वा०—पूर्वत्रासिद्धीये नस्थानिवत् । संधि० ६७ इस वार्त्तिक से स्थानिवत् का निषेध है ।

जाजूर्ति । जाजूर्त्तः । मात्वरीति । तातूर्त्ति । अतिशयेन स्त्रीव्यति, सेस्त्रिवीति । सेस्त्रूति । सेस्त्रूतः । आश्चीति । श्चौति । श्चौतः । मामवीति । मामोति । मामूतः । मामवति । मामोषि । मामोमि । मामावः । मामूमः । मामोतु । मामूतात् । मामूहि । मामवानि । अमामोत् । अमामोः । अमामवम् । अमामाव । अमामूम । अतिशयेन तूर्वति, तातूर्वीति ॥ ५५८ ॥

५५९—राल्लोपः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २१ ॥

रेफ से परे छकार और वकार का लोप हो क्विप्, झलादि और अनुनासिकादि प्रत्यय परे हों तो । तोतोर्ति । तातूर्त्तः । तातूर्वति । तोधोर्त्ति । दोदोर्त्ति । दोधोर्त्ति । अतिशयेन मूर्च्छति, मोमोर्त्ति । मोमूर्त्तः । अतिशयेन वेत्ति, वेविदीति । वेवित्तः । वेविदति । अवेविदीत् । अवेवेत् । अवेवेः ॥ ५५९ ॥

इति यङ्लुगन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ नामधातुप्रक्रियाप्रारम्भः

५६०—सुप आत्मनः क्यच् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८ ॥

इच्छा करने वाले के संबन्धी इच्छा के कर्मरूप सुबन्त से इच्छा अर्थ में विकल्प करके क्यच् प्रत्यय हो ॥ ५६० ॥

५६१—क्यचि च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ३३ ॥

क्यच् परे हो तो अवर्णान्त अङ्ग को ईकारादेश हो । यह सूत्र (१६०) सूत्र का अपवाद है । आत्मनः पुत्रमिच्छति, । पुत्रीयति । यहां (सुपोधातुप्रातिपदिकयोः) सूत्र से पुत्रशब्द की द्वितीया विभक्ति का लुक् हो जाता है । आत्मनो गामिच्छति, गव्यति (सन्धि० १५७) सूत्र से वान्तादेश । आत्मनो नावमिच्छति, नाव्यति । यहां पदान्त (५६२) के न होने से अवर्णपूर्वक वकार का लोप (संन्धि० १७०) सूत्र से नहीं होता । गव्याञ्चकार । गव्यिता । नाव्याञ्चकार । नाव्यिता । यहां सन्निपातपरिभाषा के आश्रय से क्यच् के यकार का लोप नहीं होता ॥ ५६१ ॥

५६२—नः क्ये ॥ अ० ॥ १ । ४ । १५ ॥

क्यच् क्यङ् और क्यष् परे हों तो नकारान्त की ही पदसंज्ञा हो अन्य की नहीं । आत्मनो राजानमिच्छति, राजीयति । यहां पदसंज्ञा होने से राजन् शब्द के नकार का लोप होता है । राजीयाञ्चकार । राजीयिता । राजीयिष्यति । राजीयिषति । राजीयिषाति । राजीयतु । अराजीयत् । राजीयेत् । राजीय्यात् । अराजीयीत् । अराजीयिष्यत् ॥ ५६२ ॥

५६३—प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ॥ अ० ॥ ७ । २ । ९८ ॥

प्रत्यय और उत्तर पद परे हों तो एकवचन में वर्त्तमान मपर्यन्त युष्मद् अस्मद् शब्दों को त्व,म आदेश हों । आत्मनस्त्वामिच्छति, । त्वद्यति । मद्यति । एकवचन के कहने से । युष्मद्यति । अस्मद्यति । यहां त्व,म आदेश नहीं होते । आत्मनो गिरमिच्छति, गीर्यति । (१८७) दीर्घादेश० पूर्यति । दिवमिच्छति, दिव्यति । धातु को दीर्घ कहा दिव् शब्द के इकार को नहीं होता । अध इच्छति, अधस्यति । आत्मनः कर्त्तारमिच्छति, कर्त्रीयति (२८) ऋ को रीङ् आदेश० ॥ ५६३ ॥

५६४—क्यच्व्योश्च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १५२ ॥

क्य और च्वि प्रत्यय परे हों तो हल् से परे अपत्य सम्बन्धी यकार का लोप हो । आत्मनो गार्ग्यमिच्छति, गार्गीयति । वात्सीयति । आत्मनो वाचमिच्छति, वाच्यति । आत्मनः कविमिच्छति, कवीयति (१६०) दीर्घ । समिधमिच्छति, समिध्यति ॥ ५६४ ॥

५६५—क्यस्य विभाषा ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५० ॥

हल् से परे जो क्य प्रत्यय का यकार उस का विकल्प कर के लोप हो आर्द्धधातुक विषय में । समिधाञ्चकार । यहां प्रथम अकारलोप (१७२) से होकर उस को स्थानिवत् मान के लघूपध गुण नहीं होता । समिध्याञ्चकार । समिधिता । समिध्यिता । इत्यादि (५६०) सूत्र में सुप्ग्रहण इस लिये है कि वाक्य में क्यच् न हो जैसे । महान्तं पुत्रमिच्छति । और आत्म ग्रहण इस लिये है कि । राज्ञः पुत्रमिच्छति । यहां क्यच् न हो ॥ ५६५ ॥

५६६—वा०—क्यचि मान्ताऽव्ययप्रतिषेधः ॥

मकारान्त और अव्यय शब्दों से क्यच् प्रत्यय न हो । इदमिच्छति । किमिच्छति । उच्चैरिच्छति । नीचैरिच्छति । स्वरिच्छति । इत्यादि ॥ ५६६ ॥

५६७—अशनायोदन्यधनायाबुभुक्षापिपासागर्द्धेषु ॥

अ० ॥ ७ । ४ । ३४ ॥

बुभुक्षा, पिपासा अभिलाषा, इन अर्थों में अशनाय, उदन्य और धनाय ये यथासंख्य करके तीनों निपातन हैं । अशनाय, यहां अशन शब्द को अत्व क्यच् प्रत्यय के परे निपातन है । आत्मनोऽशनमिच्छति, अशनायति । बुभुक्षा से अन्यत्र । आत्मनोऽशनं संघातमिच्छति, अशनीयति । उदन्य, यहां उदक शब्द को उदन् आदेश निपातन है । उदकमिच्छति, उदन्यति । पीने की इच्छा से अन्यत्र । उदकीयति ।

धनाय, यहां धन शब्द को आकारादेश निपातन है। धनायति। अभिलाषा से अन्यत्र। धनीयति ॥५६७॥

५६८—न छन्दस्यपुत्रस्य ॥ अ० । ७ । ४ । ३५ ॥

वेद विषय में क्यच् परे हो तो पुत्रभिन्न अवर्णान्त अङ्ग को ईत्व न हो। मित्रयति। पुत्र शब्द के ग्रहण से यहां न हुआ। पुत्रीयन्तः सुदानवः। अत्यल्पमिदमुच्यते (अपुत्रस्येति, अपुत्रादीनामितिवक्तव्यम्) इहापि यथास्यात् जनीयन्तोऽन्वग्रवः॥५६८॥

५६९—क्याच्छन्दसि ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७० ॥

वेद में क्य प्रत्ययान्त धातुओं से तच्छील, तद्धर्म, तत्साधुकारि इन अर्थों में उ प्रत्यय हो। मित्रयुः। संस्वेदयुः। देवाञ्जिगाति सुम्नयुः ॥ ५६९ ॥

५७०—दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यति रिषण्यति ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ३६ ॥

वेद में क्यच् प्रत्ययान्त दुरस्यु, द्रविणस्यु, वृषण्यति, रिषण्यति, ये शब्द निपातन किये हैं। दुरस्यु, यहां दुष्ट शब्द को दुरस् आदेश नि०। अवियोना दुरस्युः। दुष्टीयति। यह लोक में होता है। द्रविण, शब्द को द्रविणस् भाव निपातन है। द्रविणस्युर्विपन्यया। द्रविणीयति। यह लोक में होता है। वृष शब्द को वृषण निपात०। वृषण्यति। लोक में। वृषीयति। रिष्ट शब्द को रिषण् भाव निपात०। रिषण्यति। लोक में। रिष्टीयति ॥ ५७० ॥

५७१—अश्वाघस्यात् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ३७ ॥

वेद विषय में क्यच् परे हो तो अश्व और अघ अङ्ग को आकारादेश हो। अश्वायन्तोमघवन्। मा त्वा वृका अघायवो विदन्। लोक में अश्वीयति। अघीयति। यह अश्व और अघ अङ्ग का आत्व विधान ज्ञापक है कि इस प्रकरण में (१६०) इस से दीर्घ नहीं होता ॥ ५७१ ॥

५७२—देवसुम्नयोर्यजुषि काठके ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ३८ ॥

यजुर्वेद की काठक शाखा में देव और सुम्न अङ्ग को आकारादेश हो। क्यच् परे हो तो। देवायन्तो यजमानाय। सुम्नायन्तो हवामहे। यजुर्ग्रहण से। देवाञ्जिगाति सुम्नयुः। यहां नहीं होता। काठकग्रहण से। सुम्नयुरिदमासीत् ॥ ५७२ ॥

५७३—कव्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ३९ ॥

वेद विषय में क्यच् परे हो तो कवि, अध्वर और पृतना अङ्ग का लोप हो। कव्यन्तः सुमनसः। अध्वर्यन्तः। पृतन्यन्तस्तिष्ठन्ति ॥ ५७३ ॥

५७४—अश्वक्षीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचि ॥
अ० ॥ ७ । १ । ५१ ॥

क्यच् परे हो तो अश्व, क्षीर, वृष, लवण इन शब्दों को आत्मप्रीति अर्थ में असुक् आगम हो । अश्वस्यति वडवा । क्षीरस्यति माणवकः । आत्मनो वृषमिच्छति, वृषस्यति गौः । लवणमिच्छति, लवणस्यत्युष्ट्रः । आत्मप्रीति अर्थ से अन्यत्र। अश्वीयति । क्षीरीयति । वृषीयति । लवणीयति । इत्यादि में नहीं होता ॥ ५७४ ॥

५७५—वा०—अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायाम् ॥

अश्वक्षीर० सूत्र में जो असुक् कहा है वह अश्व और वृष शब्दों से मैथुन की इच्छा में हो । उदाहरण पूर्वोक्त जानो ॥ ५७५ ॥

५७६—वा०—क्षीरलवणयोर्लालसायाम् ॥

क्षीर और लवण शब्द से लालसा (अत्यन्त भोजन की इच्छा) में असुक् होता है । यहां भी उदाहरण पूर्वोक्त जानो ॥ ५७६ ॥

५७७ वा०—अपर आह—सर्वप्रातिपदिकेभ्यो लालसायामिति वक्तव्यम् ॥

किन्हीं लोगों के मत में क्यच् परे होतो सब प्रातिपदिकों को असुक् हो । आत्मनो दधीच्छति, दध्यस्यति । मध्वस्यति । इत्यादि ॥ ५७७ ॥

५७८—वा०—अपर आह-सुग्वक्तव्यः ॥

कोई आचार्य कहते हैं कि क्यच् के परे सब प्रातिपदिकों को सुक् का आगम हो । दधिस्यति । मधुस्यति ॥ ५७८ ॥

५७९-काम्यच्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९ ॥

सुबन्त कर्म से आत्मा की इच्छा में काम्यच् प्रत्यय होवे । आत्मनः पुत्रमिच्छति, पुत्रकाम्यति । वस्त्रकाम्यति । यह सूत्र (५६०) सूत्र से पृथक् इस लिये किया है कि इस से अगले सूत्रों में क्यच् की अनुवृत्ति जावे काम्यच् की नहीं । यशस्काम्यति । सर्पिष्काम्यति । और काम्यच् प्रत्यय मान्त तथा अव्ययों से भी होता है । इदङ्-काम्यति । किङ्काम्यति । स्वःकाम्यति । उच्चैःकाम्यति ॥ ५७९ ॥

५८०-उपमानादाचारे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १० ॥

आचार अर्थ में उपमान वाची सुबन्त कर्म से विकल्प करके क्यच् प्रत्यय हो । आचाररूप क्रिया प्रत्यय का अर्थ होने से उसी की अपेक्षा से उपमान को कर्मत्व

बनता है। पुत्रमिवाचरति, पुत्रीयति शिष्यम्। मित्रमिवाचरति, मित्रीयति शत्रुम्। इत्यादि ॥ ५८० ॥

५८१-वा०-अधिकरणाच्च ॥

अधिकरणवाची प्रातिपदिक से भी आचार अर्थ में क्यच् प्रत्यय होवे। कुट्यामिवाचरति, कुटीयति प्रासादे। प्रासादीयति कुट्याम्। पर्यङ्कीयति मञ्चके ॥५८१॥

५८२—कर्त्तुः क्यङ् सलोपश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११ ॥

आचार अर्थ में उपमानवाची कर्त्ता सुबन्त से विकल्प करके क्यङ् प्रत्यय और सकार का लोप हो। जो सकारान्त शब्द हैं उन के लिये सकार का लोप कहा है॥५८२॥

५८३—वा०—सलोपो वा ॥

सकारान्त शब्दों के सकार का लोप विकल्प करके होवे ॥ ५८३ ॥

५८४—वा०—ओजसोऽप्सरसोर्नित्यम् ॥

ओजस् और अप्सरस् शब्द के सकार का लोप नित्य हो। श्येन इवाचरति, श्येनायते काकः। यहां सर्वत्र क्यङ् के ङित्व से आत्मनेपद होता है। पण्डित इवाचरति, पण्डितायते मूढः। राजेवाचरति, राजायते। पय इवाचरति, पयायते। पयस्यते। तक्रम् (५८२) सलोप। यशायते। यशस्यते। विद्वायते। विद्वस्यते। त्वद्यते। मद्यते। ओज इवाचरति, ओजायते। अप्सरायते। हंसायते। सारसायते। इत्यादि में अन्त्यसकार के न होने से सलोप नहीं होता ॥ ५८४ ॥

५८५—वा०—आचारेऽवगल्भक्लीबहोडेभ्यः क्विब् वा ॥

अवगल्भ, क्लीब और होड शब्दों से आचार अर्थ में विकल्प करके क्विप् प्रत्यय होवे। पक्ष में क्यङ् होता है। क्विप् का सबलोप होकर। अवगल्भते। अवगल्भायते। विक्लीबते। विक्लीबायते। विहोडते। विहोडायते। अवगल्भाञ्चक्रे। अवगल्भिष्यते। इत्यादि। इन शब्दों में क्विबन्तों से आत्मनेपद प्राप्त नहीं इस लिये अवगल्भादि शब्दों को भाष्यकार ने अनुदात्तेत् माना है ॥ ५८५ ॥

५८६-वा०-अपरआह-सर्वप्रातिपदिकेभ्य आचारे क्विब्वा वक्तव्यः॥

किन्ही के मत में सब प्रातिपदिकों से आचार अर्थ में क्विप् होता है। अश्व इवाचरति, अश्वति। गर्दभति। अश्वायते। गर्दभायते। अ इवाचरति, अति। अतः। अन्ति। लिट् में। औ। अतुः। उः। मालेवाचरति, मालाति। मालाञ्चकार। अमालात्। अमालासीत्। कविरिवाचरति, कवयति। कवीयात्। अकवयीत्। विरिवाचरति, वयति। विवाय। विव्यतुः। अवयीत्। ओरिव, अवति।

शिश्राय । शिश्रियतुः । शिश्रियुः । श्रीयात् । पितेवाचरति, पितरति । पित्रियात् (२३९) से रिङ् आदेश । भूरिवाचरति, भवति । बुभाव । अभावीत् । द्रुरिवाचरति, द्रवति । अद्रावीत् ॥ ५८६ ॥

५८७—अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १५ ॥

क्विप् और झलादि कित् ङित् परे हों तो अनुनासिकान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ हो । इदमिवाचरति, इदामति । राजेवाचरति, राजानति । पन्था इवाचरति, पथीनति । ऋभुक्षीणति । द्यौरिवाचरति, द्यवति । यहां वकार को ऊठ्, यणादेश और अवादेश गुण होता है ॥ ५८७ ॥

५८८—क्यङ्मानिनोश्च ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ३६ ॥

क्यङ् प्रत्यय और मानिन् शब्द परे हो तो ऊङ् रहित भाषितपुंस्क स्त्रीलिङ्ग शब्द को पुंवद्भाव होवे । एनी—इवाचरति, एतायते । श्येनी—इवाचरति, श्येतायते । यहां स्त्री प्रत्यय के निमित्त से हुए तकार को नकार आदि कार्य भी निवृत्त होजाते हैं । कुमारीवाचरति, कुमारायते । हरिणीवाचरति, हरिणायते । गुर्वीवाचरति, गुरूयते । पट्वी मृद्व्याविवाचरति, पट्वीमृदूयते ॥ ५८८ ॥

५८९—न कोपधायाः ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ३७ ॥

ककारोपध स्त्री को पुंवद्भाव न हो क्यङ् और मानिन् शब्द परे हों तो । पाचिका इवाचरति, पाचिकायते । मद्रिकायते । इत्यादि ॥ ५८९ ॥

५९०—भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२ ॥

भू धातु के अर्थ में अभूततद्भावविषयक भृशादिशब्दों से क्यङ् प्रत्यय होवे । और भृशादिकों में जो हलन्त हैं उन के अन्त्य हल् का लोप हो । अभृशो भृशो भवति, भृशायते । इस सूत्र में च्वि प्रत्ययान्त के निषेध से अभूततद्भाव समझा जाता है । अभूततद्भाव ग्रहण से । क्व दिवा भृशा भवन्ति । यहां क्यङ् नहीं होता । सुमनस्, सुमनायते । सकार लोप । सुमनायांचक्रे । सुमनायिता । सुमनायिष्यते । सुमनायिषीष्ट । सुमनायिषाते । सुमनायताम् । असुमनायत । यहां मनस् शब्द मात्र से क्यङ् प्रत्यय है इस से मनस् के पूर्व अट् होता है । क्योंकि चुरादिगण पठित (संग्राम युद्धे *) यह नियमार्थ है कि सोपसर्ग प्रातिपदिक से जो क्यजादि प्रत्यय हों तो संग्राम ही से हों औरों से न हों ॥ ५९० ॥

* अवश्यं संग्रामयतेः सोपसर्गादुत्पत्तिर्वक्तव्या । असंग्रामयत शूरइत्येवमर्थम् । तन्नियमार्थं भविष्यति संग्रामयतेरेव सोपसर्गान्नान्यस्मात् सोपसर्गादिति ॥ महाभाष्य ३ । १ । २२ ॥

५९१—लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३ ॥

भू धातु के अर्थ में अभूततद्भावविषयक लोहितादि और डाच् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से क्यष् प्रत्यय हो ॥ ५९१ ॥

५९२—वा क्यषः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ९० ॥

क्यष् प्रत्ययान्त धातु से परस्मैपद विकल्प करके हो। अलोहितो लोहितो भवति, लोहितायते। लोहितायति। अपटपटा पटपटा भवति, पटपटायति। पटपटायते ॥ ५९२ ॥

५९३—वा०—लोहितडाज्भ्यः क्यष्वचनं भृशादिष्वितराणि॥

(५९१) सूत्र से जो क्यष् प्रत्यय कहा है वह लोहित और डाच् प्रत्ययान्तों से ही कहना चाहिये किन्तु लोहितादि गण के नील आदि शब्द भृशादिकों में पढ़ने चाहिये। अनीलो नीलो भवति, नीलायते पटः। यहां क्यषन्त से जो उभयपद होता है वह न हुआ। अलोहिनी लोहिनी भवति,लोहिनीयति। लोहिनीयते। यहां "प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्„ इस परिभाषा से लोहिनी शब्द का भी ग्रहण होता है ॥ ५९३ ॥

५९४—कष्टाय क्रमणे ॥अ०॥ ३ । १ । १४ ॥

चतुर्थ्यन्त कष्ट शब्द से क्रमण अर्थात् उत्साह अर्थ में क्यङ् प्रत्यय हो। कष्टाय क्रमते, कष्टायते ॥ ५९४॥

५९५—वा०—सत्रकक्षकष्टकृच्छ्रगहनेभ्यः कण्वचिकीर्षायाम् ॥

कण्वचिकीर्षा अर्थात् पाप करने की इच्छा में सत्र, कक्ष, कष्ट, कृच्छ्र और गहन शब्दों से क्यङ् प्रत्यय हो। कण्वं चिकीर्षति। सत्रायते। कक्षायते। कष्टायते। कृच्छ्रायते। इन में स्वपद विग्रह नहीं होता है। कण्वचिकीर्षा से अन्यत्र। कष्टं क्रामति ॥ ५९५ ॥

५९६—कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्त्तिचरोः ॥ अ० ॥ ३ ।१। १५ ॥

वर्ति और चर धातु के यथाक्रम से जो रोमन्थ और तपःकर्म उन से क्यङ् प्रत्यय हो। रोंथना रोमन्थ कहाता है ॥ ५९६ ॥

५९७—वा०—हनुचलन इति वक्तव्यम् ॥

ठोड़ीचलाने अर्थ में क्यङ् प्रत्यय कहना चाहिये। रोमन्थं वर्त्तयति, रोमन्थायते ॥ ५९७ ॥

५९८—वा०—तपसः परस्मैपदं च ॥

क्यङन्त तपः शब्द से परस्मैपद भी हो जावे। तपश्चरति, तपस्यति ॥ ५९८ ॥

५९९—बाष्पोष्मभ्यामुद्वमने ॥ अ० ॥ ३ । १ । १६ ॥

उगलने अर्थ में बाष्प और ऊष्म कर्मवाची शब्दों से क्यङ् प्रत्यय हो। बाष्पमुद्वमति, बाष्पायते। ऊष्मायते ॥ ५९९ ॥

६००—वा०—फेनाच्च ॥

फेन शब्द से भी उगलने अर्थ में क्यङ् हो। फेनमुद्वमति, फेनायते ॥ ६०० ॥

६०१—शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे ॥ अ० ॥३।१।१७॥

करने अर्थ में शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व और मेघ प्रातिपदिक से क्यङ् प्रत्यय हो। शब्दं करोति, शब्दायते। वैरायते। कलहायते। अभ्रायते। कण्वायते। मेघायते ॥ ६०१ ॥

६०२—वा०—सुदिनदुर्दिनाभ्यां च ॥

सुदिन और दुर्दिन शब्द से करने अर्थ में क्यङ् प्रत्यय हो। सुदिनं करोति, सुदिनायते। दुर्दिनं करोति, दुर्दिनायते ॥ ६०२ ॥

६०३—वा०—नीहाराच्च ॥

नीहारं करोति, नीहारायते ॥ ६०३ ॥

६०४—वा०—अटाट्टाशीकाकोटापोटासोटाप्रुष्टाप्लुष्टाग्रहणम् ॥

करने अर्थ में अटा, अट्टा, शीका, कोटा, पोटा, सोटा प्रुष्टा और प्लुष्टा शब्दों से क्यङ् प्रत्यय हो। अटां करोति, अटायते। अट्टायते। शीकायते। कोटायते। पोटायते। सोटायते। प्रुष्टायते। प्लुष्टायते ॥ ६०४ ॥

६०५—सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १८ ॥

वेदना अर्थ में ज्ञाता के संबन्धी सुख आदि कर्मवाची प्रातिपदिकों से क्यङ् प्रत्यय हो। सुखं वेदयते, सुखायते। दुःखायते। करुणायते। कृपणायते। इत्यादि। इस सूत्र में कर्तृग्रहण इस लिये है कि। सुखं वेदयति प्रसाधको देवदत्तस्य। यहां सुख शब्द से क्यङ् न हो ॥ ६०५ ॥

६०६—नमोवरिवश्चित्रङः क्यच् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १९ ॥

नमस्, वरिवस् और चित्रङ् प्रातिपदिकों से सत्कार करने आदि अर्थों में क्यच् प्रत्यय हो (नमसः पूजायाम्, वरिवसः परिचर्यायाम्, चित्रङ आश्चर्ये) नमः

करोतिनमस्यति गुरुम् । वरिवः करोति वरिवस्यति पितरम् । चित्रं करोति चित्रीयते । चित्रङ् शब्द में ङित् अनुबन्ध आत्मनेपद होने के लिये है॥ ६०६ ॥

६०७—पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । २० ॥

करण विशेष में पुच्छ, भाण्ड, और चीवर प्रातिपदिक से णिङ् प्रत्यय हो पुच्छादुदसने व्यसने पर्य्यसनेच । पुच्छमुदस्यति, उत्क्षिपति। उत्पुच्छयते । पुच्छं व्यस्यति, विविधं विरुद्धं वा क्षिपति, विपुच्छयते । पुच्छं पर्य्यस्यति, परितः क्षिपति परिपुच्छयते । भाण्डात् समाचयने । भाण्डानि समाचिनोति, संभाण्डयते राशीकरोतीत्यर्थः । चीवरादर्जने परिधाने च । चीवराण्यर्जयति परिधत्ते वा संचीवरयते भिक्षुः ॥ ६०७ ॥

६०८—मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यो णिच् ॥ अ० ॥ ३ । १ । २१ ॥

करण अर्थ में मुण्ड, मिश्र, श्लक्ष्ण, लवण, व्रत, वस्त्र, हल, कल, कृत, और तूस्त से णिच् प्रत्यय हो । मुण्डं करोति, मुण्डयति । मिश्रंकरोति, मिश्रयति । श्लक्ष्णयति । लवणयति। व्रतयति । वस्त्रयति । हलिकल्योरत्वनिपातनं सन्वद्भावप्रतिषेधार्थम्।हलिंकरोति,हलयति। कलयति । अजहलत् । अचकलत् । कृतयति। *वितूस्तयति केशान् विशदीकरोति ॥

(सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्ण०)

यह सूत्र पीछे (४५६) संख्या में लिखचुके हैं इस का शेष विवरण लिखने के लिये यहां लिखा है ॥ ६०८ ॥

६०९—वा०—णिविधावर्थवेद सत्यानामापुक् च ॥

णिच् विधि में अर्थ वेद और सत्य शब्द को आपुक् आगम हो । अर्थमाचष्टे, अर्थापयति। वेदापयति। सत्यं करोति, आचष्टे वा सत्यापयति । पाशं विमुंचति । विपाशयति । रूपं पश्यति, रूपयति । वीणयोपगायति, उपवीणयति । तूलेनानुकुष्णाति, अनुतूलयति । श्लोकैरुपस्तौति, उपश्लोकयति । सेनया अभियाति, अभिषेणयति (उपसर्गात्सुनोति० †) इस सूत्र से षत्व० । अभ्यषेणयत् (प्राक्सिता०) इस सूत्र से षत्व० । अभिषेणयितुमिच्छति, अभिषेणयिषति (स्थादिष्वभ्या०) इस सूत्र से षत्व० । लोमान्यनुमार्ष्टि, अनुलोमयति । त्वचं गृह्णाति,

* तूस्ताः जटीभूताः केशाः तूस्तं पापं वा

† उपसर्गात् सुनोति० प्राक्सितादड्व्यवाये० स्थादिष्वभ्यासे० इन सूत्रों को षत्व प्रकरण में लिखें गे ॥

त्वचयति। वर्म्मणा संनह्यति, संवर्म्मयति। वर्णं गृह्णाति, वर्णयति। चूर्णैरवध्वंसयति, अनुचूर्णयति॥ ६०९॥

६१०—प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च॥

प्रातिपदिक से धात्वर्थ में णिच् प्रत्यय और वह बहुल करके इष्ठन् प्रत्यय के तुल्य हो। पृथुमाचष्टे प्रथयति (स्त्रैण० ८८६) से ऋको र आदेश। म्रदयति। भ्रशयति। क्रशयति। ऊढिमाख्यत्, औजिढत्। यहां ढत्वादिकों के असिद्ध होने से हृति शब्द को द्वित्व हो कर अभ्यास के इकार को तुल्व होता है। अथवा (पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने) इस वचन से ढत्वादि को असिद्ध मान कर ढि शब्द को द्वित्व होता है। औडिढत्। ऊढमाख्यत्, औजढत्। औडढत् (ओः पुयण०) यह यहां नहीं प्रवृत्त होता है क्योंकि इस सूत्र में पवर्ग और प्रत्याहार के वर्णों का ग्रहण है। स्वमाचष्टे, स्वापयति। यहां (स्त्रैण० ८८९) प्रकृतिभाव (६०) वृद्धि और (४६२) पुक् हो जाता है। त्वामाऽऽचष्टे, त्वापयति। मामाचष्टे, मापयति। यहां पररूप से पूर्व ही नित्यत्व मान के (स्त्रैण० ८८९) टिलोप हो०। युवामावांवाचष्टे, युसयति। असयति। उदञ्चमाचष्टे, उदीचयति। उदैचिचत्। प्रत्यञ्चमाचष्टे, प्रतीचयति। प्रत्यचिचत् (इकोऽसवर्णेशा०) इस से प्रकृतिभावपक्ष में। प्रतिअचिचत्। सम्यञ्चमाचष्टे, समीचयति। सम्यचिचत्। समिअचिचत्। भुवमाचष्टे, भावयति। अबीभवत्। भ्रुवमाचष्टे, भ्रावयति। अबुभ्रवत्। श्रियमाचष्टे, श्राययति। अशिश्रियत्। गामाख्यत्। अजूगवत्। रायमाख्यत्। अरीरयत्। स्वमाचष्टे, स्वयति। असस्वत्। असिस्वत्। बहून् भावयति, वह्वयति। श्रीमतीं श्रीमन्तं वा स्तौति, श्रययति। अशिश्रयत्। पयस्विनीमाचष्टे, पयसयति। यहां टिलोप नहीं होता क्यों कि टिलोपापवाद (विन्मतोर्लुक् स्त्रैण० ७८८) इस से विन् प्रत्यय का लुक् हो जाता है। स्थूलमाचष्टे, स्थवयति। दूरंगच्छति, दवयति। इत्यादि प्रयोगों में जो २ कार्य्य (स्त्रैण०८९१) सूत्र में जिन २ शब्दों को कहे हैं वे उन शब्दोंको होते हैं। युवानं, युवयति। कनयति वा (स्त्रैण० ७८७) से कन् आदेश वि०। अन्तिकं प्राप्नोति, नेदयति। बाढं, साधयति। प्रशस्यं प्रशस्ययति। यहां [श्र,ज्य] ये आदेश न होंगे क्यों कि नामधातुओं में उपसर्ग पृथक् माने हैं और पृथक् होने से (शस्य) शब्द प्रकृति रह जायगा (शस्य) को आदेश विधान नहीं है। वृद्धं सेवयते, ज्यापयति। प्रियमाचष्टे, प्रापयति। स्थिर, स्थापयति। स्फिर स्फापयति। उरु, वरयति। बहुलं बंहयति। गुरुं, गरयति। तृप्रं त्रपयति। दीर्घं द्राघयति। वृन्दारकं, वृन्दयति॥ ६१०॥

६११—वा०—तत्करोतीत्युपसंख्यानं सूत्रयत्याद्यर्थम् ॥

सूत्रयति, इत्यादि प्रयोगों के लिये द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से करने अर्थ में णिच् प्रत्यय कहना चाहिये। सूत्रं करोति, सूत्रयति। व्याकरणस्य सूत्रं करोति व्याकरणं सूत्रयति। यहां वाक्य में जो षष्ठी है उस के स्थान में प्रत्ययोत्पत्ति में द्वितीया हो जाती है क्यों कि जो वह सूत्र और व्याकरण शब्द का संबन्ध है उस की प्रत्ययोत्पत्ति में निवृत्ति हो जाती है ॥ ६११ ॥

६१२—वा०—आख्यानात्कृतस्तदाचष्टे कृल्लुक्प्रकृतिप्रत्यापत्तिः प्रकृतिवच्च कारकम् ॥

द्वितीयासमर्थ आख्यान कृदन्त से कहने अर्थ में णिच् प्रत्यय हो कृत् का लुक् प्रकृति का पूर्वरूप और प्रकृति के तुल्य कारक हो। कंसवधमाचष्टे कंसं घातयति। यहां अप् जो कृत् प्रत्यय है उस का लुक् [बध] का पूर्वरूप और कंस कारक प्रकृति के तुल्य होता है। बलिबन्धमाचष्टे, बलिं बन्धयति। राजागमनमाचष्टे, राजानमागयति ॥ ६१२ ॥

६१३—वा०—दृश्यर्थायां च प्रवृत्तौ ॥

जिस में देखना प्रयोजन है ऐसी जहां प्रवृत्ति हो वहां आख्यान कृदन्त से णिच् और पूर्वोक्त समस्त कार्य्य हो। मृगरमणमाचष्टे, मृगान् रमयति। दृश्यार्था-प्रवृत्ति क्यों कहो कि। ग्रामेमृगरमणमाचष्टे। यहां न हो ॥ ६१३ ॥

६१४—वा०—आङ्लोपश्च कालात्यन्तसंयोगे मर्य्यादायाम् ॥

समय के अत्यन्तसंयोग अर्थ में मर्य्यादा प्राप्त हो तो द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से णिच्, पूर्वोक्त कार्य्य और आङ् का लोप हो। आरात्रिविवासमाचष्टे, रात्रिं विवासयति। जबतक रात्रि व्यतीत होती है तबतक किसी प्रसंग को कहता है ॥ ६१४ ॥

६१५—वा०—चित्रीकरणे प्रापि ॥

आश्चर्य करने अर्थ में प्राप्ति अर्थ हो तो द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से णिच् और पूर्वोक्त कार्य्य हों। उज्जयिन्याःप्रस्थितो माहिष्मत्यां सूर्योद्गमनं संभावयते, सूर्यमुद्गमयति। कोई पुरुष उज्जायिनी नगरी से चला हुआ और माहिष्मती नगरी में सूर्य के उदय को प्राप्त होता है। यहां अति दूर देश पहुचने से आश्चर्य का निश्चय होता है ॥ ६१५ ॥

६१६—नक्षत्रयोगे ज्ञि ॥

नक्षत्र के योग में जानना अर्थ होतो द्वितीयान्त प्रातिपदिक से णिच् प्रत्यय तथा पूर्वोक्त कार्य अर्थात् क्तप्रत्यय का लुक् प्रकृति का पूर्वरूप और प्रकृति के तुल्य कारक हो। पुष्ययोगं जानाति, पुष्येण योजयति। मघाभिर्योजयति ॥ ६१६ ॥

इति नामधातुप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ कण्ड्वादिप्रक्रियाप्रारम्भः ॥

६१७—कण्ड्वादिभ्यो यक् ॥ अ० ॥ ३ । १ । २७ ॥

कण्ड्वादि धातुओं से यक् प्रत्यय नित्य हो ॥ ६१७ ॥

६१८-का०—धातुप्रकरणाद्धातुः कस्य चासंजनादपि ।
आह चायमिमं दीर्घं मन्ये धातुर्विभाषितः ॥

धातु के अधिकार होने और यक् प्रत्यय में ककार अनुबंध करने से मैं इन कण्ड्वादिकों को धातु मानता हूं तथा ये आचार्य्य इस कण्डू शब्द को दीर्घ पढ़ते अर्थात् दीर्घ पढ़ने का मुख्य प्रयोजन यही है कि एक पक्ष में यह कण्डू शब्द धातु और दूसरे पक्ष में प्रातिपदिक हो इस से इनको विकल्प करके धातु मानता हूं। प्रयोजन यह है कि कण्डूञ् आदि धातु और प्रातिपदिक दोनों हैं जिस पक्ष में धातु माने जाते हैं वहां (६१७) सूत्र से यक् होता है अन्यत्र नहीं [कण्डूञ्] गात्र विघर्षणे (शरीर खुजाना) ञकार अनुबन्ध से उभयपद होते हैं। कण्डूयति। कण्डूयते। कण्डूयांचक्रे। कण्डूयांबभूव। कण्डूयामास। कण्डूयिता। कण्डूयिष्यति। कण्डूयिषति। कण्डूयिषाति। कण्डूयतु। अकण्डूयत्। कण्डूयेत्। कण्डूय्यात्। अकण्डूयीत्। अकण्डूयिष्यत्। [मन्तु] अपराधे। रोषे इत्येके। मन्तूयति [वल्गु] पूजामाधुर्ययोः (सत्कार और मीठापन) वल्गूयति [असु] उपतापे (दुःखहोना) असूयति [असु,असूञ्] इत्येके। अस्यति। असूयति। असूयते [लिट्,लाट्] धौर्त्ये,पूर्वभावे स्वप्ने च। दीप्तावित्येके (धूर्त्तपन, पिछिलापन और सोना तथा प्रकाश। लेट्यति। लोट्यति। लेटिता। लोटिता [लेला] दीप्तौ। लेलायति। [इरस्,इरज्,इरञ्] ईर्ष्यायाम्। इरस्यति। इरज्यति। ईर्यति। ईर्यते (१८७) से दीर्घ [उषस्] प्रभातीभावे (प्रातःकाल का होना) उषस्यति [वेद] धौर्त्ये स्वप्ने च। वेद्यति [मेधा] आशुग्रहणे (तुरंत लेना) मेधायति [कुषुभ] क्षेपे (निन्दा) कुषुभ्यति [मगध] परिवेष्टने नीचदास्ये इत्यन्ये (लपेटना तथा नीच की सेवा करना) मगध्यति [तंतस्, पंपस्,] दुःखे। तंतस्यति। पंपस्यति [सुख दुःख]

तत्क्रियायाम् । सुख्यति । दुःख्यति । सुखं दुःखंचानुभवति [सपर] पूजायाम् । सपर्यति [अरर] आराकर्म्मणि (चाम काटना आदि) अरर्यति [भिषज्] चिकित्सायाम्। भिषज्यति [भिषण्ज्] उपसेवायाम् । भिषण्ज्यति [इषुध] शरधारणे (बाण धारण) इषुध्यति [चरण, वरण] गतौ । चरण्यति । वरण्यति [चुरण] चौर्य्ये चुरण्यति [तुरण] त्वरायाम् (शीघ्रता) तुरण्यति [भुरण] धारणपोषणयोः । भुरण्यति [गद्गद] वाक्स्खलने (गिड़गिड़ाकर बोलना) गद्गद्यति [एला, केला, खेला] विलासे । एलायति । केलायति । खेलायति [इला] इत्यन्ये । इलायति [खेला] स्खलने च । अदन्तोप्ययमित्यन्ये। खेल्यति [लिट्] अल्पकुत्सनयोः । लिट्यति [लाट्] जीवने । लाट्यति [हृणीङ्] रोषणे लज्जायां च। हृणीयते [महीङ्] पूजायाम् । महीयते [रेखा] श्लाघासादनयोः (आत्मप्रशंसा, स्थिति) रेखायति [दुवस्] परितापपरिचरणयोः (कष्ट और सेवा) दुवस्यति [तिरस्] अन्तर्द्धौ। तिरस्यति [अगद] नीरोगत्वे । अगद्यति [उरस] बलार्थे । उरस्यति [तरण] गतौ । तरण्यति [पयस्] प्रसृतौ । पयस्यति [संभूयस्] प्रभूतभावे । (समर्थहोना) संभूयस्यति (अंवर, संवर) संभरणे । अंवर्यति । संवर्यति । आकृतिगणोयम् । यह कण्ड्वादि आकृतिगण अर्थात् इस गण में अर्थानुसार अन्यशब्द भी धातु माने जाते हैं ॥ ६१८ ॥

इति कण्ड्वादिप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ प्रत्ययमालाप्रक्रियाप्रारम्भः

६१९—का०—शैषिकान्मतुबर्थीयाच्छैषिको मतुबर्थिकः । सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते ॥

शेषाधिकार के प्रत्यय से समानरूप वाला शेषाधिकारी प्रत्यय और मतुप् प्रत्यय के अर्थ वाले से समान रूपवाला मतुबर्थ प्रत्यय इष्ट नहीं। तथा इच्छा अर्थ वाला सन् प्रत्यय जिस के अन्त में हो उस से फिर इच्छार्थ सन् प्रत्यय नहीं इष्ट है। शैषिकात्, शालायां भवः शालीयो घटः शालीये घटे भवमुदकम् । यहां (छ) प्रत्यय फिर न हुआ । और विरूप होजाता है जैसे। अहिच्छत्रे भवआहिच्छत्रः । आहिच्छत्रे भवः, आहिच्छत्रीयो माणवकः। मतुबर्थीयात्, दण्डोऽस्यास्तीति, दण्डिकः दण्डिकोऽस्यास्तीति, यहां फिर मतुबर्थ ठन् प्रत्यय नहीं होता। और विरूप तो होता है । जैसे दण्डिमती सेना । सन्नन्तात्, चिकीर्षितुमिच्छति । जिहीर्षितुमिच्छति ।

यहां फिर सन् नहीं होता। और स्वार्थ सन्नन्त से तो इच्छार्थ सन् होता है। जैसे। जुगुप्सितुमिच्छति, जुगुप्सिषते। मीमांसिषते ॥ ६१९ ॥

६२०—वा०—कण्ड्वादीनां च ॥

कण्ड्वादि शब्दों के तृतीय एकाच् अवयव को द्वित्व हो। कण्डूयितुमिच्छति, कण्डूयियिषति। असूयियिषति ॥ २२० ॥

२२१—वा०—वा नामधातूनां तृतीयस्य द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

नामधातुओं के तृतीय एकाच् अवयव को विकल्प करके द्वित्व हो। क्यजन्तात् सन्। आत्मनोऽश्वमिच्छति, अश्वीयति, अश्वीयितुमिच्छति। अश्वीयियिषति। अशिश्वीयिषति ॥ ६२१ ॥

६२२—अपरआह—यथेष्टं वा नामधातूनाम् ॥

पुत्रीयितुमिच्छति, पुपुत्रीयिषति। पुतित्रीयिषति। पुत्रीयियिषति। अजादि के आदि को छोड़कर औरों को यथेष्ट द्वित्व होता है। अध्यापनीयितुमिच्छति, अदिध्यापनीयिषति। अध्यापिपनीयिषति। अध्यापमिनीयिषति। अध्यापनीयियिषति। न, द, र, ये संयुक्त हों तो इन में जो अच् से परे हो उस को द्वित्व का निषेध है। आत्मन इन्द्रमिच्छति, इन्द्रीयति, इन्द्रीयितुमिच्छति, इन्दिद्रीयिषति। इन्द्रीयियिषति। प्रियमाचष्टे, प्रापयति। प्रापयितुमिच्छति, पिप्रापयिषति। प्रापिपयिषति। प्रापयियिषति। उरुमाचष्टे, वारयति, वारयितुमिच्छति, वारिरयिषति। वारयियिषति। बाढमाचष्टे, साधयति। साधयितुमिच्छति, सिसाधयिषति। सादिधयिषति। साधयियिषति। अयिग्रयेन पुनः पुनर्वा भवति, बोभूयते। बोभूयितुमिच्छति, बोभूयिषते, बोभूयिषमाचष्टे, बोभूयिषयति, बोभूयिषयितुमिच्छति, बोभूयषयिषति। अन्तिकमाचष्टे, नेदयति, आत्मनो नेदयितुमिच्छति, नेदयीयति। नेदयीयितुमिच्छति, निनेदयीयिषति। निनेदयीयिषमाचष्टे, निनेदयीयिषयति। गोमन्तमाचष्टे, गवयति। आत्मनो गवयमिच्छति, गवयीयति। गवयीयितुमिच्छति, गविवयीयिषति। पाचकीयितुमिच्छति, पिपाचकीयिषति। आख्यातमाचष्टे, आख्यातयति। आख्यातयितुमिच्छति, आचिख्यातयिषति। इत्यादि असंख्य प्रयोग प्रत्ययमाला में बन सकते हैं। सो व्याकरण में पूर्ण प्रवेश होने के आधीन हैं ॥ ६२२ ॥

इति प्रत्ययमालाप्रक्रिया समाप्ता

—*—

अथात्मनेपदप्रक्रियाऽऽरम्भः

अनुदात्त और ङित् धातुओं से आत्मनेपद (९५) सूत्र में कह चुके हैं। आस्ते। शेते। प्रवते। प्लवते। इत्यादि॥

६२३—भावकर्मणोः ॥ अ० ॥ १। ३। १३ ॥

भाव और कर्म में विहित जो लकार उस के स्थान में आत्मनेपद हो। भाव में। आस्यते भावता। शय्यते भवता। कर्म में। क्रियते कटः। ह्रियते भारः॥६२३॥

६२४—कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे ॥ अ० ॥ १। ३। १४ ॥

परस्पर एक दूसरे का काम करे इस अर्थ में वर्त्तमान धातु से कर्त्ता में आत्मनेपद हो। व्यतिलुनते। व्यतिपुनते। व्यतिस्ते। व्यतिघाते। व्यतिषते। (२१६) इस से सलोप। व्यतिध्वे। यहां (१११) सूत्र से सलोप। व्यतिहे (११२) सूत्र से अस् के स को ह। कर्मव्यतिहार कहने से यहां न हुआ। स्वं २क्षेत्रं लुनन्ति। कर्त्ता का ग्रहण अगले सूत्रों के लिये है॥ ६२४॥

६२५—न गतिहिंसार्थेभ्यः ॥ अ० ॥ १। ३। १५ ॥

गत्यर्थक और हिंसार्थक धातुओं से कर्मव्यतिहार अर्थ में आत्मनेपद न हो। गत्यर्थ, व्यतिगच्छन्ति। व्यतिसर्पन्ति। हिंसार्थ, व्यतिहिंसन्ति। व्यतिघ्नन्ति ॥६२५॥

६२६—वा०—प्रतिषेधे हसादीनामुपसंख्यानम् ॥

यहां आत्मनेपद के प्रतिषेध में हसादिकों का भी ग्रहण करना चाहिये। हस के सदृश शब्दक्रियावाले धातु हसादि कहाते हैं। व्यतिहसन्ति। व्यतिजल्पन्ति। व्यतिपठन्ति ॥ ६२६॥

६२७—वा०—हरिवह्योरप्रतिषेधः ॥

हृ और वह धातु से कर्मव्यतिहार अर्थ में आत्मनेपद होने का प्रतिषेध न हो। संप्रहरन्ते राजानः। संविवहन्ते गर्गाः॥ ६२७॥

६२८—इतरेतरान्योन्योपपदाच्च ॥ अ० ॥ १। ३। १६ ॥

इतरेतर और अन्योन्य उपपद हों तो कर्म व्यतिहार अर्थ में धातु से आत्मनेपद न हो। इतरेतरस्य व्यतिलुनन्ति। अन्योन्यस्य व्यतिलुनन्ति॥ ६२८॥

६२९—वा०—परस्परोपपदाच्च॥

परस्पर उपपद हो तो कर्मव्यतिहार में धातु से आत्मनेपद न हो। परस्परस्य व्यतिलुनन्ति। परस्परस्य व्यतिपुनन्ति॥ ६२९॥

६३०—नेर्विशः ॥ अ० ॥ १ । ३ । १७ ॥

निपूर्वक विश धातु से आत्मनेपद हो । निविशते । नि, ग्रहण से यहां न हुआ । प्रविशति "अर्थवतआगमस्तद्गुणीभूतोऽर्थवद्ग्रहणेन गृह्यते,, इस से अट् के व्यवधान में भी होता है । न्यविशत "अर्थवद्ग्रहणेनानर्थकस्य,, इस से यहां न हुआ । मधुनि विशन्ति भ्रमराः ॥ ६३० ॥

६३१—परिव्यवेभ्यः क्रियः ॥ अ० ॥ १ । ३ । १८ ॥

परि, वि और अव उपसर्गों से परे डुक्रीञ् धातु से आत्मनेपद हो । परिक्रीणीते । विक्रीणीते । अवक्रीणीते । यहां न हुआ । बहुवि क्रीणाति वनम् ॥ ६३१ ॥

६३२—विपराभ्यां जेः ॥ अ० ॥ १ । ३ । १९ ॥

वि और परा उपसर्ग से परे जि धातु से आत्मनेपद हो । विजयते । पराजयते । उपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । बहुवि जयति वनम् । परा जयति सेना ॥६३२॥

६३३—आङो दोऽनास्यविहरणे ॥ अ० ॥ १ । ३ । २० ॥

मुख के फैलाने अर्थ से अन्यत्र आङ् पूर्वक डुदाञ् धातु से आत्मनेपद हो । विद्यामादत्ते । अनास्यविहरण कहने से यहां न हुआ । आस्यं व्याददाति । आस्यविहरण के समान जो और क्रिया हैं उन में भी प्रतिषेध होता है जैसे । विपादिकां व्याददाति । कूलं व्याददाति ॥ ६३३ ॥

६३४—वा०—स्वाङ्गकर्मकाच्चेति वक्तव्यम् ॥

"अनास्यविहरण,, यहां स्वाङ्गकर्म वाले दाधातु से आत्मनेपद प्रतिषेध कहना चाहिये इस से यहां प्रतिषेध न हुआ । व्याददते पिपीलिका पतङ्गस्य मुखम् ॥६३४॥

६३५—क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । २१ ॥

अनु, सम्, परि, और आङ् उपसर्गों से परे जो क्रीड धातु उस से आत्मनेपद हो । अनुक्रीडते । संक्रीडते । परिक्रीडते । आक्रीडते । उपसर्गनियम से यहां नहीं होता । अनुक्रीडति माणवकम् । माणवकेन सह क्रीडतीत्यर्थः । यहां "तृतीयार्थे,, इस से अनु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा है किंतु उपसर्गसंज्ञा नहीं "समोऽकूजने,, सम् से परे क्रीड से अकूजन अर्थ में आत्मनेपद होना चाहिये । अर्थात् यहां न हो । संक्रीडन्ति शकटानि ॥ ६३५ ॥

६३६—वा०—आगमेः क्षमायाम् ॥

सहन अर्थ में आङ् पूर्वक णिजन्त गमधातु से आत्मनेपद हो । माणवक आगमयस्व तावत् । सहनं कुरु ॥ ६३६ ॥

६३७—वा०—शिक्षेर्जिज्ञासायाम् ॥

जानने की इच्छा में शिक्षधातु से आत्मनेपद हो । विद्यासु शिक्षते। धनुषि शिक्षते। विद्या वा धनुर्विषय के ज्ञान में समर्थ होने की इच्छा करता है ॥६३७॥

६३८—वा०—किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणेषु ॥

हर्ष (आनन्द) जीविका । कुलायकरण (गड्ढा करना) इन अर्थों में । किरति धातु से आत्मनेपद हो । अपस्किरते वृषो हृष्टः । अपस्किरते कुक्कुटो भक्षार्थी । अपस्किरतेश्वा आश्रयार्थी ॥ ६३८ ॥

६३९—वा०—हरतेर्गतताच्छील्ये ॥

किसी प्रकार के स्वभाव होने अर्थ में हृधातु से आत्मनेपद हो । पैत्रिकमश्वा अनुहरन्ते । मात्रिकं गावोऽनुहरन्ते । घोड़ा पिता से पाये हुए प्रकार का अनुहार करते हैं । तथा गौ मातृस्वभाव का अनुहार करतीं हैं ॥ ६३९ ॥

६४०—वा०—आशिषि नाथः ॥

आशीः (आशा) अर्थ में ही नाथ् से आत्म० । सर्पिषो नाथते मधुनो वा ॥६४०॥

६४१—वा०—आङि नुपृच्छ्योः ॥

आङ् पूर्वक नु और पृच्छ धातु से आत्मनेपद हो । आनुते शृगालः । उत्कंठा पूर्वक शब्दं करोतीत्यर्थः । आपृच्छते गुरुम् ॥ ६४१ ॥

६४२—वा०—शप उपलम्भने ॥

उलहना देने में शपधातु से आ० । गुरवे शपते ॥ ६४२ ॥

६४३—समवप्रविभ्यः स्थः ॥ अ० ॥ १ । ३ । २२ ॥

सम्,अव,प्र,और वि उपसर्गों से परे स्थाधातु से आत्मनेपद हो । संतिष्ठते । अवतिष्ठते । प्रतिष्ठते । वितिष्ठते ॥ ६४३ ॥

६४४—वा०—आङः स्थः प्रतिज्ञाने ॥

प्रतिज्ञा अर्थ में आङ् से परे स्था धातु से आत्मनेपद हो । अस्तिं सकारमातिष्ठते । आगमौ गुणवृद्धी आतिष्ठते । विकारौ गुणवृद्धी आतिष्ठते ॥ ६४४ ॥

६४५—प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । २३ ॥

अपने अभिप्राय के प्रकाश और विवाद के निर्णय करने वाले की आख्या में स्थाधातु से आत्मनेपद हो । भार्या तिष्ठते पत्ये । विदुषे तिष्ठते जिज्ञासुः । संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः ॥ ६४५ ॥

६४६—उदोऽनूर्ध्वकर्मणि ॥ अ० ॥ १ । ३ । २४ ॥

अनूर्ध्व कर्म में वर्त्तमान उद् उपसर्ग से परे स्था धातु से आत्मनेपद हो "उदईहायाम्" यहां उद् उपसर्ग से चेष्टा अर्थ में कहना चाहिये। गेहेउत्तिष्ठते। घर की उन्नति लिये यत्न करता है। अनूर्ध्वकर्म कहने से यहां न हुआ। आसनादुत्तिष्ठति। ईहाग्रहण से यहां न हुआ। उत्तिष्ठति सेना। उत्पद्यते जायत इत्यर्थः ॥ ६४६ ॥

६४७—उपान्मन्त्रकरणे ॥ अ० ॥ १ । ३ । २५ ॥

मंत्र करने में उप से परे स्था धातु से आत्मनेपद हो। ऐन्द्र्या गार्हपत्यमुपतिष्ठते। आग्नेय्याऽऽग्नीध्रमुपतिष्ठते। मंत्रकरण अर्थ के ग्रहण से यहां न हुआ। पतिमुपतिष्ठति यौवनेन ॥ ६४७ ॥

६४८—वा०—उपाद्देवपूजासंगतिकरणमित्रकरण-पथिष्विति वक्तव्यम् ॥

देवपूजा, संगतकरण, मित्रकरण, और मार्ग अर्थ में उप से परे स्था धातु से आत्मनेपद हो। देवपूजायाम्। आदित्यमुपतिष्ठते। चन्द्रमसमुपतिष्ठते। संगतकरणे। रथिकानुपतिष्ठते। अश्वारोहानुपतिष्ठते। संगतकरण समीप जा कर मित्रपन में वर्त्तमान और मित्रकरण तो समीप वा असमीप में केवल मित्रपन समझना चाहिये। पथिषु, अयं पन्थाः स्रुघ्नमुपतिष्ठते। अयं पन्थाः साकेतमुपतिष्ठते ॥ ६४८ ॥

६४९—वा०—वा लिप्सायाम् ॥

लाभ की इच्छा अर्थ में स्था धातु से आत्मनेपद हो। भिक्षुको ब्राह्मणकुलमुपतिष्ठते ॥ ६४९ ॥

६५०—अकर्मकाच्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । २६ ॥

उपपूर्वक अकर्मक अर्थात् अकर्मकक्रियावचन स्था धातु से आत्मनेपद हो। यावद्भुक्तमुपतिष्ठते। यावदोदनमुपतिष्ठते। भोजन २ में सन्निहित होता है। अकर्मक ग्रहण से यहां न हुआ। राजानमुपतिष्ठति ॥ ६५० ॥

६५१—उद्विभ्यां तपः ॥ अ० ॥ १ । ३ । २७ ॥

उद् और वि उपसर्ग से परे अकर्मकक्रियावचन तप धातु से आत्मनेपद हो। उत्तपते। वितपते। प्रकाशित होता है। अकर्मक ग्रहण से यहां न हुआ। उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः। वितपति पृष्ठं सविता ॥ ६५१ ॥

६५२—वा०—स्वाङ्गकर्मकाच्च ॥

उद् और वि से परे स्वाङ्गकर्मक तप धातु से आत्मनेपद हो। उत्तपते पाणिम्।

वितपते पाणिम् । उत्तपते पृष्ठम् । वितपते पृष्ठम् । स्वाङ्ग यहां अपने ही अङ्ग का ग्रहण है अर्थात् (स्वमङ्गं स्वाङ्गं) किन्तु "अद्रवंमूर्त्तिमत्०,, इस परिभाषा से जो उक्त है वह नहीं लिया जाता है । इस से यहां न हुआ । देवदत्तो यज्ञदत्तस्य पाणिमुत्तपति । उद्, वि ग्रहण से यहां न हुआ । निष्टपति ॥ ६५२ ॥

६५३—आङो यमहनः ॥ अ० ॥ १ । ३ । २८ ॥

आङ् से परे अकर्मकक्रियावचन यम, हन् धातु से आत्मनेपद हो । आयच्छते । आयच्छेते । आयच्छन्ते । आहते (३०३) अनुनासिक लोप० । आघ्नाते । आघ्नते । अकर्मक ग्रहण से यहां न हुआ । आयच्छति रज्जुं कूपात् । आहन्ति वृषलं पादेन ॥ ६५३ ॥

६५४—वा०—स्वाङ्गकर्मकाच्च ॥

आङ् से परे स्वाङ्गकर्मक यम और हन धातु से आत्मनेपद हो । आयच्छते पाणी । आहते उदरम् ॥ ६५४ ॥

६५५—आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४४ ॥

आत्मनेपद प्रत्यय परे हों तो लुङ्लकार में हन् धातु को वध आदेश विकल्प करके हो । आवधिष्ट । आवधिषाताम् । आवधिषत । जिस पक्ष में वध आदेश न हुआ वहां ॥ ६५५ ॥

६५६—हनः सिच् ॥ अ० ॥ १ । २ । १४ ॥

हन् धातु से परे आत्मनेपद में झलादि सिच् कित्वत् हो । आहत । आहसाताम् । आहसत ॥ ६५६ ॥

६५७—यमो गन्धने ॥ अ० ॥ १ । २ । १५ ॥

दूसरे के दोष को प्रकाश करने में यम धातु से परे जो झलादिसिच् सो कित्वत् हो । आत्मनेपद में । शत्रुमुदायत । उदायसाताम् । उदायसत । गन्धनग्रहण से यहां न हुआ । उदायंस्त पादम् । यहां (समुदाङ्भ्यः०) इस अगामी सूत्र से आत्मनेपद हुआ ॥ ६५७ ॥

६५८—समो गम्यृच्छिभ्याम् ॥ अ० ॥ १ । ३ । २९ ॥

सम् उपसर्ग से परे अकर्मक क्रियावचन गम और ऋच्छ धातु से आत्मनेपद हो । संगच्छते शास्त्रम् । समृच्छते वस्त्रम् । अकर्मक ग्रहण से यहां न हुआ । संगच्छति ग्रामम् ॥ ६५८ ॥

६५९—वा गमः ॥ अ० ॥ १ । २ । १३ ॥

गम धातु से परे आत्मनेपद विषयक झलादि लिङ् सिच् कित्वत् हों । संगसीष्ट । संगंसीष्ट । समगत । समगंस्त ॥ ६५९ ॥

६६०—वा०—समो गम्यृच्छिप्रच्छिस्वरत्यर्तिश्रुविदिभ्यः (समो गमादिषु विदिप्रच्छिस्वरतीनामुपसंख्यानम्) ॥

सम् से परे गमादिकों में विद्, प्रच्छ, स्वृ इन धातुओं से आत्मनेपद कहना चाहिये। संवित्ते। संविदाते। संपृच्छते। संस्वरते। यहां अकर्मक की अनुवृत्ति (६५०) सूत्रसे नहीं आती है ॥ ६६० ॥

६६१—वेत्तेर्विभाषा ॥ अ० ॥ ७ । १ । ७ ॥

(विद्, ज्ञाने) धातु से परे प्रत्ययादि झकार के स्थान में अत् और उस को रुट् आगम विकल्प करके हो आत्मनेपद विषय में। इस सूत्र में वेत्ति को रुडागम कहा है इसी कारण पूर्व वार्त्तिक में विद् करके वेत्ति का ही ग्रहण है अन्य विद् का नहीं। सम्‌विद्+रुट्+अत्+अ=संविद्रते। संविदते ॥ ६६१ ॥

६६२—वा०—अर्त्तिश्रुदृशिभ्यश्च ॥

सम् से परे ऋ, श्रु, और दृश धातु से आत्मनेपद हो। मासमृत। मासमृषाताम्। मासमृषत *। संशृणुते। संपश्यते ॥ ६६२ ॥

६६३—वा०—उपसर्गादस्यत्यूह्योर्वा वचनम् ॥

उपसर्ग से परे जो अस् और ऊह धातु उन से विकल्प करके आत्मनेपद हो। निरस्यति। निरस्यते। समूहति। समूहते ॥ ६६३ ॥

६६४—उपसर्गाद्ध्रस्व ऊहतेः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २३ ॥

उपसर्ग से परे ऊह धातु को ह्रस्व हो। यकारादि कित् ङित् परे हो तो। समुह्याद्ग्निम् ॥ ६६४ ॥

६६५—निसमुपविभ्यो ह्वः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३० ॥

नि, सम्, उप और वि इन से परे जो ह्वा धातु उस से आत्मनेपद हो। निह्वयते। संह्वयते। उपह्वयते। विह्वयते ॥ ६६५ ॥

६६६—स्पर्द्धायामाङः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३१ ॥

स्पर्द्धा अर्थात् दूसरे के तिरस्कार करने की इच्छा में वर्त्तमान आङ् उपसर्ग से परे जो ह्वा धातु उस से आत्मनेपद हो। मल्लो मल्लमाह्वयते। छात्रश्छात्रमाह्वयते। स्पर्द्धा से अन्यत्र। गामाह्वयति गोपालः ॥ ६६६ ॥

---

* यहां कौमुदीकार वा काशिकाकार आदि ने ऋ धातु से आत्मनेपद विषयक लुङ् लकार में च्लि के स्थान में अङ् "सर्त्तिशास्त्यर्त्तिभ्यश्च„ सूत्र से करके। मासमरत। मासमरेताम्। मासमरन्त। इत्यादि प्रयोग बनाये हैं। सो महाभाष्य से विरुद्ध हैं क्यों कि महाभाष्यकार के „शासइदङ्हलोः" इस सूत्र के व्याख्यान से निश्चित होता है कि „सर्त्तिशास्ति०„ सूत्र में परस्मैपद की अनुवृत्ति है ॥

६६७—गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३२ ॥

गन्धन (चुगली) अवक्षेपण (धमकाना) सेवन (सेवा) साहसिक्य (हठ) प्रतियत्न (गुणाधान) प्रकथन। उपयोग (धर्मार्थ नियम) इन अर्थों में वर्त्तमान कृञ् धातु से आत्मनेपद हो । गन्धन, शत्रुमुत्कुरुते। अवक्षेपण, श्येनो वर्त्तिकामुदाकुरुते । सेवन, आचार्यमुपकुरुते शिष्यः । परदारान् प्रकुरुते । प्रतियत्न, एधोदकस्योपस्कुरुते। गुडस्योपस्कुरुते । प्रकथन, जनापवादान् प्रकुरुते । उपयोग, शतं प्रकुरुते । सहस्रं प्रकुरुते । धर्मार्थं विनियुङ्क्ते इत्यर्थः । इन अर्थों से अन्यत्र । कटं करोति ॥ ६६७ ॥

६६८—अधेः प्रसहने ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३३ ॥

सहन वा तिरस्कार करने अर्थ में अधि से परे कृञ् धातु से आत्मनेपद हो। सहन, शीतमधिकुरुते। तिरस्कार, शत्रुमधिकुरुते। अन्यत्र। अर्थमधिकरोति ॥६६८॥

६६९—वेः शब्दकर्म्मणः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३४ ॥

वि उपसर्ग से परे शब्दकर्म्मवाले कृञ् धातु से आत्मनेपद हो। यहां कर्म्म कारक का ग्रहण है। क्रोष्टा विकुरुते स्वरान्। ध्वाङ्क्षो विकुरुते स्वरान्। अन्यत्र। विकरोति पयः ॥ ६६९ ॥

६७०—अकर्म्मकाच्च ॥ अ० ॥ अ० । १ । ३ । ३५ ॥

वि उपसर्ग से परे अकर्म्मक कृञ् धातु से आत्मनेपद हो । विकुर्वते सैन्धवाः। शोभनं वल्गन्तीत्यर्थः ॥ ६७० ॥

६७१—सम्माननोत्सञ्जनाचार्य्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३६ ॥

सम्मानन (अच्छे प्रकार मान) उत्सञ्जन (उछालना) आचार्य करण (आचार्य क्रिया) ज्ञान, भृति (वेतन) विगणन (ऋणादि का चुकाना) व्यय (धर्म्मादि कामों में खरच करना) इन अर्थों में वर्तमान नी धातु से आत्मनेपद हो। संमानन, मातरं सन्नयते । उत्सञ्जन, दण्डमुन्नयते। आचार्यकरण, माणवकमुपनयते । ज्ञान, तत्वं नयते । भृति, कर्मकरानुपनयते । भृतिदानेन समीपं नयते इत्यर्थः । विगणन, मद्राः करं विनयन्ते । राजा को उगाही आदि धन देते हैं । व्यय, शतं विनयते । धर्मार्थं शतं मुद्रा खरच करता है ॥ ६७१ ॥

६७२—कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३७ ॥

कर्त्ता में स्थित शरीर भिन्न कर्म उपपद हो तो भी धातु से आत्मनेपद होवे। शरीर का एकदेश भी शरीर कहता है। क्रोधं विनयते। मन्युं विनयते। कर्तृस्थ ग्रहण इस लिये है कि। देवदत्तो यज्ञदत्तस्य क्रोधं विनयति। अशरीरग्रहण इस लिये है कि। हस्तं विनयति। कर्मग्रहण इस लिये है कि बुद्ध्या विनयति ॥ ६७२ ॥

६७३—वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३८ ॥

वृत्ति (अनिरोध) सर्ग (उत्साह) तायन (विस्तार) इन अर्थों में वर्त्तमान क्रम धातु से आत्मनेपद हो। वृत्ति, मन्त्रेष्वस्य क्रमते बुद्धिः। सर्ग, व्याकरणाध्ययनाय क्रमते। तायन, क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि। वृत्तिआदि से अन्यत्र। अपक्रामति बालः ॥६७३॥

६७४—उपपराभ्याम् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३९ ॥

वृत्ति, सर्ग, तायन अर्थों में उप और परा उपसर्गों से परे हो क्रम धातु से आत्मनेपद हो अन्य उपसर्गों से नहीं। उपक्रमते। पराक्रमते। उप, परा के नियम से। संक्रामति। यहां आत्मनेपद नहीं होता। वृत्ति आदि अर्थों से अन्यत्र। उपक्रामति। पराक्रामति ॥ ६७४ ॥

६७५—आङ उद्गमने ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४० ॥

वा०—ज्योतिषामुद्गमने ॥ आङ् से परे सूर्य आदि के ऊपर को उठने अर्थ में वर्त्तमान क्रम धातु से परे आत्मनेपद हो। आक्रमते सूर्यः। आक्रमते चन्द्रमाः। उद्गमन से। अन्यत्र। आक्रामति माणवकः कुतुपम्। ज्योतियों के ग्रहण से। आक्रमति धूमो हर्म्यतलात्। यहां आत्मनेपद न हो ॥ ६७५ ॥

६७६—वेः पादविहरणे ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४१ ॥

पादविहरण अर्थ में वर्त्तमान वि उपसर्ग से परे क्रमधातु से आत्मनेपद हो। साधु विक्रमते वाजी। पादविहरण से अन्यत्र। विक्रामति सन्धिः ॥ ६७६ ॥

६७७—प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४२ ॥

तुल्यार्थ प्र और उप से परे जो क्रम धातु है उस से आत्मनेपद हो। प्रक्रमते। भोक्तुम्। उपक्रमते भोक्तुम्। प्र और उप दोनों शब्द आरम्भ अर्थ में तुल्य हैं। समर्थ-ग्रहण इस लिये है कि। पूर्वेद्युः प्रक्रामति। अपरेद्युरुपक्रामति। यहां आत्मनेपद न हो ॥ ६७७ ॥

६७८—अनुपसर्गाद्वा ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४३ ॥

उपसर्ग रहित क्रम धातु से आत्मनेपद विकल्प करके हो। क्रमते। क्रामति। अनुपर्ग कहने से। संक्रामति। में न हुआ ॥ ६७८ ॥

६७९—अपह्नवे ज्ञः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४४ ॥

मिथ्या अर्थ में वर्त्तमान ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो। शतमपजानीते। अपह्नव अर्थ से अन्यत्र। न त्वं किंचिदपि जानासि ॥ ६७९ ॥

६८०—अकर्मकाच्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४५ ॥

अकर्मक ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो। सर्पिषो जानीते। यहां करण में षष्ठी है। अकर्मक से अन्यत्र। स्वरेण पुत्रं जानाति। यहां आत्मनेपद नहीं होता ॥ ६८० ॥

६८१—संप्रतिभ्यामनाध्याने ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४६ ॥

उत्कण्ठापूर्वक स्मरण से अन्य अर्थ में सम् और प्रति उपसर्गों से परे ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो। शतं संजानीते। शतं प्रतिजानीते। स्मरण का निषेध इस लिये है कि। मातुः संजानाति बालः ॥ ६८१ ॥

६८२—भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४७ ॥

भासन (दीप्ति) उपसंभाषा (समीप से समझना) ज्ञान (सम्यग्बोध) यत्न (उत्साह) विमति (नानाप्रकार की बुद्धि) उपमंत्रण (एकान्त में कहना) इन अर्थों में वद धातु से आत्मनेपद हो। भासन—शास्त्रे वदते। शास्त्र में विद्या प्रकाश को प्राप्त हुआ कह रहा है। उपसंभाषा—कर्मकरानुपवदते। ज्ञान—व्याकरणे वदते। यत्न—क्षेत्रे वदते। गेहे वदते। विमति—सदसि विवदन्ते विद्वांसः। उपमंत्रण—राजानमुपवदते मंत्री। भासन आदि अर्थों से अन्यत्र। यत् किंचिद्वदति ॥ ६८२ ॥

६८३—व्यक्तवाचां समुच्चारणे ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४८ ॥

स्पष्ट वर्ण बोलने वालों के एकसाथ उच्चारण करने अर्थ में वर्त्तमान वद धातु से आत्मनेपद हो। संप्रवदन्ते ब्राह्मणाः। व्यक्तवाणी वालों का ग्रहण इस लिये है कि। संप्रवदन्ति कुक्कुटाः। साथउच्चारण कहने से अन्यत्र। ब्राह्मणो वदति। यहां आत्मनेपद न हो ॥ ६८३ ॥

६८४—अनोरकर्मकात् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४९ ॥

स्पष्टवर्ण बोलने वालों के एकसाथ उच्चारण करने अर्थ में वर्त्तमान अनु उपसर्ग से परे वद धातु से आत्मनेपद हो। अनुवदते कठः कलापस्य। जैसे कलाप पढ़ता हुआ कहता है वैसे कठ भी। अकर्मक ग्रहण से यहां न हुआ। उक्तमनुवदति। व्यक्तवाग् ग्रहण से यहां न हुआ। अनुवदति वीणा। यहां सदृश अर्थ मात्र है ॥ ६८४ ॥

६८५—विभाषा विप्रलापे ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५० ॥

विरुद्ध कथन में व्यक्तवर्ण बोलने वालों के एकसाथ उच्चारण अर्थ में वदधातुसेपरे आत्मनेपद विकल्प करके हो। विप्रवदन्ते विप्रवदन्ति वा वैयाकरणाः। एकदूसरे के पक्ष का खण्डन करने से विरुद्ध बोलते हैं। विप्रलाप से अन्यत्र । संप्रवदन्ते ब्राह्मणाः । व्यक्तवाणी से अन्यत्र । विप्रवदन्ति शकुनयः । समुच्चारण से अन्यत्र । क्रमेण तार्किकस्तार्किकेण सह विप्रवदति ॥ ६८५ ॥

६८६—अवाद्ग्रः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५१ ॥

अव उपसर्ग से परे जो गृ धातु उस से आत्मनेपद हो । अवगिरते। अवगिरेते। अव से अन्यत्र । गिरति ॥ ६८६ ॥

६८७—समः प्रतिज्ञाने ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५२ ॥

प्रतिज्ञा अर्थ में वर्त्तमान सम्पूर्वक गृधातु से आत्मनेपद हो । शतं संगिरते। नित्यं शब्दं संगिरते । प्रतिज्ञा अर्थ से अन्यत्र । संगिरति ग्रासम् । यहां आत्मनेपद नहीं होता ॥ ६८७ ॥

६८८—उदश्चरः सकर्मकात् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५३ ॥

उत्पूर्वक सकर्मक चरधातु से आत्मनेपद हो। धर्ममुच्चरते। गुरुवचनमुच्चरते। धर्म और गुरु के वचन का उलंघन करता है । सकर्मक से अन्यत्र। बाष्पमुच्चरति कूपात् ॥ ६८८ ॥

६८९—समस्तृतीयायुक्तात् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५४ ॥

तृतीया विभक्ति से युक्त सम्पूर्वक चर धातु से आत्मनेपद हो। रथेन संचरते । अश्वेन संचरते । तृतीया से अन्यत्र । उभौ लोकौ संचरति । यहां न हो ॥ ६८९ ॥

६९०—दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५५ ॥

अशिष्टव्यवहार अर्थ में तृतीया विभक्ति से युक्त सम्पूर्वक दाण् धातु से आत्मनेपद हो परन्तु वह तृतीया विभक्ति चतुर्थी के अर्थ में होतो । दास्या संप्रयच्छते । वृषल्या संप्रयच्छते । कामी पुरुष दासी और वेश्या को कुछ देता है । चतुर्थ्यर्थ से अन्यत्र । पाणिना संप्रयच्छति ॥ ६९० ॥

६९१—उपाद्यमः स्वकरणे ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५६ ॥

हाथ पकड़ के जो स्वीकार करना है उस अर्थमें वर्त्तमान यम् धातु से आत्मनेपद हो । भार्य्यामुपयच्छते । स्वकरण ग्रहण करने से यहां न हुआ । पटमुपयच्छति । देवदत्तो यज्ञदत्तस्य भार्य्यामुपयच्छति ॥ ६९१ ॥

६९२—ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५७ ॥

ज्ञा, श्रु, स्मृ और दृश् इन धातुओं के सन् प्रत्यय से परे आत्मनेपद हो । धर्मं जिज्ञासते । गुरुं शुश्रूषते । विस्मृतं सुस्मूर्षते । नृपं दिदृक्षते । सन् ग्रहण से यहां न हुआ । जानाति । शृणोति । स्मरति । पश्यति ॥ ६९२ ॥

६९३—नानोर्ज्ञः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५८ ॥

अनु उपसर्ग से परे ज्ञा धातु के सन् से आत्मनेपद न हो । पुत्रमनुजिज्ञासति । अनुग्रहण से यहां न हुआ । धर्मं जिज्ञासते ॥ ६९३ ॥

६९४—प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५९ ॥

प्रति और आङ् उपसर्ग से परे सन्नन्त श्रु धातु से आत्मनेपद न हो । प्रतिशुश्रूषति । आशुश्रूषति । उपसर्ग मानने से यहां न हुआ । देवदत्तं प्रति शुश्रूषते ॥ ६९४ ॥

६९५—पूर्ववत्सनः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६२ ॥

सन्नन्त से पूर्ववत् आत्मनेपद हो । अर्थात् जिस निमित्त से प्रथम आत्मनेपद होता हो उसी निमित्त से सन्नन्त में भी आत्मनेपद हो । जैसे । अनुदात्त ङित् से आत्मनेपद होता है । आस्ते । शेते । वैसे ही उन्हीं निमित्तों से सन्नन्त में भी आत्मनेपद हो । आसिसिषते । शिशयिषते । निविशते । निविविक्षते । आक्रमते । आचिक्रंसते । सन्नन्त शद और म्रुङ् धातु से आत्मनेपद न होगा । क्यों कि उन से आत्मनेपद विधान में सन्नन्त से निषेध है * ॥ ६९५ ॥

६९६—प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६४ ॥

अयज्ञपात्र प्रयोग में प्र और उप से युज् धातु से परे आत्मनेपद हो । प्रयुङ्क्ते । उपयुङ्क्ते । अयज्ञपात्र ग्रहण से यहां न हुआ । द्वन्द्वं यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति ॥ ६९६ ॥

६९७—वा०—स्वराद्यन्तोपसृष्टादिति वक्तव्यम् ॥

स्वर जिस के आदि तथा अन्त में हो । उन उपसर्गों से युक्त युज धातु से परे आत्मनेपद हो । अर्थात् सम्, निस्, दुर् इन तीन उपसर्गों को छोड़ के अन्य सब उपसर्गों से परे युज से आत्मनेपद हो । उद्युङ्क्ते । अनुयुङ्क्ते । नियुङ्क्ते । यहां नहीं होता । संयुनक्ति ॥ ६९७ ॥

* जो (२३२ । ४३१) सूत्रों में आत्मनेपद विधान का नियम है सो सन्नन्त में आत्मनेपद नहीं होता क्यों कि (२३२ । ४३१) सूत्रों में (६९२ । ६९३) सूत्रों से सन्नन्त से निषेध की अनुवृत्ति आती है । शिशत्सति । मुमूर्षति ॥

६९८—समः क्ष्णुवः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६५ ॥

सम्पूर्वक क्ष्णुधातु से आत्मनेपद हो । संक्ष्णुते शस्त्रम् । क्ष्णुधातु को (६५८) सूत्र में पढ़ देते तो यह पृथक् सूत्र बनाने न पड़ता । फिर यह सकर्मक क्ष्णु का ग्रहण होने के लिये पृथक् पढ़ा है और वहां (६५८) सूत्र में अकर्मक की अनुवृत्ति है ॥ ६९८ ॥

६९९—भुजोऽनवने ॥ अ० । १ । ३ । ६६ ॥

अपालन अर्थ में वर्त्तमान भुज धातु से आत्मनेपद हो । भुङ्क्ते । भुञ्जाते । भुञ्जते । पालन के निषेध से अन्यत्र । पृथिवीं भुनक्ति राजा । यहां रक्षार्थ के निषेध से जाना जाता है कि इस सूत्र में रुधादि के भुज का ग्रहण किया तुदादि का नहीं ॥ ६९९ ॥

७००—णेरणौ यत्कर्म णौ चेत्सकर्त्ताऽनाध्याने ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६७ ॥

अण्यन्त अवस्था में जो कर्म वही ण्यन्त अवस्था में कर्म तथा कर्त्ता भी होतो अनाध्यान अर्थात् अत्यन्त उत्साह से जो स्मरण करना है उस अर्थ में णिजन्त धातु से आत्मनेपद हो । आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः, आरोहयते हस्ती स्वयमेव । उपसिञ्चन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः, । उपसेचयते हस्तीस्वयमेव । पश्यन्ति भृत्या राजानं, दर्शयते राजा स्वयमेव । णिग्रहण से यहां न हुआ । आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपका आरोहयमाणो हस्ती साध्वारोहति। अणि ग्रहण से यहां नहुआ।गणयति गणं गोपालकः । गणयति गणः स्वयमेव । कर्मग्रहण से यहां नहो । लुनाति दात्रेण लावयति दात्रं स्वयमेव। णौ चेत् ग्रहण समान क्रिया के लिये है। आरोहयमाणोहस्ती भीतान् सेचयति मूत्रेण । यत् ग्रहण अनन्यकर्म के लिये है । आरोहयमाणो हस्ती स्थलमारोहयति मनुष्यान्। कर्त्ता ग्रहण इस लिये है कि।आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकास्तानारोहयति महामात्रः। अनाध्यान ग्रहण से यहां न हुआ । स्मरयत्येनं वनगुल्मः स्वयमेव । आगे कर्मकर्त्तृ प्रक्रिया लिखेंगे उसी के सदृश उदाहरण इस सूत्र में दिये हैं सो कर्मकर्त्ता से आत्मनेपद हो जाता फिर विशेष यह है कि उस प्रक्रिया में जो आत्मनेपद होता है सो कर्मस्थभावक और कर्मस्थक्रिय धातुओं से होता है और यह सूत्र कर्त्तृस्थभावक और कर्त्तृस्थक्रिय धातुओं के लिये है । वैसे ही कर्तृस्थक्रिय रुह और कर्त्तृस्थभावक दृश धातु के उदाहरण दिये हैं ॥ ७०० ॥

७०१—गृधिवञ्च्योः प्रलम्भने ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६९ ॥

प्रलम्भन अर्थात् झूठसांच बकने अर्थ में वर्त्तमान णिजन्त गृधु और वञ्चु धातु से आत्मनेपद हो । माणवकं गर्धयते । माणवकं वञ्चयते । प्रलम्भन ग्रहण से यहां

न हुआ। श्वानं गर्धयति। रोटी आदि से कुत्ते की इच्छा को उत्पादन करता है। अहिं वञ्चयति। सर्प को हर लेता है ॥ ७०१ ॥

७०२—मिथ्योपपदात्कृञोऽभ्यासे ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७१ ॥

बार २ काम करने में मिथ्या शब्द जिस के उपपद हो, उस णिजन्त कृञ् धातु से परे आत्मनेपद हो। पदं मिथ्या कारयते। पद का बार २ मिथ्या उच्चारण कराता है। मिथ्या शब्द के ग्रहण से यहां न हुआ। पदं सुष्ठु कारयति। कृञ् ग्रहण से यहां न हुआ। पदं मिथ्यावाचयति। अभ्यास ग्रह०। पदं मिथ्या कारयति। एक वार उच्चारण कराता है ॥ ७०२ ॥

७०३—अपाद्वदः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७३ ॥

क्रिया का फल जहां कर्ता के लिये हो वहां अप उपसर्ग से परे वद धातु से आत्मनेपद हो। धनकामो न्यायमपवदते। धन का लोभी न्याय को छोडे हुए कहता है। जहां कर्तृगामी क्रिया फल नहीं है वहां। अपवदति। होगा ॥ ७०३ ॥

७०४—समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७५ ॥

अग्रन्थ अर्थ में सम् उद् और आङ् से परे यम धातु से आत्मनेपद हो जो क्रिया का फल कर्त्ता के लिये होतो। व्रीहीन् संयच्छते। भारमुद्यच्छते। वस्त्रमायच्छते। अग्रन्थ ग्रहण से यहां नहुआ। वेदमुद्यच्छति। वेद आने के लिये उद्यम करता है। उद्यच्छति चिकित्सायां वैद्यः। कर्तृगामी ग्रहण से यहां न०। संयच्छति शिष्यम् ॥ ७०४ ॥

७०५—अनुपसर्गाज्ज्ञः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७६ ॥

क्रिया का फल कर्त्ता के लिये होतो उपसर्ग रहित ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो। गांजानीते। अश्वंजानीते। अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न०। स्वर्गं लोकं न प्रजानाति मूढः। कर्तृगामी फ०। देवदत्तस्य गांजानाति ॥ ७०५ ॥

७०६—विभाषोपपदेन प्रतीयमाने ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७७ ॥

समीपवर्त्ती पद के उच्चारण से कर्तृगामी क्रियाफल प्रतीत हो तो (स्वरितञित, अपाद्वदः, णिच०, समुदाङ्भ्योय०, अनुपस०,) इन सूत्रों से जो आत्मनेपद कहा है वह विकल्प करके हो। स्वं यज्ञं यजति। स्वं यज्ञं यजते। स्वं पुत्रमपवदते। स्वं पुत्रमपवदति। स्वं यज्ञं कारयति कारयते वा। स्वान् व्रीहीन् संयच्छति। संयच्छते वा। स्वांगां जानाति। जानीते वा ॥ ७०६ ॥

इत्यात्मनेपदप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ परस्मैपदप्रक्रियारम्भः ॥

७०७—अनुपराभ्यां कृञः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७९ ॥

अनु और परा उपसर्गों से परे कृञ् धातु से परस्मैपद हो । अनुकरोति । पराकरोति । कर्त्तृगामी क्रियाफल और गन्धनादि अर्थों में भी अनु और परा पूर्वक कृञ् से आत्मनेपद ही होता है ॥ ७०७ ॥

७०८—अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८० ॥

अभि, प्रति और अति उपसर्गों से परे क्षिप धातु से परस्मैपद हो । अभिक्षिपति । प्रतिक्षिपति । अतिक्षिपति । इन से अन्यत्र । आक्षिपते ॥ ७०८ ॥

७०९—प्राद्वहः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८१ ॥

प्र से परे वह धातु से परस्मैपद हो । प्रवहति । प्र से अन्यत्र । आवहते ॥ ७०९ ॥

७१०—परेर्मृषः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८२ ॥

परि पूर्वक मृष धातु से परस्मैपद हो । परिमृष्यति । अन्यत्र आमृष्यते ॥ ७१० ॥

७११—व्याङ्परिभ्यो रमः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८३ ॥

वि, आङ् और परि उपसर्ग से परे रम धातु से परस्मैपद हो । विरमति । आरमति । परिरमति । अन्यत्र । अभिरमते ॥ ७११ ॥

७१२—उपाच्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८४ ॥

उप पूर्वक रम धातु से परे परस्मैपद हो । उपरमति । यह सूत्र अलग जो किया है इस से जानना चाहिये कि अगले सूत्र में उप उपसर्ग से ही अकर्मक रम धातु से परस्मैपद होगा ॥ ७१२ ॥

७१३—विभाषाऽकर्मकात् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८५

उपपूर्वक अकर्मक रम धातु से परे विकल्प करके परस्मैपद हो । उपरमति । उपरमते । निवृत्ति को प्राप्त होता है ॥ ७१३ ॥

७१४—बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८६ ॥

बुध, युध, नश, जन, इङ् प्रु, द्रु और स्रु इन णिजन्त धातुओं से परे लकार के स्थान में परस्मैपद हो । बोधयति । योधयति । नाशयति । जनयति । अध्यापयति । प्रावयति । द्रावयति । स्रावयति । बुध आदि धातुओं में जो अकर्मक हैं उन का ग्रहण अचित्तवत् कर्त्तृकों के लिये है क्योंकि चित्तवत् कर्त्तृकों से "अणावकर्म०,, इस सूत्र से परस्मैपद सिद्ध है और चलनार्थक धातुओं में "निगरणचलनार्थेभ्यश्च,, इस सूत्र से परस्मैपद सिद्ध है फिर चलनार्थ से अन्यत्र भी परस्मैपद होने के लिये है ॥ ७१४ ॥

७१५—निगरणचलनार्थेभ्यश्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८७ ॥

भोजन और कम्पन अर्थ वाले णिजन्त धातुओं से परे परस्मैपद हो। निगारयति निगालयति वा। भोजन कराता है। चलयति। चोपयति। कम्पयति। यह भी सूत्र सकर्मक और अचित्तवत् कर्तृकों के लिये है। अत्ति ब्रह्मदत्तः। आदयते। देवदत्तेन। यहां इस से परस्मैपद प्राप्त है उस का निषेध (कारकीय वा०—३३) इस से है ॥ ७१५ ॥

७१६—अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८८ ॥

अण्यन्त अवस्था में जो अकर्मक और चित्तवान् कर्ता वाला धातु हो उस ण्यन्त से परस्मैपद हो। आस्ते बालः। आसीनं बालं माता प्रयोजयति इति माता बालमासयति। स्वापयति। शाययति। अण्यन्त अवस्थाग्रहण से यहां न हुआ। आरोहयमाणं प्रयोजति, आरोहयते। अकर्मकग्रहण से यहां न हुआ। कटंकुर्वाणं प्रयोजयति कारयते। चित्तवत्कर्त्ता से अन्यत्र। शुष्यन्ति व्रीहयः, शोषयति। व्रीहीनातपः ॥ ७१६ ॥

७१७—न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८९ ॥

पा, दमि, आङ्यम, आङ्यस, परिमुह, रुचि, नृति, वद और वस इन ण्यन्त धातुओं से परस्मैपद न हो (अणाव०, निगरण०) पूर्वोक्त इन दो सूत्रों से जो परस्मैपद प्राप्त है उस का निषेध किया है। पाययते। दमयते। आयामयते। आयासयते। परिमोहयते। रोचयते। नर्त्तयते। वादयते। वासयते। यहां ऐसा जानना चाहिये कि पा आदि धातुओं से कर्तृगामी क्रियाफल में यह निषेध है और परगामी क्रियाफल में तो (णिचश्च कर्त्तरि०) इस से परस्मैपद होता ही है। वत्सान् पयः पाययति ॥ ७१७ ॥

७१८—वा०—पादिषु धेट उपसंख्यानम् ॥

इन पा आदिधातुओं में धेट् धातु को भी पढ़ना चाहिये। धापयेते शिशुमेकं समीचो ॥ ७१८ ॥

इति परस्मैपदप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ भावकर्मप्रक्रियाऽऽरम्भः ॥

भाव, भावना क्रिया को कहते हैं। यह सब धातुओं से अपने २ धात्वर्थ को ले कर कहा जाता है। उस का अनुवाद भाववाची लकार से होता है। युष्मद् और अस्मद् से समानाधिकरण का अभाव है इस से यहां प्रथम पुरुष होता है। तथा तिङ् प्रत्ययवाच्य भाव अद्रव्य है इस से भाव में द्विवचन और बहुवचन की प्रतीति नहीं होती इस लिये भाव में द्विवचन और बहुवचन नहीं होते हैं किन्तु एकवचन होता है। क्यों कि वह द्विवचनादिकों का उत्सर्गमात्र है। अब प्रथम पुरुष के परस्मैपद वा आत्मनेपद में कौन होना चाहिये इस विषय में (६२३) सूत्र से आत्मनेपद विधान करचुके हैं सो यहां भाव में प्रथम पुरुष का आत्मनेपद एकवचन होगा जैसे। भू+त। इस अवस्था में ॥

७१९ – सार्वधातुके यक् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६७ ॥

भावकर्मवाची सार्वधातु परे हो तो धातु से यक् प्रत्यय हो। भू+यक्+ते। भूयते देवदत्तेन। बभूवे ॥ ७१९ ॥

७२० – स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन ग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६२ ॥

भावकर्म विषय में स्य, सिच्, सीयुट् और तासि परे हों तो उपदेश में अजन्त, हन, ग्रह और दृश अङ्गों को विकल्प करके चिण्वत् कार्य्य और इट् का आगम हो। यहां चिण्वद्भाव का विकल्प होने से जिस पक्ष में चिण्वत्कार्य होता है। वहीं इट् भी जानो। चिण् णित् है इस से जो २ कार्य णित् प्रत्ययों में होते हैं वेही स्यआदि के परे भी हो जावें। भाविता। यहां चिण्वत् कार्य वृद्धि होती है। भविता। भाविष्यते। भविष्यते। भाविषते। भाविषाते। भविषते। भविषाते। भूयताम्। अभूयत। भूयेत। भाविषीष्ट। भविषीष्ट ॥ ७२० ॥

७२१ – चिण् भावकर्मणोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६६ ॥

भावकर्मवाची त शब्द परे हो तो च्लि के स्थान में चिण् आदेश हो। अभावि। अभाविष्यत। अभविष्यत। अनुपूर्वक भूधातु सकर्मक हो जाता है। अनुभूयते। चैत्रेण त्वया मया वा आनन्दः। यहां आनन्द अनुपूर्वकभूधातु का कर्म है। उस आनन्द कर्म में लकारादि प्रत्यय के होने से उस से द्वितीया विभक्ति नहीं होती क्योंकि वह अनभिहित नहीं रहा। अनुभूयेते। अनुभूयन्ते। त्वमनुभूयसे। अहमनुभूये। अनुबभूवे। त्वमनुभाविताऽसे। अनुभविताऽसे। इत्यादि। अन्वभावि। अन्वभाविषाताम्। अन्वभविषाताम्। णिजन्त से भावकर्म में यक्। भाव्यते।

भावयाञ्चक्रे । भावयाम्बभूवे । भावयामासे । भाविता । यहां चिण्वद्भाव में इट् को (४२) सूत्र से असिद्ध मान के (१७७) सूत्र से णिलोप हो जाता है । और जहां चिण्वद्भाव नहीं है वहां । भावयिता । भाविष्यते । भावयिष्यते । भाव्यताम् । अभाव्यत । भाव्येत । भाविषीष्ट । भावयिषीष्ट । अभाविषाताम् । अभावयिषाताम् । सन्नन्त से भावकर्म्म । बुभूष्यते । बुभूषाञ्चक्रे । बुभूषिता । बुभूषिष्यते । यङन्त से भावकर्म्म । बोभूय्यते । यङ्लुगन्त से भावकर्म्म । बोभूयते । बोभवाञ्चक्रे । बोभाविता । बोभविता । स्तूयते परमात्मा । तुष्टुवे । स्ताविता । स्तोता । स्ताविष्यते । स्तोष्यते । अस्तावि । अस्ताविषाताम् । अस्तोषाताम् । अर्य्यते (२५४) से गुण० । स्मर्य्यते । सस्मरे । स्मारिता । यहां परत्व और नित्यत्व मान कर प्रथम गुण तथा गुण को रपर करने से ऋ धातु अजन्त न भी है तथापि (स्यसिच्०) इस सूत्र में जो उपदेशग्रहण है इस से उस को चिण्वद्भाव और तत्संनियोग इट् होता है । अर्त्ता । स्मारिता । स्मर्त्ता । संस्क्रियते । यहां (२५४) इस सूत्र से संयोगादित्व मान कर ऋकार को गुणादेश नहीं होता है । क्यों कि । यह संयोग सुट् से हुआ है । सुट् बहिरङ्ग वा अङ्ग का अभक्त होने से असिद्ध है । स्रस्यते । यहां (१३८) इस से नकार का लोप हुआ । नन्द्यते । यहां इदित् मान कर नकार का लोप न हुआ । इज्यते । यहां (३८३) इस से संप्रसारण हुआ । शय्यते । यहां (५५१) से अयङ् आदेश हुआ ॥ ७२१ ॥

७२२—तनोतेर्यकि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४४ ॥

यक् प्रत्यय परे हो तो तनोति धातु को आकारादेश विकल्प करके होवे । तायते । तन्यते । जन धातु को आकारादेश विकल्प (१८५) से होता है । जायते । जन्यते ॥ ७२२ ॥

७२३—तपोऽनुतापे च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६५ ॥

कर्म्म कर्त्ता और अनुताप अर्थ में तप धातु से परे च्लि के स्थान में चिण् आदेश न हो । अनुताप (पछतावे) को कहते हैं । सो भावकर्म्मप्रक्रिया में ही चिण् निषेध होने के लिये अनुताप ग्रहण है । अन्वतप्त पापेन पापः कर्त्ता । यह भावकर्म्म का उदाहरण है । कर्म्मकर्त्ता का उदाहरण कर्म्मकर्त्तृप्रक्रिया में लिखेंगे । दीयते । धीयते (२४६) इस सूत्र से ईकारादेश० ॥ ७२३ ॥

७२४—आतो युक् चिण्कृतोः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ३३ ॥

ञित् णित् कृत् और चिण् परे हो तो आदन्त अङ्ग को युक् आगम हो । दायिता । दाता । धायिता । धाता । दायिषीष्ट । दासीष्ट । अदायि । अदायिषाताम् ।

अदिषाताम् । अधायिषाताम् । अधिषाताम् । ग्लायते । म्लायते । जग्ले । मम्ले । यहां (२४२)सूत्र के अणित् शब्द में जो कर्मधारय समास मान कर इत्संज्ञक णकारादि प्रत्यय के परे निषेध किया है उस से एण् आदि प्रत्ययों में आदि णित् न होने से आत्व निषेध नहीं होता है। ग्लायिता । ग्लाता । अग्लायि । अग्लायिषाताम् । अग्लासाताम् । हन्यते । घानिता । यहां (५०२) से तकारादेश नहीं होता । क्योंकि वहां चिण् विषय में निषेध है । हन्ता । घानिष्यते । हनिष्यते । हन्यते । हन्यतै । हन्येते । हन्यैते । घानिषते । घानिषतै । घानिषैते । घानिषैतै । हनिषते । हनिषतै । हनिषाते । हनिषातै । घानिषीष्ट । यहां (३०८) से वधआदेश न हुआ । क्योंकि सीयुट् के परे विशेष विधान से चिण्वद्भाव वध आदेश का अपवाद है । वधिषीष्ट । अघानि । अघानिषाताम् । अहसाताम् । दूसरे पक्ष में। अवधि । अवधिषाताम् । अघानिष्यत । अहनिष्यत । गृह्यते । ग्राहिता । यहां (४५५) इस से इट् को दीर्घादेश न हुआ क्योंकि उस प्रकरण में जो वलादि लक्षण इट् होता है उसी दीर्घ विधि में इट् का ग्रहण है । ग्रहीता । ग्राहिष्यते । ग्रहिष्यते । ग्राहिषीष्ट । ग्रहीषीष्ट । अग्राहि । अग्राहिषाताम् । दृश्यते । अदर्शि । अदर्शिषाताम् । अदृक्षाताम् । यहां सिच् के कित्त्व होने से (२७८) अम् न हुआ । गीर्यते । जगरे । जगले । गारिता । गालिता । गरीता । गलीता । गरिता । गलिता । गारिष्यते । गारिषते । गारिषाते । गालिषतै । गालिषातै । गरीषतै । गरीषातै । गलीषतै । गलीषाते । गरिषतै । गरिषातै । गलिषतै । गलिषातै । गारिषते । गारिषाते । गालिषते । गालिषाते । गरीषते । गरीषाते । गलीषते । गलीषाते । गरिषते । गरिषाते । गलिषते । गलिषाते । गीर्यते । गीर्याते । गीर्यतै । गीर्यातै । गीर्यताम् । अगीर्यत । गीर्येत । गारिषीष्ट । गालिषीष्ट । गरिषीष्ट । यहां (४२१) इस से दीर्घ न हुआ । गीर्षीष्ट । यहां (४२०) से इट् विकल्प० अगारि । अगारिषाताम् । अगरिषाताम् । अगीर्षाताम् । अगारिध्वम् । अगरीध्वम् । अगरिध्वम् । अगालिध्वम् । अगलीध्वम् । अगलिध्वम् (४२२) से लत्व विकल्प० । अगारिढ्वम् । अगरीढ्वम् । अगरिढ्वम् । अगालिढ्वम् । अगलीढ्वम् । अगलिढ्वम् (१२१) से मूर्द्धन्यादेशवि० । इट् के अभाव पक्ष में अगीर्ढ्वम् । यहां (२४०) से सिच् कित् (१०९) से नित्य ढत्व० । हेतुमत् णिजन्त से कर्म में लकार० । शम्यते मोहो गुरुणा ॥ ७२४ ॥

७२५–चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ९३ ॥

चिण् और णमुल् परे हो तो मित् अङ्गों को उपधा को विकल्प करके दीर्घ हो । शामिता । शमिता । शमयिता । शामिष्यते । शमिष्यते । शमयिष्यते । जहां णिजन्त न है वहां भाव में लकार होंगे । शम्यते मुनिना ॥ ७२५ ॥

७२६—नोदात्तोपदेशस्यमान्तस्याऽनाचमेः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ३४ ॥

चिण् और ञित् णित् कृत् परे हो तो आङ्पूर्वक चम् वर्जित मकारान्त अङ्ग की उपधा को वृद्धि न हो। अशमि। अदमि। उदात्तोपदेशग्रहण से यहां न हुआ। अगामि। मान्तग्रहण से यहां न हुआ। अवादि। अनाचम्ग्रहण से यहां न हुआ। आचामि ॥ ७२६ ॥

७२७—वा०—अनाचमिकमिवमीनामिति वक्तव्यम् ॥

(अनाचमि) यहां आचम्, कम्, वम् इन अङ्गों को निषेध कहना चाहिये अर्थात् चिण् और ञित् णित् कृत् परे होतो उक्त सब अङ्गों की उपधा को वृद्धि न हो। अकामि। अवामि। अजागारि। यहां (३६२) से गुण न हुआ क्योंकि चिण् के परे निषेध है ॥ ७२७ ॥

७२८—भञ्जेश्च चिणि ॥ अ० ॥ ६ । ४ ॥ ३३ ॥

चिण् परे होतो भञ्ज धातु के नकार का लोप विकल्प कर के हो। अभाजि। अभञ्जि ॥ ७२८ ॥

७२९—विभाषा चिण्णमुलोः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६९ ॥

चिण् और णमुल् परे हो तो लभ धातु को नुमागम विकल्प कर के हो। अलम्भि। द्विकर्मक। गौर्दुह्यते पयः। इत्यादिकों में अप्रधान कर्म में लकार होते हैं। तथा अजा नीयते ग्रामम्। इत्यादिकों में प्रधान कर्म में लकार होते हैं। यह निर्णय "कारकीय,, ग्रन्थ के (२०) सूत्र की व्याख्यान में कर चुके हैं ॥ ७२९ ॥

॥ इति भावकर्मप्रक्रियासमाप्ता ॥

अथ कर्मकर्तृप्रक्रियारम्भः ॥

जब काम के अत्यन्त अच्छे प्रकार होने रूप अर्थ को प्रकट करने के लिये कर्त्ता का क्रिया करना न कहा जाय तब अन्य कारक भी कर्तृ संज्ञा को प्राप्त होते हैं। क्योंकि वे अपने २ विषय में स्वतंत्र हैं। और स्वाधीन व्यापार वाले को कर्त्ता संज्ञा भी होती है। इस कारण प्रथम करण आदि संज्ञा होती भी हैं तथापि उन कारकों के स्वतंत्र होने से कर्तृ संज्ञा हो कर उस कर्त्ता में भी लकार होते हैं। करण, देवदत्तोऽसिना छिनत्ति, छिन्दतो देवदत्तस्यासिः स्वयमेव छिनत्ति। देवदत्त तलवार से काटता है काटते हुए देवदत्त की तलवार आप ही काटती है। देवदत्तः काष्ठैः पचति पचतो देवदत्तस्य काष्ठानि साधु पचन्ति। देवदत्तः स्थाल्यां

पचति पचतो देवदत्तस्य स्थाली स्वयमेव पचति। और जब कर्म को कर्तृत्व विवक्षा होती है तब प्रथम से सकर्मक भी धातु प्रायः अकर्मक हो जाते हैं। और उन से भाव वा कर्त्ता में लकार होते हैं। जैसे भाव में। देवदत्त ओदनं पचति, पचतो देवदत्तस्य, ओदनेन स्वयमेव पच्यते। भिद्यते काष्ठेन। और कर्त्ता में तो॥

७३०—कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः॥ अ०॥ ३। १। ८७॥

जिस की कर्मस्थ क्रिया के तुल्य क्रिया है वह कर्त्ता कर्मवत् हो। यहां कार्य्यातिदेश अर्थात् कर्म विषयक काम कर्त्ता में भी हों। इस का प्रयोजन यह है कि यक्, आत्मनेपद, चिण्, और चिण्वद्भाव भी होवे। देवदत्तः काष्ठं भिनत्ति, भिन्दतो देवदत्तस्य काष्ठं स्वयमेव भिद्यते। देवदत्त ओदनं पचति, पचतो देवदत्तस्यौदनः स्वयमेव पच्यते। अभेदि काष्ठं स्वयमेव, अपाच्योदनः स्वयमेव। पाचिष्यते ओदनः स्वयमेव वत् ग्रहण करने से स्वाश्रय कार्य भी होते हैं * भिद्यते कुसूलेन। यहां स्वाश्रय कार्य भाव में लकार हुआ है। कर्मणा, ग्रहण इसलिये है कि करण और अधिकरण के तुल्य क्रिया कर्त्ता को कर्मवद् भाव न हो। जैसे साध्वसिश्छिनत्ति। साधु स्थाली पचति। इस प्रकरण में धातु का अधिकार है इस से एकही धातु में कर्मवद् भाव होता है किन्तु। पचत्योदनं देवदत्तः, राध्यत्योदनः स्वयमेव। यहां न हुआ। इस सूत्र से कर्मस्थभावक और कर्मस्थक्रिय धातुओं का कर्त्ता कर्मवत् होता है। किन्तु कर्तृस्थ भावक तथा कर्तृस्थ क्रिय धातुओं का कर्त्ता कर्मवत् नहीं होता जैसे कर्तृस्थभावों में। देवदत्तः शास्त्रं चिन्तयति। शास्त्रं चिन्तयतो देवदत्तस्य शास्त्रं स्वयमेव चिन्तयति। अमात्यो राजानं मन्त्रयते। मन्त्रयमाणस्यामात्यस्य राजा स्वयमेव मन्त्रयते। कर्तृस्थक्रियों में। गच्छति ग्रामं देवदत्तः। ग्रामं गच्छतो देवदत्तस्य ग्रामः स्वयमेव गच्छति। आरोहति हस्ती स्वयमेव। कर्मस्थभावकों में। शेते बालः शयानं बालं जनकः प्रयोजयति, जनको बालं शाययति। शाययतो जनकस्य बालः स्वयमेव शाय्यते। यहां सोना रूप भाव कर्मस्थ है। जहां कर्म में क्रिया कृत् विशेष देख पड़े वह कर्मस्थक्रिय होता है जैसे फटी हुई लकड़ियों में काटना रूप क्रिया प्रत्यक्ष देखपड़ती है। इस से भिद्धातु कर्मस्थ क्रिय है॥ ७३०॥

७३१—तपस्तपःकर्मकस्यैव॥ अ०॥ ३। १। ८८॥

सकर्मकों में तपः कर्मवाले ही तप धातु का कर्त्ता कर्मवत् हो यह सूत्र निय

* "कर्मवत्०,, सूत्र में "वत्,, को छोड़ के "कर्मकर्मणा,, कहने से तुल्य क्रिया कर्त्ता की कर्म संज्ञा हो कर उस को कर्माश्रय कार्य्य ही होते किन्तु जो कर्म को कर्तृत्व विवक्षा करने से सकर्मक धातु अकर्मक हो कर उन से भाव में लकार होते हैं वे न होते। वत्करण करने से तो कर्मकी तुल्यता हो कर स्वाश्रय कार्य्य भी होते हैं॥

मार्थ है कि सकर्मक धातुओं को कर्मवद् भाव हो तो तपधातु ही को हो। सो भी तपः कर्म वाले ही तप धातु को हो। किन्तु और कर्म वाले को न हो। वेदव्रतादीनि तपांसि तापसं तपन्ति स तापसस्तपस्त्विभूतः स्वर्गाय तपस्तप्यते। वेदव्रत आदि तप तापस अर्थात् तपस्या करने वाले को संताप देते हैं वह तापस अत्यन्त सुख के लिये तप को यत्न से सिद्ध करता है। पिछले सूत्र से कर्मवद्भाव न प्राप्त था इस से विधान किया। अन्वतप्त तपस्तापसः। यहां (७२४) इस से चिण् निषेध हो कर सिच् हो जाता है। तपःकर्मक ग्रहण करने से यहां न हुआ। उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः। कारकः कटं करोति कुर्वतस्तस्य कटः स्वयमेव क्रियते ॥७३१॥

७३२—अचः कर्मकर्त्तरि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६२ ॥

कर्मकर्त्ता में तशब्द परे हो तो अजन्त धातु से परे च्लि को चिण् आदेश हो। अकारि कटः स्वयमेव। अकृत कटः स्वयमेव। कृषीवलः केदारं लुनीते लुनतस्तस्य केदारः स्वयमेव लूयते। अलविष्ट केदारः स्वयमेव (अचः) इस ग्रहण से यहां न हुआ। अभेदि काष्ठं स्वयमेव। कर्मकर्तृ ग्रहण से यहां न हुआ। अकारि कटो देवदत्तेन गोपालो गां व्रजमन्ववरुणद्धि, रुन्धतस्य गौः स्वयमेवान्ववरुध्यते ॥ ७३२ ॥

७३३—न रुधः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६४ ॥

रुधि धातु से परे कर्मकर्त्ता में च्लि के स्थान में चिण् आदेश न हो। अन्ववारुणद्धि गौः स्वयमेव। कर्मकर्त्ता ग्रहण से यहां न हुआ। अन्ववारोधि गौर्गोपालेन ७३३ ॥

७३४—वा०—दुहिपच्योर्बहुलं सकर्मकयोः ॥

सकर्मक दुह और पच धातु का कर्त्ता बहुल करके कर्मवत् हो ॥ ७३४ ॥

७३५—न दुहस्नुनमां यक्चिणौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८९ ॥

दुह, स्नु और नम् इन धातुओं के कर्मवद्भाव में यक् और चिण् न हो। इस से दुह धातु से यक् का प्रतिषेध है। और चिण् तो विकल्प से कहेंगे। गोपालो गां पयो दोग्धि दुहतस्तस्य गौः पयः स्वयमेव दुग्धे ॥ ७३५ ॥

७३६—दुहश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६३ ॥

दुह धातु से परे कर्मकर्त्ता में विकल्प करके च्लि को चिण् आदेश हो। अदुग्ध गौः पयः स्वयमेव। कर्मकर्त्ता ग्रहण से। अदोहि गौर्गोपालेन। ऋतुरुदुंबरं सलोहितं फलं पचति पचतस्तस्योदुम्बरः स लोहितं फलं पच्यते। प्रस्नुते गौः स्वयमेव। प्रास्नोष्ट गौः स्वयमेव। नमते दण्डः स्वयमेव। अनंस्त दण्डः स्वयमेव ॥ ७३६ ॥

७३७—वा०—सृजियुज्योः श्यँस्तु ॥

सकर्मक सृज् और युज् धातु का कर्त्ता बहुल करके कर्मवत् और श्यन् हो। यह श्यन् यक् प्रत्यय का अपवाद है ॥ ७३७ ॥

७३८—वा०—सृजेः श्रद्धोपपन्ने कर्त्तरि कर्मवद्भावो वाच्यश्चिणात्मनेपदार्थः ॥

श्रद्धायुक्त कर्त्ता में सृज धातु को कर्मवद्भाव कहना चाहिये। चिण् और आत्मनेपद होने के लिये। सृज्यते मालाम्। श्रद्धा से माला बनाता है। असर्जि मालाम्। श्रद्धा से माला बनालिई। युज्यते ब्रह्मचारी योगम् ॥ ७३८ ॥

७३९—वा०—भूषाकर्मकिरादिसनां चान्यत्रात्मनेपदात् ॥

भूषण अर्थवाले, किरादि और सन्नन्त धातुओं को आत्मनेपद से अन्यत्र प्रतिषेध कहना चाहिये। अर्थात् उन को यक्, चिण् और चिण्वद्भाव नहीं। और आत्मनेपद हो। भूषार्थ में माता कन्यां भूषयति, कन्यां भूषयन्त्या मातुः कन्या स्वयमेव भूषयते। अबुभूषत कन्या स्वयमेव *। मण्डयते कन्या स्वयमेव। अममण्डत कन्या स्वयमेव। अलंकुरुते कन्या स्वयमेव। अलमकृत कन्या स्वयमेव। किरादि। अवकिरते हस्ती स्वयमेव। अवाकीर्ष्ट हस्ती स्वयमेव। गीर्यते ग्रासः स्वयमेव। अवगीर्ष्ट ग्रासः स्वयमेव। चिकीर्षते कटः स्वयमेव। अचिकीर्ष्ट कटः स्वयमेव। यहां इच्छा कर्त्तृस्थ भी है तथापि करोति क्रिया की अपेक्षा लेकर कर्म्मस्थ क्रिया जाननी चाहिये क्योंकि करोति प्रधान है और इच्छा तो करोति के आधीन है किन्तु स्वतंत्र नहीं है ॥ ७३९ ॥

७४०—वा०—यक्चिणोः प्रतिषेधे हेतुमण्णिश्रिब्रूञामुपसंख्यानम् ॥

यक् और चिण् के प्रतिषेध में हेतुमान् णि, श्रि, और ब्रूञ् इन का उपसंख्यान करना चाहिये। णि। कारयते कटः स्वयमेव। श्रि। उच्छ्रयते दण्डः स्वयमेव। उदशिश्रियत दण्डः स्वयमेव। ब्रूञ्। ब्रूते कथाः स्वयमेव। अवोचत कथाः स्वयमेव ॥ ७४० ॥

---

* यहां स्वार्थणिच् मानकर भूषार्थकों के प्रतिषेध में 'भूषयते' इत्यादि उदाहरण महाभाष्यकारने दिये हैं क्योंकि "यक्चिणोः प्रतिषेधे०" इस वार्त्तिक में केवल हेतुमत् णिच् से प्रतिषेध है। और भारद्वाजीय जो णिमात्र से प्रतिषेध पढते हैं वह उन्हीं का मत है। इस लिये सर्व संमत से ण्यन्त अण्यन्त दोनों पक्षमें "भूषाक०" इस वार्त्तिक में भूषार्थकों का ग्रहण किया है अन्यथा महाभाष्यकार का भूषयते कन्या स्वयमेव। इत्यादि उदाहरण देना व्यर्थ हो इस से यहां कैयटने जो भूषार्थकोंका ग्रहण अण्यन्तों हो के लिये माना है यह उन का व्याख्यान असंगत है ॥

७४१—वा०—भारद्वाजीयाः पठन्ति—यक्चिणोः प्रतिषेधे णिश्रन्थिग्रन्थिब्रूञात्मनेपदाकर्मकाणामुपसंख्यानम् ॥

पुच्छमुदस्यति, उत्पुच्छयते गौः। अन्तर्भावितण्यर्थ मान कर गामुत्पुच्छयते। यह व्यवस्था होगी। फिर कर्त्तृत्व अपेक्षा में। उत्पुच्छयते गौः होगा। उदपुपुच्छत। यहां यक् और चिण् के प्रतिषेध से शप् और चङ् होते हैं। श्रन्थि और ग्रन्थ के आत्मनेपदीयत्व होने से णिच् के अभाव पक्ष के लिये इन का ग्रहण है। ग्रन्थते ग्रन्थमाचार्यः। श्रन्थते मेखलां देवदत्तः। ग्रन्थते ग्रन्थः स्वयमेव। श्रन्थते मेखला स्वयमेव। अग्रन्थिष्ट। अश्रन्थिष्ट। विकुर्वते * सैन्धवाः। फिर अन्तर्भावितण्यर्थ के प्रयोजनांश त्याग किये से। विकुर्वते सैन्धवाः स्वयमेव होगा। व्यकारिष्ट। व्यकारिषाताम्। व्यकारिषत। यहां से चिण्वद्भाव०। व्यकृत। व्यकृषाताम्। व्यकृषत ॥ ७४१ ॥

७४२—कुषिरजोः प्राचां श्यन् परस्मैपदं च॥ अ० ॥ ३ । १ । ९० ॥

प्राचीन आचार्यों के मत से कुष और रञ्ज धातु को कर्मवद्भाव में श्यन् प्रत्यय और परस्मैपद हो। किन्तु यक् आत्मनेपद न हों। कुष्यति, कुष्यते वा पादः स्वयमेव। रज्यति रज्यते वस्त्रं स्वयमेव। यह प्राचां ग्रहण विकल्प के लिये है। और वह व्यवस्था से माना जाता है इस से लिङ्, लुङ्, लिट् और स्यादि विषय में यह सूत्र नहीं प्रवृत्त होता। चुकुषे पादः स्वयमेव। ररंजे वस्त्रं स्वयमेव। कोषिषीष्ट पादः स्वयमेव। रङ्क्षीष्ट वस्त्रं स्वयमेव। कोषिष्यते पादः स्वयमेव। रङ्क्ष्यते वस्त्रं स्वयमेव। अकोषि पादः स्वयमेव। अरञ्जि वस्त्रं स्वयमेव ॥ ७४२ ॥

इति कर्म्मकर्तृप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ लकारार्थप्रक्रिया प्रारम्भः॥

७४३—अभिज्ञावचने लृट् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११२ ॥

अभिज्ञावचन अर्थात् स्मृतिबोधक उपपद हो तो धातु से लृट् प्रत्यय हो। यह लङ् का अपवाद है। अभिजानासि वत्स कश्मीरेषु वत्स्यामः। स्मरसि बुध्यसे चेतयसे वा मित्र काश्यां पठिष्यामः ॥ १४३ ॥

७४४—नयदि ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११३ ॥

यत् शब्द सहित अभिज्ञावचन उपपद हो तो लृट् प्रत्यय न हो। अभिजानासि देवदत्त यत्कश्मीरेष्ववसाम। यहां निवास मात्र का स्मरण है। इस से यह अगले सूत्र का विषय नहीं है ॥ ७४४ ॥

---

* यहां "वेःशब्दकर्म्मणः ऽकर्मकाच्च" इस से तङ् है ॥

७४५—विभाषासाकाङ्क्षे ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११४ ॥

अभिज्ञावचन उपपद हो और यत् शब्द उपपद हो वा न हो तो धातु से विकल्प करके लट् हो साकाङ्क्ष अर्थ में। अभिजानासि देवदत्त कश्मीरेषु वत्स्यामः। तत्र सक्तून् पास्यामः। अभिजानासि देवदत्त कश्मीरेष्ववसाम तत्र सक्तूनपिबाम। यद् अभिजानासि देवदत्त यत्कश्मीरान् गमिष्यामः यत्कश्मीरानगच्छाम। यत्तत्रौदनं भोक्ष्यामहे यत्तत्रौदनमभुञ्जमहि। अयद्। अभिजानासि देवदत्त कश्मीरान्गमिष्यामः। कश्मीरानगच्छाम तत्रौदनं भोक्ष्यामहे तत्रौदनमभुञ्जमहि। लक्ष्य और लक्षण के संबन्ध से वक्ता की आकाङ्क्षा होती है। उक्त उदाहरणों में निवास और गमन लक्षण है और पान भोजन लक्ष्य हैं (२८) से लिट् विधान करचुके हैं वहां उत्तम पुरुष के विषय में विशेष कहते हैं। सुप्तमत्तयोरुत्तमः। महाभा० ३।२।११५। सुप्त और मत्त के विषय में पारोक्ष्यभाव से उत्तम पुरुष होता है। सुप्तोहं किल विललाप। सुप्तोन्वहं किल विललाप। मत्तोन्वहं किल विललाप ॥ ७४५ ॥

७४६—वा०—परोक्षेलिडत्यन्तापह्नवे च ॥

परोक्षेलिट् यहां अत्यन्त अपन्हव अर्थात् मिथ्यापन में भी लिट् कहना चाहिये नो खण्डिकाञ् जगाम। नो कलिङ्गाञ् जगाम ॥ ७४६ ॥

७४७—हशश्वतोर्लङ् च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११६ ॥

भूत अनद्यतन परोक्ष अर्थ में ह और शश्वत् शब्द उपपद हों तो धातु से लङ् और लिट् हो। इति ह अकरोत् इतिह चकार। शश्वदकरोत्। शश्वच्चकार ॥ ७४७ ॥

७४८—प्रश्ने चासन्नकाले ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११७ ॥

समीप काल के पूछने में जो भूतअनद्यतन परोक्ष है उस अर्थ में धातु से लङ् और लिट् हो। अगच्छत् किं देवदत्तः। जगाम किं देवदत्तः। कोई किसी से पूछता है कि क्या देवदत्त गया। प्रश्न ग्रहण से। जगाम देवदत्तः। यहां नहुआ आसन्न काल से अन्यत्र। भवन्तं पृच्छामि। जघान कंसं किल वासुदेवः ॥ ७४८ ॥

७४९—लट् स्मे ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११८ ॥

भूत अनद्यतन परोक्ष काल में स्म उपपद हो तो धातु से लट् प्रत्यय हो। यजति स्म युधिष्ठिरः। स्म से अन्यत्र। इयाज युधिष्ठिरः ॥ ७४९ ॥

७५०—अपरोक्षे च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११९ ॥

भूत अनद्यतन अपरोक्ष काल में भी स्म उपपद हो तो धातु से लट् हो। एवं पिता ब्रवीति स्म ॥ ७५० ॥

७५१—ननौ पृष्टप्रतिवचने ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२० ॥

प्रश्न के उत्तर देने अर्थ में भूतकाल में वर्त्तमान धातु से लट् प्रत्यय हो। अकार्षीः किं ननु करोमि भोः। अवोचस्तत्र किं देवदत्त ननु ब्रवीमिभो। पृष्टप्रतिवचन से अन्यत्र। नन्वकार्षीन्माणवकः ॥ ७५१ ॥

७५२—नन्वोर्विभाषा ॥ अ० ॥ ३। २। १२१ ॥

न और नु उपपद हों तो प्रश्न के उत्तर देने में भूत काल में वर्त्तमान धातु से विकल्पकरके लट् हो। अकार्षीः किं। न करोमि। नाकार्षं वा। नु करोमि। न्वकाकार्षं वा ॥ ७५२ ॥

७५३—पुरि लुङ् चास्मे ॥ अ० ॥ ३। २। १२२ ॥

स्मरहित पुरा शब्द उपपद हो तो भूत अनद्यतन काल में धातु से विकल्प करके लुङ् और लट् हों। वसन्तीह पुरा छात्राः। अवात्सुरिह पुरा छात्राः। पक्ष में यथाप्राप्त हों। अवसन्निह पुरा छात्राः। ऊषुरिह पुरा छात्राः। अस्मग्रहण से यहां लुङ् न हुआ। धर्मेण स्म पुरा कुरवो युध्यन्ते॥ ७५३ ॥

७५४—यावत्पुरानिपातयोर्लट् ॥ अ० ॥ ३। ३। ४ ॥

निपात संज्ञक यावत् और पुरा शब्द उपपद हों तो भविष्यत्काल में धातु से लट् प्रत्यय हो। यावद्भुङ्क्ते। पुरा भुङ्क्ते। निपातग्रहण से यहां न हुआ। यावद्दास्यति तावद्भोक्ष्यते। पुरा यास्यति। यहां पुरा, तृतीया का एकवचन है॥ ७५४ ॥

७५५—विभाषा कदाकर्ह्योः ॥ अ० ॥ ३। ३। ५ ॥

कदा और कर्हि शब्द उपपद हों तो भविष्यत् काल में धातु से विकल्प करके लट् प्रत्यय हो। कदा भुङ्क्ते। कर्हि भुङ्क्ते। कदाभोक्ष्यते। भोक्ता। कर्हि भोक्ष्यते। भोक्ता ॥ ७५५ ॥

७५६—किंवृत्ते लिप्सायाम् ॥ अ० ॥ ३। ३। ६ ॥

किं शब्द का प्रयोग उपपद हो तो भविष्यत् कालिक धातु से लाभ की इच्छा अर्थ में विकल्प करके लट् प्रत्यय हो। कं कतरं कतमं वा ददासि। दास्यति। दातासि वा। कोई लाभ की इच्छा वाला पूछता है कि तुम किस को दोगे। लिप्सा अर्थ से अन्यत्र। कः पाटलिपुत्रं गमिष्यति ॥ ७५६ ॥

७५७—लिप्स्यमानसिद्धौ च ॥ अ० ॥ ३। ३। ७ ॥

अभीष्टपदार्थ से सिद्धि गम्यमान हो तो भविष्यत्काल में धातु से विकल्प करके लट् प्रत्यय हो। यो धनं ददाति स स्वर्गं गच्छति। यो धनं दास्यति स स्वर्गं

गमिष्यति। यो धनं दाता स स्वर्गं गन्ता। धन देने से स्वर्ग प्राप्त होता है इस प्रकार धन चाहता हुआ देने वाले को उत्साह कराता है ॥ ७५७ ॥

७५८—लोडर्थलक्षणे च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८ ॥

विध्यादिक जो लोट् के अर्थ हैं वे जिस से जाने जावें उस अर्थ में वर्त्तमान धातु से भविष्यत् काल में विकल्प करके लट् प्रत्यय हो। उपाध्यायश्चेदागच्छति, आगमिष्यति, आगन्ता वा। अथ त्वं व्याकरणमधीष्व। यहां उपाध्याय का आगमन पढ़ाने की प्रेरणा को विदित कराता है ॥ ७५८ ॥

७५९—लिङ् चोर्ध्वमौहूर्त्तिके ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९ ॥

लोडर्थलक्षण में वर्त्तमान धातु से दो घटी से ऊपर जो भविष्यत् काल उस में विकल्प करके लिङ् और लट् हों। उपाध्यायश्चेदागच्छति, आगमिष्यति, आगन्ता वा अथ त्वं छन्दोऽधीष्व ॥ ७५९ ॥

७६०—वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वा ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३१ ॥

वर्त्तमान के समीप का जो भूत वा भविष्यत् काल उस में वर्त्तमान धातु से वर्त्तमानवत् प्रत्यय विकल्प करके हो। अर्थात् "वर्त्तमाने लट्,, इस सूत्र से लेकर "उणादयो बहुलम्,, इस सूत्र पर्य्यन्त वर्त्तमानाधिकार में जिस २ निमित्त से जो २ प्रत्यय कहे हैं वे उन्हीं निमित्तों से वर्त्तमान समीप भूत वा भविष्यत् काल में विकल्प करके हों। कदा देवदत्तागतोऽसि, अयमागच्छामि। आगच्छन्तमेव मां विद्धि। अयमागमम्। एषोऽस्म्यागतः। कदा देवदत्त गमिष्यसि, एषगच्छामि। गच्छन्तमेव मां विद्धि। एष गमिष्यामि। गन्तास्मि। सामीप्यग्रहण से अतिकाल की विवक्षा में नहीं। परुदगच्छत् पाटलिपुत्रं वर्षेण गमिष्यति ॥ ७६० ॥

७६१—आशंसायां भूतवच्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३२ ॥

आशंसा गम्यमान होती भविष्यत् काल में धातु से विकल्प करके भूतवत् और वर्त्तमानवत् प्रत्यय हों। अप्राप्तप्रियवस्तु के पाने की इच्छा करने को आशंसा कहते हैं। उपाध्यायश्चेदागमत्। आगतः। आगच्छति। आगमिष्यति वा। एते वयं व्याकरणमध्यगीष्महि। एते वयं व्याकरणमधीतवन्तः। अधीमहे। अध्येष्यामहे। यहां "सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशः,, इस परिभाषाबल से लङ् और लिट् नहीं होते हैं। आशंसाग्रहण से यहां न हुआ। आगमिष्यति ॥ ७६१ ॥

७६२—क्षिप्रवचने लट् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३३ ॥

क्षिप्रवाची उपपद हो और आशंसा गम्यमान होती भविष्यत्काल में धातु से लट् प्रत्यय हो। यह पिछले सूत्र का अपवाद है। उपाध्यायश्चेत् क्षिप्रमागमिष्यति। क्षिप्रं व्याकरणमध्येष्यामहे। शीघ्रमाशुत्वरितमध्येष्यामहे वा ॥ ७६२ ॥

७६३—आशंसावचने लिङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३४ ॥

आशंसा कहने वाला पद उपपद होतो धातु से लिङ् प्रत्यय हो। यह (७६१) सूत्र का अपवाद है। उपाध्यायश्चेदागच्छेत् आशंसेऽधीयीय। आशंसेऽवकल्पयेयुक्तोऽधीयीय। आशंसे क्षिप्रमधीयीय ॥ ७६३ ॥

७६४—नानद्यतनवत् क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः ॥ अ० ॥३।३।१३५॥

क्रिया के प्रबन्ध और सामीप्य में अनद्यतनवत् प्रत्यय न हो। अर्थात् भूत अनद्यतन में लङ् और भविष्यत् अनद्यतन में लुट् विहित हैं वे न हों। क्रियाप्रबन्ध (क्रिया का निरन्तर होना) सामीप्य (तुल्यजातीय से अव्यवधान) क्रियाप्रबन्ध, यावज्जीवं भृशमन्नमदात्। भृशमन्नंदास्यति। यावज्जीवंपुत्रोऽध्यापिपत्। यावज्जीवमध्यापयिष्यति। सामीप्य, येयंपौर्णमास्यतिक्रान्ता, एतस्यामुपाध्यायोऽग्नीनाधित। सोमेनायष्ट। गामदित। येयममावास्याऽऽगामिनी, एतस्यामुपाध्यायोऽग्नीनाऽधास्यते। सोमेन यक्ष्यते। स गां दास्यते ॥ ७६४ ॥

७६५—भविष्यति मर्यादावचनेवरस्मिन् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३६ ॥

उरले भाग को ले कर मर्यादा हो तो भविष्यत् काल में अनद्यतनवत् प्रत्यय न हो। आपाटलिपुत्राद् योयमध्वा गन्तव्यस्तस्य यदवरं कौशाम्ब्यास्तत्र स्थास्यामि। भविष्यत् के ग्रहण से यहां न हुआ। आपाटलिपुत्राद्योयमध्वागतस्तस्य यदवरं कौशाम्ब्यास्तत्र युक्ता अध्यैमहि। मर्यादावचन से अन्यत्र। योयमध्वानिरवधिको गन्तव्यस्तस्य यदवरं कौशाम्ब्यास्तत्र भोक्तास्महे। अवरस्मिन् ग्रहण से यहां न०। आपाटलिपुत्राद् योयमध्वा गन्तव्यस्तस्य यत् परं कौशाम्ब्यास्तत्र भोक्तास्महे ॥७६५॥

७६६—कालविभागे चानहोरात्राणाम् ॥ अ०॥ ३ । ३ । १३७ ॥

समय की मर्यादा के विभाग में उरले विभाग की अपेक्षा हो तो भविष्यत् काल में अनद्यतनवत् प्रत्यय न हो। जो वह मर्यादाविभाग अहोरात्र संबन्धी न हो। योयं संवत्सर आगामी तत्र यदवरमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येष्यामहे। भविष्यत्ग्रहण से यहां न हुआ। योयं वत्सरोतीतस्तस्य यदवरमाग्राहायण्यास्तत्र युक्ता अध्यैमहि। मर्यादा से अन्यत्र। योयं निरवधिकः काल आगामी तस्ययदवरमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येतास्महे। अवरभाग की अपेक्षा में यह होगा। और परभाग में अगले सूत्र से विधान करेंगे। अनहोरात्र ग्रहण से यहां न हुआ। योयं मास आगामी तस्य योवरः पञ्चदशरात्रस्तत्र युक्ता अध्येतास्महे। योयं त्रिंशद्रात्र आगामी तस्य योवरोऽर्द्धमासस्तत्र युक्ता अध्येतास्महे। तत्र सक्तून् पातास्मः। सब प्रकार से अहोरात्र के स्पर्श में प्रतिषेध है ॥ ७६६ ॥

७६७—परस्मिन् विभाषा ॥ अ॰ ॥ ३ । ३ । १३८ ॥

समय की मर्यादा के विभाग में परभाग की अपेक्षा हो तो विकल्प करके अनद्यतनवत् प्रत्यय न हो । जो वह मर्यादावचन अहोरात्र संबन्धी विभाग में न हो । योयं संवत्सर आगामी तस्य यत्परमाग्रहायण्यास्तत्रयुक्ता अध्येष्यामहे । अध्येतास्महे । अनहोरात्र से अन्यत्र । योयंत्रिंशद्रात्र आगामी तस्य यः परः पञ्चदशरात्रस्तत्रयुक्ता अध्येतास्महे । भविष्यत्काल से अन्यत्र । योयंसंवत्सरोतीतस्तस्य यत् परमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येतास्महे । कालविभाग से अन्यत्र योयमध्वाऽऽगन्तव्य आपाटलिपुत्रात् तस्य यत्परं कौशाम्ब्यास्तत्र अध्येतास्महे (८३) सूत्र से लृङ् विधान कर चुके हैं उसका विशेष व्याख्यान करते हैं । दक्षिणेनचेदायास्यन्नशकटं पर्य्यभविष्यत् । यदि कमलकमाह्वास्यन्न शकटं पर्य्यभविष्यत् । अभोक्ष्यत भवान् घृतेन यदि मत्समीपमागमिष्यत् । यहां सर्वत्र भविष्यत्कालसंबन्धी कार्य का न होना हेतुमान् और दक्षिणमार्गगमन आदि हेतु हैं तथा भविष्यत्काल विषयक हेतु और हेतुमान् की अतिपत्ति वाक्यसे प्रतीति होती है ॥ ७६७ ॥

७६८—भूते च ॥ अ॰ ॥ ३ । ३ । १४० ॥

लिङ् निमित्त में क्रियातिपत्ति हो तो भूतकाल में भी लृङ् प्रत्यय हो । दृष्टो मया भवत्पुत्रोऽन्नार्थी चङ्क्रम्यमाणः । अपरश्च द्विजो ब्राह्मणार्थी यदि स तेन दृष्टोऽभविष्यत् तदाऽभोक्ष्यत नतु भुक्तवान् । अन्येन पथा स गतः ॥ ७६८ ॥

७६९—वोताप्योः ॥ अ॰ ॥ ३ । ३ । १४१ ॥

यहां से लेकर "उताप्योः समर्थयोर्लिङ्,, इस सूत्र पर्यन्त जो २ विधान करेंगे वहां लिङ् के निमित्त में क्रियातिपत्ति हो तो लृङ् विकल्प करके होता है यह अधिकार समझना चाहिये "विभाषाकथमि॰,, यह कहेंगे इस के विषय में कथं नाम तत्र भवान् वृषलमयाजयिष्यत् । याजयेद् वा ॥ ७६९ ॥

७७०—गर्हायां लडपिजात्वोः ॥ अ॰ ॥ ३ । ३ । १४२ ॥

कुत्सा अर्थ में अपि और जातु उपपद हों तो धातु से लट् प्रत्यय हो सामान्यकाल में। कालविशेष विहित जो प्रत्यय हैं उन को यह परत्व से बाध लेता है। अपितत्र भवान् वृषलं याजयति । जातु तत्र भवान् वृषलं याजयति । गर्हामहे । अहो अन्याय्यमेतत् । लिङ्निमित्त के अभाव से यहां क्रियातिपत्ति में लृङ् नहीं होता है ॥ ७७० ॥

७७१—विभाषा कथमिलिङ् च ॥ अ॰ ॥ ३ । ३ । १४३ ॥

कथम् शब्द उपपद हो और निन्दा पाई जाय तो धातु से लिङ् और लट्

प्रत्यय विकल्प करके हो। कथं नाम तत्र भवान् वृषलं याजयेत्। कथं तत्र भवान् वृषलं याजयति। विकल्प पक्ष में। कथं नाम तत्र भवान् वृषलं याजयिष्यति। कथं नाम तत्रभवान् वृषलं याजयिता। इत्यादि। यहां लिङ् निमित्त है इस से भूतकाल की क्रियातिपत्ति विवक्षा में विकल्प करके और भविष्यत् काल की में नित्य लृङ् होता है ॥ ७७१ ॥

७७२—किंवृत्ते लिङ्लृटौ ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४४ ॥

किम् शब्द का प्रयोग उपपद हो और गर्हा पाई जाय तो धातु से लिङ् और लृट् प्रत्यय हो। यहां लिङ् ग्रहण लट् की निवृत्ति के लिये है। को नाम वृषलो यं तत्रभवान् याजयेत्। यं तत्रभवान् वृषलं याजयिष्यति। कतरो नाम कतमो नाम यं तत्रभवान् वृषलं याजयेत्। याजयिष्यति। भूतकाल की क्रियापत्ति में विकल्प करके लृङ् और भविष्यत् सम्बन्धी में नित्य ही लृङ् होगा। को नाम वृषलो यं तत्रभवान् याजयिष्यत् ॥ ७७२ ॥

७७३—अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेऽपि ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४५ ॥

असंभावना और असहन अर्थ में किम् शब्द का प्रयोग उपपद हो वा न हो तो धातु से लिङ् और लृट् प्रत्यय हो। यहां अधिक अच्वाले "अनवक्लृप्ति,, शब्द का पूर्वनिपात किंवृत्त और अकिंवृत्त से अर्थों के यथासंख्य न होने का प्रकाशक है। अनवक्लृप्ति। नावकल्पयामि। नसंभावयामि। न श्रद्दधे। तत्रभवान् गुरुं निन्देत्। तत्र भवान् गुरुं निन्दिष्यति। कः कतरः कतमो वा गुरुं निन्देत्। निन्दिष्यति वा। अमर्ष, न मर्षयामि। तत्रभवान् गुरुं निन्देत्। निन्दिष्यति वा। को नाम गुरुं निन्देत्। निन्दिष्यति वा। लृङ् पूर्वनियम के तुल्य०। जैसे। नाव कल्पयामि तत्र भवान् वृषलमयाजयिष्यत् ॥ ७७३ ॥

७७४—किंकिलास्त्यर्थेषु लृट् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४६ ॥

किंकिल और अस्त्यर्थक धातु उपपद हों तो अनवक्लृप्ति और अमर्ष अर्थ में धातु से लृट् प्रत्यय हो। किंकिल शब्द क्रोध का प्रकाशक है। अस्त्यर्थक। अस्ति, भवति, विद्यति। यह लृट् लिङ् का अपवाद है। किंकिल नाम तत्रभवान् वृषलं याजयिष्यति। अस्तिनाम तत्र भवान् वृषलं याजयिष्यति। नश्रद्दधे। नमर्षयामि। इत्यादि। यहां लृङ् नहीं प्राप्त है ॥ ७७४ ॥

७७५—जातुयदोर्लिङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४७ ॥

जातु और यद् उपपद हों तो धातु से लिङ् हो। यह लृट् का अपवाद है। जातु तत्रभवान् गुरुं निन्देत्। यन्नाम तत्र भवान् गुरुं निन्देत्। नावकल्पयामि। नमर्षयामि। लृङ् पूर्ववत् ॥ ७७५ ॥

७७६-वा०-जातुयदोर्लिङ्विधानेयदाययद्योरुपसंख्यानम् ॥

यदा भवद्विधः क्षत्रियं याजयेत् । यदि भवद्विधः क्षत्रियं याजयेत् । नावकल्पामि नमर्षयामि । भूत, भविष्यत् क्रियातिपत्ति विवक्षा में पूर्ववत् लृङ् होगा ॥७७६॥

७७७—यच्चयत्रयोः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४८ ॥

यच्च वा यत्र उपपद हो और अनवक्लृप्ति तथा अमर्ष अर्थ गम्यमान होतो धातु से लिङ् प्रत्यय हो । यह लृट् का अपवाद है । यच्च तत्रभवान् गुरुं निन्देत् । यत्र तत्र भवान् गुरुं निन्देत् । नावकल्पयामि । नमर्षयामि । क्रियातिपत्ति में पूर्ववत् लृङ् होता है ॥ ७७७ ॥

७७८—गर्हायांच ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४९ ॥

गर्हागम्यमान हो और यच्च, यत्र उपपद हों तो धातु से लिङ् प्रत्यय हो । यह सब लकारों का अपवाद है । यच्च यत्र वा तत्रभवान् वृषलं याजयेत् । गर्हामहे अन्याय्यमेतत् । क्रियातिपत्ति में पूर्ववत् लृङ् होता है ॥ ७७८ ॥

७७९—चित्रीकरणेच ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५० ॥

यच्च यत्र उपपद हो और चित्रीकरण गम्यमान हो तो धातु से लिङ् प्रत्यय हो । चित्रीकरण आश्चर्य अद्भुत विस्मय करने योग्य को कहते हैं । यच्च यत्र वा भवान् वृषलं याजयेत् । आश्चर्य मेतत् । क्रियाति पत्ति में यथाप्राप्त लृङ् होता है ॥७७९

७८०—शेषेलृडयदौ ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५१ ॥

यदि शब्द भिन्न यच्च यत्र से अन्य उपपद हो और चित्रीकरण गम्यमान होतो धातु से लृट् प्रत्यय हो । सबलकारों का अपवाद है । आश्चर्यं चित्रमद्भुतम् । अन्धो नाम पर्वतमारोक्ष्यति । बधिरोनाम व्याकरणमध्येष्यते । अयदिग्रहण से यहां न हुआ । आश्चर्यं यदि सोऽधीयीत । इस विषय में लिङ् निमित्त के अभाव से लृङ् नहीं होता ॥ ७८० ॥

७८१—उताप्योः समर्थयोर्लिङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५२ ॥

समानार्थक उत और अपि उपपद हों तो धातु से लिङ् प्रत्यय हो । अङ्गीकार अर्थ में उत, अपि, समानार्थक हैं । उत कुर्य्यात् । अपि कुर्य्यात् । उताधीयीत । अप्यधीयीत । हां यह करेगा वा पढ़ेगा । समर्थग्रहण से यहां न हुआ । उत दण्डः पतिष्यति । अपि द्वारं धास्यति । दण्ड गिरेगा द्वार को ढ़ाप लेगा । यहां प्रश्न प्रच्छादन गम्यमान है "वोताप्योः,, यह निमित्त पूरा हो गया अब यहां से लेकर भूतकाल में भी क्रियातिपत्ति में नित्य लृङ् होगा ॥ ७८१ ॥

७८२—कामप्रवेदनेऽकच्चिति ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५३ ॥

कच्चित् शब्द न उपपद हो तो अपने अभिप्राय के प्रकाश करने में धातु से लिङ् प्रत्यय हो । यह सब लकारों का अपवाद है । कामो मे गच्छेद् भवान् । अभिलाषा इच्छा वा मम भुञ्जीत भवान् । अकच्चित् कहने से यहां न हुआ । कच्चिज्जीवति ते माता ॥ ७८२ ॥

७८३—संभावनेऽलमिति चेत्सिद्धाप्रयोगे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५४ ॥

जो सिद्ध अलम् शब्द का प्रयोग न किया जाय तो अलमर्थ सम्भावन में वर्त्तमान धातु से लिङ् प्रत्यय हो । जहां वाक्य में अलम् शब्द का अर्थ परिपूर्णता अर्थात् प्रौढपन गम्यमान हो और उस का प्रयोग न हो वहां सिद्ध अलम् का अप्रयोग । तथा क्रियाओं में योग्यता का निश्चय करना सम्भावन समझना चाहिये । यह सब लकारों का अपवाद है । अपि पर्वतं शिरसा भिन्द्यात् । अपि द्रोणपाकं भुञ्जीत । अलम् ग्रहण से यहां न हुआ । विदेशस्थो देवदत्तः प्रायेण ग्रामं गमिष्यति । सिद्धाप्रयोग ग्रहण से यहां न हुआ । अलं कृष्णो हस्तिनं हनिष्यति । भूत वा भविष्यत्काल की क्रियातिपत्ति में नित्य लृङ् होता है ॥ ७८३ ॥

७८४—विभाषाधातौ सम्भावनवचनेऽयदि ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५५ ॥

यद्शब्द वर्जित अलमर्थ संभावन अर्थ का कहने वाला धातु उपपद हो तो धातु से विकल्प करके लिङ् प्रत्यय हो जो सिद्ध अलम् का अप्रयोग हो । पूर्वसूत्र से नित्य-लिङ् प्राप्त था विकल्प के लिये यह सूत्र है । संभावयामि भुञ्जीत भवान् । संभावयामि भोक्ष्यते भवान् । अयद् ग्रहण से यहां न हुआ । संभावयामि यद्भुञ्जीत भवान् ॥ ७८४ ॥

७८५—हेतुहेतुमतोर्लिङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५६ ॥

हेतु कारण और हेतुमत् जिस में कारण रहे अर्थात् फल उन में वर्त्तमान जो धातु हो उस से लिङ् प्रत्यय विकल्प करके हो । दक्षिणेन चेद् यायात् न शकटं पर्याभवेत् । यहां दक्षिणमार्ग से जाना हेतु और अपरिपूर्त्ति होना फल है । लिङ् वर्त्तमान था पुनर्लिङ् ग्रहण विशेष काल के संग्रह करने के लिये है । इस से यह लकार भविष्यत् काल में होता है । द्वितीय पक्ष में लृट् । दक्षिणेन चेद्यास्यति न शकटं पर्या भविष्यति । भविष्यत् के नियम से यहां न हुआ । हन्तीति पलायते । वर्षतीति धावति । क्रियातिपत्ति में लृङ् होता है ॥ ७८५ ॥

७८६—इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५७ ॥

इच्छा अर्थ वाले धातु उपपद हों तो धातु से लिङ् और लोट् प्रत्यय हों ।

यह सब लकारों का अपवाद है। इच्छामि भुञ्जीत भवान्। इच्छामि भुङ्क्तां भवान् कामये। प्रार्थये। पठतु भवान्। कामप्रवेदनं चेत्। महाभाष्य०।३।३।१५७। जो प्रत्यन्त इच्छा विदित करना गम्यमान हो तो उक्त लिङ् प्रत्यय हो यह कहना चाहिये अर्थात् यहां न हो। इच्छन् कटं करोति ॥ ७८६ ॥

७८७—लिङ् च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५९ ॥

समानकर्ता वाले इच्छार्थक धातु उपपद हों तो धातु से लिङ् प्रत्यय हो। भुञ्जीयेतीच्छति। अधीयीयेतीच्छति। क्रियातिपत्ति में लृङ् होता है ॥ ७८७ ॥

७८८—इच्छार्थेभ्यो विभाषा वर्त्तमाने ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६० ॥

इच्छार्थक धातुओं से वर्तमान काल में विकल्प करके लिङ् प्रत्यय होता है। इच्छति। इच्छेत्। कामयते। कामयेत। वष्टि। उश्यात्। प्रथम (७७।६४) से लिङ् और लोट् का विधान किया है। अब उस विषय के क्रम से उदाहरण देते हैं। जैसे। विधि, भवान् पठेत्। ग्रामं भवानागच्छेत्। निमन्त्रण, इह भवान् भुञ्जीत। आमन्त्रण, इहभवानासीत। अधीष्ट, भवान् पुत्रमध्यापयेत्। संप्रश्न, किं भो वेदमधीयीय। प्रार्थन, भवतिमे प्रार्थना व्याकरणमधीयीय। इसी प्रकार लोट् भी होगा। भवान् पठतु इत्यादि ॥ ७८८ ॥

७८९—प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६३ ॥

प्रैष (प्रेरणा करना) अतिसर्ग (इच्छा पूर्वक आज्ञा देना) प्राप्तकाल (कार्य के समय का अवसर पाना) इन अर्थों में धातु से कृत्य संज्ञक और लोट्* प्रत्यय हो। कृत्य, भवता कटः करणीयः। कर्त्तव्यः कटः कृत्यः कार्यः। इत्यादि। लोट्, करोतु कटं भवानिह प्रेषितः भवानतिसृष्टः। भवतः प्राप्तकालः कट करणे ॥ ७८९ ॥

७९०—लिङ् चोर्ध्वमौहूर्त्तिके ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६४ ॥

प्रैषादि अर्थ गम्यमान हों तो दो घड़ी से ऊपर जो भविष्यत् काल है उस में वर्त्तमान धातु से लिङ् और यथाप्राप्त कृत्य लोट् भी हों। मुहूर्त्तादुपरि भवता खलु कटः कर्त्तव्यः। करणीयः। कार्यः। भवान् खलु कटं कुर्य्यात् भवान् खलु कटं करोतु। भवानिहप्रेषितः। अतिसृष्टः प्राप्तकालोवा ॥ ७९० ॥

* प्रैषातिसर्ग० सूत्र की व्याख्या में जो कौमुदीकार ने लोट् का अनुकर्षण कर केवल उस को प्राप्तकाल अर्थ ही के लिये माना है यह उन का मानना असंगत है क्यों कि उक्त सूत्र की व्याख्या जो महाभाष्यकारने की है उस से स्पष्ट विदित होता है कि प्रैषादि तीनों अर्थों में लोट् प्रत्यय होता है यथा 'अयं प्रैषादिष्वर्थेषु लोट् विधीयते स विशेषविहितः सामान्य विहितान् कृत्यान् बाधेत, इत्यादि महाभाष्य० ३ । ३ । १६३ ॥

७६१—स्मे लोट् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६५ ॥

प्रैषादि अर्थ गम्यमान हों और स्म शब्द उपपद हो तो ऊर्ध्वमौहूर्त्तिक अर्थ में वर्त्तमान धातु से लोट् प्रत्यय हो । यह लिङ् और कृत्य प्रत्ययों का अपवाद है । मुहूर्त्तादूर्ध्वं भवान् कटं करोतु स्म । माणवकमध्यापयतु स्म ॥ ७६१ ॥

७६२—अधीष्टे च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६६ ॥

सत्कारपूर्विका चेष्टा गम्यमान और स्म उपपद हो तो धातु से लोट् प्रत्यय हो । यह लिङ् का अपवाद है । अङ्ग स्म राजन् माणवकमध्यापय ॥ ७६२ ॥

७६३—लिङ् यदि ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६८ ॥

काल, समय और वेला तथा यद् शब्द उपपद होतो धातु से लिङ् प्रत्यय हो । यह तुमुन् प्रत्यय का अपवाद है । कालो यद्भुञ्जीत भवान् । समयो यद्भुञ्जीत भवान् वेला यद्भुञ्जीत भवान् ॥ ७६३ ॥

७६४—अर्हे कृत्यतृचश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ १६९ ॥

अर्ह कर्त्ता वाच्य वा गम्यमान होतो धातु से कृत्य, तृच् और लिङ् प्रत्यय हो । भवता खलु कन्या वोढव्या । वाह्या । वहनीया वा । भवान् खलु कन्याया वोढा । भवान् खलु कन्यां वहेत् ॥ ७६४ ॥

७६५—शकि लिङ् च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७२ ॥

शक्तिअर्थ में धातु से लिङ् और कृत्य प्रत्यय हो । भवता खलुभारो वोढव्यः । वहनीयः । भवान् खलुभारं वहेत् । भवानिह शक्तः ॥ ७६५ ॥

७६६—माङि लुङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७५ ॥

माङ् उपपद होतो धातु से लुङ् प्रत्यय हो यह सब लकारों का अपवाद है माकार्षीत् । माहार्षीत् ॥ ७६६ ॥

७६७—स्मोत्तरे लङ् च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७६ ॥

स्म जिस से परे हो वह माङ् शब्द उपपद हो तो धातु से लङ् और लुङ् प्रत्यय हो । मास्म करोत् । मास्मकार्षीत् । मास्म हरत् । मास्म हार्षीत् ॥ ७६७ ॥

७६८—धातुसंबन्धे प्रत्ययाः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १ ॥

धात्वर्थ संबन्ध काल में प्रत्यय हों । अर्थात् जिस२ काल में प्रत्यय कहे हैं उन से अन्यत्र भी हों । अग्निष्टोमयाजी तब पुत्रो जनिता । कृतः कटः श्वो भविता । भाविकृत्यमासीत् । अग्निष्टोमयाजी, यह भूतकाल और जनिता यह भविष्यत् काल में है यहां भूतकाल जनिता के भविष्यत् काल का संबन्ध पाकर साधु होता है । अष्टाध्यायी

के क्रम से प्रत्ययाधिकार वर्त्तमान था तथापि यहां प्रत्ययग्रहण का यह प्रयोजन है कि धात्वधिकार से अन्य भी प्रत्यय धातु संबन्ध काल में हो जावें। गोमानासीत् गोमान् भविता यहां गावो विद्यन्तेऽस्य, इस विग्रह से वर्त्तमान काल में भी किया हुआ मतुप् आसीत्, भविता इन क्रियापदों के संबंध से भूत और भविष्यत् काल का कहने वाला होता है ॥ ७९८ ॥

७९९–क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः ॥ अ० । ३ । ४ । २ ॥

क्रियासमभिहार (बार २ होना निरन्तर होना) अर्थ में धातु से लोट् और उस लोट् के स्थान में परस्मैपद हि, और आत्मनेपद स्व आदेश हों। तथा त और ध्वम् भावी लोट् के स्थान में हि और स्व विकल्प करके हों। यह सब लकारों का अपवाद है। क्यों कि सब लकारों के विषय में होता है ॥ ७९९ ॥

८००—समुच्चयेऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३ ॥

अनेकक्रियाओं के अध्याहार में धातु से विकल्प करके लोट् और उस लोट् के स्थान में यथोक्त हि, और स्व आदेश हों ॥ ८०० ॥

८०१–यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४ ॥

पूर्वोक्तलोट् विधान में यथाविधि अनुप्रयोग हो। अर्थात् जिस धातु से लोट् विहित हो उसी धातु का संख्या, काल और पुरुष के नियम से पीछे प्रयोग हो ॥ ८०१ ॥

८०२ – समुच्चये सामान्यवचनस्य ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५ ॥

समुच्चय अर्थ में लोट् विधान हो तो सामान्य अर्थ कहनेवाले धातु का अनुप्रयोग हो ॥ ८०२ ॥

८०३—वा०—क्रियासमभिहारे द्वे भवत इतिवक्तव्यम् ॥

क्रियासमभिहारार्थविहित लोट् के विषय में द्विर्वचन हो। क्रियासमभिहार में परस्मैपद लट् लकार, स भवान् लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनाति। इमौ लुनीतः इमे लुनन्ति। लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनासि। युवां लुनीथः। यूयं लुनीथ। लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनामि। आवां लुनीवः वयं लुनीमः। इत्यादि। आत्मनेपद। अधीष्वाधीष्वेत्येवायमधीते। इमावधीयाते। इमेऽधीयते। इत्यादि। इस प्रकार सब लकारों में उदाहरण जानना चाहिये। क्रियासमभिहार में। दुग्धं पिब चणकान् चर्व। इत्यभ्यवहरति। अन्नं भुङ्क्ष्व। दाधिकमास्वादस्वेत्यभ्यवहरते। त, ध्वम् के विषय में दुग्धं पिब चणकाञ्चर्वेत्यभ्यवहरथ। अन्नं भुङ्क्ष्व। दाधिकमास्वादस्वेत्यभ्यवहरध्वे। दुग्धं पिबत चणकाञ्चर्वेतेत्यभ्यवहरथ अन्नं भुङ्ग्ध्वं, दाधिकमास्वादध्वम्।

इत्यवहरध्वे इसी प्रकार क्रियासमभिहार और समुच्चय अर्थ में सब लकारों के विषय में लोट् होता है ॥ ८०३ ॥

८०४—छन्दसि लुङ्लङ्लिटः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६ ॥

छन्दोविषयक धातुसंबन्ध सामान्यकाल में धातु से विकल्प करके लुङ् लङ् और लिट प्रत्यय हों । लुङ्, शकलाङ्गुष्ठको करत् । अहं तेभ्योकरन्नमः । लङ् अग्निमद्य होतारमवृणीयं यजमानः । लिट्, अद्याममार । अद्यम्रियते ॥ ८०४ ॥

इति लकारार्थप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ षत्वप्रक्रियाऽऽरम्भः ॥

८०५—अपदान्तस्य मूर्द्धन्यः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ५५ ॥

अपदान्त सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो । यह अधिकार करते हैं अष्टाध्यायी में यह तृतीय पाद का प्रकरण है इस पाद की समाप्ति पर्यन्त । सिषेव । सुष्वाप । अग्निषु । वायुषु । इत्यादि यहां सर्वत्र (५६) सूत्र से षत्व हुआ है । अपदान्तग्रहण इस लिये है कि अग्निस्तत्र यहां मूर्द्धन्य न हो । सकार को षकार कहते तो धकार को ढकार भी कहने पड़ता इस लिये मूर्द्धन्य शब्द पढ़ा है ॥ ८०५ ॥

८०६—सहेः साडः सः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ५६ ॥

साड् रूप सह धातु के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो । जलाषाट् । तुराषाट् । पृतनाषाट् । साड्ग्रहण से । तुरासाहम् । यहां नहीं होता । स को इस लिये कहा कि आकार को न हो जावे ॥ ८०६ ॥

८०७—इण्कोः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ५७ ॥

यह भी अधिकार सूत्र है । अपदान्त सकार को मूर्द्धन्यादेश कहें सो इण् कवर्ग से हो परे हो । जैसे । कर्त्तृषु । हर्त्तृषु । वाक्+सु=वाक्षु । इण् कवर्ग से परे नियम इस लिये है कि । दास्यति, असौ यहां न हो ॥ ८०७ ॥

८०८—नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ५८ ॥

नुम्, विसर्जनीय और शर्प्रत्याहार इन के व्यवधान में भी इण् कवर्ग से अपदान्त सकार को मूर्द्धन्यादेश हो । जैसे नुम् के व्यवधान में । सर्पि+नुम् स+जस्=सर्पींषि । हवींषि । यजूंषि । इत्यादि । विसर्जनीय के व्यवधान में । सर्पिःषु । धनुःषु । यजुःषु । इत्यादि । शर्व्यवधान में सर्पिष्षु । यजुष्षु । हविष्षु । इत्यादि ।

इस सूत्र में नुम् आदि के व्यवधान का पृथक् २ प्रत्येक का ग्रहण है। इस लिये निंस्से। निंस्स्व। यहां नुम् और शर् दो के व्यवधान में षत्व नहीं होता ॥८०८॥

८०९—स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात् ॥ अ० ॥ ८।३।६१ ॥

षणरूप सन् परे हो तो स्तु और णिजन्त धातुओं के इणन्त अभ्यास से परे जो आदेश का सकार उस को मूर्द्धन्य आदेश हो। स्तोतुमिच्छति, तुष्टूषति। णिजन्त से। सेवयितुमिच्छति, सिषेवयिषति। सुष्वापयिषति। सिषञ्जयिषति। इन धातुओं में इण् कवर्ग से परे अन्यसूत्रों से षत्व हो जाता फिर यह सूत्र नियमार्थ है कि सन् के परे स्तु और णिजन्त के ही अभ्यास से परे षत्व हो। इस नियम से। सिसिक्षति। सुसूषति। यहां षत्व नहीं होता। स्तौति और णिजन्त के साथ एव शब्द पढ़ने से यह नियम नहीं होता कि। स्तौति और णिजन्त को सन् ही के परे षत्व हो इससे। तुष्टाव। आदि में षत्व हो जाता है और। सिसिक्षति। में षत्व नहीं होता ॥ ८०९ ॥

८१०—सः स्विदिस्वदिसहीनां च ॥ अ० ॥ ८।३।६२ ॥

षण रूप सन् परे होतो स्विदि, स्वदि और सहि इन णिजन्त धातुओं के इणन्त अभ्यास से परे अपदान्त सकारको सकारादेश ही हो। स्वेदयितुमिच्छति, सिस्वेदयिषति। सिस्वादयिषति। सिसाहयिषति। यहां सकार को सकार कहने से मूर्द्धन्य नहीं होता ॥ ८१० ॥

८११ प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि ॥ अ० ॥ ८।३।६३ ॥

परिनिविभ्यः सेवसित०) इस आगामी सूत्र के सित शब्द से पहिले २ अट् के व्यवधान में भी मूर्द्धन्य आदेश होता है। अपि शब्द के पढने से अड्व्यवाय से अन्यत्र निषेध नहीं होता ॥ ८११ ॥

८१२—स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य ॥ अ० ॥ ८।३।६४ ।

(उपसर्गात् सुनो०) इस अगले सूत्र में (परि० सेवसि०) आगामी सूत्र से पहिले२ इण् कवर्ग से परे अभ्यास के व्यवधान में और अभ्यास की सकार को मूर्द्धन्यादेश होता है ॥ ८१२ ॥

८१३—उपसर्गात्सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्था सेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम् ॥ अ० ॥ ८।३।६५ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त इण् से परे सुनोति, सुवति, स्यति, स्तोभति, स्था, सेनय, सेध, सिच, सञ्ज और स्वञ्ज इन के सकार को मूर्द्धन्यआदेश हो। सुनोति, अभिषुणोति। परिषुणोति। अभ्यषुणोत्। पर्यषुणोत्। सुवति, अभिषुवति।

परिषुवति । अभ्यषुवत् । पर्यषुवत् । स्यति, अभिष्यति । परिष्यति । अभ्यष्यत् । पर्यष्यत् । स्तौति, अभिष्टौति । परिष्टौति । अभ्यष्टौत् । स्तोभति, अभिष्टोभते । अभ्यष्टोभत । पर्यष्टोभत । स्था, अभिष्ठास्यति । परिष्ठास्यति । अभ्यष्ठात् । पर्यष्ठात् । स्थादि कों में अभ्यास के व्यवधान में और अभ्यास के सकार को भी मूर्द्धन्य कहचुके हैं । अभितष्ठौ । अभितष्ठतुः । परितष्ठौ । यहां अभ्यास में सकार नहीं । सेना, सेनया अभियाति । अभिषेणयति । अभ्यषेणयत् । पर्यषेणयत् । अभिषेणयितुमिच्छति, अभिषिषेणयिषति । परिषिषेणयिषति । यहां अभ्यास के व्यवधान में और अभ्यास के सकार को भी मूर्द्धन्य होता है । सेध, अभिषेधति । परिषेधति । अभ्यषेधत् । अभिषिषेध । सिच्, अभिषिञ्चति । परिषिञ्चति । पर्यषिञ्चत् । अभिषिषिक्षति । सञ्ज, अभिषजति । अभ्यषजत् । अभिषिषङ्क्षति । स्वञ्ज, अभिष्वजते । अभ्यष्वजत् । पर्यष्वजत । परिषिष्वङ्क्षते । सिध धातु का गुण किया निर्देश है इस से दिवादि के सिध धातु को षत्व नहीं होता। परिसिध्यति । पर्यसिध्यत्। उपसर्गग्रहण इस लिये है कि । दधिसिञ्चति । यहां षत्व न हो निर्गतः सेचका अस्माद्ग्रामात्, निःसेचको ग्रामः । यहां निर् उपसर्ग का सबन्ध गमन क्रिया के साथ है सेचक शब्द के साथ नहीं ॥ ८१३ ॥

८१४—सदिरप्रतेः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६६ ॥

प्रति भिन्न उपसर्गस्थ निमित्त से परे सद् धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो । निषीदति । विषीदति । न्यषीदत् । व्यषीदत् । निषसाद । विषसाद । प्रति का निषेध होने से । प्रतिसीदति । यहां षत्व न हुआ ॥ ८१४ ॥

८१५—स्तन्भेः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६७ ॥

उपसर्गस्थ इण् से परे स्तन्भ धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश होवे । अभिष्टभ्नाति । परिष्टभ्नाति । अभ्यष्टभ्नात्। अभितष्टम्भ । परितष्टम्भ । यहां प्रति के निषेध की अनुवृत्ति नहीं आती है । प्रतिष्टभ्नाति । प्रत्यष्टभ्नात् । प्रतितष्टम्भ । यहां स्तम्भ धातु को ही सूत्रकार ने नकारोपध पढ़ा है ॥ ८१५ ॥

८१६—अवाच्चालम्बनाविदूर्य्ययोः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६८ ॥

आश्रय और कुछ समीप होने अर्थ में अव उपसर्ग से परे स्तन्भ धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो आलम्बन; अवष्टभ्यास्ते । अवष्टभ्यतिष्ठति । अवष्टब्धा सेना। अवष्टब्धा शरत्। आलम्बन और आविदूर्य अर्थ से अन्यत्र। अवस्तब्धो वृषलः शीतेन । यहां षत्व नहीं होता। अव उपसर्ग इणन्त नहीं है इस लिये यह सूत्र पढ़ा है नहीं तो पूर्वसूत्र से षत्व हो ही जाता ॥ ८१६ ॥

८१७—वेश्च स्वनो भोजने ॥ अ०॥ ८।३।६९॥

वि और अव उपसर्ग से परे भोजन अर्थ में स्वन धातु के सकार को मूर्द्धन्य हो। विष्वणति। व्यष्वणत्। विषष्वाण। अवष्वणति। अवाष्वणत्। अवषष्वाण। भोजन अर्थ से अन्यत्र। विस्वनति मृदङ्गः। अवस्वनति वीणा। यहां शब्द अर्थ में षत्व नहीं होता॥ ८१७॥

८१८—परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम् ॥ अ०॥ ८।३।७०॥

परि, नि, वि उपसर्गों से परे सेव, सित, सय, सिवु, सह, सुट्, स्तु और स्वञ्ज के सकार को मूर्द्धन्यादेश होवे। परिषेवते। निषेवते। विषेवते। पर्यषेवत। व्यषेवत। न्यषेवत। परिषिषेविषते। विषिषेविषते। निषिषेविषते। सित, परिषितः। विषितः। निषितः। सय, परिषयः। विषयः। निषयः। सिवु, परिषीव्यति। विषीव्यति। निषीव्यति। पर्यषीव्यत्। न्यषीव्यत्। व्यसीव्यत्। यहां सिव आदि में अट् के व्यवधान में अगले सूत्र से षत्व विकल्प है। सह, परिषहते। निसहते। विषहते। पर्यषहत। न्यषहत। व्यषहत। पर्यसहत। न्यसहत। व्यसहत। सुट्, परिष्करोति। पर्यस्करोत्। स्तु, परिष्टौति। निष्टौति। विष्टौति। पर्यष्टौत्। पर्यस्तौत्। स्वञ्ज, परिष्वजते। विष्वजते। पर्यष्वजत। पर्यस्वजत। स्तु और स्वञ्ज धातु पूर्व "उपसर्गात्सुनोति,, सूत्र में भी पढ़े हैं उस से षत्व हो जाता। फिर यहां पढ़ने का यही प्रयोजन है कि अगले सूत्र से अट् के व्यवधान में विकल्प से षत्व होवे॥ ८१८॥

८१९—सिवादीनां वाऽड्व्यवायेऽपि ॥ अ०॥ ८।३।७१॥

अट् के व्यवधान में भी परि, नि, वि इन उपसर्गों से परे पूर्वसूत्रोक्त सिवादिकों के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो। इस सूत्र के उदाहरण पिछले सूत्र में दे चुके हैं। पर्यषहत। पर्यसहत। इत्यादि॥ ८१९॥

८२०—अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु ॥ अ०॥ ८।३।७२॥

अप्राणी अभिधेय हो तो अनु, वि, परि, अभि, नि इन उपसर्गों से परे स्यन्द धातु के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो। अनुष्यन्दते। विष्यन्दते। परिष्यन्दते। अभिष्यन्दते। निष्यन्दते। तैलम्। अनुस्यन्दते। विस्यन्दते। परिस्यन्दते। अभिस्यन्दते। निस्यन्दते। अप्राणिग्रहण से यहां न हुआ। अनुस्यन्दते मत्स्य उदके। अनुस्यन्दते। हस्ती। अप्राणिषु, यह पर्युदास प्रतिषेध है इस से जहां प्राणि अप्राणि दोनों का विषय है वहां भी मूर्द्धन्यादेश हो जाता है यहां ऐसा भाष्यकार का इङ्गित मालूम होता है। अनुष्यन्दते। मत्स्योदके॥ ८२०॥

८२१—वेः स्कन्देरनिष्ठायाम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७३ ॥

निष्ठा प्रत्यय न परे हो तो वि उपसर्ग से परे स्कन्द धातु के सकार को मूर्द्धन्य आदेश विकल्प करके हो । विष्कन्ता । विस्कन्ता । विष्कन्तुम् । विस्कन्तुम् । विष्कन्तव्यम् । विस्कन्तव्यम् । अनिष्टाग्रहण से यहां न हुआ । विस्कन्नः ॥ ८२१ ॥

८२२—परेश्च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७४ ॥

परि उपसर्ग से परे स्कन्द धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश विकल्प करके हो । परिष्कन्ता । परिष्कन्तुम् । परिष्कन्तव्यम् । परिस्कन्ता । परिस्कन्तुम् । परिस्कन्तव्यम् । यह सूत्र जो पिछले सूत्रसे अलग किया है इस से जानना चाहिये कि पिछले सूत्र से यहां 'अनिष्टायाम्, इस पद की अनुवृत्ति नहीं आती है ॥ ८२२ ॥

८२३—परिस्कन्दः प्राच्यभरतेषु ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७५ ॥

प्राच्यभरत अभिधेय होतो (परिस्कन्द) यहां मूर्द्धन्यादेश का अभाव निपातन है । परिस्कन्दः । प्राच्यभरतों से अन्यत्र । परिष्कन्दः । यह होता है ॥ ८२३ ॥

८२४—स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७६ ॥

निस्, नि, वि इन के उत्तर स्फुरति और स्फुलति के सकार को मूर्द्धन्यादेश विकल्प करके हो । स्फुरति, निष्ष्फुरति । निस्स्फुरति । निस्फुरति । निष्फुरति । विस्फुरति । विष्फुरति । स्फुलति, निष्ष्फुलति । निस्स्फुलति । निस्फुलति । निष्फुलति । विष्फुलति । विस्फुलति ॥ ८२४ ॥

८२५—वेः स्कभ्नातेर्नित्यम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७७ ॥

वि से परे स्कभ्नाति के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो । विष्कभ्नाति । विष्कम्भिता । विष्कम्भितुम् । विष्कम्भितव्यम् ॥ ८२५ ॥

८२६—समासेऽङ्गुलेः सङ्गः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८० ॥

समास में अङ्गुलि शब्द से परे सङ्ग शब्द के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो । अङ्गुलेः सङ्गः, अङ्गुलिषङ्गः । समासग्रहण से यहां न हुआ । अङ्गुलेः सङ्गं पश्य ॥ ८२६ ॥

८२७—भीरोः स्थानम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८१ ॥

समास में भीरु शब्द से उत्तर स्थान शब्द के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो । भीरुष्ठानम् । समासग्रहण से यहां न हुआ । भीरोः स्थानं पश्य ॥ ८२७ ॥

८२८—अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८२ ॥

अग्नि शब्द से परे स्तुत्, स्तोम, सोम इन के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो ।

पग्निष्टुत् । अग्निष्टोमः । अग्नीषोमौ । दीर्घअग्नि शब्द से परे मूर्द्धन्यादेश इष्ट है इस से यहां न हुआ । अग्निसोमौ माणवकौ ॥ समासग्रहण से यहां न हुआ । अग्निं सोमं पश्य ॥ ८२८ ॥

८२९—ज्योतिरायुषः स्तोमः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८३ ॥

समास में ज्योतिस् और आयुस् शब्द से परे स्तोम शब्द के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो । ज्योतिष्टोमः । आयुष्टोमः । समासग्रहण से यहां न हुआ । ज्योतिः स्तोमं दर्शयति ॥ ८२९ ॥

८३०—मातृपितृभ्यां स्वसा ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८४ ॥

समास में मातृ और पितृ से परे स्वसृ शब्द के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो । मातृष्वसा । पितृष्वसा ॥ ८३० ॥

८३१—मातुःपितुर्भ्यामन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८५ ॥

समास में मातुर् और पितुर् से परे स्वसृ शब्द के सकार को मूर्द्धन्यादेश विकल्प करके हो । मातुःष्वसा । मातुःस्वसा । पितुःष्वसा । पितुःस्वसा । समासग्रहण से वाक्य में न हुआ । मातुः स्वसा ॥ ८३१ ॥

८३२—अभिनिसः स्तनः शब्दसंज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८६ ॥

शब्दसंज्ञा गम्यमान हो तो अभि निस् से परे स्तन धातु के सकार को विकल्प करके मूर्द्धन्यादेश हो । अभिनिष्टानो वर्णः । अभिनिष्टानो विसर्जनीयः । अभिनिस्तानो वर्णः । अभिनिस्तानो विसर्जनीयः । शब्दसंज्ञा से अन्यत्र । अभिनिस्तनति मृदङ्गः ॥ ८३२ ॥

८३३—उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८७ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त और प्रादुस् शब्द से परे यकार और अच् जिस से परे हो उस अस् धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो । अभिषन्ति । निषन्ति । विषन्ति । प्रादुःषन्ति । अभिष्यात् । निष्यात् । विष्यात् । प्रादुःष्यात् । उपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । दधि स्यात् । मधुस्यात् । अस्तिग्रहण से यहां न हुआ । अनुसृतम् । यच्परग्रहण से यहां न हुआ । निस्तः । विस्तः । प्रादुःस्तः ॥ ८३३ ॥

८३४—सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८८ ॥

सु, वि, निर् और दुर् से परे सुपि, सूति और सम के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो (सुपि) यह संप्रसारण किये हुए स्वप् धातु का ग्रहण है । सुषुप्तिः । सुषुप्तः । विषुप्तः । निःषुप्तः । दुःषुप्तः । सूति, सुषूतिः । विषूतिः । निःषूतिः । दुःषूतिः । सम, सुषमम् । विषमम् । निःषमम् । दुःषमम् ॥ ८३४ ॥

८३५—निनदीभ्यां स्नातेः कौशले ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८६ ॥

कुशलता गम्यमान हो तो नि और नदी से परे स्नाति के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो । निष्णातः शिल्पशास्त्रे । नद्यां स्नातीति नदीष्णः * । कौशलग्रहण से यहां न हुआ । निस्नातः । नद्यां स्नातो नदीस्नातः ॥ ८३५ ॥

८३६—सूत्रं प्रतिष्णातम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ९० ॥

सूत्र वाच्य हो तो प्रतिष्णात यह निपातन है । प्रतिष्णातं सूत्रम् । सूत्र शुद्ध है । यहां प्रति से स्ना धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश हुआ । सूत्र से अन्यत्र । प्रतिस्नातम् होगा ॥ ८३६ ॥

८३७—कपिष्ठलो गोत्रे ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ९१ ॥

गोत्रविषयक कपिष्ठल शब्द के सकार को मूर्द्धन्यादेश निपातन है । कपिष्ठल जिस का नाम है वह कापिष्ठलि पुत्र है। अन्यत्र। कपेः स्थलम् कपिस्थलम् ॥ ८३७॥

८३८—प्रष्ठोऽग्रगामिनि ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ९२ ॥

अग्रगामी अभिधेय हो तो 'प्रष्ठ, यह निपातन है । प्रतिष्ठत इति प्रष्ठः । आगे चलता है । यहां प्र से परे स्था धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश निपातन किया है । अग्रगामिग्रहण से यहां न हुआ । व्रीहीनां प्रस्थः ॥ ८३८ ॥

८३९—वृक्षासनयोर्विष्टरः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ९३ ॥

वृक्ष और आसन वाच्य हों तो वि उपसर्ग से परे स्तृणाति धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश निपातन है। विष्टरो वृक्षः । विष्टरम् आसनम् । वृक्षासनग्रहण से यहां न हुआ । वाक्यस्य विस्तारः ॥ ८३९ ॥

८४०—छन्दोनाम्नि च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ९४ ॥

छन्दोनामविषय में वि पूर्वक स्तृञ् धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश निपातन है । विष्टारपङ्क्तिः । विष्टारबृहती । छन्दोनामग्रहण से यहां न हुआ । पटस्य विस्तारः ॥ ८४० ॥

८४१—गवियुधिभ्यां स्थिरः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ९५ ॥

गवि और युधि शब्द से परे स्थिर शब्द के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो । गविष्ठिरः । युधिष्ठिरः । इस सूत्र में जो गवि, सप्तम्यन्त गोशब्द से मूर्द्धन्यादेश का विधान है इस ज्ञापन से समास में गोशब्द से सप्तमी का अलुक् होता है ॥ ८४१ ॥

* (सुपिस्थः) इस सूत्र में योगविभाग किया है उस से 'नदीष्णः' यहां क प्रत्यय होता है ॥

८४२—विकुशमिपरिभ्यः स्थलम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ९६ ॥

वि, कु, शमि, परि इन से स्थल शब्द के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो । विष्ठलम् । कुष्ठलम् । शमिष्ठलम् । परिष्ठलम् । अन्यत्र कुशस्थली । मरुस्थली ॥८४२॥

८४३—अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेकुशङ्क्वङ्गुमञ्जिपुञ्जिपरमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ९७ ॥

अम्ब, आम्ब, गो, भूमि, सव्य, अप, द्वि, त्रि, कु, शेकु, शङ्कु, अङ्गु, मञ्जि, पुञ्जि, परमे, बर्हिस्, दिवि, अग्नि इन से परे स्थ शब्द के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो । अम्बष्ठः । आम्बष्ठः । गोष्ठः । भूमिष्ठः । सव्येष्ठः । अपष्ठः । द्विष्ठः । त्रिष्ठः । कुष्ठः । शेकुष्ठः । शङ्कुष्ठः । अङ्गुष्ठः । मञ्जिष्ठः । पुञ्जिष्ठः । परमेष्ठः । बर्हिष्ठः । दिविष्ठः । अग्निष्ठः ॥ ८४३ ॥

८४४—वा०—स्थास्थिन्स्थॄणामिति वक्तव्यम् ॥

सव्येष्ठाः । परमेष्ठी । सव्येष्ठा ॥ ८४४ ॥

८४५—सुषामादिषु च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ९८ ॥

सुषामादिक शब्दों में सकार को मूर्द्धन्यादेश होता है । शोभनं साम यस्यासौ सुषामा ब्राह्मणः । निष्षामा । दुष्षेधः, इत्यादि ॥ ८४५ ॥

८४६—एति संज्ञायामगात् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ९९ ॥

संज्ञाविषय में एकार परे होतो इण् और गरहित कवर्ग से परे सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो । हरिषेणः । वारिषेणः । जानुषेणी । एकार से अन्यत्र । हरिसक्थम् । संज्ञासे अन्यत्र । पृथ्वी सेना यस्य स पृथुसेनो राजा । अगात् के ग्रहण से यहां न हुआ । विष्वक्सेनः । इण्, कु से अन्यत्र । सर्वसेनः ॥ ८४६ ॥

८४७—नक्षत्राद्वा ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १०० ॥

संज्ञा विषय में एकार परे होतो इण् और गकारभिन्न कवर्गवान् नक्षत्र वाची शब्द से परे सकार को मूर्द्धन्य आदेश विकल्प करके हो । रोहिणिषेणः । रोहिणिसेनः । भरणिषेणः । भरणिसेनः । गकार के निषेध से यहां न हुआ । शतभिषक्सेनः ॥८४७॥

८४८—ह्रस्वात्तादौ तद्धिते ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १०१ ॥

तकारादि तद्धित परे होतो ह्रस्व से परे सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो । तकारादि तद्धित । तर, तम, तय, त्व, तल्, तस्, त्यप् । तर, सर्पिष्टरम् । यजुष्टरम् । तम, सर्पिष्टमम् । यजुष्टमम् । तय, चतुष्टयम् । चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः । त्व, सर्पिष्ट्वम् । यजुष्ट्वम् । तल्, सर्पिष्टा । यजुष्टा । तस्, सर्पिष्टः ।

त्यप्, आविध्यः। ह्रस्वग्रहण से यहां न हुआ धूस्तरा। गीस्तरा। तादिग्रहण से यहां न हुआ। सर्पिस्सा ह्रवति। तद्धित से अन्यत्र सर्पिस्तर्पयति ॥ ८४८ ॥

८४९—निसस्तपतावनासेवने ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १०२ ॥

तप धातु परे हो तो अनासेवन अर्थ में निस् के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो। आसेवन (वार२ करना) अर्थ न हो वह अनासेवन कहावे। निष्टपति सुवर्णम्। अग्नि से सुवर्ण को एक वार तपाता है। अनासेवन ग्रहण से यहां न हुआ। निस्तपति पाणिं विश्वामित्रः ॥ ८४९ ॥

८५०—युष्मत्तत्ततक्षुःष्वन्तःपादम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १०३ ॥

तकारादि युष्मत्, तत् और ततक्षुस् परे हों तो सकार को मूर्द्धन्यादेश हो जो वह सकार पाद के मध्य में हो तो। तकारादि युष्मत्। त्वं, त्वां, ते, तव, । त्वं, अग्निष्ट्वं नामासीत्। त्वा, अग्निष्ट्वा वर्द्धयामसि। ते, अग्निष्टे विश्वमानय। तव, अप्स्वग्ने सधिष्टव। तत्, अग्निष्टद्विश्वमापृणाति। ततक्षुस्, द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः। अन्तःपादग्रहण से यहां न हुआ। नित्यमात्मनोविदाभूदग्निस्तत् पुनराह जातवेदो विचर्षणिः ॥ ८५० ॥

८५१—यजुष्येकेषाम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १०४ ॥

यजुर्वेद के विषय में तकारादि युष्मद्, तत् और ततक्षुस् परे हों तो किन्ही एक आचार्यों के मत से सकार को मूर्द्धन्यादेश हो। अर्चिर्भिष्ट्वम्। अर्चिर्भिस्त्वम्। अग्निष्टेयम्। अग्निस्तेयम्। अग्निष्टत्। अग्निस्तत्। अर्चिर्भिष्टतक्षुः। अर्चिर्भिस्ततक्षुः ॥ ८५१ ॥

८५२—स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १०५ ॥

किन्ही एक आचार्यों के मत से वेदविषय में इण् कवर्ग से परे स्तुत और स्तोम शब्द के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो। त्रिभिष्टुतस्य। गोष्टोमंषोडशिनम्। गोस्तोमं षोडशिनम् ॥ ८५२ ॥

८५३—पूर्वपदात् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १०६ ॥

किन्ही एक आचार्यों के मत में पूर्वपदस्थ निमित्त से परे वेदविषय में सकार को मूर्द्धन्यादेश हो। द्विषन्धिः। त्रिषन्धिः। द्विसन्धिः। त्रिसन्धिः। मधुष्ठानम्। मधुस्थानम्। द्विषाहस्रं चिन्वीत। इस सूत्र में पूर्वपदमात्र का ग्रहण किया है इस से असमास में भी पूर्वपद से परे सकार को मूर्द्धन्यादेश होता है। विः षमृडत्वाय। त्रिः समृडत्वाय ॥ ८५३ ॥

८५४—सुञः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १०७ ॥

वेदविषय में पूर्वपदस्थ निमित्त से परे सुञ् निपात के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो। अभीषुणः सखीनाम् । ऊर्ध्व ऊषुणः ॥ ८५४ ॥

८५५—सनोतेरनः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १०८ ॥

इण्कवर्ग से परे नकारभिन्न सन् धातु के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो। गोषाः । नृषाः । नकार के निषेध से यहां न हुआ । गोसनिं वाचमुदीरयम् ॥ ८५५ ॥

८५६—सहेः पृतनर्त्ताभ्यां च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १०९ ॥

पृतना और ऋत से सह धातु के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो । पृतनाषाहम् । ऋताषाहम् । अन्यत्र । विश्वसाट् । चकार अनुक्त समुच्चय के लिये है इस से ऋतीषहम् । यहां भी मूर्द्धन्य होता है ॥ ८५६ ॥

८५७—न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ११०

जिस से रेफ परे हो उस सकार को तथा सृपि, सृजि, स्पृशि, स्पृहि और सवनादिकों के सकार को मूर्द्धन्य आदेश न हो । विस्रंसिकायाः काण्डं जुहोति । विस्रब्धः कथयति । सृपि, पुराक्रूरस्य विसृपः । सृजि, वाचो विसर्जनात् । स्पृशि, दिविस्पृशम् । स्पृहि, निस्पृहं कथयति । सवनादि, सवने सवने । सूते सूते । इत्यादि । इस सूत्र में जो 'अश्वसनि' शब्द का ग्रहण किया है इस ज्ञापन से अनिणन्त से भी परे सकार को मूर्द्धन्यादेश होता है । जैसे । जलाषाहम् । अश्वषाः ॥ ८५७ ॥

८५८—सात्पदाद्योः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १११ ॥

सात् और पदादि सकार को मूर्द्धन्य आदेश न हो । सात्, अग्निसात् । दधिसात् । मधुसात् । पदादि, दधि सिञ्चति । मधु सिञ्चति ॥ ८५८ ॥

८५९—सिचो यङि ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ११२ ॥

यङ् परे हो तो सिच् के सकार को मूर्द्धन्यादेश न हो । सेसिच्यते । अभिसेसिच्यते । यङ्ग्रहण से यहां न हुआ । अभिषिषिक्षति ॥ ८५९ ॥

८६०—सेधतेर्गतौ ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ११३ ॥

गति अर्थ में वर्त्तमान सेधति के सकार को मूर्द्धन्यादेश न हो । अभिसेधयति गाः । परिसेधयति गाः । गतिग्रहण से यहां निषेध न हुआ । प्रतिषेधयति गाः ॥ ८६० ॥

८६१—प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ११४ ॥

प्रतिस्तब्ध और निस्तब्ध ये मूर्द्धन्यादेश प्रतिषेध के लिये निपातन है । प्रतिस्तब्धः । निस्तब्धः ॥ ८६१ ॥

८६२—सोढः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ११५ ॥

सोढ् की सकार को मूर्द्धन्य आदेश न हो 'सोढ्' यह सह धातु का होता है। परिसोढः। परिसोढुम्। परिसोढव्यम्। सोढ्ग्रहण से यहां न हुआ। परिषहते॥ ८६२॥

८६३—स्तम्भुसिवुसहां चङि ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ११६ ॥

चङ् परे होतो स्तम्भु, सिवु और सह के सकार को मूर्द्धन्यादेश न हो। स्तम्भुसिवुसहां चङ्युपसर्गात्। महाभाष्य ८ । ३ । ११६। स्तम्भु, सिवु, सह इन को उपसर्ग से जो प्राप्ति है उसका निषेध हो किन्तु अभ्यास से जो प्राप्ति उसका न हो स्तम्भु, पर्य्यतस्तम्भत्। अभ्यतस्तम्भत्। सिवु, पर्य्यसीषिवत्। न्यसीषिवत्। सह, पर्य्यसीषहत्। व्यसीषहत् ॥ ८६३ ॥

८६४—सुनोतेः स्यसनोः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ११७ ॥

सुनोति के सकार को मूर्द्धन्यादेश न हो। अभिसोष्यति। परिसोष्यति। अभ्यसोष्यत्। पर्यसोष्यत्। स्य सन् ग्रहण से यहां न हुआ। सुषाव॥ ८६४ ॥

८६५—सदेः*परस्य लिटि ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ११८ ॥

लिट् परे होतो अभ्यास से परे सद् के सकार को मूर्द्धन्य आदेश न हो। अभिषसाद। परिषसाद। निषसाद। विषसाद ॥ ८६५ ॥

८६६—वा०—सदो लिटि प्रतिषेधे स्वञ्जेरुपसंख्यानम् ॥

लिट् के परे सद् धातु के प्रतिषेध में स्वञ्ज को भी मूर्द्धन्यादेश का प्रतिषेध कहना चाहिये। परिषस्वजे। परिषजाते ॥ ८६६ ॥

८६७-निव्यभिभ्योऽड्व्यवाये वाच्छन्दसि ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ११९ ॥

वेदविषय में नि, वि, अभि इन उपसर्गों से परे अट् का व्यवधान हो वा न हो तो सकार को मूर्द्धन्य आदेश विकल्प करके हो। न्यषीदत् पिता नः। व्यषीदत्। व्यसीदत्। अभ्यष्टौत्। अभ्यस्तौत् ॥ ८६७ ॥

इति षत्वप्रक्रिया समाप्ता ॥

---

* (सदेः०) इस सूत्र में काशिकाकार ने ष्वञ्ज धातु को भी मिलाकर मूल सूत्र का अन्यथा पाठ (सदिष्वञ्जोः परस्य लिटि) करके व्याख्यान किया है यह उनका व्याख्यान अनादरणीय है क्योंकि ष्वञ्ज धातु के लिये तो महाभाष्य में वार्त्तिक ही पढ़ा है ॥

॥ अथणत्वप्रक्रियाप्रारम्भः ॥

८६८—रषाभ्यां नो णः समानपदे ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १ ॥

रेफ और षकार से परे नकार को णकारादेश हो । अवगोर्णम् । अवगूर्णम् । कुष्णाति । पुष्णाति । मुष्णाति । समानपद ग्रहणसे यहां न हुआ । अग्निर्नयति । वायुर्नयति । इस सूत्र में षकारग्रहण अगले सूत्रों के लिये है क्यों कि षकार से परे नकार को णत्वादेश ष्टुत्व से भी हो जाता है । रषाभ्यां णत्वे ऋकार ग्रहणम् । महाभाष्य० ८ । ४ । १ र और ष से परे णत्वादेशविधान में ऋकार का भी ग्रहण करना चाहिये । मातॄणाम् । पितॄणाम् । अथवा क्षुभ्नादिगण में जो नृनमन और तृप्नोति शब्द का पाठ है इस ज्ञापन से भी ऋकार से परे नकार को णत्वादेश होता है ॥ ८६८ ॥

८६९—अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेपि ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २ ॥

अट्, कु, पु, आङ्, नुम् इन से व्यवधान में भी रेफ षकार से परे नकार को णकारादेश होता है । अट्, करुणा । गुरुणा । किरिणा । गिरिणा । कवर्ग, अर्केण मूर्खेण । पवर्ग, दर्पेण । रेफेण । गर्भेण । कर्मणा । चर्मणा । वर्मणा । आङ् पर्याणद्धम् । अट्ग्रहण से भी आङ्व्यवाय में सिद्ध था फिर आङ् ग्रहण (पदव्यवाये च) इस प्रतिषेध के बाधने के लिये है । नुम् बृंहणम् । बृंहणीयम् । यहां नुम्ग्रहण अनुस्वार का उपलक्षणमात्र है । इस से उक्त (बृंहणम्, बृंहणीयम्) उदाहरणों में नुम् के अभाव में अनुस्वार के व्यवधान से णत्वादेश होता है । नुम् के होते भी जहां अनुस्वार नहीं होता वहां नहीं होता है । प्रेन्वनम् । प्रेन्वनीयम् ॥ ८६९ ॥

८७०—पूर्वपदात् संज्ञायामगः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३ ॥

संज्ञा विषय में गकारभिन्न पूर्वपदस्थनिमित्त से परेनकार को णकारादेश हो । द्रुणसः । खरणसः । शूर्पणखा । संज्ञा से अन्यत्र । चर्मनासिकः । अगग्रहण से यहां न हुआ । ऋगयनम् ॥ ८७० ॥

८७१—वनं पुरगामिश्रकासिध्रकाशारिकाकोटराग्रेभ्यः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ४ ॥

संज्ञाविषय में पुरगा, मिश्रगा, सिध्रका, शारिका, कोटरा, अग्रे, इन्हीं पूर्वपदों से परे वन शब्द के नकार को णकारादेश हो औरों से न हो । पुरगावणम् ।

मिश्रकावणम् । सिध्रकावणम् । शारिकावणम् । कोटरावणम् । अग्रेवणम् । औरों से न हो । जैसे । कुबेरवनम् । शतधारवनम् । असिपत्रवनम् ॥ ८७१ ॥

८७२—प्रनिरन्तःशरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ५ ॥

संज्ञा वा असंज्ञा विषय में प्र, निर्, अन्तर्, शर, इक्षु, प्लक्ष, आम्र, कार्ष्य, खदिर, पीयूक्षा इन से परे वन शब्द के नकार को णकारादेश हो। प्रवणे यष्टव्यम् । निर्वणे प्रतिधीयते । अन्तर्वणम् । शरवणम् । इक्षुवणम् । प्लक्षवणम् । आम्रवणम् । कार्ष्यवणम् । खदिरवणम् । पीयूक्षावणम् ॥ ८७२ ॥

८७३—विभाषौषधि*वनस्पतिभ्यः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ६ ॥

निमित्तवान् ओषधि और वनस्पति वाचक जो पूर्वपद उन से परे वन शब्द के नकार को णकारादेश विकल्प करके हो । ओषधि, दूर्वावणम् । दूर्वावनम् । मूर्वावणम् । मूर्वावनम् । वनस्पति, शिरीषवणम् । शिरीषवनम् । बदरीवणम् । बदरीवनम् । द्व्यक्षरत्र्यक्षरेभ्य इति वक्तव्यम् । महाभाष्य० ८ । ४ । ६ । दो अक्षर और तीन अक्षर वाले ओषधि वनस्पतियों से हो औरों से न हो । देवदारुवनम् । भद्रदारुवनम् ॥ ८७३ ॥

८७४—वा०—इरिकादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

इरिकादिकों से परे नकार के णत्वादेश का प्रतिषेध कहना चाहिये । इरिकावनम् । तिमिरकावनम् ॥ ८७४ ॥

८७५—अह्नोऽदन्तात् ॥ अ० ॥ ४ । ७ ॥

निमित्तवान् अदन्त जो पूर्वपद उस से परे अह्न के नकार को णकारादेश हो। पूर्वाह्णः । अपराह्णः । अदन्तग्रहण से यहां न हुआ । निरह्नः । अह्न के ग्रहण से यहां न हुआ । दीर्घाह्नी ॥ ८७५ ॥

८७६—वाहनमाहितात् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ॥

आहितवाची निमित्तवान् पूर्वपद से परे वाहन शब्द के नकार को णकार आदेश हो। यहां गाड़ी आदि में भर के जो वस्तु ले चलें उस का ग्रहण आहित शब्द से है । इक्षुवाहणम् । शरवाहणम् । दर्भवाहणम् । आहितग्रहण से यहां न हुआ । दाक्षिवाहनम् । गर्गवाहनम् । यहां गमनक्रिया नहीं विवक्षित है ॥ ८७६ ॥

---

* उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः । ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥ १ ॥ अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः । पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः ॥ २ ॥ मनुस्मृति अध्याय० १ श्लो० ४७

८७७–पानं देशे ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ९ ॥

देश अभिधेय होतो पूर्वपदस्थ निमित्त से परे पान शब्द के नकार को णकारादेश हो। पीयत इति * पानम्। जो पियाजाय वह पान कहावे। क्षीरं पानं येषान्ते क्षीरपाणा: उशीनरा:। सुरापाणा: प्राच्या:। सौवीरपाणावाह्लीका:। कषायपाणा गान्धारा: इन उदाहरणों में मनुष्याभिधान से भी देशाभिधान की प्रतीति होती है। देशग्रहण से यहां न हुआ। दाक्षिपानम् ॥ ८७७ ॥

८७८–वा भावकरणयो: ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १० ॥

पूर्वपदस्थ निमित्त से परे भाव और करण में जो पान शब्द उसके नकार को णकारादेश हो। भाव, क्षीरपाणम्। क्षीरपानम्। कषायपानम्। कषायपाणम्। करण, क्षीरपाण:। क्षीरपान:। कमण्डलु: ॥ ८७८ ॥

८७९–वा०—वाप्रकरणे गिरिनद्यादीनामुपसंख्यानम् ॥

वाप्रकरण में गिरिनद्यादि कों को गणना करना चाहिये। गिरिनदी। गिरिणदी। चक्रणितम्बा। चक्रनितम्बा ॥ ८७९ ॥

८८०—प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ११ ॥

पूर्वपदस्थ निमित्त से परे प्रातिपदिकान्त नुम् और विभक्तिस्थ नकार को णकारादेश हो। प्रातिपदिकान्त, माषवापिणी। माषवापिनी। नुम् माषवापाणि। माषवापानि। विभक्ति, माषवापेण। माषवापेन। व्रीहिवापेन। व्रीहिवापेण। पूर्वपद के अधिकार से उत्तरपद का प्रातिपदिकस्थ अन्त्य जो नकार है उस को णत्वादेश विधान है। इस से यहां नहीं होता। गर्गाणां भगिनी, गर्गभगिनी। दत्तभगिनी। और जब यह वाक्य हो। गर्गाणां भगो गर्गभग:। गर्गभगोऽस्याअस्तीति, गर्गभगिणी। तब (८८३) अगले सूत्र से नित्य णत्वादेश होता है। माषवापिणी। माषवापिनी। यहां भी णकार विकल्प से होता है क्योंकि 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिस्सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्ते:' इस परिभाषा से कृदन्त के साथ ही में समास होने से कृत्संज्ञक प्रत्यय का नकार प्रातिपदिकान्त ही माना जाता है। इसी हेतु से सूत्र में नुम् का ग्रहण अलग किया है क्योंकि नुम् समुदाय का भक्त है अतएव प्रातिपदिकान्त नहीं होता है ॥ ८८० ॥

८८१–वा०–युवादीनां प्रतिषेधो वक्तव्य: ॥

प्रातिपदिकान्तादिनकार की णत्वविधान में युवादिकों का प्रतिषेध कहना चाहिये। आर्ययूना। क्षत्रिययूना। प्रपक्वानि। परिपक्वानि। दीर्घाह्नी शरत् ॥ ८८१ ॥

---

* यहां 'कृत्यल्युटोबहुलम्' इस सूत्र से कर्म में ल्युट् है ॥

८८२—एकाजुत्तरपदे णः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १२ ॥

जिस में एकाच् उत्तर पद है उस समास में पूर्वपदस्थ निमित्त से परे प्रातिपदिकान्त नुम् और विभक्ति के नकार को णकारादेश हो । वृत्रघ्णौ । वृत्रघ्णः । नुम्, क्षीरपाणि । सुरापाणि । विभक्ति, क्षीरपेण । सुरापेण । ण, वर्त्तमान था फिर णग्रहण पूर्वविकल्प के बाधने के लिये है ॥ ८८२ ॥

८८३—कुमति च ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १३ ॥

कवर्गवान् उत्तर पद वाले समास में पूर्वपदनिमित्त से परे प्रातिपदिकान्त नुम् और विभक्तिस्थ नकार को णकारादेश हो । वस्त्रयुगिणौ । वस्त्रयुगिणः । स्वर्गकामिणौ । वृषगामिणौ । नुम्, वस्त्रयुगाणि । खरयुगाणि । विभक्ति, वस्त्रयुगेण । खरयुगेण ॥ ८८३ ॥

८८४—उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य ॥ अ० ॥ ४ । ८ । १४ ॥

समास वा असमास में उपसर्गस्थ निमित्त से परे णोपदेश धातु के नकार को णकारादेश हो । प्रणमति । परिणमति । प्रणयनम् । प्रणायकः । परिणायकः । उपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । प्रगतानायका अस्माद् देशात् प्रनायकोदेशः । असमासग्रहण समास की निवृत्ति के लिये है क्योंकि पूर्वपद के अधिकार से समास ही में प्राप्ति थी । णोपदेशग्रहण से यहां न हुआ । परिनर्दति । परिनृत्यति ॥८८४॥

८८५—हिनुमीना ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १५ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे हिनु, मीना इन के नकार को णकारादेश हो । प्रहिणोति । प्रहिणुतः । प्रमीणाति । प्रमीणीतः ॥ ८८५ ॥

८८६—आनि लोट् ॥ अ० । ८ । ४ । १६ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे लोट् लकार के आदेश आनि शब्द के नकार को णकारादेश हो । प्रवपाणि । परिवपाणि । प्रयाणि । परियाणि । लोट् ग्रहण से यहां न हुआ । प्रवपानि । मांसानि ॥ ८८६ ॥

८८७—नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १७ ॥

गद, नद, पत, पद, घुसंज्ञक, (डुदाञ् दाण् दो देङ् डुधाञ् धेट्) मा, (माङ् मेङ्) सो, हन्, या, वा, द्रा, प्सा, डुवप्, वह, शमु, चिञ्, दिह, ये धातु परे हों तो उपसर्गस्थ निमित्त से परे नि के नकार को णकारादेश हो । गद, प्रणिगदति । नद, प्रणिनदति । परिणिनदति । पत, प्रणिपतति । परिणिपतति ।

पद,प्रणिपद्यते । परिणिपद्यते । दु,प्रणिददाति । प्रणिदाता । प्रणियच्छति। प्रणिद्यति। प्रणिदयते। प्रणिदधाति। प्रणिधयति । मा,प्रणिमिमीते । प्रणिमयते। सो, प्रणिष्यति । परिणिष्यति। हन,प्रणिहन्ति । या, प्रणियाति । वा, प्रणिवाति । द्रा, प्रणिद्राति । प्सा, प्रणिप्साति । डुवप्, प्रणिवपति । परिणिवपति । वह, प्रणिवहति । शमु, प्रणिशाम्यति । चिञ्, प्रणिचिनोति । दिह, प्रणिदेग्धि । यहां (८६६) सूत्र से अड्व्यवाय का अनुवर्त्तन कर अट् के व्यवधान में भी नि के नकार को णकारादेश होता है । प्रण्यगदत् । प्रण्यागदत् ॥ ८८७ ॥

८८८—शेषे विभाषाकखादावषान्त उपदेशे ॥ अ०॥८ । ४ । १८॥

उपदेश अवस्था में क,ख जिस के आदि में और ष अन्त में न हो ऐसा पूर्वोक्तों से शेष धातु परे हो तो उपसर्गस्थ निमित्त से परे नि के नकार को णकारादेश विकल्प करके हो । प्रणिपचति । प्रनिपचति । प्रणिभिनत्ति । प्रनिभिनत्ति । अकखादिग्रहण से यहां न हुआ । प्रनिकरोति । प्रनिखादति । अषान्तग्रहण से यहां न हुआ । प्रनिपिनष्टि । उपदेशग्रहण का यह फल है कि । प्रनिचखाद । प्रनिचकार । प्रनिपेक्ष्यति । इत्यादिकों में प्रतिषेध हो । तथा विश, प्रणिवेष्टा । प्रणिवेक्ष्यति । यहां प्रतिषेध न हो ॥ ८८८ ॥

८८९—अनितेरन्तः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १९ ॥

अन्त (समीपवर्त्ती) जो उपसर्गस्थ रेफ उस से परे अन धातु के नकार को णकारादेश हो । हेप्राण् । हेपराण् । प्राणिति । पराणिति । यह (९०८) सूत्र का अपवाद है। अन्त ग्रहण से यहां नहुआ । पर्यनिति । यहां दो वर्णं का व्यवधान है इस से नकार को णकारादेश नहीं होता एकवर्ण का व्यवधान तो अन धातु का जो 'अ, अवयव है उसी से प्राप्त है ॥ ८८९ ॥

८९०—उभौसाभ्यासस्य ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २० ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे अभ्यासयुक्त अन धातु के दोनों नकारों को णकार आदेश हो । प्राणिणिषति । प्राणिणत् । पराणिणिषति । पराणिणत् ॥ ८९० ॥

८९१—हन्तेरत्पूर्वस्य ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २१ ॥

उपसर्गनिमित्त से परे हन् धातु के अकार पूर्वक नकार को णकारादेश हो। प्रहण्यते । परिहण्यते । प्रहणनम् । परिहणनम् । अत्पूर्वग्रहण से यहां न हुआ । प्रघ्नन्ति । परिघ्नन्ति । तपरकरण से यहां नहुआ । प्राघानि । पराघानि । ये णिच् के परे प्रयोग हैं ॥ ८९१ ॥

८९२—वमोर्वा ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २३ ॥

व, म परे हों तो उपसर्गस्थ निमित्त से परे हन धातु के नकार को णकारादेश विकल्प करके हो । प्रहण्वः । प्रहन्वः । प्रहण्मः । प्रहन्मः ॥ ८९२ ॥

८९३—अन्तरदेशे ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २३ ॥

देश न अभिधेय हो तो अन्तर् शब्द से परे हन् धातु के अकारपूर्वक नकार को णकारादेश हो । अन्तर्हणनम् । अदेश ग्रहण से यहां न हुआ । अन्तर्हननो देशः । अत्पूर्वग्रहण से यहां न हुआ । अन्तर्घ्नन्ति ॥ ८९३ ॥

८९४—अयनं च ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २४ ॥

देश न कहा जाय तो अन्तर् शब्द से परे अयन शब्द के नकार को णकारादेश हो । अन्तरयणम् । अदेशग्रहण से यहां न हुआ । अन्तरयनो देशः ॥ ८९४ ॥

८९५—छन्दस्यृदवग्रहात् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २५ ॥

वेदविषय में अवग्रह ऋकार जिस के अन्त में हो उस से परे नकार को णकारादेश हो । जो विग्रह में उच्चारण करने से निरवकाश गृहीत हो वह अवग्रह कहता है । नृमणाः । पितृयाणम् । नृ, पितृ ये विग्रह में भिन्न २ भी पद हैं । तथापि यहां मकार और या के साथही ऋ, का उच्चारण होता है ॥ ८९५ ॥

८९६—नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २६ ॥

वेदविषय में धातुस्थ निमित्त से तथा उरु और षु से परे नस् शब्द के नकार को णकारादेश हो । धातुस्थ, अग्ने रक्षाणः । शिक्षाणो अस्मिन् । उरु, उरुणस्कृधि । षु, अभीषुणः सखीनाम् । ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये ॥ ८९६ ॥

८९७—उपसर्गाद्बहुलम् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २७ ॥

वेदविषय में उपसर्गस्थ निमित्त से परे नस् के नकार को णकारादेश बहुल करके हो । प्रणसः प्रणो राजा । बहुलग्रहण से प्रनोमुञ्चतम् । यहां नहीं भी होता । भाषा में होता भी है । प्रणसं मुखम् ॥ ८९७ ॥

८९८—कृत्यचः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २८ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे अच् जिस के पूर्व उस कृत्स्थ नकार को णकारादेश हो । अन, मान, अनीय, अनि, इनि और निष्ठादेश में जो नकार उन को णकारादेश होता है । अन, प्रयाणम् । परियाणम् । प्रमाणम् । परिमाणम् । मान, प्रयायमाणम् । परियायमाणम् । अनीय, प्रयाणीयम् । परियाणीयम् । अनि, अपरियाणिः । इनि, प्रयायिणौ । परियायिणौ । निष्ठादेश, प्रहीणः । परिहीणः ।

प्रक्षीणवान् । परिहीणवान् । अच् के ग्रहण से यहां न हुआ । प्रभुग्नः। परिभुग्नः। भुजो कौटिल्ये से निष्ठा के परे प्रयोग हैं ॥ ८९८ ॥

८९९—वा०—क्तस्यस्य णत्वे निर्विण्णस्योपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ॥

निर्विण्णोऽहमनेन वासेन ॥ ८९९ ॥

९००—णेर्विभाषा ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २९ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे ण्यन्तधातु से विहित कृत्तत्स्थ अच् पूर्वक जो नकार उस को णकारादेश विकल्प करके हो । प्रयापनम् । प्रयापणम् । परियापणम् । परियापनम् । विहितविशेषण से 'प्रयाप्यमाणम्, यहां यक् प्रत्यय के व्यवधान में नकार को णत्वादेश होता है ॥ ९०० ॥

९०१—हलश्चेजुपधात् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३० ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे हलादि इजुपध धातु से परे कृत्स्थ अच्पूर्वक जो नकार उस को णकारादेश विकल्प करके हो। प्रकोपनम् । प्रकोपणम् । हल्ग्रहण से यहां न हुआ । प्रेहणम् । इजुपधग्रहण से यहां न हुआ । प्रवपणम् ॥ ९०१ ॥

९०२—इजादेः सनुमः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३१ ॥

उपसर्गस्थनिमित्त से परे इजादि सनुम् हलन्त धातु उस से विहित जो कृत् प्रत्यय तत्स्थ अच्पूर्वक नकार को णकारादेश हो । प्रेङ्खणम् । प्रेङ्खनम् । प्रोम्भनम् । इस विषय में णकारादेश सिद्ध था फिर णत्वविधान इजादि सनुम् से नियम के लिये है । सनुम् से हो तो इजादि ही सनुम् से हो अन्य से न हो । प्रमङ्गनम् । यहां णत्व नहीं होता ॥ ९०२ ॥

९०३—वा निंसनिक्षनिन्दाम् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३२ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से निंस, निक्ष और निन्द के नकार को णकारादेश विकल्प करके हो। प्रणिंसनम् । प्रनिंसनम् । प्रणिक्षणम् ।प्रनिक्षणम् । प्रणिन्दनम्। प्रनिन्दनम् ॥ ९०३ ॥

९०४—न भाभूपूकमिगमिप्यायिवेपाम् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३३ ॥

उपसर्गस्थनिमित्त से परे भा, भू, पू, कमि, गमि, प्यायि और वेप धातु के कृत्स्थ नकार को णकारादेश न हो । प्रभानम् । परिभानम् । प्रभवनम् । परिभवनम् । प्रपवनम् । परिपवनम् ।प्रकमनम् । परिकमनम् । प्रगमनम् । परिगमनम् । प्रप्यायनम् । परिप्यायनम् । प्रवेपनम् । परिवेपनम् । भादिषु पूञ् ग्रहणम् । महाभाष्य ८ । ४ । ३३ । भादिकों में पूञ् धातु का ग्रहण करना चाहिये । किन्तु पूङ् से नित्य णत्व होता है । प्रपवणं सोमस्य ॥ ९०४ ॥

९०५—वा०—युवन्तस्य चोपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ॥

प्रभापनम् परिभापनम् ॥ ९०५ ॥

९०६—षात्पदान्तात् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३४ ॥

पदान्त षकार से परे नकार को णकारादेश न हो। निष्पानम् । दुष्पानम्। सर्पिष्पानम् । षग्रहण से यहां निषेध न हुआ। निर्णयः पदान्त ग्रहण से यहां निषेध न हुआ। कुष्णाति । पुष्णाति । 'पदान्तात्' यहां पदेऽन्तः यह सप्तमी समास इष्ट है। इस से यहां निषेध न हुआ। सुसर्पिष्केण ॥ ९०६ ॥

९०७—नशेः षान्तस्य ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३५ ॥

षकारान्त नश को णकारादेश न हो। प्रनष्टः । परिनष्टः । षान्तग्रहण से यहां निषेध न हुआ। प्रणश्यति। अन्तग्रहण भूतपूर्व षान्त से भी णत्व के प्रतिषेध के लिये है। प्रनङ्क्ष्यति । परिनङ्क्ष्यति ॥ ९०७ ॥

९०८—पदान्तस्य ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३६ ॥

पदान्त नकार को णकारादेश न हो। वृक्षान् । प्लक्षान् । रामान् ॥ ९०८ ॥

९०९—पदव्यवायेऽपि ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३७ ॥

निमित्त और निमित्ती को पदव्यवधान भी हो तो नकार को णत्वादेश न हो। माषकुम्भवापेन । प्रावनद्धम् ॥ ९०९ ॥

९१०—क्षुभ्नादिषु च ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३८ ॥

क्षुभ्नादिक शब्दों में नकार को णकारादेश न हो। क्षुभ्नाति। अजादेश के स्थानिवद् भाव से यहां भी निषेध होता है।क्षुभ्नीतः।इत्यादि। अवहितलक्षण णत्वप्रतिषेध क्षुभ्नादिकों में देखना चाहिये ॥ ९१० ॥

इति णत्व प्रक्रिया समाप्ता ॥

॥ अथ कृदन्ते कृत्यप्रक्रियाप्रारम्भः ॥

९११—वासरूपोऽस्त्रियाम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९४ ॥

धात्वधिकार में स्त्री अधिकार के प्रत्ययों को छोड़ के असरूप (असमानरूप) अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग का बाधक विकल्प करके हो ॥ ९११ ॥

९१२—कृत्याः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९५ ॥

ण्वुल्प्रत्यय से पूर्व जो २ प्रत्यय अत्र आगे कहें वे सब कृत्य संज्ञक हों।

धात्वधिकार में धातु से जिन २ प्रत्ययों का विधान होता है वे प्रथम (३) सूत्र से कृत् संज्ञक होते हैं फिर उन को कृत्य संज्ञा भी होती है ॥ ८१२ ॥

८१३—कर्त्तरि कृत् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६७ ॥

कृत् संज्ञक प्रत्यय कर्त्ता में हों इस से कृत् संज्ञक प्रत्यय कर्त्ता में प्राप्त हुए इस व्यवस्था में ॥ ८१३ ॥

८१४—तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७० ॥

कृत्यसंज्ञक, क्त और खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्म ही में हों। इस से कृत्य संज्ञक प्रत्ययों का भाव कर्म में सामान्यनियम है (७८८ । ७९४ । ७९५) सूत्रों से प्रैष, अतिसर्ग, प्राप्तकाल, अर्ह और शक्ति अर्थ में भी कृत्य प्रत्ययों का विधान है। इस विषय के उदाहरण भी उन्हीं सूत्रों पर देचुके हैं वैसे यहां और भी उदाहरण समझना चाहिये ॥ ८१४ ॥

८१५—तव्यत्तव्यानीयरः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९६ ॥

धातु से तव्यत्, तव्य, और अनीयर् प्रत्यय हों। तकार और रेफ स्वर के लिये हैं। भाव में उत्सर्गमात्र एकवचन और नपुंसक लिङ्ग होता है। एधितव्यम्। एधनीयमनेन। कथितव्यः। कथनीयो वा त्वया धर्म्मः। कथितुंयोग्यः शक्यो वा इत्यादि ॥ ८१५ ॥

८१६—वा०—केलिमर उपसंख्यानम् * ॥

पचेलिमाः। पक्तव्याः। माषाः। भिदेलिमाः। भेत्तव्याः। सरलाः। यहां कर्म्म में प्रत्यय है ॥ ८१६ ॥

८१७—वा०—वसेस्तव्यत् कर्त्तरि णिच्च ॥

वस धातु से कर्त्ता में तव्यत् प्रत्यय और वह णित् संज्ञक भी हो यह कहना चाहिये। वसतीति, वास्तव्यः ॥ ८१७ ॥

८१८—कृत्यल्युटो बहुलम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११३ ॥

कृत्य संज्ञक और ल्युट् प्रत्यय बहुल करके हों। अर्थात् जहां २ कहे हैं वहां से अन्यत्र भी हों। जैसे कृत्यसंज्ञक प्रत्यय भाव कर्म्म से अन्यत्र। स्नात्यनेनेति स्नानीयम्। चूर्णम्। दीयतेऽस्मै, दानीयो विप्रः। ल्युट् प्रत्यय करण, अधिकरण और भाव में कहेंगे उन से अन्यत्र जैसे। आच्छाद्यते, आच्छादनं वासः। प्रस्कन्दनम्। प्रपतनम्। बहुलग्रहण से और भी कृत् यथाविधान से अन्यत्र भी होते हैं जैसे। पादाभ्यां ह्रियते, पादहारकः। गले चोप्यते, गलेचोपकः ॥ ८१८ ॥

* (केलिमर) इस प्रत्यय को वृत्तिकारादिक कोई कर्मकर्त्ता में मानते हैं सो महाभाष्य से विरुद्ध है क्योंकि महाभाष्यकार ने तो उक्त प्रत्यय को कर्मही में दिखलाया है॥

९१९—अचो यत् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९७ ॥

अजन्त धातु से यत् प्रत्यय हो । मेयम् । जेयम् । अज्‌ग्रहण क्यों किया हलन्त से तो ण्यत् विधान हो करेंगे । प्रथम जो अजन्त धातु है उस से भी हो इस लिये । जैसे । लव्यम् । पव्यम् । यहां आगामी आर्द्धधातुक का विषय मान कर गुण और अवादेश किये पीछे हलन्त से यत् नहीं प्राप्त है । दित्सम् । धित्सम् । यहां आगामी आर्द्धधातुकविषय मान कर अकार लोप किये पीछे हलन्त से यत् नहीं प्राप्त है ॥९१९॥

९२०—ईद्यति ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६५ ॥

यत् प्रत्यय परे हो तो आदन्त अङ्ग को ईकारादेश हो । आदेयम् । गेयम् ॥९२०॥

९२१—वा०—तकिशसिचतियतिजनीनामुपसंख्यानम् ॥

तकि, तक्यम् । शसि, शस्यम् । चति, चत्यम् । यति, यत्यम् । जनि, जन्यम् । यहां जन धातु से यत् प्रत्यय का विधान केवल स्वर के लिये है क्यों कि यत् और ण्यत् में इस का एकसा प्रयोग होता है ॥ ९२१ ॥

९२२—वा०—हनो वध च ॥

हन धातु से यत् प्रत्यय और हन् को वध आदेश विकल्प करके कहना चाहिये । वध्यः । दूसरे पक्ष में । घात्यः । यहां आगामी ण्यत् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९२२ ॥

९२३—पोरदुपधात् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९८ ॥

अकार जिस के उपधा में हो ऐसे पवर्गान्त धातु से यत् प्रत्यय हो । शप्यम् । लभ्यम् । पवर्गग्रहण से यहां न हुआ । पाक्यम् । वाक्यम् । अदुपधग्रहण से यहां न हुआ । कोप्यम् । गोप्यम् । तपरकरण दीर्घादिकों की निवृत्ति के लिये है । आप्यम् । ९२३ ॥

९२४—शकिसहोश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९९ ॥

शक्ल और सह धातु से यत् प्रत्यय हो । शक्यम् । सह्यम् ॥ ९२४ ॥

९२५—गदमदचरयमश्चानुपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०० ॥

उपसर्ग पूर्व न हो तो गद मद चर और यम धातु से यत् प्रत्यय हो । गद्यम् । मद्यम् । चर्यम् । यम्यम् । अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । प्रगाद्यम् । प्रमाद्यम् । इस सूत्र में यम धातु का ग्रहण केवल अनुपसर्ग के लिये है क्यों कि यम् धातु से यत् प्रत्यय (९१९) सूत्र से सिद्ध है प्रयाम्यम् । यहां यत् न हुआ वक्ष्यमाण ण्यत् प्रत्यय हो गया ॥ ९२५ ॥

९२६—वा०—अनुपसर्गाच्चाङ्‌चरेरगुरौ ॥

अनुपसर्ग चर धातु से यत् के विधान में गुरु अभिधेय न हो तो आङ्‌पूर्वक

चर धातु से यत् प्रत्यय का विधान करना चाहिये। आचरितुंयोग्य आचर्यो देशः। अगुरुग्रहण से यहां न हुआ। आचार्य उपनयमानः ॥ ८२६ ॥

८२७—अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु ॥ अ०॥ ३। १। १०१॥

गर्ह्य (निन्द्य) पणितव्य (व्यवहार के योग्य) अनिरोध (नरोकना) इन अर्थों में क्रम से अवद्य, पण्य, वर्या ये निपातन हैं। अवद्यं पापम्। गर्ह्य से अन्यत्र। अनुद्यम्। मनोद्गुरुम्। वद धातु से क्यप् और यत् प्रत्यय का विधान करेंगे उन में यत् के परे वद्य उसी से नञ्समास में अवद्य सिद्ध होगा यह गर्ह्य अर्थ में निपातन है। अन्यत्र क्यप् प्रत्ययान्त रहेगा जिस से नञ् में अनुद्य होता है। पण्यम् वस्त्रम्। पण्यः कम्बलः। पण्या गौः। अर्थात् ये वेंचने योग्य पदार्थ हैं। यहां धातु से यत् प्रत्यय है। स्तुत्यम्। शतेन वर्या। यहां वृङ् धातु से यत् है। अन्यत्र वृत्या होगा। स्त्रीलिङ्गनिर्देश से यहां न हुआ। वार्या ऋत्विजः ॥ ८२७ ॥

८२८—वह्यं करणम् ॥ अ० ॥ ३। १। १०२॥

वह धातु से करणकारक में यत् प्रत्यय निपातन है। वहत्यनेनेति वह्यम्। शकटम्। करण ग्रहण से अन्यत्र वाह्यम्। होता है ॥ ८२८ ॥

८२९—अर्य्यः स्वामिवैश्ययोः ॥ अ० ॥ ३। १। १०३॥

स्वामि और वैश्य अभिधेय हों तो ऋ धातु से यत् प्रत्यय निपातन है। अर्यः स्वामी वैश्यो वा। स्वामिन्यन्तोदात्तत्वं च महाभाष्य० ३। १। १०३ ॥ स्वामी अभिधेय हो तो 'अर्य, शब्द को अन्तोदात्तत्व भी निपातन है ॥ ८२९ ॥

८३०—उपसर्य्या काल्या प्रजने ॥ अ० । ३। १। १०४॥

प्रजन (प्रथम गर्भग्रहण) में जो (काल्या) समय को प्राप्त हुई वह अभिधेय हो तो उपसर्य्या यह निपातन हो। उपसर्या गौः। उपसर्या स्त्री। यहां उपपूर्व सृ धातु से यत् प्रत्यय निपातन किया है। काल्या प्रजन ग्रहण से यहां न हुआ। उपसार्या वसन्ते वाटिका ॥ ८३० ॥

८३१—अजर्य्यं सङ्गतम् ॥ अ० ॥ ३। १। १०५॥

सङ्गत विशेष्य हो तो नञ्पूर्वक जृष् धातु से कर्त्ता में यत् प्रत्यय निपातन हो। न जीर्यति, अजर्यम्। अजर्यमार्यसङ्गतम्। सङ्गतग्रहण से यहां न हुआ। अजरिता। कम्बलः ॥ ८३१ ॥

८३२—वदः सुपि क्यप् च ॥ अ०॥ ३। १। १०६॥

अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो वद धातु से क्यप् और यत् प्रत्यय हो। ब्रह्मोद्यम्।

ब्रह्मवद्यम् । वेद का कथन है । सत्योद्यम् । सत्यवद्यम् । सुप् के ग्रहण से यहां न हुआ । वाद्यम् । अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । प्रवाद्यम् ॥ ८३२ ॥

८३३—भुवो भावे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०७ ॥

अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो भू धातु से भाव में क्यप् यत् प्रत्यय हों। ब्रह्मणो भावो ब्रह्मभूयम् । देवभूयंगतः । भावग्रहण अगले सूत्रों के लिये है । क्योंकि सत्तार्थक भू धातु से अकर्मकत्व मान कर भाव में क्यप् सिद्ध है । सुप् के ग्रहण से यहां न हुआ (भव्यम्) अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । प्रभाव्यम् ॥ ८३३ ॥

८३४—हनस्त च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०८ ॥

अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो हन् धातु से भाव में क्यप् प्रत्यय और हन् को तकार अन्तादेश हो । ब्रह्मणो हननं ब्रह्महत्या । गोहत्या । श्वहत्या वर्त्तते । सुप् के ग्रहण से यहां न हुआ । घातः । अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । प्रघातो वर्त्तते । भावग्रहण से यहां न हुआ । श्वघात्यो वृषलः ॥ ८३४ ॥

८३५—वा०—हनस्तश्चित् स्त्रियां छन्दसि ॥

वेदविषयक प्रयोग में (हनस्त च) इस से हन् धातु से विहित क्यप् प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग में चित् हो । तां भ्रूणहत्यां निगृह्यानुचरणम् । अस्यै त्वा भ्रूणहत्यायै चतुर्थं प्रतिपद्यते । स्त्रीलिङ्गग्रहण से यहां चित् नहीं होता है । आघ्नते दस्युहत्याय । छन्दोग्रहण से यहां चित्त्व धर्म नहीं होता । श्वहत्या । दस्युहत्या वर्त्तते*॥८३५॥

८३६—एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०९ ॥

इण्, स्तु, शास्, वृ, दृ, जुष् धातुओं से क्यप् प्रत्यय हो । इत्यः । स्तुत्यः । शिष्यः । यहां (२७१) सूत्र से इत् हो जाता है । वृत्यः । आदृत्यः । जुष्यः । क्यप् प्रत्यय वर्त्तमान था फिर क्यप् के ग्रहण का यह प्रयोजन है कि । अवश्यस्तुत्यः । यहां आवश्यक अर्थ में वक्ष्यमाण जो ण्यत् प्राप्त है वह न हो । क्यब्विधौ वृञ्ग्रहणम्, महाभाष्य ८ । ४ । १०९ । क्यब्विधिमें वृञ् का ग्रहण है इस से यहां न हुआ । वार्या ऋत्विजः "प्रशस्यस्य श्रः" इस सूत्र में जो प्रशस्य शब्द का ग्रहण है इस ज्ञापन से शंसु धातु से भी क्यप् प्रत्यय होता है क्योंकि प्र उपसर्गपूर्वक शंसु धातु का क्यप् के परे प्रशस्य यह सिद्ध होता है ॥ ८३६ ॥

---

*महाभाष्यकार के (श्वह० दस्यु०) इन्हीं प्रयोगों से स्पष्ट है कि हन् धातु से यह क्यप् प्रत्यय लोक में नियम से स्त्रीलिङ्ग में होता है ॥

९३७—वा०—अञ्जेश्चोपसङ्ख्यानं संज्ञायाम् ॥

संज्ञा गम्यमान हो तो अञ्जू धातु से क्यप् प्रत्यय का उपसंख्यान करना चाहिये आनक्त्यनेनेति, आज्यम् । घृतम् । यहां करण में क्यप् है । यह क्यप् आङ्पूर्वक ही से होता है । आङ्पूर्वस्य प्रयोगो भविष्यति । महाभाष्य ३ । १ । १०९ ॥ ९३७ ॥

९३८—ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११० ॥

क्लृपि चौर चृति धातुओं को छोड़ कर ऋकारोपध धातु से क्यप् प्रत्यय होता है । वृत्यम् । वृध्यम् । अक्लृपिचृतिग्रहण से यहां न हुआ । कल्प्यम् । चर्त्यम् । तपर करण से यहां न हुआ । कीर्त्यम् । यहां ण्यत् होता है । यह कृत संशब्दने का प्रयोग है ॥ ९३८ ॥

९३९—ई च खनः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १११ ॥

खन् धातु से क्यप् प्रत्यय और खन् को ईकारादेश हो । खेयम् । यहां ह्रस्व इकार भी आदेश महाभाष्यकार को इष्ट है क्यों कि (सन्धि १०९) सूत्र से ह्रस्व वा दीर्घ दोनों के परे पूर्व पर के स्थान में गुण एकारादेश हो जाता है* ॥ ९३९ ॥

९४०—भृञोऽसंज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११२ ॥

असंज्ञाविषय में भृञ् धातु से क्यप् प्रत्यय हो । भृत्याः कर्म्मकराः । असंज्ञा ग्रहण से यहां न हुआ । भार्य्या नाम क्षत्रियाः । भार्य्या गृहिणी । यहां तो ण्यत् होता है । (असंज्ञायाम्) इस प्रतिषेध से भार्या शब्द ण्यत् प्रत्ययान्त संज्ञाविषय में होता है उस के लिये कहते हैं ॥ ९४० ॥

९४१—का०—संज्ञायां पुंसि दृष्टत्वान्न ते भार्या प्रसिध्यति ॥
स्त्रियां भावाधिकारोऽस्ति तेन भार्या प्रसिध्यति ॥ १ ॥
अथवा बहुलं कृत्याः संज्ञायामिति तत् स्मृतम् ॥
यथा यत्यं यथा जन्यं यथा भित्तिस्तथैव सा ॥ २ ॥

प्र०—पुंलिङ्गविषयक संज्ञा में ण्यत् प्रत्यय के देखने से तुम्हारा भार्या शब्द नहीं सिद्ध होता है । उ०—स्त्री लिङ्ग विषयक (सञ्ज्ञायां समज०) इस सूत्र में भाव का अधिकार है उस से भार्या शब्द प्रसिद्ध होता है अर्थात् भाव का अधिकार मान कर स्त्री लिङ्ग में भावविषयक क्यप् प्रत्ययान्त भृत्या होगा तथा ण्यत्

* यहां काशिकाकार ने इकार दूसरा प्रश्लेष मान कर (ये विभाषा) इस आत्व की व्यावृत्ति किई यह उन का व्याख्यान आहोपुरुषिकामात्र है क्यों कि क्यप् सन्नियोग में विधीयमान इत्व अन्तरङ्ग और यकारादि प्रत्यय के परे विधीयमान आत्व बहिरङ्ग है इस से असिद्धंबहिरङ्गमन्तरङ्गे इसी से आत्व की व्यावृत्ति हो जायगी फिर प्रश्लेष इकार क्यों माना जाय । इस लिये महाभाष्यकार की व्याख्या से विरुद्ध है ॥

प्रत्ययान्त भार्या हो जायगा ॥ १ ॥ अथवा जो उक्त सूत्र में भावाधिकार न मानें तो कृत्य और ल्युट् बहुल करके होते हैं वह स्मरण संज्ञा के निमित्त होना चाहिये । जैसे यत्य जैसे जन्य और जैसे भित्ति शब्द है वैसे ही वह भार्या शब्द भी सिद्ध होजायगा * ॥ ८४१ ॥

८४२—मृजेर्विभाषा ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११३ ॥

मृज धातु से विकल्प करके क्यप् प्रत्यय हो । मृज्यः ॥ ८४२ ॥

८४३—चजोः कु घिण्यतोः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ५२ ॥

घित् और ण्यत् प्रत्यय परे हो तो चकार और जकार को कुत्व हो । मार्ग्यः । यहां वक्ष्यमाण ण्यत् प्रत्यय होता और (२५५) से वृद्धि हो गई ॥ ८४३ ॥

८४४—राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११४ ॥

राजसूय, मृषोद्य, रुच्य, कुप्य, कृष्टपच्य, अव्यथ्य ये क्यप् प्रत्ययान्त निपातन हैं । अभिषवद्वारा राज्ञा सोतव्यो राजानस्सूयन्तेऽस्मिन्निति, वा राजसूयः । यज्ञः । यहां राजन् शब्दपूर्वक [षुञ्] अभिषवे धातु से क्यप् प्रत्यय और निपात से दीर्घादेश होता है । सरत्याकाशमार्गेण गच्छति वा षुवति लोकं कर्मणि प्रेरयतीति, सूर्यः । यहां [सृ] गतौ वा [षू] प्रेरणे धातु से क्यप् प्रत्यय और सृ को उत्वादेश वा षू को रुडागम निपातन है । मृषा उद्यत इति मृषोद्यम् । यहां मृषोपपदवद धातु से (८३२) सूत्र से क्यप् और यत् की प्राप्ति में क्यप् विहित है । रोचतेऽसौ रुच्यः । यहां रुच धातु से कर्त्ता में क्यप् है । गुप्यते यत्तत् कुप्यम् । यहां संज्ञा में गुप धातु की आदि को कुत्व निपातन है । गोप्यते यत्तत् कुप्यम् । सुवर्ण और रजत से भिन्न धन की संज्ञा है । अन्यत्र गोप्यम् । होगा । कृष्टे स्वयमेव पच्यन्त इति कृष्टपच्याः । यहां कर्मकर्त्ता में पच से क्यप् प्रत्यय है । योहि कृष्टे पक्तव्यः से कृष्टपाक्यो भवति न व्यथत इति, अव्यथ्यः । सूर्यरुच्याव्यथ्याः कर्त्तरि । कुप्यं संज्ञायाम् । कृष्टपच्यस्यान्तोदात्तत्वं च कर्मकर्त्तरि च । महाभाष्य ३ । १ । ११४ ॥ ८४४ ॥

८४५—भिद्योद्ध्यौ नदे ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११५ ॥

नद अभिधेय होतो भिद्य, उद्ध्य ये क्यप् प्रत्ययान्त निपातन हैं । भिनत्ति कूलमिति भिद्यः । उज्झत्युदकमिति, उद्ध्यः । यहां [उज्झ] त्यागे धातु को धत्व भी निपातन है । नदसे अन्यत्र भेत्ता । उज्झिता ॥ ८४५ ॥

* अजन्त से विहित यत् प्रत्यय यत जन धातुओं से होता और स्त्री अधिकार में भिद् धातु से अङ् विहित है तथापि बहुल भाव से क्तिन् भी होता है वैसे ही बहुल भाव से ण्यत् प्रत्ययान्त भार्या शब्द हो जायगा ॥

३४६—पुष्यसिद्ध्यौ नक्षत्रे ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११६ ॥

नक्षत्र अभिधेय हो तो पुष्य, सिद्ध्य ये निपातन हैं पुष्यन्त्यस्मिन् कार्य्याणीति पुष्यः । सिद्ध्यन्त्यस्मिनर्था इति सिद्ध्यः। अन्यत्र । पोषणम् । सेधनम् ॥ ६४६ ॥

६४७—विपूयविनीयजित्यामुञ्जकल्कहलिषु ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११७ ॥

मुञ्ज, कल्क, हलि इन अर्थों में विपूय विनीय जित्य ये शब्द यथासङ्ख्य निपातन हैं । विपू विनी तथा जि से यत् प्रत्यय की प्राप्ति में क्यप् प्रत्यय निपातन किया है । वि पूयः । मुञ्जः । रज्वादि कर्म के लिये शोधने योग्य है । अन्यत्र विपव्यम् । विनेतुं योग्यो विनीयः । कल्कः । विपेयमन्यत् । जित्यः । हलिः । जेयमन्यत् ॥ ३४७ ॥

६४८—प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११८ ॥

प्रति और अपि से परे ग्रह धातु से क्यप् प्रत्यय हो। प्रत्यपिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि। महाभाष्य ३ । १ । ११८ ॥ मत्तस्य प्रतिगृह्यम् । अनृतं हि मत्तो वदति तस्मान्नापि गृह्यम् । लोक में प्रतिग्राह्यम् । अपिग्राह्यम् ॥ ६४८ ॥

६४६—पदास्वैरिवाह्यापक्ष्येषु च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११६ ॥

पद अस्वैरिन् वाह्या और पक्ष्य अर्थ में ग्रह धातु से क्यप् प्रत्यय हो । पद, प्रगृह्यम् पदम् जिस को प्रगृह्य संज्ञा करते हैं । अवगृह्यम् पदम् । जिस का अवग्रह करते हैं । अस्वैरी (परतन्त्र) गृह्यकाः पक्षिणः । गृहीत हैं । वाह्या, ग्रामगृह्या: । वाह्यः । ग्राम से बाहर बाउरी हैं । नगरगृह्या सेना । नगर से बाहर सेना है । यह प्रतीति होती है । स्त्रीलिङ्ग निर्देश से यहां न हुआ । ग्रामग्राह्याः पादपाः । पक्ष्य, पक्ष में जो हो वह पक्ष्य कहावे । आर्यैर्गृहीतुंयोग्य आर्यगृह्यः पक्ष्यः । अर्जुनगृह्याः । वासुदेवगृह्याः ॥ ६४६ ॥

६५०—विभाषा कृवृषोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२० ॥

कृञ् और वृष धातु से क्यप् प्रत्यय विकल्प करके हो । कृत्यम् । कार्य्यम् । वृष्यम् । वर्ष्यम् ॥ ६५० ॥

६५१—युग्यं च पत्रे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२१ ॥

पत्र (वाहन) अभिधेय हो तो युग्य यह निपातन है । युग्योश्वः । युग्योगौः । यहां युज् धातु से क्यप् और धातु को कुत्वादेश निपातन है । पत्रग्रहण से यहां न हुआ योग्यमन्यत् ॥ ६५१ ॥

६५२—अमावस्यदन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२२ ॥

अमावस्यत् यह विकल्प करके निपातन है अर्थात् अमापूर्वक वस धातु से

ण्यत् प्रत्यय के परे विकल्प करके वृद्धि का अभाव निपातन है। अमा शब्द सहार्थ में वर्त्तमान है। सह वसतोऽस्यां सूर्याचन्द्रमसाविति, अमावस्या। अमावास्या ॥८५२॥

८५३—छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूयप्रणीयोन्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्याध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्याष्टच्छ्यप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभाव्यस्ताव्योपचाय्यपृडानि ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२३ ॥

निष्टर्क्य, देवहूय, प्रणीय, उन्नीय, उच्छिष्य, मर्य, स्तर्या, ध्वर्य, खन्य, खान्य, देवयज्या, आपृच्छ्य, प्रतिषीव्य, ब्रह्मवाद्य, भाव्य, स्ताव्य और उपचाय्यपृड ये निपातन हैं। निष्टर्क्यं चिन्वीत पशुकामः। यहां निस् पूर्वक कृती धातु से ण्यत् प्रत्यय धातु का आद्यन्त विपर्यय और निस् के स् को ष् आदेश निपातन है। स्पर्द्धन्ते वा उ देवहूये। यहां देवपूर्वक ह्वेञ् वा हु धातु से क्यप् प्रत्यय धातु के उकार को दीर्घ और तुक् का अभाव निपातन है। प्रणीयः। उन्नीयः। प्र और उद् इन से परे नी धातु से क्यप्। उच्छिष्यः। उत्पूर्वक शिष से क्यप्। मर्यः। मृङ् से यत्। स्तर्या। स्तृञ् से यत् और स्त्रीलिङ्ग में निपातन है। ध्वर्यः। ध्वृ से यत्। खन्यः। खान्यः। खन से यत् और ण्यत्। शुन्धध्वं दैव्याय कर्मणे देवयज्यायै। देवपूर्वक यज धातु से यत् प्रत्यय और स्त्रीलिङ्ग में निपातन है। आपृच्छ्यं धरुणंवाज्यर्षति। आङ्पूर्वक प्रच्छ धातु से क्यप्। प्रतिषीव्यः। प्रतिपूर्वक सीव्यति से क्यप् और षत्व निपातन है। ब्रह्मवाद्यम्। ब्रह्मन् उपपद वद धातु से ण्यत्। भाव्यः। स्ताव्यः। भू और ष्टुञ् से ण्यत्। उपचाय्यपृडम्। यहां उपपूर्वक चिञ् धातु से पृड उत्तर पद के परे ण्यत् प्रत्यय और आयादेश निपातन है। हिरण्य इति च महाभाष्य ३। १। १२३। हिरण्य अर्थ में उपचाय्यपृड हो। हिरण्य से अन्यत्र उपचेयपृडम् होगा। "निष्टर्क्ये व्यत्ययं विद्यान्निसः षत्वं निपातनात् ॥ ण्यदायादेश इत्येतावुपचाय्ये निपातितौ ॥ १ ॥ ण्यदेकस्माच्चतुर्भ्यः क्यप् चतुर्भ्यश्च यतो विधिः ॥ ण्यदेकस्माद्यशब्दश्च द्वौ क्यपौ ण्यद्विधिश्चतुः ॥ २ ॥ महाभाष्य ३। १। १२३ ॥ इन कारिकाओं का अर्थ निष्टर्क्यादि प्रयोगों की व्याख्या में आगया है॥ ८५३ ॥

८५४—ऋहलोर्ण्यत् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२४ ॥

ऋवर्णान्त और हलन्तों से ण्यत् प्रत्यय हो। धार्य्यम्। हार्य्यम्। वाक्यम्। पाक्यम् ॥ ८५४ ॥

८५५—वा०—पाणौ सृजेर्ण्यद्विधिः ॥

पाणि शब्द उपपद हो तो सृज धातु से ण्यत् प्रत्यय का विधान करने योग्य है पाणिभ्यां सृज्यत इति पाणिसर्ग्या रज्जुः। यहां (८४३) से कुत्व हो गया॥८५५॥

६५६—वा०—समवपूर्वाच्च ॥

समवपूर्व भी सृज धातु से ण्यत् प्रत्यय विधान करने योग्य है। समवसर्ग्या रज्जुः ॥ ६५६ ॥

६५७—वा०—लपिदम्भिभ्यां चेति वक्तव्यम् ॥

लप और दभ धातु से भी ण्यत् प्रत्यय कहने योग्य है। अपलाप्यम्। अपदाभ्यम् ॥ ६५७ ॥

६५८—न क्वादेः ॥ ७ । ३ । ५६ ॥

कवर्ग जिस के आदि में है उस धातु के चकार और जकार को कुत्व न हो। कूज्यमनेन। खर्ज्यम्। गर्ज्यम्। कूजः। खर्जः। गर्जः ॥ ६५८ ॥

६५९—अजिव्रज्योश्च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ६० ॥

अज और व्रज धातु को कुत्व न हो। परिव्राज्यम्। परिव्राजः। समाजः। उदाजः। यहां घञ् प्रत्यय है। ण्यत् प्रत्यय की विवक्षा में (१५५) सूत्र से वी भाव होने से अज धातु का ण्यत् प्रत्ययान्त प्रयोग नहीं होता ॥ ६५९ ॥

६६०—वञ्चेर्गतौ ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ६३ ॥

गति अर्थ में वर्त्तमान वञ्च धातु को कवर्गादेश न हो। वञ्चितुं गन्तुं योग्यं वञ्च्यम्। गतिग्रहण से यहां न हुआ। वङ्क्यम्। काष्ठम्। काष्ठटेढ़ा है ॥६६०॥

६६१—ण्य आवश्यके ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ६५ ॥

आवश्यक अर्थ में ण्य प्रत्यय परे हो तो कवर्गादेश न हो। अवश्यपाच्यम्। अवश्यवाच्यम्। आवश्यक से अन्यत्र। पाक्यम्। वाक्यम् ॥ ६६१ ॥

६६२—यजयाचरुचप्रवचर्चश्च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ६६ ॥

ण्य प्रत्यय परे हो तो यज, याच, रुच, प्रवच, ऋच इन धातुओं को कुत्वादेश न हो। याज्यम्। याच्यम्। रोच्यम्। प्रवाच्यम्। यह पाठविशेष का नाम है। अर्च्यम्। यद्यपि ऋदुपधत्व मान कर ऋच धातु से क्यप् प्रत्यय भी प्राप्त है तथापि ण्य के परे जो इस को कुत्व का निषेध किया है इस ज्ञापन से ण्यत् प्रत्यय इस से होगा ॥ ६६२ ॥

६६३—वा०—ण्यप्रतिषेधे त्यजेरुपसंख्यानम् ॥

ण्य के परे कुत्व प्रतिषेध में त्यज धातु का भी उपसंख्यान करना चाहिये। त्यक्तुं योग्यं त्याज्यम् ॥ ६६३ ॥

---

* धातुपाठ में अपठित भी दभ धातु है तथापि वार्त्तिकबल से स्वीकार करना चाहिये ॥

९९४—भोज्यं भक्ष्ये ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ६९ ॥

भक्ष्य अर्थ में भोज्य यह निपातन हो । भोज्यमभ्यवहार्यमितिवक्तव्यम् । महाभाष्य ७ । ३ । ६९ ॥ अभ्यवहार्यमात्र अर्थ होतो भोज्य यह निपातन हो । भोज्यः सूपः । भोज्या यवागूः । अभ्यवहार से अन्यत्र । भोग्यः कम्बलः ॥ ९९४ ॥

९९५—ओरावश्यके ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२५ ॥

आवश्यक अर्थ द्योत्य होतो उवर्णान्त धातु से ण्यत् प्रत्यय हो । लाव्यम् । पाव्यम् । आवश्यक से अन्यत्र । लव्यम् । पव्यम् ॥ ९९५ ॥

९९६—आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२६ ॥

आङ् पूर्वक षुञ् यु डुवप रप लप त्रपि और चम धातु से ण्यत् प्रत्यय हो । यह यत् प्रत्यय का अपवाद है । आसाव्यम् । याव्यम् । वाप्यम् । राप्यम् । लाप्यम् । त्राप्यम् । आचाम्यम् ॥ ९९६ ॥

९९७—आनाय्योऽनित्ये ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२७ ॥

अनित्य अर्थ अभिधेय होतो आङ्पूर्वक णीञ् धातु से आनाय्य यह निपातन है । आनाय्योनित्य इति चेद्दक्षिणाग्नौ कृतं भवेत् । एकयोनौ तु तं विद्यादानेयोह्यन्यथा भवेत् । महाभाष्य ३ । १ । १२७ । अनाय्यो दक्षिणाग्निः । यहां ण्यत् प्रत्यय और आयादेश निपातन है । जो गार्हपत्य अग्नि से लिया जाता और आहवनीय अग्नि के साथ एकयोनि को प्राप्त है उस विशेषदक्षिणाग्नि में यह शब्द रूढि है । और जो वैश्यकुल से लिया जाता है उस में आनेय, होगा ॥ ९९७ ॥

९९८—प्रणाय्योऽसंमतौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२८ ॥

असंमति अभिधेय होतो प्रणाय्य यह निपातन हो । संमति (भलीभांतिमानना वा आदर) जिस में न हो वह असंमति कहावे । प्रणाय्यश्चोरः । प्रणाय्योऽप्रियः । प्रणाय्योऽन्तेवासी । यह विरक्त है । अर्थात् अपनी अनिच्छा से संसार से वैराग्य को प्राप्त है ॥ ९९८ ॥

९९९—पाय्यसांनाय्यनिकाय्यधाय्या मानहविर्निवाससामिधेनीषु ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२९ ॥

मान, हविष्, निवास, सामिधेनी ये अभिधेय होंतो यथाक्रम से पाय्य, सांनाय्य, निकाय्य, धाय्या, ये निपातन हैं । मीयतेऽनेनेति पाय्यमानम् । यहां ण्यत् प्रत्यय धातु के आदि म को प आदेश० । अन्यत्र । मेयम् । सम्यङ्नीयते होमार्थमग्निं प्रतीति, सांनाय्यम् । हविः । ण्यत् आयादेश और सम् के अकार को दीर्घ

निपातन० । अन्यत्र सन्नेयम् । निचीयते धान्यादिकमत्रेति निकाय: । निवास: । आय् और धातु के आदि को कुत्व निपातन० । अन्यत्र । चेयम् । धीयतेऽनया समिदिति, धाय्या । सामिधेनी ऋक् । ण्यत् प्रत्यय निपात० । सामिधेनी शब्द ऋग्विशेष का वाचक है । धाय्या शंसत्यग्निर्नेता त्वं सोमक्रतुभि: ॥ ९६९ ॥

९७०—क्रतौ कुण्डपाय्यसंचाय्यौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३० ॥

क्रतु अभिधेय हो तो कुण्डपाय्य और संचाय्य निपातन हैं । कुण्डेन पीयतेऽस्मिन् सोम इति कुण्डपाय्य: । क्रतु: । यहां तृतीयान्त कुण्ड शब्द पूर्वक पिबति से यत् प्रत्यय और युगागम निपातन है । क्रतु ग्रहण से यहां न हुआ । कुण्डपानम् । तथा । संचेय: । ॥ ९७० ॥

९७१—अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसमूह्या: ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३१ ॥

अग्नि अभिधेय हो तो परिचाय्य उपचाय्य और समूह्य ये निपातन हों । परिचेतुं योग्य:, परिचाय्य: । उपचाय्य । परि उपपूर्वक चिञ् धातु से ण्यत् और आयादेश निपातन० । समूह्यं चिन्वीत पशुकाम: । सम् पूर्वक वह धातु से ण्यत् प्रत्यय धातु को संप्रसारण और दीर्घत्व निपातन० । अग्नि से अन्यत्र । परिचेयम् । उपचेयम् । संवाह्यम् ॥ ९७१ ॥

९७१—चित्याग्निचित्ये च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३२ ॥

अग्नि अभिधेय हो तो चित्य और अग्निचित्या निपातन हों ॥ चीयतेऽसौ चित्योग्नि: । अग्निचयनमेव, अग्निचित्या । यहां भाव में य प्रत्यय अन्तोदात्तत्व और तुगागम निपातन० । अग्निचित्येत्यन्तोदात्तत्वं भावे । महाभाष्य३।१।१३२ ॥९७२॥

९७३—भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६८ ॥

भव्य आदि कृत्य प्रत्ययान्त कर्त्ता में विकल्प करके निपातन हैं । द्वितीय पक्ष में यथाप्राप्त भाव कर्म में होंगे । भवत्यसौ भव्य: । भव्यमनेन वा । गेयोमाणवक: साम्नाम् । गेयानि माणवकेन सामानि । प्रवचनीयो गुरु: स्वाध्यायस्य । प्रवचनीयो वा गुरुणा स्वाध्याय: । उपस्थानीयोऽन्तेवासी गुरो: ।उपस्थानीय: शिष्येण वा गुरु: । जायतेऽसौ जन्य: । जन्यमनेन वा । आप्लवते, आप्लाव्य: । आप्लाव्यमनेन वा । आपतत्यसावापात्य: । आपात्यमनेन वा ॥ ९७३ ॥

इति कृत्यप्रक्रिया समाप्ता ॥

———*———

अथ कृदन्तप्रक्रियारम्भः ॥

९७४—ण्वुल्तृचौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३३ ॥

धातु से ण्वुल् और तृच् प्रत्यय हो । इस प्रकरण में सर्वत्र (२) सूत्र से कृत्संज्ञा होती और (९१२) सूत्र से कृत् संज्ञक प्रत्यय सामान्य से कर्त्ता में होते हैं । करोतीति, कारकः । कर्त्ता । हारकः । हर्त्ता । स्त्रीलिङ्ग में कारिका । कर्त्री । हारिका । हर्त्री । कुटिता यहां (३४५) सूत्र से ङित्व मान कर गुणादेश न हुआ । कोटकः । विजिता (४२८) सूत्र से इट्० । घातकः यहां (५०२) सूत्र से तकारादेश० । दायकः । शमकः । दमकः । रम्भकः । जम्भकः । यहां (१६५) सूत्र से नुम् हो० । रधिता (४०८) से नुम् निषे० । एषिता । एष्टा । सहिता । सोढा । यहां (२१२) सूत्र से इट् । ण्यजन्त—भावयिता । सन्नन्त—बुभूषिता । यङन्त—पापचकः । यहां अल्लोप के स्थानिवद्भाव से वृद्धि न हुई । यङ्लुगन्त—पापाचकः ॥ ९७४ ॥

९७५—नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ॥ अ० ॥ ३।१।१३४ ॥

नन्द्यादिक, ग्रह्यादिक और पचादिक धातुओं से यथाक्रम से ल्यु, णिनि और अच् प्रत्यय हो । अर्थात् नन्द्यादिकों से ल्यु, ग्रहादिकों से णिनि और पचादिकों से अच् होता है । नन्दयतीति, नन्दनः । जनानर्दयतीति जनार्दनः । मधुसूदनः । विशेषेण भीषयतीति विभीषणः । वामनः । मदनः । दूषणः । लवणः । यहां गणपाठक्रम से निपातन से णत्वादेश है । ग्राही । स्थायी । मन्त्री । विशयी । यहां वृद्धि का अभाव निपातन है । विषयी । यहां षत्व निपातन है । परिस्रावी । परिभवी । यहां विकल्प करके वृद्धि का अभाव है । पचतीति पचः । अजपि सर्वधातुभ्यः । महाभाष्य ३ । १ । १३४ । सब धातुओं से अच् प्रत्यय कहना चाहिये । भवतीति भवः । सवः । यह अच् प्रत्यय धातु मात्र से इष्ट है इस से पचादिगण का कथन शब्दों के साथ अनुबन्ध लगाने और बाधकों के बाधने के लिये है जैसे । नदट् । चोरट् । देवट् इत्यादि टित् माने हैं । नदः । चोरः । देवः । स्त्रीलिङ्ग में नदी । चोरी । देवी । यहां इगुपधत्व मान कर दिवु धातु से क प्रत्यय प्राप्त था । उस को बाध कर अच् प्रत्यय हुआ । जारभरा । श्वपचा । इन में अगला अण् प्राप्त था । चेक्रियः । लोलुवः । पोपुवः । मरीमृजः ॥ ९७५ ॥

९७६—इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३५ ॥

इक् जिस के उपधा में हो और ज्ञा प्री तथा कॄ धातु से क प्रत्यय हो । बुधः । विक्षिपः । कृशः । ज्ञः । प्रीणातीति प्रियः । किरतीति किरः ॥ ९७६ ॥

९७७—आतश्चोपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३६ ॥

उपसर्ग पूर्व हो तो आदन्त धातु से क प्रत्यय हो। आगे ण प्रत्यय कहेंगे उस का यह अपवाद है। प्रस्थः। प्रवः ॥ ९७७

९७८—पाघ्राध्माधेट्दृशः शः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३७ ॥

पा घ्रा ध्मा धेट् और दृश धातु से श प्रत्यय हो। पिबतीति, पिबः। उर्ध्वं पिबति, उत्पिबः। विपिबः। जिघ्रः। धमः। धयः। विधयः। पश्यतीति पश्यः ॥ ९७८ ॥

९७९—वा०—जिघ्रः संज्ञायां प्रतिषेधः ॥

व्याजिघ्रतीति व्याघ्रः ॥ ९७९ ॥

९८०—अनुपसर्गाल्लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसाति साहिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३८ ॥

उपसर्गरहित लिम्प विन्द धारि पारि वेदि उदेजि चेति साति साहि इन धातुओं से श प्रत्यय हो। लिम्पतीति। लिम्पः। विन्दतीति, विन्दः। धारयतीति, धारयः। पारयतीति, पारयः। वेदयतीति, वेदयः। उदेजयतीति, उदेजयः। चेतयतीति, चेतयः। साति सुखार्थक सौत्र धातु है। सातयतीति, सातयः। साहयतीति, साहयः। अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ। प्रलिपः ॥ ९८० ॥

९८१—वा०—अनुपसर्गान्नौ लिम्पेः ॥

(अनुपसर्गात्०) इस विषय में निपूर्वक लिम्प धातु से श प्रत्यय कहना चाहिये। निलिम्पा नाम देवाः ॥ ९८१ ॥

९८२—वा०—गवादिषु विन्देः संज्ञायाम् ॥

गवादिक उपपद हों तो विद्लृ धातु से श प्रत्यय संज्ञा में कहना चाहिये। गोविन्दः। अरविन्दः ॥ ९८२ ॥

९८३—ददातिदधात्योर्विभाषा ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३९ ॥

उपसर्गरहित डुदाञ् और डुधाञ् धातु से श प्रत्यय विकल्प करके हो। यह (९८६) सूत्र का अपवाद है। ददातीति, ददः। दायः। दधः। धायः। अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ। प्रददातीति, प्रदः। प्रधः। यहां (९७६) सूत्र से क प्रत्यय हो गया ॥ ९८३ ॥

९८४—ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४० ॥

उपसर्गरहित ज्वल आदि कस पर्यन्त धातुओं से विकल्प करके ण प्रत्यय हो यहां इति शब्द आदि शब्द के लिये है। ज्वलतीति, ज्वालः। ज्वलः। चालः।

चलः। दूसरे पक्ष में अच् प्रत्यय हो जाता है। अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ। प्रज्वलः ॥ ९८४ ॥

९८५—वा०—तनोतेरुपसंख्यानम् ॥

तनु धातु से ण प्रत्यय का उपसंख्यान करना चाहिये। अवतनोतीत्यवतानः॥९८५॥

९८६—श्याद्व्यधास्रुसंस्र्वतीणवसावहृलिहश्लिषश्वसश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४१ ॥

श्यैङ्, आकारान्त, व्यध, आस्रु, संस्रु, अतीण्, अवसा, अवहृ, लिह, श्लिष, श्वस इन धातुओं से ण प्रत्यय हो। आकारान्त ग्रहण से श्यैङ् और अवपूर्वक सा धातु से ण हो जाता तथापि इन का अलग ग्रहण सोपसर्ग लक्षण क प्रत्यय के बाधने के लिये है। अवश्यायः। प्रतिश्यायः। दायः। धायः। श्लायः। व्याधः। आस्रावः। संस्रावः। अत्यायः। अवसायः। अवहारः। लेहः। श्लेषः। श्वासः॥९८६॥

९८७—दुन्योरनुपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४२ ॥

उपसर्ग पूर्व न हो तो दु और नी धातु से ण प्रत्यय हो। दुनोतीति, दावः। नयतीति, नायः। अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ। प्रदवः। प्रणयः ॥ ९८७ ॥

९८८—विभाषा ग्रहः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४३ ॥

ग्रह धातु से विकल्प करके ण प्रत्यय हो। यह अच् का अपवाद है गृह्णातीति ग्राहः। ग्रहः। यह व्यवस्थित विभाषा है। इस से जलचर में 'ग्राह, नित्य होता और ज्योतिः में 'ग्रह, यही होता है* ॥ ९८८ ॥

९८९—गेहे कः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४४ ॥

गेह (घर) कर्त्ता हो तो ग्रह धातु से क प्रत्यय हो। गृह्णाति धान्यादिकमिति गृहम्। गृह्णन्ति पदार्थानिति, गृहाणि वेश्मानि। तात्स्थ्योपाधि से स्त्रीजनों को भी गृह कहते हैं। गृहाः। दाराः ॥ ९८९ ॥

९९०—शिल्पिनि ष्वुन् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४५ ॥

*शिल्पी कर्त्ता हो तो धातु से ष्वुन् प्रत्यय हो। नृतिखनिरञ्जिभ्य इति वक्तव्यम्। महाभाष्य ३ । १ । १४५। शिल्प (क्रिया करने की चतुराई) जिस में

* इस सूत्र के विवरण में जो काशिकाकार ने 'भवतेश्चेति वक्तव्यम्' यह वार्त्तिक पढ़ा है सो महाभाष्यकार के मत से विरुद्ध है महाभाष्य में उस का मूल नहीं है। इस से प्राप्त्यर्थक भू धातु से अच् प्रत्ययान्त भाव और सत्तार्थक से भव समझ लेना चाहिये। भाव पदार्थों का नाम और भव महादेव और संसार आदि का नाम है ॥

विद्यमान है वह शिल्पी कहावे । नृत्यतीति, नर्त्तकः । खनकः । नर्त्तकी । खनकी । रञ्जकः । रञ्जकी † ॥ ९९० ॥

९९१—गस्थकन् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४६ ॥

शिल्पी कर्त्ता हो तो गै धातु से थकन् प्रत्यय हो । गायतीति, गाथकः । स्त्री लिङ्ग में । गाथिका ॥ ९९१ ॥

९९२—ण्युट् च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४७ ॥

शिल्पी कर्त्ता में गै धातु से ण्युट् प्रत्यय हो । गायतीति, गायनः । स्त्री गायनी ॥९९२॥

९९३—हश्च व्रीहिकालयोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४८ ॥

व्रीहि और काल कर्ता हों तो ओहाक् ओहाङ् धातु से ण्युट् प्रत्यय हो । जहाति जलं जिहीते प्राप्नोति, वा हायनः । व्रीहिः । जहाति भावान् जिहीते प्राप्नोति, वा हायनः । वत्सरः ॥ ९९३ ॥

९९४—प्रुसृल्वः समभिहारे वुन् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४९ ॥

समभिहार (वार २ होने) अर्थ में प्रु सृ लू इन धातुओं से वुन् प्रत्यय हो । प्रुसृल्वः साधुकारिणि वुन्विधानम् । महाभाष्य ३ । १ । १४९ ॥ साधु कारी अर्थात् अच्छे प्रकार क्रिया करने वाला कर्त्ता अभिधेय हो तो प्रुसृल् इन से वुन् का विधान करना चाहिये प्रवत इति प्रवकः । सरकः । लवकः । साधुकारित्व अर्थ में वुन्विधान से जहां एक वार भी अच्छे प्रकार काम करना हो वहां वुन् प्रत्यय हो और वार २ भी काम का अच्छा करना न हो वहां न हो ॥ ९९४ ॥

९९५—आशिषि च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १५० ॥

आशीर्वाद अर्थ गम्यमान हो तो धातु से वुन् प्रत्यय हो । जीवतात् जीवकः । नन्दतात् नन्दकः ॥ ९९५ ॥

---

† रञ्जकः रजकी । यहां शिल्पी कर्त्ता में उणादिस्थ क्वुन् प्रत्यय होता है । इस विषय में जो कौमुदीकार ने लिखा कि भाष्यमत से नृति खनि इन्हीं से ष्वुन् और रञ्जि से क्वुन् होताहै । यह उन का कथन अयुक्त है क्यों कि जो रञ्जि से ष्वुन् नहीं होता है तो महाभाष्यकार ने रञ्जि का परिगणन क्यों किया महाभाष्य के परिगणन से नृति खनि और रञ्जि इन तीनों से ष्वुन् प्रत्यय होगा । इस विषय में काशिकाकार ने ष्वुन् प्रत्यय का विधान करके भी नकार का लोप माना यह उन का मानना असङ्गत है क्यों कि नलोप तो कित् ङित् के परे होता है । और महाभाष्यकार भी रजक शब्द उणादिस्थ क्वुन् प्रत्यय से मानते हैं । रजकरजनरजःसु कित्वात् सिद्धम् । कित एवैते औणादिकाः । महाभाष्य ६ । ४ । २४ ॥

९९६—कर्मण्यण्* ॥ अ० ॥ ३ । २ । १ ॥

कर्म उपपद हो तो धातु से अण् प्रत्यय हो । कर्म तीन प्रकार का है अर्थात् निर्वर्त्य, विकार्य्य, प्राप्य† । निर्वर्त्य, कुम्भकारः । विकार्य्य, काण्डलावः । शरलावः । प्राप्य, वेदाध्यायः । चर्चापारः । ग्रामणीपारः । सूत्रपाठः । यहां सर्वत्र उपपद समास होता है । आदित्यं पश्यति । हिमवन्तं शृणोति । ग्रामं गच्छति । इत्यादिकों में अनभिधान से नहीं होता अर्थात् । लोक में अर्थप्रतिपादन करने के लिये आदित्य-दर्श आदि शब्दों का प्रयोग नहीं करते हैं ॥ ९९६ ॥

९९७—वा०—अन्नादायेति च कृतां व्यत्ययश्छन्दसि ॥

वेदविषय में अन्नादाय इत्यादिक प्रयोगों के लिये कृत् संज्ञक प्रत्ययों का व्यत्यय देखना चाहिये । अत्तीति अदः । अन्नस्यादः अन्नादः तस्मै अन्नादाय । अन्नादाय आदायान्नपतये य आहुतिमन्नादां हुत्वा (अन्नमत्ति) इस विग्रह में कर्मोपपद अद धातु से अण् की प्राप्ति में पचाद्यच् का विधान है ॥ ९९७ ॥

९९८—वा०—शीलिकामिभक्ष्याचारिभ्यो णः पूर्वपद-प्रकृतिस्वरत्वञ्च ॥

शीलि, कामि, भक्षि आङ्पूर्वक चर इन धातुओं से ण प्रत्यय और पूर्वपद को प्रकृतिस्वर कहना चाहिये । मांसशीलः । मांसशीला । मांसकामः । मांसकामा । मांसभक्षः मांसभक्षा । कल्याणाचारः । कल्याणाचारा ॥ ९९८ ॥

९९९—वा०—ईक्षिक्षमिभ्यां च ॥

सुखप्रतीक्षः । सुखप्रतीक्षा । कल्याणक्षमः । कल्याणक्षमा ॥ ९९९ ॥

१०००—ह्वावामश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । २ ॥

कर्म उपपद हो तो ह्वेञ् वेञ् और माङ् धातु से अण् प्रत्यय हो । स्वर्गह्वायः । तन्तुवायः । धान्यमायः ॥ १००० ॥

१००१—आतोऽनुपसर्गे कः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३ ॥

उपसर्ग पूर्व न हो तो आकारान्त धातुओं से क प्रत्यय हो । यह अण् का

---

* जिस का उपादान कारण विद्यमान न हो वह निर्वर्त्य कहाता है जैसे संयोगं करोति । अथवा जिस का विद्यमान भी उपादान कारण न विवक्षित हो वह भी निर्वर्त्य कहाता है जैसे घटं करोति । जब उपादान कारण ही परिणामी माना जाय तो निर्वर्त्य कर्म भी विकार्य्य हो जाता है जैसे मृदं घटं करोति और जब भेदविवक्षा है तब वही निर्वर्त्य कर्म रहता है जैसे मृदा घटं करोति । विकार्य्य कर्म दो प्रकार का है अर्थात् एक तो प्रकृति के विनाश से जो कुछ विकार उत्पन्न हो जैसे काष्ठादि भस्म और दूसरा गुणान्तर से जो उत्पन्न हो जैसे सुवर्णादि विकार कुण्डलादि । जिस में प्रत्यक्ष वा अनुमान से क्रियाकृत विशेष न पाया जाय अर्थात् प्रथम से न हो वह प्राप्य कर्म कहाता है ॥

अपवाद है । गोदः । कम्बलदः । पार्ष्णित्रम् । अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । गोसंदायः ॥ १००१ ॥

१००२—सुपि स्थः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४ ॥

सुबन्त उपपद हो तो स्था धातु से क प्रत्यय हो कूटस्थः । समस्थः । विषमस्थः । इस सूत्र में महाभाष्यकारने योगविभाग भी माना है जैसे (सुपि) सुबन्त उपपद हो तो आकारान्त धातु से क प्रत्यय हो । कच्छेनपिबतीति कच्छपः । कटाहेन पिबतीति,कटाहपः । द्वाभ्यां पिबतीति,द्विपः । पादपः (स्थः) सुबन्त उपपद होतो स्था धातु से क प्रत्यय हो । आखूनामुत्थानमाखूत्थः । शलभोत्थः । सुपि, इस अंश से कर्त्ता में क प्रत्यय होगा (स्थः) भाव में होने के लिये है * । अब अगले सूत्रों में (कर्मणि, सुपि) इन दोनोपदों की अनुवृत्ति है अर्थात् यथायोग्यता से दोनों उपस्थित होते हैं ॥ १००२ ॥

१००३—तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५ ॥

तुन्द और शोक कर्म उपपद हों तो परिपूर्वक मृज और अपपूर्वक नुद धातु से क प्रत्यय हो । आलस्य सुखाहरणयोः । महाभाष्य ३ । २ । ५ (तुन्दशोकयोः०) इस विषय में आलस्य, सुखाहरण और कहना चाहिये अर्थात् आलस्य गम्यमान हो और सुखोत्पत्ति अर्थ होतो उक्त धातुओं से क प्रत्यय हो । तुन्दं परिमार्ष्टि, तुन्दपरिमृजोलस आस्ते । अन्यत्र । तुन्दपरिमार्जः । शोकापनुदः । पुत्रोजातः । अन्यत्र जो संसार की अनित्यता आदि दिखा कर शोकमात्र की निवृत्ति करता किन्तु सुख नहीं उत्पन्न करता वह शोकापनोद होगा ॥ १००३ ॥

१००४—वा०—कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् ॥

मूलानि विभुजति, मूलविभुजो रथः । नखानि मुञ्चन्ति, नखमुचानि धनूंषि । काकगुहास्तिलाः । सरसिरुहं कुमुदम् ॥ १००४ ॥

१००५—प्रे दाज्ञः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६ ॥

कर्म उपपद हो तो प्रपूर्वक दा और ज्ञा धातु से क प्रत्यय हो । धनं प्रददाति, धनप्रदः । शास्त्रप्रज्ञः । पथिप्रज्ञः । प्रमात्र से अन्यत्र । धनसंप्रदायः ॥ ९००५ ॥

१००६—समि ख्यः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७ ॥

कर्म उपपद हो तो सम्पूर्वक ख्या धातु से क प्रत्यय हो । शास्त्रसंख्यः । गोसंख्यः ॥ १००६ ॥

---

* स्था धातु से भी कर्त्ता में क प्रत्यय इष्ट होतो इस से पृथक् क विधान न करते इसलिये पृथग् विधान सामर्थ्य से स्था से भाव में क होगा परन्तु यह भावस्थ क प्रत्यय कर्त्ता वाले क प्रत्यय को बाधा नहीं करता क्योंकि (स्थः) इस अंश में भाव का प्रत्यक्ष ग्रहण नहीं है ॥

१००७—गापोष्टक् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८ ॥

कर्म उपपद हो तो उपसर्ग रहित गा, पा धातुओं से टक् प्रत्यय हो। साम गायतीति सामगः। स्त्री सामगी। सुराशीध्वोः पिबतेः। महाभाष्य ३। २। ८। सुरापः। सुरापी। शीधुपः। शीधुपी। इन से अन्यत्र। क्षीरपा ब्राह्मणी। पिबति से अन्यत्र। सामसंगायः ॥ १००७ ॥

१००८—वा०—बहुलं तणि ॥

तण (संज्ञा, छन्दः) विषय में पिबति से बहुल करके टक् प्रत्यय हो। या ब्राह्मणी सुरापी भवति नैनां देवाः पतिलोकं नयन्ति या ब्राह्मणी सुरापा भवति नैनां देवाः तिलोकं नयन्ति ॥ १००८ ॥

१००९—हरतेरनुद्यमनेऽच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९ ॥

कर्म उपपद हो तो अनुद्यमन अर्थ में वर्त्तमान हृञ् धातु से अच् प्रत्यय हो। उद्यमन उद्यम को कहते हैं उस से अन्य अनुद्यमन कहाता है। अंशं हरति, अंशहरः। भागहरः। रिक्थहरः। अनुद्यमन ग्रहण से यहां न हुआ। भारहारः ॥१००९॥

१०१०—वा०—अच्प्रकरणे शक्तिलाङ्गलाङ्कुशयष्टि-तोमरघटघटीधनुष्षुग्रहेरुपसंख्यानम् ॥

अच् प्रकरण में शक्ति, लाङ्गल, अङ्कुश, यष्टि, तोमर, घट, घटी, धनुष् ये उपपद हों तो ग्रह धातु से अच् प्रत्यय का उपसंख्यान करना चाहिये। शक्तिग्रहः। लाङ्गलग्रहः। अङ्कुशग्रहः। यष्टिग्रहः। तोमरग्रहः। घटग्रहः। घटीग्रहः। धनुर्ग्रहः ॥ १०१० ॥

१०११—वा०—सूत्रे च धार्य्यर्थे ॥

तथा सूत्र उपपद हो तो धारणार्थक ग्रह धातु से उपसंख्यान करना चाहिये। सूत्रग्रहः। सूत्र को धारण करता है। धार्य्यर्थ से अन्यत्र अर्थात् जो सूत्र को ग्रहण करता है वह सूत्रग्राह कहाता है ॥ १०११ ॥

१०१२—वयसि च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १० ॥

वयस् यौवनादिभाव गम्यमान हो तो कर्मोपपद हृञ् धातु से अच् प्रत्यय हो। यह उद्यमन के लिये है। कवचहरः। कुमारः। शकटहरः। वृषभः ॥ १०१२ ॥

१०१४—आङि ताच्छील्ये ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११ ॥

ताच्छील्य (तत्स्वभावता) अर्थ गम्यमान हो और कर्म उपपद हो तो आङ् पूर्वक हृञ् धातु से अच् प्रत्यय हो। पुष्पाणि आहरति तच्छीलः। पुष्पाहरः।

फलाहरः । स्वभाव से निष्प्रयोजन भी पुष्प और फलों को लेता है । ताच्छील्य से अन्यत्र भारमाहरतीति, भाराहारः ॥ १०१३ ॥

१०१४—अर्हः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२ ॥

कर्म्म उपपद हो तो अर्ह धातु से अच् प्रत्यय हो । वेदार्हः स्त्री वेदार्हा ॥१०१४॥

१०१५—स्तम्बकर्णयो रमिजपोः ॥ अ०॥ ३ । २ । १३ ॥

स्तम्ब और कर्ण ये सुबन्त यथासंख्य उपपद हों तो रम और जप धातु से अच् प्रत्यय हो । रम अकर्म्मक और जप शब्दकर्म्मक है इससे यहां कर्म्म शब्द की अनुवृत्ति नहीं होती है । स्तम्बकर्णयोर्हस्तिसूचकयोः । महाभाष्य ३ । २ । १३ (स्तम्बकर्णयोः) यहां हस्तिन्, सूचक और कहना चाहिये अर्थात् हस्ती सूचक अभिधेय हों तो उक्त अच् प्रत्यय हो । स्तम्बे रमते, स्तम्बेरमः । हस्ती । कर्णेजपति, कर्णेजपः सूचकः । हस्ति सूचक से अन्यत्र स्तम्बेरन्ता । कर्णेजपिता । मशकः ॥१०१५॥

१०१६—शमि धातोः संज्ञायाम् ॥अ०॥ ३ । २ । १४ ॥

शम् उपपद हो तो संज्ञाविषय में धातु मात्र से अच् प्रत्यय हो । शंकरः । शम्भवः । शंवदः । यहां धातुग्रहण हेत्वादि अर्थों में जो ट प्रत्यय का विधान करेंगे उस के बाधने के लिये है । अर्थात् उन अर्थों में भी शम्पूर्वक कृञ् धातु से अच् प्रत्यय हो । शंकरा नाम परिव्राजिका । शंकरा नाम शकुनिका तच्छीलाच ॥ १०१६॥

१०१७—अधिकरणे शेतेः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५ ॥

सुबन्त उपपद हो तो अधिकरण में शीङ् धातु से अच् प्रत्यय हो । खे शेते, खशयः । गर्त्तशयः ॥ १०१७ ॥

१०१८—वा०—अधिकरणे शेतेः पार्श्वादिषूपसंख्यानम् ॥

(अधिकरण शेतेः) यहां पार्श्वादिक पूर्व हों तो भी उपसंख्यान करना चाहिये। पार्श्वाभ्यां शेते पार्श्वशयः । पृष्ठशयः । उदरशयः ॥ १०१८ ॥

१०१९—वा०—दिग्धसहपूर्वाच्च ॥

दिग्धसहपूर्वक भी शीङ् धातु से अच् प्रत्यय कहना चाहिये । दिग्धेन सह शेते, दिग्धसहशयः । यहां (दिग्धसह) इतना समुदाय पूर्व इष्ट किन्तु प्रत्येक शब्द पूर्व नहीं इष्ट है ॥ १०१९ ॥

१०२०—वा०—उत्तानादिषु कर्त्तृषु ॥

कर्तृवाचक उत्तानादिक शब्द उपपद हों तो शीङ् धातु से अच् प्रत्यय हो । उत्तानः शेते, उत्तानशयः । अवनतोमूर्द्धा यस्य स, अवमूर्द्धा । अवमूर्द्धा शेते, अवमूर्द्धशयः ॥१०२०॥

१०२१—वा०—गिरौ डश्छन्दसि ॥

गिरि शब्द उपपद हो तो वेदविषय में शीङ् धातु से ड प्रत्यय कहना चाहिये। गिरौ शेते, गिरिशः लोक में गिरिश, यह शब्द (स्त्रैण०६८२) सूत्र से तद्धितविषय में होता है ॥ १०२१ ॥

१०२२—चरेष्टः ॥ ३ । २ । १६ ॥

अधिकरणवाची सुबन्त उपपद हो तो चर धातु से ट प्रत्यय हो। खेचरतीति, खेचरः । खेचरी । निशाचरः । निशाचरी । कुरुचरः । कुरुचरी । मद्रचरः । मद्रचरी । दिवाचरः । दिवाचरी । अधिकरण ग्रहण से यहां न हुआ । कुरूँश्चरतीति । पञ्चालाँश्चरतीति * ॥ १०२२ ॥

१०२३—भिक्षासेनादायेषु च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७ ॥

भिक्षा सेना और आदाय शब्द उपपद हों तो चर धातु से ट प्रत्यय हो। भिक्षां चरतीति भिक्षाचरः । सेनाचरः । आदाय यह ल्यबन्त है। आदाय चरतीति, आदायचरः । सहचरः यह तो पचादिगण में जो चरट् शब्द का पाठ है उस से बनेगा ॥ १०२३ ॥

१०२४—पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्त्तेः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८ ॥

पुरस् अग्रतस् अग्रे ये उपपद हों तो सृ धातु से ट प्रत्यय हो। पुरस्सरति, पुरस्सरः । अग्रतस्सरः । अग्रम् अग्रेण अग्रे वा सरति अग्रेसरः । यहां अग्रे शब्द एकारान्त निपातन से है ॥ १०२४ ॥

१०२५—पूर्वे कर्त्तरि ॥ अ० ॥ ३ । २ । १९ ॥

कर्त्तृवाचक पूर्व शब्द उपपद हो तो सृ धातु से ट प्रत्यय हो। पूर्वः सरतीति, पूर्वसरः । कर्त्तृ से अन्यत्र पूर्वं देशं सरतीति पूर्वसारः ॥ १०२५ ॥

१०२६—कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ॥ अ० ॥ ३ । २ । २० ॥

हेतु ताच्छील्य और आनुलोम्य अर्थ गम्यमान हों तो कृञ् धातु से ट प्रत्यय हो। हेतु (कारण) ताच्छील्य (तत्स्वभावता) आनुलोम्य (अनुकूलपन) हेतु, यशस्करी विद्या । शोककरी कन्या । दुःखकरं पापम् । ताच्छील्य, श्राद्धकरः । अर्थकरः । आनुलोम्य, वचनकरः । इन से अन्यत्र । कुम्भकारः । नगरकारः ॥ १०२६ ॥

---

* कुरु देश में भ्रमण करता है इस अर्थ की अपेक्षा में (कुरुषु चरति) यह विग्रह होता और अन्यदेश से कुरुदेश को प्राप्त होता है इस विवक्षा में (कुरूंश्चरति) यह विग्रह होता है ॥

१०२७—दिवाविभानिशाप्रभाभास्कारान्तानन्तादिबहुनान्दी-
किंलिपिलिबिबलिभक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसंख्याजङ्घाबाह्व-
हर्यत्तद्धनुररुष्षु ॥ अ० ॥ ३ । २ । २१ ॥

दिवादिक शब्द उपपद हों तो कृञ् धातु से ट प्रत्यय हो । दिवा करोति, दिवाकरः विभां करोति विभाकरः । निशाकरः । प्रभाकरः । भास्करः । यहां (सन्धि० २०१) सत्व० । कारकरः । अन्तकरः । अनन्तकरः । आदिकरः । बहुकरः । संख्या से पृथक् बहु शब्द का ग्रहण बहुत्व की अपेक्षा से है। नान्दीकरः । किंकरः । लिपि लिबि एकार्थक हैं । लिपिकरः । लिबिकरः । बलिकरः । संख्या, एककरः । द्विकरः । त्रिकरः । जङ्घाकरः । बाहुकरः । अहस्करः । यत्करः । तत्करः । चोर अभिधेय हो तो तस्करः । होगा (सन्धि०२४८) से सुडागम और तलोप० । धनुष्करः । अरुष्करः । यहां (सन्धि० १६८) से षत्व० । किंयत्तद्बहुषु कृञोऽज्विधानम् ॥ महाभाष्य ३ । २ । २१ । पूर्वोक्त शब्दोंमें किं यद् तद् और बहु उपपद हों तो अच् प्रत्यय का विधान करना चाहिये । अन्यत्र ट होगा । किंकरा । यत्करा । किंकरी । तस्करी आदि ङीबन्त तो पुंयोग से होते हैं ॥ १०२७ ॥

१०२८—कर्मणि भृतौ ॥ अ० ॥ ३ । २ । २२ ॥

कर्म वाचक कर्म शब्द उपपद हो तो कृञ् धातु से ट प्रत्यय हो । भृति (वेतन) कर्माणि करोति कर्मकरः । भृत्यः । भृति से अन्यत्र । कर्मकारः ॥ १०२८ ॥

१०२९—न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु ॥
अ० ॥ ३ । २ । २३ ॥

शब्द, श्लोक, कलह गाथा वैर, चाटु, सूत्र, मन्त्र, पद ये उपपद हों तो कृञ् धातु से ट प्रत्यय न हो । हेत्वादि अर्थों में प्राप्त ट प्रत्यय का प्रतिषेध है । शब्दकारः । श्लोकारः । कलहकारः । गाथाकारः । वैरकारः । चाटुकारः । सूत्रकारः । मन्त्रकारः । पदकारः ॥ १०२९ ॥

१०३०—स्तम्बशकृतोरिन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । २४ ॥

स्तम्ब और शकृत् उपपद हो तो कृञ् धातु से इन् प्रत्यय हो । स्तम्बशकृतोर्व्रीहिवत्सयोः । महाभाष्य ३ । २ । २४ उक्त सूत्रमें व्रीहि, वत्स और कहना चाहिये । स्तम्बकरिः । व्रीहिः । शकृत्करिः । वत्सः । अन्यत्र । स्तम्बकारः । शकृत्कारः ॥ १०३० ॥

१०३१—हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ ॥ अ० ॥ ३ । २ । २५ ॥

दृति और नाथ कर्म उपपद हों और पशु कर्त्ता हो तो हृञ् धातु से इन् प्रत्यय

हो । दृतिं चर्ममयं पात्रं हरति दृतिहरिः । नाथं नासारज्जुं हरति, नाथहरिः । पशुः । अन्यत्र दृतिहारः । नाथहारः ॥ १०३१ ॥

१०३२—फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । २६ ॥

फलेग्रहि और आत्मम्भरि ये दोनों शब्द निपातन हैं । फलानि गृह्णाति, फलेग्रहिः । यहां उपपद को एकार और धातु से इन् प्रत्यय निपातन है । भृञः कुक्ष्यात्मनोर्मुम् च । महाभाष्य० ३ । २ । २६ । भृञ् धातु से इन् प्रत्यय के विधान में कुक्षि और आत्मन् शब्द को मुम् आगम निपातन होना चाहिये । कुक्षिं बिभर्त्ति, कुक्षिंभरिः । आत्मम्भरिश्चरति यूथमसेवमानः । यहां चकार अनुक्त समुच्चय के लिये है इस से 'उदरम्भरिः,' यह भी निपातन जानना चाहिये ॥ १०३२ ॥

१०३३—छन्दसि वनसनरक्षिमथाम् ॥ अ० । ३ । २ । २७ ॥

कर्म उपपद हो तो वेदविषय में वन, षण, रक्ष, मथ इन धातुओं से इन् प्रत्यय हो । ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिं । गोसनिं यो पथि रक्षी श्वानौ । हविर्मथीनाम् ॥ १०३३ ॥

१०३४–एजेः खश् ॥ अ० ॥ ३ । २ । २८ ॥

कर्म उपपद हो तो णिजन्त एजृ धातु से खश् प्रत्यय हो । जनान् एजयतीति । (जन—एजि—शप्—खश्—) यहां ॥ १०३४ ॥

१०३५—अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ६७ ॥

खिदन्त उत्तर पद परे हो तो अरुष् द्विषत् और अव्ययभिन्न अजन्त शब्दों को मुमागम हो । मुम् होकर जन+म्–एज्–अ–अ=) जनमेजयः ॥ १०३५ ॥

१०३६–वा०–खश्प्रकरणे वातशुनीतिलशर्धेष्वजधेट्तुदजहातिभ्यः ॥

खश् प्रत्यय के प्रकरण में वात शुनी तिल शर्द्ध ये यथाक्रम उपपद हों तो अज धेट् तुद और जहाति से खश् प्रत्यय का विधान करना चाहिये । वातमजाः । मृगाः । शुनीं धयति, यहां ॥ १०३६ ॥

१०३७—खित्यनव्ययस्य ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ६६ ॥

खिदन्त उत्तरपद परे हो तो अव्यय रहित पूर्वपद को ह्रस्व आदेश हो । शुनिंधयः । तिलंतुदः । शर्द्धमपानशब्दं जहति—जाहयन्ति, शर्द्धजहाः माषाः । यहां हा धातु अन्तर्भावित ण्यर्थ है ॥ १०३७ ॥

१०३८—नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । २९ ॥

नसिका और स्तन कर्म उपपद हों तो ध्मा और धेट् धातुओं से खश् प्रत्यय

हो। स्तने धेट:। नासिकायां ध्मश्च धेटश्च। महाभाष्य ३।२।२९। स्तनंधयति स्तनन्धय:। नासिकंधम:। नासिकंधय:। स्त्रीलिङ्ग में। स्तनंधयी। यहां धेट् के टित् से (स्त्रैणता० ३५) से ङीप् प्रत्यय होजाता है। सूत्र में बहुच् भी नासिका शब्द का पूर्वनिपात अल्पाच्पूर्वनिपात के अनित्यत्व के लिये है ॥ १०३८ ॥

१०३९—नाडीमुष्ट्योश्च ॥ अ० ॥ ३।२।३० ॥

नाडी और मुष्टि कर्म उपपद हों तो ध्मा और धेट् धातु से खश् प्रत्यय हो। यहां मुष्टि, इस घिसंज्ञकान्त का अपूर्व निपात है इस से संख्यातानुदेश नहीं होता है। नाडींधयति, नाडिंधय:। नाडींधमति, नाडिंधम:। मुष्टिंधय:। मुष्टिंधम: चकार अनुक्त समुच्चय के लिये है इस से वातंधय:। वातंधम:। पर्वत:। खरिंधय: खरिंधम:। ये भी जानना चाहिये ॥ १०३९ ॥

१०४०—वा०—नासिकानाडीमुष्टिघटीखारीष्विति वक्तव्यम् ॥

घटिंधय:। घटिंधम:। खारिंधय:। खारिंधम:। नासिका, नाडी, मुष्टि शब्दों के विषय में उदाहरण दे चुके हैं ॥ १०४० ॥

१०४१—उदि कूले रुजिवहो: ॥ अ० ॥ ३।२।३१ ॥

कूलकर्म उपपद होतो उत्पूर्वक रुज और वह धातु से खश् प्रत्यय हो। कूलमुद्रुजतीति, कूलमुद्रुजो रथ:। कूलमुद्वह: ॥ १०४१ ॥

१०४२—वहाभ्रे लिह: ॥ अ० ॥ ३।२।३२ ॥

वह और अभ्र कर्म उपपद होतो लिह धातु से खश् प्रत्यय हो। वहं स्कन्धं लेढीति, (वह—मुम्—लिह—शप्—खश्=) वहंलिह:। गौ:। यहां अदादित्व से शप् का लुक् हो जाता है ॥ १०४२ ॥

१०४३—परिमाणे पच: ॥ अ० ॥ ३।२।३३ ॥

परिमाणवाचक कर्म उपपद हो तो पच धातु से खश् प्रत्यय हो। प्रस्थंपचति, प्रस्थं पचा स्थाली। द्रोणम्पच:। खारिम्पच: कटाह: ॥ १०४३ ॥

१०४४—मितनखे च ॥ अ० ॥ ३।२।३४ ॥

मित और नख ये कर्म उपपद हों तो पच धातु से खश् प्रत्यय हो। मितंपचति, मितम्पचा ब्राह्मणी। नखम्पचा यवागू:। यहां पचधातु ताप अर्थ वाचक है ॥ १०४४

१०४५—विध्वरुषोस्तुद: ॥ अ० ॥ ३।२।३५ ॥

विधु और अरुष् कर्म उपपद हों तो तुद धातु से खश् प्रत्यय हो। विधु-

न्तुदः । अरुंषि मर्मस्थलानितुदति अरुन्तुदः । यहां मुम् किये पीछे अरुष् के सकार को संयोगान्तलोप हो जाता है ॥ १०४५ ॥

१०४६—असूर्य्यललाटयोर्दृशितपोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३६ ॥

असूर्य्य और ललाट शब्द यथाक्रम से उपपद हों तो दृशि और तप धातु से खश् प्रत्यय हो । सूर्य्यं न पश्यन्ति, असूर्यंपश्याः राजदाराः । यहां नञ् का दृश से सम्बन्ध है इस से यह असमर्थ समास इसी (असूर्य्य) निर्देश से होता है । अनिवार्य्य सूर्यं का भी दर्शन नहीं करने वालीं राजदारा हैं । ललाटंतपः सूर्यः ॥१०४६॥

१०४७—उग्रम्पश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३७ ॥

उग्रम्पश्य, इरम्मद और पाणिन्धम ये शब्द निपातन किये हैं । उग्र शब्द यहां क्रियाविशेषण है । उग्रं यथा स्यात्तथा पश्यति, उग्रम्पश्यः । इरया जलेन माद्यति, इरम्मदः । पाणयो ध्मायन्तेऽस्मिन्निति, पाणिन्धमः पन्थाः । जो अन्धकारयुक्त मार्ग होता है उस में सर्पादिक क्षुद्र जीवों की निवृत्ति के लिये कभी हाथ से ताली भी देते हैं ॥ १०४७ ॥

१०४८—प्रियवशे वदः खच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३८ ॥

प्रिय और वश ये कर्म उपपद हों तो धातु से खच् प्रत्यय हो । प्रियं वदतीति, प्रियंवदः । वशंवदः ॥ १०४८ ॥

१०४९—वा०—खच्प्रकरणे गमेः सुपि उपसंख्यानम् ॥

खच् के प्रकरण में सुबन्त पूर्वक गम धातु से भी उपसंख्यान करना चाहिये। मितंगमो हस्ती । मितंगमा हस्तिनी ॥ १०४९ ॥

१०५०—वा०—विहायसो विह च ॥

इस प्रकरण में विहायस् शब्द जो गम धातु के पूर्व हो तो उस को विह आदेश भी हो । विहायसाकाशमार्गेण गच्छति, विहंगमः पक्षी ॥ १०५० ॥

१०५१—वा०—खच्च डिच्च ॥

विहायस् शब्द को विह आदेश होने में गम से परे खच् प्रत्यय विकल्प करके डित्वत् हो । विहंगः ॥ १०५१ ॥

१०५२—वा०—डे च ॥

गम से ड प्रत्यय परे हो तो भी विहायस् को विह आदेश हो । विहगः । यहां गम धातु से (१०६९) इस से ड प्रत्यय होता है ॥ १०५२ ॥

१०५३—द्विषत्परयोस्तापे: ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३९ ॥

द्विषत् और पर कर्म उपपद हों तो णिजन्त तप धातु से खच् प्रत्यय हो। द्विषन्तं तपति, द्विषत्–ताप्–णिच्–खच् । इस व्यवस्था में ॥ १०५३ ॥

१०५४—खचि ह्रस्व: ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ९४ ॥

खच्परक णि परे हो तो अङ्ग की उपधा को ह्रस्वादेश हो। इस से ह्रस्वादेश होकर द्विषन्तप: सिद्ध होता है। ऐसे ही। परन्तप:। द्विषतीं तापयति। यहां लिङ्गविशिष्टपरिभाषा का अनित्यत्व * मान कर खच् नहीं होता है। अथवा (द्विषत्परयो:०) यहां द्वितकारक निर्देश मान कर तकारान्त द्विषत् शब्द का ग्रहण है ॥ १०५४ ॥

१०५५—वाचि यमो व्रते ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४० ॥

व्रत (नियम) अर्थ में वाच् कर्म उपपद हो तो धातु से खच् प्रत्यय हो। वाचं यच्छति, वाच्–अम्–यम्–खच्। यहां ॥ १०५५ ॥

१०५६—वाचंयमपुरंदरौ च ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ६९ ॥

वाचंयम और पुरन्दर ये निपातन किये हैं। अर्थात् वाच् और पुर शब्द को अमन्तत्व निपातन है। इस से वाच् शब्द को अमन्तत्व होकर। वाचंयम:। होता है। नियम से अन्यत्र असामर्थ्य से वचन न निकले वहां वाग्याम: होगा ॥ १०५६ ॥

१०५७—पू:सर्वयोर्दारिसहो: ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४१ ॥

पुर्, सर्व ये कर्म यथाक्रम से उपपद हों तो दारि, सह धातुओं से खच् प्रत्यय हो। पुरंदारयति, पुरन्दर:। यहां भी अमन्तत्व हो गया। सर्वंसह:। कृत् संज्ञकों में (९१८) सूत्र के बहुल नियम से भगपूर्वक दारि धातु से भी खच् प्रत्यय होता है। भगन्दर:। ॥ १०५७ ॥

१०५८—सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कष: ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४२ ॥

सर्व, कूल, अभ्र, करीष ये कर्म उपपद हों तो कष धातु से खच् प्रत्यय हो। सर्वं कषति, सर्वंकष: खल:। कूलंकषा नदी। अभ्रंकषा गिरि:। करीषंकषा वात्या। ॥१०५८॥

१०५९—मेघर्त्तिभयेषु कृञ: ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४३ ॥

मेघ, ऋति, भय ये कर्म उपपद हों तो कृञ् धातु से खच् प्रत्यय हो। मेघंकर:। ऋतिंकर:। भयंकर:। यहां भय शब्द के साथ तदन्तविधि भी है अभयंकर:। ॥१०५९॥

* वा० नासिका मा॰ष्टी० यहां घट शब्द के साथ घटी शब्द के ग्रहण से लिङ्गविशिष्टपरिभाषा अनित्य है।

१०६० — क्षेमप्रियमद्रेऽण् च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४४ ॥

क्षेम, प्रिय, मद्र ये कर्म उपपद हों तो कृञ् धातु से अण् और खच् प्रत्यय हो। क्षेमं करोति, क्षेमकारः । क्षेमंकरः । प्रियकारः । प्रियंकरः । मद्रकारः । मद्रंकरः । यहां वा, ग्रहण करने से दूसरे पक्ष में (९९६) सूत्र से अण् प्रत्यय हो जाता फिर अण् ग्रहण हेत्वादिक अर्थों में जो कृञ् से ट प्रत्यय विहित है उस के बाधने के लिये है । क्षेमकरः । यह तो कर्म की शेषत्वविवक्षा मान कर कृञ् से पृथक् पचाद्यच् होता है ॥ १०६० ॥

१०६१ — आशिते भुवः करणभावयोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४५ ॥

आशित शब्द सुबन्त उपपद हो तो भू धातु से करण और भाव में खच् प्रत्यय हो । करण, आशितो भवत्यनेनेति, आशितम्भव ओदनः । भाव, आशितस्य भवनं आशितंभवं वर्त्तते ॥ १०६१ ॥

१०६२ — संज्ञायां भृतॄवृजिधारिसहितपिदमः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४६ ॥

कर्म वा अन्य सुबन्त उपपद हो तो भृ, तॄ, वृ, जि, धारि, सहि, तपि, दम इन धातुओं से खच् प्रत्यय हो । यहां यथासंभव कर्म और सुप् उक्त धातुओं से संबद्ध होते हैं । विश्वं बिभर्त्ति, विश्वंभरा वसुन्धरा । रथेन तरति रथन्तरं साम । पतिंवरा कन्या । शत्रुंजयो हस्ती। युगंधरः पर्वतः । शत्रुंसहः । शत्रुंतपः । अरिंदमः। संज्ञाग्रहण से यहां न हुआ । कुटुम्बं बिभर्त्तीति, कुटुम्बभारः ॥ १०६२ ॥

१०६३ — गमश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४७ ॥

सुबन्त उपपद हो तो संज्ञा में गम धातु से खच् प्रत्यय हो । सुतया गच्छति, सुतंगमः । पृथक् सूत्र उत्तरार्थ है ॥ १०६३ ॥

१०६४ — अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु डः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४८ ॥

अन्त अत्यन्त, अध्वन्, दूर, पार, सर्व, अनन्त ये कर्म उपपद हों तो गम धातु से ड प्रत्यय हो । अन्तगः । अत्यन्तगः । अध्वगः । दूरगः । पारगः । सर्वगः । अनन्तगः। यहां टकार टि लोप के लिये है इस से ड प्रत्यय के परे भसंज्ञा के विना भी टि-लोप हो जाता है ॥ १०६४ ॥

१०६५ — वा० — डप्रकरणे — सर्वत्रपन्नयोरुपसंख्यानम् ॥

गम धातु से डप्रत्यय के प्रकरण में सर्वत्र और पन्न शब्द का भी उपसंख्यान करना चाहिये । सर्वत्र गच्छति, सर्वत्रगः । पन्नं पतितं गच्छति पन्नगः ॥ १०६५ ॥

१०६६—वा०—उरसो लोपश्च ॥

ड प्रकरण में गम धातु से उरस् पूर्व हो तो उस के अन्त्य सकार का लोप भी हो। उरसा गच्छति, उरगः ॥ १०६६ ॥

१०६७—वा०—सुदुरोरधिकरणे ॥

सु और दुर् उपपद हो तो गम धातु से अधिकरण में ड प्रत्यय कहना चाहिये सुखेन गच्छत्यस्मिन्निति सुगः। दुःखेन गच्छत्यस्मिन्निति दुर्गो मार्गः ॥ १०६७ ॥

१०६८—वा०—निसो देशे ॥

देश अभिधेय हो तो निस् से परे गम धातु से ड प्रत्यय कहना चाहिये निश्चयेन गच्छत्यस्मिन्निति निर्गो देशः ॥ १०६८ ॥

१०६९—वा०—अपर आह–डप्रकरणे अन्येष्वपि दृश्यते ॥

इस प्रकरण में और भी उपपद हों तो ड प्रत्यय देखा गया है। तत्र स्त्र्यगारगः, अश्नुते यावदनाय 'ग्रामगः, ध्वंसते 'गुरुतल्पगः, ॥ १०६९ ॥

१०७०—आशिषि हनः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४९ ॥

आशीर्वाद अर्थ गम्यमान और कर्म उपपद हो तो हन धातु से ड प्रत्यय हो। शत्रुं वध्यात् शत्रुहः।तव पुत्रो भूयात्। तिमिहः। आशीः से अन्यत्र शत्रुघातः॥ १०७०॥

१०७१—वा०—दारावाहनोणन्तस्य च टः संज्ञायाम् ॥

संज्ञाविषय में दारु शब्द पूर्वक हन धातु से अण् प्रत्यय और अन्त्य को टकारादेश कहना चाहिये।दारु आहन्ति, दार्वाघाटः।दार्वाघाटस्तेवनसतीनाम् ॥१०७१॥

१०७२—वा०—चारौ वा ॥

चारु शब्द उपपद हो तो आङ्पूर्वक हन धातु से अण् प्रत्यय नित्य और अन्त्य को टकारादेश विकल्प करके कहना चाहिये। चार्वाघाटः। चार्वाघातः॥ १०७२ ॥

१०७३—वा०—कर्मणि समि च ॥

कर्म उपपद हो तो सम्पूर्वक हन धातु से अण् प्रत्यय और उस को टकारादेश विकल्प करके कहना चाहिये। वर्णान् संहन्ति, वर्णसंघाटः। वर्णसंघातः। पदानि संहन्ति पदसंघाटः। पदसंघातः ॥ १०७३ ॥

१०७४—अपे क्लेशतमसोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५० ।

क्लेश, तमस्, कर्म उपपद हों तो अप पूर्वक हन धातु से ड प्रत्यय हो। क्लेशमपहन्ति, क्लेशापहः पुत्रः। तमोपहन्ति तमोपहः सूर्यः ॥ १०७४ ॥

१०७५—कुमारशीर्षयोर्णिनिः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५१ ॥

कुमार और शीर्ष कर्म उपपद होतो हन धातु से णिनि प्रत्यय हो । कुमारं हन्ति कुमारघाती । शीर्षघाती । यह शीर्ष शब्द शिरस् शब्द को शीर्ष भाव निपातन के लिये है ॥ १०७५ ॥

१०७६—लक्षणे जायापत्योष्टक् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५२ ॥

जाया और पति ये कर्म उपपद हों और लक्षणवान् कर्त्ता अभिधेय होतो हन धातु से टक् प्रत्यय हो । जायां हन्ति जायाघ्नो ब्राह्मणः । पतिघ्नी वृषली ॥१०७६॥

१०७७—अमनुष्यकर्त्तृके च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५३ ॥

कर्म उपपद होतो मनुष्यभिन्न कर्त्ता में हन धातु से टक् प्रत्यय हो । जायां हन्ति, जायाघ्नस्तिलकालकः । पतिं हन्ति पतिघ्नी पाणिरेखा । शशघ्नी शकुनी । श्लेष्माणं हन्ति, श्लेष्मघ्नम् मधु । पित्तं हन्ति पित्तघ्नम् । घृतम् । अमनुष्यकर्तृक ग्रहण से यहां न हुआ । आखुघातः शूद्रः । नगरघातोहस्ती । यहां टक् प्रत्यय प्राप्त भी है तथापि कृत्संज्ञकों के बहुल भाव से कर्मोपपद लक्षण अण् होता है । प्रलम्बघ्नः । शत्रुघ्नः । कृतघ्नः । इत्यादिक, तो मूलविभुजादिक प्रत्यय से होते हैं॥१०७७॥

१०७८—शक्तौ हस्तिकपाटयोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५४ ॥

शक्ति गम्यमान हो और हस्ति, कपाट कर्म उपपद होतो हन धातु से टक् प्रत्यय हो । यह मनुष्यकर्त्तृक विषय के लिये सूत्र है । हस्तिनं हन्तुं शक्तः, हस्तिघ्नः । मनुष्यः । कपाटघ्नश्चोरः । शक्तिग्रहण से यहां न० । विषेण हस्तिनं हन्ति, हस्तिघातः । यहां अण् होता है ॥ १०७८ ॥

१०७९—पाणिघताडघौ शिल्पिनि ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५५ ॥

शिल्पीकर्त्ता अभिधेय होतो पाणिघ, ताडघ ये दोनों शब्द निपातन हैं । पाणिं हन्ति पाणिघः । ताडघः । यहां पाणि और ताडकर्मोपपद हन धातु से टक् प्रत्यय के परे धातु की टि का लोप और घकारादेश निपातन है ॥ १०७९ ॥

१०८०—वा०-राजघ उपसंख्यानम् ॥

उक्त निपातनों में 'राजघ, यह भी उपसंख्यान करना चाहिये । राजानं हन्ति राजघः ॥ १०८० ॥

१०८१—आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५६ ॥

च्विरहित च्व्यर्थ आढ्य, सुभग, स्थूल, पलित, नग्न, अन्ध, प्रिय ये कर्म्म उपपद हों

तो कृञ् धातु से करण में ख्युन् प्रत्यय हो। अनाढ्यमाढ्यमनेन कुर्वन्ति, आढ्यंकरणम्। सुभगंकरणम्। स्थूलंकरणम्। पलितंकरणम्। नग्नंकरणम्। अन्धंकरणम्। प्रियंकरणम्। च्व्यर्थग्रहण से यहां न हुआ। आढ्यं घृतेन कुर्वन्ति घृतेनाभ्यञ्जयन्ति। 'अच्वौ,' यह प्रतिषेध आगे के लिये है क्योंकि यहां च्व्यन्त विषय में ख्युन् के प्रतिषेध में ल्युट् हो जायगा ल्युट् में समान रूप समान ही स्वर आदि कार्य हैं। आढ्यीकरणम् * ॥ १०८१ ॥

१०८२—कर्त्तरि भुवः खिष्णुच्खुकञौ ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५७ ॥

च्विरहित च्व्यर्थ आढ्यादिक सुबन्त उपपद हों तो भू धातु से कर्त्ता में खिष्णुच् और खुकञ् प्रत्यय हों। अनाढ्य आढ्यो भवति, आढ्यम्भविष्णुः। आढ्यम्भावुकः। सुभगंभविष्णुः। सुभगंभावुकः। स्थूलंभविष्णुः। स्थूलंभावुकः। पलितंभविष्णुः। पलितंभावुकः। नग्नंभविष्णुः। नग्नंभावुकः। अन्धंभविष्णुः। अन्धम्भावुकः। प्रियंभविष्णुः। प्रियंभावुकः। कर्तृग्रहण से करण में न होते हैं। च्व्यर्थ मात्र से अन्यत्र आढ्यो भविता। अच्विग्रहणसे यहां न०। आढ्यीभविता ॥ १०८२ ॥

१०८३—स्पृशोऽनुदके क्विन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५८ ॥

अनुदक सुबन्त उपपद हो तो स्पृश धातु से क्विन् प्रत्यय हो। घृतं स्पृशति, घृतस्पृक्। मन्त्रेण स्पृशति, मन्त्रस्पृक्। जलेन स्पृशति, जलस्पृक्। अनुदकग्रहण से यहां न हुआ उदकस्पर्शः। कर्म की अनुवृत्ति नहीं है किन्तु निवृत्त हो गई ॥ १०८३ ॥

१०८४—ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च ॥
अ० ॥ ३ । २ । ५९ ॥

ऋत्विज्, दधृष्, स्रज्, दिश्, उष्णिज् ये क्विन् प्रत्ययान्त निपातन और अञ्चु युजि, क्रुञ्च धातुओं से क्विन् प्रत्यय हो। ऋतौ यजति, ऋतुं यजति, वा ऋतुप्रयुक्तो यजति, ऋत्विक्। यहां ऋतु शब्दपूर्वक यज धातु से क्विन् प्रत्यय है। धृष्णोतीति, दधृक्। यहां ञिधृषा धातु से क्विन् प्रत्यय धातुद्विर्वचन और अन्तोदात्तत्व भी निपातन है। सृज्यते या सा स्रक्। यहां सृज से कर्म में क्विन् प्रत्यय और अमागम निपातन है। दिश्यतेजनैर्या सा दिक्। यहां दिश् से कर्म में क्विन् है। ऊर्ध्वं स्निह्यति,

* ख्युनि प्रतिषेधानर्थक्यं ल्युट्ख्युनोरविशेषात्। ख्युनि च्वि प्रतिषेधोनर्थकः। किंकारणम्। ल्युट् ख्युनोरविशेषात् ख्युनामुनोर्ल्युटा भवितव्यम्। नचैवास्तिविशेषः। च्व्यन्त उपपदे ख्युनो वा ल्युटो वा। तदेव रूपं सएवच स्वरः। महाभाष्य० ३। २। ५६ ॥ स्त्रीलिङ्ग में (स्त्रैण० ३६) ख्युन् प्रत्ययान्त से भी ङीप् हो जायगा। आढ्यंकरणी। काशिकाकारने जो इस विषय में अर्थतः ल्युट् प्रत्यय का भी प्रतिषेध माना है सो असङ्गत है ॥

उष्णिक्। यहां उत्पूर्वक स्निह धातु से क्विन् षत्व और उपसर्गान्त लोप निपातन है। निपातनशब्दों के साथ जो अञ्चु आदि धातुओं से क्विन् का विधान किया है इस से उन में कुछ अलाक्षणिक कार्य भी होता है। जैसे सोपपद अञ्चु से क्विन् प्रकर्षेणाञ्चति,प्राङ्। प्रत्यङ्। उदङ्। युज् और क्रुञ्च् से निरुपपद से होता है। युङ्। युञ्जौ। युञ्जः। क्रुङ्। क्रुञ्चौ। क्रुञ्चः। यहां निपातन से नलोप नहीं होता। इन क्विन् प्रत्ययान्तों में (नामि०११५) से सर्वत्र पदान्त में कुत्व होता है॥ १०८४॥

१०८५—त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ॥ अ० ॥ ३। २। ६०॥

त्यदादिक उपपद हों तो अनालोचन अर्थ में वर्तमान दृश धातु से कञ् और क्विन् प्रत्यय हों। तमिवेमं पश्यन्ति जनाः सोयं स इव दृश्यमानस्तमिवात्मानं पश्यति तादृक्। तादृशः। यादृक्। यादृशः। स्त्री तादृशी। यादृशी। यहां (स्त्रैण० ३५) सूत्र से ङीप् प्रत्यय हो जा०। अनालोचनग्रहण से यहां न हुआ। तं पश्यति- तद्दर्शः। तादृगादिक शब्द रूढि शब्दों के समान हैं। दर्शनक्रिया के अर्थ को नहीं कहते हैं॥१०८५॥

१०८६—वा०—दृशेः समानान्ययोश्च ॥

समान और अन्य शब्द भी उपपद हों और अनालोचन गम्यमान होतो दृश धातु से क्विन् और कञ् प्रत्यय हों। सदृक्। सदृशः। अन्यादृक्। अन्यादृशः॥१०८६॥

१०८७—सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेपि क्विप्॥ अ०॥ ३। २। ६१॥

उपसर्ग वा अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो सदादिक धातुओं से क्विप् प्रत्यय हो। द्विष के साहचर्य से अदादि षूङ् धातु का ग्रहण है। युज से युजिर् और युज दोनों का ग्रहण है। विद इस को अकारान्त पढने से विद ज्ञाने। विद सत्तायाम्। विद विचारणे। इन तीनों का ग्रहण है किन्तु विद्लृ का नहीं है। सत, शुचिषत्। द्युषत्। परिषत्। सू,वीरसूः शतसूः। प्रसूः। द्विष,मित्रद्विट्। परिद्विट्। प्रद्विट्। द्रुह,मित्रध्रुक्। मित्रध्रुग्। प्रध्रुक्। दुह,गोधुक्। परिधुक्। युज्,अश्वयुक्। प्रयुक्। विद, वेदवित्। प्रवित्। ब्रह्मवित्। भिद, काष्ठभित्। प्रभित्। छिद, रज्जुच्छित्। प्रच्छित्। जि, अनुजित्। परिजित्। नी,सेनानीः प्रणीः। ग्रामणीः। इत्यादिकों में (स्त्रैण० ६६६) सूत्र में ग्रामणी शब्द के निर्देश को मान कर (८७०) से णत्व होजाता है। राज्, विराट् सम्राट्॥ १०८७॥

१०८८—भजो ण्विः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६२ ॥

उपसर्ग वा अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो भज धातु से ण्वि प्रत्यय हो। विश्वं भजति, विश्वभाक् । सुखभाक् । प्रभाक् ॥ १०८८ ॥

१०८९—छन्दसि सहः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६३ ॥

वेदविषय में सुबन्त उपपद हो तो सह धातु से ण्वि प्रत्यय हो । तुराषाट् । यहां (८०६) से षत्व० ॥ १०८९ ॥

१०९०—वहश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६४ ॥

वेदविषय में सुबन्त उपपद हो तो वह धातु से ण्वि प्रत्यय हो। प्रष्ठवान् ॥ १०९० ॥

१०९१—कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६५ ॥

वेदविषय में कव्य, पुरीष, पुरीष्य ये उपपद हों तो वह धातु से ञ्युट् प्रत्यय हो। कव्यवाहनः । पुरीषवाहनः । पुरीष्यवाहनः ॥ १०९१ ॥

१०९२—हव्येऽनन्तःपादम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६६ ॥

वेदविषय में हव्य शब्द उपपद हो तो वह धातु से ञ्युट् प्रत्यय हो जो वह पाद के मध्य में न हो । अग्निश्च हव्यवाहनः। अनन्तःपादग्रहण से यहां न हुआ। हव्यवाडग्निरजरः पिता नः ॥ १०९२॥

१०९३—जनसनखनक्रमो विट् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६७ ॥

वेदविषय में सुबन्त उपपद हो तो जन आदि धातुओं से विट् प्रत्यय हो। जन, अब्जाः । गोजाः । सन, गोषा इन्द्रो नृषा असि । खन, बिसखाः । कूपखाः । क्रम, दधिक्राः । गम, अग्रेगा उन्नेतृणाम् ॥ १०९३ ॥

१०९४—अदोऽनन्ने ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६८ ॥

अद धातु से अन्नभिन्न सुबन्त उपपद हो तो विट् प्रत्यय हो। आममत्ति, आमात् । सस्यात् । अनन्नग्रहण से यहां न हुआ । अन्नादः ॥ १०९४ ॥

१०९५—क्रव्ये च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६९ ॥

क्रव्य शब्द उपपद हो तो अद धातु से विट् प्रत्यय हो। क्रव्यात् । यद्यपि पूर्व सूत्र से विट् प्रत्यय हो जाता फिर यह सूत्र असरूप प्रत्यय के बाधने के लिये है इस से क्रव्योपपद अद धातु से अण् प्रत्यय नहीं होता है ॥ १०९५ ॥

१०९६—दुहः कप् घश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७० ॥

सुबन्त उपपद हो तो दुह धातु से कप् प्रत्यय और धातु को घकारान्तादेश हो। कामान्दोग्धि, कामदुघा । अर्थदुघा ॥ १०९६ ॥

१०९७—मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७१ ॥

मन्त्रविषय में श्वेतवह, उक्थशस्, पुरोडाश इन से ण्विन् प्रत्यय हो। कर्तृवाचक श्वेत शब्दोपपद वह धातु से कर्मकारक में ण्विन् प्रत्यय हो। श्वेता यं वहन्ति स श्वेतवाः। कर्मवाचक वा करणवाचक उक्थ शब्द पूर्वक शंसु धातु से ण्विन्। उक्थानि शंसति उक्थैर्वा शंसति उक्थशाः। पुरः पूर्वक दाशृ को डकारादेश कर्म में ण्विन्। पुरोदाशन्त इममिति पुरोडाः। इस विषय में पदान्त में (नामि० १२१, १२३) में डस् आदि कार्य होते हैं॥ १०९७॥

१०९८—अवे यजः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७२ ॥

मन्त्रविषय में अव उपपद हो तो यज धातु से ण्विन् प्रत्यय हो। अवयजति, अवयाः। त्वं यज्ञे वरुणस्यावया असि॥ १०९८॥

१०९९—विजुपे छन्दसि ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७४ ॥

वेदविषय में उप उपपद होतो यज धातु से विच् प्रत्यय हो। उपयडभीरूर्ध्वं वहन्ति। यहां छन्दोग्रहण ब्राह्मण विषय के लिये भी है॥ १०९९॥

११००—आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ ।७३ ॥

वेदविषय में सुबन्त उपपद हो तो आकारान्त धातु से मनिन्, क्वनिप्, वनिप् विच् प्रत्यय हों। मनिन् शोभनं ददाति सुदामा। अश्वत्थामा। क्वनिप् सुधीवा सुपीवा। वनिप्। भूरिदावा। घृतपावा। विच्, कीलालपाः॥ ११००॥

११०१—अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७५ ॥

आकारान्तों से अन्य धातुओं से भी मनिन्, क्वनिप्, वनिप् विच् प्रत्यय देखे जाते हैं॥ ११०१॥

११०२—नेड्वशि कृति ॥ अ० ॥ ७ । २ । ८ ॥

वशादि कृत् सञ्ज्ञक प्रत्यय परे हो तो इट् न हो। इस से इट् का निषेध होकर शोभनं शृणाति सुशर्मा। क्वनिप् प्रातरित्वा। प्रातरित्वानौ। वनिप् विजावा। अग्रे गावा। विच् रेडसि पर्णं नयेः। यहां अपि शब्द सर्वोपाधिनिवृत्ति के लिये है। इस से केवल से भी होता है। धीवा। पीवा॥ ११०२॥

११०३—क्विप् च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७६ ॥

धातु से क्विप् प्रत्यय हो। उखायाः स्रंसते उखास्रत्। पर्णध्वत्। वाहाद् भ्रंसते वाहभ्रट्। यह क्विप् प्रत्यय सोपपद वा निरुपपद धातु से लोक वेद में सर्वत्र होता है॥ ११०३॥

११०४—छ्वोः शूडनुनासिके च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १९ ॥

इस मन वन् क्वि ये परे हों तो छादि धातु की उपधा को ह्रस्व आदेश हो। तनं छादयति, तनुच्छत्। ज्वरतीति, जूः। जूरौ। जुरः। तूः। स्रूः। जनानवतीति, जनीः। जनावौ। जनावः। मवतीति मूः। यहां सर्वत्र (५५८) से ऊठ्। मूर्च्छति, मूः। मुरौ। मुरः। धूर्वति, धूः। धुरौ। धुरः (५५९) से छ्व् लोप० ॥ ११०४ ॥

११०५—गमः क्वौ ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४० ॥

क्वि परे हो तो गम के अनुनासिक का लोप हो। अङ्गान् गच्छति, अङ्गगत्। कश्मीरगत्। कलिङ्गगत् ॥ ११०५ ॥

११०६—वा०—गमादीनामिति वक्तव्यम् ॥

क्वि के परे गमादिकों के अनुनासिक का लो०। परितस्तनोतीति, परीतत्। परीतत्सह कुण्डिकया। संयच्छतीति संयत्। शोभनं नमति, सुनत् ॥ ११०६ ॥

११०७—वा०—ऊङ् च ॥

लोपविषय में गमादिकों के अन्त्य को ऊङ् भी हो। अग्रे गच्छति, अग्रेगूः। अग्रे भ्राम्यति, अग्रेभ्रूः ॥ ११०७ ॥

११०८—स्थः क च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७७ ॥

उपसर्ग वा अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो स्था धातु से क और क्विप् प्रत्यय हो। शं सुखं यथास्यात्तथा तिष्ठति, शंस्थः। शंस्थाः। यद्यपि (क, क्विप्) प्रत्यय (१००२, १०१२) सूत्रों से हो जाते तथापि यह सूत्र बाधकों के बाधने के लिये है इस से 'शंस्थः, आदि में (१०१६) सूत्र से प्राप्त अच् को बाधता है ॥ ११०८ ॥

११०९—सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७८ ॥

अजातिवाची सुबन्तमात्र उपपद और ताच्छील्य अर्थ गम्यमान हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो। उष्णं भोक्तुं शीलमस्य, उष्णभोजी। शीतभोजी। कटुभोजी। मिष्टभोजी। न्यायकारी। उदासर्त्तुं शीलमस्या, उदासारिणी। उदासारिण्यौ। उदासारिण्यः। प्रत्यासारिण्यः। अनुयायी। विसारी। अनुजीवी। अजाति ग्रहण से यहां न हुआ। गवां दोग्धा। ताच्छील्य ग्रहण से यहां न हुआ। कदाचिन्न्यायं करोति ॥ ११०९ ॥

१११०—वा०—णिन्विधौ साधुकारिण्युपसंख्यानम् ॥

साधु करोति, साधुकारी। साधु ददाति, साधुदायी ॥ १११० ॥

१११४—वा०—ब्रह्मणि वदः ॥

ब्रह्म उपपद हो तो वद धातु से णिनि प्रत्यय हो । ब्रह्म वदति, ब्रह्मवादी । ब्रह्मवादिनो वदन्ति । उक्त दोनों वार्त्तिक ताच्छील्य से अन्यत्र के लिये हैं ॥ १११४ ॥

१११२—कर्त्तर्य्युपमाने ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७६ ॥

उपमानवाची कर्त्ता उपपद हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो। उष्ट्रइव क्रोशति, उष्ट्रक्रोशी । ध्वाङ्क्षरावी । अताच्छील्यार्थ वा जात्यर्थ यह सूत्र है । कर्तृग्रहण से यहां न० । अपूपानिव माषान् भक्षयति । उपमानग्रहण से यहां न०। उष्ट्रःक्रोशति॥१११२॥

१११३—व्रते ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८० ॥

शास्त्रोक्त नियम गम्यमान हो और सुबन्त उपपद हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो । स्थण्डिलस्थायी । स्थण्डिलशायी । नियम से स्थण्डिल ही पर सोता है । व्रत ग्रहण से यहां न हुआ । कदाचित् स्थण्डिले शेते देवदत्तः । यह जाति के अर्थ वा ताच्छील्य से अन्य अर्थ में होने के लिये सूत्र है ॥ १११३ ॥

१११४—बहुलमाभीक्ष्ण्ये ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८१ ॥

आभीक्ष्ण्य (वार वार होना) अर्थ गम्यमान हो और सुबन्त उपपद हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो । कषायपायिणो गान्धाराः । क्षीरपायिण उशीनराः । सौवीरपायिणो बाल्हीकाः। बहुलग्रहण से यहां न हुआ । कुल्माषखादः ॥१११४॥

१११५—मनः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८२ ॥

सुबन्त उपपद होतो मन् धातु से णिनि प्रत्यय हो । दर्शनीयं मन्यते, दर्शनीयमानी । शोभनमानी । बहुमानी । सामान्य मन् के ग्रहण से मन् मात्र का ग्रहण प्राप्त है तथापि पूर्वसूत्र से 'बहुल, शब्द की अनुवृत्ति करके किसी मन् से णिनि नहीं भी होता इस से यहां मन्यति का ग्रहण है किन्तु तनादि मनुधातु का ग्रहण नहीं है ॥ १११५ ॥

१११६—आत्ममाने खश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८३ ॥

आत्ममान (अपने को मानना) अर्थ गम्यमान होतो मन् धातु से णिनि और खश् प्रत्यय हो । आत्मानं पण्डितं मन्यते, पण्डितं मन्यः । पण्डितमानी । आत्ममान ग्रहण से यहां दो प्रत्यय न हुए । विष्णु मित्रं पण्डितं मन्यते, पण्डितमानी ॥१११६॥

१११७—इचएकाचोमप्रत्ययवच्च ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ६८ ॥

खिदन्त उत्तरपद परे हो तो इजन्त एकाच् को अम् आगम हो और वह अम् विभक्ति के तुल्य हो । गांमन्यः । यहां (१११) से ओकार को आकारादेश० । स्त्रींमन्यः ।

स्त्रियंमन्य: । यहां (नामि० ८०) से ह्रस्व विक० । इज्ग्रहण से यहां न हुआ। त्वम्मन्य: । एकाज् ग्रहण से यहां न हुआ । लेखाभ्रंमन्य: ॥ १११७ ॥

१११८—भूते ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८४ ॥

यहां से जो प्रत्ययविधान करें सो भूतकाल में हो । यह अधिकार वर्त्तमानाधिकार से पूर्व २ है ॥ १११८ ॥

१११९—करणे यज: ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८५ ॥

करण उपपद होतो भूतकाल में यज धातु से णिनि प्रत्यय हो । सोमेनेष्टवान् सोमयाजी । अग्निष्टोमेनायाक्षीत्, अयष्टवा अग्निष्टोमयाजी । भूतकाल से अन्यत्र अग्निष्टोमेन यजते ॥ १११९ ॥

११२०—कर्मणि हन: ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८६ ॥

कर्म उपपद हो तो हन धातु से भूतकाल में णिनि प्रत्यय हो। पितृव्यघाती। मातुलघाती । यहां से सह पर्यन्त कर्माधिकार है ॥ ११२० ॥

११२१—ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८७ ॥

ब्रह्मन्,भ्रूण,वृत्र ये कर्म उपपद हों तो भूतकाल में हन धातु से क्विप् प्रत्यय हो। ब्राह्मणमवधीत् ब्रह्महा ।भ्रूणहा।वृत्रहा। धातु मात्र से क्विप् प्रत्यय का विधान कर चुके हैं इस से यह ब्रह्मादिविषयक क्विप् प्रत्यय नियमार्थ है । वह यहां दो प्रकार का नियम है । प्रथम,भूतकाल में ब्रह्मादिक ही उपपद हों तो हन धातु से क्विप् हो अन्योपपद हो तो नहीं इस से पुरुषं हतवान् । यहां क्विप्न० । दूसरा, भूतकाल में ब्रह्मादिक उपपद हों तो हन से क्विप् ही हो किन्तु और प्रत्यय न हो इस से ब्रह्ममवधीत् यहां कर्मोपपद अण् भी नहीं होता ॥ ११२१ ॥

११२२—बहुलं छन्दसि ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८८ ॥

वेदविषय में कर्म उपपद हो तो हन धातु से बहुल करके क्विप् प्रत्यय हो । मातृहा सप्तमं नरकं प्रविशेत् । पितृहा । भ्रातृहा । कहीं नहीं भी होता अमित्रघात: ॥ ११२२ ॥

११२३—सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञ: ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८९ ॥

स्वादिक कर्म उपपद हों तो कृञ् धातु से भूतकाल में क्विप् प्रत्यय हो । शोभनं कृतवान् सुकृत् । कर्मकृत् । पापकृत् । मन्त्रकृत् । पुण्यकृत् । यहां तीन प्रकार का नियम है प्रथम,स्वादिक उपपद हो तो कृञ् से क्विप् ही हो और प्रत्यय न हो। इस से कर्म कृतवान् । यहां अण् नहीं होता । दूसरा, स्वादिक उपपद हों तो कृञ्

ही से क्विप् हो । इस से । मन्त्रमधीतवान्, यहां क्विप् न० । स्वादिक उपपद हों तो भूतकाल ही में कृञ् से क्विप् हो अन्यकाल में न हो । इस से मन्त्रं करोति करिष्यति वा यहां क्विप् न० । स्वादिकों का नियम नहीं है इस से अन्योपपद में भी सामान्य क्विप् होता है । भाष्यकृत् । शास्त्रकृत् ॥ ११२३ ॥

११२४—सोमे सुञः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९० ॥

सोम कर्म उपपद हो तो भूतकाल में षुञ् धातु से क्विप् प्रत्यय हो । सोमं सुतवान्, सोमसुत् ॥ ११२४ ॥

११२५—अग्नौ चेः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९१ ॥

अग्नि कर्म उपपद हो तो चिञ् धातु से भूतकाल में क्विप् प्रत्यय हो । अग्निं चितवानग्निचित् । अग्निचितौ । अग्निचितः ॥ ११२५ ॥

११२६—कर्मण्यग्न्याख्यायाम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९२ ॥

कर्म उपपद हो तो भूतकाल में चिञ् धातु से कर्मकारक में क्विप् प्रत्यय हो जो धातु उपपद और प्रत्यय के समुदाय से अग्न्याधारस्थल विशेष की आख्या पाई जाय । श्येन इव चितः श्येनचित् । कङ्कचित् । अग्नि के लिये जो ईंटों का चय के धरना है उस को संज्ञा हैं ॥ ११२६ ॥

११२७—कर्मणीनिर्विक्रियः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९३ ॥

कुत्सानिमित्तक कर्म उपपद हो तो विपूर्व डुक्रीञ् धातु से भूतकाल में इनि प्रत्यय हो । सोमं विक्रीतवान् सोमविक्रयी । रसविक्रयी । कर्म वर्त्तमान था फिर कर्मग्रहण शुद्ध कर्म से अन्य कर्म को ग्रहण करने के लिये है इस से यहां कुत्सानिमित्तक कर्म का ग्रहण होता है अतएव यहां न हुआ । धान्यविक्रायः ॥ ११२७ ॥

११२८—दृशेः क्वनिप् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९४ ॥

कर्म उपपद हो तो दृश धातु से भूतकाल में क्वनिप् प्रत्यय हो । पारं दृष्टवान् पारदृश्वा । मेरुदृश्वा ॥ ११२८ ॥

११२९—राजनि युधिकृञः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९५ ॥

राजन् शब्द कर्म उपपद हो तो युधि कृञ् धातुओं से भूतकाल में क्वनिप् प्रत्यय हो । राजानं योधितवान् राजयुध्वा । यद्यपि युधि अकर्म्मक है तथापि अन्तर्भावितण्यर्थ मानकर सकर्मक हो जाता है । राजानं कृतवान् राजकृत्वा ॥ ११२९ ॥

११३०—सहे च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९६ ॥

सह शब्द उपपद हो तो युधि कृञ् धातुओं से भूतकाल में क्वनिप् प्रत्यय हो । सहायोत्सीत् सहयुध्वा । सहाकार्षीत् सहकृत्वा ॥ ११३० ॥

११३१—सप्तम्यां जनेर्डः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९७ ॥

सप्तम्यन्त उपपद हो तो भूतकाल में जन धातु से ड प्रत्यय हो। उपसरे जातः उपसरजः। सरसिजः। यहां (साप्ता० त त्पुरुषे कृति०) सूत्र से सप्तमी का अलुक् भी होता है लुक् पक्ष में। सरोजः ॥ ११३१ ॥

११३२—पञ्चम्यामजातौ ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९८ ॥

जातिभिन्न पञ्चम्यन्त उपपद हों तो जन धातु से भूतकाल में ड प्रत्यय हो। संस्काराज्जातः संस्कारजः। पङ्कजः। दुःखजः। अजातिग्रहण से यहां न हुआ। हस्तिनो जातः। अश्वाज्जातः ॥ ११३२ ॥

११३३—उपसर्गे च संज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९९ ॥

उपसर्ग उपपद हो तो भूतकाल में जन धातु से ड प्रत्यय संज्ञाविषय में हो। प्रकर्षेण जाताः प्रजाः ॥ ११३३ ॥

११३४—अनौ कर्म्मणि ॥ अ० ॥ ३ । २ । १००

कर्म्म उपपद हो तो अनूपसर्गपूर्वक जन धातु से भूतकाल में ड प्रत्यय हो। राममनुजातो रामानुजः। भरतानुजः ॥ ११३४ ॥

११३५—अन्येष्वपि दृश्यते ॥ अ० ॥ ३ । २ ।१०१ ॥

अन्य भी उपपद हों तो भूतकाल में जन धातु से ड प्रत्यय देखा जाता है। सप्तम्यन्तोपपद में कहा है उस से अन्यत्र जैसे। नाजनीति, अजः। द्वाभ्यां जन्मसंस्काराभ्यां जाता द्विजाः। अजातिविषयक पञ्चम्यन्तोपपद में कहा है उस से अन्यत्र जातिविषय में जैसे। ब्राह्मणजो धर्म्मः। क्षत्रियजं युद्धम्। वैश्यजो व्यापारः। उपसर्गोपपद से संज्ञाविषय में कहा है उस से अन्यत्र असंज्ञा में। अभिजाः। परिजाः केशाः। अनुपूर्वक से कर्मोपपद में कहा है अन्यत्र। अनुजातः। अनुजः। अपि शब्द सर्वोपाधिनिवृत्ति के लिये है इस से यहां भी होता है। परितः खाता परिखा। आखा ॥ ११३५ ॥

११३६—क्तक्तवतू निष्ठा ॥ अ० ॥ १ । १ । २६ ॥

क्त क्तवतु ये निष्ठा संज्ञक हों ॥ ११३६ ॥

११३७—निष्ठा ॥ अ० ॥ ३ ।२ । १०२ ॥

भूतकाल में धातु से निष्ठा संज्ञक प्रत्यय हों। अकारीति कृतः। अकार्षीदिति कृतवान्। भुक्तम्। भुक्तवान्। यह क्त प्रत्यय कर्म्म (८१४) में और क्तवतु कर्त्ता (८१३) में होता है ॥ ११३७ ॥

११३८—निष्ठायामण्यदर्थे ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६० ॥

ण्यदर्थ जो भावकर्म * उस से अन्य अर्थ (कर्त्ता आदि) में निष्ठा परे हो तो चि धातु को दीर्घादेश हो ॥ ११३८ ॥

११३९—क्षियो दीर्घात् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४६ ॥

चि धातु के दीर्घ से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो । अक्षैषीदिति, क्षीणवान् । भाव में क्षितमनेन । कर्म, क्षितः कामीनया ॥ ११३९ ॥

११४०—रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ॥अ०।८।२।४२ ॥

रेफ और दकार से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश तथा उस निष्ठा से पूर्व धातु के दकार को भी नकारादेश हो । शीर्णः । विस्तीर्णम् । यहां० (२६५) सूत्र से ऋकार को इकारादेश (संधि०५७) सूत्र से रपरत्व०। द, भिन्नः । भिन्नवान् । रदग्रहण से यहां न हुआ । क्षतः । क्षतवान् । निष्ठाग्रहण से यहां न० । कर्त्ता । तग्रहण से यहां० । चरितम् । पूर्वग्रहण से पर को न हुआ । भिन्नवद्भ्याम्॥११४०॥

११४१—संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः ॥ अ०। ८ । २ । ४३ ॥

संयोगादि जो यण्वान् आकारान्त धातु उस से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो । संस्त्यानः । ग्लानः । प्रद्राणः । संयोगादिग्रहण से यहां न० (यातः) यातवान् । आद्ग्रहण से यहां न०।च्युतः । च्युतवान् । प्लुतः । प्लुतवान् । धातुग्रहण से यहां न० । निर्यातः । यण्वद्ग्रहण से । स्नातः । स्नातवान् । यहां न०॥ ११४१॥

११४२—ल्वादिभ्यः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४४ ॥

लूञादिक धातुओं से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो । यहां क्र्यादिगण स्थ [लूञ्] छेदने से लेकर [प्ली] गतौ इस धातु पर्यन्त धातुओं का ग्रहण । है उन में रेफ से परे नकारादेश पूर्व से भी सिद्ध है शेष धातुओं से अप्राप्त है लूनः । लूनवान् । धूनः । धूनवान् ॥ ११४२ ॥

११४३ —वा०—दुग्वोर्दीर्घश्च ॥

दु और गु धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश और उन को दीर्घ भी कहना चाहिये दु, आदूनः । गु, आगूनः ॥ ११४३ ॥

११४४—पूञो विनाशे ॥

विनाश अर्थ में वर्त्तमान पूञ् धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो।

* ण्यत् कृत्य संज्ञक प्रत्यय है कृत्य प्रत्यय (९१४) सूत्र से भावकर्म में होते हैं इस से ण्यदर्थ भावकर्म है

पूनाः * यवाः। यव विनाश को प्राप्त हो गये। विनाशग्रहण से यहां न० पूतं धान्यम्। धान्य पवित्र है ॥ ११४४ ॥

११४५—वा०—श्विनोतेर्ग्रासकर्मकर्त्तृकस्य ॥

जिस का ग्रास कर्म ही कर्त्ता हुआ हो उस श्विञ् धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो। असायि ग्रासः स्वयमेवेति सिनो ग्रासः स्वयमेव। ग्रास कर्मकर्तृ ग्रहण से यहां न०। सिता पाशेन सूकरी। फसरी से सूकरी आप ही बंधगई इस अपेक्षा में निष्ठात, को न न हुआ। ग्रास शब्द भी जब कर्म ही रहता तब निष्ठा तकार को नकार नहीं होता है। सितो ग्रासो देवदत्तेन ॥ ११४५ ॥

११४६—ओदितश्च ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४५ ॥

जिस का ओकार इत् संज्ञक हो उस से परे निष्ठा तकार को नकारादेश हो। ओलजी, लग्नः। लग्नवान्। ओविजी, उद्विग्नः। उद्विग्नवान्। ओहाक् प्रहीणः प्रहीणवान् ॥ ११४६ ॥

११४७—द्रवमूर्त्तिस्पर्शयोः श्यः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४५ ॥

निष्ठा परे हो तो द्रवमूर्त्ति (घृतादिपदार्थ का कड़ापन) और स्पर्श (लागना) अर्थ में वर्त्तमान श्यैङ् धातु को संप्रसारण हो। स्पर्श, शीतं वर्त्तते। शीतो वायुः। द्रवमूर्त्ति में अगले सूत्र में उदाहरण देंगे। द्रवमूर्त्ति स्पर्श ग्रहण से यहां न० संश्यानो वृश्चिकः सिसिटा हुआ बीछी है ॥ ११४७ ॥

११४८—श्योऽस्पर्शे ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४७ ॥

स्पर्श भिन्न अर्थ में वर्त्तमान श्यैङ् धातु से परे निष्ठा तकार को नकारादेश हो। शीनं घृतम्। जमा घृत है अस्पर्श ग्रहण से यहां न हुआ। शीतो वायुः ॥ ११४८॥

११४९—प्रतेश्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । २५ ॥

निष्ठा परे हो तो प्रति से परे श्यैङ् धातु को संप्रसारण हो। प्रतिशीनः। प्रतिशीनवान् ॥ ११४८ ॥

११५०—विभाषाभ्यवपूर्वस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । २६ ॥

निष्ठा परे हो तो अभि अव पूर्वक श्यैङ् धातु को विकल्प करके संप्रसारण हो। अभिशीनम्। अभिश्यानम्। अवशीनम्। अवश्यानम्। द्रवमूर्त्तिस्पर्शविवक्षा में भी विकल्प होता है। अभिशीनम्। अभिश्यानम्। अवशीनम्। अवश्यानं वा घृतम्। अभिशीतः। अभिश्यानः। अवशीतः। अवश्यानो वा वायुः। यह व्यवस्थित विभाषा

* धातु अनेकार्थ होते हैं इस से „ पूनाः यवाः ” यहां पूञ् धातु विनाशार्थक है ॥

है इस से अभि, अव और किसी के साथ में हों तो संप्रसारण नहीं होता । समवश्यानः । समभिश्यानः ॥ ११५० ॥

११५१—अञ्चोऽनपादाने ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४८ ॥

अनपादान में अञ्चु धातु से परे निष्ठा के तकारको नकारादेश हो ॥११५१॥

११५२—यस्य विभाषा ॥ अ० ॥ ७ । २ । १५ ॥

जिस धातु के विषय में कहीं विकल्प करके इट् कहा है उस से निष्ठा में इडागम न हो । सम् + अञ्चु + त=समक्तः । न्यक्तः । उदित् धातु से क्त्वा प्रत्यय को विकल्प करके इडागम कहेंगे इस से यहां इट् (४६) नहुआ । अनपादानग्रहण से यहां न० । उदक्तमुदकं कूपात् ॥ ११५२ ॥

११५३—दिवोऽविजिगीषायाम् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४९ ॥

अविजिगीषा (न जीतने की इच्छा) अर्थ में दिवु धातु से परे निष्ठातकार को नकारादेश हो । आद्यूनः । अविजिगीषाग्रहण से यहां न० । द्यूतं वर्त्तते ॥ ११५३ ॥

११५४—निर्वाणोऽवाते ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५० ॥

अवात अर्थ में निर्वाण, यह निपातन है । निर्वाणोमुनिः । निवृत्त सुख को भुमि प्राप्त है यहां वात (पवन) से अन्य कर्त्ता में निस्पूर्वक वा धातु से निष्ठा तकार को नकारादेश होता है । वात में तो । निर्वातः । होगा ॥ ११५४ ॥

११५५—शुषः कः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५१ ॥

शुष धातु से परे निष्ठा के तकार को ककारादेश हो । शुष्कः । शुष्कवान् । शुष्कवन्तौ ॥ ११५५ ॥

११५६—पचो वः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५२ ॥

पच धातु से निष्ठा तकार को वकारादेश हो । पक्वः। पक्वान् ॥ ११५६ ॥

११५७—क्षायो मः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५३ ॥

क्षै धातु से परे निष्ठा के तकार को मकारादेश हो । क्षामः । क्षामवान् ॥११५७॥

११५८—स्त्यः प्रपूर्वस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । २३ ॥

निष्ठा परे हो तो प्रपूर्वक स्त्यै धातु को संप्रसारण हो ॥ ११५८ ॥

११५९—प्रस्त्योऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५४ ॥

प्रपूर्वकस्त्यै धातु से परे निष्ठा के तकार को मकारादेश विकल्प करके हो । प्रस्तीमः । प्रस्तीमवान् । प्रस्तीतः । प्रस्तीतवान् ॥ ११५९ ॥

११६०—आदितश्च ॥ अ० ॥ ७ । २ । १६ ॥

आकार जिसका इत् संज्ञक हो उससे परे निष्ठा को इट् आगम न हो॥११६०॥

११६१—ति च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८९ ॥

तकारादि कित् परे हो तो चर, फल धातुओं के अकार को उकारादेश हो॥११६१॥

११६२—अनुपसर्गात्फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५५ ॥

उपसर्ग से न परे हों तो फुल्ल, क्षीब कृश और उल्लाघ ये निपातन हैं । फुल्लः। यहां [ञिफला] विशरणे धातु से निष्ठा के त को लत्व निपातन और (११६०) इट् निषेध तथा (११६१) से उकार होता है। इस धातु से निष्ठा को लकार एकदेश में भी इष्ट है । फुल्लवान् । [क्षीबृ] मदे क्षीबः मत्त का नाम है [कृश] तनूकरणे। कृशः । दुर्बलशरीर । उत् पूर्व [लाघृ] सामर्थ्ये से उल्लाघः । नीरोग । कहाता है इन प्रयोगों में निष्ठा के तकार का लोप और उस के असिद्ध (सन्धि०८४) होने से प्राप्त इट् का निषेध निपातन है । उपसर्ग से परे उक्त निपातन नहीं होते हैं। जैसे प्रफुल्तः । प्रक्षीबितः । प्रकृशितः । प्रोल्लाघितः । प्रफुल्ल शब्द तो फुल्ल विकशने से (८७५) सूत्र से होगा ॥ ११६२ ॥

११६३—वा०—उत्फुल्लसंफुल्लयोरिति वक्तव्यम् ॥

ञिफला धातु से निष्ठातकार को लकारादेश विधान में उत्फुल्ल संफुल्ल इन शब्दों का भी उपसंख्यान करना चाहिये । उत्फुल्लः । संफुल्लः ॥ ११६३ ॥

११६४—नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५६ ॥

नुद, विद, उन्द, त्रा, घ्रा, ह्री इन धातुओं से परे निष्ठा तकार और पूर्व दकार को नकारादेश विकल्प करके हो । नुद, नुन्नः । नुत्तः । विद, विन्नः । वित्तः । यहां रुधादि गणस्थ [विद] विचारणे । धातु का ग्रहण है । उन्दी, उन्द+ त । यहां ॥ ११६४ ॥

११६५—श्वीदितो निष्ठायाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । १४ ॥

श्वि और ईदित् धातुसे परे निष्ठाको इट् आगम न हो। इस से इट्का निषेध होकर उन्नः । उत्तः । त्रा, त्रातः । त्राणः । घ्रा, घ्राणः । घ्रातः । ह्रीणः । ह्रीतः ॥११६५॥

११६६—न ध्याख्यापॄमूर्छिमदाम् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५७ ॥

ध्या ख्या पॄ मूर्छि मद इन से परे निष्ठा को नकारादेश न हो । ध्यातः । ध्यातवान् । ख्यातः । ख्यातवान् । पूर्तः । पूर्तवान् । मूर्त्तः (५५८) मूर्त्तवान् । मत्तः । मत्तवान् ॥ ११६६ ॥

११६७—वित्तो भोगप्रत्यययोः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५८ ॥

भोग और प्रत्यय (प्रतीत) अर्थ में वित्त, यह निपातन हो । भोग, बहु वित्तम् अस्य।इस के बहुत धन है।सब प्रकार धन को भोगते हैं इस से भोग अर्थ प्रकाशित होता है । प्रत्यय,वित्तोयं पुरुषः।पुरुष प्रतीत हुआ है । यहां विद्लृ का ग्रहण है । उक्त अर्थों से अन्यत्र विन्नः होगा । वेत्तेस्तु विदितो निष्ठा विद्यतेर्विन्न इष्यते वित्ते-र्विन्नश्चवित्तश्च भोगे वित्तश्च विन्दतेः । महाभाष्य ८ । २ । ५८ [विद] ज्ञाने से निष्ठान्त विदितः,और [विद] सत्तायाम् से निष्ठान्त विन्न तथा विद विचारणे से निष्ठान्त (११६४) विन्न,वित्त और भोग वा प्रत्यय में [विद्लृ]लाभे से वित्त इष्ट है। यहां कारिका में भोग उपलक्षण मात्र है इस से प्रत्यय का भी ग्रहण है॥११६७॥

११६८—भित्तं शकलम् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५९ ॥

शकल (टुकडा) वाच्य हो तो भित्त यह निपातन है । भिदिर्, भित्तम् । शकलम् । अन्यत्र भिन्नम् ॥ ११६८ ॥

११६९—ऋणमाधमर्ण्ये ॥ अ० ॥ ८ । २ । ६० ॥

आधमर्ण्य (ऋण का लेना) अर्थ में ऋण यह निपातन हो । ऋणं धारयति यहां ऋ धातु से निष्ठा के तकार को नकारादेश निपातन है । आधमर्ण्य ग्रहणसे यहां न हुआ । ऋतं वक्ष्यामि । ऋणे अधमः, अधमर्णः । अधमर्णस्य भावःआधमर्ण्यम् । ऋणमें जो लेनेवाला है वह अधम कहाता है यहां समास में सप्तम्यन्त ऋण शब्द का अपूर्वनिपात आधमर्ण्य, इस निर्देश को देख कर होताहै तथा यह अधमर्ण्य उप लक्षण भी है इस से उत्तमर्ण, यह भी होता है ।। ११६९ ।।

११७०-नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्त्तसूर्त्तगूर्त्तानि छन्दसि॥अ०॥८।२।६१॥

वेदविषय में नसत्त, निषत्त, अनुत्त, प्रतूर्त्त, सूर्त्त,गूर्त्त ये निपातन हों । नसत्त मञ्जसा । निषत्तमस्य चरतः। इनमें नञ् और निपूर्वक सद् धातु से निष्ठातकार को नकारादेश का अभाव निपान है लोक में असन्न, निषण्ण होंगे । अनुत्त मा ते मघवन् । यहां नञ् पूर्वक उन्दी से निष्ठा को नत्वाभाव नि० ।अनुन्न यह लोक में होगा। प्रतूर्त्तं वाजिनम् । यहां त्वर वा तुर्वी धातुसे निष्ठा को नत्वाभाव०। लोक में प्रतूर्णम् सूर्त्ता गावः। यहां सृ धातु से निष्ठा को नत्वाभाव० लोक में । सृताः। गूर्त्ता अमृतस्य। यहां गूरी से निष्ठा को नत्वाभा० । लोक में गूर्णम् ।। ११७० ।।

११७१—स्फायः स्फी निष्ठायाम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । २२ ॥

निष्ठा परे हो तो स्फाय धातु को स्फी आदेश हो । स्फायी, स्फीतः । स्फीत वान् । निष्ठाग्रहण से यहां न० । स्फातिः । यह क्तिन् प्रत्ययान्त है ।। ११७१ ।।

११७२—दूण् निष्ठायाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४७ ॥

निर् से परे जो कुष धातु उस से निष्ठा परे हो तो उस को इडागम हो। निष्कुषितः ॥ ११७२ ॥

११७३—वसतिक्षुधोरिट् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५२ ॥

वस और क्षुध धातु से परे क्त्वा और निष्ठा को इट् का आगम हो । वस, उषितः । उषितवान् । क्षुधितः । क्षुधितवान् ॥ ११७३ ॥

११७४—अञ्चेः पूजायाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५३ ॥

पूजार्थ में अञ्चु से क्त्वा और निष्ठा को इडागम हो । अञ्चिता अस्य गुरवः । पूजा से अन्यत्र उदक्तमुदकं कूपात् ॥ ११७४ ॥

११७५—लुभो विमोहने ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५४ ॥

विमोहन (व्याकुल करना) अर्थ में वर्त्तमान लुभ धातु से परे क्त्वा और निष्ठा को इट् आगम हो । विलुभितः । विलुभितानि पदानि । विमोहनग्रहण से यहां न हुआ । लुब्धो वृषलः ॥ ११७५ ॥

११७६—क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५० ॥

क्लिश् धातु से परे क्त्वा और निष्ठा को विकल्प करके इट् आगम हो। क्लिष्टः। क्लिष्टवान् । क्लिशितः । क्लिशितवान् । यहां [क्लिश] उपतापे और [क्लिशू] विबाधने इन दोनों का ग्रहण है ॥ ११७६ ॥

११७७—पूङश्च ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५१ ॥

पूङ् धातु से क्त्वा और निष्ठा को इडागम विकल्प करके हो। पू+इ+त।यहां॥११७७॥

११७८—पूङः क्त्वा च ॥ अ० ॥ १ । २ । २२ ॥

पूङ् धातु से परे क्त्वा और निष्ठा कित् न हो । पवितः । इट् विकल्प में पूतः ॥११७८॥

११७९—निष्ठा शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः ॥ अ० ॥ १ । २ । १९॥

ञिष्विदा, ञिमिदा, ञिक्ष्विदा, ञिधृषा इन से परे सेट् निष्ठा कित् न हो। शीङ् शयितः । शयितवान् । यहां ङकारोच्चारण यङ्लुगन्त की निवृत्ति के लिये है । शेशयितः । शेशयितवान् ॥ ११७९ ॥

११८०—वा०—आदिकर्मणि निष्ठा वक्तव्या ॥

आदि कर्म (प्रथम क्रिया) में धातु से निष्ठा संज्ञक प्रत्यय कहना चाहिये ॥११८०॥

११८१—आदिकर्मणि क्तः कर्त्तरि च ॥ अ० । ३ । ४ । ७१ ॥

आदि कर्म में जो क्त प्रत्यय विहित है वह कर्त्ता और भावकर्म्म में हो॥ ११८१॥

११८२—विभाषा भावादिकर्मणोः ॥ अ० ॥ ७ । २ । १७ ॥

आकार जिस का इत् संज्ञक हो उस धातु से परे भाव और आदिकर्म में जो निष्ठा उस को विकल्प करके इट् आगम न हो। प्रस्वेदितम् चैत्रेण। चैत्रने प्रस्वेद किया। प्रस्वेदितश्चैत्रः। चैत्र प्रथम प्रस्वेद को प्राप्त हुआ। प्रस्वेदितवान्। प्रमेदितम्। प्रमेदितः। प्रमेदितवान्। प्रक्ष्वेदितम्। प्रक्ष्वेदितः। प्रक्ष्वेदितवान्। प्रधर्षितम्। प्रधर्षितः। प्रधर्षितवान् ॥ ११८२ ॥

११८३—मृषस्तितिक्षायाम् ॥ अ० ॥ १ । २ । २० ॥

मृष धातु से परे तितिक्षा (सहन) अर्थ में इट्सहित निष्ठा कित् न हो। मर्षितः। मर्षितवान्। तितिक्षाग्रहण से यहां न हुआ। अपमृषितं वाक्यम्। स्पष्टाक्षर वाक्य नहीं है ॥ ११८३ ॥

११८४—उदुपधाद्भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम् ॥अ०॥ १ । २ । २१॥

उकारोपध धातु से परे भाव और आदिकर्म में जो सेट् निष्ठा सो विकल्प करके कित् न हो। प्रद्युतितम्। प्रद्योतितं वानेन। प्रद्योतितः। प्रद्युतितः साधुः। प्रमुदितम्। प्रमोदितमनेन। प्रमुदितः। प्रमोदितः साधुः। उदुपधग्रहण से यहां न हुआ। लिखितमनेन। विदितमनेन। भावादिकर्मग्रहण से यहां न हुआ। रुचितं कार्षापणं ददाति। सेट्ग्रहण से यहां न हुआ। प्रभुक्त ओदनः। यहां शब्विकरण धातुओं का ग्रहण इष्ट है। शब् विकरणेभ्य एवेष्यते। महाभाष्य० १ । २ । २१ । इस से यहां न हुआ। गुधितः। गुधितवान् ॥ ११८४ ॥

११८५—निष्ठायां सेटि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५२ ॥

सेट् निष्ठा परे हो तो णि प्रत्यय का लोप हो। भावितः। भावितवान्। गुह, गूढः। गूढवान्। वनु, वतः। तनु, ततः (२०३) पत्लृ, पतितः। यद्यपि पत् धातु को विकल्प करके इट् (५१८) से विहित है इस से निष्ठा में इट् निषेध (११५२) भी प्राप्त है तथापि (सा०—द्वितीया०) सूत्र में पतित शब्द के ग्रहण से (पतित,) यहां इट् आगम (४६) होता है ॥ ११८५ ॥

११८६—क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्टविरिब्धफाण्टबाढानि मन्थमनस्तमःसक्ताऽविस्पष्टस्वरानायासभृशेषु ॥

अ० ॥ ७ । २ । १८ ॥

मन्थ, मनस्, तमस्, सक्त, अविस्पष्ट, स्वर, अनायास, भृश इन अर्थों में यथासंख्य करके क्षुब्ध, स्वान्त, ध्वान्त, लग्न, म्लिष्ट, विरिब्ध, फाण्ट, बाढ ये इट्रहित

निपातन हैं [क्षुभ] संचलने क्षुब्धो मन्थः । मन्थ यह मथनिया, आदि जो मन्थनदण्ड हैं उन का नाम है । मन्थ से अन्यत्र । क्षुभितम् [स्वन ध्वन] शब्दे स्वान्तं मनः। ध्वान्तं तमः । अन्यत्र । स्वनितम् । ध्वनितम् [लगि] संगे लग्नम् । सक्तम् । जो किसी में लग रहा है । यहां निष्ठा को नकारादेश भी निपातन है । अन्यत्र । लगितम् [म्लेच्छ] अव्यक्ते शब्दे म्लिष्टम् । अविस्पष्टम् । जो अच्छे प्रकार स्पष्ट न हो [रेभृ] शब्दे विरिब्धः । स्वरः । इन दोनों प्रयोगों में एकार को इकार भी निपातन है । अन्यत्र । म्लेच्छितम् । विरेभितम् [फण] गतौ फाण्टम् अनायाससाध्यं कषायम् । विना परिश्रम से सिद्ध होने वाले काढ़े को कहते हैं अर्थात् जो ओषधि पकाई वा पीसी न जाय किन्तु जल में भिगोने से उस से जो रस उत्पन्न हो और उस को पीछे से कुछ उष्ण कर लिया जाय वह अनायाससाध्य काढा फाण्ट कहाता है । अन्यत्र । फाणितम् [बाहृ] प्रयत्ने । बाढम् । भृशम् । अतिशय को कहते हैं अन्यत्र । बाहितम् ॥ ११८६ ॥

११८७—धृषिशसी वैयात्ये ॥ अ० ॥ ७ । २ । १६ ॥

निष्ठा परे हो तो वैयात्य (अविनय*) हो अर्थ में ञिधृषा और शसु अनिट् हों अन्यत्र न हों । ञिधृषा, अयं धृष्टः पुरुषः । यह ढीठ पुरुष है । अयं विशस्तः पुरुषः । यह हिंसक पुरुष है । ञिधृषा, से निष्ठा को इट् निषेध (११६०) सूत्र से सिद्ध तथा शसु, से (११५२) सूत्र से सिद्ध है इस से वैयात्य अर्थ में यह अनिट्विधान करना नियमार्थ है अर्थात् वैयात्य हो अर्थ में धृषि, शसि अनिट् हों अन्यत्र न हों । वैयात्य से अन्यत्र धर्षितः । विशसितः ॥ ११८७ ॥

११८८—दृढः स्थूलबलयोः ॥ अ० ॥ ७ । २ । २० ॥

स्थूल और बलवान् ये अर्थ वाच्य हों तो दृढ, यह निपातन है । दृढः स्थूलः दृढो बलवान् । यहां [दृह, दृहि] वृद्धौ इन दोनों धातुओं से क्त प्रत्यय को इट् का अभाव और ढकारादेश तथा धातु के हकार का लोप और दृहि के इदित्भाव से (१२७) हुए नकार का लोप निपातन है । स्थूल और बल से अन्यत्र दृहितः दृंहितः ॥ ११८८ ॥

११८९—प्रभौ परिवृढः ॥ अ० ॥ ७ । २ । २१ ॥

प्रभु वाच्य हो तो परिवृढ यह निपातन है । परिवृढः कुटुम्बी । यहां [वृह वृहि] वृद्धौ इन से दृढ शब्द के तुल्य समस्त कार्य्य होते हैं । प्रभु अर्थ से अन्यत्र परिवृहितः । परिवृंहितः ॥ ११८९ ॥

---

* विरूपं यातं गमनं चेष्टनं यस्य स वियातस्तस्य भावो वैयात्यमविनयः । जिस का विरूप गमन चेष्टा है वह वियात कहावे उस का होना वैयात्य अर्थात् अविनय कहाता है ॥

११९०—कृच्छ्रगहनयोः कषः ॥ अ० ॥ ७ । २ । २२ ॥

कृच्छ्र (दुःख वा दुःख का निमित्त) और गहन (सघन) अर्थ में कष धातु से निष्ठा को इडागम न हो। कष, कष्टं दुःखम्। कष्टो रोगः। दुःख तथा दुःख का निमित्त रोग आदि कष्ट कहाता है। गहन, कष्टाः पर्वताः। कष्टानि वनानि। कृच्छ्रगहन से अन्यत्र। कषितं सुवर्णम् ॥ ११९० ॥

११९१—घुषिरविशब्दने ॥ अ० ॥ ७ । २ । २३ ॥

निष्ठा परे होतो अविशब्दन (विशब्दन प्रतिज्ञा उस से अन्य) अर्थ में घुषिर् धातु अनिट् हो। घुष्टा रज्जुः। अविशब्दनग्रहण से यहां न हुआ। अवघुषितं वाक्यमाह। अर्थात् प्रतिज्ञात वाक्य कह रहा है। चुरादिगणस्थ घुषिर् धातु से* जो णिच् होता है उस की अनित्यता में अविशब्दन निषेध ज्ञापक है ॥ ११९१ ॥

११९२—अर्द्देः सन्निविभ्यः ॥ अ० ॥ ७ । २ । २४ ॥

सम् नि वि इन से परे जो अर्द्द धातु उस से परे निष्ठा को इट् आगम न हो। समर्णः (११४०) न्यर्णः। व्यर्णः। अर्द्दग्रहण से यहां न०। समेधितः। सन्निविग्रह०। अर्द्दितः। यहां न हुआ ॥ ११९२ ॥

११९३—अभेश्चाविदूर्य्ये ॥ अ० ॥ ७ । २ । २५ ॥

आविदूर्य्य (जो बहुत दूर न हो वा अतिसमीप हो उस) अर्थ में अभि से परे जो अर्द्द धातु उस से परे निष्ठा को इट् न हो। अभ्यर्णम् (११४०) अन्यत्र। शीतेनाभ्यर्द्दितोवृषभः। वृषभ शीत से पीडित हो रहा है ॥ ११९३ ॥

११९४—णेरध्ययने वृत्तम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । २६ ॥

अध्ययन अर्थ में ण्यन्त वृतु धातु से निष्ठा को इट् का अभाव और णिच् का लोप निपातन है। वृत्तं व्याकरणमनेन। इस ने व्याकरण का संपादन कर लिया अध्ययन से अन्यत्र। वर्त्तिता रज्जुः। वर्त्तीहुई डोरि है ॥ ११९४ ॥

११९५—शृतं पाके ॥ अ० ॥ ६ । १ । २७ ॥

क्तप्रत्यय के परे पाक अर्थ में णिजन्त वा णिच् रहित श्रा धातु को शृभाव निपातन है॥ ११९५ ॥

---

* घुषिर् धातु पिछली दो गणों में पढ़ा है अर्थात् भ्वादिगण में (घुषिर्) अविशब्दने तथा चुरादिगण में (घुषिर्) वि शब्दने। इनदोनों में से अविशब्दन अर्थ में निष्ठा के परे घुषिर् धातु अनिट् है। विशब्दन में अनिट् नहीं है। यहां यह शंका है कि विशब्दन में इट् निषेध क्योंकिया अर्थात् विशब्दन में चुरादिणिच् हो कर घोषि हो जाता है किन्तु घुष् नहीं रहता है इस से (अविशब्दने) यह ज्ञापक है कि चुरादिणिच् उक्त धातु से अनित्य है॥

११९६—वा०—क्षीरहविषोरिति वक्तव्यम् ॥

उक्त शृभाव क्षीरहविर्विषयक पाक अर्थ में कहना चाहिये [श्रा] पाके शृतं क्षीरं स्वयमेव । शृतं हविः स्वयमेव । णिजन्त, शृतं क्षीरं देवदत्तेन । अन्यत्र श्राणा (११४१) श्रपिता वा यवागूः । श्रा धातु अकर्मक है इससे कर्मकर्तृ विषयक पच धातु के अर्थ में वर्त्तमान है णिजन्त श्रा धातु से फिर प्रयोजकव्यापार में णिच् किया जाय जैसे (श्रा+पुक्+णिच्+णिच्+क्त+सु=) यहां ॥ ११९६ ॥

११९७—वा०—श्रपेः शृतमन्यत्र हेतोरिति वक्तव्यम् ॥

णिजन्त श्रा (श्रपि) धातु से जो हेतु अर्थात् प्रयोजक व्यापार उससे अन्यत्र शृभाव निपातन करना चाहिये । शृभाव का निषेध होकर । श्रपितं क्षीरं देवदत्तेन यज्ञदत्तेन, श्रपितं क्षीरं देवदत्तेन यज्ञदत्तेनेति ॥ ११९७ ॥

११९८—वा दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टछन्नज्ञप्ताः ॥ अ० ॥ ७ । २ । २७ ॥

णिज्विषय में दान्त, शान्त, पूर्ण, दस्त स्पष्ट छन्न ज्ञप्त ये विकल्प करके निपातन हैं । दमु, दान्तः (५८७) पक्ष में दमितः । शमु, शान्तः । शमितः । पूरी, पूर्णः । पूरितः । दसु, दस्तः । दासितः । स्पश, स्पष्टः । स्पाशितः । छद, छन्नः । छादितः । इन दान्तादिकों में णिलुक् और इट् का अभाव निपातन है । ज्ञप, ज्ञप्तः । ज्ञपितः । 'ज्ञप्त, का ग्रहण विकल्पार्थ इट् विधान के लिये है क्यों कि ज्ञप से (५१४) सूत्र से इट्विकल्प विधान है इस से (११५२) सूत्र से नित्य इट् प्रतिषेध प्राप्त है ॥११९८॥

११९९—रुष्यमत्वरसंघुषास्वनाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । २८ ॥

रुष अम त्वर संघुष् आस्वन इन धातुओं से निष्ठा को इट् आगम विकल्प करके हो । रुष, रुष्टः । रुषितः (२१२) से इट् विकल्प (११५२) सूत्र से निषेध प्राप्त था । अम, आन्तः (५८७) अमितः । ञित्वरा, तूर्णः (११६०) इट् प्रतिषेध प्राप्त था । समृघुषिर् संघुषितः । आस्वन, आस्वान्तः । आस्वनितः ॥ ११९९ ॥

१२००—हृषेर्लोमसु ॥ अ० ॥ ७ । २ । २९ ॥

लोमविषय में वर्त्तमान हृष धातु से परे निष्ठा को विकल्प करके इट् आगम हो॥१२००

१२०१—वा०—हृषेर्लोमकेशकर्तृकस्येति वक्तव्यम् ॥

उक्त इट् विकल्प लोम और केश कर्तृक हृष धातु से कहना चाहिये । हृष्टानि लोमानि । हृषितानि लोमानि । हृष्टं लोमभिः । हृषितं लोमभिः । हृष्टाः केशाः हृषिताः केशाः । हृष्टं केशैः । हृषितं केशैः [हृषु] अलीके तथा [हृष] तुष्टौ दोनों का ग्रहण है । उन में हृषु उदित् होने से निष्टा में (११५२) अनिट् तथा हृष सेट् है । लोम से अन्यत्र हृषु, हृष्टो देवदत्तः । हृष, हृषितो देवदत्तः ॥१२०१

१२०२—वा०—विस्मितप्रतिघातयोरिति वक्तव्यम् ॥

विस्मित (विस्मिय को प्राप्त) प्रतिघात (ताडना को प्राप्त) इन अर्थों में हृष धातु से इट् विकल्प करके कहना चाहिये। विस्मित, हृष्टो देवदत्तः। हृषितो देवदत्तः। प्रति घात, हृष्टा दन्ताः। हृषिता दन्ताः॥ १२०२॥

१२०३—अपचितश्च ॥ अ० ॥ ७। २। ३०॥

अपचित यह विकल्प करके निपातन है। अपचितः। अपचायितो वानेन गुरुः। इस ने गुरु सत्कार युक्त किया। यहां अपपूर्वक चायृ धातु से निष्ठा को इट् अभाव और धातु को चिभाव निपातन है॥ १२०३॥

१२०४—प्यायः पी ॥ अ० ॥ ६। १। २८॥

निष्ठा परे होतो ओप्यायी धातु को विकल्प करके पी आदेश हो [ओप्यायी] वृद्धौ। पीनं मुखम्। पीनमुरः॥ १२०४॥

१२०५—वा०—आङ् पूर्वादन्धूधसोः ॥

आङ्पूर्वक ओप्यायी धातु से निष्ठा परे हो तो उस धातु को पी आदेश कहना चाहिये। आपीनोऽन्धुः। आपीनम् ऊधः। पूर्वसूत्र से सर्वत्र पी आदेश सिद्ध है फिर भी जो (आङ् पूर्व०) इत्यादि विधान है सो नियमार्थ है अर्थात् आङ् पूर्वक से निष्ठा के परे अन्धु और ऊधस् हो वाच्य हों तो (पी) आदेश हो अन्यत्र न हो। आप्यानश्चन्द्रमाः। तथा यह उभयतो नियम भी है अन्धु ऊधस् वाच्य हों तो आङ्पूर्वक ही से निष्ठा के परे पी आदेश हो। अन्यपूर्व से न हो। प्रप्यानोन्धुः। प्रप्यानमूधः॥ १२०५॥

१२०६—ह्लादो निष्ठायाम् ॥ अ० ॥ ६। ४। ९५॥

निष्ठा परे हो तो ह्लाद अङ्ग को ह्रस्वादेश हो। प्रह्लन्नः। प्रह्लन्नवान्। निष्ठा-ग्रहण से यहां न हुआ। प्रह्लादयति॥ १२०६॥

१२०७—द्यतिस्यतिमास्थामित्तिकिति ॥ अ० ॥ ७। ४। ४०॥

तादि कित् परे हो तो द्यति, स्यति, मा, स्था इन अङ्गों को इकारादेश हो। द्यति, [दो] अवखण्डने। दितः। दितवान्। स्यति, [षो] अन्तकर्मणि। सितः। सितवान्। मा, [मा] माने [माङ्] माने। [मेङ्] प्रणिदाने। मितः। मितवान्। स्था, [ष्ठा] गतिनिवृत्तौ। स्थितः। स्थितवान्॥ १२०७॥

१२०८—शाछोरन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ७। ४। ४१॥

तादि कित् परे होतो शा, छा अङ्गों को इकारादेश विकल्प कर के हो। निशितम्। निशातम्। निशितवान्। निशातवान्। अवच्छितम्। अवच्छातम्।

अवच्छितवान् । अवच्छातवान् । यह व्यवस्थित विभाषा है इस से व्रतविषय में श्यति को नित्य इकारादेश होता है । संशितं व्रतम् । सम्यक् प्रकार से संपादन किया व्रत है । संशितो ब्राह्मणः । व्रतविषयक यत्नवान् ब्राह्मण है ॥ १२०८ ॥

१२०९—दधातेर्हिः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४२ ॥

तादि कित् परे होतो डुधाञ् धातु को हि आदेश हो । अभिहितम् । निहितम् । विहितम् ॥ १२०९ ॥

१२१०—सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीय च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४५ ॥

वेदविषय में सुधित, वसुधित, धिष्व, धिषीय ये निपातन हैं । गर्भं माता सुहितम् । वसुधितमग्नौ जुहोति । नेमधिता बाधन्ते । इन में सु, वसु, नेम पूर्वक [डुधाञ्] धातु को इकारादेश निपातन है लोक में । सुहित, वसुहित नेमहित होगा । धिष्व-सोमम् । सुरेता रेतो धिषीय । इन दोनों में डुधाञ् को इत्व वा प्रत्यय को इडागम निपातन है (धिष्व) लोट् मध्यमैकवचन में है लोक में (धत्स्व) होता तथा (धिषीय) आशीर्लिङ् के उत्तमैकवचन में है लोकमें (धासीय) होता है ॥ १२१० ॥

१२११—दो दद् घोः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४६ ॥

तादि कित् परे हो तो घु संज्ञक दा धातु को दथ् आदेश हो डुदाञ् दत्तः । दत्तवान् । दाग्रहण से यहां न हुआ । धेट्, पाने धीतः । धीतवान् । यहां (२४६) ईकारादेश० । घुग्रहण से यहां न० । दैप् शोधने । अवदातम् मुखम् । उक्त आदेश को दत्, दद्, दध्, दथ् इन में कौन सा मानना चाहिये ॥ १२११ ॥

१२१२–का०–तान्ते दोषो दीर्घत्वं स्याद् दान्ते दोषो निष्ठानत्वम् । धान्ते दोषो धत्वप्राप्तिः थान्तेऽदोषस्तस्मात्थान्तः ॥

यदि उस को तान्त अर्थात् (दत्) माने तो 'विदत्त, यहां अगले (१२१५) सूत्र से उपसर्ग के इक् को दीर्घादेश * प्राप्त है । दान्त (दद्) माने तो(दद्+त+सु=) दत्त यहां (११४०) सूत्र से निष्ठा को तथा पूर्व द को नकारादेश प्राप्त है । धान्त (दध्) माने तो (१४१) सूत्र से निष्ठा तकार को धकार प्राप्त है इस से थान्त (दथ्) मानना चाहिये क्योंकि थान्त में दोष नहीं है उपसर्ग से परे (प्र × दा+त+सु=) यहां ॥ १२१२ ॥

(दस्ति) इस सूत्र का जब यह अर्थ हो कि डुदाञ् धातु का जो तकारान्त आदेश उस के विषय में इगन्तो पसर्ग को दीर्घ हो। तब दीर्घादेश प्राप्त है ।

दान्त धान्त पक्ष में भी पारिभाषिकस्य सन्निपात परिभाषा के विरोध से दत्व धत्व नहीं प्राप्त हैं ।

१२१३—अच उपसर्गात्तः ॥अ०॥ ७ । ४ । ४७ ॥

अजन्त उपसर्ग से परे घु संज्ञक दा धातु को त आदेश हो । आदेश हो कर (प्रदत्+त+सु=) प्रत्तम् । अवत्तम् ॥ १२१३ ॥

१२१४—का०—अवदत्तं विदत्तं च प्रदत्तं चादिकर्मणि ।
सुदत्तमनुदत्तं च निदत्तमिति चेष्यते ॥

अवदत्त, विदत्त,आदिकर्म में प्रदत्त, सुदत्त, अनुदत्त तथा निदत्त ये भी इष्ट हैं अर्थात् इन सभों में दा को तकारादेश प्राप्त है सो न हुआ किन्तु दथ् आदेश होता है (चेष्यते) यहां चकारग्रहण से यह जानना चाहिये कि एक पक्ष में तकार आदेश होता भी है ॥ १२१४ ॥

१२१५—दस्ति ॥ अ० ॥ ६ । ३ । १२४ ॥

डुदाञ् धातु का जो तकारादि आदेश सो परे हो तो इगन्त उपसर्ग को दीर्घादेश हो । नीत्तम् । वीत्तम् । परीत्तम् । इन में दा के आकार के स्थान में यद्यपि (१२१३) त आदेश होता है तथापि (सं० २०२) सूत्र से पूर्व द् को चर् हो कर तकारादि आदेश हो जाता है । आश्रयात्सिद्धत्वं भविष्यति । महाभाष्य ६।३।१२४। चर्त्वके आश्रय से चर् का सिद्धभाव होजायगा अर्थात् (दस्तियहां) जो तकारादि का आश्रय किया है इस से चर् (संधि०८४) असिद्ध नहीं होगा ॥ १२१५ ॥

१२१६—अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३६ ॥

ल्यप् और तादि कित् परे हो तो अद धातु को जग्धि आदेश हो । अद,जग्धः। जग्धवान् । यहां क्त प्रत्यय के परे अद को जग्धि आदेश, इकारेत् (नामि०१२) संज्ञा, निष्ठा तकार को (१४१) धकार और पूर्व धकार का (सं०३१०) लोप हो जाता है । स कटं प्रकृतः । प्रकृतः कटस्तेन । यहां (११८१) सूत्र से आदिकर्म विषयक क्त प्रत्यय कर्त्ता में होता है । तथा । प्रक्षीणः तपस्वी । यहां भी कर्त्ता में होता और (११३८) क्षि धातु को दीर्घ (११३९) सूत्र से निष्ठा को नत्वादेश होता है ॥ १२१६ ॥ ॥

१२१७—वाक्रोशदैन्ययोः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६१ ॥

भाव कर्म से अन्य अर्थ में निष्ठा परे हो तो आक्रोश (कोशना) और दैन्य (दीनता) अर्थ में क्षि धातु को विकल्प करके दीर्घादेश हो आक्रोश, क्षीणायुर्भव । यहां क्षि को दीर्घादेश होकर (११३९) निष्ठा को नत्व हो जाता है द्वितीय पक्ष में । क्षितायुर्भव । दैन्य, क्षितः क्षीणोयं वा तपस्वी ॥ १२१७ ॥

१२१८—वा०—निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययेड्विधिषु सिद्धो वक्तव्यः ॥

षत्वविधि, स्वरविधि, प्रत्ययविधि, तथा इड्विधि में निष्ठादेश सिद्ध है यह कहना चाहिये। ष,वृक्णः। वृक्णवान्। यहां(११४६) निष्ठा को नकारादेश उस के असिद्ध (सं० ८४) होने से च् को (२२२) सूत्र से षत्व प्राप्त है सो नकारादेश के सिद्ध होने से झल् के अभाव से नहीं होता किन्तु (सं० १६१) कुत्व होता है स्वर आदि विषयों को आवश्यकता न होने से उन के उदाहरण नहीं दिये॥१२१८

१२१९—गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुह-
जीर्य्यतिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७२ ॥

गति जिनका अर्थ है उनसे तथा अकर्मक, श्लिष, शीङ्, स्था, आस, वस, जन, रुह, जृष् इनधातुओं से विहित जो क्त प्रत्यय सो कर्त्ता और यथाप्राप्त भाव कर्ममें हो। गत्यर्थ, गम्लृ, ग्रामं गतो देवदत्तः। ग्राम को देवदत्त गया। गतो ग्रामो देवदत्तेन। देवदत्त को ग्राम प्राप्त हुआ। अकर्मक, ग्लै, ग्लानो देवदत्तः। ग्लानं देवदत्तेन। श्लिष, लक्ष्मीम् आश्लिष्टो विष्णुः। आश्लिष्टा लक्ष्मी विष्णुना। शीङ् खट्वाम धिशयितः। खट्वाधिशयिता। स्था, गुरुमुपस्थितः। गुरुरुपस्थितस्तेन। आस, उपासितः परमेश्वरं भवान्। उपासितः परमेश्वरो भवता। वस, गुरुमनूषितो भवान् अनूषितो गुरुर्भवता। जन, राममनुजातो लक्ष्मणः। अनुजातो लक्ष्मणेन रामः। रुह, अश्वमारूढो देवदत्तः। आरूढोऽश्वो देवदत्तेन। जृष्, शुनीमनुजीर्णः श्वा। शुनानुजीर्णा शुनी। उक्त प्रयोगों में (८१४) सूत्र से यथा प्राप्त भावकर्म में भी (क्त) होता है श्लिष आदि अकर्मक भी हैं तथापि सोपसर्ग सकर्मक होजाते हैं इस से इन का ग्रहण है ॥ १२१९ ॥

१२२०—क्तोधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यश्च
॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७६ ॥

ध्रौव्य (स्थिरता) गति (गमन) और प्रत्यवसान (भक्षण) अर्थ वाले धातुओं से विहित जो क्त प्रत्यय सो अधिकरण और यथाप्राप्त भाव कर्म में हो। ध्रौव्यार्थक अकर्मक हैं उन से कर्त्ता, भाव, अधिकण में गत्यर्थकों से कर्त्ता, कर्म, अधिकरण में तथा प्रत्यवसानार्थकों से कर्म और अधिकरण में क्त होता है। ध्रौव्यार्थ, आसितो देवदत्तः। आसितं मुकुन्देन। आसितम् मुकुन्दस्य वा। गत्यर्थ, देवदत्तो ग्रामं गतः। गतोदेवत्तेन ग्रामः। देवदत्त को ग्राम प्राप्त हुआ है। गतं देवदत्तस्य। यहां देवदत्त का गमन हुआ है। प्रत्यवसानार्थ, भुक्त ओदनो देवदत्तः। देवदत्तस्य भुक्तम् उक्त उदाहरणों में (८१४, १८६) सूत्रों के अनुसार कर्म और कर्त्ता मेंभी क्त प्रत्यय होता है ॥ १२२० ॥

१२२१—ञीतः क्तः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८७ ॥

ञि जिस का इत् संज्ञक हो उस से वर्त्तमान काल में क्त प्रत्यय हो। ञिक्ष्विदा, क्ष्विसः । क्ष्विसवान् । १२२१ ॥

१२२२—मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८८ ॥

मति (इच्छा) बुद्धि (ज्ञान) पूजा (सत्कार) इन अर्थों वाले धातुओं से वर्त्तमान काल में क्त प्रत्यय हो। राज्ञां मतः। राज्ञामिष्टः। राज्ञांबुद्धः। राज्ञां ज्ञातः। राज्ञां-पूजितः। राज्ञामर्चितः। (राज्ञाम्) यह षष्ठी (कार० १२०) से होती है। चकार अनुक्त शब्दों के संग्रह करने के लिये है इस से अगले प्रयोग भी जानने चाहिये ॥१२२२॥

१२२३—का०—शीलितो रक्षितः क्षान्त आक्रुष्टो जुष्ट इत्यपि ॥
रुष्टश्च रुषितश्चोभावभिव्याहृत इत्यपि ॥ १ ॥
हृष्ट तुष्टौ तथा क्रान्तस्तथोभौ संयतोद्यतौ ॥
कष्टं भविष्यतीत्याहुरमृताः पूर्ववत्स्मृताः ॥ २ ॥

शीलित, रक्षित, क्षान्त, आक्रुष्ट, जुष्ट, रुष्ट, रुषित, अभिव्याहृत, हृष्ट, तुष्ट, क्रान्त तथा संयत उद्यत ये भी वर्त्तमान काल में जानने चाहिये। 'कष्ट' इस शब्द को भविष्यत्काल में कहते हैं और अमृत शब्द का पूर्ववत् (शीलित आदि के तुल्य वर्त्तमान काल में) स्मरण करना चाहिये। न म्रियन्ते,अमृताः ॥ १२२३ ॥

१२२४—नपुंसके भावे क्तः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११४ ॥

भाव का प्रकाश करना हो तो नपुंसकलिङ्ग में धातु से क्त प्रत्यय हो। हसि-तम्। शयितम्। जल्पितम्। देवदत्तेन ॥ १२२४ ॥

११२५—सुयजोर्ङ्वनिप् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०३ ॥

षुञ् और यज धातु से भूतकाल में ङ्वनिप् प्रत्यय हो। असावीत् असोष्ट वा सुत्वा। सुत्वानौ। सुत्वानः। अयाक्षीत् अयष्ट वा, यज्वा। यज्वानौ। यज्वानः ॥ १२२५ ॥

१२२६—जीर्यतेरतृन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०४ ॥

जॄष् धातु से भूतकाल में अतृन् प्रत्यय हो। अजरत् अजारीद् वा जरन्। जरन्तौ। जरन्तः। वासरूपविधि (८११) से निष्ठा संज्ञक भी होते हैं। जीर्णः। जीर्णवान् ॥ १२२६ ॥

१२२७—छन्दसि लिट् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०५ ॥

वेदविषय में भूतकाल में धातु से लिट् प्रत्यय हो। अहं सूर्यमुभयतो ददर्श। अहं द्यावापृथिवी आततान ॥ १२२७ ॥

१२२८—लिटः कानज्वा ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०६ ॥

पूर्वविहित (१२२७) वेदविषयक लिट् के स्थान में कानच् आदेश विकल्प करके हो । अग्निमचैषीत्, अग्निं चिक्यानः । सोमं सुषुवाणः । इन में चिञ् वा षुञ् धातु से लिट् के स्थान में कानच् आदेश है । विकल्प के ग्रहण से कहीं नहीं भी होता । जैसे पूर्वोक्त उदाहरण । अहं सूर्यमुभयतो ददर्श । इत्यादि ॥ १२२८ ॥

१२२९—क्वसुश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०७ ॥

पूर्वविहित(१२२७)वेद विषयक लिट् के स्थान में क्वसु आदेश भी हो ॥१२२९॥

१२३०—वस्वेकाजाद्घसाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ ॥ ६७ ॥

द्विर्वचन किये हुए एकाच्, आकारान्त, घस्लृ इन्हीं धातुओं से परे जो वसु उस को इट् आगम हो । एकाच्, अशकदिति शेकिवान् । यहां शक्लृ धातु से लिट् (१२२७) के स्थान में क्वसु (१२२९) और धातुद्विर्वचन (३६) तथा एत्वाभ्यासलोप (१२५) होकर जो एकाच् (शेक्) हो जाता है उस से परे वसु को इडागम हो जाता है । आत्, पपिवान् । घस्लृ, जक्षिवान् । यहां (२१४) सूत्र से उपधालोप और उस को (संधि० ६८) रूपातिदेश हो कर चित्व (३६) और षत्व (२८४) हो जाता है क्वसु तो लिट् के स्थान में ही होता है और लिड्विषय में क्रादिनियम (१४८) वा उदात्तत्व से इट् प्राप्त ही है । फिर भी जो इट् का विधान किया इस से यह सूत्र नियमार्थ है अर्थात् वसु को इट् एकाच् आदि ही से परे हो अन्य से नहीं । इस से बिभिद्वान् । बभूवान् । इत्यादि में इट् नहीं होता ॥ १२३० ॥

१२३१—भाषायां सदवसश्रुवः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०८ ॥

भाषा अर्थात् लोक में सद, वस, श्रु इन धातुओं से परे भूतकाल में विकल्प करके लिट् और उस के स्थान में क्वसु आदेश नित्य हो । षद्लृ, उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम् । विकल्पपक्ष में अपने २ विषय में यथोक्त प्रत्यय होते हैं । जैसे भूतसामान्यकाल में लुङ् । उपासदत् । अनद्यतन भूत में लङ् । उपासीदत् । परोक्षभूत में लिट् । उपससाद [वस] निवासे । अनूषिवान्(२८३)कौत्सः पाणिनिम् । अन्ववात्सीत् । अन्ववसत् । अनूवास । श्रु, उपशुश्रुवान् कौत्सः पाणिनिम् । उपाश्रौषीत् । उपाशृणोत् । उपशुश्राव ॥ १२३१ ॥

१२३२—उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०९ ॥

उपेयिवान्, अनाश्वान्, अनूचान ये भाषा में निपातन हैं । उपेयिवा . । यहां

उपपूर्वक [इण्] गतौ धातु से लिट् विकल्प करके और उस को नित्य क्वसु द्विर्वचन (३६) अभ्यास दीर्घ (२४०) और अभ्यासदीर्घसामर्थ्य से, एकादेश (सं०१०६) का प्रतिबन्ध हो कर अनेकाच् (उप+ई+इ+वसु=) से इट् निपातन है। उपेयुषां । उपेयुषे । उपेयुषः । उपेयुषि । इत्यादि कों में निपातन इट् नहीं होता क्योंकि 'उपेयिवान्' यहां क्रादिनियम (१४८) से प्राप्त भी इट् था पर-(१२३०) सूत्र के नियम से अनेकाच् से नहीं होता था उसी इट् का प्रादुर्भाव मात्र किया किन्तु अपूर्व इट् विधान नहीं किया इस से अजादि कों में जहां वसु को (नामि०१५६) सूत्र से संप्रसारण होता वहां इट् नहीं होता है। यहां उप अविवक्षित है जैसे। समीयिवान् । ईयिवान् । लिट् के विकल्प पक्ष में पूर्ववत् लुङादि होते हैं। उपागात् । उपेत् । उपेयाय । अनाश्वान् । यहां नञ्पूर्वक [अश] भोजने धातु से पूर्ववत् लिट् क्वसु और इट् का अभाव निपातन है। विकल्प पक्ष में। अनाश्वान् । नाश्नोत् । नाश्नात् । नाश । अनूचानः कर्त्तरि ॥ महाभाष्य । ३ । २ । १०९ । अनूक्तवान्, अनूचानः । यहां अनुपूर्वक वच से कर्त्ता में पूर्ववत् लिट् उस के स्थान में कानच् आदेश निपातन है। दूसरे पक्ष में। अनूचानः। अन्ववोचत् । अन्वब्रवीत् । अनूवाच ॥ १२३२ ॥

१२३३—विभाषा गमहनविदविशाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६८ ॥

गम, हन, विद, विश इन से परे वसु को इट् विकल्प करके हो। गम्लृ, जग्मिवान् (२१४) जगन्वान् (१२७) हन, जघ्निवान् । जघन्वान् । विद, विविदिवान् । विविद्वान् । विश, विविशिवान् । विविश्वान् । विश के साहचर्य से यहां विद करके [विद्लृ] लाभे का ग्रहण है जो इस ग्रन्थ में (२७७) संख्या पर सूत्र लिखा है उस से अष्टाध्यायी के क्रम से मण्डूकप्लुतिवत् दृश् का अनुवर्त्तन कर। दृशिर् से ददृशिवान् । ददृश्वान् । ये भी समझने चाहिये ॥ १२३३ ॥

१२३४—सनिंससनिवांसम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६९ ॥

वसु के इट्प्रकरण में 'सनिंससनिवांसम्' यह निपातन है। अग्निस्त्वाग्ने सनिंससनिवांसम् । यहां सनिङ्पूर्वक [षुञ्] अभिषवे वा [षन] संभक्तौ से वसु को इट् आगम तथा एत्व और अभ्यासलोप का अभाव निपातन है यह निपातन वेद ही में आता है ॥ १२३४ ॥

१२३५—लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२४ ॥

जब प्रथमान्त के साथ लट् (४) प्रत्यय का समानाधिकरण न हो तो उस

के स्थान में शतृ और शानच् प्रत्यय विकल्प हों । ये दोनों प्रत्यय शित् हैं इस से इन को सार्वधातुक संज्ञा (१८) होकर इन के परे शप् (१९) आदि प्रत्यय भी होते हैं । जैसे (पच्+शप्+शतृ+अम्=) पचन्तं चैत्रं पश्य । यहां लट् जिस का वाचक है वह कर्तृसंज्ञक चैत्र शब्द द्वितीयान्त है (७५२) इस संख्या पर जो सूत्र लिखा है उस में विभाषा पद की अनुवृत्ति यहां आती है उस को व्यवस्थित विभाषा मान कर प्रथमासमानाधिकरण में लट् के स्थान में शतृ शानच् विकल्प करके होते हैं यह समझना चाहिये । पचन् मैत्रः । पचति मैत्रो वा । मैत्र किसी के लिये पचा रहा है । अप्रथमासमानाधिकरण में तो नित्य होते हैं ॥ १२३५ ॥

१२३६—आने मुक् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ८२ ॥

आन परे हो तो अङ्ग के अकार को मुक् का आगम हो । पचमानं चैत्रं पश्य यहां लट् के स्थान में शानच् आदेश है । पचमानो मैत्रः । पचते मैत्रः । मैत्र अपने लिये पकाता है ॥ १२३६ ॥

१२३७—वा०—माङ्याक्रोशे ॥

माङ् उपपद हो तो आक्रोश (निन्दा) अर्थ में उक्तविषयक शतृ शानच् हों । मा पचन् । मा पचमानः । मत पका दे ॥ ११३७ ॥

१२३८—संबोधने च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२५ ॥

संबोधनविषय में लट के स्थान में शतृ शानच् प्रत्यय विकल्प करके हों । हे पचन् । हे पचमान । हे कुर्वन् । हे कुर्वाण ॥ १२३८ ॥

१२३९—लक्षणहेत्वोः क्रियायाः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२६ ॥

क्रिया के लक्षण (परिचय कराने) और हेतु (कारण) अर्थ में वर्तमान धातु से परे लट् के स्थान में शतृ शानच् आदेश विकल्प करके हों । लक्षण, शयाना वर्धते दूर्वा । शयाना भुञ्जते यवनाः । हेतु, धनमर्जयन् वसति । अधीयानो वसति लक्षणहेतुग्रहण से यहां न हुए अधीते । भुङ्क्ते । क्रियाग्रहण से द्रव्य और गुण के परिचयादि में न० । यः कम्पते स वटः । यः स्थिरो भवति तद् गुरु ॥ १२३९ ॥

१२४०—ईदासः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ८३ ॥

आस् धातु से आन को ईकारादेश हो । आसीनः । आस्ते । आसीनं पश्य । आसीनेन कृतम् इत्यादि ॥ १२४० ॥

१२४१—विदेः शतुर्वसुः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ३६ ॥

विद (विद ज्ञाने) से परे शतृ को वसु आदेश विकल्प करके हो । विद्वान् । विदन् । विदुषी (नामि० १५६) ॥ १२४१ ॥

१२४२—तौ सत् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२७ ॥

पूर्वोक्त शतृ शानच् सत्संज्ञक हों ॥ १२४२ ॥

१२४३—लृटः सद्वा ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४ ॥

लृट् के स्थान में सत्संज्ञक प्रत्यय विकल्प करके हों । यहां भी यह विकल्प व्यवस्थित विभाषा है इस से जैसे लट्स्थानी शतृ शानच् प्रथमासमानाधिकरण विकल्प करके और द्वितीयादिकों में नित्य होते हैं वैसे यहां भी हों । करिष्यन्तं करिष्यमाणं मैनं पश्य । करिष्यमाणः । करिष्यति। हे करिष्यन् । हे करिष्यमाण अर्जयिष्यमाणो वसति ॥ १२४३ ॥

१२४४—पूङ्यजोः शानन् ॥ अ०॥ ३ । २ । १२८ ॥

वर्त्तमान काल में पूङ् और यज धातु से शानन् प्रत्यय हो। पूङ्, पवमानः यज, यजमानः ॥ १२४४ ॥

१२४५—ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् ॥अ०॥ ३ । २ । १२९

वर्त्तमानकाल में ताच्छील्य (स्वभाव) वयोवचन (अवस्थासंबंधीवचन) शक्ति (सामर्थ्य) इन अर्थों में धातु से चानश् प्रत्यय हो । ताच्छील्य,घृतं भुञ्जानः । वयोवचन, कवचं बिभ्राणः । शक्ति, शत्रुं निघ्नानः ॥ १२४५ ॥

१२४६—इङ्धार्य्योः शत्रकृच्छ्रिणि ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३० ॥

कष्टसाध्य जिस का क्रियाफल न हो वह कर्त्ता वाच्य हो तो वर्त्तमान काल में इङ् और णिजन्त धृञ् धातु से शतृ प्रत्यय हो । अधीयन् पारायणम् । धारयन्नुपनिषदम् । अकृच्छ्रिन्ग्रहण से यहां न हुआ । कृच्छ्रेणाधीते । कृच्छ्रेण धारयति । ॥ १२४६ ॥

१२४७—द्विषोऽमित्रे ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३१ ॥

अमित्र (शत्रु) कर्त्ता वाच्य हो तो वर्त्तमानकाल में द्विष धातु से शतृ प्रत्यय हो द्वेष्टीति, द्विषन् । द्विषन्तौ । द्विषन्तः । अमित्रग्रहण से यहां न हुआ । पिता पुत्रं द्वेष्टि ॥ १२४७ ॥

१२४८—सुञो यज्ञसंयोगे ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३२ ॥

वर्त्तमान काल में यज्ञ संयोग (अभिषव) अर्थमें वर्त्तमान षुञ् धातु से शतृ प्रत्यय हो। सर्वे सुन्वन्तः । यहां संयोगग्रहण प्रधान कर्त्ताओं के ग्रहण करने के लिये है अर्थात् साधारण यज्ञ करने कराने वालों के ग्रहण में नहीं होता ।याजकाः सुन्वन्ति । यज्ञ का ही संयोग ग्रहण क्यों किया । सुरां सुनोति । यहां न हो ॥ १२४८ ॥

१२४६—अर्हः प्रशंसायाम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३३ ॥

प्रशंसा अर्थ में वर्त्तमान काल में अर्ह धातु से शतृ प्रत्यय हो । भवान् विद्यामर्हन् । प्रशंसाग्रहण से यहां न० तस्करोवधमर्हति ॥ १२४९ ॥

१२५०—आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३४ ॥

यहां से लेकर क्विप् प्रत्यय पर्यन्त जो प्रत्यय कहें वे वर्त्तमान काल में तच्छील (जो स्वभाव से फल को न चाह कर कर्म में प्रवृत्त हो) तद्धर्मा (जो विना शीशील मेरा धर्म है ऐसा मान कर कर्म में प्रवृत्त हो) तत्साधुकारी (क्रिया को सुन्दरता से करे) इन कर्त्ताओं में हों ॥ १२५० ॥

१२५१—तृन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३५ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में धातुमात्र से तृन् प्रत्यय हो । तच्छील, कटं करोति तच्छील:, कटंकर्त्ता । जनापवादान् वदिता । तद्धर्मा, उन्नयन्ति तद्धर्मिण उन्नेतारः । तौल्वलायनाः पुत्रे जाते । तत्साधुकारी, साधु कटं करोति, कटंकर्त्ता ॥ १२५१ ॥

१२५२-वा०—तृन्विधावृत्विक्षु चानुपसर्गस्य ॥

तृन् प्रत्यय के विधान करने में ऋत्विज् आदि कर्त्ता हों तो उपसर्गरहित धातु से (तृन्) प्रत्यय कहना चाहिये । जुहोतीति होता । पुनातीति पोता । अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । प्रतिहर्त्ता । यहां तृच् होता है ॥ १२५२ ॥

१२५३-वा०—त्विषेर्देवतायामकारश्चोपधाया अनिट्त्वंच ॥

देवता अर्थ में त्विष धातु से तृन् प्रत्यय तथा उपधा को अकार और इट् का अभाव भी कहना चाहिये । त्विष, त्वेषितुं शीलमस्य, त्वष्टा ॥ १२५३ ॥

१२५४—वा०—क्षदेश्च नियुक्ते ॥

नियुक्त (जो कहीं अधिकार पाये हो उस) कर्त्ता में क्षद धातु से तृन् प्रत्यय कहना चाहिये । क्षद सौत्र धातु है इस को आच्छादन अर्थ में मानते हैं । क्षत्ता सारथि का नाम है ॥ १२५४ ॥

१२५५—वा०—छन्दसि तृच्च ॥

वेदविषय में क्षद धातु से तृच् और तृन् प्रत्यय हों । क्षतृभ्यः संगृहीतृभ्यः ॥ १२५५ ॥

१२५६—अलंकृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रप
वृतुवृधुसहचर इष्णुच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३६ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में अलंकृञ्, निराकृञ्, प्रजन, उत्पच, उत्पत, उन्मद, रुच, अपत्रप, वृतु, वृधु, सह, चर इन धातुओं से इष्णुच् प्रत्यय हो । अलं—कृञ्,

अलंकर्तुंशीलमस्य अलंकर्तुंधर्मोऽस्य, साध्वलं करोति वा अलंकरिष्णुः। निर्-आङ्-कृञ्, निराकरिष्णुः। प्र-जन, प्रजनिष्णुः। उद्-डुपचष्, उत्पचिष्णुः। उद्-पत्लृ, उत्पतिष्णुः। उद्-मदी, उन्मदिष्णुः रुच, रोचिष्णुः। अप-त्रपूष्, अपत्रपिष्णुः वृतु, वर्त्तिष्णुः। वृधु, वर्धिष्णुः। षह, सहिष्णुः। चर, चरिष्णुः ॥१२५६॥

१२५७—णेश्छन्दसि ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३७ ॥

वेदविषय में तच्छीलादि कर्त्ताओं में णिजन्त धातु से इष्णुच् प्रत्यय हो। दृषदं धारयिष्णवः। वीरुधः पारयिष्णवः ॥ १२५७ ॥

१२५८—भुवश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३८ ॥

वेदविषय में तच्छीलादि कर्त्ताओं में भूधातु से इष्णुच् प्रत्यय हो। भविष्णुः। चकार अनुक्त के ग्रहण करने के लिये है। इस से टुभ्राजृ णिजन्त से। भ्राजयिष्णु भी समझलेना चाहिये ॥ १२५८ ॥

१२५९—ग्लाजिस्थश्च क्स्नुः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३९ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में ग्ला, जि, स्था और, भू इन धातुओं से ग्स्नु, प्रत्यय हो। ग्लै, ग्लास्नुः। जि, जिष्णुः। ष्ठा, स्थास्नुः। भू, भूष्णुः। यहां चर्त्व हो कर 'ग्' को 'क्' होगया है (४५) सूत्र में 'ग्' के निर्देश से उक्त प्रयोगों में गुणादेश नहीं होता तथा (२५५) सूत्र में ग् के निर्देश से 'भूष्णु' यहां इडागम भी नहीं होता है ॥१२५९॥

१२६०—वा०—स्थादंशिभ्यां स्नुश्छन्दसि ॥

वेद में स्था और दंश धातु से स्नु प्रत्यय०। स्थास्नु जङ्गमं दंस्नवः पशवः ॥१२६०॥

१२६१—त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४० ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में त्रसी, गृधु, ञिधृषा, इन धातुओं से क्नु प्रत्यय हो। त्रसी, त्रस्नुः। गृधु, गृध्नुः। ञिधृषा, धृष्णुः। क्षिप, क्षिप्नुः ॥ १२६१ ॥

१२६२—शमित्यष्टाभ्यो घिनुण् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४१ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओंमें शमु *आदि आठ धातुओंसे घिनुण् प्रत्यय हो (घिनुण्) यहां घकार कुत्व के लिये उकार उगित् कार्य के लिये णकार वृद्धि के लिये है। शमितुं शीलं धर्मो वास्य साधुशाम्यति वा शमी। शमिनौ। शमिनः। यहां उगित् कार्य नुम् (नामि० ११३) नहीं होता। नुम् विधि में अष्टाध्यायी के क्रम से (नामि० ४५) सूत्र से झल् का अपकर्षण कर झलन्त उगित् को नुम् आगम हो ऐसा अर्थ वहां जानेंगे। यहां वृद्धि (१२६) प्राप्त है उसी की निवृत्ति (७२६) से हो जाती है।

* (शमु) उपशमे (तमु) काङ्क्षायाम् (दमु) उपशमे (श्रमु) तपसि खेदे च (भ्रमु) अनवस्थाने क्षमू सहने क्लमु ग्लानौ मदी हर्षे ये आठ शमादि धातु हैं ॥

तमी । दमी । श्रमी । भ्रमी । क्लमी क्षमा । प्रमादी । आठ का ही ग्रहण क्यों किया । असु, असिता यहां । न हो ॥ १२६२ ॥

१२६३—संपृचानुरुधाङ्यमाङ्यसपरिसृसंसृजपरिदेविसंज्वरपरिक्षिपपरिरटपरिवदपरिदहपरिमुहदुषद्विषद्रुहदुहयुजाक्रीडविविचत्यजरजभजातिचरापचरामुषाभ्याहनश्च॥ अ० ॥ ३ । २ । १४२॥

तच्छीलादिकर्त्ताओं में सम्पृचादि धातुओं से घिनुण् प्रत्यय हो (सम्पृच) यहां रुधादि [पृची] संपर्के इस का ग्रहण है । सम्पृणक्ति तच्छील:, संपर्की । अनुरुध, अनुरुध्यते तच्छील:, अनुरोधी । आङ्यम, आयच्छति तच्छील: आयामी । आयसु, आयस्यति आयसति वा तच्छील:,अयासी परिसृ,परिसाति । तच्छील:, परिसारी। संसृज,संसृज्यते । तच्छील:,संसर्गी । परिदेवि, यहां[देवृ] देवने इस भ्वादिस्थ का ग्रहण है। परिदेवते तच्छील:,परिदेवी । जो विलाप करता है उस के जैसा स्वभाव वाला पुरुष है ।संज्वरति तच्छील: संज्वारी । परिक्षिप, [क्षिप] प्रेरणे दिवादि वा तुदादि दोनों का ग्रहण है। परिक्षिप्यति, परिक्षिपति । परिक्षिपते वा तच्छील:, परिक्षेपी । परिरट,परिरटति तच्छील:,परिराटी । परिवद, परिवदति तच्छील:, परिवादी । परिदह्याति तच्छील:, परिदाही । परिमुह, परिमुह्यति, तच्छील:, परिमोही । दुष, दुष्यति तच्छील:, दोषी। द्विष,द्वेष्टि तच्छील:, द्वेषी। द्रुह, द्रुह्यति तच्छील:,द्रोही । दुह, दोग्धि तच्छील: दोही। युज, यहां [युज] समाधौ दिवादि [युजिर्]योगे रुधादि इन दोनों का ग्रहण है युज्यते युनक्ति युङ्क्ते वा तच्छील:, योगी । आक्रीड्, आक्रीडते तच्छील:, आक्रीडी । वि विचिर्, विविनक्ति विविनक्ते वा तच्छील:,विवेकी । त्यज,त्यागी (८४३) रञ्ज, रागी । भज, भागी । अतिचर, अतिचारी । अपचर, अपचारी । आमुष, आमुष्णाति तच्छील: आमोषी । अभि-आङ्-हन, अभ्याहन्ति, तच्छील: अभ्याघाती (३०४, ५०२) इन सूत्रों से कुत्व और तकारादेश० ॥ १२६३ ॥

१२६४—वौ कषलसकत्थस्रम्भ: ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४३ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में विपूर्वक कष, लस,कत्थ, स्रम्भु इन धातुओं से घिनुण् प्रत्यय हो । [कष] हिंसायाम् । विकाषी । लस श्लेषणक्रीडनयो: । विलासी । [कत्थ] श्लाघायाम् । विकत्थी [स्रम्भु]विश्वासे । विस्रम्भी ॥ १२६४ ॥

१२६५—अपे च लष: ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४४ ॥

अप और वि पूर्व हों तो लष धातु से घिनुण् प्रत्यय हो तच्छी० । [लष] कान्तौ । अपलाषी । विलाषी ॥ १२६५ ॥

१२६६—प्रे लपसृद्रुमथवदवसः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४५ ॥

तच्छीलादिकों में प्र पूर्वक लप, सृ, द्रु, मथ, वद, वस इन धातुओं से घिनुण् प्रत्यय हो। प्रलप, प्रलापी। प्रसृ, प्रसारी। प्रद्रु, प्रद्रावी। प्रमथ, प्रमाथी। प्रवद, प्रवादी। प्रवस, वस निवासे प्रवासी ॥ १२६६ ॥

१२६७—निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरटपरिवादिव्याभाषासूयो वुञ् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४६ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में निन्द आदि धातुओं से वुञ् प्रत्यय हो। णिदि, निन्दकः। हिसि, हिंसकः। क्लिश उपतापे वा क्लिशू विबाधने दोनों का ग्रहण है क्लेशकः। खाद्, खादकः विनाश, वि–णश–णिच्, विनाशयति तच्छीलः, विनाशकः। परिक्षिप, परिक्षेपकः। परिरट, परिराटकः। परिवद, परिवादकः। वि–आ–भाष, व्याभाषकः। ण्वुल् (८७४) प्रत्यय से भी उक्त प्रयोग सिद्ध हैं फिर वुञ् प्रत्यय का यह प्रयोजन है कि तच्छीलादिकों में वासरूपन्याय (८११) से तृच् आदि अन्य प्रत्यय नहीं होते हैं ॥ १२६७ ॥

१२६८—देविक्रुशोश्चोपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४७ ॥

उपसर्ग पूर्व हो तो देवि और क्रुश धातु से वुञ् प्रत्यय हो तच्छी०। आदेवयति तच्छीलः, आदेवकः। परिदेवकः। परिक्रोशकः। उपसर्गग्रहण से यहां न हुआ देवयिता। क्रोष्टा। यहां तृन् हो जाता है ॥ १२६८ ॥

१२६९—चलन शब्दार्थादकर्मकाद्युच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४८ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में चलन और शब्द अर्थ वाले अकर्मक धातुओं से युच् प्रत्यय हो [चल] कंपने चलनः। कपि संचलने कम्पनः। चुप मन्दायां गतौ चोपनः। शब्दार्थ, शब्दनः। रवणः। अकर्मक ग्रहण से यहां न हुआ विद्यां पठिता। शास्त्रं वदिता। यहां तृन् हो जाता है ॥ १२६९ ॥

१२७०—अनुदात्तेतश्च हलादेः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४९ ॥

अनुदात्त जिस का इत् संज्ञक हो ऐसा जो हलादि अकर्मक धातु उस से भी युच् प्रत्यय हो तच्छी०। वृतु, वर्त्तनः। वृधु, वर्द्धनः। अनुदात्तेत् के ग्रहण से यहां न०। भविता। हलादि ग्रहण से यहां न०। एधिता। अकर्मकग्रहण से यहां न हुआ। वस्त्रं वसिता यहां तृन् हो जाता है ॥ १२७० ॥

१२७१—जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुचलषपतपदः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५० ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में जु आदि धातुओं से युच् प्रत्यय हो। जु, यह सौत्र

धातु है इस को गति वा वेग अर्थ में मानते हैं। जवनः। चङ्क्रम्य, क्रमु—यङ् क्रम्यति तच्छीलः, चङ्क्रमणः। दन्द्रम्य, द्रमु—यङ्, दन्द्रमणः। सृ, सरणः। गर्द्धनः। ज्वल, ज्वलनः। शुच, शोचनः। लष, लषणः। पतॢ, पतनः। पद, पद यद्यपि (१२७०) सूत्र से पद धातु से युच् प्रत्यय हो जाता तथापि पद का इस लिये है कि इस से सामान्य युच् प्रत्यय को बाध के विशेष उकञ् (१ प्रत्यय न हो जाय क्यों कि तच्छीलादिकों में (८११) सूत्र के अनुसार परस्पर नहीं होते हैं इस अंश में यही पदग्रहण ज्ञापक है। असरूपनिवृत्त्यर्थं तर्हि पद क्रियते एतज्ज्ञापयत्याचार्य्यः। ताच्छीलिकेषु ताच्छीलिका वासरूपन्यायेन न न्ति। महाभाष्य ३। २। १५०॥ १२७१॥

१२७२—क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३। २। १५१॥

तच्छीलादिकों में कोप और भूषण अर्थ वाले धातुओं से युच् प्रत्यय हो कोपे क्रोधनः। रोषणः [मडि] भूषायाम्। मण्डनः। भूषणः॥ १२७२॥

१२७३—न यः ॥ अ० ॥ ३। २। १५२॥

यकारान्त धातु से युच् प्रत्यय न हो [क्नूयी] शब्दे उन्दे च क्नूयिता [क्ष्मा विधूनने। क्ष्मायिता। इन में (१२७०) सूत्र से युच् प्रत्यय प्राप्त है सो नहीं किन्तु तृन् (१२५१) प्रत्यय हो जाता है॥ १२७३॥

१२७४—सूददीपदीक्षश्च ॥ अ० ॥ ३। २। १५३॥

सूद, दीप, दीक्ष इन धातुओं से युच् प्रत्यय न हो [षूद] क्षरणे सूदय तच्छीलः सूदिता (१२५१) दीप्रो, दीपिता। दीक्ष, दीक्षिता। इन सभो में (१ सूत्र से युच् प्राप्त है। यहां दीपि ग्रहण क्यों किया क्यों कि 'दीप' धातु से विहित र (१२८९) प्रत्यय सामान्य युच् (१२७०) प्रत्यय को बाध के ता इस लिये दीपि ग्रहण ज्ञापक है वासरूपन्याय (८११) से र प्रत्यय के युच् का समावेश होता है। इस ज्ञापन से यह प्रयोजन है कि। कम्रा कन्या। क कन्या। इत्यादि। सिद्ध हों॥ १२७४॥

१२७५—लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशॄभ्य उकञ् ॥ अ० ॥ ३। २। १५४॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में लष, पत, पद, स्था, भू, वृष, हन, कम, गम, शॄ इन धा से उकञ् प्रत्यय हो। लष, अपलाषुकः। पतॢ, प्रपातुकः। पद, पादुकः। ष्ठा, स्थायुकः। भू, भावुकः। वृष, प्रवर्षुकः। पर्य्जन्यः। हन, घातुकः। कमु, कामुकः। ग आगामुकः [शॄ] हिंसायाम्। शृणाति तच्छीलः शारुकः। किंशारुकम्। तीक्ष्णम्॥ १२

१२७६—जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५५ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में जल्प, भिक्ष, कुट्ट, लुण्ट, वृङ् इन धातुओं से षाकन् प्रत्यय हो। जल्प, जल्पाकः। भिक्ष, भिक्षाकः। कुट्ट, कुट्टाकः [लुटि] * स्तेये लुण्टाकः। वृङ्, वराकः। स्त्री लिङ्ग में जल्पाकी (स्त्रै० ७०) ङीष् हो जाता है ॥ १२७६ ॥

१२७७—प्रजोरिनिः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५६ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में प्रपूर्वक जु धातु से इनि प्रत्यय हो। प्रजवी। प्रजविनौ। प्रजविनः ॥ १२७७ ॥

१२७८—जिदृक्षिविश्रीण्वमाव्यथाभ्यमपरिभूप्रसूभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५७ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में जि, दृ, क्षि, विश्रि इण्, टुवमु, अव्यथ, अभ्यम, परिभू, प्रसू इन धातुओं से इनि प्रत्यय हो। जि, जेतुं शीलमस्य जयी। दृङ्, दरी [क्षि] क्षये [क्षि] निवासगत्योः। क्षयी। विश्रिञ् विश्रयी। इण्, अत्ययी। टुवमु, वमी नञ्—व्यथ, अव्यथी। अभि—अमा, अभ्यमी। परि—भू, परिभवी। प्रसू—प्रसवी ॥ १२७८ ॥

१२७९—स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५८ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में स्पृह आदि धातुओं से आलुच् प्रत्यय हो [स्पृह] ईप्सायाम् स्पृहयालुः [गृह] ग्रहणे गृहयालुः [पत] गतौ पतयालुः। ये चुरादि अदन्तों में हैं। दय, दयालुः। निद्रा, [द्रा] कुत्सायाम्। निद्रालुः। तद्—द्रा, तन्द्रालुः। यहां तद् के द् को नकारादेश निपातन है। श्रत्—डुधाञ्, श्रद्धालुः ॥ १२७९ ॥

१२८०—वा०—आलुचि शीङ्ग्रहणम् ॥

आलुच् प्रत्यय के विषय में शीङ् का भी ग्रहण करना चाहिये। शयितुं शीलमस्य, शयालुः ॥ १२८० ॥

१२८१—दाधेट्सिशदसदो रुः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५९ ॥

दा, धेट्, सि, शद, सद इन धातुओं से रु प्रत्यय हो तच्छी०। दातुं शीलमस्य दारुः। धातुं शीलमस्य धारुः। सीयति तच्छीलः। सेरुः। शीयते तच्छीलः शद्रुः। सीदति तच्छीलः। सद्रुः ॥ १२८१ ॥

१२८२—सृघस्यदः क्मरच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६० ॥

सृ घस् अद् इन धातुओं से क्मरच् प्रत्यय हो तच्छी०। सृ, सृमरः। घस्लृ, घस्मरः। अद, अद्मरः ॥ १२८२ ॥

* इस धातु को कोई आचार्य लुठ कोई लुडि भी पढ़ते हैं॥

१२८३—भञ्जभासमिदो घुरच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६१ ॥

भञ्ज,भास,मिद इन धातुओं से घुरच् प्रत्यय हो तच्छी० । भञ्जो,भङ्गुरः (८४३) भास्, भासुरः । ञिमिदा, मेदुरः ॥ १२८३ ॥

१२८४—विदिभिदिच्छिदेः कुरच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६२ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में विद आदि धातुओं से कुरच् प्रत्यय हो । विद, [विद] ज्ञाने वेत्ति तच्छीलः, विदुरः । भिदिर्, भिदुरः । छिदिर्, छिदुरः ॥ १२८४ ॥

१२८५—इण्नशजिसर्त्तिभ्यः क्वरप् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६३ ॥

तच्छीलादिकर्त्ताओं में इण्, नश, जि, सर्त्ति इन धातुओं से क्वरप् प्रत्यय हो । इण्, इत्वरः । णश,नश्वरः । जि,जित्वरः । सृ, सृत्वरः (सं०२७२) से तुक् । स्त्रीलिङ्ग में इत्वरी (स्त्रै० ३५) जित्वरी । इत्यादि ॥ १२८५ ॥

१२८६—गत्वरश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६४ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में 'गत्वर' यह निपातन है । गन्तुं शीलमस्य, गत्वरः । स्त्री गत्वरी । यहां गम्लृ से क्वरप् और अनुनासिकलोप निपातन है ॥ १२८६ ॥

१२८७—जागरूकः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६५ ॥

तच्छीलादिकों में जागृ धातु से ऊक प्रत्यय हो [जागृ] निद्राक्षये जागरूकः॥१२८७॥

१२८८—यजजपदशां यङः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६६ ॥

तच्छीलादिकर्त्ताओं में यज, जप, दंश इन के यङ् से परे ऊक प्रत्यय हो । यायज्य,यायजितुशीलमस्य,यायजूकः । जञ्जप्य,जञ्जपूकः। दंदश्य,दंदशूकः॥१२८८॥

१२८९—नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः ॥ अ०॥३। २ । १६७ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में नम् आदि धातुओं से परे र प्रत्यय हो । णम, नम्रम् । काष्ठम् । कपि,कंप्रा शाखा । ष्मिङ् स्मेरम् सुखम् । अजस,[जसु] मोक्षणे नञ्पूर्वक है अजस्रम् । निरन्तरम् । कमु, कम्राकन्या । हिंसि, हिंस्रम् । रक्षः । दीपी, दीपितुं शीलमस्य दीप्रः । दन्हिः ॥ १२८९ ॥

१२९०—सनाशंसभिक्ष उः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६८ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में सनन्त, आशंस, भिक्ष इन धातुओं से उ प्रत्यय हो । सनन्त, पिपठिषितुं शीलमस्य पिपठिषुः । चिकीर्षुः आशंस, [आङः शसि] इच्छायाम् । स्वादिः आशंसते तच्छीलः आशंसुः । भिक्ष, भिक्षुः ॥ १२९० ॥

१२९१—विन्दुरिच्छुः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६९ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में विन्दु और इच्छु ये निपातन हों। वेत्ति तच्छीलो, विन्दुः। यहां [विद] ज्ञाने धातु से उ प्रत्यय और नुमागम निपातन है। इच्छति तच्छीलः, इच्छुः। यहां [इषु] इच्छायाम् से उ प्रत्यय और छकारादेश० ॥ १२९१ ॥

१२९२—आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च ॥ अ० ॥ ३। २। १७१ ॥

वेदविषय में आकारान्त, ऋवर्णान्त, गम, हन, और जन इन धातुओं से कि और किन् प्रत्यय हों और वे लिट् प्रत्यय के तुल्य हों। आ, [पा] पाने पपौ तच्छीलः पपिः सोमम्। डुदाञ् ददिर्गाः। इन में लिड्वद्भाव मान कर (३६) सूत्र से धातु द्विर्वचन हो जाता है। ऋ, भृ, बभ्रिर्वज्रम्। तृ, मित्रावरुणौ ततुरिः। [गृ] शब्दे दूरेह्यध्वा जगुरिः। गम्लृ, जग्मिर्युवा। हन, जघ्निर्वृत्रम्। जन जज्ञिर्बीजम्। इन में उपधालोप (२१४) सूत्र से होता है यद्यपि (१३७) कित् संज्ञा सिद्ध भी है तथापि लिट् के कित्व विषय में भी जो गुणविधान (२५८) किया है उस के प्रतिषेध के लिये (कि, किन्) इन प्रत्ययों में ककार पढ़ा है (आदृ,०) यहां आ, ऋ का अलग२ सुख से उच्चारण होने के लिये द् पढ़ा किन्तु तपर करण नहीं है॥१२९२॥

१२९३—वा०—उत्सर्गश्छन्दसि सदादिभ्यो दर्शनात् ॥

वेदविषय में सद आदि धातुओं से कि, किन् प्रत्ययों का दर्शन है इस से ये उत्सर्गमात्र हैं ऐसा कहना चाहिये अर्थात् आकारान्तों से अन्यत्र भी होते हैं। सदिमनिरमिनमिविविचीनाम्। महाभाष्य। षद्लृ, सेदिः। मन, मेनिः। रम, रेमिः। णम, नेमिश्चक्रमिवाभवत्। विचिर् विविचिंरत्नधातम् ॥ १२९३ ॥

१२९४—वा०—भाषायां धाञ्कृसृजनिनमिभ्यः ॥

भाषा में धाञ्, कृ, सृ, जन, नम इन धातुओं से कि, किन् प्रत्यय कहना चाहिये तच्छी० डुधाञ्, दधिः। कृ, चक्रिः। सृ, सस्रिः। जन, जज्ञिः। णम, नेमिः ॥ १२९४ ॥

१२९५-वा०-सहिवहिचलिपतिभ्यो यङन्तेभ्यः किकिनौ वक्तव्यौ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में यङन्त सहादि धातुओं से कि किन् प्रत्ययों को कहना चाहिये। सह—यङ् वृषा सहमानं सासहिः। वह—यङ् वावहिः चल—यङ्, चाचलिः। पत्लृ—यङ्, पापतिः यहां नीक् (५४२) का अभाव निपातन है ॥ १२९५ ॥

१२९६—स्वपितृषोर्नजिङ् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७२ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में स्वप् और तृष् धातु से नजिङ् प्रत्यय हो। ञिष्वप, स्वप्नक्। ञितृषा, तृष्णक् ॥ १२९६ ॥

१२९७—शृवन्द्योरारुः ॥ अ० ॥ ३ । २ १७३ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में शृ और वदि धातु से आरु प्रत्यय हो [शृ] हिंसायाम् शरारुः [वदि] अभिवादनस्तुत्योः वन्दारुः ॥ १२९७ ॥

१२९८—भियः क्रुक्लुकनौ ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७४ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में भी क्रु और क्लुकन् प्रत्यय हों [ञिभी] भये। बिभेति तच्छीलो। भीरुः। भीलुकः॥ १२९८ ॥

१२९९—वा०—भियः क्रुकन्नपि वक्तव्यः ॥

भी धातु से क्रुकन् प्रत्यय भी कहना चाहिये। भीरुकः ॥ १२९९ ॥

१३००—स्थेशभासपिसकसो वरच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७५ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में स्था आदि धातुओं से वरच् प्रत्यय हो [ष्ठा] गतिनिवृत्तौ। स्थातुं शीलमस्य स्थावरः [ईश] ऐश्वर्ये। ईशितुं शीलमस्य,ईश्वरः [भासृ] दीप्तौ भास्वरः [पेसृ] गतौ। पेस्वरः [कस] गतौ। विकस्वरः ॥ १३०० ॥

१३०१—यश्च यङः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७६ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में यङन्त या धातु से वरच् प्रत्यय हो (याया–अ–वर–सु) यहां पर यकार के अकार का लोप (१७२) किये पीछे उस को स्थानिवद्भाव (सन्धि० ६३) जो प्राप्त है उस का यलोपविधि के प्रति प्रतिषेध (सन्धि० ६४) हो कर यलोप हो जाता है। यायावरः॥ १३०१ ॥

१३०२—भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप् ॥
अ० ॥ ३ । २ । १७७ ॥

ताच्छीलादि कर्त्ताओं में भ्राज आदि धातुओं से क्विप् प्रत्यय हो।टुभ्राज, विभ्राजते तच्छीलः,विभ्राट्। विभ्राड्।विभ्राजौ। विभ्राजः। भास,भाः। भासौ भासः धुर्वी, धूः। धुरौ। धुरः(५५९)द्युत, विद्युत[ऊर्ज]बलप्राणनयोः।ऊर्क्। ऊर्ग् पॄ, पूः। पुरौ (२८०) जु, यह सौत्र धातु गति और वेग में वर्त्तमान है। जूः जुवौ। यहां उत्तर सूत्र में (१३०४) जो वार्त्तिक पढ़ा है उस से दीर्घादेश जानना चाहिये। ग्रावस्तु, ग्राव—ष्टुञ्, * ग्रावस्तुत्। ग्रावस्तुतौ। ग्रावस्तुतः॥ १३०२

१३०३—अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७८ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में और धातुओं से भी क्विप् प्रत्यय देखा जाता है।पचति

* यहां ग्राव शब्द का स्तु धातु के साथ समास निपातन से कर पीछे क्विप् प्रत्यय होता है ॥

तच्छील: पक्। भिनत्ति, भित्। छिनत्ति, छित्। यहां दृश्यते यह दृशि ग्रहण विशेष विधान करने के लिये है अर्थात् उक्त क्विप् के परे कहीं दीर्घ कहीं द्विर्वचन कहीं संप्रसारण कहीं संप्रसारण का अभाव आदि कार्य्य होते हैं जैसे—॥१३०३॥

१३०४—वा०—वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसंप्रसारणं च ॥

वच, प्रच्छ, आयतस्तु, कटप्रु, जु, श्रिञ् इन धातुओं से क्विप् प्रत्यय दीर्घ तथा संप्रसारण का अभाव कहना चाहिये। वक्तीति वाक्। पृच्छति, प्राट्। आयतं स्तौति, आयतस्तू:। कटं प्रवते, कटप्रू:। जवते, जू:। यहां जु का ग्रहण केवल दीर्घ के लिये है। हरिं श्रयति, श्री:। लक्ष्मी: ॥ १३०४ ॥

१३०५—वा०—द्युतिगमिजुहोतीनां द्वे च

द्युत, गमॢ, हु इन से क्विप् और इनको द्वित्वादेश०। दिद्युत्। यहां द्युत धातु को क्विप् के परे द्विर्वचन और उक्त दृशि ग्रहण से पूर्व को अभ्यास संज्ञा (३७) तथा उस अभ्यास को संप्रसारण (२१८) हो जाता है। गमॢ, जगत् (११०५) अनुनासिक लोप० ॥ १३०५ ॥

१३०६—वा०-जुहोतेर्दीर्घश्च ॥

हु धातु को दीर्घ भी होना चाहिये। जुहू:। जुहोतिर्ह्वयतेर्वा [हु] दानादनयो: अथवा [ह्वेञ्] स्पर्द्धायां शब्दे च इन से (जुहू) सिद्ध होता है॥ १३०६ ॥

१३०७—वा०—दृणातेर्ह्रस्वश्च द्वे च क्विप्चेति वक्तव्यम् ॥

दृणाति [दॄ] विदारणे से क्विप् प्रत्यय धातु को द्विर्वचन और ह्रस्वादेश भी कहना चाहिये। दद्दत्। दृणातेर्दीर्यते वा [दृ] से कर्त्ता वा कर्म में दद्दत् होता है। दृणाति, वा दीर्य्यते या सा, दद्दत् ॥ १३०७ ॥

१३०८—वा०—ध्यायते: संप्रसारणं च ॥

[ध्यै] चिन्तायाम् धातु से क्विप् उस को संप्रसारण०। धी:। ध्यायतेर्दधातेर्वा (धी:) यह [ध्यै] से वा [डुधाञ्] से सिद्ध होता है ॥ १३०८ ॥

१३०९—भुव: संज्ञान्तरयो: ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७९ ॥

संज्ञा वा अन्तर गम्यमान होतो भू धातु से क्विप् प्रत्यय हो। संज्ञा, मित्रभू:। यह संज्ञा है। अन्तर, प्रतिभू:। धन के लेने देने वालों के बीच जो विश्वास कराने को स्थिर हो जाता है वह प्रतिभू कहाता है ॥ १३०९ ॥

१३१०—विप्रसंभ्योड्वसंज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८० ॥

संज्ञा न गम्यमान हो तो वि, प्र, सम् इन उपसर्गों से उत्तर जो भू धातु उस

से डु प्रत्यय हो। विभुः। जो सर्वगत है। प्रभुः। स्वामी। संभुः। जिस का संभव है। असंज्ञा ग्रहण से जहां विभूः। किसी का नाम हो वहां न हो॥१३१०॥

१३११—वा०—डुप्रकरणे मितद्र्वादिभ्य उपसंख्यानं धातुविधितुक्प्रतिषेधार्थम्॥

डु प्रत्यय के प्रकरण में धातुविधि (धातु ग्रहण से जो विधान किया जाय) और तुक् के प्रतिषेध के लिये मितद्रु आदि शब्दों का उपसंख्यान करना चाहिये। मितं द्रवति प्राप्नोति, मितद्रुः। मितद्रू। मितद्रवः। यहां धातु को विहित उवङ् (नामि०९२) नहीं होता तथा (मितद्रु) यहां (सं० २७३) तुक् नहीं होता। शं कल्याणं भावयति, शम्भुः। यहां अन्तर्भावित ण्यर्थ माना जाता है॥१३११॥

१३१२—धः कर्मणि ष्ट्रन्॥ अ०॥ ३। २। १८१॥

कर्मकारक में धेट् और डुधाञ् धातु से ष्ट्रन् प्रत्यय हो। धयन्ति ब स्तन्यार्थिनो यां सा, धात्री (स्त्रैण० ७०) उपमाता० दधति वा भैषज्यार्थं यां धात्री। आमलकी। औरां का नाम है॥१३१२॥

१३१३—दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे॥ अ०॥ ३। २। १८२॥

करण कारक में दाप् आदि धातुओं से ष्ट्रन् प्रत्यय हो [दाप्] लवने दात्यनेन, दात्रम् [णीञ्] प्रापणे नयत्यनेन, व्यवहारानिति, नेत्रम् [शसु] हिंसायाम्। शस्त्रम् [यु] मिश्रणेऽमिश्रणे च। योत्रम् [युजिर्] योगे। योक्त्रम् [ष्टुञ्] स्तुतौ स्तोत्रम् [तुद] व्यथने। तोत्रम् [षिञ्] बन्धने। सेत्रम् [षिचिर्] क्षरणे। सेक्त्रम् [मिह] सेचने। मेढ्रम् [पत्लृ] गतौ। पतति गच्छत्यनेनेति, पत्रं वाहनम् [दंश] दशने दंष्ट्रा (स्त्रै०२) अनुनासिक लोप के साथ जो दंश का निर्देश है सो यह ज्ञापक के लिये है अर्थात् नलोप जिन के परे (३०३) कहा है उन से अन्यत्र भी होता है इस से 'दशनम्' यहां ल्युट् के परे भी होता है [णह] बन्धने नद्ध्रम्॥१३१३॥

१३१४—हलसूकरयोः पुवः॥ अ०॥ ३। २। १८३॥

करण कारक में पूङ् धातु से ष्ट्रन् प्रत्यय हो। जो वह करण हल और सूकर का अवयव हो। पवते पुनाति वानेन तत् पोत्रम्। हलमुखं सूकरमुखं वा॥१३१४॥

१३१५—अर्त्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः॥ अ०॥ ३। २। १८४॥

करण कारक में ऋ आदि धातुओं से इत्र प्रत्यय हो [ऋ] गतौ। अरित्रम्

(लूञ्] छेदने। लवित्रम् [धू] विधूनने। धवित्रम् [षू] प्रेरणे। सवित्रम् [खनु] अवदारणे खनित्रम् [षह] मर्षणे। सहित्रम् [चर] गतिभक्षणयोः। चरित्रम्॥१३१५॥

१३१६—पुवः संज्ञायाम्॥ अ० ॥३।२।१८५॥

करण कारक में पूङ् वा पूञ् धातु से इत्र प्रत्यय हो जो समुदाय से संज्ञा गम्यमान हो तो। पवित्रम्। कुश वा ग्रन्थियुक्त कुश (पैंती) आदि को कहते हैं॥१३१६॥

१३१७—कर्त्तरि चर्षिदेवतयोः॥ अ० ॥३।२।१८६॥

ऋषि और देवता वाच्य संज्ञा होतो करण वा कर्त्ता कारक में पूङ् वा पूञ् धातु से इत्र प्रत्यय हो। यहां यथासंख्य ऋषि, देवता से संबन्ध है अर्थात् ऋषि वाच्य हो तो करण में और देवता वाच्य हो तो कर्त्ता में (इत्र) होता है। पूयतेऽनेनेति, पवित्रोयमृषिर्वेदः। अग्निः पवित्रं स मा पुनातु॥१३१७॥

१३१८—उणादयो बहुलम्॥ अ० ॥३।३।१॥

वर्त्तमानकाल और संज्ञाविषय में धातु से उण् आदि प्रत्यय बहुल करके हों। डुकृञ्, करोतीति, कारुः। शिल्पी का नाम है। वा, वातीति वायुः। पवनः। इत्यादि। प्रकृति प्रत्यय के अनुसार उणादिगणस्थ उदाहरण जानने चाहिये। बहुलग्रहण से कहे हुए कारक आदि के नियम से अन्यत्र भी शिष्ट प्रयोग के अनुसार प्रकृति प्रत्यय की कल्पना से उणादिगण के प्रयोगों से और भी प्रयोग बनते हैं। इस विषय में महाभाष्यकार ने कहा है कि—

का०—बाहुलकं प्रकृतेस्तनुदृष्टेः प्रायसमुच्चयनादपि तेषाम्।
कार्यसशेषविधेश्च तदुक्तं नैगमरूढिभवं हि सुसाधु॥१॥
नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम्।
यन्न पदार्थविशेषसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम्॥२॥
संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे।
कार्याद्विद्यादनुबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु॥३॥

उक्त सूत्र में प्रकृतियों को (तनुदृष्टि) लघुता देखने से बाहुल * का (बहुल शब्द से बहुत अर्थों का) ग्रहण तथा उन उण् आदि प्रत्ययों का भी प्राय † (बहुल

* बहुलग्रहण से यह समझना चाहिये कि जो उणादिगण में अपठित प्रकृति हैं उन से भी उणादि प्रत्यय होते हैं जैसे दृप धातु से उलच् प्रत्यय कहा है वह (शकि) शंकायाम् से भी होता है "शङ्कुला"।

† बहुलवचन से यह समझना चाहिये कि जो उणादिगण में प्रत्यय न कहे हैं वे भी होते हैं जैसे महाभाष्यकार ने (ऋतक्) सूत्रके भाष्य में ऋ धातु से फिड, फिड्ड प्रत्यय मान कर "ऋफिडः, ऋफिड्डः" प्रयोग दिखाये हैं

करके) समुच्चय (समूह) किया है अर्थात् उणादिगण में वे प्रत्यय भी निःशेष नहीं पढ़े हैं और कार्य्यों की सशेषविधि * (उणादिगण के सूत्रों में असमस्तकार्य्य कहे किन्तु निःशेष नहीं कहे) देखने से यह बहुल शब्द पढ़ा है तथापि वैदिक और रूढिभव (संज्ञा वाचक) शब्द अच्छे प्रकार सिद्ध करने ही हैं इस से पाणिनि आचार्य्य ने प्रकृतियों की लघुता देख कर बहुल शब्द पढ़ा है इस विषय में और आचार्यों का ऐसा सिद्धान्त है कि वे प्रकृत्यादिविभाग से शब्दों का साधन मानते हैं किन्तु रूढ़िप्रकार से नहीं मानते जैसे— ॥ १ ॥

(नाम च) निरुक्तकार निरुक्तग्रंथ में शब्दों को धातुज अर्थात् प्रकृतिप्रत्यय के विभाग से कहते और व्याकरणविषय में शकट ऋषि के तोक अपत्य (शाकटायन) वैयाकरण शब्दों को धातुज कहते हैं इस से जो विशेष † प्रकृतिप्रत्यय के विभाग से न जाना जाय वह प्रकृति और प्रत्यय से कल्पनीय है अर्थात् उस की सिद्धि के लिये प्रकृति को देखकर उस के कार्य के अनुसार प्रत्यय और प्रत्यय को देखकर प्रकृति की कल्पना करनी चाहिये। यह कल्पना सर्वत्र नहीं होती किन्तु ॥ २ ॥

(संज्ञासु०) संज्ञा आदि शब्दों में धातुरूप और उन धातुओं से परे प्रत्यय तथा वृद्धि, गुण, उदात्तस्वर आदि कार्य्य के अनुसार प्रत्ययों के अनुबन्ध जानना चाहिये। उणादिकों में यही शिक्षा करने योग्य है ॥ ३ ॥ १३१८ ॥

१३१९—भूतेऽपि दृश्यन्ते ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २ ॥

भूतकाल में भी उण् आदि प्रत्यय देखे जाते हैं। जैसे वृत्तमिदं वर्त्म। चरितमिति। चर्म। जो वर्त्त गया। और जाना गया वा चरित होगया वह वृत्त और चर्म कहाता है। यहां वृतु और चर से भूतकाल में उणादिगणस्थ मनिन् प्रत्यय होता है ॥१३१९॥

१३२०—भविष्यति गम्यादयः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३ ॥

भविष्यत्काल में (गमिन्) आदि उणादिप्रत्ययान्त शब्द देखे जाते हैं। ग्रामं गमी। यहां गम्लृ से उणादिस्थ इनि प्रत्यय भविष्यत्काल में होता है ॥ १३२० ॥

१३२१—वा०—भविष्यतीत्यनद्यतन उपसंख्यानम् ॥

भविष्यत्काल में गम्यादिकों के विधान में अनद्यतन का भी उपसंख्यान करना चाहिये। श्वो ग्रामं गमी। कल के दिन ग्राम को जाने वाला है ॥ १३२१ ॥

* उणादिगण में अनुक्त कार्य्य हैं वे भी बहुलवचन से होते हैं जैसे "दस्र:" यहां दस धातु के मूर्द्धन्य ष के सत्वादेश का अभाव वा सत्वादेश करके मूर्द्धन्यादेश हो जाता है।

† विशिष्यते य: सो विशेष:' पदमर्थ: प्रयोजनं यस्य व्युत्पादनेन स पदार्थ: विशेषश्चासौ पदार्थो विशेषपदार्थस्स स्याद् यत्र समुत्थं विशिष्टप्रकृतिप्रत्ययोत्पादनेन न व्युत्पादितमिति यावत्।

१३२२—दाश्गोघ्नौ संप्रदाने ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७३ ॥

दाश और गोघ्न ये उणादिप्रत्ययान्त शब्द संप्रदान कारक में निपातन हैं। दाशन्ति—यच्छन्ति यस्मै स दाशः। गौर्हन्यते यस्मै स गोघ्नः ॥ १३२२ ॥

१३२३—भीमादयोऽपादाने ॥ ३ । ४ । ७४ ॥

भीम आदि उणादिप्रत्ययान्त शब्द अपादान कारक में जानने चाहिये। बिभेत्यस्मादिति भीमः। भीष्मः इत्यादि ॥ १३२३ ॥

१३२४—ताभ्यामन्यत्रोणादयः॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७५ ॥

संप्रदान अपादान से अन्यत्र अर्थात् और कारकों में उण् आदि प्रत्यय हों। जि, जयतीति, जायुः इत्यादि ॥ १३२४ ॥

१३२५—तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १० ॥

क्रियार्था क्रिया उपपद होतो भविष्यत्काल में धातु से तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय हो (भुज+तुमुन्+सु+गच्छति—) यहां तुमुन् के (उ,न्,) इन को इत् संज्ञा और लोप होकर ॥ १३२५ ॥

१३२६—कृन्मेजन्तः॥ अ० ॥ १ । १ । ३९ ॥

मान्त और एजन्त जो कृत् प्रत्यय तदन्त जो शब्द सो अव्यय संज्ञक हों। इस से अव्यय संज्ञा हो जाती है। भोक्तुं गच्छति। पठितुं गच्छति। सभां द्रष्टुं गच्छति। यहां (१३२५) सूत्र में जो ण्वुल् प्रत्यय का ग्रहण किया है इस से जानना चाहिये कि तुमुन् के विषय में वासरूप विधि से तृजादिक नहीं होते हैं क्योंकि जो तृजादिक होते तो वासरूपविधि से ण्वुल् (८७४) हो ही जाता ॥ १३२६ ॥

१३२७—समानकर्तृकेषु तुमुन् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५८ ॥

इच्छा अर्थवाले समानकर्तृक धातु समीपवर्ती हों तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो। इच्छति भोक्तुम्। कामयते भोक्तुम्। भोक्तुं वाञ्छति। समानकर्तृकग्रहण से यहां न हुआ। पठन्तं देवदत्तमिच्छति विष्णुमित्रः। अक्रियार्थोपपद के लिये यह सूत्र है। इच्छत्येवं भोक्तुम्। इस से यहां भी तुमुन् होता है॥ १३२७ ॥

१३२८—शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६५ ॥

शक आदि धातु उपपद हों तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो। शक्लृ, शक्नोति भोक्तुम्। ञिधृषा, धृष्णोति भोक्तुम्। ज्ञा, जानाति भोक्तुम्। ग्लै, ग्लायति भोक्तुम्। घट, घटते भोक्तुम्। रभ, भोक्तुमारभते। लभ, लभते भोक्तुम्। क्रम, भोक्तुं क्रमते।

सह, भोक्तुम् सहते । अर्ह, भोक्तुमर्हति । अस्त्यर्थ—अस, भू, विद । भोक्तुमस्ति । भोक्तुम् भवति । विद्यते भोक्तुम् । यह भी अक्रियार्थोपपद के लिये सूत्र है । प्रकल्पमेवं भोक्तुम् । यहां भी तुमुन् होता है ॥ १३२८ ॥

१३२९—पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु ॥ अ० । ३ । ४ । ६६ ॥

परिपूर्णता को कहने वाले अलमर्थ (सामर्थ्यवचन) उपपद हों तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो । पर्याप्तो भोक्तुम् । अलम्भोक्तुम् भोक्तुम् पारयति । भोक्तुं कुशलः । पर्याप्तिवचनग्रहण से यहां न हुआ । अलं कृत्वा । अलमर्थग्रहण से यहां न हुआ पर्याप्तम् भुङ्क्ते । यहां भोजन करने वाले की प्रभुता गम्यमान है ॥ १३२९ ॥

१३३०—कालसमयवेलासु तुमुन् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६७ ॥

काल, समय, और वेला ये शब्द उपपद हों तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो । कालो भोक्तुम् । भोक्तुं वेला । भोक्तुं समयः । यहां अष्टाध्यायी के क्रम से (७८९) सूत्र में से प्रैष,अतिसर्ग,प्राप्तकाल इन अर्थों का भी संबंधानुवर्तन है अर्थात् प्रैषादि अर्थों के ही विषय में यह तुमुन् होता है । इस से यहां न हुआ । कालः पचति भूतानि कालः संहरति प्रजाः ॥ १३३० ॥

१३३१—भाववचनाश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११ ॥

क्रियार्था क्रिया उपपद हो तो धातु से भविष्यत्काल में भाववचन (भावाधिकार १३३२ विहित) घञ् आदि प्रत्यय हों । यागाय याति । पाठाय गच्छति । पुष्टये प्रयतते । यज्ञ करने को वा पढ़ने को याता और पुष्टि के लिये उत्तम यत्न करता है । यहां कर्म में चतुर्थी (कारकीय६१) से होती है । वचनग्रहण इस लिये है कि जिस २ प्रकृति और नियम से जो २ प्रत्यय भावाधिकार में कहा है वह२ इस विषय में उन्हीं नियमों से हो।यद्यपि सामान्यविहित भाववचन क्रियार्थाक्रिया के विषय में होजाते परन्तु यहां वासरूपविधि के न होने से क्रियार्थोपपद विषयक तुमुन् के बाधने से नहीं होते हैं इस लिये यह (१३३१) सूत्र कहा ॥ १३३१॥

१३३२—अण् कर्मणि च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२ ॥

क्रियार्थाक्रिया और कर्म उपपद हो तो धातु से भविष्यत् काल में अण् प्रत्यय हो । यहां चकार कर्मसन्नियोग के लिये है अर्थात् यहां कर्म और क्रियार्थाक्रिया साथ रहें वहां यह अण् हो । काण्डानि लवितुं गच्छति, काण्डलावो गच्छति । अश्वं दातुं व्रजति, अश्वदायो व्रजति । परत्व से यह कादिकों (१००१) को बाधता है ॥ १३३२ ॥

१३३३—पदरुजविशस्पृशो घञ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६ ॥

पद आदि धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । यहां से तीनों काल में प्रत्यय होते हैं किन्तु भविष्यत्काल की निवृत्ति है । पद्यतेऽसौ पादः । रुजत्यसौ रोगः । विशत्यसौ वेशः । इसी प्रकार पत्स्यते,अपादि वा पादः । इत्यादि जानना चाहिये ॥ १३३३॥

१३३४—वा०—स्पृश उपतापे ॥

उक्त घञ् प्रत्यय स्पृश धातु से उपताप अर्थ में हो यह कहना चाहिये । स्पृशतीति,स्पर्श उपतापः । कष्ट कहाता है उपतापग्रहण से यहां न हुआ । कम्बलस्य स्पर्शः कम्बलस्पर्शः यहां पचाद्यच् (८७५) हो जाता है ॥ १३३४ ॥

१३३५—सृ स्थिरे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७ ॥

सृ धातु से स्थिर कर्त्ता में घञ् प्रत्यय हो । स्थिर शब्द से चिरकालस्थायी का ग्रहण है । यश्चिरं तिष्ठन् कालान्तरं सरति प्राप्नोति, स सारः । जो चिरकाल ठहरा हुआ कालान्तर को प्राप्त होता है वह सार कहाता है । स्थिरग्रहण से यहां न हुआ । सर्त्ता सारकः (८७४) ॥ १३३५ ॥

१३३६ - वा०—व्याधिमत्स्यबलेष्विति वक्तव्यम् ॥

व्याधि,मत्स्य और बल अर्थ में सृ धातु से घञ् प्रत्यय कहना चाहिये । अत्यन्तं सरति, अतिसारो व्याधिः । विविधं सरति, इतस्ततो जलेऽटति, विसारो मत्स्यः । शाल इव सरति, शालसारः । खदिरसारः । बलम् ॥ १३३६ ॥

१३३७—भावे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १८ ॥

भाव वाच्य हो तो धातु से घञ् प्रत्यय हो । यहां यह जानना चाहिये कि क्रियासामान्यवाची भू धातु है इस से अर्थ निर्देश किया हुआ सर्वधातुविषयक होता है । भाव अर्थात् धात्वर्थ सो भी धातु से ही कहा जायगा इस लिये धातु के सिद्ध प्रयोग से जो धात्वर्थ निष्पन्न होता है वह वाच्य होतो घञ् होता है जैसे । कारः । हारः । इत्यादि ॥ १३३७ ॥

१३३८—स्फुरतिस्फुलत्योर्घञि ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४७ ॥

घञ् प्रत्यय परे होतो स्फुर,स्फुल इन धातुओं की एच् के स्थान में आकारादेश हो । स्फारः । स्फालः ॥ १३३८ ॥

१३३९—इकः काशे ॥ अ० ॥ ६ । ३ । १२३ ॥

काश उत्तरपद परे हो तो इगन्त ही उपसर्ग को दीर्घादेश हो । नीकाशः । अनूकाशः । यहां [काशृ] दीप्तौ धातु से घञ् हुआ है । इगन्त ग्रहण से यहां दीर्घ नहीं होता । प्रकाशः ॥ १३३९ ॥

१३४०—स्यदो जवे ॥ अ० ॥ ६। ४। २८ ॥

घञ् प्रत्यय परे हो और जव (वेग) अभिधेय हो तो स्यद, यह निपातन है। गोस्यदः। यहां [स्यन्दू] प्रस्रवणे। धातु से घञ् प्रत्यय, नलोप और वृद्धि (१२६) का अभाव निपातन है। जव ग्रहण से। घृतस्यन्दः। यहां नलोप नहीं होता ॥१३४०॥

१३४१—अवोदैधौद्मप्रश्रथहिमश्रथाः ॥ अ० ॥ ६। ४। २४ ॥

नलोपविषय में अवोद, एध, ओद्म, प्रश्रथ, हिमश्रथ, ये निपातन हैं। अवोदः। यहां अवपूर्वक [उन्दी] क्लेदने धातु से घञ् प्रत्यय के परे नलोप निपातन है। एधः। यहां [ञिइन्धी] दीप्तौ से घञ् प्रत्यय के परे नलोप और गुणादेश निपातन है। अन्यथा (५५२) सूत्र से गुणप्रतिषेध प्राप्त है। ओद्मः। यहां [उन्दी] धातु का नलोप और गुणादेश उणादिगणस्थ मन् प्रत्यय के परे निपातन है। प्रश्रथः। यहां श्रन्थ धातु के नकार का लोप और वृद्धि का न होना निपातन है। इसी प्रकार हिमपूर्वक श्रन्थ से। हिमश्रथः। सिद्ध होता है ॥ १३४१ ॥

१३४२—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३। ३। १९ ॥

कर्त्तृभिन्न कारक में भी संज्ञाविषय में घञ् प्रत्यय हो। प्रसीव्यत इति प्रसेवः। आहरन्ति रसं यस्मात्स आहारः। अकर्त्तृग्रहण से यहां न हुआ [मिष] स्पर्द्धायाम् मिषत्यसौ, मेषः। मेढ़ा का नाम है यहां अच् होजाता है। संज्ञाग्रहण से यहां न हुआ। कर्त्तव्यः कटः। गन्तव्यो मार्गः। संज्ञा से अन्यत्र भी घञ् होने के लिये चकार है इस से यहां भी होता है। को लाभो भवता लब्धः ॥ १३४२ ॥

१३४३—घञि च भावकरणयोः ॥ अ०॥ ६। ४। २७॥

भावकरणवाची घञ् प्रत्यय परे हो तो रञ्ज धातु के उपधा नकार का लोप हो। भाव में। रञ्जनं रागः। करण में रज्यतेऽनेनेति, रागः। भावकरणग्रहण से यहां नलोप न०। रजन्त्यस्मिन्निति रङ्गः। यहांसे आगे अष्टाध्यायीकेक्रममें (कृत्यल्युटो बहुलम्) सूत्र पर्य्यन्त (भावे, अकर्त्तरि, कारके) इन पदों का अधिकार है ॥१३४३॥

१३४४—परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः ॥ अ० ॥ ३। ३। २० ॥

परिमाण का कथन हो तो सब धातुओं से घञ् प्रत्यय हो। चिञ्, एकस्तण्डुलनिचायः। तण्डुलानां निचायस्तण्डुलनिचायः*। पूञ्, द्वौ शूर्पनिष्पावौ [कॄ] विक्षेपे। द्वौ कारौ। त्रयः काराः। परिमाणाख्या ग्रहण से यहां न हुआ। निश्चयः ॥१३४४॥

* यह चावलों की ढेरी अर्थात् मन आदि परिमाण से पूर्ण है। जो शूर्प से निरन्तर शुद्ध किया जाय वह शूर्पनिष्पाव कहाता। दो शूर्पनिष्पाव अर्थात् दो वार से शूप से जितना शुद्ध हो सके उतना धान्य है। दो कार अर्थात् दो वार शूर्प आदि से फिराजाय उतना धान्य है।

१३४५—वा०—दारजारौ कर्त्तरि णिलुक् च ॥

दार, जार ये दोनों प्रयोग कर्त्ता में कहने चाहिये और इन के विषय में णिच् प्रत्यय का लुक् भी कहना चाहिये [दॄ] विदारणे। दारयन्तीति, दाराः [जॄष्) वयोहानौ जारयन्तीति जाराः ॥ १३४५ ॥

१३४६—वा०—करणे वा ॥

अथवा करण कारक में दार जार शब्द कहने चाहिये। इस पक्ष में णिलुक् नहीं है। दीर्य्यन्ते तैर्दाराः। जीर्यन्ति तैर्जाराः ॥ १३४६ ॥

१३४७—इङश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २१ ॥

इङ् धातु से घञ् प्रत्यय हो। यह वक्ष्यमाण अच् का अपवाद है। उपेत्यस्मादधीत इत्युपाध्यायः। यहां [इङ्] धातु से अपादान में घञ् प्रत्यय है ॥ १३४७ ॥

१३४८—वा०—इङश्चेत्यपादाने स्त्रियामुपसंख्यानं तदन्ताच्च वा ङीष् ॥

(इङश्च) इस विषय में स्त्रीलिङ्ग में घञ् प्रत्यय का उपसंख्यान करना और उस घञ् प्रत्यय से विकल्प करके ङीष् प्रत्यय कहना चाहिये। उपेत्याधीयतेऽस्या उपाध्यायी, उपाध्याया (स्त्रै० ८९) ॥ १३४८ ॥

१३४९—वा०—शॄ वायुवर्णनिवृतेषु ॥

(शॄ) इस धातु से वायु, वर्ण निवृत (आवरण—आच्छादन) इन अर्थों में घञ् प्रत्यय कहना चाहिये (शॄ) हिंसायाम्। शृणात्यनेनेति शारो वायुः। करण में घञ् है। शीर्य्यते चित्रीक्रियतेऽनेनेति, शारो वर्णः। गौरिवाकृतनीशारः प्रायेण शिशिरे कृशः। निशीर्य्यते निव्रियते आच्छाद्यतेऽनेनेति, नीशारः। निवृतम्। (अकृतनीशारः) जिस ने छप्पर आदि नहीं छवाया वह पुरुष प्राय करके शिशिर ऋतु में गौ के तुल्य दुबला हो जाता है ॥ १३४९ ॥

१३५०—उपसर्गे रुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २२ ॥

उपसर्ग उपपद हो तो रु धातु से घञ् प्रत्यय हो। संरावः। उपसर्गग्रहण से यहां न हुआ। रवः। यहां (१२८९) अप् हो जाता है ॥ १३५० ॥

१३५१—समि युद्रुदुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २३ ॥

सम् उपपद हो तो यु, द्रु, दु इन इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो। संयूयते मिश्रीक्रियते गुडादिभिरिति संयावः। मीठी पूड़ी आदि का नाम है। सन्द्रावः। सन्दावः ॥ १३५१ ॥

१३५२—श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २४ ॥

उपसर्ग उपपद न हो तो श्रि,णी,भू इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । श्रायः । नायः । भावः । उपसर्गनिषेध से यहां न हुआ । प्रश्रयः । प्रणयः । प्रभवः (प्रभावः) यह तो प्रादिसमास से होता है तथा (नयः पृथिवीपतेः) यह कृत् संज्ञकों के बहुलभाव से होता है ॥ १३५२ ॥

१३५३—वौ क्षुश्रुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २५ ॥

वि उपपद हो तो क्षु,श्रु इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । विक्षावः । विश्रावः । वि ग्रहण से यहां न हुआ । क्षवः । श्रवः ॥ १३५३ ॥

१३५४--अवोदोर्नियः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २६ ॥

अव, उद् ये उपसर्ग उपपद हों तो नी धातु से घञ् प्रत्यय हो । अवनायः । नीचे को पहुंचाना । उन्नायः । ऊपर को पहुंचाना ॥ १३५४ ॥

१३५५—प्रे द्रुस्तुस्रुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २७ ॥

प्र उपपद हो तो द्रु, स्तु, स्रु इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । प्रद्रावः । प्रस्तावः । प्रस्रावः । प्रग्रहण से यहां न० । द्रवः । स्तवः । स्रवः । यहां वक्ष्यमाण अप् (१३८९) हो जाता है ॥ १३५५ ॥

१३५६—निरभ्योः पूल्वोः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २८ ॥

निर् अभि ये यथासंख्य उपपद हों तो पू ल्, इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । [पू] यह सामान्य [पूङ् पूञ्] दोनों का ग्रहण है । निर्—पू, निष्पूयते शूर्पादिभिर्यः स, निष्पावः । यह किसी धान्यविशेष का नाम है । अभिलावः ॥ १३५६ ॥

१३५७—उन्न्योर्ग्रः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २९ ॥

उद् और नि उपपद हो तो गॄ धातु से घञ् प्रत्यय हो [गॄ] शब्दे [गॄ] निगरणे । उद्+गॄ, उद्गारः समुद्रस्य । नि +गॄ, निगारो मनुष्याणाम् । उद्, नि ग्रहण से यहां न हुआ । गरः । अप् (१३८९) हो जाता है ॥ १३५७ ॥

१३५८—कॄ धान्ये ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३० ॥

धान्य अर्थ में वर्तमान जो उद् नि पूर्वक कॄ धातु उस से घञ् प्रत्यय हो [कॄ] विक्षेपे । उत्कारो निकारो वा धान्यस्य । धान्य का ऊपर को किराना वा एक तार किराना । धान्य से अन्यत्र भैक्ष्योत्करः । पुष्पनिकरः । फूलों का समूह ॥ १३५८ ॥

१३५९—यज्ञे समि स्तुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३१ ॥

यज्ञ अर्थ में सम् पूर्वक स्तु धातु से घञ् प्रत्यय हो । समेत्य स्तुवन्ति छन्दोगा यस्मिन् देशे स देशः संस्तावः । यहां अधिकरण में घञ् प्रत्यय है । यज्ञ से अन्यत्र संस्तवः । परिचय है ॥ १३५९ ॥

१३६०—प्रे स्त्रोऽयज्ञे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३२ ॥

प्र उपपद हो तो यज्ञभिन्न अर्थ में स्तॄञ् धातु से घञ्प्रत्यय हो [स्तॄञ्] आच्छादने । छन्दसां प्रस्तारः । मणिप्रस्तारः । अयज्ञग्रहण से यहां न हुआ । बर्हिषः प्रस्तरः । कुशों की मूढी ॥ १३६० ॥

१३६१—प्रथने वावशब्दे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३३ ॥

अशब्दविषयक प्रथन (विस्तीर्णता) गम्यमान हो और वि उपपद हो तो स्तॄञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो । पटस्य विस्तारः । प्रथन ग्रहण से यहां न० । अयं तृणविस्तरः । यह तृण अर्थात् कुश आदि का बिछावना है । अशब्दग्रहण से यहां न हुआ । वचसां विस्तरः । ग्रन्थविस्तरः । इन में अगला अप् प्रत्यय (१२८९) हो जाता है ॥ १३६१ ॥

१३६२—छन्दोनाम्नि च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३४ ॥

छन्दोनाम वाच्य हो तो विपूर्वकस्तॄञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो । यहां छन्दस् शब्द से गायत्री आदि छन्दों का ग्रहण है विस्तीर्यन्तेऽस्मिन्नक्षराणि, विष्टारः विष्टारं च तत् पङ्क्तिश्छन्दः विष्टारपंक्तिश्छन्दः । विष्टारबृहती छन्दः । यहां (८४०) सूत्र षत्व० ॥ १३६२ ॥

१३६३—उदि ग्रहः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३५ ॥

उद् उपपद हो तो ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय हो । उद्ग्राहः ॥ १३६३ ॥

१३६४—वा०—उद्ग्राभनिग्राभौ च छन्दसि स्रुगुद्यमननिपातनयोः

स्रुच् (हवन करने के पात्र) का उठाना, धरना अर्थ हो तो उद्ग्राभ, निग्राभ ये निपातन हैं । यहां उद् नि पूर्वक ग्रह धातु से भाव में घञ् और उस के हकार को भकार आदेश हुआ है ॥ १३६४ ॥

१३६५—समि मुष्टौ ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३६ ॥

सम् उपपद हो तो मुष्टिविषयक (पञ्जा लड़ाने) अर्थ में ग्रहधातु से घञ् प्रत्यय हो । अहो मल्लस्य संग्राहः । अहो मुष्टिकस्य संग्राहः । मुष्टिग्रहण से यहां न हुआ । द्रव्यस्य संग्रहः ॥ १३६५ ॥

१३६६—परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३७ ॥

द्यूत अर्थ में परिपूर्वक णीञ् और अभ्रेष (उचित करने) अर्थ में निपूर्वक इण् धातु से घञ् प्रत्यय हो । द्यूत, परिणयनं, परिणायः । परिणायेन शारान् हंति सब ओर से एक फेर से पाशाओं को छीनता झपटता है । अभ्रेष, एषोऽत्र न्यायः । द्यूताभ्रेष से अन्यत्र । परिणयो विवाहः । न्ययो नाशः ॥ १३६६ ॥

१३६७—परावनुपात्यय इणः ॥ अ० । ३ । ३ । ३८ ॥

अनुपात्यय अर्थ में परिपूर्वक इण् धातु से घञ् प्रत्यय हो । तव पर्य्यायः । मम पर्य्यायः । अनुपात्ययग्रहण से यहां न हुआ । कालस्य पर्ययः । काल का व्यतीत होना ॥ १३६७ ॥

१३६८—व्युपयोः शेतेः पर्याये ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३९ ॥

पर्याय गम्यमान हो तो वि, उप पूर्वक शीङ् धातु से घञ् प्रत्यय हो । तव विशायः । तुम्हारा जागना । मम विशायः । मेरा जागना । तव राजोपशायः । तुम्हारा राजा के समीप सोना । मम राजोपशायः । मेरा राजा के समीप सोना । पर्यायग्रहणसे यहां न हुआ विशयः । उपशयः ॥ १३६८ ॥

१३६९—हस्तादाने चेरस्तेये ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४० ॥

धरतेय चोरी से अन्यत्र जो हाथ से ग्रहण करना उस अर्थ में चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो । पुष्पप्रचायः । फलप्रचायः । पुष्प, फलों का हाथ से इकट्ठा करना । हस्तादान से अन्यत्र । वृक्षेण फलसंचयं करोति । यहां घञ् नहीं होता धस्तेयग्रहण से यहां नहीं होता । चौर्येण फलप्रचयः । ॥ १३६९ ॥

१३७०—निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४१ ॥

निवास (अच्छे प्रकार जिस में बसें) चिति (जो चिनीजाना) शरीर, उपसमाधान (ढेर लगाना) इन अर्थों में चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय और धातु के आदि चकार को ककार आदेश हो । निवास, निवसन्त्यस्मिन्निति, निकायः । कश्मीरनिकायः । चिति, आचीयतेऽसावित्याकायः । जो अच्छे प्रकार चिना जाय वह आकाय कहिये । आकायमग्निं चिन्वीत । शरीर । चीयतेऽस्मिन् सक्थ्यादिकमिति कायः । उपसमाधान, धान्यनिकायः ॥ १३७० ॥

१३७१—संघे चानौत्तराधर्य्ये ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४२ ॥

अनौत्तराधर्य्य (ऊपर नीचे न होना) विषयक जो संघ (प्राणियों का एकत्र होना) उस अर्थ में चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय और उस के आदिभूत चकार को

का आदेश हो । ब्राह्मणनिकायः । भिक्षुनिकायः । वैयाकरणनिकायः । अनौत्तराधर्य ग्रहण से यहां न हुआ । सूकरनिकायः। प्रायः सूकर सोते हुए एक दूसरे के ऊपर भी हो रहते हैं । प्राणिविषयकसंघ लेने से यहां न०। परिहारसमुच्चयः ॥१२७१॥

१२७२—कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४३॥

कर्मव्यतिहार (क्रियाका परस्पर होना) गम्यमान हो तो स्त्रीलिङ्ग में धातु से णच् प्रत्यय हो । यह भाव में होता है (वि+अव+क्रुश्+णच्) यहां (स्त्रै०८२२) सूत्र से स्वार्थ में तद्धित अञ् प्रत्यय होकर (व्यवक्रुश्+अ+अ=) इस अवस्था में (स्त्रै०८१८) सूत्र से ऐच् प्राप्त हुआ उस का (स्त्रै० ८२२) निषेध हो कर (स्त्रै० १६७) सूत्र से वृद्धि तथा (स्त्रै० २५) सूत्र से ङीष् प्रत्यय हो जाता है। व्यावक्रोशी । व्यावहासी । स्त्रीग्रहण से यहां न हुआ । व्यतिपाको वर्त्तते । कर्मव्यतिहार से अन्यत्र । क्रोशो वर्त्तते ॥ १२७२ ॥

१२७३—अभिविधौ भाव इनुण् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४४ ॥

अभिविधि (अभिव्याप्ति अर्थात् क्रिया और गुणों से परिपूर्ण सम्बन्ध) अर्थ हो तो धातु से भाव में इनुण् प्रत्यय हो । समन्तात् रवणं, समन्तात् स्रवत इति वा सांराविणम् । यहां सम्पूर्वक [रु] धातु से इनुण् और उस के परे धातु को वृद्धि (६०) तदनन्तर (संराविन्) शब्द से स्वार्थ में अण् और अण् के परे आदि अच् को (स्त्रै०१६७) वृद्धि और अण् के पूर्व को प्रकृतिभाव (८०१) सूत्र से हो जाता है । सांराविणं वर्त्तते । अभिविधिग्रहण से यहां न हुआ । संरावः । संद्रावः । इत्यादिकों में घञ् हो जाता है । भाव वर्त्तमान था फिर भाव इस लिये है कि वासरूपविधि से अभिविधिविषयक भाव में घञ् न हो परन्तु वक्ष्यमाण ल्युट् प्रत्यय तो होता है ॥ १२७३ ॥

१२७४—आक्रोशेऽवन्योर्ग्रहः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४५ ॥

आक्रोश (अच्छे प्रकार शापना) अर्थ गम्यमान हो तो अव, नि पूर्वक ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय हो । अवग्राहो हन्त ते भूयात् । निग्राहो हन्त ते वृषल भूयात् । आक्रोशग्रहण से यहां न हो । अवग्रहः पदस्य । पद का विग्रह निग्रहश्चोरस्य । चोर का बान्धना ॥ १२७४ ॥

१२७५—प्रे लिप्सायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४६ ॥

लाभ की इच्छा गम्यमान हो तो प्रपूर्वक ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय हो । पात्र प्रग्राहेण चरति भिक्षुः । लिप्सा ग्रहण से यहां न हुआ । प्रग्रहः पात्राणाम् ॥१२७५॥

१३७६—परौ यज्ञे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४७ ॥

परि उपसर्ग उपपद हो तो ग्रह धातु से यज्ञ अर्थ में घञ् प्रत्यय हो । उत्तर परिग्राहः । स्फ्यनवेदिरेभवति । यज्ञ से अन्यत्र । परिग्रहो देवदत्तस्य ॥ १३७६ ॥

१३७७—नौ वृ धान्ये ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४८ ॥

धान्य अभिधेय हो और नि उपसर्ग उपपद हो तो वृञ् वा वृङ् धातु से घञ् प्रत्यय हो । नीवाराः । तोइयः । यहां (उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्) इस सूत्र से नि को दीर्घ होगया धान्य से अन्यत्र (निवरा कन्या) यहां अगला अप् (१३८८) प्रत्यय हो जाता है ॥ १३७७ ॥

१३७८—उदि श्रयतियौतिपूद्रुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४९ ॥

उद् उपपद होतो श्रिञ् यु पू द्रु इन धातुओं से घञ्प्रत्यय हो । श्रिञ्, उच्छ्रायः । यु, उद्यावः । पूञ्—पूङ्, उत्पावः । द्रु, उद्द्रावः ॥ १३७८ ॥

१३७९—विभाषाऽऽङि रुप्लुवोः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५० ॥

आङ् उपपद होतो रु और प्लु धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो । आरावः । आरवः । आप्लावः । आप्लवः ॥ १३७९ ॥

१३८०—अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५१ ॥

वर्षा का प्रतिबन्ध अभिधेय हो और अवउपपद हो तो ग्रह धातुसे विकल्प कर के घञ् प्रत्यय हो । अपने समय में हो रही जो वर्षा है उस का किसी कारण से जो अभाव होना उस को वर्षप्रतिबन्ध कहते हैं । अवग्राहो देवस्य । अवग्रहो देवस्य । वर्ष प्रतिबन्ध ग्रहण से यहां न हुआ । अवग्रहः पदस्य ॥ १३८० ॥

१३८१—प्रे वणिजाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५२ ॥

वणिज्‌ सबंधी प्रत्ययार्थ होतो प्रपूर्वक ग्रहधातु से विकल्प कर के घञ् प्रत्यय हो । तुलाप्रग्राहेण चरति । तुलाप्रग्रहेण वा चरति । यहां वणिक्‌संबंधी तुला सूत्र का ग्रहण है अर्थात् तुला (तखरी—तक आदि) जिस से ग्रहण करी जाय उस सूत्र के साथ चलता है । वणिग्ग्रहण से यहां न हुआ प्रग्रहो धनस्य ॥१३८१॥

१३८२—रश्मौ च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५३ ॥

रश्मि अभिधेय हो और प्रशब्द उपपद होतो ग्रहधातु से विभाषा घञ् प्रत्यय हो । प्रग्रहः । प्रग्राहः । रथ में जुड़े हुये घोड़ों की वागों को कहते हैं ॥ १३८२

१३८३—वृणोतेराच्छादने ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५४ ॥

प्र उपपद होतो वृञ् धातु से आच्छादन अर्थ में घञ् प्रत्यय हो। प्रवारः। प्रवरः। आच्छादनग्रहण से यहां नहुआ। प्रवरा (१३८८) गौः ॥ १३८३ ॥

१३८४—परौ भुवोऽवज्ञाने ॥ अ०॥ ३ । ३ । ५५ ॥

परि उपपद होतो अवज्ञान (तिरस्कार) अर्थ में भू धातु से घञ् प्रत्यय हो। परिभावः। परीभावः (उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्) इस से दीर्घ। परिभवः। अवज्ञान से अन्यत्र। परितः सर्वतो भवनं परिभवः। यहां अप् हो जाता है॥१३८४॥

१३८५—एरच् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५६ ॥

इवर्णान्त धातु से अच् प्रत्यय हो। चिञ् चयः। जि,जयः। चि, चयः। भाव और कर्त्तभिन्न कारक का अधिकार है इस लिये इस प्रकरण के उक्त अनुक्त सब प्रत्यय भाव वा कर्त्तभिन्न कारकों में प्रायः होते हैं ॥ १३८५ ॥

१३८६—वा०—भयादीनामिति वक्तव्यम् ॥

भयादिशब्दों की सिद्धि अच् प्रत्यय से कहना चाहिये। ञिभी, भयम्। वृषु, वर्षम्। नपुंसकलिंग भाव में क्त प्रत्यय कहेंगे उस की निवृत्ति के लिये यह वार्त्तिक है परन्तु (वृषभो वर्षणात्) इस भाष्यवचन से वर्षण शब्द तो भाव में होता ही है ॥ १३८६ ॥

१३८७--वा०—कल्प्यादिभ्यः प्रतिषेधः ॥

कल्पि आदि धातुओं से अच् प्रत्यय का प्रतिषेध कहना चाहिये [कल्पि] यह णिजन्त [क्लृपू] सामर्थ्ये है (क्लृपू+णिच्+घञ्+सु=) कल्पः। अर्घः। मन्त्रः। ये भी णिजन्तों से हैं। णिजन्त सब इवर्णान्त हो जाते हैं इस लिये कल्पि आदि से अच् * प्राप्त था उस के प्रतिषेध में घञ् हो जाता है ॥ १३८७ ॥

१३८८—वा०—जवसवौ छन्दसि वक्तव्यौ ॥

वेदविषय में जव,सव ये अच् प्रत्ययान्त कहने चाहिये [जु] सौत्र धातु है उस से (जु+अच्+सु=) जवः। होता है। जर्वोरसु से जवः। [षु] वा [षू] धातुसे अच् हो कर। सवः। होता है। अयं मे पञ्चौदनः सवः। यह अच् विधान अन्तोदात्त (सौवर ३४) स्वर के लिये है क्यों कि (जवः,सवः) प्रयोग अप् से भी सिद्ध थे ॥ १३८८ ॥

* किन्हीं नवीनपन्था वालों का यह भी सिद्धान्त है कि (एरच्) यह धात्वन्तों से होता है ण्यन्तों से नहीं होता। सो उन का भाष्यविरुद्ध कथन है।

१३८९—ऋदोरप् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५७ ॥

ऋकारान्त और उवर्णान्त धातुओं से अप् प्रत्यय हो । कॄ, करः । शॄ, शरः । यु, यवः । लू, लवः । पू, पवः (ऋदु०) यहां ऋ और उकार का अलग २ उच्चारण होने के लिये ऋकार के साथ निर्देश है किन्तु तपर करण नहीं है ॥ १३८९॥

१३९०—ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५८ ॥

ग्रह, वृ, दृ, निश्चि, गम से अप् प्रत्यय हो । यह घञ् और अच् का अपवाद है । ग्रह, ग्रहः । वृ, वरः । दृ, दरः । निस्+चि, निश्चयः । गम्लृ, गमः ॥१३९०॥

१३९१—वा०—वशिरण्योश्चोपसंख्यानम् ॥

अप् प्रत्यय के विधान में वश और रण धातु को भी गणना करना चाहिये वशनं वशः । सवशं सैन्धवम् । रणऽन्त्यस्मिन्निति,रणः । धनंजयं रणे रणे ॥१३९१॥

१३९२—वा०—घञर्थे कविधानं स्थास्नापाव्यधिहनियुध्यर्थम्॥

स्था, स्ना, पा, व्यध, हन, युध आदि धातुओं के लिये घञर्थ (भाव, कर्त्ता-भिन्न कारक) में क प्रत्यय का विधान करना चाहिये। प्रतिष्ठन्तेस्मिन् धान्यानीति, प्रस्थः । प्रस्थे हि भवतः शृंगे । प्रस्नान्ति अस्मिन्निति प्रस्नः । प्रपिबन्त्यस्यामिति, प्रपा । आविध्यन्ति तेनाविधः । विघ्नन्ति तस्मिन्मनांसि, विघ्नः । आयुध्यन्ते तेना युधम् ॥ १३९२ ॥

१३९३—वा०—द्विर्वचनप्रकरणे कृञादीनां क उपसंख्यानम् ॥

क प्रत्यय के परे द्विर्वचनप्रकरण में कृञ् आदि धातुओं की गणना करना चाहिये।अर्थात् क प्रत्ययके कृञादिकों को द्वित्व हो । यह वार्त्तिक ॥अ०॥६।१।१२। सूत्र के व्याख्यान में पढ़ा है (कृञ्+क+सु=) चक्रम् (क्लिदू+क+सु=) चिक्लिदम् [क्लृदु] चक्नसः (क्नसु+क+सु=) चक्नसः ॥ १३९३ ॥

१३९४—उपसर्गेऽदः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५९ ॥

उपसर्ग उपपद हो तो अद धातु से अप् प्रत्यय हो (प्र+अद+अप्+सु=) इस अवस्था में ॥ १३९४ ॥

१३९५—घञपोश्च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३८ ॥

घञ् और अप् प्रत्यय परे हो तो अद धातु को घस्लृ आदेश हो। घस्लृ आदेश होकर । प्रघसः । जहां उपसर्ग पूर्व न है वहां भी (अद+घञ्+सु=) घासः । घञ् के परे घस्लृ आदेश हो जाता है ॥ १३९५॥

१३९६—नौ ण च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६० ॥

नि उपपद हो तो अद धातु से ण और अप् प्रत्यय हो (नि+अद+ण+सु=) न्यादः (नि+अद+अप्+सु=) निघसः ॥ १३९६ ॥

१३९७—व्यधजपोरनुपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६१ ॥

उपसर्गभिन्न जो व्यध और जप धातु उन से अप् प्रत्यय हो । व्यधः । जपः । अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । आव्याधः । आजापः । यहां घञ् प्रत्यय (१३३७) हो जाता है ॥ १३९७ ॥

१३९८—स्वनहसोर्वा ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६२ ॥

उपसर्ग उपपद न होतो स्वन और हस धातु से विकल्प कर के अप् प्रत्यय हो । स्वनः । स्वानः । हसः । हासः । विकल्पपक्ष में घञ् हो जाता है । अनुपसर्ग ग्रहण से यहां अप् नहीं होता । प्रस्वानः । प्रहासः ॥ १३९८ ॥

१३९९—यमः समुपनिविषु च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६३ ॥

सम्, उप, नि, वि उपसर्ग उपपद हों वा नहो तो यम धातु से विकल्प कर के अप् प्रत्यय हो । संयमः । संयामः । उपयमः । उपयामः । नियमः । नियामः । वियमः । वियामः । यमः । यामः । विकल्प पक्ष में घञ् हो जाता है ॥ १३९९ ॥

१४००—नौ गदनदपठस्वनः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६४ ॥

नि उपसर्ग उपपद होतो गद, नद, पठ, स्वन इन धातुओं से विकल्प कर के अप् प्रत्यय हो । निगदः । निगादः । निनदः । निनादः । निपठः । निपाठः । निस्वनः । निस्वानः ॥ १४०० ॥

१४०१—क्वणो वीणायां च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६५ ॥

नि उपसर्ग उपपद हो वा न होतो क्वण धातु से तथा वीणाअर्थविषयकजोक्वण धातु उस से अप् प्रत्यय विकल्प कर के हो । और भी उपसर्गों के ग्रहण के लिये वीणा अर्थविषयक से विधान है । क्वण, निक्वणः । निक्वाणः । क्वणः । क्वाणः । वीणा अर्थ में प्रक्वणः । प्रक्वाणः । इस कथ से अन्यत्र । अतिक्वाणो वर्त्तते ॥ १४०१ ॥

१४०२—नित्यं पणः परिमाणे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६६ ॥

परिमाण गम्यमान हो तो पण धातु से नित्य अप् प्रत्यय हो [पण] व्यवहारे स्तुतौ च । मूलकपणः । शाकपणः । बेंचने आदि के लिये परिमाण से मूरी वा शाक आदि की जो गड्डिया बांधना उस को कहते हैं । परिमाण से अन्यत्र पाणः ॥ १४०२ ॥

१४०३—मदोऽनुपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६७ ॥

उपसर्ग उपपद न होतो मद धातु से अप् प्रत्यय हो । विद्यामदः । धनमदः । कुलमदः । अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । उन्मादः । प्रमादः ॥ १४०३ ॥

१४०४—प्रमदसंमदौ हर्षे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६८ ॥

प्रमद, संमद ये दोनों हर्ष अर्थ में निपातन हैं । [मदी] हर्षे प्रमदः । संमदः । हर्षग्रहण से यहां न हुआ । प्रमादः । संमादः ॥ १४०४ ॥

१४०५—समुदोरजः पशुषु ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६९ ॥

सम् और उद् उपसर्ग उपपद हों तो पशुविषय में वर्त्तमान अज धातु से अप् प्रत्ययहो [अज] गतिक्षेपणयोः सम् पूर्वक अजधातु समुदाय अर्थ को कहता है । पशूनां समजः । पशुओं का समुदाय । पशूनां मुदजः । पशुओं को प्रेरणा देना अर्थात् हांकना आदि । पशुग्रहण से यहां नहीं होता । ब्राह्मणानां समाजः । आर्य्यसमाजः । क्षत्रियाणामुदाजः ॥ १४०५ ॥

१४०६—अक्षेषु ग्लहः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७० ॥

अक्षविषय में ग्रह धातु से अप् प्रत्ययान्त ग्लह यह निपातन है । अक्षस्यग्लहः । पाशाओं का ग्रहण करना । ग्रह धातु से (११९०) से अप् प्रत्यय सिद्ध है । तथापि उस के रेफ को लकारादेश करने के लिये यह निपातन किया है । अक्ष ग्रहण से यहां न हुआ । वेदग्रहः ॥ १४०६ ॥

१४०७—प्रजने सर्त्तेः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७१ ॥

प्रजन (प्रथमगर्भधारण) विषय में सृ धातु से अप् प्रत्यय हो । गवामुपसरः प्रथमगर्भधारण कराने के लिये गौ के समीप बैल का जाना अवसरः । प्रसरः । इत्यादितो (१४०५) सूत्र से होंगे ॥ १४०७ ॥

१४०८—ह्वः संप्रसारणं च न्यभ्युपविषु ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७२ ॥

नि, अभि उप, वि ये उपपद होंतो ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय और उस को संप्रसारण हो । (नि + ह्वेञ् + अप + सु =) निहवः । (अभि + ह्वेञ् + अप् + सु =) अभिहवः (उप + ह्वेञ् + अप् + सु =) उपहवः (वि + ह्वेञ् + अप् + सु =) विहवः अन्यत्र (प्र + ह्वेञ् + घञ् + सु =) प्रह्वायः । घञ् होजाता है ॥ १४०८ ॥

१४०९—आङि युद्धे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७३ ॥

युद्ध अभिधेय होतो आङ् पूर्वक ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय और उस को संप्रसारण हो । आह्वयन्ते स्पर्धया भटा अस्मिन्निति, आहवः । युद्ध से अन्यत्र आह्वायः ॥ १४०९ ॥

१४१०—निपानमाहावः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७४ ॥

जो निपान अभिधेय होतो आहाव यह निपातन है। निपिबन्त्यस्मिन् जलमिति, निपानम् । जल धरने का स्थान। यहां आङ्पूर्वकह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय तथा उस को संप्रसारण और वृद्धि होगा निपातन है ॥ १४१० ॥

१४११—भावेऽनुपसर्गस्य ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७५ ॥

भाव वाच्य हो तो उपसर्गरहित ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय और उस को संप्रसारण हो। ह्वानं हवः। हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम् । यहां भावग्रहण से प्रकृत कर्त्ता भिन्न कारक की अनुवृत्ति नहीं होती है ॥ १४११ ॥

१४१२—हनश्च वधः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७६ ॥

उपसर्गरहित हन् धातु से भी अप् प्रत्यय और उस प्रत्यय के साथ हन् को वध आदेश भाव में हो। यहां चकार का संबन्ध आदेश के साथ नहीं है किन्तु आदेश तो अप् से द्वितीय विधान है सो हो ही जायगा इस से चकारग्रहण से प्रकरण के अनुसार दूसरा घञ् प्रत्यय भी होता है (हन्+अप्+सु=) वधः। वध आदेश अन्तोदात्त है इस से अनुदात्त (सौव० २४) अप् प्रत्यय के साथ एकादेश (संधि १२८)भी उदात्त ही (सौव० ८५) होता है (हन्+घञ्+सु=) घातः।वधो दस्यूनाम्। घातः शत्रूणाम् ॥ १४१२ ॥

१४१३—मूर्त्तौ घनः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७७ ॥

मूर्त्ति (कठिनपन) वाच्य हो तो हन् धातु से अप् प्रत्यय और हन् को घन आदेश हो। अभ्रघनः । बद्दलों की सघनता। दधिघनः । दधि की कठिनाई अर्थात् उस का सख्त जमना। घन शब्द जब मूर्त्ति (कठिनाई) मात्र में होता है तो। घनं सैन्धवम्। घनं दधि। इत्यादि प्रयोग कैसे होंगे क्यों कि। घन यह सैन्धव वा दधि का गुण हुआ। इस लिये गुण से गुणी की विवक्षा (घन शब्द से तद्धर्मनिष्ठ दधि आदि का कथन) हो तो उक्त प्रयोग होंगे ॥ १४१३ ॥

१४१४—अन्तर्घनो देशे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७८ ॥

देश अभिधेय हो तो अन्तर् पूर्वक हन् धातु से अप् प्रत्यय और उस को घन आदेश हो। अन्तर्घनः। यह वाहीकनामकदेशों में किसी देश का नाम है। इस शब्द को पाठान्तर से भी मानते हैं। अन्तर्घणः। देश से अन्यत्र। अन्तर्घातः॥१४१४॥

१४१५—अगारैकदेशे प्रघणः प्रघाणश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७९ ॥

अगार (घर) के एक देश में प्रघण, प्रघाण ये निपातन हैं। घर के द्वार देश में दो कोठे होने चाहिये। एक भीतर दूसरा बाहर उन में से जो बाहर का

कोठा है उस अर्थ में ये निपातन हैं । प्रविशद्भिर्जनैः प्रकर्षेण हन्यत इति प्रघणः । प्रघाणः । यहां कर्म्म में अप् तथा घञ् प्रत्यय और हन् को घन आदेश निपातन है । अगारैकदेश से अन्यत्र । प्रघातः ॥ १४१५ ॥

१४१६—उद्घनोऽत्याधानम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८० ॥

अत्याधान (ऊपर स्थापन करना) गम्यमान हो तो उद्घन यह निपातन है । ऊर्ध्वं हन्यतेऽस्मिन् काष्ठानीति, उद्घनः । यह जिस काठ पर धर के दूसरे काठ को गढ़ते हैं उस का नाम है । यहां उत्पूर्वक हन् धातु से अप् और उस को घन आदेश निपातन है ॥ १४१६ ॥

१४१७—अपघनोऽङ्गम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८१ ॥

अङ्ग अभिधेय हो तो अपघन यह निपातन है । अङ्ग शरीर के अवयव मात्र का नाम है परन्तु यहां हाथ पैर का ग्रहण है । अपहन्यतेऽनेनेति, अपघनः । पाणिः पादो वा । यहां अपपूर्वक हन् से करण में अप प्रत्यय हन् को घन आदेश निपातन है । अन्यत्र । अपघातः ॥ १४१७॥

१४१८—करणेऽयो विद्रुषु ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८२ ॥

अयस्, वि, द्रु उपपद होतो हन धातु से करण में अप् प्रत्यय और हन् को घन आदेश हो । अयः (लोहः) हन्यतेऽनेनेति अयोघनः । विघनः । द्रुघनः । इस शब्द को पाठान्तर से भी मानते हैं । द्रुघणः (८७०) से णत्व होजाता है ॥ १४१८ ॥

१४१९—स्तम्बे क च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८३ ॥

स्तम्ब शब्द उपपद होतो हन् धातु से करण में क और अप् प्रत्यय और अप् के संनियोग में हन् को घन आदेश हो । क, स्तम्बो हन्यतेऽनेन, स्तम्बघ्नः । अप्, स्तम्बघनः । करण से अन्यत्र । स्तम्बस्य हननं, स्तम्बघातः ॥ १४१९ ॥

१४२०—परौ घः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८४ ॥

परि उपपद होतो हन् धातु से करण में अप् प्रत्यय और हन् को घ आदेश हो । परितः सर्वतो हन्यतेऽनेनेति परिघः ॥ १४२० ॥

१४२१—परेश्च घाङ्कयोः ॥ अ० ॥ ८ । २ । २२ ॥

घ और अङ्क शब्द परे होतो परि के रेफ को विकल्प कर के लकारादेश हो । परिघः । पलिघः । पर्य्यङ्कः । पल्यङ्कः । यहां (पारिभाषि० १) परिभाषा के अनुसार (घ) इस स्वरूप का ग्रहण है घसंज्ञा का ग्रहण नहीं है ॥ १४२१ ॥

१४२२—उपघ्न आश्रये ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८५ ॥

आश्रय अर्थ में उपघ्न यह निपातन है । आश्रय शब्द से यहां सामीप्य का ग्रहण है । पर्वतेनोपहन्यते तत्सामीप्येन गम्यत इति, पर्वतोपघ्नः । ग्रामोपघ्नः । पर्वत, के निकट २ जाना । यहां उपपूर्वक हन् धातु से अप् प्रत्यय और हन् की उपधा का लोप निपातन और कुत्व (३०४) सूत्र से होता है ॥ १४२२ ॥

१४२३—संघोद्घौ गणप्रशंसयोः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८६ ॥

गण (समूह) और प्रशंसा अर्थ में यथासंख्य कर के संघ,उद्घ ये निपातन हैं । संहननं संघः । गवां संघः । यहां सम्पूर्वक हन् से भाव में अप् प्रत्यय और टिलोप निपातन है । उत्कृष्टो हन्यते ज्ञायत इत्युद्घो मनुष्यः । यहां गतित्व से हन् धातु को ज्ञानार्थ मान कर उस से कर्म में अप् और पूर्ववत् टिलोप हो जाता है॥१४२३॥

१४२४—निघो निमितम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८७ ॥

निमित अभिधेय हो तो निघ यह निपातन हो । सब प्रकार से जो मित (परिपूर्णता को प्राप्त) हो वह निमित कहाता है । निर्विशेषेण हन्यन्ते ज्ञायन्त इति निघा वृक्षाः । निघाः शालयः। निघाः यवाः । निमित से अन्यत्र निघातः॥१४२४॥

१४२५—ड्वितः क्त्रिः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८८ ॥

डु, जिस का इत् गया हो उस धातु से भावादिकों में क्त्रि प्रत्यय हो । डुवप् निवृत्तम् । इस सूत्र में नित्यग्रहण से क्त्रि प्रत्ययविषयक विग्रह मप् से अलग नहीं होता जैसे । डुपचष्, पचनेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम् । पचने से सिद्ध हो गया । [डुकृञ्] करणे कृत्रिमम् [डुवप्] बीज संताने । उप्त्रिमम् ॥ १४२५ ॥

१४२६—ट्वितोऽथुच् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८९ ॥

टु जिस का इत् गया हो उस धातु से भावादिकों में अथुच् प्रत्यय हो [टुवेपृ] कंपने । वेपनं वेपथुः । टुओश्वि, श्वयथुः ॥ १४२६ ॥

१४२७—यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९० ॥

भाव और अकर्त्ता कारक में यज आदि धातुओं से नङ् प्रत्यय हो । यज, यजनं यज्ञः । टुयाचृ, याचनं याच्ञा [यती] प्रयत्ने । यत्नः [विच्छ] गतौ । विश्नः । यहां छ को श् आदेश होजाता और नङ् के ङित् करण से गुण नहीं होता। प्रच्छ, प्रश्नः । यहां संप्रसारण (२८६) प्राप्त है सो (७४८) सूत्र में प्रश्न शब्द के पढ़ने से नहीं होता ॥ १४२७ ॥

१४२८—स्वपो नन् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९१ ॥

स्वप् धातु से नन् प्रत्यय हो [ञिष्वप] स्वपनं स्वप्नः ॥ १४२८ ॥

१४२९—उपसर्गे घोः किः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९२ ॥

उपसर्ग उपपद हो तो घुसंज्ञकों से कि प्रत्यय हो । प्रदानं,प्रदिः । प्रधानं,प्रधिः । विधानं विधिः । संधानं संधिः । अन्तर्धानं,अन्तर्धिः । आधिः । व्याधिः । १४२९ ॥

१४३०—कर्मण्यधिकरणे च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९३ ॥

कर्म उपपद हो तो घुसंज्ञक धातुओं से अधिकरण में कि प्रत्यय हो । जलानि धीयन्तेऽस्मिन्निति, जलधिः । वारिधिः । तोयधिः । पयोधिः । यशांसि धीयन्तेऽस्मिन्निति यशोधिः । इषुधिः ॥ १४३० ॥

१४३१—स्त्रियां क्तिन् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९४ ॥

स्त्रीलिङ्गविषयक भावादिकों में धातु से क्तिन् प्रत्यय हो । घञ्, अच्, अप् इन सब का अपवाद है । कृञ्, करणं कृतिः । चिञ्, चितिः ॥ १४३१ ॥

१४३२—वा०—क्तिन्नाप्त्यादिभ्यः ॥

आप्लृ आदि धातुओं से भावादिकों में क्तिन् प्रत्यय हो । आप्तिः । राद्धिः । दीप्तिः । यहां अङ् १४४८ प्रत्यय प्राप्त था उस के बाधने के लिये क्तिन् का विधान है ॥ १४३२ ॥

१४३३—वा०—श्रुयजीषिस्तुभ्यः करणे ॥

श्रु, यज, इष, ष्टुञ् इन धातुओं से करण में क्तिन् प्रत्यय कहना चाहिये । श्रूयतेऽनयेति, श्रुतिः । इज्यतेऽनयेति, इष्टिः । इष्यतेऽनयेति, इष्टिः । स्तूयतेऽनयेति, स्तुतिः ॥ १४३३ ॥

१४३४—वा०—ग्लाम्लाज्याहाभ्यो निः ॥

ग्लै, म्लै, ज्या, ओहाक्, ओहाङ् इन धातुओं से नि प्रत्यय कहना चाहिये । ग्लानिः । म्लानिः । ज्यानिः । हानिः ॥ १४३४ ॥

१४३५—वा०—ॠकारल्वादिभ्यः क्तिन् निष्ठावत् ॥

ॠकारान्त और [लूञ्] छेदने आदि गणपठित धातुओं से क्तिन् प्रत्यय को निष्ठा के तुल्य कहना चाहिये । कॄ, कीर्णिः । गॄ, गीर्णिः । लूञ्, लूनिः । धूनिः । यहां क्तिन् के निष्ठावद्भाव से (रदाभ्यां०) सूत्र से निष्ठा के तुल्य क्तिन् के तकार को नकारादेश हो जाता है ॥ १४३५ ॥

१४३६—स्थागापापचो भावे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९५ ॥

स्था आदि धातुओं से लिंगस्त्रीविषयक भाव में क्तिन् प्रत्यय हो । यह अङ् का अपवाद है । ष्ठा, प्रस्थितिः । उपस्थितिः । संस्थितिः । [गै] शब्दे । संगीतिः । उद्गीतिः । पा, प्रपीतिः । डुपचष्, पक्तिः ॥ १४३६ ॥

१४३७-मंत्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्तः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९६ ॥

मंत्रविषय में वृष आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग भाव में क्तिन् प्रत्यय हो और वह उदात्त भी हो । वृष, वृष्टिः । इषु, इष्टिः । डुपचष्, पक्तिः । मन, मतिः । विद, वित्तिः । भू, भूतिः । वी, वीतिः । रा, रातिः । यद्यपि धातुमात्र से क्तिन् विहित भी है तथापि उदात्त के लिये यह विधान है ॥ १४३७ ॥

१४३८—ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्त्तयश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९७ ॥

ऊति आदि शब्द क्तिन् प्रत्ययान्त अन्तोदात्त निपातन हैं । ऊतिः । यहां अव धातु से क्तिन् और अव को ऊठ् (ज्वर०) आदेश० । यूतिः । जूतिः । यु और जु से क्तिन् और उन को दीर्घ०।सातिः । यहां [षो] अन्तकर्मणि को क्तिन् के परे (द्यति०] प्राप्त जो इकारादेश उस का अभाव निपातन से हो जाता है । वा क्तिन् के परे [षन] धातु को आकारादेश (जनसन०) हो जाता है । हेतिः । यहां क्तिन् के परे हन् को हि आदेश वा [हि] गतौ वृद्धौ च । धातु को गुणादेश निपातन है । कीर्त्तिः । यहां [कृत] संशब्दने से क्तिन् प्रत्यय होता है ॥ १४३८ ॥

१४३९—व्रजयजोर्भावे क्यप् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९८ ॥

व्रज और यज धातु से स्त्रीलिंग भाव में क्यप् प्रत्यय हो सो उदात्त हो । व्रज, व्रज्या । यज, इज्या । (२८२)सम्प्रसारण० ॥ १४३९ ॥

१४४०—संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदषुञ्शीङ्भृञिणः ॥

अ० ॥ ३ । ३ । ९९ ॥

संज्ञाविषय में समपूर्वक अज आदि धातुओं से स्त्रीलिंगविषयक भाव और कर्तृभिन्न कारक में क्यप् प्रत्यय हो । समजन, समजन्ति यस्यां सा (सम्+अज+क्यप्+सु=) इस अवस्था में (१५५) सूत्र से अज को वीभाव प्राप्त हुआ उस के निषेध के लिये अगला वार्त्तिक है ॥ १४४० ॥

१४४१—वा०—घञपोः प्रतिषेधे क्यप उपसंख्यानम् ॥

घञ् और अप् प्रत्यय के परे अज धातु को वी भाव के प्रतिषेध में क्यप् प्रत्यय का भी उपसंख्यान करना चाहिये । इस से वी भाव का प्रतिषेध हो गया समज्या सभा । निषद, निषीदन्त्यस्यांसा, निषद्या । दूकान । निपत, निपतन्त्यस्यां,

पत्या। खट्‌कीलीस्तूसि। मन, मन्यन्तेऽनयेति, मन्या,। गलपार्श्वशिरा। विद्, दन्त्यनयेति विद्या। षुञ्,सवनं,सुत्या। अभिषवः। शीङ् शेतेऽस्यामिति शय्या। भृञ् भरणं, भरन्त्यनया वा। भृत्या। इण्,ईयते गम्यतेऽनया सा, इत्या। शिबिका। लवी ॥ १४४१ ॥

१४४२—कृञः श च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०० ॥

कृञ् धातु से स्त्रीलिङ्गविषयक भावादिकों में श और क्यप् प्रत्यय हो। क्रिया (३९) कृत्या ॥ १४४२ ॥

१४४३—वा०—कृञः श चेति वा वचनम्॥

(कृञः शच) यहां विकल्प भी ग्रहण करना चाहिये। जिस से क्तिन् प्रत्यय हो। कृतिः ॥ १४४३ ॥

१४४४—इच्छा ॥ अ० ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०१ ॥

इष् धातु से भाव में श प्रत्यय और यक् (७१९) का अभाव निपातन है। (इष्+श+सु=) इच्छा (२७३) ॥ १४४४ ॥

१४४५—अत्यल्पमिदमुच्यते इच्छेति-वा०—इच्छापरिचर्यापरिसर्यामृगयाऽटाट्यानामुपसंख्यानम् ॥

इच्छा इतना निपातन अत्यन्तन्यून है इस से इच्छा, परिचर्या, परिसर्या,मृगया, अटाट्या, इन शब्दों का उपसंख्यान करना चाहिये। परिचर्यादिकों में श प्रत्यय और उस के परे यक् (७१९) भी होता है। परिचर, परिचरणं, परिचर्या। कार। परिसृ, परिसरणं परिसर्या। रिंगना। यहां गुण भी निपातन से है [मृग] चेषणे। चुरादि अदन्त है (मृग+णिच्+यक्+श+सु=) मृगया। यहां यक् के परे (१७७) णिलोप हो जाता है [अट] गतौ (अट+यक्+श+सु=) अटाट्या। यहां (ट्य) भाग को द्वित्वादेश, तथा हलादिःशेष होकर दीर्घ हो जाता है ॥ १४४५ ॥

१४४६—वा०—जागर्तेरकारो वा ॥

जागृ धातु से अ प्रत्यय विकल्प कर के हो। जागरा (३६२) जागर्या ॥ १४४६ ॥

१४४७—अ प्रत्ययात् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०२ ॥

प्रत्ययान्त धातु से स्त्रीविषयक भावादिकों में अ प्रत्यय हो (कृञ्+सन्+अ+सु=) चिकीर्षा। पिपासा। कण्डूया। इत्यादि ॥ १४४७ ॥

१४४८—गुरोश्च हलः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०३ ॥

गुरुमान् जो हलन्त धातु उस से स्त्रीलिंग में अ प्रत्यय हो । ईहा । ऊहा । गुरुग्रहण से यहां न हुआ । भज, भक्तिः । शक्ल शक्तिः । हल् ग्रहण से यहां न हुआ। चितिः । नीतिः । प्रीतिः ॥ १४४८ ॥

१४४९—षिद्भिदादिभ्योऽङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०४ ॥

ष् जिन का इत् संज्ञक हो उन से और भिद् आदि धातुओं से स्त्रीलिंग में अङ् प्रत्यय हो । त्रपूष्, त्रपा । क्षमूष्, क्षमा [भिदिर्] विदारणे भेदनं भिदा। भिदा विदारण इति वक्तव्यम् । विदारण अर्थ में (भिदा) यह प्रयोग हो । अन्यत्र । भित्तिः । होता है । छिदिर्, छिदा । छिदा द्वैधीकरण इति वक्तव्यम् । दो भाग करने अर्थ में (छिदा) यह हो । अन्यत्र छित्तिः । होता है । (आङ्+ऋ+अङ्+सु=) आरा । यहां (सन्धि०११८) सूत्र से वृद्धि० । आरा शस्त्र्यामिति वक्तव्यम् । शस्त्री (जो भाषा में आरा प्रसिद्ध है उस) अर्थ में (आरा) यह प्रयोग हो अन्यत्र । आर्त्तिः । होता है । धृञ्, ध्रियते धार्य्यते वा जलमनयेति, धारा । धारा प्रपात इति वक्तव्यम् । जलक्त गिरने (जो भाषा में धारा प्रसिद्ध है उस) में (धारा) यह प्रयोग हो । अन्यत्र । धृतिः । होता है । गुहू, गुहा । गुहा गिर्य्योषध्योरिति वक्तव्यम् । गिरि अर्थात् (पर्वत) के एकादेश और औषधि अर्थ में (गुहा) यह प्रयोग हो । अन्यत्र । क्तिन् प्रत्ययान्त । गूढि । होता है ॥ १४४९ ॥

१४५०—चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०५ ॥

चिन्ति आदि धातुओं से स्त्रीलिंगमें अङ् प्रत्यय हो । यह युच् का अपवाद है [चिति] स्मृत्याम् । चिन्ता [पूज] पूजायाम् । पूजा [कथ] वाक्यप्रबन्धे । कथा [कुबि] आच्छादने । कुंबा [चर्च] अध्ययने । चर्चा ॥ १४५० ॥

१४५१—आतश्चोपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०६ ॥

उपसर्ग उपपद हो तो आकारान्त धातु से स्त्रीलिंग में युच् प्रत्यय हो । उपधा अवस्था । श्रत् और अन्तर् इन को उपसर्गवद्वृत्ति है । श्रद्धा । अन्तर्द्धा ॥ १४५१ ॥

१४५२—ण्यासश्रन्थो युच् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०७ ॥

णिजन्त, आस, श्रन्थ इन से स्त्रीलिंग में युच् प्रत्यय हो । (कृञ्+णिच्+युच्+सु=) कारणा । हारणा । आस, आसना । [श्रन्थ] विमोचनप्रतिहर्षयोः । क्र्यादिः । श्रन्थ, श्रन्थना ॥ १४५२ ॥

१४५३—वा०—युच्प्रकरणे घट्टिवन्दिविदिभ्य उपसंख्यानम् ॥

युच्प्रकरण में घट्टि, वन्दि, विद इन धातुओं से भी युच् का उपसंख्यान करना चाहिये [घट्ट] चलने तुदादिः । घट्टना । वन्दि, वन्दना । विद, वेदना ॥१४५३॥

१४५४—वा०—इषेरनिच्छार्थस्य ॥

युच् के प्रकरण में इच्छा अर्थ से रहित जो इष धातु उस को भी उपसंख्यान करना चाहिये । अन्विष्यत इति अन्वेषणा ॥ १४५४ ॥

१४५५—वा०—परेर्वा ॥

युच्प्रकरण में परि से परे अनिच्छार्थक इष् धातु का विकल्प करके उपसंख्यान करना चाहिये । पर्येषणा । परीष्टिः । अन्यां परीष्टिं चर । अन्यां पर्येषणां चर ॥ १४५५ ॥

१४५६—रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०८ ॥

रोग की आख्या गम्यमान हो तो स्त्रीलिंग में धातु से बहुल करके ण्वुल् प्रत्यय हो । [उच्छृदिर्] दीप्तिदेवनयोः । प्रच्छर्दिका [वह] प्रापणे प्रवाहिका [चर्व] अदने । विचर्चिका । बहुलग्रहण से कहीं नहीं भी होता । शिरोर्तिः ॥ १४५६ ॥

१४५७—वा०—धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल् ॥

धात्वर्थनिर्देश अर्थात् क्रिया के निर्देश में धातु से ण्वुल् प्रत्यय कहना चाहिये [आस] उपवेशने । आसिका । का नामासिका अन्येष्वीहमानेषु । औरों के काम करते हुए क्या बैठना । यहां उपवेशन क्रिया का कथन करना है । का नाम शायिका अन्येष्वधीयानेषु । औरों के पढ़ते हुए क्या सोना । तथा यहां भी शयनक्रिया का कथन है ॥ १४५७ ॥

१४५८—वा०—इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे ॥

धातु के कहनेमात्र में इक् और श्तिप् प्रत्यय कहना चाहिये । पचिर्ब्रूहि । पचति ब्रूहि । (१४५६) इस के बहुल विषय से कहीं नहीं भी होता है जैसे । अजः गम । यद्यपि यह श्तिप् कर्त्ता में नहीं भी होता तथापि शित् करण से तिङ् के परे शप् आदि विकरण होते ही हैं जैसे । भवतेः । इत्यादि ॥ १४५८ ॥

१४५९—वा०—वर्णात्कारः ॥

वर्ण के निर्देश में वर्ण से कार प्रत्यय कहना चाहिये । अकारः । ककारः । मकारः । बहुलविषय से कहीं नहीं भी होता जैसे । अस्य च्वौ । कहीं वर्णसमुदाय

से भी होता है। एधकारः। कित्विषयक प्रयोजनों के अभाव से कार प्रत्यय के ककार को इत् संज्ञा नहीं होती और कृत् अधिकार में विधान से इस कार प्रत्यय की कृत् संज्ञा होती है इस से। अकारः। आदि में कृदन्त मान कर प्रातिपदिक संज्ञा आदि कार्य्य होते हैं ॥ १४५९ ॥

१४६०—वा०—रादिफः ॥

र वर्ण के निर्देश में र से इफ प्रत्यय कहना चाहिये। रेफः ॥ १४६० ॥

१३६१—वा०—मत्वर्थाच्छः ॥

मत्वर्थ शब्द से छ प्रत्यय कहना चाहिये। मत्वर्थीयः। यहां छ प्रत्यय के परे भ संज्ञा के विना भी भाष्यकार के (मत्वर्थीयः) इस शब्द के पढ़ने से वा बहुलभाव से छ के पूर्व अकार का लोप होजाता है ॥ १४६१ ॥

१४६२—वा०—इणजादिभ्यः ॥

अज आदि धातुओं से इण् प्रत्यय कहना चाहिये [अज] गतिक्षेपणयोः आजिः [अत] सातत्यगमने आतिः। अद्, आदिः ॥ १४६२ ॥

१४६३—वा०—इञ् वपादिभ्यः ॥

वप आदि धातुओं से इञ् प्रत्यय कहना चाहिये [डुवप] बीजसंताने। वापिः। वासिः। वादिः ॥ १४६३ ॥

१४६४-वा०—इक् कृष्यादिभ्यः ॥

कृष आदि धातुओं से इक् प्रत्यय कहना चाहिये [कृष] विलेखने। कृषिः। [कॄ] विक्षेपे किरिः [गॄ] निगरणे [गॄ] शब्दे वा गिरिः ॥ १४६४ ॥

१४६५—वा०—संपदादिभ्यः क्विप् ॥

संपद आदि धातुओं से क्विप् प्रत्यय कहना चाहिये (सम्+पद+क्विप्+सु=) संपत्। विपत्। आपत्। प्रतीपत्। परिसीदन्ति जना अस्यां सा परिषत्। बहुलभाव से क्तिन् (१४२१) भी होता है। संपत्तिः। विपत्तिः। इत्यादि ॥ १४६५ ॥

१४६६—संज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३। ३। ११९ ॥

स्त्रीलिंगविषयक संज्ञा में धातु से ण्वुल् प्रत्यय हो [भञ्जो] आमर्दने उद्दालकपुष्पभञ्जिका [वह] प्रापणे। वारणपुष्पवाहिका ॥ १४६६ ॥

१४६७—विभाषाख्यानपरिप्रश्नयोरिञ् च ॥ अ० ॥३।३।११०॥

परिप्रश्न (पूंछना) आख्यान (कहना) अर्थात् उस का उत्तरदेना गम्यमान होतो स्त्रीलिंग में धातु से इञ् और ण्वुल् विकल्प कर के हो। दूसरे पक्ष में यथा-

प्राप्त प्रत्यय होते हैं। प्रथम प्रश्न तदनंतर उसका उत्तरहोता है परन्तु पश्चात्तर होने से सूत्र में व्याख्यान शब्द का पूर्वनिपात है । त्वं कां कारिमकार्षीः । त्वंकां कारिकामकार्षीः । कां क्रियामकार्षीः । कां कृतिमकार्षीः । तूने कौन क्रिया किई । अहं सर्वां कारिमकार्षम् । सर्वां कारिकामकार्षम् । सर्वां क्रियामकार्षम् । सर्वां कृत्यामकार्षम् । सर्वां कृतिमकार्षम् । मैंने सब क्रिया करलिई । इत्यादि ॥१४६७॥

१४६८—पर्यायार्हर्णोत्पत्तिषु ण्वुच् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १११ ॥

पर्याय (परिपाटीक्रम) अर्ह (योग्यता) ऋण (दूसरे का द्रव्य धारण करना) उत्पत्ति (जन्म) ये अर्थ गम्यमान हों तो स्त्रीलिंग में धातु से ण्वुच् प्रत्यय विकल्प कर के हो। पर्याय,तव शायिका । तुम्हारा सोना।मम शायिका।मेरा सोना। अर्ह, त्वमर्हसि दुग्धपायिकाम् । तू योग्य है दूध पीने को । ऋण, मम शाकभक्षिका धारय । मेरी शाकभाजी तू लिये रह । उत्पत्ति, मह्यं शाकभक्षिकामुदपादि । मेरे लिये शाकभाजी बना । इसी प्रकार । ओदनभोजिका । अग्रगामिका । अग्रग्रासिका । इक्षुभक्षिका । आदि बहुत प्रयोग बन सकते हैं । द्वितीय पक्ष में । तव चिकीर्षा । मम चिकीर्षा । तव क्रिया । मम क्रिया । इत्यादि ॥ १४६८ ॥

१४६९—आक्रोशे नञ्यनिः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११२ ॥

आक्रोश (कोसना) गम्यमान हो और नञ् उपपद होता धातु से स्त्रीलिंग में अनि प्रत्यय हो । यह क्तिन् आदि का अपवाद है । अजीवनिस्ते शठ भूयात् । आक्रोश से अन्यत्र । अजीवनमस्यरोगिणः । यहां ल्युट् हो जाता है । नञ्ग्रहण से यहां न हुआ । कृतिस्ते वृषल भूयात् । इसी सूत्र तक (भाव, अकर्त्तरि, कारके) इन की अनुवृत्ति है ॥ १४६९ ॥

१४७०—नपुंसके भावे क्तः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११४ ॥

नपुंसकलिङ्गविषयक भाव में धातु से क्त प्रत्यय हो [हसे] हसने । हसितम् । [षह] मर्षणे । सहितम् ॥ १४७० ॥

१४७१—ल्युट् च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११५ ॥

नपुंसकलिंग भाव में धातु से ल्युट् प्रत्यय हो । डुकृञ्,करणम् । पठ, पठनम् । शीङ्, शयनम् ॥ १४७१ ॥

१४७२—कर्मणि च येन संस्पर्शात्कर्त्तुः शरीरसुखम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११६ ॥

स्पर्श करने से जिस से कर्त्ता को शरीर का सुख हो ऐसा कर्म उपपद हो तो धातु से ल्युट्प्रत्यय हो यह । पूर्वसूत्र(१४७१) से सिद्धथापरन्तु उपपदसमास होने के

लिये विधान है। पयःपानं सुखम्। कर्मग्रहण से यहां न हुआ। तूलिकाया उत्थानं सुखम् यहां तूलिका शब्द अपादान है। संसर्गग्रहण से यहां न हुआ। अग्निकुण्डस्योपासनं सुखम्। कर्तृग्रहण से यहां न हुआ। गुरोः स्नापनं सुखम्। यहां गुरु शब्द कर्म है। शरीरग्रहण से यहां न० पुत्रस्य परिष्वञ्जनं सुखम्। यहां सुख मानसी प्रीति है। सुखग्रहण से यहां न हुआ। कण्टकानां मर्द्दनं दुःखम्॥ १४७२॥

१४७३—वा यौ॥ अ०॥ २। ४। ५७॥

यु अर्थात् ल्युट्प्रत्यय परे हो तो अज धातु को वी आदेश विकल्प करके हो (प्र+अज+ल्युट्+सु—) प्रवयणम्। प्राजनम्। १४७३॥

१४७४—करणाधिकरणयोश्च॥ अ०॥ ३। ३। ११७॥

करण और अधिकरण में धातु से ल्युट् प्रत्यय हो। चोवृश्च, प्रव्रश्चीश्चानि येन स इध्मप्रव्रश्चनः कुठारः। दुह, गां दोग्धि यस्यां सा गोदोहनी। स्थाली॥ १४७४॥

१४७५—पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण॥ अ०॥ ३। ३। ११८॥

संज्ञा अभिधेय हो तो पुल्लिङ्ग विषयक करण और अधिकरण में धातु से प्राय करके घप्रत्यय हो[धमो]रोगी। अमन्ति गच्छन्त्यनेन, अमः। रोगः।आकुर्वन्त्यस्मिन्निति, आकरः। आलीयन्ते आप्यन्ते पदार्था अस्मिन्निति,आलयः।पुंसिग्रहण से यहां नहीं होता। प्रसाधनम्। संज्ञाग्रहण से यहां नहीं होता। प्रहरणो दण्डः॥ १४७५॥

१४७६—छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य॥ अ०॥ ६। ४। ९६॥

दो उपसर्गों से रहित जो छादि अङ्ग उस की उपधा को ह्रस्व आदेश हो। दन्ता छाद्यन्तेऽनेनेति दन्तच्छदः। उरच्छदः। पटः। अद्व्युपसर्गग्रहण से यहां उपधा को ह्रस्व नहीं होता। समपच्छादः।अद्विप्रभृत्युपसर्गस्येति वक्तव्यम्। महाभाष्य दो आदि उपसर्गयुक्तको निषेध करना चाहिये समुपातिच्छादः॥ १४७६॥

१४७७—गोचरसंचरवहव्रजव्यजापणनिगमाश्च॥ अ०॥ ३। ३। ११९॥

संज्ञा अभिधेय हो तो पुंलिंगविषयक करण और अधिकरण में घ प्रत्ययान्त गोचर, संचर, वह, व्रज, व्यज, आपण, निगम ये निपातन हैं। चर, गावश्चरन्त्यस्मिन्निति, गोचरो देशः। संचरन्त्यस्मिन्निति, संचरो मार्गः। वह, वहन्ति तेन, वहः। स्कन्धः। व्रज, व्रजो। मार्गः। गावो व्रजन्त्यस्मिन्निति, व्रजो गोष्ठः। लोहा व्यजन्ति तेन, व्यजः। स्ताल वृन्त। ताड़ को झार वा ताड़का व्यजना। यहां निपातन से वीभाव (१५५) नहीं होता। आपणन्ते व्यवहरन्तेऽस्मिन्निति, आपणः। पण्यस्थानम्। दूकान। निगच्छन्तेनेन पदार्था इति, निगमो वेदः। यहां चकार अनुक्त के समुच्चय के लिये है। कषन्ति तेन, कषः। निकषः॥ १४७७॥

१४७८—अवे तृस्त्रोर्घञ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२० ॥

पुंल्लिंगविषयक संज्ञा वाच्य हो और अव उपपद हो तो करण और अधिकरण में धातु से घञ् प्रत्यय हो । पिछले घ (१४७५) प्रत्यय का अपवाद है । अवतारः । अवस्तारः । जवनिका (ओट कनात) यहां (प्राय) शब्द की अनुवृत्ति करके (१४७५) कहीं असंज्ञा में भी होता है । अवतारः सागरस्य । सागर का उतरना ॥ १४७८ ॥

१४७९—हलश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२१ ॥

संज्ञा वाच्य हो तो हलन्त धातु से पुंलिङ्गविषयक करण और अधिकरण में घञ् प्रत्यय हो । आरमन्त्यस्मिन्निति, आरामः । बाग । अपमृज्यन्ते रोगा अनेनेति, अपामार्गः । चिरचिरा । विदन्ति तत्त्वज्ञानाद्यनेनेति, वेदः ॥ १४७९ ॥

१४८०—वा०—घञ्विधौ अवहाराधारावायानामुपसंख्यानम् ॥

घञ् के विधान में अवहार आधार आवाय इन शब्दों का भी उपसंख्यान करना चाहिये । अवह्रियन्तेऽस्मिन्निति, अवहारः । आध्रियन्तेऽस्मिन्निति, आधारः । आ + वेञ्, एत्य तस्मिन् वयन्ति आवायः ॥ १४८० ॥

१४८१—अध्यायन्यायोद्यावसंहाराश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२२ ॥

संज्ञा वाच्य हो तो पुंल्लिङ्गविषयक करण और अधिकरण में घञ्प्रत्ययान्त अध्याय आदि शब्द निपातन हैं । अधीङ्, अधीयतेऽस्मिन्निति, अध्यायः । नि + इण्, नीयतेऽनेन व्यवहारा इति न्यायः । उद् यु, उद्युवन्ति यस्मिन्निति उद्यावः । सम् + हृञ्, संह्रियन्तेऽनेन भटादय, इति संहारः ॥ १४८१ ॥

१४८२—उदङ्कोऽनुदके ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२३ ॥

उदकभिन्न संज्ञाविषय में उदंक यह निपातन है । घृतमुदच्यतेऽस्मिन्निति, घृतोदंकः । घृत जिस में निकालें वह घृतोदंक कहावे । यहां उद् पूर्व अञ्चु धातु से घञ् प्रत्यय निपातन से और (८४२) इस सूत्र से कुत्व तथा परसवर्ण (२६४) हो जाता है । अनुदकग्रहण से यहां न हुआ । उदकोदञ्चनः जल भरने का पात्र ॥ १४८२ ॥

१४८३—जालमानायः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२४ ॥

जाल वाच्य हो तो आनाय यह निपातन है । आनीयन्ते मत्स्यादयोऽनेनेति, आनायः । धीवर आदि जनों का जाल । जाल से अन्यत्र । आनयनः ॥ १४८३ ॥

१४८४—खनो घ च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२५ ॥

खन् धातु से करण और अधिकरण में घ और घञ् प्रत्यय हो। आ+खनु, आखनः। आखानः। इस खन् से जो घ प्रत्यय विधान किया है इस में घ् पढ़ना अनर्थक है क्योंकि घित् कार्य खन् को नहीं प्राप्त हैं इस से घित्करण सामर्थ्य से घ प्रत्यय और धातुओं से भी होता है जैसे भज, भगः। पद, पदम्। इत्यादि ॥ १४८४ ॥

१४८५—वा०—खनो डडरेकेकवकाः ॥

खन् धातु से ड, डर, इक, इकवक ये प्रत्यय कहने चाहिये। ड, आखः। डर, आखरः। इक, आखनिकः। इकवक, आखनिकवकः ॥ १४८५ ॥

१४८६—ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२६ ॥

कृच्छ्र (दुःख) और अकृच्छ्र (सुख) अर्थ में वर्त्तमान जो ईषत्, दुर्, सु सो उपपद हों तो धातु से खल् प्रत्यय हो। यह प्रत्यय (८१४) सूत्र के अनुसार भाव और कर्म में होता है (ईषत्, दुर्, सु) इन में दुर् के साथ कृच्छ्र और ईषत् तथा सु के साथ अकृच्छ्र अर्थ की योग्यता है। ईषत्करः। दुष्करः। सुकरः कटो भवता। ईषद्गमः। दुर्गमः। सुगमः। इत्यादि। ईषद् आदि के ग्रहण से यहां न हुआ। कृच्छ्रेण कटः कार्य्यः। कृच्छ्राकृच्छ्रार्थग्रहण से यहां न हुआ। ईषत्कार्य्यः ॥ १४८६ ॥

१४८७ वा०—निमिमीलियां खलचोः प्रतिषेधः ॥

खल् और अच् प्रत्यय के परे निमि, मी, ली इन धातुओं के एच् को आकारादेश न हो। यहां अच् यह (१३८५, ८७५) सूत्र विहित अचों का ग्रहण है। खल्। नि+डु मिञ्, ईषन्निमयः। दुर्निमयः। सुनिमयः। अच् निमयो वर्त्तते। निमयः पुरुषः। इसी प्रकार ईषत्प्रमयः। सुप्रमयः। ली, ईषद्विलयः। इत्यादि समझना चाहिये ॥ १४८७ ॥

१४८८—उपसर्गात् खल्घञोः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६७ ॥

खल् और घञ् प्रत्यय परे हों तो उपसर्ग से ही परे लभ धातु को नुम् आगम हो। खल् ईषत्प्रलम्भः। दुष्प्रलम्भः। सुप्रलम्भः। घञ्, उपालम्भः। उपसर्गग्रहण से यहां न हुआ। ईषल्लभः। लाभः ॥ १४८८ ॥

१४८९—न सुदुर्भ्यां केवलाभ्याम् ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६८ ॥

खल्, घञ् परे हों तो केवल सु, और दुर् से परे लभ धातु को नुम् न हो। सुलभः। दुर्लभः। केवलग्रहण से यहां होता है सुप्रलम्भः। अतिदुर्लम्भः (अतिसुलभम्, अतिदुर्लभम्) ये तो सु अति की कर्मप्रवचनीय संज्ञा में होंगे। जैसे सुलभमतिक्रान्तम्। अतिसुलभम्। इत्यादि ॥ १४८९ ॥

१४९० — कर्तृकर्मणोश्च भूकृञोः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२७ ॥

कर्त्ता और कर्म ये यथाक्रम से उपपद हों तथा ईषत् आदि भी उपपद हों तो भू और कृञ् धातु से खल् प्रत्यय हो । खल् कर्तृकर्मणोश्च्व्यर्थयोः । महा० यह खल् प्रत्यय च्व्यर्थ अर्थात् अभूततद्भाव अर्थ में कर्त्ता और कर्म हों तो कहना चाहिये। यहां ईषदादिकों से परे कर्त्ता कर्म और उन से परे धातु का प्रयोग होता है । जैसे अनाढ्येन भवता ईषदाढ्येन शक्यं भवितुम्, ईषदाढ्यम्भवं भवता (१०२५) से मुम्। अनाढ्येन भवता दुःखेनाढ्येन भवितुं शक्यं दुराढ्यम्भवं भवता । अनाढ्येन भवता सुखेनाढ्येन भवितुं शक्यम्, स्वाढ्यम्भवं भवता । अनाढ्यमीषदाढ्यं कर्तुं शक्य, ईषदाढ्यं करः । अनाढ्यं दुःखेनाढ्यं कर्तुंशक्यः, दुराढ्यं करः । अनाढ्यं सुखेनाढ्यं कर्तुं शक्यः, स्वाढ्यं करः । च्व्यर्थ कहने से आढ्येन सुभूयते* इत्यादि में नहीं होता ॥१४९०॥

१४९१ — आतो युच् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२८ ॥

कृच्छ्र, अकृच्छ्रार्थ, ईषत् आदि उपपद हों तो आकारान्त धातु से युच् प्रत्यय हो । ईषत्पानः सोमो भवता । दुष्पानः । सुपानः ॥ १४९१ ॥

१४९२ छन्दसि गत्यर्थेभ्यः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२९ ॥

वेदविषय में कृच्छ्र, अकृच्छ्रार्थ, ईषत् आदि उपपद हों तो गति अर्थ वाले धातुओं से युच् प्रत्यय हो । (सु+उप+सद्+अ) सूपसदनोऽग्निः । सूपसदनमन्तरिक्षम् । इत्यादि ॥ १४९२ ॥

१४९३ — अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३० ॥

वेदविषय में कृच्छ्राकृच्छ्रार्थ ईषदादि उपपद हों तो गत्यर्थकों से अन्य जो धातु हैं उन से भी युच् प्रत्यय देखा गया है । सुदोहनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम् । सुवेदनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम् ॥ १४९३ ॥

१४९४ — भाषायां शासियुधिदृशिधृषिभ्यो युच् ॥

भाषा (लोक) में कृच्छ्राकृच्छ्रार्थ ईषदादि उपपद हों तो शासि, युधि, दृशि, धृषि इन धातुओं से युच् प्रत्यय कहना चाहिये । दुःशासनः । दुर्योधनः । दुर्दर्शनः । दुर्धर्षणः । इत्यादि ॥ १४९४ ॥

---

* (स्वाढ्येन भूयते) यह जयादित्त ने प्रत्युदाहरण दिया है सो उन का मत्त प्रलाप है क्योंकि जहां खल् प्रत्यय नहीं होगा वहां धातु से अलग उपसर्ग का प्रयोग नहीं होता किन्तु (ते प्राग्धातोः) सूत्र के अनुसार पूर्व ही प्रयोग होता है ।

१४९५—वा०—मृषेश्चेति वक्तव्यम् ॥

उक्तविषय में मृष धातु से भी युच् प्रत्यय कहना चाहिये । दुर्मर्षणः ॥ १४९५ ॥

१४९६—आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७० ॥

आवश्यक और आधमर्ण्य (ऋण लेना) अर्थ युक्त कर्त्ता वाच्य हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो । अवश्यंकारी । शतंदायी । यहां (सामा०-मयूर०) से समास होता है ॥ १४९६ ॥

१४९७—कृत्याश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७१ ॥

आवश्यक और आधमर्ण्य अर्थ में धातु से कृत्य संज्ञक प्रत्यय हों । भवतावश्यं गुरुः सेव्यः । भवतावश्यं सहस्रं देयम् ॥ १४९७ ॥

१४९८—क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७४ ॥

संज्ञा गम्यमान हो तो आशीर्वाद अर्थ में धातु से क्तिच् और क्त प्रत्यय हों । भूतिर्भवतात् । भूतिनामवाला हो । यहां (तितुत्र०) इस सूत्र से इट् न हुआ । क्त प्रत्यय संज्ञा में । जैसे वृक्ष एनं देयात्, वृक्षदत्तः । ईश्वरदत्तः ॥ १४९८ ॥

१४९९—न क्तिचि दीर्घश्च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३९ ॥

क्तिच् प्रत्यय परे हो तो अनुदात्तोपदेश (अनिट्) तथा वनति और तनोति आदि धातुओं के अनुनासिक का लोप तथा वन की उपधा को दीर्घ न हो । अनुदात्तोपदेश,यच्छतीति यन्तिः । जो कार्यों से निवृत्ति को प्राप्त होता है वह यन्ति कहता है । यन्तिर्भवतात् । यन्ति नामवाला निवृत्त हो । वनु, वनुते, वन्तिः । वन्तिर्वनुतात् । तनु,तन्तिस्तनुतात् इत्यादि ॥ १४९९ ॥

१५००—सनः क्तिचि लोपश्चास्यान्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४५ ॥

क्तिच् प्रत्यय के परे सन् धातु को आकारादेश और उस का लोप विकल्प करके हो । सन्, सातिः । सतिः । सन्तिः । सनुतात् ॥ १५०० ॥

१५०१—तुमर्थे सेसेनसेअसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९ ॥

वेदविषय में तुमुन्प्रत्यय के अर्थ में धातु से से, सेन्, असे असेन्, क्से, कसेन्, अध्यै, अध्यैन्, कध्यै, कध्यैन्, शध्यै, शध्यैन्, तवै, तवेङ्, तवेन् ये प्रत्यय हों ।

तुमर्थ से भाव*लिया जाता है। से।वच्,वचे। वक्तुं प्राप्त था।यहां वच् धातु से से प्रत्यय (सन्धि०३०२) कुत्व और ष (५६) आदेश होजाता है। वक्षे रायः। सेन्। एषे। इण् धातु को सेन् प्रत्यय के परे गुण (२१) और षत्व होजाता है। तावामेषे रथानाम्। असे, असेन्,। जीव, क्रत्वे दक्षाय जीवसे। शारदो जीवसे धाः। कसे, प्र+इण, प्रेषे भगाय। कसेन्, श्रिञ्, गवामिव श्रियसे। अध्यै, अध्यैन्। उप+आङ्+चर, वामेखुपाचरध्यै। कध्यै, आङ्+हु, इन्द्राग्नी आहुवध्यै। कध्यैन्। श्रिञ् श्रियध्यै। शध्यै, मदी+णिच्,राधसः सह मादयध्यै। यहां शध्यै के परे शप् होकर णिच् को गुण हो जाता है। शध्यैन्, पा, वायवे पिबध्यै। तवै [पा] पाने सोममिन्द्राय पातवै। तवेङ् पूङ्, दशमे मासि सूतवे। तवेन् गम्लृ, स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ १५०१ ॥

१५०२—प्रयैरोहिष्यैअव्यथिष्यै ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १० ॥

वेदविषय में प्रयै, रोहिष्यै, अव्यथिष्यै ये शब्द तुमर्थ में निपातन किये हैं। प्रयै। यहां प्रपूर्वक या धातु से कै प्रत्यय और आलोप (२४४) होजाता है। प्रयै देवेभ्यः। प्रयातुम् प्राप्त था। रोहिष्यै। यहां रुह धातु से इष्यै प्रत्यय होता है। अपामोषधीनां रोहिष्यै। रोहितुं प्राप्त था। अव्यथिष्यै। यहां नञ्पूर्वक व्यथ धातु से इष्यै प्रत्यय होता है। अव्यथितुं प्राप्त था ॥ १५०२ ॥

१५०३—दृशे विख्ये च ॥

वेदविषय में तुमर्थ में दृशे विख्ये ये निपातन हैं। दृश धातु से के प्रत्यय होजाता है। दृशे विश्वाय सूर्यम्। वि+ख्या,से के प्रत्यय हुआ। विख्ये त्वा हरामि॥ १५०३॥

१५०४—शकि णमुल्कमुलौ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १२ ॥

वेदविषय में शक्लृ धातु उपपद हो तो तुमर्थ में धातु से णमुल् और कमुल् प्रत्यय हों। णमुल्, वि+भज, अग्निं वै देवा विभाजं नाशक्नुवन्। विभक्तुं प्राप्त था णित् से वृद्धि हो जाती है। कमुल्, अप+लुप्लृ, अपलुपं नाशक्नुवन्।,अपलोप्तुं प्राप्त था ॥ १५०४ ॥

१५०५—ईश्वरे तोसुन्कसुनौ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १३ ॥

वेदविषय में ईश्वर शब्द उपपद हो तो धातु से तोसुन् और कसुन् प्रत्यय हों। ईश्वरो विचरितोः। विचरितुं प्राप्त था। ईश्वरोभिचरितोः। अभिचरितुम्। प्राप्तथा। ईश्वरो विलिखः। विलिखितुम् प्राप्त था ॥ १५०५ ॥

---

* तुमुन् प्रत्यय किसी विशेष अर्थ में नहीं कहा और अनिर्दिष्टार्थाश्च प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति जिन प्रत्ययों का विशेष अर्थ न कहा है वे स्वार्थ में होते हैं स्वार्थ धातुओं का भावमात्र है इस से तुमर्थ करके भाव का ग्रहण है

१५०६—कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १४ ॥

वेदविषय में कृत्यार्थ (भाव, कर्म) में धातु से तवै, केन् केन्य, त्वन् ये प्रत्यय हों। तवै। क्षि स्क, क्षि चक्षितवै। क्षि चिक्षितव्यम्। अनु+इण्, अन्वेतवै। अन्वेतव्यम्। केन्। अव+गाह्ङ, नावगाहे। नावगाहितव्यम्। केन्य। शु+सन्, शुश्रूषेण्यः। शुश्रूषितव्यम्। त्वन्। डुकृञ्, कर्त्वं हविः। कर्त्तव्यम् प्राप्त था ॥ १५०६ ॥

१५०७—अवचक्षे च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १५ ॥

वेदविषय में कृत्यार्थ में अवपूर्वक चक्षिङ् धातु से एश् प्रत्यय निपातन है। रिपुणा नावचक्षे। अवख्यातव्यम्। प्राप्त था ॥ १५०७ ॥

१५०८—भावलक्षणे स्थेण्कृञ्वदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १६ ॥

वेदविषय में भावलक्षण (क्रिया जिस से लक्षित हो उस अर्थ) में वर्त्तमान स्था, इण्, कृञ्, वदि, चरि, हु, तमि, जनि इन धातुओं से तुमर्थ में तोसुन् प्रत्यय हो। सम्+स्था, संस्थातोर्वेद्यां सीदन्ति। समाप्तिपर्यन्त वेदी में ठहरते हैं यहां संस्थिति अर्थात् समाप्ति से ठहरना क्रिया लखी गई इस लिये सम्पूर्वक स्था धातु से तोसुन् प्रत्यय हुआ। इसी प्रकार अगले प्रयोग भी समझना चाहिये। उद्+इण्, पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः। अप+आङ्+कृञ्, पुरा वत्सानामपाकर्त्तोः। प्र+वद, पुरा प्रवदितोरग्नौ प्रहोतव्यम्। प्र+चर, पुरा प्रचरितोराग्नीध्रे होतव्यम्। हु, आहोतोरप्रमत्तस्तिष्ठति। तमु, आतमितोरासीत। जनी, काममाविजनितोः संभवाम ॥ १५०८ ॥

१५०९—सृपितृदोः कसुन् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १७ ॥

वेदविषय में भावलक्षण में वर्त्तमान सृपि और तृद धातु से तुमर्थ में कसुन् प्रत्यय हो। सृप, पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्। तृद, पुरा जर्त्तृभ्य आतृदः ॥ १५०९ ॥

१५१०—अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १८ ॥

प्रतिषेध अर्थ वाले अलं और खलु उपपद हों तो प्राचीनों के मत में धातु से क्त्वा प्रत्यय हो। कृत्प्रत्ययान्त अव्यय भाव में होते हैं इस से क्त्वा को भाव में जानना चाहिये। डुदाञ्, अलं दत्त्वा। मत देओ। पठ, खलु पठित्वा। मत पढ़ो। अलं खलु-ग्रहण से यहां न हुआ। माकार्षीत्। वह मत करे। प्रतिषेधग्रहण से यहां न हुआ। अलंकारः। आभूषण। यहां प्राचां ग्रहण सत्कार के लिये है। क्योंकि वासरूपविधि से यथाप्राप्त अन्य प्रत्यय भी हो जायगा। जैसे अलं रोदनेन ॥ १५१० ॥

१५११—उदीचां माङो व्यतीहारे ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १९ ॥

उदीचों के मत में व्यतीहार (उलट पलट होना) अर्थ में वर्त्तमान मेङ् धातु से क्त्वा प्रत्यय हो (अप+मेङ्+क्त्वा+सु=) यहां (कुगति०) सूत्र से समास होकर ॥१५११॥

१५१२—समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ॥ अ० ॥ ७ । १ । ३७ ॥

नञ् पूर्वक समास न हो तो क्त्वा के स्थान में ल्यप् आदेश हो । इस से (क्त्वा) को ल्यप् आदेश हुआ । कर (अप+मेङ्+ल्यप्+सु=) इस अवस्था में ॥ १५१२ ॥

१५१३—मयतेरिदन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ७० ॥

ल्यप् परे हो तो आकारान्त मेङ् धातु को इकारादेश विकल्प करके हो (सन्धि० ५८) इस सूत्र के अनुसार मेङ् के अन्त्य को इकार होकर (सन्धि० २७२) तुक् हो जाता है । जैसे । अपमित्य याचते । वस्त्र आदि को उलटते पलटते मांगता है । जहां इकार न हुआ वहां आत्व (२४२) हो जाता है । जैसे अपमाय याचते यहां पूर्वकाल की प्रतीति नहीं है इस से यह क्त्वा विधान किया क्योंकि पूर्वकाल में क्त्वा (१५१६) विधान करेंगे । उदीचों के ग्रहण से औरों के मत में पूर्वकालि क्त्वा भी मेङ् धातु से होता है जैसे । याचित्वा अपमयते ॥ १५१३ ॥

१५१४—क्त्वापि छन्दसि ॥ अ० ॥ ७ । १ । ३८ ॥

वेदविषय में अनञ्पूर्वसमास में क्त्वा और ल्यप् होतीक्त्वा को आदेश हो । कृष्णं वासो यजमानं परिधापयित्वा। प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा। ल्यप्, उद्धृ ‥जुहोति ग्रहण से भी दोनों आदेश होजाते तथापि यहां क्त्वा ग्रहण सर्वोपाधि की निवृत्ति लिये है । इस से असमास में भी ल्यप् होता है । अर्च्य तान् देवान् गतः ॥ १५

१५१५—परावरयोगे च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । २० ॥

पर से पूर्व का और अवर अर्थात् पूर्व से पर का योग गम्यमान हो तो धा से क्त्वा प्रत्यय हो । परयोग, अप्राप्य ग्रामं पर्वतः स्थितः । ग्राम को न पाकर पर्व रहा । अर्थात् ग्राम से परे पर्वत है । यहां प्रपूर्वक आप्लृ धातु से क्त्वा प्रत्यय फि प्रादिसमास (सामा० कुगति०) होने से ल्यप् आदेश होकर नञ्समास होता है अवरयोग, अतिक्रम्य पर्वतं ग्रामः स्थितः । पर्वत को अतिक्रमण करके ग्राम रहा । अर्थात् पर्वत ग्राम से पहिले है ॥ १५१५ ॥

१५१६—समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ॥ अ० ॥ ३ । ४ । २१ ॥

जिन का समान कर्त्ता है ऐसे जो धातु उन में जो पूर्व काल विषयक अर्थ वर्त्तमान धातु उस से क्त्वा प्रत्यय हो । भुक्त्वा व्रजति । भोजन करके जाता है यहां भोजन क्रिया प्रथम करना है इस से भुज धातु से क्त्वा प्रत्यय हो गया । इ

प्रकार। स्नात्वा पठति। इत्यादि समझना चाहिये (समानकर्तृकयोः) यह विष चन अतन्त्र है इस से। स्नात्वा पीत्वा भुक्त्वा पठित्वा गच्छति। इत्यादिकों में भी क्त्वा प्रत्यय होताहै।समानकर्तृकग्रहणसे यहां नहुआ। वर्षति मेघे देवदत्तोगतः। पूर्वकालग्रहण से यहां न हुआ।गच्छन् पठति। जाता पढ़ता है। यहां पूर्वकालता नहीं तथा। मुखंव्यादाय स्वपिति। यहां भी पूर्वकालता नहीं क्योंकि सोने वाले कामुख सोनेके पीछे फैलताहै तथापिमुखफैले पीछे जोनिद्रा है उससे मुख का फैलना पूर्वकाल में है इस से पूर्वकालता सिद्ध है क्योंकि सोनेवाला मुख फैले पीछे दो घड़ी अवश्य सोवेगा॥ १५१६॥

१५१७—क्त्वि स्कन्दस्यन्दोः॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३१ ॥

क्त्वा प्रत्यय परे होतो स्कन्द और स्यन्दू धातु के उपधानकार का लोप न हो [स्कन्दिर्] गतिशोषणयोः। स्कन्त्वा[स्यन्दू] प्रस्रवणे यह ऊदित् है इस से परे क्त्वा को विकल्पकरके इट् होगा। जिस पक्ष में इट्नहीं होता उस पक्ष में (१३९) प्राप्त जो नलोप उस का निषेध हो गया। स्यन्त्वा। और जहां इट् होता है वहां॥ १५१७॥

१५१८—न क्त्वा सेट्॥अ०॥ १ । २ । १८ ॥

सेट् (इट्सहित) क्त्वा प्रत्यय कित् संज्ञक न हो। इस से कित् संज्ञा का निषेध हो कर नलोप भी नहीं होता। जैसे स्यन्दित्वा। शयित्वा। सेट् ग्रहण इस लिये है कि। कृत्वा। हृत्वा इत्यादि में कित् निषेध नहो॥ १५१८॥

१५१९—मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा॥ अ०॥ १ । २ । ७॥

मृड,मृद,गुध,कुष,क्लिश,वद,और वस धातु से परे सेट् क्त्वा कित् संज्ञक हो। पिछले सूत्र से कित् संज्ञा का निषेध था इस लिये विधान किया। मृडित्वा[क्लिशू] विबाधने क्लिशित्वा (स्वरि०) क्लिष्ट्वा। वद,उदित्वा (२८३) वस, उषित्वा॥१५१९॥

१५२०—नोपधात्थफान्ताद्वा॥ अ० ॥ ६ । २ । २३ ॥

नकारजिस के उपधा में तथा थ और फ अन्त में हों उस धातु से परे सेट् क्त्वा कित् संज्ञक विकल्प कर के हो। थान्त, ग्रथित्वा। ग्रन्थित्वा। फान्त, गुफित्वा। गुम्फित्वा। नोपधग्रहण से। कोथित्वा। यहां कित् संज्ञा का विकल्प नहीं होता किन्तु (१५१८) इस से नित्य कित् संज्ञाका निषेध हो कर गुण हो जाताहै॥१५२०॥

१५२१—वञ्चिलुञ्च्यृतश्च॥ अ०॥ १ । २ । २४ ॥

वञ्चि, लुञ्चि, ऋत् इन धातुओं से परे सेट्क्त्वा विकल्प करके कित् संज्ञक हो। [वञ्चु] गतौ वञ्चित्वा। वचित्वा [लुञ्च] अपनयने लुचित्वा। लुञ्चित्वा। ऋत, यह सौत्र धातु है। ऋतित्वा। अर्तित्वा॥ १५२१॥

१५२२ – तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य ॥ अ० ॥ १ । २ । २५ ॥

काश्यप आचार्य के मत में तृषि, मृषि और कृशि धातु से परे सेट् क्त्वा विकल्प कर के कित् संज्ञक हो । ञितृष, तृषित्वा । तर्षित्वा । मृषु, मृषित्वा । मर्षित्वा । कृश, कृशित्वा । कर्शित्वा । द्युतित्वा । द्योतित्वा । लिखित्वा । लेखित्वा (५१२) उषित्वा । वसित्वा (११७३) अञ्चित्वा (११७४) लुभित्वा । लोभित्वा (११७५) ॥ १५२२ ॥

१५२३–जृव्रश्च्योः क्त्वि ॥ अ० । ७ । २ । ५५ ॥

जॄ और व्रश्चू धातु से क्त्वा को इट् आगम हो । जॄष् जरीत्वा (२६४) जरित्वा । ओव्रश्चू, व्रश्चित्वा ॥ १५२३ ॥

१५२४–उदितो वा ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५६ ॥

जिस का उकार इत् संज्ञक हो उस धातु से परे क्त्वा को इट् विकल्प करके हो । शमु, शमित्वा शान्त्वा (५८७) ॥ १५२४ ॥

१५२५–क्रमश्च क्त्वि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १८ ॥

झलादि क्त्वा प्रत्यय परे होतो क्रम् धातु की उपधा को विकल्प करके दीर्घ हो । क्रमु, क्रान्त्वा । क्रन्त्वा सन्धि० २५८ २६४) झलादि ग्रहण से यहां उपधालोप न हुआ । क्रमित्वा (१५२४) ॥ १५२५ ॥

१५२६—जान्तनशां विभाषा ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३२ ॥

जकार जिन के अन्त में हो उन अङ्गों और नश अंग की उपधा का लोप विकल्प करके हो [भञ्जो] आमर्दने । भक्त्वा । भङ्क्त्वा । रञ्ज,रक्त्वा । रङ्क्त्वा । नश, नष्ट्वा । यहां (४०९) नुम् होता है उस का एकपक्ष में लोप हो गया । और दूसरे पक्ष में न हुआ । जैसे । नंष्ट्वा (४०७) सूत्र से पक्ष में । नशित्वा । खात्वा (३८४) दो, दित्वा । षो, सित्वा । मा,मित्वा । स्था,स्थित्वा । इन सभों में (१२०७) सूत्र से इकार० । डुधाञ्, हित्वा (१२०८) ॥ १५२६ ॥

१५२७–जहातेश्च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४३ ॥

वेदविषय में जहाति(ओहाक्)अंग को विकल्प करके हि आदेश हो [ओहाक्] त्यागे । हित्वा । और [ओहाङ्] गतौ । इस का । हात्वा । होगा । अद, जग्ध्वा । (१२१६) सूत्र से जग्धि आदेश हो जाता है ॥ १५२७ ॥

१५२८—वा ल्यपि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३८ ॥

ल्यप् प्रत्यय परे हो तो अनुदात्तोपदेश वनति और तनोत्यादि अंगों के अनुनासिक का लोप विकल्प करके हो । यह व्यवस्थित विभाषा है इस से मकारान्त

अङ्गों के अनुनासिक का लोप विकल्प करके तथा औरों के नित्य होता है। जैसे। मान्त अङ्ग गम्, आगत्य। आगम्य। नम्, प्रणत्य। प्रणम्य। मान्तों से अन्यत्र। हन् प्रहत्य। मन्, प्रमत्य। वन्, प्रवत्य (परिभा० ४६) परिभाषा के अनुसार ल्यप् के विषय में (हि, दथ्, आ, इत्, दीर्घ, इट्) ये विधि क्त्वा प्रत्यय के आश्रय से होने वाले अन्तरङ्ग भी हैं पर नहीं होते किन्तु क्त्वा को बहिरङ्ग ल्यप् आदेश हो जाता है। जैसे। हि, विधाय (१२०८) दथ् प्रदाय (१२११) आ, प्रखन्य ३८४) इत्,प्रस्थाय। दीर्घ प्रक्रम्य ५८७) प्रदीव्य (४६)॥१५२८॥

१५२९—न ल्यपि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६९ ॥

ल्यप् परे हो तो घुसंज्ञक,मा,स्था,गा,पा,जहाति (ओहाक्) और सा इन अंगों को ईकारादेश न हो। धेट्,प्रधाय। माङ्,प्रमाय। स्था,प्रस्थाय। गै,प्रगाय [पा] पाने प्रपाय। प्रहाय। षो, प्रसाय [मीञ्] हिंसायाम् प्रमाय [डुमिञ्] प्रक्षेपणे। निमाय [दीङ्] क्षये। अवदाय। इन में आत्व० (३९९) [लीङ्] श्लेषणे विलाय (४००) आत्व हो जाता। दूसरे पक्ष में। विलीय। विचर+णिच्, विचार्य। यहां णिलोप (१७७)॥ १५२९ ॥

१५३१—ल्यपि लघुपूर्वात् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५६ ॥

ल्यप् परे हो तो पूर्व जो लघु हो उस से परे णि के स्थान में अय् आदेश हो। वि+गण+णिच्,विगणय्य। प्रणमय्य। यहां णकार का अकार पूर्व है उस से उत्तर णि को अय् आदेश हो जाता है किन्तु लोप (१७७) नहीं होता लघुपूर्वग्रहण से यहां न हुआ। संप्रधृञ्+णिच्, संप्रधार्य्य गतः॥ १५३० ॥

१५३१—विभाषापः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५७ ॥

आप्लृ धातु से परे णि को अय् आदेश विकल्प करके हो। प्र+आप्लृ+णिच् प्रापय्य प्राप्य वा पठति। यहां णिलोप (१७७) हो जाता है॥ १५३१ ॥

१५३२—जनिता मंत्रे ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५३ ॥

मंत्रविषय में णिलोप से जनिता यह निपातन है। यो नः पिता जनिता। यहां जन धातु से इडादि तृच् प्रत्यय के परे णि लोप निपातन से होता है। मंत्र से अन्यत्र। जनयिता। होगा॥ १५३२ ॥

१५३३—शमिता यज्ञे ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५४ ॥

यज्ञ कर्म में णिलोप से शमिता यह निपातन है। शृतं हविः शमितः। यह संबुद्धिविषय में प्रयोग है। यहां शमु धातु से तृच् प्रत्यय के परे णिच् का लोप हो जाता है यज्ञ से अन्यत्र। शमयितः। यह प्रयोग होगा॥ १५३३ ॥

१५३४—युप्लुवोर्दीर्घश्छन्दसि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५८ ॥

ल्यप् परे हो तो वेदविषय में यु और प्लु धातु को दीर्घादेश हो । यु, दाम्य-नुपूर्वं वियूय। यहां विपूर्वक यु धातु को ल्यप् के परे दीर्घ० । प्लुङ् यत्रायो दक्षिणा परिप्लूय । यहां परिपूर्वक प्लु को दीर्घ० । वेदसे अन्यत्र । संयुत्य । संप्लुत्य ॥ १५३४ ॥

१५३५—क्षियः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५९ ॥

ल्यप् परे होतो क्षि धातु को दीर्घादेश हो । प्रक्षीय । संक्षीय ॥ १५३५ ॥

१५३६—ल्यपि च ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४१ ॥

ल्यप् परे होतो वेञ् धातु को संप्रसारण न हो । प्र+वेञ्,प्रवाय तिष्ठति ॥१५३६॥

१५३७—ज्यश्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४२ ॥

ल्यप् परे हो तो ज्या धातु को भी संप्रसारण न हो [ज्या] वयोहानौ । प्रज्या-योपरमति । बुड्ढा हो कर सब कामों से निवृत्त होता है ॥ १५३७ ॥

१५३८—व्यश्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४३ ॥

ल्यप् के परे व्या धातु को भी संप्रसारण न हो [व्येञ्] संवरणे । उपव्याय ॥१५३८॥

१५३९—विभाषा परेः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४४ ॥

ल्यप् परे हो तो परि उपसर्ग से परे व्येञ् धातु को विकल्प करके संप्रसारण हो । परिवीय । यहां संप्रसारण किये पीछे तुक् (संधि० २७२) सूत्र से प्राप्त उस को बाध कर (हलः) सूत्र से दीर्घादेश हो जाता है ॥ १५३९ ॥

१५४०—आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । २२ ॥

आभीक्ष्ण्य (वार २ होना) अर्थ गम्यमान हो तो समानकर्तृक धातुओं में जो पूर्वकाल में वर्तमान धातु है उस से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय भी हो ॥१५४०॥

१५४१–वा०—आभीक्ष्ण्ये द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

आभीक्ष्ण्य * अर्थ में वर्त्तमान जो शब्द है उसको द्विर्वचन हो । जैसे । भुज, भोजं भोजं व्रजति।भुज,भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति । स्मृ,स्मारं स्मारं पठति । स्मृत्वा २

* (नित्यवीप्सयोः) इस सब से से जो द्विर्वचन होता है वह नित्य अर्थात् क्रिया के अविच्छिन्न होने में होता किन्तु वार २ होने में नहीं होता है जैसे किसीने कहा । मर्जं वति जीवति । यहां यह अर्थ प्रतीत होगा कि वह जीवता ही है । किन्तु जी के मरता फिर मर के जीवता यह नहीं प्रतीत होगा । भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति । भोजं भोजं व्रजति । यहां भोजन करता फिर जाता है फिर भोजन करता फिर जाता है यह भोजन क्रिया का वार २ होना प्रतीत होता है । इस लिये क्रिया के वार २ होने में (नित्यवीप्सयोः) से द्विर्वचन नहीं प्राप्त था इस से आभीक्ष्ण्य अर्थ में द्विर्वचन का विधान किया ।

पठति यहां पूर्वसूत्र से णमुल् प्रत्यय होकर क्त्वा और णमुल् प्रत्ययान्त को द्विर्वचन हो जाता है ॥ १५४१ ॥

१५४२—न यद्यनाकाङ्क्षे ॥ अ॰ ॥ ३ । ४ । २३ ॥

यद् शब्द उपपद हो और अनाकाङ्क्ष वाक्य हो तो धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय न हो । जिस वाक्य में अगली पिछली दो क्रिया रहें और वह कुछ पर की आकाङ्क्षा न करे उस का यहां ग्रहण है । जैसे । यदयं पठति ततः पचति जब यह पढ़ लेता है तदनन्तर पाक करता है । यहां यदयं पठति इस अंश में जो पठनक्रिया है उस को कुछ पचन की आकाङ्क्षा नहीं है । अनाकाङ्क्षग्रहण से यहां निषेध नहीं होता । यदयं पठित्वा गच्छति ततःपरमेव प्रसीदति । जब यह पढ़ के जाता है तदनन्तर ही प्रसन्न होता है । यदयं बालः आवं आवं विस्मरति ततः परमेव पापृच्छ्यते । इत्यादि ॥ १५४२ ॥

१५४३—विभाषाग्रेप्रथमपूर्वेषु ॥ अ॰ ॥ ४ । ४ । २४ ॥

अग्रे प्रथम पूर्व ये उपपद हों तो समानकर्तृकों में जो पूर्वकाल में वर्तमान धातु है उस से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय विकल्प करके हो । यह अप्राप्त विभाषा है अग्रे पठित्वा गच्छति।अग्रेपाठं गच्छति।प्रथमं पठित्वागच्छति । प्रथमंपाठं गच्छति । पूर्वं पठित्वा गच्छतिपूर्वंपाठं गच्छति।विभाषाग्रहण इस लिये है कि जब क्त्वा,णमुल् नहीं होते तब लट् आदि प्रत्यय होते हैं जैसे।अग्रे पठति ततो व्रजति।आभीक्ष्ण्य अर्थ में तो पूर्वविप्रतिषेध से नित्य क्त्वा और णमुल् होते हैं जैसे । अग्रे पठित्वा पठित्वा गच्छति । अग्रे पाठं पाठं गच्छति । इत्यादि ॥ १५४३ ॥

१५४४—कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ् ॥ अ॰ ॥ ३ । ३ । २४ ॥

आक्रोश गम्यमान हो और कर्म उपपद हो तो समानकर्तृकों में जो पूर्व काल में वर्त्तमान धातु उस से खमुञ् प्रत्यय हो । चोरंकारमाक्रोशति । चोर कहि कर कोशता है । यहां कृञ् धातु उच्चारण अर्थ में है ॥ १५४४ ॥

१५४५—स्वादुमि णमुल् ॥ अ॰ ॥ ३ । ४ । २६ ॥

स्वादु शब्द के अर्थ वाले शब्द उपपद हों तो समानकर्तृकों में जो पूर्वकाल में वर्तमान धातु है उससे णमुल् प्रत्ययहो । स्वादुंकारं भुङ्क्ते । संपन्नंकारं भुङ्क्ते। लवणंकारं भुङ्क्ते । यहां संपन्न और लवण शब्द स्वादु शब्दके पर्याय वाचक हैं । स्वादुमि मान्तनिपातनं क्रियते ईकाराभावार्थम् । च्व्यन्तस्य च मकारार्थम् । महाभाष्य॰ । ३ । ४ । २६ । स्वादु शब्द से ईकार का अभाव और च्व्यन्त स्वादु शब्द को मकारान्त रहने के लिये (स्वादुमि) यहां स्वादु शब्द को मकारान्त

निपातन किया है (ईकार) स्त्रीलिंग की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय से प्राप्त है। जैसे । स्वादीं कृत्वा यवागूं भुङ्क्ते । यहां (स्त्रैण०७६) इस सूत्र से उकारान्त गुणवाची स्वादु शब्द से ङीष् प्राप्त था सो न हुआ (च्व्यन्त) अस्वादु स्वादु कृत्वा भुङ्क्ते । स्वादुंकारं भुङ्क्ते । अब णमुल् का अधिकार है सो समानकर्तृकों में जो पूर्वकाल में वर्त्तमान धातु है उससे प्रायः होता है ॥ १५४५ ॥

१५४६—अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ॥अ०॥३।४।२७॥

जो सिद्ध कृञ् धातु का अप्रयोग हो और अन्यथा, एवं, कथं, इत्थं ये उपपद हों तो कृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय हो। जो कृञ् धातु के प्रयोग के विना भी अभीष्ट अर्थ वाक्य से कहा जाय तो कृञ् के प्रयोग को भी अप्रयोग के तुल्य समझना चाहिये जैसे । अन्यथाकारं पठति शिक्षाविरही बालः । शिक्षा से रहित बालक अन्यथा अर्थात् उच्चारणादि नियम से रहित पढता है यह अर्थ तो। अन्यथा पठति शिक्षाविरही बालः । इस वाक्य से भी होता है । इस लिये पूर्व वाक्य में सिद्ध कृञ् धातु का अप्रयोग समझना चाहिये । सिद्धाप्रयोगग्रहण से यहां णमुल् नहीं होता । शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते । शिर को और ढंग से करके भोजन करता है। यह अर्थ शिरोऽन्यथा भुङ्क्ते। इस वाक्य से न होगा ॥ १५४६ ॥

१५४७—यथातथयोरसूयाप्रतिवचने ॥ अ० । ३ । ४ । २८॥

सिद्ध कृञ् धातु का अप्रयोग हो असूयाप्रतिवचन गम्यमान हो और यथा, तथा शब्द उपपद हों तो कृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय हो । असूया अर्थात् जो न सहन करके दूसरे की निन्दा करना उस का प्रतिवचन उत्तर। जैसे कथं त्वं पठिष्यसि। यथाकारं पठिष्यामि तथाकारं पठिष्यामि किं तवानेन। कैसे तू पढ़ेगा। जैसे पढूंगा वैसे पढूंगा तुझको इस से क्या॥ असूयाप्रतिवचन के ग्रहण से यहां न हुआ॥ यथा कृत्वाहं पठिष्यामि तथा त्वं द्रक्ष्यसि । सिद्धाप्रयोग के ग्रहण से यहां न हुआ। शिरो यथा कृत्वाहं भोक्ष्ये किं तवानेन ॥ १५४७ ॥

१५४८—कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये ॥ अ० ॥ ३ । ४ । २९ ॥

कर्म उपपद हो तो साकल्य अर्थ में दृश और विद धातु से णमुल् प्रत्यय हो। पुस्तकदर्शं पठति । अर्थात् जो जो पुस्तक देखता है उस २ को पढ़ लेता है। भिक्षुवेदं ददाति । जिस २ भिखारी को जानता पाता विचारता उस २ को देता है। ब्राह्मणवेदं भोजयति (विद) से ज्ञान लाभ और विचार इन अर्थों वाले विद धातु का ग्रहण है। साकल्य ग्रहण से यहां न हुआ पुस्तकं दृष्ट्वा पठति ॥ १५४८ ॥

१५४६—यावति विन्दजीवोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३० ॥

यावत् उपपद हो तो विद्लृ और जीव धातु से णमुल् प्रत्यय हो । यावद्वेदं भुङ्क्ते । अर्थात् जितना पाता है उतना भोजन करता है । यावज्जीवमधीते। जितना जीवता है उतना अध्ययन करता है ॥ १५४९

१५५०—चर्मोदरयोः पूरेः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३१ ॥

चर्म और उदर उपपद हों तो णिजन्त पूरि धातु से णमुल् प्रत्यय हो । पूरी+णिच्, चर्मपूरमाच्छादयति। चाम पूरा ढ़ांपता है । अर्थात् जितना शरीर का चाम है सब ढांपता है । उदरपूरं भुङ्क्ते । उदर पूरा भोजन करता है॥१५५०॥

१५५१—वर्षप्रमाण ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम्॥अ०॥ ३ । ४ । ३२ ॥

प्रकृति प्रत्यय के समुदाय से जो वर्षा का प्रमाण गम्यमान हो तो कर्मोपपद णिजन्त पूरी धातु से णमुल् प्रत्यय हो और इस पूरी धातु के ऊकार का लोप भी विकल्प करके हो । गोःपदं गोष्पदं गोष्पदम् पूरयित्वा वृष्टो मेघः, गोष्पदपूरं वृष्टो मेघः। ऊलोपपक्ष में । गोष्पदप्रं वृष्टो मेघः । गौ के खुर पूरा कर मेघ वरसा। अस्य ग्रहण इसलिये है कि धातु ही के ऊकार का लोप हो उपपद के ऊकार का न हो । जैसे मूषिकाविलपूरं वृष्टो मेघः । मूषिकाविलप्रं वृष्टो मेघः ॥ १५५१ ॥

१५५२—चेले क्नोपेः ॥ अ ॥ ३ । ४ । ३३ ॥

वर्षा का प्रमाण गम्यमान हो और चेल शब्दार्थक कर्म उपपद हो तो णिजन्त क्नूयी धातु से णमुल् प्रत्यय हो। चेलक्नोपं वृष्टो मेघः । वसनक्नोपं वृष्टोमेघः । चैल क्नोपं वृष्टो मेघः । कपड़ा भिगोने भर मेघ वरसा ॥ १५५२ ॥

१५५३—निमूलसमूलयोः कषः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३४ ॥

निमूल और समूल कर्म उपपद हों तो कष धातु से णमुल् प्रत्यय हो। निमूलं कषति, निमूलकाषं कषति । जड़ को छोड़ के जैसे काटता हो वैसे काटता है । समूलं कषति समूलकाषं कषति । जड़ समेत जैसे काटता हो वैसे काटता है । यहां से कषादिकों का प्रकरण है इन में यथाविधि अनुप्रयोग अर्थात् जिस धातु से णमुल् विधान करें उसी धातु का पीछे प्रयोग होता है। और इस प्रकरण में पूर्वकाल की अनुवृत्ति नहीं है ॥ १५५३ ॥

१५५४—शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३५ ॥

शुष्क, चूर्ण, रूक्ष ये कर्म उपपद हों तो पिष धातु से णमुल् प्रत्यय हो । शुष्कपेषं पिनष्टि । सूखा पीसता हो वैसे पीसता है । चूर्णपेषं पिनष्टि । रूक्षपेषं पिनष्टि ॥ १५५४

१५५५—समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३६ ।

समूल अकृत जीव ये कर्म उपपद हों तो यथासंख्य करके हन्, कृञ् और ग्रह धातु से णमुल् प्रत्यय हो । समूलघातं हन्ति । मूल समेत जैसे मारता हो वैसे मारता है । अकृतकारं करोति । न किये को जैसे करता हो वैसे करता है । जीवग्राहं गृह्णाति । जीव का ग्रहण करता हो वैसे ग्रहण करता है ॥ १५५५ ॥

१५५६—करणे हनः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३७ ॥

करण उपपद हो तो हन् धातु से णमुल् प्रत्यय हो । पादेन हन्ति, पादघातं हन्ति । यष्टिकाघातं हन्ति । लात वा लठ से मारता हो वैसे मारता है ॥ १५५६ ॥

१५५७—स्नेहने पिषः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३८ ॥

स्नेहन अर्थात् जिससे भचिक्कन करे ऐसा करण उपपद हो तो पिष धातु से णमुल् प्रत्यय हो । उदपेषं पिनष्टि । तैलपेषं पिनष्टि । कषायपेषं पिनष्टि । उदक, तैल, और कषाय अर्थात् कषैला बबूर आदि के काढे हुए रस से जैसे पीसता हो वैसे पीसता है ॥ १५५७ ॥

१५५८—हस्ते वर्त्तिग्रहोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३९ ॥

हस्तवाची करण उपपद हो तो णिजन्त वृतु और ग्रह धातु से णमुल् प्रत्यय हो । हस्तेन वर्त्तयति हस्तवर्त्तं वर्त्तयति । करवर्त्तं वर्त्तयति । हस्तेन गृह्णाति, हस्तग्राहं गृह्णाति । करग्राहं गृह्णाति ॥ १५५८ ॥

१५५९—स्वे पुषः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४० ॥

स्वशब्दार्थक करण उपपद हो तो पुष धातु से णमुल् प्रत्यय हो । स्व शब्द आत्मा आत्मीय ज्ञाति और धन का वाची है । स्वेन पुष्णाति, स्वपोषं पुष्णाति । आत्मपोषं पुष्णाति । पितृपोषम् । मातृपोषम् । धनपोषम् । रैपोषम् पुष्णाति ॥ १५५९ ॥

१५६०—अधिकरणे बन्धः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४१ ॥

अधिकरणवाची उपपद हो तो बन्ध धातु से णमुल् प्रत्यय हो । चक्रे बध्नाति, चक्रबन्धं बध्नाति । शकटबन्धं बध्नाति । मुष्टिबंधं बध्नाति । पहिये गाड़ी वा मुट्ठी में बांधता हो वैसे बांधता है ॥ १५६० ॥

१५६१—संज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४२ ॥

संज्ञाविषय में बन्ध धातु से णमुल् प्रत्यय हो । क्रौंच इव बध्नाति क्रौंचबन्धं बध्नाति । क्रौंचबन्धं बद्धः । मयूरिका बन्धं बध्नाति । अट्टालिकाबन्ध बध्नाति । ये बंधनई के नाम हैं । क्रौंच पक्षी मोरिनो और अटारी के समान बांधना हो वैसे बांधता है ॥ १५६१ ॥

१५६२—कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४३ ॥

कर्त्तृवाचक जीव और पुरुष शब्द उपपद हों तो यथासंख्य करके नश और वह धातु से णमुल् प्रत्यय हो । जीवनाशं नश्यति । जीव सो नष्ट होता है । पुरुष वाहं वहति ।पुरुष की बड़ाई वहता है अर्थात् पुरुष जैसे जहां तहां वस्तु लेजाने लेआने में वहता रहता है वैसे वहता है । कर्त्तृवाचक के ग्रहण से यहां न हुआ। जीवेन नष्टः । पुरुषेणोढः । यहां जीव और पुरुष ये करण हैं इस से णमुल् न हुआ । किन्तु क्त प्रत्यय हो जाता है ॥ १५६२ ॥

१५६३—ऊर्ध्वे शुषिपूरोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४४ ॥

ऊर्ध्वशब्द कर्त्तृवाचक उपपद होतो शुष और पूरी धातु से णमुल् प्रत्यय हो । ऊर्ध्वशोषं शुष्यति ।ऊपर को सूखता हो वैसे सूखता है । वृक्ष आदि ऊपर ही को खड़े २ सूखते हैं । ऊर्ध्वपूरं पूर्यते घटः । ऊपर को पूरा होता हो वैसे घट पूरा होता है अर्थात् घट आदि का ऊपर को मुख होतो वर्षा आदि के जल से परिपूर्ण भर जाता है ॥ १५६३ ॥

१५६४—उपमाने कर्मणि च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४५ ॥

उपमानवाची कर्त्ता वा कर्म उपपद होतो धातु से णमुल् प्रत्यय हो । कर्म, घृतमिव निदधाति घृतनिधायं निदधाति जलम्।घी के समान धरता हो वैसे जल को धरता है । कर्त्ता, अजइव नश्यति अजनाशं नश्यति । छेरी के समान नष्ट होता हो वैसे नष्ट होता है ॥ १५६४ ॥

१५६५—कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४६ ॥

उक्तकषादिकों में यथाविधि अनुप्रयोग हो । अर्थात् जिस २ धातु से णमुल् कहा है उसी का पीछे से प्रयोग हो । इसी क्रम से कषादि कों में उदाहरण दिये हैं जैसे । निमूलकाषं कषति इत्यादि ॥ १५६५ ॥

१५६६—उपदंशस्तृतीयायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४७ ॥

तृतीयान्त उपपद हो तो समानकर्त्तृकों में जो पूर्वकाल विषयक अर्थ में

उपपूर्वक दंश धातु उस से णमुल् प्रत्यय हो। यहां से णमुल् के प्रकरण की समाप्ति तक पूर्वकाल का संबन्ध है। मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते मूलकोपदंशं मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते। मूली को काटके उससे भोजन करता है। यहां मूलकमुपदशति। इस अवस्था में मूलकशब्द उपदंश धातु का कर्म भी है तथापि भुजि क्रिया का करण होने से तृतीयान्त होजाता है। यद्यपि मूलक शब्द का उपदंश के साथ शाब्दसंबन्ध नहीं है तथापि कर्म होनेसे उसका अर्थकृतसंबन्ध है। इतने ही सामर्थ्य से (मूलक टा+उपदंश) इस से णमुल् प्रत्यय होता है और (सामा० तृतीया०) इस सूत्र सामर्थ्य से उपपद समास होता तथा आगे भी उसी सूत्र से विकल्प करके उपपद समास होता है ॥ १५६६ ॥

१५६७—हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४८ ॥

तृतीयान्त उपपद हो तो अनुप्रयोग जो धातु उस से जिन का समान कर्म है उन हिंसार्थों से णमुल् प्रत्यय हो। दण्डोपघातं गाः कालयति। दण्डेनोपघातं गाः कालयति दण्ड से पीटकर गौओं को गिनता है। दण्डताडं वृषं बध्नाति। दण्डेनोपताडं वृषं बध्नाति। समानकर्मकग्रहण से यहां नहीं होता। अश्वं दण्डेनोपहत्य गाः कालयति। यहां उपपूर्व हन् और कल धातु का एक कर्म नहीं है ॥ १५६७ ॥

१५६८—सप्तम्यां चोपपीडरुधकर्षः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४९ ॥

सप्तम्यन्त और तृतीयान्त उपपद हो तो उपपूर्वक पीड रुध और कर्ष धातु से णमुल् प्रत्यय हो। पार्श्वोपपीडं शेते। पार्श्वयोरुपपीडं शेते। पांजर की ओर में दाब कर सोता है। पार्श्वाभ्यामुपपीडं शेते। पांजर से दाबकर सोता है। व्रजोपरोधं गाः कालयति। व्रज उपरोधं गाः कालयति। गोड़ा में रोक कर गौओं को गिनता है। व्रजेनोपरोधं गाः कालयति। गोंडासे रोक कर गौओं को गिनता है। पाण्युपकर्षं धानाः संगृह्णाति। पाणावुपकर्षं धानाः संगृह्णाति। हाथ में मीज कर धानों का संग्रह करता है। पाणिनोपकर्षं धानाः संगृह्णाति हाथ से मीज कर धानों का संग्रह करता है ॥ १५६८ ॥

१५६९—समासत्तौ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५० ॥

समासत्ति (संनिकट) अर्थ गम्यमान हो और तृतीयान्त वा सप्तम्यन्त उपपद हो तो धातु से णमुल् प्रत्यय हो। केशग्राहं युध्यन्ते। केशेषु ग्राहम्। केशैर्ग्राहं युध्यन्ते। हस्तग्राहम्। हस्तेषु ग्राहम्। हस्तैर्ग्राहं युध्यन्ते। अर्थात् युद्ध की प्रबलता से अत्यन्त निकट हो कर लड़ते हैं ॥ १५६९ ॥

१५७०—प्रमाणे च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५१ ॥

प्रमाण गम्यमान हो और तृतीयान्त वा सप्तम्यन्त उपपद हो तो धातु से णमुल् प्रत्यय हो । द्व्यङ्गुलोत्कर्षम् । द्व्यङ्गुल उत्कर्षम् । द्व्यङ्गुलेनोत्कर्षम् । वा काष्ठं छिनत्ति । दो अंगुल के प्रमाण में वा दो अंगुल के प्रमाण से काष्ठ को काटता है इत्यादि ॥ १५७० ॥

१५७१—अपादाने परीप्सायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५२ ॥

अपादान उपपद हो तो परीप्सा (सब ओर से चाहना) अर्थ में धातु से णमुल् प्रत्यय हो । शय्याया उत्थाय, शय्योत्थायं धावति । खाट से उठा और भजा अर्थात् और कुछ काम नहीं देखता है । जहां परीप्सा नहीं है वहां नहीं होता जैसे आसनादुत्थाय गच्छति ॥ १५७१ ॥

१५७२—द्वितीयायां च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५३ ॥

द्वितीयान्त भी उपपद हो तो परीप्सा अर्थ में धातु से णमुल् प्रत्यय हो । यष्टिग्राहं युध्यन्ते । लोष्टग्राहं युध्यन्ते । युद्ध की शीघ्रता में और शस्त्रों को छोड़ लाठी वा डेल लेकर युद्ध करते हैं ॥ १५७२ ॥

१५७३—अपगुरो णमुलि ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५३ ॥

णमुल् परे हो तो अपपूर्वक गुरी धातु के एच् को विकल्प करके आकारादेश हो [गुरी] उद्यमने । असिमपगूर्य युध्यन्ते, अस्यपगोरम् । अस्यपगारं युध्यन्ते ॥ १५७३ ॥

१५७४—स्वाङ्गेऽध्रुवे ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५४ ॥

अध्रुव (अस्थिर) स्वाङ्गवाची द्वितीयान्त उपपद हो तो धातु से णमुल् प्रत्यय हो । अक्षिनिकाणं जल्पति । आंख निकाल कर कहता है । भ्रूविक्षेपं कथयति । भौंहों को फरका कर कहता है । अध्रुव ग्रहण से यहां न हुआ । उत्क्षिप्य शिरः कथयति । शिर पटक के कहता है ॥ १५७४ ॥

१५७५—परिक्लिश्यमाने च ॥ अ० । ३ । ४ । ५५ ॥

परिक्लिश्यमान अर्थात् सब प्रकार से विशेष पीडा को प्राप्त जो स्वाङ्ग तद्वाचक जो द्वितीयान्त सो उपपद होतो धातु से णमुल् प्रत्यय हो । उरःपेषं युध्यन्ते । छाती पीसते लड़ते हैं । उरः प्रतिपेषं युध्यन्ते । शिरःपेषं युध्यन्ते । शिरः प्रतिपेषं युध्यन्ते । समस्त शिर पीसे लड़ते हैं । यह ध्रुवार्थ आरम्भ है ॥ १५७५ ॥

१५७६–विशिपतिपदिस्कन्दांव्याप्यमानासेव्यमानयोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५६ ॥

व्याप्यमान (व्याप्ति को प्राप्त) और आसेव्यमान (सेवा को प्राप्त) अर्थ गम्यमान हो द्वितीयान्त उपपद होतो विश आदि धातुओं से णमुल् प्रत्यय हो। विश आदि क्रियाओं से जो गेहादि द्रव्यों का निश्शेष सबन्ध है सो यहां व्याप्ति और क्रिया का जो बार बार होना वह आसेवा समझनी चाहिये। द्रव्य में व्याप्ति और क्रिया में आसेवा रहती है। विश, गेहानुप्रवेशमास्ते। घर २ में प्रवेश करके बैठता है। वा घर में पैठ २ बैठता है। यहां समास से ही व्याप्ति और आसेवा उक्त हैं। इस से (नित्य०) सूत्र से णमुल् प्रत्ययान्त का द्विर्वचन नहीं होता और उपपदसमास का जहां विकल्प पक्ष है वहां व्याप्ति अर्थ में द्रव्य को द्विर्वचन और आसेवा में क्रिया को द्विर्वचन होता है। जैसे व्याप्ति, गेहं गेहमनुप्रवेशमास्ते। आसेवा, गेहमनुप्रवेशमनुप्रवेशमास्ते। पति, गेहानुप्रपातमास्ते। गेहं गेहमनुप्रपातमास्ते। गेहमनुप्रपातमनुप्रपातमास्ते। गेहानुप्रपादमास्ते। गेहं गेहमनुप्रपादमास्ते। गेहमनुप्रपादमनुप्रपादम्। स्कन्दिर, गेहावस्कन्दमास्ते। गेहंगेहमवस्कन्दम्। गेहमवस्कन्दमवस्कन्दम्। व्याप्यमानआसेव्यमान अर्थों के ग्रहण से यहां न हुआ। गेहमनुप्रविश्य भुङ्क्ते। आसेवा आभीक्ष्ण्य है और आभीक्ष्ण्य अर्थमें णमुल् कहा है इस लियेयह सूत्र द्वितीयोपपद होने से उपपद समास के लिये है ॥ १५७६ ॥

१५७७–अस्यतितृषोः क्रियान्तरे कालेषु ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५७ ॥

कालवाची द्वितीयान्त उपपद होतो क्रियाका व्यवधान कराने वाला जो अर्थ उस में वर्त्तमान जो अस्यति, तृष्, धातु उन से णमुल् प्रत्यय हो [असु] क्षेपणे द्व्यहात्यासंगाः पाययति। द्व्यहमत्यासं गाः पाययति। दो दिन छोड़ के गौओं को पियाता है। यहां द्व्यह शब्द कालवाची द्वितीयान्त है। अतिपूर्वक अस धातु पान क्रिया के व्यवधान में वर्तमान है। इसी प्रकार द्व्यह तर्षं गाः पाययति। द्व्यहं तर्षं गाःपाययति। यहां भी जानना चाहिये। अस्यति तृष् ग्रहण से यहां न हुआ। द्व्यहमुपोष्य भुङ्क्ते। क्रियान्तरग्रहण से यहां न हुआ। अहरत्यस्य मगधान् गतः। कालग्रहण से यहां न हुआ। योजनमत्यस्य जलं पिबति। यहां अध्वविषयक योजन शब्द उपपद है ॥ १५७७ ॥

१५७८–नाम्न्यादिशिग्रहोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५८ ॥

द्वितीयान्त नाम शब्द उपपद हो तो आङ्पूर्वक दिश् और ग्रह धातु से णमुल् प्रत्यय हो। नामादिश्याचष्टे, नामादेशमाचष्टे। नामग्रहीत्वाचष्टे, नामग्राहमाचष्टे नामउच्चारण कर वा नाम लेकर कहता है ॥ १५७८ ॥

१५७९—अव्यये यथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ ॥३।४।५९॥

अयथाभिप्रेताख्यान (अभिप्रायविरुद्ध अर्थात् अप्रिय वाक्य को ऊंचे स्वर से कहना और प्रिय वाक्य को नीचे स्वर से कहना अर्थगम्यमान हो और अव्यय उपपद हो तो कृञ् धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो। उच्चैः कृत्य। उच्चैः कृत्वा। उच्चैः कारमप्रियमाचष्टे। नीचैः कृत्य। नीचैः कृत्वा। नीचैः कारम्। प्रियं ब्रवीति अप्रियको ऊंचे स्वर से और प्रिय को नीचे स्वर से अर्थात् धीरे से कहता है। यहां क्त्वा ग्रहण (त्वा च) इस सामासिक सूत्र से समास होने के लिये है ॥ १५७९ ॥

१५८०-तिर्य्यच्यपवर्गे ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६० ॥

अपवर्ग (समाप्ति) अर्थ गम्यमान हो और तिर्य्यच् शब्द उपपद हो तो कृञ् धातुसे क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो। तिर्य्यक् कृत्य तिर्य्यक्कृत्वा तिर्यक्कारं कार्यं गतः। कार्य्य को समाप्त करके गया। जहां अपवर्ग न है वहां नहीं होते। तिर्य्यक् कृत्वा (१५१६) काष्ठं गतः। काठ को तिरछा करके गया। यहां समाप्ति कथन नहीं है॥१५८०॥

१५८१-स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६१ ॥

तस् प्रत्ययान्त स्वाङ्ग वाची उपपद हो तो कृ, भू धातुसे क्त्वाऔर णमुल् प्रत्यय हो। मुखतःकृत्य गतः। मुखतः कृत्वा गतः। मुखतः कारं गतः। मुखसे कर गया। पृष्ठतो भूय। पृष्ठतो भूत्वा। पृष्ठतो भावं गतः। पीठ स हो के गया। स्वांगग्रहण से यहां न हुये। सर्वतः कृत्वा गतः। तस् ग्रहण से यहां न०। मुखीकृत्य गतः। यहां (स्त्रैण०८५६) च्वि प्रत्यय होता है ॥ १५८१ ॥

१५८२—नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६२ ॥

च्व्यर्थ नाधार्थप्रत्ययान्त शब्द उपपद हों तो कृ और भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो। अनाना नाना कृत्वा गतः, नाना कृत्वा गतः। नानाकृत्य गतः। नानाकारं गतः। थोड़े को बहुत करके गया विनाकृत्वा गतः। विनाकृत्य गतः। विनाकारं गतः। नानाभूय गतः। नानाभूत्वा गतः। नानाभावं गतः। विनाभूय गतः। विनाभूत्वा गतः। विनाभावं गतः। द्विधाकृत्य। द्विधाकृत्वा। द्विधाकारं गतः। द्विधाभूय। द्विधाभूत्वा। द्विधाभावं गतः। द्वैधंकृत्य। द्वैधंकृत्वा। द्वैधंकारं गतः। द्वैधंभूय। द्वैधंभूत्वा। द्वैधंभावं गतः। प्रत्ययग्रहण से यहां नहीं होते। हिरुक् कृत्वा विना करके। पृथक् कृत्वा गतः। अलग करके गया। च्व्यर्थग्रहण से यहां न०। नानाकृत्वा काष्ठानि गतः। काष्ठों को फैला के गया ॥ १५८२ ॥

१५८३—तूष्णीमि भुवः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६३ ॥

तूष्णीम् शब्द उपपद हो तो भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो । तूष्णींभूत्वा । तूष्णींभावं स्थितः । चुप होकर ठहर रहा ॥१५८३॥

१५८४—अन्वच्यानुलोम्ये ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६४ ॥

अन्वच् शब्द उपपद हो तो भू धातु से आनुलोम्य (अनुकूलपन अर्थात् दूसरे के चित्त की प्रसन्नता रखने) अर्थ में क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो । अन्वग्भूय आस्ते । अन्वग्भूत्वास्ते । अन्वग्भावमास्ते । दूसरे के अनुकूल होकर बैठता है । आनुलोम्य ग्रहण से यहां नहीं होते । अन्वग् भूत्वा (१५१६) पठति । पीछे होकर पढ़ता है ॥ १५८४ ॥

इत्याख्यातः प्रचरितगिराख्यात आख्यातिकेन
प्रोक्तः पातञ्जलमथ मतं प्रेक्ष्य दाक्षीसुतस्य ।
वेदार्थानान्नियतविषयस्थानमारोप्य योगान्
विज्ञायन्तां निगमवचनान्याशु जिज्ञासुभिर्यत् ॥ १ ॥

इति श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृत आख्यातिको ग्रन्थः पूर्त्तिमगात् ॥

अथाख्यातिकशुद्धिपत्रम्

भूमिका

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	२	उस	उन	५	८	युरणुन्तुव्णुक्णुं	युरणुनस्त्रणुक्णुं
३	२	संभवित	संभावित (नोट)			इन छः	इन सात
४	२७	युरणुनुव्णूर्णु	युरणुनुस्तुव्णूर्णु	६	३	सास्ते	सान्ते
४	२६	न्ताश्वा	न्ताश्व	७	८	दश	दिश्

आख्यातिक

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
५	१	दीर्घौ	दीर्घौ	८४	३	संस्थानेबन्धुषु	संस्थाने
१२	२१	अभवतम्	अभवत			बन्धुओं का समूह	बन्धुषु च
१३	२०	अदेश	आदेश				समूहऔरबन्धुचेष्टा
१८	२८	वा	व	८४	१७	[टुवम]	[टुवसु]
२१	४	अद्धि	असिद्ध (नोट)	८७	३	गूल्यन्ता:	गूहल्यन्ता:
२१	६	स्थानित्	स्थानिवत् (नोट)	८४	७	वधासिष्ट	अधासिष्ट
२३	१४	क्लिन्दिता	क्लिन्दिता	८४	१०	ग्लयातु	ग्लायतु
२३	२०	प्रा है	प्राप्त है	८६	४	तिष्ठान्ति	तिष्ठन्ति
२५	८	उदात्तेत	अनुदात्तेत	८८	२७	स्रूर्यात्	स्रूयात्
३०	२२	ष्वमहे	ष्वक्ष्महे	१००	७	स्ययेते	स्ययेते
३१	२०	शकीताम्	शीकताम्	१०४	१	अत्मने	आत्मने
३६	२७	अलुच्चुत्	अलुच्चत्	१०७	११	सत्यात्	सज्यात्
३७	२३	आच्छेत्	आञ्छेत्	११०	१८	[टुवप]	[डुवप]
४२	१५	औटीत्	आटीत्	११०	२८	जवाह	उवाह
४५	१	लाध्यत्	लध्यात्	१११	२	अवाचात्	अवाचीत्
		[कडि]	[काड]	११२	१८	लिट	लिटि
५४	३०	एत्वाभ्यस	एत्वाभ्यास	११८	६	व्यक्तायां	व्यक्तायां
५५	४	यातुट्	यासुट्	१२०	२	ख्याष्यति	ख्यास्यति
६१	४	चारिषति	चारिषाति	१२१	१८	चसंमे	चकांमे
६२	२५	पर्वपि	पर्वति	१२२	१८	अवादेश	अयादेश
८२	१७	समोदर्शने	शमी दर्शने	१४०	८	अविभताम्	अविभीतास्

शुद्धिपत्रम् ॥

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४२	११	धत्ता	धत्त:
१४७	२०	पुष्य	पुष्प
१५०	२३	अचूरिष्टि	अचूरिष्ट
१५२	२५	परर्यन्त	पर्य्यन्त
१५४	२५	पृप्यति	तृप्यति
		पृप्याति	तृप्याति
		पृप्यतु	तृप्यतु
१५५	१	अदार्प्सीत्	अदाप्सीत्
१५७	२१	क्लेदिता	क्लेदिता
१५८	१५	सिञ्	षिञ्
१५८	१०४	दिवादिगण:	स्वादिगण:
१६०	१०४	दिवादिगण:	स्वादिगण:
१६१	१७	नतौ च	गतौ च
१६३	८	अभज्जत	अभृज्जत
१६३	२८	जज्जा	लज्जा
१६६	२	श्रौर	चौर
१६७	११	तंघात	संघात
१८०	२१	अश्रु	अश्र
१८२	७	वलना	बोलना
१९१	२	सामन्य	सामान्य
१९६	२५	दयति	०
२१२	३	अदेश	आदेश
२१२	२५	अत्व	आत्व
२२५	६	भावता	भवता
२२६	८	विक्रीणोति	विक्रीणीते
२२८	१२	संगत	संगति
२४५	१४	रुन्धतस्य	रुन्धतस्तस्य
२४७	२७	व्यवसाम:	व्यवसाम
२४९	२७	लिप्समान	लिप्सयमान
२५२	७	न्तव्य:	गन्तव्य:
२५४	२	नायक-स्पामि	नायक-स्वयामि
२५६	१	मे	ने (नोट)
२६४	२०	उसर्ग	उपसर्ग
२६४	२३	उसर्ग	उपसर्ग
२६७	२७	हिषाहस्तं	ह्विषाहस्तं
२७३	२६	[दुदाञ्]	[डुदाञ्]
२८३	२२	से	सत्त्वं
२९५	९	तिलोकं	पतिलोकम्
२९८	२२	ओकार:	ओककार:
३०४	१२	ध्वंसते	ध्वसते
३१२	२८	क्वित्	क्विप्
३१७	२१	पक्वान्	पक्ववान्
३१९	१८	अधमर्ण्यं	आधमर्ण्यं
३२८	२१	येभ्यस्व	येभ्य:
३३२	२४	तद्गुरु	सगुरु:
३३४	१३	नुचापसर्गस्य	चानुपसर्गस्य
३३६	९	अयासी	आयासी
३३६	१५	दद्याति	दद्यति
३३८	८	वासरून्याये	वासरूपन्याये
३३९	१६	प्रत्तय	प्रत्यय
३४१	२२	स्न,	सृ
३४१	२५	कन्	किन्
३४८	६	भोक्तुतुम्	भोक्तुम्
३६३	१०	ज्ञानेर्थं	ज्ञानार्थं
३७४	१०	सोता	होता
३७७	१५	समना	समझना
३७८	१६	समासर्ग क्ताओर ल्यप् हो तो क्ताको	समास हो तो क्ताका ओर ल्यप्
३८३	१४	आप्राप्त	अप्राप्त
३९१	६	य को	को

विज्ञापन

नीचे लिखे पुस्तक वैदिक यंत्रालय प्रयाग में मिलेंगे

१	पंचमहायज्ञविधि	।)
२	वर्णोच्चारणशिक्षा	=)
३	संस्कृतवाक्यप्रबोध	।-)
४	व्यवहारभानु	।)
५	संधिविषय	॥)
६	नामिक	॥।)
७	कारकीय	।=)
८	सामासिक	॥)
९	स्त्रैणताद्धित	१।)
१०	अव्ययार्थ	≡)
११	आख्यातिक	२)
१२	सौवर	≡)
१३	पारिभाषिक	।)
१४	भ्रमोच्छेदन	-)
१५	अनुभ्रमोच्छेदन	-)
१६	सत्यधर्मविचार मेला चांदापुर	=)
१७	आर्य्योद्देश्यरत्नमाला	-)॥
१८	गोकरुणानिधि	-)॥
१९	स्वामीनारायणमतखंडन गुजराती	-)
२०	स्वामीनारायणमतखंडन संस्कृत और गुजराती ..	=)
२१	गोतम अहल्या कथा	)॥
२२	शास्त्रार्थकाशी	=)

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाश: ॥

तत्रत्य: ।

एकादशो भाग: ॥

॥ सौवर: ॥

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहित: ।
पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यामष्टमो भाग: ।
पठनपाठनव्यवस्थायामेकादशं पुस्तकम् ।

मुनशी समर्थदान के प्रबंध से
वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ ।

संवत् १९३९ कार्त्तिक कृष्णा १

पहिली वार १००० पुस्तक छपे

मूल्य ≈)

॥ अथ भूमिका ॥

इस सौवर ग्रंथ के बनाने का मुख्य प्रयोजन यही है कि जिस से सब मनुष्यों को उदात्तादि स्वरों की व्यवस्था का बोध यथार्थ हो जावे। जब तक उदात्तादि स्वरों को ठीक २ नहीं जानते तबतक लौकिक वैदिक वाक्यों वा छन्दों का स्पष्ट प्रिय उच्चारण गान और ठीक २ अर्थ भी नहीं जान सकते। और उच्चारण आदि के यथार्थ होने के विना लौकिक वैदिक शब्दों से यथार्थ सुखलाभ भी किसी को नहीं होता। देखो इस विषय में प्रमाण ॥

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह सवाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥ १ ॥

जो शब्द अकारादि वर्णों के स्थान प्रयत्न पूर्वक उच्चारण नियम और उदात्तादि स्वरों के नियम से विरुद्ध बोला जाता है उस को मिथ्याप्रयुक्त कहते हैं क्यों कि जिस अर्थ को जताने के लिये उस का प्रयोग किया जाता है उस अर्थ को वह शब्द नहीं कहता किन्तु उस से विरुद्ध अर्थान्तर को कहता है। इस लिये उच्चारण किया हुआ वह शब्द अभीष्ट अभिप्राय को नष्ट करने से वज्र के तुल्य वाणी रूप होकर यजमान अर्थात् शब्दार्थसम्बन्ध की सङ्गति करने वाले पुरुष ही को दुःख देता है। अर्थात् प्रयोक्ता के अभिप्राय को बिगाड़ देना ही उस को दुःख देना है। जैसे (इन्द्रशत्रुः) शब्द स्वर के विरोध से ही विरुद्धार्थ हो जाता है। इन्द्रशत्रुः। यहां तत्पुरुष समास में तो अन्तोदात्त होता है इन्द्र अर्थात् सूर्य का शत्रु मेघ बढ़ कर विजयी हो। (इन्द्रशत्रुः) यहां बहुव्रीहि समास में पूर्वपद प्रकृति स्वर से आद्युदात्त स्वर होता है। और शत्रु शब्द का अर्थ यही है कि शान्त करने वा काटने वाला। प्रमाण निरुक्त का—इन्द्रोऽस्य शमयिता वा शातयिता वा। सो तत्पुरुष समास में तो इन्द्र नाम सूर्य का शत्रु शान्त करने वाला मेघ आया और बहुव्रीहिसमास में सूर्य जिस का शत्रु शान्त करने वा काटने वाला है ऐसा अन्यपदार्थ मेघ आया। जो पुरुष सूर्य का शान्त करने वाला मेघ है इस अभिप्राय से इन्द्रशत्रु शब्द का उच्चारण किया चाहता है तो उस को अन्तोदात्त उच्चारण करना चाहिये परन्तु जो वह आद्युदात्त उच्चारण कर देवे उस का अभिप्राय नष्ट हो जावे क्योंकि आद्युदात्त उच्चारण से बहुव्रीहि समास में मेघ का शान्त करने वा-

काटने वाला सूर्य ठहरेगा। इस लिये जैसा अपना इष्ट अर्थ हो वैसे स्वर और वर्ण का नियमपूर्वक ही उच्चारण करना चाहिये। जब मनुष्य को उदात्तादि स्वरों का ठीक २ बोध हो जाता है तब स्वर लगे हुए लौकिक शब्दों के नियत अर्थों को शीघ्र जान लेता है जैसे किसी एक शब्द को आद्युदात्त स्वरयुक्त देखा तो जान लेगा कि अमुक अर्थ में अमुक ञित् वा नित् प्रत्यय हुआ है इस लिये इस का यही अर्थ होना चाहिये इससे विरुद्ध अर्थ नहीं हो सकता ऐसा निश्चय स्वरज्ञ पुरुष को हो जाता है। जैसे। सकर्त्ता। सकर्त्ता। इन दो वाक्यों में दो प्रकार के स्वर होने से दो ही प्रकार के अर्थ होते हैं पहिले वाक्य में लुट् लकार को क्रिया है। अर्थ—वह अगले दिन करेगा। और दूसरे में कृदन्त तृच् प्रत्ययान्त शब्द है। अर्थ—वह करने वाला पुरुष है। इसी प्रकार इत्यादि एक प्रकार के शब्दों का अर्थ भेद स्वरव्यवस्था के जानने से ही निकलता है जो स्वरव्यवस्था का बोध न हो तो अर्थों का लौट पौट व्यभिचार हो जाने से बड़ा अन्धेर फैल जावे। इसी प्रकार समासों के पृथक्२ नियत स्वरों को जान के उन २ समासों के नियत अर्थों को शीघ्र जान लेता है अर्थात् उदात्तादि स्वरज्ञान के विना अर्थ की भ्रान्ति नहीं छूटती। और उदात्तादि स्वर बोध के विना वेदमंत्रों का गान और उच्चारण भी यथार्थ नहीं हो सकता क्यों कि षड्जादिस्वर गानविद्या में उपयोगी होते हैं वे उदात्तादि के विना नहीं हो सकते। जैसे:—

उच्चौ निषादगांधारौ नीचावृषभधैवतौ। शेषास्तु स्वरिता ज्ञेयाः षड्जमध्यमपंचमाः॥ १॥

यह वचन याज्ञवल्क्यशिक्षा का है। षड्जादिकों में निषाद और गांधार तो उदात्त के लक्षण से ऋषभ और धैवत अनुदात्त के लक्षण से तथा षड्ज मध्यम और पंचम ये तीनों स्वरितस्वर से गाये जाते हैं। उदात्तादि के विना वेदमंत्रों का उच्चारण भी प्रिय नहीं लगता और जब उदात्तादि के सहित उच्चारण किया जाता है तब अतिप्रिय मनोहर उच्चारण होता है। इस ग्रन्थ में स्वरव्याख्या संक्षेप से की है परन्तु जो मुख्य२ स्वरविषय के पाणिनीय अष्टाध्यायीस्थ सूत्र हैं वे सब इस में लिख दिये हैं और सब अष्टाध्यायी की वृत्ति में लिखे जायंगे॥

इति भूमिका॥

स्थान महाराणा जी का उदयपुर
संवत् १९३९ आश्वि० व० १३ } (स्वामी) दयानन्दसरस्वती

॥ अथ सौवर: ॥

—•※•—

१—महाभाष्य—स्वयं राजन्त इति स्वरा अन्वग्भवति व्यञ्जनम् ॥

स्वर उन को कहते हैं कि जो विना किसी के सहाय से उच्चारित और स्वयं प्रकाशमान और व्यञ्जन वे कहाते हैं कि जिन का उच्चारण स्वर के आधीन हो ॥१॥

२—उच्चैरुदात्तः ॥ अ० ॥ १ । २ । २९ ॥

किसी एक मुख के स्थान में जिस अच् का ऊंचे स्वर से उच्चारण हो वह उदात्त संज्ञक होता है। जैसे। औपगव:। यहां अण् प्रत्यय का अकार उदात्त हुआ है ॥ २ ॥

महाभाष्य—३—आयामो दारुण्यमणुता खस्येत्युच्चैःकराणि शब्दस्य ॥

उदात्त स्वर के उच्चारण में इतनी बातें होनी चाहिये (आयामः) शरीर के सब अवयवों को रोक लेना अर्थात् ढीले न रखना (दारुण्यम्) शब्द के निकलते समय तीखा रूखा स्वर निकले और (अणुता खस्य) कण्ठ को रोक के बोलना चाहिये फैलाना नहीं। ऐसे प्रयत्नों से जो स्वर उच्चारण किया जाता है वह उदात्त कहाता है। यही उदात्त का लक्षण है ॥ ३ ॥

४—नीचैरनुदात्तः ॥ अ० ॥ १ । २ । ३० ॥

जो किसी एक मुख स्थान में नीचे प्रयत्न से उच्चारण किया हुआ स्वर है उस को अनुदात्त कहते हैं। जैसे। औपगव:। यहां जिन के नीचे तिर्छी रेखा है वे तीनों वर्ण अनुदात्त हैं ॥ ४ ॥

महाभाष्य—५—अन्वसर्गो मार्दवमुरुता खस्येति नीचैःकराणि शब्दस्य ॥

अनुदात्त उच्चारण में (अन्ववसर्गः) शरीर के अवयवों को शिथिल कर देना (मार्दवम्) कोमलता स्निग्ध उच्चारण करना (उरुता खस्य) और कण्ठ को कुछ फैला के बोलना। इस प्रकार के प्रयत्न से उच्चारण किये स्वर को अनुदात्त कहते हैं यही इस का लक्षण है ॥ ५ ॥

६—समाहारः स्वरितः ॥ १ । २ । ३१ ॥

उदात्त और अनुदात्त गुण का जिस में मेल हो वह अच् स्वरित संज्ञक होता

है। जो उदात्त स्वर है उस का कोई चिन्ह नहीं होता किन्तु बहुधा स्वरित वा अनुदात्त से पूर्व ही उदात्त रहता है। अनुदात्त वर्ण के नीचे जैसा (क॒) यह तिर्छा चिह्न किया जाता है और स्वरित के ऊपर (क॑) ऐसा खड़ा चिह्न किया जाता है। दो वस्तु को मिला के जो बनता है उस का तीसरा नाम रखते हैं। जैसे श्वेत और काला ये रंग अलग २ होते हैं परन्तु जो इन दोनों को मिलाने से उत्पन्न होता है उस को (कल्माष) खाखी वा आसमानी कहते हैं इसी प्रकार यहां भी उदात्त और अनुदात्त गुण पृथक् २ हैं परन्तु जो इन दोनों को मिलाने से उत्पन्न हो उस को स्वरित कहते हैं ॥ ६ ॥

७—तस्यादित उदात्तमर्द्धह्रस्वम् ॥ अ० ॥ १ । २ । ३२ ॥

जो पूर्व सूत्र में स्वरित विधान किया है उस के तीन भेद होते हैं। ह्रस्वस्वरित, दीर्घस्वरित और प्लुतस्वरित। सो इन स्वरितों की आदि में आधी मात्रा उदात्त होती और सब अनुदात्त रहती हैं जैसे । क्व॑ । कन्या॑ । माणवक॑३ मणि के। यहां ह्रस्व दीर्घ और प्लुत तीनों क्रम से स्वरित हुए हैं। इस सूत्र में ह्रस्व के कहने से यह सन्देह होता है कि दीर्घस्वरित और प्लुतस्वरित में उदात्त का विभाग न होना चाहिये क्योंकि ह्रस्व संज्ञा से दीर्घ प्लुत संज्ञा भिन्न कालिक है। इसी लिये अर्द्धह्रस्व शब्द के आगे प्रमाण अर्थ में मात्रच् प्रत्यय का लोप महाभाष्यकार ने माना है कि ह्रस्व का अर्द्धभागमात्र अर्थात् आदि की आधी मात्रा ह्रस्व दीर्घ प्लुत किसी में हो उदात्त होजाती है। इस सूत्र के उपदेश करने में प्रयोजन यह है कि जो मिली हुई चीज होती है उस में नहीं जाना जाता कि कौनसा कितना भाग है। जैसे दूध और जल मिला दें तो यह नहीं विदित होता कि कितना दूध और कितना जल है तथा किधर दूध और किधर जल है इसी प्रकार यहां भी उदात्त और अनुदात्त मिले हुए हैं इस कारण जाना नहीं जाता कि कितना उदात्त और कितना अनुदात्त और किधर उदात्त और किधर अनुदात्त है। इस लिये सब के मित्र हो के पाणिनि महाराज ने इस सूत्र का उपदेश किया है जिस से ज्ञात हो जावे कि इतना उदात्त इतना अनुदात्त तथा इधर उदात्त और इधर अनुदात्त है (प्रश्न) जो पाणिनि महाराज सब के ऐसे परम मित्र थे तो इस प्रकार की और बातें क्यों नहीं प्रसिद्ध कीं। जैसे। स्थान करण प्रयत्न नादानुप्रदान आदि (उत्तर) जब व्याकरण अष्टाऽध्यायी बनाई गई थी उस से पूर्व ही शिक्षा आदि कई ग्रन्थ बन चुके थे। जिन में स्थान करण आदि का प्रकार लिखा है क्योंकि शब्द के उच्चारण में जितने साधन हैं वे मनुष्य को प्रथम ही जानने चाहिये। और जो बातें उन ग्रन्थों में लिख चुके थे उन को फिर अष्टाऽध्यायी में भी लिखते

तो पिष्टपेषणदोषवत् पुनरुक्त दोष समझा जाता। इस लिये जो बातें वहां नहीं लिखीं वे यहां प्रसिद्ध की हैं। तथा गणना से भी व्याकरण तीसरा वेदाङ्ग है इस लिये पाणिनि जी महाराज ने सब कुछ अच्छा ही किया है। जो इस सूत्र का प्रयोजन और इस पर प्रश्नोत्तर लिखें है सो सब महाभाष्य में स्पष्ट करके इसी सूत्र पर लिखे हैं * ॥ ७ ॥

८—एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ ॥ अ० ॥ १ । २ । ३३ ॥

दूर से अच्छे प्रकार बल से बुलाने अर्थ में उदात्त अनुदात्त और स्वरित इन तीनों स्वरों का एकश्रुति अर्थात् एक तार श्रवण हो पृथक् २ सुनने में न आवें ऐसा उच्चारण करना चाहिये। जैसे। आगच्छ भो माणवक देवदत्त ३। यहां उदात्तानुदात्तस्वरित का पृथक् २ श्रवण नहीं होता। दूरात् ग्रहण इस लिये है कि। आगच्छ भो भवदेव। यहां उदात्त अनुदात्त और स्वरितों का अलग २ उच्चारण होता है ॥ ८ ॥

९—उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ६६ ॥

सब स्वरप्रकरण में यह सामान्य नियम समझना चाहिये कि जो उदात्त से परे अनुदात्त हो तो उस को स्वरित हो जाता है। जैसे। कृतेन। यहां (ते) उदात्त है उस से परे नकार अनुदात्त को स्वरित हो जाता है। कृतेन। तथा। गार्ग्यः। यहां गा उदात्त है और (र्ग्य) अनुदात्त था उस को (र्ग्य) स्वरित हो जाता है। इसी प्रकार उदात्त से परे जहां २ स्वरित आता है वहां २ सर्वत्र असंख्य शब्दों में इसी सूत्र से अनुदात्त को स्वरित जानना चाहिये। और जहां उदात्त से परे अनेक अनुदात्त हों वहां एक को स्वरित औरों को जो होना चाहिये सो आगे लिखेंगे। उदात्त से परे जो अनुदात्त उस से परे उदात्त वा स्वरित होने में विशेष इतना है कि—॥ ९ ॥

१०—नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ६७ ॥

उदात्त से परे जिस अनुदात्त को स्वरित विधान किया है यदि उस से परे

---

* (तस्यादित०) इस सूत्र के व्याख्यान में काशिकाकार जयादित्य और भट्टोजिदीक्षित आदि लोगों ने लिखा है कि इस सूत्र में ह्रस्वग्रहण शास्त्रविरुद्ध है सो यह केवल उन की भूल है क्यों कि जो ह्रस्वग्रहण का कुछ प्रयोजन नहीं होता तो महाभाष्यकार अवश्य प्रसिद्ध कर देते उन्हों ने तो जो इस में सन्देह हो सकता है उस का समाधान किया है कि अर्द्धह्रस्व शब्द के आगे मात्रच् प्रत्यय का लोप जानो जिस से दीर्घ प्लुत स्वरितमें भी उदात्त का विभाग हो जावे। ह्रस्वस्यार्द्धमर्द्धह्रस्वम्। एक मात्रा का ह्रस्व है उस की आधी मात्रा जो आदि में है वह उदात्त और शेष इस से परे सब अनुदात्त है यह बात इस (अर्द्धह्रस्व) के ग्रहण ही से जानी गई॥

उदात्त वा स्वरित हो तो उस अनुदात्त को स्वरित न हो। परन्तु गार्ग्य, काश्यप, गालव इन ऋषियों के मत को छोड़ के अर्थात् इन तीनों के मत में तो उस अनुदात्त को भी स्वरित हो जावे कि जिस से परे उदात्त वा स्वरित हो। परन्तु यह गार्ग्य आदि ऋषियों का मत वेद में प्रवृत्त नहीं होता क्योंकि वेद सनातन हैं वहां किसी का मत नहीं चलता। लौकिकप्रयोगों में गार्ग्य आदि का मत चल जाता है। वेद में सर्वत्र उदात्त स्वरितोदय हो तोभी अनुदात्त ही बना रहता है जैसे। कस्य॑ नू॒नं क॑त॒मस्या॒मृता॑ना॒ं मना॑महे॒ चारु॑ दे॒वस्य॒ नाम॑। यहां। दे॒वस्य॒ नाम। नाम शब्द आद्युदात्त के परे होनेसे भी 'व' उदात्त से परे 'स्य' अनुदात्त को स्वरित नहीं हुआ। तथा। नव्य॒॑ तदु॒क्थ्य॑म्। यहां तकार उदात्त से परे दु अनुदात्त को आगे "क्थ्य" स्वरित होने से भी स्वरित नहीं होता। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये। लौकिक उदाहरण। गार्ग्य॒ ऋषिः। यहां गार्ग्य और ऋषि दोनों शब्द आद्युदात्त हैं। ऋकार उदात्त के उदय में अनुदात्त 'र्ग्य' को स्वरित नहीं होता। गार्ग्य॒ ऋषिः। और गार्ग्य आदि के मत में। गार्ग्य॑ ऋषिः। ऐसा भी होता है। अब एकश्रुतिस्वरविषय में लिखते हैं॥ १०॥

११—यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु ॥ अ०। १। २। ३४॥

यज्ञकर्म अर्थात् यज्ञ संबन्धी कर्म करने में जो मंत्र पढ़े जाते हैं वहां उदात्त अनुदात्त और स्वरित को एकश्रुतिस्वर हो उदात्तादि का पृथक्२ श्रवण न हो परन्तु जप करने में तथा न्यूङ्ख किसी प्रकार के वेद के स्तोत्रों का नाम है वहां और सामवेद में उदात्तादि के स्थान में एकश्रुति न हो किन्तु तीनों स्वर पृथक्२ बोले जावें जैसे। समिधाऽग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन॥ १॥ इत्यादि मंत्र होम करते समय स्वरभेद के विना ही पढे जाते हैं। तीनों स्वर के विभाग से वेदमंत्रों का पाठ होना चाहिये इस कारण यज्ञकर्म में भी पृथक् २ उच्चारण प्राप्त था इस लिये इस सूत्र का आरम्भ है॥ ११॥

१२—उच्चैस्तरां वा वषट्कारः ॥ अ०॥ १। २। ३३॥

जो यज्ञकर्म में वषट्कार शब्द है वह विकल्प करके उदात्ततर हो और पच में एकश्रुति स्वर होता है। जैसे। वषट्कारैः सर॑स्वती। वषट्कारै॑ः सर॑स्वती। यहां उदात्त और एकश्रुति दोनों का चिन्ह न होने से एक ही प्रकार का स्वर दीख पड़ता है परन्तु उच्चारण में भेद जान पड़ता है॥ १२॥

१३—विभाषा छन्दसि ॥ अ०॥ १। २। ३६॥

वेदमंत्रों के सामान्य उच्चारण करने में उदात्त अनुदात्त और स्वरित को एक-

श्रुति स्वरविकल्प करके होता है। एकश्रुतिपक्ष में उदात्तादि का भिन्न २ उच्चारण नहीं होता। सो ये दो पक्ष तीन वेदों में घटते हैं। सामवेद में तीनों स्वर भिन्न २ उच्चारण किये जाते हैं क्योंकि (११) सूत्र से सामवेद में एकश्रुति होने का निषेध कर चुके हैं ॥ १३ ॥

१४ – न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः ॥ अ० ॥ १ । २ । ३७ ॥

जो सुब्रह्मण्या ऋचा में यज्ञकर्म में पूर्वसूत्र से एकश्रुति स्वर प्राप्त है सो न हो किन्तु जो उस में स्वरित वर्ण हों उन के स्थान में उदात्त हो जावे। सुब्रह्मण्या एक ऋचा का नाम है। उस का व्याख्यान शतपथब्राह्मण में तृतीय काण्ड तृतीय प्रपाठक के प्रथम ब्राह्मण में सत्रहवीं कण्डिका से लेके बीसवीं कण्डिका पर्यन्त किया है। उस ऋचा में जितने शब्द हैं उन सब में स्वर का विशेष नियम समझना चाहिये ॥

भा०—सुब्रह्मण्यायामोकार उदात्तो भवति ॥

सुब्रह्मन् शब्द से साध्वर्थ में यत् प्रत्यय होके स्वरितान्त होता है। उस का टाप् और आकार के साथ एकादेश हो के स्वरित हो उस स्वरित को इस सूत्र से उदात्त आदेश हो जाता है और तीन वर्ण अनुदात्त रहते हैं। सुब्रह्मण्योम् ॥

भा०—आकार आख्याते परादिश्च वाक्यादौ च द्वे ॥

जहां आख्यात क्रिया परे हो वहां उस से पूर्व का आकार और उस क्रिया का आदि वर्ण उदात्त होता है जैसे। इन्द्र आगच्छ। हरिव आगच्छ। यहां ऐसा समझो कि (इन्द्र) और (हरिवः) शब्द आमंत्रित होने से आद्युदात्त हैं उन के दूसरे वर्ण अनुदात्त हैं उन को उदात्त से परे स्वरित होजाता है। उस स्वरित को इस सूत्र से उदात्त करते हैं। इस प्रकार इन्द्र शब्द सब उदात्त और हरिव शब्द में भी जो दो उदात्त और वकार अनुदात्त है उस को पूर्व उदात्त के असिद्ध मानने से स्वरित नहीं होता। आगच्छ। में आकार तो प्रथम ही उदात्त है उस से परे दोनों अक्षर अनुदात्त हैं। आकार उदात्त से परे गकार अनुदात्त को स्वरित हो के इस सूत्र से स्वरित को उदात्त हो जाता है। इस प्रकार। इन्द्र आगच्छ इस वाक्य में एक छकार अनुदात्त और चार वर्ण उदात्त रहते हैं तथा। हरिव आ-गच्छ इस वाक्य में वकार छकार दो वर्ण अनुदात्त और चार वर्ण उदात्त रहते हैं। सुब्रह्मण्यो ३ मिन्द्र आगच्छ हरिव आगच्छ मेधातिथे र्मेषवृषणश्वस्य मेने गौरा-वस्कन्दिन्नहल्यायै जार । कौशिकब्राह्मणगौतमब्रुवाण श्वः सुत्यामागच्छमघवन् ॥ १ ॥ मेधातिथे र्मेष । यहां आमंत्रित मेष शब्द के परे पूर्व सुबन्त को पराङ्गवत्

आद्युदात्त हो के सब अक्षर अनुदात्त हो जाते हैं। फिर 'मे' उदात्त से परे 'धा' अनुदात्त को स्वरित होकर उस स्वरित को इस सूत्र से उदात्त होके आदि में दो उदात्त और चार वर्ण अनुदात्त रहते हैं। इसी प्रकार। वृषणश्वस्यमेने। गौरावस्कन्दिन्। अहल्यायै जार। कौशिकब्राह्मण गौतम ब्रुवाण। इन सब में दो २ आदि में उदात्त और सब वर्ण अनुदात्त रहते हैं। स्वस् और सुत्या शब्द अन्तोदात्त हैं। स्वस् उदात्त शब्द से परे सु अनुदात्त को स्वरित होके उदात्त हो जाता है इस प्रकार तीनों उदात्त रहते हैं। श्वः सुत्याम्। आगच्छ मघवन्। यहां भी उदात्त आकार से परे गकार अनुदात्त को स्वरित होके उदात्त हो जाता है। मघवन् शब्द आमंत्रित के होने से सब अनुदात्त हो जाता है। यहां जितने पदों का व्याख्यान किया है वे सब सुब्रह्मण्या ऋचा के हो हैं। अब आगे एक अपूर्व बात लिखते हैं कि जो इस सूत्र से भी सिद्ध नहीं है ॥ १४ ॥

१५—वा०—सुत्यापराणामन्तः॥

सुत्या शब्द जिन से परे हो उन को अन्तोदात्त हो। द्व्यहे सुत्याम्। त्र्यहे सुत्याम्। यहां द्व्यह, त्र्यह शब्दों को अन्तोदात्त होके उस से परे 'सु' अनुदात्त को स्वरित और स्वरित को उदात्त हो जाता है ॥ १५ ॥

१६—वा०—असावित्यन्तः॥

वाक्य में जो प्रथमान्त पद है वह अन्तोदात्त हो। गार्ग्यो यजते। गार्ग्य शब्द प्रथम आद्युदात्त प्राप्त है उस का बाधक यह अन्तोदात्त हो के उस उदात्त से परे यकार को स्वरित और स्वरित को इस से उदात्त हो जाता है और (यजते) क्रिया में अन्त्य के दो वर्ण अनुदात्त हो जाते हैं ॥ १६ ॥

१७—वा०—अमुष्येत्यन्तः॥

अमुष्य यह षष्ठी के एक वचन का संकेत है। जो षष्ठ्येकवचनान्त पद है वह अन्तोदात्त हो जैसे। दाक्षेः पिता यजते। यहां दाक्षि शब्द षष्ठी का एकवचन है उस इञ् प्रत्ययान्त को आद्युदात्तस्वर प्राप्त है उस को अन्तोदात्त हो जाता है और पिता शब्द तृच् प्रत्ययान्त होने से अन्तोदात्त ही है। अन्तोदात्त दाक्षि शब्द से परे 'पि' अनुदात्त को स्वरित हो के उदात्त और अन्तोदात्त पितृ शब्द से परे अनुदात्त यकार को स्वरित होकर उदात्त हो जाता है। इस प्रकार मध्य में चार उदात्त तथा आदि में एक अन्त में दो अनुदात्त रहते हैं। जैसे। दाक्षेः पितायजते ॥१७॥

१८—वा०—स्यान्तस्योपोत्तमंचान्त्यश्च॥

जहां षष्ठी का एकवचनस्यान्त हो वहां उपोत्तम अर्थात् तृतीय वा चतुर्थ वर्ण

उदात्त होता है और उस शब्द को भी अन्तोदात्त हो जाता है। गार्ग्यस्य पिता यजते। यहां तृतीय वर्ण (स्य) और द्वितीय (र्ग्य) को उदात्त और (पिता यजते) यहां पूर्ववत् उदात्त होता है। इस लिये पांच वर्ण मध्य में उदात्त और आदि में एक अन्त में दो अनुदात्त रहते हैं। जैसे। गार्ग्यस्य पिता यजते। वात्स्यस्य पिता यजते ॥ १८ ॥

१६—वा०—वा नामधेयस्य ॥

जो किसी के नामवाची स्यान्त षष्ठ्येकवचन में उपोत्तम तृतीय वर्ण आदि हैं वे विकल्प करके उदात्त होते हैं पक्ष में जैसा प्राप्त है वैसा बना रहता है। देवदत्तस्य पिता यजते। यहां दत्तस्य ये तीनों उदात्त और। पिता यजते। यहां पूर्ववत् उदात्त होके मध्य में छः वर्ण उदात्त और आदि अन्त में दो २ अनुदात्त हो जाते हैं जैसे। देवदत्तस्य पिता यजते। यज्ञदत्तस्य पिता यजते। और पक्ष में देवदत्त शब्द अन्तोदात्त है सो ज्यों का त्यों ही बना रहता है और। पिता यजते यहां पूर्ववत् स्वरित को उदात्त हो जाता है जैसे। देवदत्तस्य पिता यजते ॥१९॥

२०—देवब्रह्मणोरनुदात्तः ॥ अ० ॥ १ । २ । ३८ ॥

भा०—देवब्रह्मणोरनुदात्तत्वमेके ॥

पूर्वसूत्र से सुब्रह्मण्या ऋचा में देव और ब्रह्मन् शब्द के स्वरित को उदात्त पाता है सो न हो किन्तु उस स्वरित को अनुदात्त ही होजावे। भाष्यकार का अभिप्राय यह है कि जो देव और ब्रह्मन् शब्द को अनुदात्त कहते हो सो किन्हीं आचार्यों का मत है अर्थात् विकल्प करके होना चाहिये। देव और ब्रह्मन् शब्द आमन्त्रित हैं इस से विशेषवचन आमन्त्रित ब्रह्मन् शब्द के परे पूर्व आमन्त्रित देव शब्द को विकल्प करके अविद्यमानवत् होने से पर आमन्त्रित को जहां एक पक्ष में निघात नहीं होता। वहां दोनों आमन्त्रित को आद्युदात्त होकर उदात्त से परे दूसरा २ वर्ण स्वरित हो के उस को फिर इस सूत्र से अनुदात्त हो जाता है जैसे। देवा ब्रह्माणः। और दूसरे पक्ष में जहां पूर्व आमन्त्रित को विद्यमान मानते हैं वहां पर आमन्त्रित को निघात हो कर पूर्व आमन्त्रित को आद्युदात्त हो जाता है पीछे 'दे' उदात्त से परे 'वा' अनुदात्त को स्वरित हो के जिन के मत में अनुदात्त होता है वहां तो। देवाब्रह्माणः। ऐसा प्रयोग और जिन के मत में स्वरित को अनुदात्त नहीं होता वहां पूर्व सूत्र से स्वरित को उदात्त हो कर। देवा ब्रह्माणः। ऐसा प्रयोग होता है। और जिन आचार्यों का ऐसा मत है कि देव और ब्रह्मन् शब्द समानाधिकरण सामान्य वचन हैं वहां येही दो प्रयोग होते हैं क्योंकि अविद्यमानवत् का निषेध होने से पर आमन्त्रित को नित्य ही निघात हो जाता है ॥२०॥

२१—स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम् ॥ अ० ॥ १ । २ । ३६ ॥

स्वरित से परे संहिता में एक दो और बहुत अनुदात्तों को भी पृथक् २ एकश्रुति स्वर होता है ॥

भा०—एकशेषनिर्देशोऽयम् । अनुदात्तस्य चानुदात्तयो-श्चानुदात्तानामिति ॥

भाष्यकार का अभिप्राय यह है कि जो इस सूत्र में बहुवचनान्त अनुदात्त शब्द पढ़ा है उस में एकशेष समझना चाहिये अर्थात् एक दो और बहुत अनुदात्तों को भी पृथक् २ कार्य होता है जैसे । अग्निमी॑ळे पुरोहितम् । यहां 'मी' स्वरित से परे एक 'ळे' अनुदात्त को एकश्रुति स्वर हुआ है । एकश्रुति का नियम यही है कि स्वरित से परे उस पर कोई चिन्ह नहीं होता (होता॑रं रत्नधातमम्) यहां 'ता' स्वरित से परे दो रेफ अनुदात्त वर्णों को एकश्रुति स्वर हुआ है तथा । इमं मे॑ गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि । यहां मे स्वरित वर्ण है उस से परे द्रि पर्यन्त सब अनुदात्त हैं उन सब को एकश्रुति स्वर इस सूत्र से हुआ है । संहिताग्रहण इस लिये है कि । इमम् । मे । गङ्गे । यमुने । सरस्वति । शुतुद्रि । यहां पृथक् २ पदों का अवसान होने से एकश्रुति स्वर न हुआ ॥ २१ ॥

२२—उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः ॥ अ० ॥ १ । २ । ४० ॥

उदात्त और स्वरित जिस से परे हों उस अनुदात्त को एकश्रुति स्वर न हो किन्तु सन्नतर अर्थात् अनुदात्ततर हो जावे । पूर्वसूत्र से सामान्य विषय में एकश्रुति स्वर प्राप्त है उस का इस सूत्र से विशेष विषय में निषेध किया है जैसे । अग्निः पूर्वे॑भिर्ऋषिभिः । यहां ऋषि शब्द आद्युदात्त के परे भिस् विभक्ति को एकश्रुति स्वर प्राप्त है सो न हुआ । किन्तु उस को अनुदात्ततर होगया । तथा । मरुतः क्व सुविता । यहां क्व शब्द स्वरित के परे 'त' अनुदात्त को स्वरित नहीं होता किन्तु अनुदात्ततर हो जाता है ॥ २२ ॥

२३—आद्युदात्तश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३ ॥

धातुओं वा प्रातिपदिकों से जितने प्रत्यय होते हैं उन सब के लिये यह उत्सर्ग सूत्र है कि सब प्रत्यय आद्युदात्त हों । जो एकाक्षर के ही प्रत्यय हैं वे आद्यन्तवद्भाव से उदात्त होजाते हैं जैसे । प्रियः । यहां एकाक्षर क प्रत्यय किया है । आखुनिर्कवकः । यहां इकवक प्रत्यय आद्युदात्त हुआ है । इस के अपवाद विषय में अन्य प्रत्ययस्वरविधायक सूत्र बहुत हैं उन में से थोड़े यहां भी आगे लिखे हैं ॥ २३ ॥

२४—अनुदात्तौ सुप्पितौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३ ॥

जो सुप् अर्थात् सु आदि इक्कीस और पित् प्रत्यय हैं वे अनुदात्त हों जैसे। सोमसुतौ। सोमसुतः। यहां सुप में औ तथा जस् अनुदात्त हो के उदात्त से परे स्वरित होगये हैं। भवति। पचति। इत्यादि। यहां शप् और तिप् पित् प्रत्यय होने से अनुदात्त हुए हैं ॥ २४ ॥

२५—अनुदात्तं पदमेकवर्जम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १५८ ॥

स्वर प्रकरण में यह परिभाषा सूत्र सर्वत्र प्रवृत्त होता है। जो दो वा अनेक कितने ही पदों का समास होता है वह भी एक पद कहता है। स्वर प्रकरण में जिस एक पद में उदात्त वा स्वरित जिस वर्ण को विधान करें उस से पृथक् जितने वर्ण हों वे सब अनुदात्त हो जावें। इस बात का स्मरण सब स्वर प्रकरण में रखना चाहिये। इस सूत्र का प्रयोजन महाभाष्यकार दिखलाते हैं ॥

का०—आगमस्य विकारस्य प्रकृतेः प्रत्ययस्य च।
पृथक्स्वरनिवृत्त्यर्थमेकवर्ज पदस्वरः ॥

गोलार्थ। आगम, विकार, प्रकृति और प्रत्यय का पृथक् स्वर न होने के लिये इस सूत्र का आरम्भ किया है। आगम जो टित् कित् मित् चिन्ह के साथ अपूर्व उपजन हो जाता है। उस का पृथक् स्वर हो जावे। जैसे। चत्वारः। अनड्वाहः। यहां चतुर् और अनडुह् शब्द को आम् आगम हुआ है उसी का पृथक् स्वर रहता और प्रकृतिस्वर की निवृत्ति हो जाती है। अर्थात् प्रकृति और आगम के दोनों स्वर एकपद में एक साथ नहीं रह सकते। विकार जो किसी वर्ण वा शब्द को आदेश हो जाता है। जैसे। अस्थ्ना। दध्ना। अस्थनि। दधनि। यहां अस्थि और दधि शब्द प्रथम आद्युदात्त हैं पश्चात् तृतीयादि अजादि विभक्तियों में इन को अनङ् आदेश हो के प्रकृति और आदेश के दो स्वर प्राप्त हैं सो नहीं होते किन्तु प्रकृतिस्वर को बाध के आदेश का उदात्त स्वर हो जाता है। प्रकृति धातु वा प्रातिपदिक जिस से प्रत्यय उत्पन्न होते हैं जैसे। गोपायति। धूपायति। यहां प्रकृतिस्वर गोपाय धूपाय धातु को अन्तोदात्त और प्रत्ययस्वर आय प्रत्यय को आद्युदात्त दो स्वर प्राप्त हैं सो न हों किन्तु प्रत्ययस्वर को बाध के प्रकृतिस्वर हो जावे। प्रत्यय जो धातु वा प्रातिपदिक से परे विधान किया जाता है जैसे। कर्त्तव्यम्। तैत्तिरीयः। यहां कृ धातु और तित्तिरि प्रातिपदिक से तव्य और छ प्रत्यय हुआ है प्रकृति और प्रत्यय के दोनों स्वर प्राप्त हैं सो न हों किन्तु प्रकृतिस्वर को बाध के प्रत्यय का आद्युदात्त स्वर हो जावे ॥ २५ ॥

वा०—२६—सतिशिष्टस्वरबलीयस्त्वञ्च ॥

भा०—सत्येकस्मिन् स्वरे विशिष्टो द्वितीयः स्वरो बलवान् भवति॥

सतिशिष्ट वह कहाता है कि एक स्वर के वर्त्तमान में द्वितीय विशेष विधान किया जावे वही बलवान् रहता है। प्रथम का स्वर निवृत्त हो जाता और पश्चात् विहितस्वर प्रधान रहता है॥

भा०—तच्चानेकप्रत्ययसमासार्थम् ॥

सतिशिष्ट का प्रयोजन यह है कि अनेक प्रत्यय और अनेक समासों में उत्तरोत्तर स्वर बलवान् होते जावें। जैसे अनेक प्रत्यय। औपगवः। यहां उपगु शब्द से अण् हुआ है उसी का स्वर रहता है। औपगव शब्द से त्व। औपगवत्वम्। यहां स्वर का बाधक त्व प्रत्यय का स्वर। औपगवत्वमिव, औपगवत्वकम्। यहां त्व प्रत्यय के स्वर का बाधक क प्रत्यय का स्वर रहता है तथा। पुरूणां राजा, पौरवः। यहां अण् प्रत्यय का स्वर प्रकृतिस्वर का बाधक। पौरवस्यापत्यम्। इञ्। आद्युदात्त पौरविः। तस्य युवापत्यं फक्। अन्तोदात्त। पौरवायणः। पौरवायणानां समूहः वुञ्। आद्युदात्त। पौरवायणकम्। पौरवायणकानां छात्राः। पौरवायणकीयाः। यहां छ प्रत्यय आद्युदात्त। पौरवातणकीयैः प्रोक्तमधीयते तेपि, पौरवायणकीयाः। अण् का स्वर अन्त में रहता है। इसी प्रकार बहुत कुछ प्रत्ययमाला बन सकती है। अनेक समास। वीरश्चासौ राजा, वीरराजः। टच्–अन्तोदात्त। वीरराजस्य पुरुष वीरराजपुरुषः। वीरराजपुरुषस्य पुत्रः, वीरराजपुरुषपुत्रः। वीरराजपुरुषपुत्रः प्रधानो येषां ते, वीरराजपुरुषपुत्र प्रधानाः। यहां पूर्वपद प्रकृतिस्वर होता है। इसी प्रकार की इन से बहुत बड़े२ समास हो सकते हैं। और उन के स्वर भी तदनुकूल हो जावें गे॥ २६॥

वा०-२७-विभक्तिस्वरान्नञ्स्वरो बलीयान् ॥

विभक्ति स्वर से नञ् स्वर बलवान् होता है जैसे। न तिस्रः, अतिस्रः,। यहां विभक्तिस्वर–जस् विभक्ति को उदात्त प्राप्त है उस का बाधक नञ्स्वर पूर्वपद प्रकृतिभाव हो जाता है॥ २७॥

वा०-२८-विभक्तिनिमित्तस्वराच्च नञ्स्वरो बलीयानिति वक्तव्यम्॥

विभक्ति जिस का निमित्त है उस को जो स्वर होता है उस को बाध के नञ् स्वर होना चाहिये। जैसे। अचत्वारः। अनडुाहः। यहां विभक्ति को मान के जो आम् आगम होता है उस का बाधक नञ् प्रकृतिस्वर हो जाता है॥ २८॥

२६—ञ्नित्यादिर्नित्यम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६७ ॥

ञित् नित् प्रत्ययों के परे पूर्व प्रकृति को आद्युदात्त स्वर हो। यह सूत्र (२४) सूत्र का अपवाद है। और इस के अपवाद आगे कुछ लिखें गे। उदाहरण। ञित्—ष्यञ्—ब्राह्मण्यम्। चातुर्वर्ण्यम्। त्रैलोक्यम्। यञ्—गार्ग्यः। शाकल्यः। माधव्यः। बाभ्रव्यः। इत्यादि। इञ्—दाक्षिः। सौधातकिः। वैयासकिः। फिञ्—तैकायनिः। कैतवायनिः। इत्यादि। नित्। वुन्—वासुदेवकः। अर्जुनकः। ठन्—वस्निकः। कन्—द्रव्यकः। इत्यादि शब्द आद्युदात्त हो जाते हैं ॥ २६ ॥

३०—कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १५६ ॥

घञन्त कर्ष धातु और आकारवान् घञन्त शब्दोंके अन्त में उदात्त स्वर हो। कर्ष धातु के कहने से भ्वादिगणवाले का ग्रहण होता है। गुणनिषेध वाले तुदादि का ग्रहण नहीं होता। जैसे। कर्षः। त्यागः। रागः। दायः। धायः। पाकः। पाठः। इत्यादि। आकारवान् कहने से कर्ष को नहीं प्राप्त था इस लिये पृथक्ग्रहण किया है। आकारवान् ग्रहण इस लिये है कि। सर्गः। योगः। यहां न हो ॥ ३० ॥

३१—उञ्छादीनां च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६० ॥

उञ्छ आदि गणपठित शब्दों को अन्तोदात्त स्वर हो। जैसे। उञ्छः। म्लेच्छः। जञ्जः। जल्पः। इन चार घञन्त शब्दों में आद्युदात्त प्राप्त था सो न हुआ। जपः। व्यधः। ये दो शब्द अप् प्रत्ययान्त हैं इन को भी आद्युदात्त स्वर प्राप्त था ॥

गणसूत्र—युगः कालविशेषे रथाद्युपकरणे च ॥ १ ॥

युग शब्द कालविशेष अर्थात् कलियुग द्वापरयुग इत्यादि वा पीढ़ी तथा रथ आदि के उपकरण अर्थात् अवयव जुआ आदि अर्थ में अन्तोदात्त होता है अन्यत्र नहीं होता। युगः। घञन्त होने से आद्युदात्त प्राप्त था ॥

सू०—गरो दूष्ये ॥ २ ॥

दूष्य अर्थात् विष अर्थ में गर शब्द अन्तोदात्त हो। जैसे। गरः। अन्यत्र आद्युदात्त रहे गा ॥

सू०—वेगवेदवेष्टबन्धाः करणे ॥ ३ ॥

करण कारक में प्रत्यय किया हो तो घञन्त वेग आदि चार शब्द अन्तोदात्त हों विग्रजते येन स, वेगः। वेत्ति येन स, वेदः। वेष्टते येन स वेष्टः। बध्नाति येन स बन्धः। और भाव वा अधिकरण में प्रत्यय हो गा तो आद्युदात्त ही समझे जावें गे ॥

सू०—स्तुयुद्रुवश्छन्दसि ॥ ४ ॥

क्विबन्त स्तु आदि तीन धातुओं को अन्तोदात्तस्वर हो। जैसे। परिष्टुत्। संयुत्। परिद्रुत्। यहां उपसर्गों को प्रकृतिभाव प्राप्त था ॥

सू०—वर्त्तनिः स्तोत्रे ॥ ५ ॥

जो स्तुति प्रकरण में वर्तनि शब्द पढ़ा हो तो अन्तोदात्त स्वर हो जैसे। वर्त्तनिः। अन्यत्र अनि प्रत्यय आद्युदात्त होने से मध्योदात्त स्वर हो गा। वर्त्तनिः।

सू०—श्वभ्रे दरः ॥ ६ ॥

श्वभ्र अभिधेय हो तो दर शब्द अन्तोदात्त हो। जैसे। दरः। अन्यत्र आद्युदात्त ही समझा जाता है जैसे। दरः ॥

सू०—साम्बतापौ भावगर्हायाम् ॥

भावगर्हा अर्थात् धात्वर्थ की निन्दा में साम्ब और ताप शब्द अन्तोदात्त हों। जैसे। साम्बः। तापः। अन्यत्र। आद्युदात्त ही समझे जावें गे ॥

सू०—उत्तमशश्वत्तमौ सर्वत्र ॥

उत्तम और शश्वत्तम ये दोनों शब्द सामान्य अर्थों में अन्तोदात्त हों जैसे। उत्तमः। शश्वत्तमः। तथा। भक्षः। मन्थः। भोगः। देहः। इत्यादि ॥ ३१ ॥

३२—अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६१ ॥

जिस अनुदात्त के परे उदात्त का लोप हो उस अनुदात्त को उदात्त हो। जैसे। औपगव-ई। यहां ई अनुदात्त के परे अन्तोदात्त औपगव शब्द के अन्त्य वर्ण का लोप हो कर ईकार उदात्त हो जाता है। औपगवी। तथा। दाक्षायणी। प्लाक्षायणी। कुमारी। इत्यादि। अस्थन्, दधन् शब्द दोनों अन्तोदात्त हैं तृतीयादि अजादि विभक्तियों में उपधा अकार का लोप हो कर। अस्थ्ना। दध्ना। अस्थ्ने। दध्ने। इत्यादि। इसी प्रकार इस सूत्र का बहुत विषय है जहां कहीं अनुदात्त के परे उदात्त का लोप हो वहां सर्वत्र इसी से उदात्त समझा जावे गा। यत्र ग्रहण इस लिये है कि। भार्गवः। भार्गवी। भृगवः। यहां जस् विभक्ति के आने से प्रथम ही प्रत्यय का लुक् हो जाता है। उदात्त ग्रहण इस लिये है कि जहां अनुदात्त के परे अनुदात्त ही का लोप हो वहां उदात्त न हो ॥ ३२ ॥

३३—धातोः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६२ ॥

धातु को अन्तोदात्त स्वर हो। पचति। पठति। चिचीषति। तुष्टूषति। ऊर्णोति। पापच्यते। जागर्ति। गोपायति। इत्यादि इन में जिस २ अंश को धातु संज्ञा है उसी को अन्तोदात्त हुआ है ॥ ३३ ॥

३४—चितः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६३ ॥

चित् अर्थात् चकार इत् होके लोप जिस में हो उस समुदाय को अन्तोदात्त स्वर हो। प्रत्यय के आद्युदात्त स्वर का अपवाद यह सूत्र है। घुरच्—भङ्गुरः। भासुरः। मेदुरः। कौण्डिन्य को कुण्डिनच् आदेश। कुण्डिनाः। अकच् सर्वकः। उच्चकैः। नीचकैः। बहुच्—बहुकृतम्। बहुभुक्तम्। बहुपटु। इत्यादि ॥ ३४ ॥

३५—तद्धितस्य च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६४ ॥

जो तद्धित संज्ञक चित् प्रत्यय है वह अन्तोदात्त हो। जैसे। च्फञ्। कौञ्जायनाः। भौञ्जायनः। इत्यादि। पूर्वसूत्र में चित् के कहने से यहां भी अन्तोदात्त हो जाता फिर इस सूत्र का पृथक् आरम्भ इस लिये किया है कि जहां दो अनुबन्धों से दो स्वर प्राप्त हों वहां भी चित् का स्वर अन्तोदात्त ही हो। जैसे च्फञ् प्रत्ययान्तों को हुआ ॥ ३५ ॥

३६—कितः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६५ ॥

जो तद्धित संज्ञक कित् प्रत्यय है वह अन्तोदात्त हो जैसे। फक्—नाडायनः चारायणः। दाक्षायणः। ठक्—रैवतिकः। आक्षिकः। कौद्दालिकः पारिखिकः ॥ ३६ ॥

३७—सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६८ ॥

जो सु अर्थात् सप्तमी के बहुवचन में एकाच् शब्द हो उस से परे जो तृतीयादि विभक्ति सो अन्तोदात्त हो जैसे। वाचा। वाग्भ्याम्। वाग्भिः। वाचे। वाचः। त्वचे। त्वचः। इत्यादि। सु ग्रहण इस लिये है कि। राज्ञा। राज्ञे। यहां न हो। एकाच् ग्रहण इस लिये है कि। किरिणा। गिरिणा। यहां विभक्ति उदात्त न हो। तृतीयादिग्रहण इस लिये है कि। वाचौ। वाचः। यहां न हो। विभक्तिग्रहण इस लिये है कि। वाक्तरा। यहां न हो। सप्तमी का बहुवचन सु इसलिये लिया है कि। त्वया। यहां भी विभक्ति उदात्त न हो ॥ ३७ ॥

३८—शतुरनुमो नद्यजादी ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७३ ॥

नुम्रहित जो शतृ प्रत्ययान्त प्रातिपदिक उस से परे जो नदीसंज्ञक प्रत्यय और अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति वह उदात्त हो। नदीसंज्ञक ङीप्। तुदती। नुदती। लुनती। इत्यादि अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति। लुनते। लुनतः। लुनतोः। लुनति। अनुम्ग्रहण इस लिये है कि। तुदन्ती। नुदन्ती। इत्यादि में नदी उदात्त न हो। नद्यजादिग्रहण इस लिये है कि तुदद्भ्याम्। तुदद्भिः। यहां विभक्ति उदात्त न हो ॥ ३८ ॥

३९—वा०—नद्यजाद्युदात्तत्वे वृहन्महतोरुपसंख्यानम् ॥

जो वृहत् और महत् शब्द से परे नदी और अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति है वह उदात्त हो जैसे। बृहती। महती। बृहता। बृहते। महता। महते। इत्यादि। पृषत्। आदि शब्दों को शतृ प्रत्ययान्त के सब कार्य होते हैं। फिर इस वार्त्तिक के कहने का प्रयोजन यह है कि पृषत् आदि सब शब्दों से परे नदी और अजादी विभक्ति उदात्त न हों किन्तु बृहत् और महत् से ही हो ॥ ३९ ॥

४०—उदात्तयणो हल्पूर्वात् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७४ ॥

हल् वर्ण जिस के पूर्व हो ऐसा जो उदात्त के स्थान में यण् उस से परे जो नदी संज्ञक प्रत्यय और अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति सो उदात्त हो जैसे नदी— कर्त्री। हर्त्री। पत्नी। लवित्री। प्रसवित्री। इत्यादि। यहां सर्वत्र तृच् अन्तोदात्त के स्थान में यण् हुआ है। अजादि असर्व नाम स्थान विभक्ति। कर्त्रा। कर्त्रे। कर्त्रोः। लवित्रा। लवित्रे। लवित्रोः। इत्यादि। यहां उदात्त ग्रहण इस लिये है कि कर्त्री हर्त्री। कर्त्रा। हर्त्रा। यहां तृन्नन्त शब्दों के आद्युदात्त न होने से अनुदात्त के स्थान में यण् हुआ है। यहां हल्पूर्वग्रहण इस लिये है कि। बहुतितवा। बहु-तितवे। यहां उदात्त के स्थान में बहुतितउ शब्द के उकार को यण् तो हुआ है परन्तु वह उदात्त केवल अच् था। फिर विभक्ति को उदात्त का निषेध होके आष्टमिक सूत्र से स्वरित होता है ॥ ४ ॥

४१—नकारग्रहणं च कर्त्तव्यम् ॥

जो नकारान्त से परे नदीसंज्ञक प्रत्यय हो वह उदात्त हो। वाक्पत्नी। चित्पत्नी। यहां उदात्त के स्थान में यण् नहीं हैं ॥ ४१ ॥

४२—ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप् ॥ अ०। ६ । १ । १७६ ॥

जो ह्रस्वान्त अन्तोदात्त प्रातिपदिक और नुट् का आगम इन से परे जो मतुप् प्रत्यय होता वह उदात्त हो। पित् प्रत्यय के अनुदात्त होने का यह अपवाद है। ह्रस्व। अग्निमान्। वायुमान्। भानुमान्। कर्तृमान्। इत्यादि। नुट्। अक्षण्वती। शीर्षण्वतः। मूर्द्धन्वती ॥ ४२ ॥

४३—वा०—मतुबुदात्तत्वे रेग्रहणम् ॥

रै शब्द से परे जो मतुप् होती वह भी उदात्त हो। आरेवानेतु नो विशः। यहां रेवान् शब्द में ह्रस्व के नहीं होने से नहीं प्राप्त था ॥ ४३ ॥

४४—वा०—त्रिप्रतिषेधश्च ॥

त्रि शब्द से परे मतुप् उदात्त न हो। त्रिवतीः। यहां उदात्त न हुआ ॥ ४४ ॥

४५—नामन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७७ ॥

मतुप् प्रत्यय के परे जो ह्रस्व अङ्ग उस से परे षष्ठी का बहुवचन नाम् विभक्ति होती वह विकल्प कर के उदात्त हो । जैसे । अग्नीनाम् । अग्नीनाम् । वायूनाम् । वायूनाम् । तिसृणाम् । तिसृणाम् । चतसृणाम् । चतसृणाम् । यहां ह्रस्व ग्रहण इस लिये है कि । कुमारीणाम् । किशोरीणाम् । इत्यादि में विभक्ति उदात्त न हो ॥ ४५ ॥

४६—ङ्याश्छन्दसि बहुलम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७८ ॥

जो ङ्यन्त से परे नाम् होती वह बहुल कर के उदात्त हो अर्थात् कहीं हो और कहीं न हो । देवसेनानामभिभञ्जतीनाम् । यहां होगई तथा । नदीनां पारे जयन्तीनां मरुतः । यहां विभक्ति उदात्त नहीं होती ॥ ४६ ॥

४७-तित्स्वरितम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १८५ ॥

जो तित् प्रत्यय है वह स्वरित हो । यह आद्युदात्तप्रत्यय स्वर का अपवाद है । यत्-चिकीर्ष्यम् । जिहीर्ष्यम् । चिचीष्र्यम् । तुष्टूर्ष्यम् । ण्यत्-कार्यम् । हार्यम् । इत्यादि ॥ ४७ ॥

४८—तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्त—
मह्न्विङोः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १८६ ॥

तास् प्रत्यय, अनुदात्तेत् धातु, ङित् धातु, और अदुपदेश धातु इन से परे जो सार्वधातुक संज्ञक लकार के स्थान में तिप् आदि प्रत्यय वे अनुदात्त हों परन्तु यह कार्य ह्नुङ् और इङ् धातु को छोड़ के होवे क्यों कि ये दोनों ङित् हैं । जैसे तास् प्रत्यय—कर्त्ता । कर्त्तारौ । कर्त्तारः । अनुदात्तेत् । आस्ते । आसाते । आसते । ङित् । शेते । सूते । दोधीते । वेवीते । अदुपदेश, पठतः । पठन्ति । पचतः । पचन्ति । तासि आदि से परे ग्रहण इस लिये है कि । सुनुतः । सुन्वन्ति । यहां न हो लसार्वधातुकग्रहण इस लिये है कि । सुषुवे । सुषुवाते । यहां न हो और ह्नुङ् तथा इङ् का निषेध इसलिये है कि ह्नुते । अधीते । यहां अनुदात्त न हो ॥४८॥

४९—लिति ॥ अ० ॥ ६ । १ । १९३ ॥

लकार जिस का इत् गया हो उस प्रत्यय से पूर्व उदात्त हो जैसे । चिकीर्षकः । जिहीर्षकः । यहां चिकीर्ष जिहीर्ष धातु से ण्वुल् हुआ है । भौरिकिविधम् । यहां तद्धित का विधल् प्रत्यय है । ऐषुकारिभक्तः । और यहां तद्धित का भक्तल् प्रत्यय हुआ है इत्यादि ॥ ४९ ॥

५०—आमंत्रितस्य च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १९८ ॥

जो आमंत्रित अर्थात् सम्बोधन में प्रथमाविभक्त्यन्त शब्द हों उन को आद्यु-

दात्त स्वर हो जाता जैसे । अग्ने । वायो । इन्द्र । देवदत्त । देवदत्तौ । देवदत्ताः धनञ्जय । इत्यादि ॥ ५० ॥

५१—यतोऽनावः ॥ अ० ॥ ६ । १ । २१३ ॥

दो स्वर वाले यत् प्रत्ययान्त शब्दों को आद्युदात्त स्वर हो परन्तु नौ शब्द को छोड़ के । जैसे । देयम् । धेयम् । चेयम् । जेयम् । शरीरावयवाद्यत् । कण्ठ्यम् । ओष्ठ्यम् । जङ्घ्यम् । जिह्व्यम् । इत्यादि (तित्स्वरितम्) इस पूर्व लिखित सूत्र से द्वयच् प्रातिपदिकों को भी स्वरित पाता सो उस का अपवाद यह सूत्र है । द्वयच् ग्रहण इस लिये है कि । उरस्यम् । ललाट्यम् । नासिक्यम् । यहां आद्युदात्त न हो नौ शब्द का निषेध इस लिये है कि । नाव्यम् । यहां भी आद्युदात्त न हो ॥ ५१ ॥

५२—समासस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । २२३ ॥

समास किये शब्द मात्र को अन्तोदात्त स्वर हो । अब समास के स्वर का थोड़ा सा विषय लिखा जाता है । समास के स्वर का सामान्य सूत्र यह है । और यह सब समास के स्वर का उत्सर्ग सूत्र है आगे सब प्रकरण इस का अपवाद है । राजपुरुषः । ब्राह्मणकम्बलः । नदीघोषः । पटहशब्दः । वीरपुरुषः । परमेश्वरः इत्यादि ॥ ५२ ॥

परिभा०—५३—स्वरविधौ व्यंजनमविद्यमानवत् ॥

उदात्तादि स्वरों के विधान में व्यंजन वर्णों को अविद्यमानवत् समझना चाहिये । जैसे । राजदृषत् । ब्राह्मणसमित् । यहां समासान्त हल् वर्ण के होने से उस हल् को उदात्त प्राप्त है उस को अविद्यमानवत् मान के उस से पूर्व वर्ण को उदात्त हो जाता है । इसी प्रकार और भी बहुत से प्रयोजन हैं । अब समास स्वर का विशेष नियम कुछ लिखते हैं ॥ ५३ ॥

५४—बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १ ॥

जो बहुव्रीहि समास में पूर्वपद का स्वर हो वह प्रकृति करके अर्थात् अन्तोदात्त न हो ज्यों का त्यों बना रहे । जैसे । स्थूलपृषती । हिरण्यबाहुः । ब्रह्मचारिपरिस्कन्दः । स्नातकपुत्रः पण्डितपुत्रः । अध्यापकपुत्रः । इत्यादि ॥ ५४ ॥

५५—तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्यय-
द्वितीयाकृत्याः ॥ अ० ॥ ६ । २ । २ ॥

तत्पुरुष समास में जो तुल्यार्थ, तृतीयान्त, सप्तम्यन्त, उपमानवाची, अव्यय, द्वितीयान्त और कृत्य प्रत्ययान्त पूर्वपद हो तो उस में प्रकृतिस्वर हो । जैसे ।

तुल्यार्थ—तुल्यश्वेतः। तुल्यलोहितः। तुल्यमहान्। सदृक्श्वेतः। सदृग्लोहितः। यहां तुल्यार्थ शब्दों के साथ कर्मधारयतत्पुरुष समास हुआ है। तृतीयातत्पुरुष शङ्कुलया खण्डः, शङ्कुलाखण्डः। किरिकाणः। सप्तमीतत्पुरुष—अक्षशौण्डः। पानशौण्डः। उपमानवाची—घनश्यामः। तडिद्गौरी। शस्त्रीश्यामा। कुमुदश्येनी। इत्यादि। अव्ययपर— ॥ ५५ ॥

वा०—५६—अव्यये नञ्कुनिपातानाम् ॥

अव्यय के कहने से सामान्य अव्यय का ग्रहण न हो इस लिये इस वार्त्तिक से परिगणन किया है कि अव्ययों में नञ्, कु और निपातों को ही पूर्वपद प्रकृति स्वर हो। जैसे। नञ्—अब्राह्मणः। अवृषलः। कु—कुब्राह्मणः। कुवृषलः। निपात—निष्कौशाम्बिः। निर्वाराणसिः। परिगणन इस लिये है कि। स्नात्वाकालकः। पीत्वास्थिरकः। यहां पूर्वपद प्रकृति स्वर न हो। द्वितीयान्त—मुहूर्त्तसुखम्। मुहूर्त्तरमणीयम्। सर्वरात्रकल्याणी। सर्वरात्रशोभना। यहां अत्यन्तसंयोग में द्वितीया का समास है। कृत्यान्त—भोज्यञ्च तदुष्णं च भोज्योष्णम्। भोज्यलवणम्। पानीयशीतम्। हरणीयचूर्णम्। इत्यादि ॥ ५६ ॥

५७—गतिरनन्तरः ॥ अ० ॥ ६ । २ । ४६ ॥

जो कर्मवाची क्तान्त उत्तरपद परे और अनन्तर अर्थात् समीपगति हो तो वह प्रकृतिस्वर हो जैसे। प्रकृतः। प्रहृतः। इत्यादि। अनन्तरग्रहण इस लिये है कि। अभ्युद्धृतम्। उपसमाहृतम्। इत्यादि में पूर्वपद प्रकृतिस्वर न हो। कर्मवाची का ग्रहण इस लिये है कि। प्रकृतः कटं देवदत्तः। यहां कर्त्ता में क्त प्रत्यय है इस लिये नहीं होता यह पूर्वपद प्रकृतिस्वर पूरा हुआ अब पूर्वपद आद्युदात्त आदि प्रकरण कुछ लिखेंगे ॥ ५७ ॥

५८—आदिरुदात्तः ॥ अ० ॥ ६ । २ । ६४ ॥

पूर्वपद आद्युदात्त होने के लिये यह अधिकार सूत्र है ॥ ५८ ॥

५९—णिनि ॥ अ० ॥ ६ । २ । ७९ ॥

णिनि प्रत्ययान्त उत्तर पद परे होतो पूर्वपद आद्युदात्त हो जैसे। उष्णभोजी। शीतभोजी। स्थण्डिलशायी। पण्डितमानी। सोमयाजी। कुमारघाती। शीर्षघाती। फलहारी। पर्णहारी। इत्यादि ॥ ५९ ॥

६०—अन्तः ॥ अ० ॥ ६ । २ । ९२ ॥

पूर्वपद अन्तोदात्त प्रकरण में यह अधिकार सूत्र है ॥ ६० ॥

६१—सर्वं गुणकार्त्स्न्ये ॥ अ० ॥ ६ । २ । ९३ ॥

जो गुणों की संपूर्णता अर्थ में वर्त्तमान पूर्वपद सर्व शब्द हो तो वह अन्तोदात्त हो । जैसे । सर्वश्वेतः । सर्वकृष्णः । सर्वलोहितः । सर्वहरितः । सर्वश्यामः । सर्वसारङ्गः । सर्वकालमाषः । सर्वमहान् । इत्यादि ॥ ६१ ॥

६२—उत्तर पदादिः ॥ अ० ॥ ६ । २ । १११ ॥

उत्तरपदआद्युदात्तप्रकरण में यह अधिकार सूत्र है ॥ ६२ ॥

६३—अकर्मधारये राज्यम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १३० ॥

कर्मधारय समास से भिन्न तत्पुरुष समास में जो राज्य उत्तरपद होतो वह आद्युदात्त हो जैसे । ब्राह्मणराज्यम् । क्षत्रियराज्यम् । यवनराज्यम् । कुरुराज्यम् इत्यादि अब उत्तरपद तथा उभयपद प्रकृतिस्वर के विषय में कुछ लिखते हैं ॥ ६३ ॥

६४—गतिकारकोपपदात्कृत् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १३९ ॥

जो तत्पुरुषसमास में गति, कारक और उपपद से परे कृदन्त उत्तर पद हो तो वह प्रकृतिस्वर हो जैसे । गति—प्रकारकः । प्रहारकः । प्रकरणम् प्रहरणम् । कारक—इध्मप्रव्रश्चनः । पलाशशातनः । श्मश्रुकल्पनः । उपपद—ईषत्करः । दुष्करः । सुकरः । गतिकारकोपपदग्रहण इस लिये है कि । देवदत्तस्य कारको देवदत्तकारकः । यहां नहो ॥ ६४ ॥

६५—उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४० ॥

वनस्पति आदि समास किये हुए शब्दों में पूर्वपद उत्तरपद दोनों एक काल में प्रकृतिस्वर हों । वनस्पतिः । यहां वन और पति दोनों शब्द आद्युदात्त हैं । पति शब्द को समास में सुट् होजाता है । बृहस्पतिः । यहां भी सुट् हुआ है । शचीपतिः । तनूनपात् । नराशंसः । शुनःशेपः । शण्डामर्कौ । तृष्णावरूत्री । बम्बाविश्ववयसौ । मर्मृत्युः ॥ ६५ ॥

६६—देवताद्वन्द्वे च ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४१ ॥

देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में एककाल में दोनों शब्द प्रकृतिस्वर हों । इन्द्रासोमौ । इन्द्रावरुणौ । इन्द्राबृहस्पती । द्यावापृथिव्यौ । सोमारुद्रौ । इन्द्रापूषणौ । शुक्रामन्थिनौ । इत्यादि ॥ ६६ ॥

६७—अन्तः ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४३ ॥

उत्तरपद अन्तोदात्त प्रकरण में यह अधिकार सूत्र है ॥ ६७ ॥

६८—थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४४ ॥

गति, कारक और उपपद से परे जो थ, अथ, घञ्, क्त, अच्, अप्, इत्र और क इन ने प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद उन को अन्तोदात्त स्वर हो। जैसे। थ—सुनीथः। अवभृथः। अथ— आवसथः। उपवसथः। घञ्। प्रभेदः। काष्ठभेदः। रज्जुच्छेदः। क्त—दूरादागतः। विशुष्कः। आतपशुष्कः। अच्—प्रणयः। विनयः। विजयः। आश्रयः। व्यत्ययः। अन्वयः। इत्यादि। अप्—प्रलवः। प्रसवः। इत्र—प्रलवित्रम्। प्रसवित्रम्। क—गोदः। कम्बलदः। ग्रंस्थः। गृहस्थः। वनस्थः। इत्यादि। अब इस के आगे अनुदात्त का प्रकरण संक्षेप से लिखते हैं ॥ ६८ ॥

६९—पदात् ॥ अ० ॥ ८ । १ । १७ ॥

यह अधिकार सूत्र है यहां से आगे पद से परे कार्य होगा ॥ ६९ ॥

७०—पदस्य ॥ अ० ॥ ८ । १ । १६ ॥

यह भी अधिकार सूत्र है। यहां से आगे जो कार्य कहेंगे वह पद के स्थान में समझा जावेगा ॥ ७० ॥

७१—अनुदात्तं सर्वमपादादौ ॥ अ०॥ ८ । १ । १८ ॥

यह भी अधिकार सूत्र है । अपादादि अर्थात् जो पाद की आदि में न हो किन्तु मध्य वा अन्त में होतो पद से परे सब पद अनुदात्त हो। यह अधिकार चलेगा ॥ ७१ ॥

७२—आमंत्रितस्य च ॥अ०॥ ८ । १ । १९ ॥

जो पद से परे अपादादि में वर्त्तमान आमंत्रित पद होतो वह सब अनुदात्त होवे। जैसे—पठसि देवदत्त। जुहोसि देवदत्त। आमंत्रित पद को पूर्वोक्त (५०) सूत्र से आद्युदात्त प्राप्त था इस लिये यह विधान है ॥ ७२ ॥

परिभाषा—७३—आमंत्रितं पूर्वमविद्यमानवत्॥अ०॥८।१।७२॥

पद से परे जिस पद को अनुदात्त आदि विधान करते हैं उस से पूर्व जो आमंत्रित होतो उस को अविद्यमानवत् समझना चाहिये। अर्थात् पूर्व कुछ नहीं है ऐसा माना जावे जैसे। देवदत्त यज्ञदत्त। यहां यज्ञदत्त शब्द को पद से परे निघात नहीं हुआ। तथा। देवदत्त पचसि। यहां अविद्यमानवत् होने से क्रिया को निघात नहीं होता। तथा। देवदत्त तव ग्रामस्त्वम् देवदत्त मम ग्रामस्त्वम्। यहां पद से परे ते, मे, आदेश नहीं होते। इत्यादि ॥ ७३ ॥

७४-नामंत्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम् ॥
अ० ॥ ८ । १ । ७३ ॥

सामान्यवचन समानाधिकरण आमंत्रितपद परे हो तो पूर्व जो आमंत्रितपद है वह अविद्यमानवत् न हो जैसे । अग्ने व्रतपते । अग्ने गृहपते। पृथिवि देवयजनि। अर्थात् पद से परे निघात आदि कार्य्य हो जावें । समानाधिकरण ग्रहण इस लिये है कि पूर्वसूत्र के विषय में यह सूत्र न लगे । सामान्यवचनग्रहण का प्रयोजन यह है कि । अग्न इ॑ देवि॒ सर॑स्वति॒ इडे॒ काव्ये॒ विह॒व्ये॑ । यहां पर्य्यायवाची शब्दों में न हो ॥ ७४ ॥

७५—विभाषितं विशेषवचने बहुवचनम् ॥ अ० ॥ ८ । १ । ७४ ॥

विशेषवचन समानाधिकरण आमंत्रित पद परे हो तो पूर्व जो आमंत्रितपद है वह विकल्प करके अविद्यमानवत् हो । जैसे । देवा॒ ब्राह्मणाः। देवा ब्राह्मणाः। ब्रा॒ह्म॑णा वैया॑करणाः । ब्रा॒ह्म॑णा वैयाकरणाः । यहां अविद्यमानवत् पक्ष में दोनों पद के स्वर और विद्यमानवत् पक्ष में उत्तरपद निघात हो जाता है । इत्यादि । विशेष वचनग्रहण इस लिये है कि । माण॑वक॒ जटिलक । यहां विकल्प न हो ॥ ७५ ॥

७६—युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ ॥
अ० ॥ ८ ॥ १ । २० ॥

षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति के सह वर्त्तमान अपादादि में पद से पर जो युष्मद् अस्मद् पद उन को क्रम से वाम् और नौ आदेश हों और वे सब अनुदात्त हों। जैसे षष्ठीस्थ-ग्रामो॑ वा॒ं स्वम् । ज॒नप॒दो नौ॒ स्वम् । चतुर्थीस्थ। ग्रामो॑ वां दीयते। ज॒नप॒दो नौ॑ दीयते । द्वितीयास्थ—माण॒व॒को वां पश्यति । मा॒ण॒व॒को नौ॑ पश्यति । इत्यादि । इस सूत्र में स्थग्रहण इस लिये है कि । दृष्टो मया युष्मत्पुत्रः । यहां षष्ठी का लुक् होजाने से आदेश और अनुदात्त नहीं होता ॥ ७६ ॥

७७-बहुवचनस्य वस्नसौ ॥ अ० ॥ ८ । १ । २१ ॥

षष्ठी,चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति के सह वर्त्तमान अपादादि में पद से परे बहुवचनान्त जो युष्मद् अस्मद् पद उन को क्रम से वस् और नस् आदेश हों तथा वे सब अनुदात्त हों । जैसे । नमो॑ वः पितरः। नमो॑ वो देवाः । मनो॑ वधीः । मा॒नो॒ गोषु मा॒नो॑ अश्वे॑षु रीरिषः । यन्नः । इत्यादि ॥ ७७ ॥

७८-तेमयावेकवचनस्य ॥ अ० ॥ ८ । १ । २२ ॥

अपादादि में वर्त्तमान पद से परे जो एकवचनान्त युष्मद् अस्मद् पद उन को

ते, मे, आदेश हों और वे सब अनुदात्त हों जैसे । गुरुस्ते पण्डितः । गुरुर्मे पण्डितः। देहि मे ददामि ते । इत्यादि ॥ ७८ ॥

७९—त्वामौ द्वितीयायाः ॥ अ० ॥ ८ । १ । २३ ॥

पद से परे अपादादि में वर्त्तमान द्वितीयैकवचनान्त जो युष्मद् अस्मद् पद उन को त्वा,मा,आदेश हों और वे सब अनुदात्त हों । जैसे । कस्त्वा युनक्ति सत्वा युनक्ति । पुनन्तु मा । इत्यादि ॥ ७९ ॥

८०—तिङ्ङतिङः ॥ अ० ॥ ८ । १ । २८ ॥

जो अपादादि में अतिङन्त पद से परे तिङन्त पद हो तो वह सब अनुदात्त हो जावे । जैसे । त्वं पचसि । अहं पठामि । स गच्छति । तौ गच्छतः । इत्यादि । यहां तिङ्ग्रहण इस लिये है कि । शुक्लं वस्त्रम् । यहां नहीं होता । अतिङ्ग्रहण इस लिये है कि । पठति । पचति । यहां न हो ॥ ८० ॥

८१—यावद्यथाभ्याम् ॥ अ० ॥ ८ । १ । ३६ ॥

जो यावत् और यथा से युक्त तिङन्त पद हो तो वह अनुदात्त न हो । यावद् भुङ्क्ते । यथा भुङ्क्ते । यावदधीते । यथाऽधीते । देवदत्तः पचति यावत् । देवदत्तः पचति यथा । इत्यादि ॥ ८१ ॥

८२—यद्वृत्तान्नित्यम् ॥ अ० ॥ ८ । १ । ६६ ॥

जो यत् शब्द के प्रयोग से युक्त तिङन्त पद हो तो वह अनुदात्त न हो । जैसे यो भुङ्क्ते । यं भोजयति । येन भुङ्क्ते । इत्यादि ॥ ८२ ॥

८३—गतिर्गतौ ॥ अ० ॥ ८ । १ । ७० ॥

जो गति से परे पूर्व गति हो तो वह निघात हो जाती है जैसे । अभ्युद्धरति समुदानयति । उपसंव्यानयति । उपसंहरति । अभ्यवहरति । इत्यादि ॥ ८३ ॥

८४—उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोनुदात्तस्य ॥ अ० ॥ ८ ।२।४॥

जो उदात्त और स्वरित के स्थान में यण् उस से परे अनुदात्त हो तो उस को स्वरित हो जावे जैसे । सुप्वा । यहां सुपू शब्द अन्तोदात्त और विभक्ति अनुदात्त है उस को स्वरित हो जाता है । नीचे जो ‿ यह वक्र चिन्ह होता है वह भी स्वरित हो का चिह्न है । इसी प्रकार । पृथिव्यासि । यहां पृथिवी शब्द अन्तोदात्त है। उस सेपरे अकार अनुदात्त को स्वरित हो जाता है। स्वरित यण्—सकृल्वि—आशा खलपिव—आशा। यहां सकृल्वि खलपिव सप्तम्यन्त स्वरितान्त शब्द हैं उन के यण् से परे आकार अनुदात्त को स्वरित हो जाता है जैसे । सकृल्व्याशा। खलप्व्याशा । इत्यादि ॥ ८४ ॥

८५—एकादेश उदात्तेनोदात्तः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५ ॥

उदात्त के साथ जो अनुदात्त का एकादेश है वह भी उदात्त ही हो जा
है । जैसे । अग्नी । वायू । यहां अग्नि वायु शब्द अन्तोदात्त हैं । उन का अ
दात्त विभक्ति के साथ एकादेश हुआ है । इसी प्रकार । वृचैः । प्रचैः । इत्यादि ॥

८६—स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ ॥ अ० ॥ ८ । २ । ६ ॥

जो उदात्त के साथ एकादेश है वह पदादि अनुदात्त के परे विकल्प क
स्वरित हो पक्ष में उदात्त हो । सु—उत्थितः । सूत्थितः । सूत्थितः । वि-ईक्षते
वीक्षते । वीक्षते । इत्यादि ॥ ८६ ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीनिर्मितः सौवरो ग्रन्थः समाप्तः ॥

सम्वत् १६ ३६ भाद्रशुक्ल १३ चन्द्रवार

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	१८	ग्रत्नुः	ग्रत्नुः
५	१५	ऋतेन	ऋतेन
५	१६	ऋतेन	ऋतेन
५	१७	गार्ग्यः	गार्ग्यः
५	१७	अनुात्त	अनुदात्त
६	१०	कृथ्य	कृथ्य
७	१५	सुब्रह्मण्योम्	सुब्रह्मण्योम्
७	२६	हरिव आगच्छ	हरिव आगच्छ
८	२८	दाचेः	दाचेः
१०	१४	ग्रुतुद्रि	ग्रुतु (१) द्रि
११	२४	धूपायति	धू (२) पायति
१२	११	पौरवः	पौरवः
१२	२२	पौरय	पौरव
१२	१५	पौरवातण	पौरवायण
१५	२	भङ्गुरः	भङ्गु (३) रः
१५	२७	लुनतोः	लुनतोः
१६	४	फरि	फिर
१६	८	उदात	उदात्त
१६	१४	बहु	ब हु (४)
१७	२७	ऐषुकारिभक्तः	ऐषु (५) कारिभक्तः
१८	५	कराठ्यम्	कराठ्यम्
१८	६	ओष्ठ्यम्	ओष्ठ्यम्
१८	१६	वीरपुरुषः	वीरपु (६) रुषः
१८	२५	अध्यापकं पुत्रः	अध्यापकं पुत्रः

(१) "तु" के नीचे स्वर चाहिये (२) "धू" के नीचे स्वर चा० (३) "ङ्गु" के नीचे स्वर चाहिये (४) "हु" के नीचे स्वर चा० (५) "षु" के नीचे स्वर चा० (६) "पु" के नीचे स्वर चा०

१८	४	कुमुदश्येनी	(७)कुमुदश्येनी
१८	१८	देवदत्तः	देवदत्तः
२०	८	क्षत्रियराज्यम्	क्षत्रियराज्यम्
२१	५	दूराद्दागतः	दू (८) राद्दागतः
२१	२५	देवदत्त यज्ञदत्त	देवदत्त यज्ञदत्त
२२	१७	पर	परे
२२	२६	मनो	मानो
२२	२७	गोषु मानो	गोषु मानो
२३	५	अद्युदात्त	आद्युदात्त
२३	१४	भुङ्क्ते	भु (९) ङ्क्ते
२३	१४	देवदत्तः	देवदत्तः
२३	२०	अभ्युद्धरति	अभ्युद्धरति

(७) "कु" के नीचे स्वर चा० (८) "दू" के नीचे स्वर चा० (९) "भु" के नीचे स्वर चाहिये ॥

———*———

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

द्वादशो भागः ॥

पारिभाषिकः ।

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां नवमो भागः ।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।
पण्डितज्वालादत्तशर्म्मणा संशोधितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां द्वादशं पुस्तकम् ।

मुनशी समर्थदान के प्रबन्धसे
वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ ।

संवत् १९३९ पौष कृष्ण ९

पहिली बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य ।)

॥ भूमिका ॥

संज्ञापरिभाषाविधिनिषेधनियमातिदेशाधिकाराख्यानि सप्तविधानि सूत्राणि भवन्ति। सम्यग् जानीयुर्यया सा संज्ञा; यथा (वृद्धिरादैच्) इत्यादि। परितः सर्वतो भाष्यन्ते नियमा याभिस्ताः परिभाषाः; यथा (इकोगुणवृद्धी) इत्यादि। यो विधीयते स विधिर्विधानं वा; यथा (सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु) इत्यादि। निषिध्यन्ते निवार्यन्ते कार्याणि यैस्ते निषेधाः; यथा (नधातुलोप आर्द्धधातुके) इत्यादि। नियम्यन्ते निश्चीयन्ते प्रयोगा यैस्ते नियमाः; यथा (अनुदात्तङित आत्मनेपदम्) इत्यादि। अतिदिश्यन्ते तुल्यतया विधीयन्ते कार्याणि यैस्तेऽतिदेशाः; यथा (आद्यन्तवदेकस्मिन्) इत्यादि। अधिक्रियन्ते पदार्थायैस्तेऽधिकाराः; यथा (कारके) इत्यादि। एषां सप्तविधानां सूत्राणां मध्याद्यतोऽयं परिभाषाणां व्याख्यानो ग्रन्थोऽस्ति तस्मात्पारिभाषिको वेदितव्यः॥

सूत्र सात प्रकार के होते हैं (संज्ञा, परिभाषा, विधि, निषेध, नियम, अतिदेश अधिकार) अच्छे प्रकार जिस से जानें वह संज्ञा कहाती है जैसे (वृद्धिरादैच्) इत्यादि। जिन से सब प्रकार नियमों की स्थिरता की जाय वे परिभाषा सूत्र कहाते हैं जैसे (इकोगुणवृद्धी) इत्यादि। जो विधान किया जाय वा जो विधान है वह विधि कहाता है जैसे (सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु) इत्यादि। निषेध उस को कहते हैं कि जिस से कार्यों का निवारण किया जाय जैसे (न धातुलोप आर्द्धधातुके) इत्यादि। नियम उन को कहते हैं कि जिन से प्रयोगों का निश्चय किया जाय जैसे (अनुदात्तङित आत्मनेपदम्) इत्यादि। जिस से किसी की तुल्यता लेकर कार्य कहें वह अतिदेश कहाता है जैसे (आद्यन्तवदेकस्मिन्) इत्यादि। और जिन से पदार्थों की विशेष अनुवृत्ति हो उन को अधिकार कहते हैं जैसे (कारके) इत्यादि। इन सात प्रकार के सूत्रों में से जिस लिये यह परिभाषाओं का व्याख्यान रूप ग्रन्थ है इस लिये इस का नाम पारिभाषिक रक्खा

है इन परिभाषाओं में से जो अष्टाऽध्यायीस्थ परिभाषा सूत्र हैं वे संधिविषय में व्याख्या पूर्वक लिख दिये हैं यहां केवल महाभाष्यस्थ परिभाषा सूत्रों का व्याख्यान है। परिभाषाओं का मुख्य तात्पर्य यही है कि दोषों का निवारण करके व्यवस्था कर देना। इसी लिये इस ग्रन्थ को बनाया है कि व्याकरण के संधि आदि प्रकरणों में जो २ संदेह पड़ते हैं वे इन परिभाषाओं के पठन पाठन से अवश्य निवृत्त हुआ करेंगे। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं। और इस में मूल परिभाषा के आगे जो संख्या पड़ी है वह अष्टाध्यायी के सूत्र की है उस सूत्र की व्याख्या में महाभाष्य में वह परिभाषा लिखी है। और परिभाषा के पहिले जो संख्या है वह इस ग्रन्थ की है॥

इति भूमिका

स्थान महाराणा जी का उदयपुर
आश्विन शुक्ल संवत् १९३९

दयानन्द सरस्वती

ओ३म्

अथ पारिभाषिकः ॥

—⊰※⊱—

परितो व्याप्तां भाषां परिभाषां प्रचक्षते ।

सब ओर से लौकिक वैदिक और शास्त्रीय व्यवहार के साथ जिस का सम्बन्ध रहे अर्थात् उक्त तीनों प्रकार का व्यवहार जिससे सिद्ध हो उस को परिभाषा कहते हैं । इस परिभाषिक ग्रन्थ में प्रथम परिभाषा की भूमिका लिख कर आगे लक्ष्य अर्थात् उदाहरण लिख के पुनः मूल परिभाषा लिखेंगे । और उस के आगे उस का स्पष्ट व्याख्यान करेंगे । अब प्रथम पाणिनीय व्याकरण अष्टाऽध्यायी के प्रत्याहार सूत्रों में (अइउण्, लण्) इन दो सूत्रों में लोप होने वाला हल् णकार पढ़ा है इस णकार से (अण्) और (इण्) दो प्रत्याहार बनते हैं। सो जिन सूत्रों में अण् इण् प्रत्याहारों से काम लिया जाता है वहां सन्देह पड़ता है कि किन २ सूत्रों में पूर्व और किन २ में पर णकार से (अण्) तथा (इण्) प्रत्याहार जानें इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

१—व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम् ॥

लण् सूत्र पर ॥

जिस सूत्र वा वार्त्तिक आदि में सन्देह हो वहां व्याख्यान से विशेष बात का निश्चय कर लेना चाहिये किन्तु सन्देह मात्र के होने से सूत्र आदि हो को अन्यथा न जान लेवें । जहां पृथक् २ देखे हुए दो पदार्थों के समान अनेक विरुद्ध धर्म एक में दीख पड़ें और उपलब्धि अनुपलब्धि की अव्यवस्था हो अर्थात् जो पदार्थ है और जो नहीं है दोनों की उपलब्धि और दोनों की अनुपलब्धि होती है क्योंकि पदार्थों के साधारण धर्म को लेकर सन्देह होता है उन में से जब विशेष अर्थात् किसी एक का निश्चय हो जाता है तब सन्देह नहीं रहता जिन सूत्र आदि में सन्देह पड़ता है वहां उन में छः प्रकार का व्याख्यान करना चाहिये पदच्छेद, पदार्थ, अन्वय, भावार्थ, पूर्वपक्ष—शङ्का, उत्तरपक्ष—समाधान इन छः प्रकार के व्याख्यानों से संदेहों की निवृत्ति कर लेनी चाहिये (प्रश्न) जैसे प्रथम (ढ्रलोपे

पूर्वस्य दीर्घोऽणः) इस सूत्र में (अण्) प्रत्याहार पूर्व णकार से लेना वा पर से यह संदेह है (उत्तर) इस में निस्संदेह पूर्व णकार से लेना चाहिये क्योंकि जो पर णकार से लिया जावे तो इस सूत्र में (अण्) का ग्रहण करना व्यर्थ है क्योंकि (अचश्च) इस सूत्र से ह्रस्व दीर्घ प्लुत अच् ही के स्थान में होते हैं इस से (अच्) की उपस्थिति होही जाती फिर (अण्) ग्रहण का यही प्रयोजन है कि इत्यादि सूत्रों में पूर्व णकार ही से लिया जावे (प्रश्न) और (अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः) इस सूत्र में (अण्) प्रत्याहार पूर्व णकार से वा पर णकार से लेना चाहिये (उ०) निस्संदेह पर णकार से (अण्) प्रत्याहार का ग्रहण है क्योंकि (उरृत्)इस सूत्र में ऋकार तपर इसी लिये पढ़ा है कि (अचीकृतत्) इत्यादि प्रयोगों में ऋकार को ह्रस्व ऋकार ही आदेश हो अर्थात् सवर्णग्रहण (अणुदित्०) परिभाषा सूत्र से ह्रस्व का सवर्णी दीर्घ न हो जावे । जो पूर्व णकार से अण् ग्रहण होता तो पूर्व अण् में ऋकार के न होने से ऋकार को सवर्ण ग्रहण प्राप्त ही नहीं फिर तपर क्यों पढ़ते । इस से स्पष्ट हुआ कि (अणुदित्०) इस सूत्र में पर णकार से और इसी एक सूत्र को छोड़ के अन्यत्र सब सूत्रों में पूर्व णकार से अण् ग्रहण है (प्र०) और (इण् कोः) इत्यादि जिन२ सूत्रों में इण् प्रत्याहार पढ़ा है वहां२ पूर्व वा पर णकार से ग्रहण करना चाहिये (उ०) यहां सर्वत्र निस्सन्देह पर णकार से इण् समझना चाहिये क्योंकि पूर्व से इण्प्रत्याहार में (इ,उ) दो ही वर्ण आते हैं सो जहां इन दो वर्णों से कार्य लिया है वहां (य्वोः)ऐसा इ उ को विभक्ति के साथ सन्धि करके पढ़ा है यहां इण् पढ़ते तो कुछ गौरव नहीं था किन्तु आधी मात्रा का लाघव हो था फिर इण् प्रत्याहार के न पढ़ने से निश्चय हुआ कि सर्वत्र पर णकार से इण् प्रत्याहार लिया जाता है । अन्यत्र भी जहां कहीं शिष्ट वचन में सन्देह पड़े वहां व्याख्यान से विशेष करके सत्य विषय का निश्चय कर लेना चाहिये किन्तु उस वचन को व्यर्थ जान के नहीं छोड़ देना चाहिये और सन्दिग्ध लौकिक व्यवहारों का भी विशेष व्याख्यान से निर्णय किया जाता है ॥ १ ॥

(सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः) यह गुण कार्य होने का काल है यहां (अलोन्त्यस्य, इको गुणवृद्धी) इन दो परिभाषाओं को विधि सूत्र के साथ परिभाषा बुद्धि से एकवाक्यता हो इस लिये कार्य्य काल परिभाषापक्ष, और जब (हयवरट्, हल्) यहां दो हकारों का उपदेश इत्यादि विषयों में सन्देह पड़े तब उस विषय के साथ सामान्यविषयक बुद्धि से परिभाषारूप व्याख्या की एकवाक्यता होवे । इस लिये यथोद्देश पक्ष है । इस से ये दोनों परिभाषा की गई हैं ॥

२—कार्यकालं संज्ञापरिभाषम् ॥

३—यथोद्देशं संज्ञापरिभाषम् ॥ अ० ॥ १ । १ । ११ ॥

(कार्यस्य कालः कार्यकालः कार्यकालः कालोऽस्य तत् कार्यकालम्, संज्ञा च परिभाषा च तत्संज्ञापरिभाषम्, उद्देशमनतिक्रम्य यथोद्देशम्) संज्ञा और परिभाषा का समय वही है जो कार्य करने का काल होता है उसी समय उन को उपस्थिति होती है। जैसे दीपक एक स्थान पर रक्खा हुआ सब घर को प्रकाशिता करता है वैसे परिभाषा भी एकदेश में स्थित हो कर सब शास्त्र के विषयों को प्रकाशित करती है इस में प्रमाण (परिभाषा पुनरेकदेशस्था सती कृत्स्नं शास्त्रमभिज्वलयति प्रदीपवत्, यथा प्रदीपः सुप्रज्वलितः सर्वं वेश्माभिज्वलयति) महाभाष्य० २ । १ । १ ॥ और यथोद्देशपक्ष से प्रयोजन यह है कि जिस विषय पर जिस परिभाषा का उच्चारण किया हो वह उस का उल्लंघन न करे अर्थात् उस विषय के अनुकूल उस की प्रवृत्ति होवे। इन दोनों पक्षों में भेद यह है कि कालपक्ष की परिभाषा किसी की दृष्टि में असिद्ध नहीं मानी जाती। और यथोद्देशपक्ष की परिभाषा असिद्ध प्रकरण में नहीं लगती ॥२।३॥

(दाधा घ्वदाप्) इस सूत्र में अदाप् कहने से दाप् लवने धातु का निषेध हो सकता है फिर दैप् शोधने धातु को घुसंज्ञा हो जावे तो (अवदातंमुखम्) यहां अनिष्ट दत् आदेश प्राप्त है इसी लिये दैप् धातु की घु संज्ञा इष्ट नहीं है इत्यादि प्रयोजनों के लिये यह परिभाषा की गई है ॥

४—अनेकान्ता अनुबन्धाः ॥ अ० ॥ १ । १ । २० ॥

प्, ञ्, ङ्, क् इत्यादि अनुबन्ध जिन धातु आदि के साथ युक्त होते हैं उन के एकान्त अर्थात् अवयव नहीं किन्तु वे अनुबन्ध उन धातु आदि से पृथक् हैं। इस से यह सिद्ध हुआ कि "दैप्" धातु को एजन्त मान कर आकारादेश किये पीछे दाप् मान कर इसी घुसंज्ञा का निषेध होता है इसी से (अवदातंमुखम्) यहां दोष नहीं आता ॥४॥

अब (अनेकाल् शित्सर्वस्य) इस सूत्र से (अनेकाल्) और (शित्) आदेश संपूर्ण के स्थान में होते हैं (इदम इश्, अष्टाभ्य औश्) यहां (इश्) और औश् भी शकार के सहित अनेकाल् हैं फिर अनुबन्धों* के एकान्त पक्ष में शित् ग्रहण ज्ञापक है इस से यह परिभाषा निकली है ॥

---

* अनुबन्धों में एकान्त और अनेकान्त दोनों पक्ष माने जाते हैं सो अनेकान्तपक्ष में परिभाषा का प्रयोजन दिखादिया और एकान्तपक्ष इस लिये मानते हैं कि अनेकान्तपक्ष में क् जिस का इत् गया हो वह कित् नहीं हो सकता क्यों कि कित् शब्द में बहुव्रीहि समास से अन्य पदार्थ प्रत्यय के साथ ककार अनुबन्ध का मुख्य सम्बन्ध नहीं घटता और एकान्तपक्ष में घट जाता है और अनेकान्तपक्ष में शकार अनुबन्ध से शित् अनेकाल् नहीं हो सकता फिर एकान्तपक्ष के लिये ही अगली ५ । ६ । ७ तीनों परिभाषा हैं ॥

५—नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम् ॥ अ० ॥ १ । १ । ५५ ॥

अनुबन्ध के सहित जो अनेकाल् हो उस को अनेकाल् नहीं मानना किन्तु जो अनुबन्धरहित अनेकाल् हो वही अनेकाल् कहाता है इस से यह आया कि (इश्) आदि आदेश शित् होने से अनेकाल् नहीं होते तो (शित्) आदेश सार्थक हो कर स्वार्थ में इस परिभाषा का चरितार्थ हो गया और अन्यत्र फल यह है कि जो अर्व् शब्द को (अर्वणस्त्रसावनञः) इस सूत्र से (तृ) आदेश कहा है उस को ऋकार अनुबंध के सहित अनेकाल् मान लें तो सर्वादेश अनिष्ट प्राप्त हो अंत्य को इष्ट है अनुबन्धकृत अनेकाल् न होने से सर्वादेश नहीं होता इत्यादि अनेकप्रयोजन हैं ॥ ५ ॥

अब इस पांचवीं परिभाषा के एकान्त पक्ष में होने से दैप् धातु के पकार का लोप प्रथम हो गया क्यों कि लोपविधि सब से बलवान् है। लोप किये पीछे आकारादेश करने से (अदाप्) इस से घुसंज्ञा का निषेध नहीं हो सकता। और किसी प्रकार पकार का लोप प्रथम न करें तो अनुबन्धों के एकान्तपक्ष में दैप् धातु एजन्त नहीं पुनः आकारादेश नहीं प्राप्त है तो (अवदातं मुखम्) यहां घुसंज्ञा होनी चाहिये इस लिये ज्ञापकसिद्ध यह परिभाषा है ॥

६—नानुबन्धकृतमनेजन्तत्वम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १९ ॥

अनुबंध के होने से एजन्त पन की हानि नहीं होती (उदीचां माङो०) इस सूत्र में (मेङ्) धातु का माङ् निर्देश नहीं करते तो व्यतिहारग्रहण भी नहीं करने पड़ता क्यों कि मेङ् धातु का व्यतिहार अर्थ ही है फिर (उदीचां मेङः) इतने छोटे सूत्र से सब काम निकल जाता तो बड़ा सूत्र करने से यह आया कि अनुबन्ध के बने रहते ही आकारादेश हो जाता है कि जैसे मेङ् का माङ् बन गया अर्थात् अनुबन्ध के होने से भी एजन्तत्व की हानि नहीं होती। जैसे कि मेङ् में (ङ्) अनुबन्ध के बने रहते ही एच् निमित्त आकारादेश हो गया इस से यह परिभाषा स्वार्थमें चरितार्थ हुई और अन्यत्र फल यह है कि दैप् धातु को भी अनुबन्ध के वर्त्तमान समय ही में एजन्त मान कर आकारादेश हो जाता है फिर अदाप् निषेध के प्रवृत्त होने से घु संज्ञा का प्रतिषेध होकर (अवदातं मुखम्) प्रयोग सिद्ध होता है ॥ ६ ॥

अब अनुबन्धों के एकान्तपक्ष में यह भी दोष आता है कि (अण्) और (क) प्रत्यय में (ण्, क्) अनुबन्धों के लगे होने से भिन्न रूप वाले समझे जावें फिर सरूप प्रत्ययनित्य बाधक होते हैं अर्थात् अपवाद विषय में उत्सर्ग की प्रवृत्ति नहीं होती यह बात नहीं बनेगी इस से (गोदः, कम्बलदः) यहां

(अण्) का अपवाद (क) प्रत्यय हो जाता है इस अपवाद के विषय में उत्सर्ग अण् भी होना चाहिये इस लिये ज्ञापकसिद्ध यह परिभाषा है ॥

७—नानुबन्धकृतमसारूप्यम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३९ ॥

जिन में अनुबन्ध मात्र का भेद हो, वे भिन्न रूप वाले असरूप नहीं कहाते। (ददातिदधात्योर्विभाषा) इस सूत्र में विभाषाग्रहण इस लिये है कि (श) प्रत्यय के पक्ष में आकारान्त से विहित उत्सर्ग रूप (ण) प्रत्यय भी हो जावे और (अण्, क) प्रत्यय के समान (ण, श) प्रत्यय भी अनुबन्ध से असरूप और अनुबन्धरहित सरूप ही हैं फिर असरूप प्रत्ययों में तो (वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्) इस परिभाषा सूत्र से उत्सर्गापवाद विकल्प हो ही जाता फिर विभाषाग्रहण व्यर्थ हो कर यह जनाता है अनुबन्धमात्रभेद के होने से असारूप्य नहीं होता अर्थात् (ण, श) प्रत्यय असरूप नहीं हैं कि जो (वाऽसरूप०) परिभाषा से विभाषा हो जावे इस से विभाषा ग्रहण स्वार्थ में चरितार्थ और अन्यत्र फल यह है कि इसी से (गोदः, कम्बलदः) यहां (क) अपवाद के विषय में (अण्) उत्सर्ग भी नहीं होता ॥ ७ ॥

अब संज्ञा दो प्रकार की होती है एक तो जो वाच्य वाचक संकेत से किन्हीं विशेष प्रयोजनों के लिये किसी का कुछ नाम रख लेना उस को कृत्रिम संज्ञा कहते हैं और जो प्रकृति प्रत्यय के योग से यौगिक अर्थ होता है उस को अकृत्रिम संज्ञा कहते हैं। सो लौकिक व्यवहारों में तो यही रीति है कि जहां कृत्रिम और अकृत्रिम दोनो संज्ञाओं का सम्भव हो वहां कृत्रिम संज्ञा ली जावे अकृत्रिम नहीं। यथा (केनचिदुक्तं गोपालकमानयेति) जैसे किसी ने कहा कि गोपालक को लेआ एक तो यहां गोपालक किसी निज मनुष्य का नाम है। और दूसरा जो कोई गौओं का पालन करे उस को गोपाल कहते हैं तो यह अर्थ किसी निज के साथ नहीं है। फिर इस कृत्रिमसंज्ञा वाले निज गोपालक का ही ग्रहण होता है ऐसे अब व्याकरण में जहां कृत्रिम और अकृत्रिम दोनों संज्ञाओं का सम्भव है जैसे धातु,प्रातिपदिक, बहुव्रीहि, तत्पुरुष, वृद्धि, गुण, सवर्ण, सम्प्रसारण, नदी इत्यादि शब्दों में कृत्रिम संज्ञा का ग्रहण हो वा अकृत्रिम का इस लिये यह परिभाषा है ॥

८—कृत्रिमाकृत्रिमयोः कृत्रिमे कार्यसम्प्रत्ययः ॥ अ० ॥ १ । १ । २३ ॥

जहां कृत्रिम और अकृत्रिम दोनों संज्ञाओं में कार्य होना सम्भव हो वहां कृत्रिमसंज्ञा में कार्य होना निश्चित रहे अकृत्रिम में नहीं इस से व्याकरण में भी धातु आदि कृत्रिम संज्ञाओं से कार्य लेने चाहिये सुवर्ण आदि धातु संज्ञक से नहीं ॥ ८ ॥

अब इस कृत्रिम परिभाषा के होने से दोष आते हैं कि जहां कृत्रिम संज्ञा के लेने से कुछ प्रयोग असिद्ध नहीं होता जैसे (कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे) इस सूत्र में जो कृत्रिम कर्म संज्ञा का गृहण होवे तो (देवदत्तस्य धान्यं व्यतिलुनन्ति) यहां कर्त्ता को ईप्सिततम धान्य कर्म के होने से आत्मनेपद होना चाहिये वह यहां इष्ट नहीं है इस लिये यह परिभाषा है ॥

९—उभयगतिरिह भवति ॥ अ० ॥ १ । १ । २३ ॥

इस व्याकरण शास्त्र में दोनों प्रकार का बोध होता है अर्थात् कहीं कृत्रिम और कहीं अकृत्रिम का भी गृहण होता है जैसे (कर्मणि द्वितीया) यहां कृत्रिम कर्म संज्ञा और (कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे) कृषीवला व्यतिलुनते। यहां अकृत्रिम क्रिया-रूप कर्म का गहण है इस लिये (देवदत्तस्य धान्यं व्यतिलुनन्ति) यहां अकृत्रिम कर्म के होने से (आत्मनेपद) नहीं होता तथा (कर्त्तृकरणयोस्तृतीया) देवदत्तेन ग्रामो गम्यते, रथेन गच्छति। यहां कृत्रिम करण संज्ञा और (शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे) शब्दं करोति शब्दायते। यहां अकृत्रिम करणसंज्ञा ली जाती है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ९ ॥

(अध्येता, शयिता) इत्यादि प्रयोगों में इङ् और शीङ् धातु को गुणनिषेध होना चाहिये क्यों कि अनुबन्धों के एकान्तपक्ष में दोनों धातु ङित् हैं और अनेकान्तपक्ष में अनुबन्ध पृथक् भी हैं इस में गुणनिषेध कार्य और इगन्त कार्यो है ॥

१०—कार्यमनुभवन् हि कार्यो निमित्तत्वेनाश्रीयते ॥

कार्य करते हुए कार्यी का निमित्तगुण से आश्रय किया जाता है अर्थात् जिस के आश्रय से कार्य होता हो वही उस का निमित्त कार्यी होता है जैसे ङित्त्व गुण का निमित्त इगन्त नहीं कि जो वह ङित्त्व इगन्त से उत्पन्न हुआ हो जो ङित्त्व का निमित्त इगन्त कार्यी होता तो अवश्य गुण का निषेध हो जाता (स्थण्डिलाच्छयितरि०) इस सूत्र में(शीङ्)धातु को गुणपठन ज्ञापक से यह परिभाषा निकली है। तथा सन्नन्त यङन्त को कहा द्वित्व ऊर्णु धातु के नुभाग को हो जाता है क्योंकि सन् का निमित्त ऊर्णु धातु है (ऊर्णुनविषति, ऊर्णुनुविषति) इत्यादि ॥ १० ॥

(प्रणिदापयति,प्रणिधापयति) इत्यादि प्रयोगों में (दा,धा) रूप को कही हुई घुसंज्ञा पुगन्त(दाप्,धाप्) को न प्राप्त होने से घुसंज्ञक धातुओं के परे (प्र)उपसर्ग से उत्तर नि के नकार को णत्व न होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा की गई है॥

११—अर्थवत आगमस्तद्गुणीभूतोऽर्थवद्ग्रहणेन गृह्यते * ॥ अ० ॥ १।१।२०॥

जो अर्थवान् प्रकृति आदि को टित् कित् और मित् आगम होते हैं वे उन्हीं प्रकृति आदि के स्वरूपभूत होने से उन्हीं के ग्रहण से ग्रहण किये जाते हैं अर्थात् वे पुक् आदि आगम प्रकृति आदि से पृथक् स्वतन्त्र नहीं समझे जाते इस से (प्रणिदापयति) आदि में पुगन्त को भी घु संज्ञा के होजाने से णत्व आदि कार्य होजाते हैं तथा (सर्वेषाम्) इत्यादि प्रयोगों में भी सुडादि आगमों के तद्गुणीभूत होने से (साम्) को झलादि सुप् मान कर एकारादेश हो ही जाता है इसी प्रकार लोक में भी किसी प्राणी का कोई अङ्ग अधिक होजावे तो वह उसी के ग्रहण से ग्रहण किया जाता है ॥ ११ ॥

अब (पादः पत्) इस सूत्र से जो पाद शब्द को (पत्) आदेश कहा है यहां तदन्तविधि परिभाषा के आश्रय से (द्विपात्,त्रिपात्) शब्दों को भी भसंज्ञा में (पत्) आदेश होता है उस पत् आदेश के अनेकाल् होने से द्विपात् त्रिपात् संपूर्ण के स्थान में प्राप्त है सो जो संपूर्ण के स्थान में होवे तो (द्विपदः, पश्य, त्रिपदः पश्य) इत्यादि प्रयोग न बन सकें इस लिये यह परिभाषा कही है ॥

१२—निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति ॥ अ० ॥ ६।४।१३० ॥

षष्ठी विभक्ति से दिखाये हुए स्थानी के स्थान में प्राप्त जो प्रथमानिर्दिष्ट आदेश वह निर्दिश्य मान अर्थात् सूत्रकार वा वार्त्तिककार ने जितने स्थानी का निर्देश किया हो उसी के स्थान में हो अर्थात् तदन्तविधि से जो पूर्वपद वा अन्य उस के सदृश कोई आजावे तो उस सब के स्थान में न हो । इस से द्विपात् शब्द में पाद मात्र को पत् आदेश हो जाता है (द्वि,त्रि) आदि बच जाते हैं इसी से (द्विपदः पश्य) इत्यादि प्रयोग बन जाते हैं ॥ १२ ॥

अब (चेता,स्तोता) इन (प्रयोगों में) स्थानेऽन्तरतमः (इस सूत्र से प्रमाणकृत आन्तर्य मानें तो ह्रस्व इकार उकार के स्थान में अकार गुण प्राप्त है इस से अभीष्ट प्रयोगों की सिद्धि नहीं होती इस लिये यह परिभाषा की है ॥

* जो नागेश और भट्टोजिदीक्षित आदि नवीन लोग इस परिभाषा को (यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते) इस प्रकार को लिखते मानते और व्याख्यान भी करते हैं सो यह पाठ महाभाष्य से विरुद्ध महाभाष्य में यह परिभाषा ऐसी कहीं नहीं लिखी इसलिये इन लोगों का प्रमाद है॥

१३—यत्रानेकविधमान्तर्यं तत्र स्थानत एवान्तर्यं बलीयः ॥ अ० ॥ १ । १ । ५० ॥

जहां अनेक प्रकार का अर्थात् स्थानकृत, अर्थकृत, गुणकृत और प्रमाणकृत यह चार प्रकार का आन्तर्य प्राप्त हो वहां जो स्थान से आन्तर्य है वही बलवान् होता है इस से प्रमाणकृत आन्तर्य्य के हठ जाने से स्थानकृत आन्तर्य्य के आश्रय से एकार ओकार गुण होकर (चेता, स्तोता) प्रयोग बन जाते हैं स्थानकृत आदि के विशेष उदाहरण सन्धिविषय में लिख चुके हैं ॥ १३ ॥

(संख्याया अतिशदन्तायाः कन्) यहां ति और शत् जिस के अन्त में हों उस से कन् प्रत्यय का निषेध किया है । सो (कतिभिः क्रीतम्, कतिकम्) यहां भी त्यन्त से निषेध होना चाहिये और कन् प्रत्यय तो इष्ट ही है इस लिये यह परिभाषा है ॥

१४—अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ॥ अ० ॥ ५ । १ । २२ ॥

अर्थवत् के ग्रहण होने में अनर्थक शब्दों का ग्रहण नहीं होता इस से अर्थवान् (ति) शब्द के ग्रहण में निरर्थक डतिप्रत्ययान्त के ति का ग्रहण नहीं होता इस से (कतिकम्) यहां कन् का निषेध नहीं हुआ । इसी प्रकार प्र शब्द से ऊढ के परे वृद्धि कही है सो (प्र+ऊढवान्=प्रोढवान्) यहां ऊढ़ शब्द निरर्थक है इस लिये वृद्धि नहीं होती इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ४ ॥

अब अर्थवद्ग्रहणपरिभाषा के होने से भी) अमहान् महान् संपन्नो महद्भूत श्चन्द्रमाः) इस प्रयोग में महत् शब्द को आकारादेश होना चाहिये और आत्व के होने से अनिष्टसिद्धि प्राप्त है इस लिये यह परिभाषा है ॥

१५—गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्ययः ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ४६ ॥

जो गुणों से प्राप्त होवे वह(गौण)और जो गुणी से प्राप्त होवे वह(मुख्य)कहाता है उस गौण और मुख्य दोनों में एक काल में एक कार्य प्राप्त हो तो मुख्य में कार्य होवे और गौण में नहीं इस से (महद्भूतश्चन्द्रमाः यहां आकारादेश) नहीं होता क्यों कि यहां महत् शब्द अभूततद्भाव अर्थ में मुख्य और चन्द्रमा के साथ समानाधिकरण में गौण विशेषण है इसी प्रकार (अगौः, गौः संपद्यत, गौभवत्) यहां च्विप्रत्ययान्त गौ शब्द निपातसंज्ञक है परन्तु मुख्य ओकारान्त निपात नहीं इस लिये (ओत्) सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा नहीं होती इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥१५॥

अर्थवान् के गृहण में अनर्थक का गृहण नहीं होता यह कह चुके हैं सो (राज्ञा) राजन् शब्द में कनिन् प्रत्यय का अन् अर्थवान् है इस लिये अन्नन्तके अकार का लोप होना ठीक है और (साम्ना) यहां सामन् शब्द में मनिन् प्रत्यय का मन् अर्थवान् और अन् अनर्थक है इस समाधान के लिये यह परिभाषा है ॥

१६—अनिनस्मन्ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति ॥अ० ॥१ । १ । ७२ ॥

अन्, इन्, अस्, मन् ये जिन सूत्रों में ग्रहण हैं वहां अर्थवान् और अनर्थक दोनों से तदन्तविधि होता है। अन् में तो अर्थवान् और अनर्थक दोनों के उदाहरण दे दिये। इन् (दण्डी) यहां इनि प्रत्यय के अर्थवान् इनन्त को दीर्घ और (वाग्मी) यहां (मिनि) प्रत्यय के अनर्थक इन् को दीर्घ होता है। अस् (सुपयाः) यहां अर्थवान् (असुन्) प्रत्यय के अस् को दीर्घ और (पीतवाः) यहां पीत पूर्वक (वस) धातु से क्विप् हुआ है सो वस् में अनर्थक अस् को दीर्घ होता है। मन् (सुष्टु शर्म यस्याः सा सुशर्मा) यहां तो अर्थवान् मन्नन्त से ङीप् का निषेध है और (सुप्रथिमा) यहां इमनिच् प्रत्यय का इमन् अर्थवान् और मन् भाग निरर्थक को भी ङीप् का निषेध होता ही है ॥ १६ ॥

और आगे एक परिभाषा लिखेंगे कि समीपस्थ का विधान वा निषेध होता है इस में यह दोष आता है कि जैसे (लिङ्सिचावात्मनेपदेषु) इस सूत्र की अनुवृत्ति (उश्च) इसमें आती है। सो जो समीपस्थ के विधि निषेध का नियम है तो आत्मनेपद की अनुवृत्ति आनी चाहिये क्योंकि आत्मनेपद की अपेक्षा में (लिङ्, सिच्) दूर हैं और (लिङ् सिच्) की अनुवृत्ति के विना कार्यसिद्धि नहीं हो सकती इस लिये यह वक्ष्यमाण परिभाषा है ॥

१७—एकयोगनिर्दिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः ॥

जो एक सूत्र में निर्देश किये पद हैं उन की अन्य सूत्रों में एक साथ प्रवृत्ति और एक साथ निवृत्ति हो जाती है इस से (उश्च) सूत्र में लिङ् सिच् की भी अनुवृत्ति आ जाती है। इसी प्रकार अन्यत्र बहुत स्थलों के सूत्र वार्त्तिकों में यह रीति दीख पड़ती है कि जैसे कहीं दो पदों की अनुवृत्ति आती है उन में से जब एक को छोड़ना होता है तब द्वितीय पद को फिर के पढ़ते हैं तो यही प्रयोजन है कि उन दोनों पदों की अनुवृत्ति एक साथ ही चलती है उस मेंसे एक को छोड़ के दूसरे पद की अनुवृत्ति नहीं जा सकती ॥ १७ ॥

अब इस पूर्व परिभाषाके होनेमें यह दोषहै कि (अलुगुत्तरपदे) इस सब सू
का अधिकार चलता है उस में अलुक् अधिकार तो आनङ् विधान से पूर्व २
रहता है फिर उत्तरपदाधिकार पाद पर्यन्त क्योंजावे इस लिये यह परिभाषा है

१८—एकयोगनिर्दिष्टानामप्येकदेशानुवृत्तिर्भवति ॥ अ० ॥ ४ १ । २७ ॥

एक सूत्र में पृथक् पठित पदों में से भी कहीं एकदेश की अनुवृत्ति होत
है इस से उत्तरपदाधिकार का पादपर्यन्त जाना सिद्ध हो गया । तथा (दामहाय
नान्ताच्च) यहां पूर्वसूत्र से संख्या की अनुवृत्ति आती है और अव्यय की नहीं औ
(पत्त्राश्च:) इस सूत्र में पूर्वसूत्र से मूल शब्द को अनुवृत्ति आजाती है पाक क
नहीं आती इत्यादि ॥ १८ ॥

(अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः) यहां प्रत्यय ग्रहण से सवर्ण का निषेध किय
है इस का यही प्रयोजनहै कि(सनाशंसभिक्षउः) इत्यादि में उ आदिप्रत्यय अप
सवर्णदीर्घ आदि के ग्राहक न हों सो जब स्त्री प्रत्यय को छोड़ के अन्यदीर्घ प्रत्य
से किसी अर्थ की प्रतीति हो नहीं होती तो दीर्घप्रत्यय नहीं होसकता इस लि
प्रत्यय ग्रहण के व्यर्थ होने से यह ज्ञापक होता है कि इस सूत्र में यौगिक प्रत्य
का निषेध है (प्रतीयते विधीयते भाव्यतेऽनेनाऽसौ प्रत्ययः, न प्रत्ययोऽप्रत्ययः
इसी व्याख्यान से यह परिभाषा निकली है ॥

१९—भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणन्न ॥ अ० ॥ १ । १ । ६९ ॥

जो विधान किया जाता है उस से सवर्णों का ग्रहण नहीं होता जैसे (त्यद
दीनामः) यहां अकार का विधान किया है उस से दीर्घ सवर्णों का ग्रहण न
होता और (ज्यादादीयसः) यहां ईयसुन्प्रत्यय के ईकार को आकारादेश न कह
किन्तु अकार कहते तो सवर्णग्रहण से दीर्घ हो ही जाता फिर निश्चित हुआ वि
यहांभी पूर्ववत्भाव्यमान अकार सवर्ण ग्राही नहीं हो सकता इस लिये दीर्घ क
इत्यादि ॥ ९ ॥

यदिभाव्यमान से सवर्णों का ग्रहण नहीं होतातो (दिवउत्,ऋतउत्) इ
सूत्रों में भाव्यमान उकार को तपर करना व्यर्थ है । क्यों कि तपर करने का य
प्रयोजन है कि उकार तत्काल का ग्राहक हो अपने सवर्णों काग्रहण न करे फि
(अणुदित्०) परिभाषा से सवर्णग्रहण तो प्राप्त ही नहीं उकार तपरक्यों पढ़ा इ
लिये यह परिभाषा है ॥

२०—भवत्युकारेण भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १८५ ॥

भाव्यमान उकार से सवर्णों का ग्रहण होता है इस से पूर्वोक्त उकार में तपर सार्थक हुआ और अन्यत्र फल यह है कि (अदसोऽसेर्दादुदोमः) यहां भाव्यमान ह्रस्व उकार सवर्णी का ग्राही होता है तभी (अमूभ्याम्) आदि में दीर्घ ऊकारादेश हुआ ॥२०॥

(गवेहितं,गोहितम्) यहां समास में चतुर्थ्येकवचन प्रत्यय का लुक् किये पीछे (प्रत्ययलोपे०) सूत्र से प्रत्ययलक्षण कार्य मानें तो (गो) शब्द के ओकार को अवादेश प्राप्त है इस लिये यह परिभाषा है ॥

२१—वर्णाश्रये नास्ति प्रत्ययलक्षणम् ॥

वर्ण के आश्रय से जो कार्य्य कर्त्तव्य हो तो प्रत्ययलक्षण न हो अर्थात् उस प्रत्यय को मान के वह कार्य्य न होवे इस लिये अच् को मान के अवादेश नहीं होता इत्यादि ॥ २१ ॥

(अतः कृकमिकंस०) इस सूत्र में कंस शब्द का पाठ व्यर्थ है क्योंकि उणादि में (कमेः सः) इस सूत्र से कम धातु का कंस शब्द बना है कम धातु के सामान्य प्रयोगों के ग्रहण में कंस शब्द का भी ग्रहण हो जाता फिर कंस शब्द क्यों पढ़ा इस लिये यह परिभाषा है ॥

२२-उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि ॥अ०॥ १। १ । ६१ ॥

उणादि प्रातिपदिक अव्युत्पन्न अर्थात् उनका सर्वत्र प्रकृति, प्रत्यय, कारक आदि से यौगिक यथार्थ अर्थ नहीं लगता अर्थात् उणादि शब्द बहुधा रूढ़ि होते हैं इस लिये (अतः कृकमिकंस०) सूत्र में कंसग्रहण सार्थक है । इसी प्रकार (प्रत्ययस्य लुक्०) इस सूत्र से (परशव्य) शब्द का लुक् कहा हुआ उकार प्रत्यय होने से भी अव्युत्पन्नपक्ष मान के परशु शब्द के उकार का लुक् नहीं होता । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ २२ ॥

(देवदत्तश्चिकीर्षति) इत्यादि प्रयोगों में देवदत्त आदि शब्दों को सन्नन्त के धातु संज्ञा आदि कार्य्य प्राप्त हैं सो क्यों नहीं होते । जो देवदत्त के सहित सब वाक्य को धातु संज्ञा हो जावे तो (सुपोधातु०) इस सूत्र से जो देवदत्त के आगे विभक्ति है उस का लुक् प्राप्त होवे इस लिये यह परिभाषा है ॥

२३–प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स प्रत्ययो विहितस्तदादेस्तदन्तस्य च ग्रहणं भवति ॥ अ० ॥ १ । ४ । १३ ॥

जिस से जो प्रत्यय विधान किया हो वह जिस के आदि वा अन्त में हो उसी का ग्रहण हो और जो उस वाक्य में प्रत्यय विधि से पद पृथक् हो उस का सामान्य कार्यों में ग्रहण न हो। इस से सन्नन्त की धातुसंज्ञा में देवदत्त का ग्रहण न हुआ तो विभक्ति का लुक् भी बच गया इसी प्रकार (देवदत्तो गार्ग्यः) यहां समुदाय की प्रातिपदिक संज्ञा हो तो मध्य विभक्ति का लुक् हो जावे तथा (ऋद्धस्य राज्ञः पुरुषः) इस समुदाय की समास संज्ञा हो तो मध्यविभक्तियों का लुक् प्राप्त होवे इत्यादि इस परिभाषा के अनेक प्रयोजन हैं ।।२३।।

(येन विधिस्तदन्तस्य) इस परिभाषा सूत्र से (दृषत्तीर्णा,परिषत्तीर्णा) इत्यादि प्रयोगों में (रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः) इस सूत्र से दृषद् परिषद् दकारान्त शब्दों से परे धातु के तकार को अनिष्ट नकारादेश प्राप्त है इस लिये यह परिभाषा है॥

२४—प्रत्ययग्रहणे चापञ्चम्याः ॥ अ० ॥ १ । १ । ७२ ॥

जिन सूत्रों में प्रत्यय ग्रहण से कार्य्य होते हैं वहां पञ्चम्यन्त से परे वह कार्य्य न हो अर्थात् पञ्चम्यन्त से परे प्रत्यय ग्रहण में तदन्तविधि न होवे इस से (परिषत्तीर्णा) आदि में धातु के तकार को नकार आदेश नहीं होता इत्यादि ।।२४।। कुमारीगौरितरा। इत्यादि प्रयोगों में तदन्तविधि माने तो कुमारी शब्द को भी ह्रस्व प्राप्त है इस लिये यह परिभाषा है ॥

२५—उत्तरपदाधिकारे प्रत्ययग्रहणे रूपग्रहणं द्रष्टव्यम् ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ५० ॥

(अलुगुत्तरपदे) जो षष्ठाऽध्याय के तृतीयपाद में प्रत्यय निमित्त कार्य है वहां स्वरूप का ग्रहण होना चाहिये अर्थात् तदन्तविधि न हो इस से (कुमारी गौरितरा) यहां कुमारी शब्द को ह्रस्व नहीं होता और रूप ग्रहण से यह भी प्रयोजन है कि (हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु) जो इस सूत्र में (२३) वीं परिभाषा के अनुकूल (यत्) और (अण्) प्रत्यय जिस से विहित हों उस उत्तरपद के परे पूर्व को कार्य हो जावे सो इष्ट नहीं है। क्योंकि जो तदन्तविधि हो तो केवल हृदय शब्द से (हृद्यम्,हार्दम्) प्रयोग नहीं बनें इस में लेख ग्रहण ज्ञापक है कि अणन्त उत्तरपद का ग्रहण हो तो लेख शब्द (अण्) प्रत्ययान्त पृथग् ग्रहण व्यर्थ है। इस से यह निश्चित हुआ कि इस उत्तरपदाधिकार के प्रत्ययाश्रितकार्यविधायक सूत्रों में तदन्तविधि नहीं होती ॥ २५ ॥

(प्रत्ययग्रहणे०) इस २३ वी परिभाषा से (ष्यङः संप्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे) यहां तत्पुरुष में (पुत्र) और (पति) उत्तरपदों के परे (ष्यङ्) को संप्रसारण कहा है तो (ष्यङ्) का जो आदि वा ष्यङन्त को कार्य होगा। इस से (कारीषगन्ध्यायाः पुत्रः कारीषगन्धीपुत्रः, कारीषगन्धीपतिः, वाराहीपुत्रः, वाराहीपतिः) इत्यादि प्रयोग तो सिद्ध हो जावेंगे परन्तु (परमकारीषगन्धीपुत्रः, परमकारीषगन्धीपतिः) इत्यादि प्रयोग नहीं सिद्ध होंगे क्यों कि जिस (कारीषगन्धि) शब्द से (ष्यङ्) प्रत्यय विहित है तो वही जिस के आदि में हो ऐसे (ष्यङ्) का ग्रहण हो सकता है औरपरम के सहित ग्रहण नहीं हो सकता इस लिये यह परिभाषा है ॥

२६—अस्त्रीप्रत्ययेनानुपसर्जनेन ॥ अ० ॥ ६ । १ । १३ ॥

(तदादि ग्रहणपरिभाषा) स्त्रीप्रत्यय और उपसर्जन को छोड़ के प्रवृत्त होवे इस से सामान्य स्त्रीप्रत्यय (परमकारीषगन्धीपुत्रः) इत्यादि में तदादि ग्रहण के दोष से संप्रसारण का निषेध नहीं होता और (कारीषगन्ध्यामतिक्रान्तोऽतिकारीषगन्ध्यः, अतिकारीषगन्ध्यस्य पुत्रः, अतिकारीषगन्ध्यपुत्रः) यहां ष्यङन्त स्त्रीप्रत्यय उपसर्जन अर्थात् स्वार्थ में अप्रधान है इस लिये संप्रसारण नहीं होता इत्यादि ॥२६॥

(सुप्तिङन्तं पदम्) इस सूत्र में अन्तग्रहण व्यर्थ है क्योंकि जो (सुप्तिङ् पदम्) ऐसा सूत्र करते तो तदन्तविधिपरिभाषा से अन्त की उपलब्धि से (सुबन्त,तिङन्त) की पदसंज्ञा हो ही जाती फिर अन्तग्रहण व्यर्थ हो कर इस परिभाषा का ज्ञापक है ॥

२७—संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तविधिर्न भवति ॥अ० ॥ १ । ४ । १४ ॥

प्रत्ययों की संज्ञा करने में तदन्तविधि नहीं होती। इस से अन्तग्रहण सार्थक होना तो स्वार्थ में चरितार्थ है और अन्यत्र फल यह है कि (तरप्तमपौ घः) यहां (तरप् तमप्) प्रत्ययान्त को (घ) संज्ञा नहीं होती जो तरप् प्रत्ययान्त को (घ) संज्ञा होजावे तो (कुमारीगौरितरा) यहां घसंज्ञक के परे कुमारी शब्द को ह्रस्व हो जावे सो इस परिभाषा से नहीं होता। और (कृत्तद्धितसमासाश्च) यहां कृत्तद्धित प्रत्ययों में अन्तग्रहण नहीं किया और प्रातिपदिक संज्ञा के होने से तदन्तविधि भी नहीं हो सकती इस लिये कृत्तद्धित में अर्थवान् की अनुवृत्ति करने से कृदन्त और तद्धितान्त ही अर्थवान् होते हैं केवल (कृत ,तद्धित) नहीं क्यों कि (न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या न च केवलप्रत्ययः) इस महाभाष्य के

प्रमाण से प्रत्ययान्त ही अर्थवान् होता है । और (बहुच्) प्रत्यय प्रातिपदि
से नहीं होता किन्तु सुबन्त से पूर्व बहुच् कहा है बहुच् प्रत्यय के सहि
जो समुदाय है वहां प्रातिपदिक संज्ञा होने की कुछ आवश्यकता नहीं है जै
(बहुपटवः) यहां बहुच् के होने से पहिले ही अर्थवा पटु शब्द की प्रातिपदि
संज्ञा तो सिद्ध ही है । फिर बहुच् प्रत्यय की विवक्षा में जिस विभक्ति और वच
का प्रयोग करना हो उस को रख के बहुच् प्रत्यय लाना चाहिये जैसे (पटु, ज
इस सुबन्त के पूर्व बहुच् आकार (बहुपटवः) प्रयोग सिद्ध हो गया । इसी प्रका
अन्य प्रयोगों में जान लेना चाहिये और (सर्वकः) (विश्वकः) इत्यादि में जो अका
प्रत्यय मध्य में होता है उस के आगे परिभाषा लिखी है कि (तदेकदेशभूतस्तद्ग्
हणेन गृह्यते (सर्व) प्रातिपदिक के एक देश के मध्य में आया अकच् उसी प्राति
पदिक के ग्रहण से ग्रहण किया जाता है ॥ २७ ॥

(२३) वी परिभाषा के होने में ये भी दोष हैं कि (अवतप्ते नकुलस्थितं त एतत्
यहां क्त प्रत्ययान्त स्थित शब्द के साथ सप्तम्यन्त का समास कहा है सो गतिसंज्ञ
अव शब्द के सहित सप्तम्यन्त और कर्तृकारक वाची नकुल शब्द के सहित क्त
क्तान्त स्थित शब्द है इस कारण समास नहीं प्राप्त है इसलिये यह परिभाषा है।

२८—कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणं भवति ॥ अ० ॥ १ । ४ । १३ ॥

जहां कृत् प्रत्यय के ग्रहण से कार्य हो वहां उस कृदन्त के पूर्व गतिसंज्ञ
और कारक हो तो भी वह कार्य हो जावे । इस से गति संज्ञक अव और कारक
नकुल के होने से भी (समास हो जाता है तथा) सांकूटिनम् (यहां (इनुण्
कृत्प्रत्ययान्त से (अण्) तद्धित होता है सो जो (कूटिन्) शब्द से करें तो उस
के आदि को वृद्धि होवे इस परिभाषा से गतिसंज्ञक (सम्) के सहितके (अण्)
होने से (सम्) के सकार को वृद्धि होती है इत्यादि अनेक प्रयोजन (हैं गतिर
नन्तरः) इस सूत्र में (अनन्तर) ग्रहण इस परिभाषा के होने में ज्ञापक है॥

(येन विधिस्तदन्तस्य) इस परिभाषा सूत्र में समान्य करके तदन्त विधि कह
है विशेषविषय में उस का अपवादरूप वक्ष्यमाण परिभाषा है ॥

२९—पदाङ्गाधिकारे तस्य तदन्तस्य च ॥ अ० ॥ १ । १ । ७२ ॥

उत्तरपदाधिकार अर्थात् षष्ठाध्याय के तृतीयपाद में और अङ्गाधिकार में
को कार्य्य विधान हो वा जिस के आश्रय हो उस का और वह जिस के अन्त

हो उन दोनों का ग्रहण होता है जैसे (इष्टकेषीकामालानां चिततूलभारिषु) इस सूत्र में (इष्टकचितं चिन्वीत) यहां उसी इष्टका शब्द को ह्रस्व और (पक्वेष्टकचितं चिन्वीत) यहां तदन्त को भी ह्रस्व होता है (इषीकतूलेन, मुञ्जेषीकतूलेन, मालभारिणी कन्या, उत्पलमालभारिणीकन्या) यहां भी इषीका और माला शब्द को दोनों प्रकार ह्रस्व हुआ है । अङ्गाधिकार में (सान्तमहतः संयोगस्य) महान् यहां उसी महत् शब्द की उपधा को दीर्घ और (परममहान्) यहां तदन्त को भी होता है इत्यादि अनेक उदाहरण महाभाष्य में लिखे हैं ॥ २९ ॥

(एकाचो द्वे प्रथमस्य) यहां अनेकाच् धातु के प्रथम एकाच् अवयव को द्वित्व होता है जैसे (जजागार) यहां जा भाग को द्वित्व हुआ है । जो केवल एकाच् धातु है उस में प्रथम एकाच् अवयव कहां है जिस को द्वित्व हो जैसे (पपाच, इयाज) इत्यादि । तथा (एकाच्) शब्द में भी बहुव्रीहि समास है कि एक अच् जिस में हो अर्थात् अन्य एक वा अधिक हल् हों वह (एकाच्) अवयव कहाता है । सो जहां केवल एकही अच् धातु है जैसे (इयाय, आर) यहां (इ, ऋ) धातुओं को द्वित्व कैसे होसके इस लिये यह परिभाषा है ॥

३०—व्यपदेशिवदेकस्मिन् ॥ अ० ॥ १ । १ । २१ ॥

सत् निमित्त के होने से मुख्य जिस का व्यपदेश(व्यवहार) हो वह व्यपदेशी कहाता है और एक वह है जिस के व्यवहार का कोई सहायी कारण न हो उस एक में व्यपदेशी के तुल्य कार्य होता है इस से (एकाच्) धातु (पपाच) आदि में द्वित्व और केवल एक ही अच् धातु (इयाय, आर) आदि में भी द्विर्वचन हो जाता है। क्योंकि एकाच् और एक ही अच् धातु की अपेक्षा में अनेकाच् व्यपदेशी है तद्वत् कार्य मानने से सर्वत्र द्वित्व होजाता है (आदेश प्रत्ययोः) इस सूत्र में प्रत्यय के अवयव सकार को मूर्द्धन्य कहा है सो (करिष्यति) आदि में तो हो ही जाता है। और (स देवान् यक्षत्) यहां यक्षत् क्रिया में केवल सिप् विकरण का सकार मात्र प्रत्यय है उस को (व्यपदेशिवद्भाव)मान के मूर्द्धन्य होता है । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं । लोक में भी यह व्यवहार होता है कि किसी के बहुत पुत्र हैं वहां तो ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठ का व्यवहार बनता है और जिस का एकही पुत्र है तो वहां उसी में ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठ व्यवहार होता है ॥ ३० ॥

तद्धित में जैसे नडादि, गर्गादि और शिवादि इत्यादि प्रातिपदिकों से अपत्य आदि अर्थों में अण् आदि प्रत्यय कहे हैं सो उत्तमनड परमगर्ग और महाशिव आदि प्रातिपदिकों से तद्धितविधि में क्यों नहीं होते इस लियेयह परिभाषा है॥

३१—ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिः प्रतिषिध्यते ॥ अ० ॥ ५ । २ । ८७ ॥

प्रत्यय का ग्रहण करने वाले प्रातिपदिक से तदन्तविधि नहीं होता इस लिये (उत्तमनड़) और (परमगर्ग) आदि प्रातिपदिकों से (फक्) और (यञ्) आदि प्रत्यय नहीं होते और इस परिभाषा के निकलने का ज्ञापक (पूर्वादिनिः, सपूर्वाच्च) ये दोनों सूत्र हैं क्योंकि जो पूर्व शब्द से विधान किया इनि प्रत्यय तदन्त से भी होजाता तो द्वितीय सूत्र व्यर्थ हो जाता फिर व्यर्थ हो कर यह ज्ञापक होता है कि यहां तदन्तविधि नहीं होता ॥ ३१ ॥

सूत्रान्त प्रातिपदिकों से (ठक्) और दशान्त आदि प्रातिपदिकों से (ड) आदि प्रत्यय कहे हैं सो (३०) वीं परिभाषा से (व्यपदेशिवद्भाव) मान कर केवल सूत्र और दश आदि से (ठक्) तथा (ड) आदि प्रत्यय क्यों नहीं हो जाते इस लिये यह परिभाषा है ॥

३२—व्यपदेशिवद्भावोऽप्रातिपदिकेन ॥ अ० ॥ १ । १ । ७२ ॥

व्यपदेशिवद्भाव की प्रवृत्ति प्रातिपदिकाधिकार को छोड़ के होती है। इसलिये केवल सूत्र आदि शब्दों से ठक् आदि प्रत्यय नहीं होते और इस परिभाषा का ज्ञापक भी (पूर्वादिनिः,सपूर्वाच्च) ये दोनों सूत्र हैं क्यों कि जो यहां व्यपदेशिवद्भाव होता तो (पूर्वान्तादिनिः) ऐसा एक सूत्र कर देते तो सब काम सिद्ध हो जाता फिर पृथक् २ दो सूत्र करने से ज्ञात हुआ कि यहां व्यपदेशिवद्भाव नहीं होता ॥ ३२ ॥

(अचि श्नुधातु०) यहां (श्रियौ, भ्रुवौ) उदाहरणों में तो केवल (अच्) के परे (इयङ्,उवङ्) हो जाते हैं और (श्रियः,भ्रुवः) यहां (इयङ्,उवङ्) न होने चाहिये क्यों कि यहां केवल (अच्) परे नहीं है इस लिये यह परिभाषा है ॥

३३—यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे ॥ अ० ॥ १ । १ । ७० ॥

जिस प्रत्याहाररूप पर विशेषण के आश्रय से विधि हो वह जिस के आदि में हो उस के परे वह कार्य होना चाहिये इस से अजादि प्रत्यय के परे (इयङ् उवङ्) होते हैं तो (श्रियः, भ्रुवः)यहां अजादि (जस्) में भी दोष नहीं आता। तथा (अवश्यलाव्यम्, अवश्यपाव्यम्) इत्यादि में (वान्तो यि प्रत्यये) सूत्र से यकारादि प्रत्यय के परे वान्तादेश हो जाता है (इको झल्) यहां झलादिसन् लिया जाता है। इत्यादि इस परिभाषा के अनेक प्रयोजन हैं ॥ ३३ ॥

(तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्रद्वन्द्वे बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम्) इस सूत्र में बहुवचन ग्रहण न करते तो भी प्रयोजन सिद्ध हो जाता। क्यों कि एक (तिष्य) और दो (पुनर्वसु) इन तीन के होने से बहुवचन तो प्राप्त ही था फिर द्विवचन के कहने से उसी बहुवचन की प्राप्ति में द्विवचन हो जाता इस प्रकार बहुवचनग्रहण व्यर्थ हो कर ज्ञापक है कि (तिष्य, पुनर्वसु) में कहीं एकवचन भी होता है वहां एकवचन को द्विवचन न हो इस लिये यह परिभाषा है ॥

३४—सर्वो द्वन्द्वो विभाषैकवद्भवति ॥ अ० ॥ १ । २ । ६३ ॥

दो वा अधिक किन्हीं शब्दों का द्वन्द्वसमास हो वह सब विकल्प करके एकवचन होता है। इस से तिष्य पुनर्वसु के एकवचनपक्ष में द्विवचन हो इस लिये बहुवचनस्थानी का ग्रहण है। तथा इसी परिभाषा से (घटपटम्, घटपटौ, ईषत्सोमकूलम्, सार्थोत्तरपदपदव्यनुपदम्) इत्यादि में भी एकवचन सिद्ध हो जाता है। समाहार द्वन्द्व सर्वत्र एक ही वचन होता है। और यह परिभाषा इतरेतरद्वन्द्वसमास में लगती है इसी से इस के उदाहरण भी सब इतरेतरद्वन्द्व के दिये हैं॥३४॥

(व्यत्ययो बहुलम्) इस से स्य आदि विकरणों का व्यत्यय होना सूत्रार्थ है। तथा (षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा) इस सूत्र से भी षष्ठीयुक्त पति शब्द की घि संज्ञा का वेद में विकल्प है इन दोनों में भाष्यकारने विभाग करके यह परिभाषा सिद्ध की है ॥

३५—वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति ॥ अ० ॥ १ । ४ । ९ ॥

वेद में सब कार्य विकल्प करके होते हैं जैसे (दक्षिणायाम्) इस सप्तम्यन्त की प्राप्ति में (दक्षिणायाः) ऐसा प्रयोग होता है। इत्यादि अनेकप्रयोजन हैं ॥ ३५ ॥

किसी विद्यार्थी ने (अग्नी) ऐसा द्विवचनान्त शब्द उच्चारण किया जो उस का कोई अनुकरण करे कि (अग्नी इत्याह) तो यहां अनुकरण में साक्षात् द्विवचन के न होने से जो प्रगृह्य संज्ञा न होवे तो इकार के साथ संधि होना चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

३६—प्रकृतिवदनुकरणं भवति ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४६ ॥

जो अनुकरण किया जाता है वह प्रकृति के तुल्य होता है इस से (अग्नी) द्विवचनप्रकृति के तुल्य अनुकरण को मान के प्रगृह्य संज्ञा होने से संधि नहीं होती। और एकवचन बहुवचन में तो संधि होता है (कुमार्य्यत्तक इत्याह) यहां (अत्तक) शब्द जो अनुकरण (अत्तक) के परे भी यणादेश होता है (द्विः पचन्त्वित्याह) यहां

(हिः पचन्तु) शब्द के अनुकरण में भी अतिङ् से परे तिङ् पद निघात हो जाता है। (अर्थवदधातुरप्रत्ययः०) इस सूत्र में धातु का पर्युदास प्रतिषेध मानें कि धातु से अन्य अर्थवान् की प्रातिपदिक संज्ञा हो इस से ञि आदि धातुओं के अनुकरण को प्रकृतिवत् होने से स्वाश्रय कार्य मानकर प्रातिपदिक संज्ञा हो जाती है फिर पंचमी विभक्ति के एकवचन में ञिधातु को (इयङ्) आदेश नहीं प्राप्त है इस लिये धातु के अनुकरण को प्रकृतिवत् मान के (इयङ्) आदेश भी हो जाता है इस से (ञियो दीर्घात्, परौ सुवोऽवज्ञाने, नेर्विशः) इत्यादि सब निर्देश ठीक बनजाते हैं ॥३६॥

(अवतु, पचतु) इत्यादि की पदसंज्ञा न होनी चाहिये क्योंकि तिङन्त की पद संज्ञा कही है यहां तो तिप् के इकार को उकार हो जाने से तिङ् नहीं रहा इस लिये यह परिभाषा है ॥

३७—एकदेशविकृतमनन्यवद्भवति ॥ अ० ॥ ४ । १ । ८३ ॥

जिस किसी का एक अवयव विपरीत हो जावे तो वह अन्य नहीं हो जाता किन्तु वही बना रहता है । इस से इकार के स्थान में उकार हो जाने से भी पद संज्ञा हो जाती है (प्राग्दीव्यतोऽण्) इस सूत्र से (दीव्यत्) शब्दपर्यन्त (अण्) प्रत्यय का अधिकार करते हैं और दीव्यत् शब्द कहीं नहीं है किन्तु (दीव्यति) शब्द है इस का एक देश इकार के जाने से (दीव्यत्) रह जाता है इसी ज्ञापक से यह परिभाषा निकली है । लोक में भी किसी कुत्ते का कान वा पूंछ काट लिया जावे तो उस को घोड़ा वा गधा नहीं कहते किन्तु कुत्ता ही कहते हैं इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ३७ ॥

(स्योनः) यहां (सिवु) धातु से उणादि (न) प्रत्यय के परे वकार को (ऊठ्) होकर वकार को स्थानिवत् मानने से धातु के इकार को (लघूपधगुण) और उसी इकार को (यणादेश) दोनों प्राप्त हैं । इस में गुण पर और यणादेश (अन्तरङ्ग) है अब दोनों में से कौन सा कार्य होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है॥

३८—पूर्वपरनित्यान्तरङ्गाऽपवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः ॥

पूर्व से पर; पर से नित्य, नित्य से अन्तरङ्ग और अन्तरङ्ग से अपवाद ये सब पूर्व २ से उत्तर २ बलवान् होते हैं । यह परिभाषा महाभाष्य के अभिप्रायानुकूल है अर्थात् इसी प्रकार की कहीं नहीं लिखी । पूर्व से पर बलवान् होना यह विषय (विप्रतिषेधे परं कार्यम्) इसी सूत्र का है जैसे (अग्नि) इस शब्द से

अपधित्याकार में ऋषिवाची होने से (अण्) प्राप्त और (इकाराल्लद्यच्) होने से ढक् प्राप्त है सो पूर्व (अण्) को बाध के परविहित (ढक्) होता है जैसे (अत्रेरपत्यम्, आत्रेयः) इत्यादि। भू धातु से लिट् लकार के णल् प्रत्यय के परे (भू+अ) इस अवस्था में द्वित्व, यणादेश, उवङ्, गुण, वृद्धि और वुक् आगम ये सब प्राप्त हैं (द्विर्वचन) नित्य होने से पर यणादेश का बाधक है (उवङ्) अन्तरङ्ग होने से नित्य द्वित्व का भी बाधक है और (उवङ्) का अपवाद (गुण) गुण का अपवाद (वृद्धि) और इन दोनों का अपवाद निरवकाश होने से (वुक्) होजाता है। इसी प्रकार अन्य भी बहुत प्रयोगों में यह परिभाषा लगती है (दुद्यूषति) यहां सन् प्रत्यय के परे (दिव्) धातु के वकार को ऊठ् किये पीछे द्विर्वचन और यणादेश दोनों प्राप्त हैं नित्य होने से द्विर्वचन होना चाहिये फिर नित्य द्विर्वचन से भी अन्तरङ्ग होने से यणादेश प्रथम होजाता है। इत्यादि ॥ ३८ ॥

(ईजतुः) यहां यज धातु से (अतुस्) प्रत्यय के परे द्वित्व को बाध के परत्व से (संप्रसारण) होता है फिर द्वित्व होना चाहियेवा नहीं इसलिये यह परिभाषाहै॥

३९—पुनः प्रसङ्गविज्ञानात् सिद्धम् ॥ अ० ॥ १ । ४ । २ ॥

परत्व से वा अन्य किसी प्रकार से प्रथम बाधक कार्य होजावे। फिर जो उत्सर्ग कार्य की प्राप्ति हो तो उत्सर्ग भी होजावे। इस से (यज) धातु को संप्रसारण किये पीछे भी द्वित्व होजाता है। इसी प्रकार परत्व से (हि) के स्थान में तातङ् आदेश होने से फिर हि को धि न होना चाहिये सो भी (तातङ्) के निषेध पक्ष में (हि) को (धि) होकर (भिन्धि) आदि प्रयोग बन जाते हैं इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ३९ ॥

लोक में यह रीति है कि तुल्य अधिकारी दो स्वामियों का एक भृत्य होता है तो वह आगे पीछे दोनों के कार्य किया करता है परन्तु जो उस भृत्य को दोनों स्वामी अनेक दिशाओं में एक काल में कार्य करने के लिये आज्ञा दें तो उस समय जो वह किसी का विरोधी न हुआ चाहे तो दोनों के कार्य न करें क्योंकि एक को एककाल में दो दिशाओं में जाके दो कार्य करना असम्भव है फिर जिस का पीछे करेगा वही अप्रसन्न होगा। इसी प्रकार सूत्रों में भी दो में जो बलवान् होगा वह प्रथम हो जावे गा और जो दोनों तुल्यबल वाले होंगे तो एक दूसरे को हठाने से लोक के तुल्य एक भी कार्य न होगा। जैसे स्त्री लिङ्ग में वर्त्तमान (त्रि, चतुर्) शब्द को सामान्य विभक्तियों में (तिसृ, चतसृ) आदेश कहे हैं और (त्रि) शब्द को (आम्) विभक्ति के परे (त्रय) आदेश भी कहा है

फिर (विप्रतिषेधे परं कार्यम्) इस सूत्र से पर विप्रतिषेध मान के प्रथम (तिसृ) आदेश होगया । फिर उस को स्थानिवत् मान के (त्रय) आदेश भी होना चाहिये तो लोकवत् अनिष्ट प्रसङ्ग आजावे इस लिये यह परिभाषा है॥

४०—सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद् बाधितं तद् बाधितमेव ॥ अ० ॥ १ । ४ । २ ॥

एककाल में जब दो कार्यों की प्राप्ति होती है तब विप्रतिषेध में पर का कार्य होकर फिर दूसरे पूर्व सूत्र का कार्य्य प्रवृत्त नहीं हो सकता क्योंकि जो बाधक हुआ सो हुआ इस से फिर स्थानिवत् मान के (त्रय) आदेश नहीं होता इस कारण (तिसृणाम्) इत्यादि प्रयोग शुद्ध ठीक बन जाते हैं । और जो दूसरा कार्य्य भी पश्चात् प्राप्त हो और प्रथम हुआ कार्य्य कुछ न बिगड़े तो (३८) वीं परिभाषा के अनुकूल वह भी कार्य्य हो जावेगा ॥ ४० ॥

अब यह विचार भी कर्त्तव्य है कि धातुओं से परे जो लकारों के स्थान में तिप् आदि परस्मैपद और आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं वे पहिले हों किंवा विकरण हों आत्मनेपदादि के करने से प्रथम और पीछे भी विकरणों की प्राप्ति है इस से वे नित्य हैं । और आत्मनेपद परस्मैपद विधायक प्रकरण से परे भी विकरण ही हैं और विकरण किये पीछे आत्मनेपद नियम की प्राप्ति नहीं क्योंकि (अनुदात्तङित०) यह पंचमीनिर्दिष्ट कार्य व्यवधानरहित उत्तर को होना चाहिये विकरणों के व्यवधान से फिर आत्मनेपद नहीं पाता और जो आत्मनेपद नियम को अनवकाश माने सो भी नहीं क्योंकि अदादि और जुहोत्यादि गण में जहां विकरण विद्यमान नहीं रहते वहां और (लिङ्, लिट्) लकारों में (आत्मनेपद, परस्मैपद) को अवकाश ही है फिर (एधते, स्पर्द्धते) आदि में आत्मनेपद नहीं होसकता इस लिये यह परिभाषा है ॥

४१—विकरणेभ्यो नियमो बलीयान् ॥ अ० ॥ १ । ४ । १२ ॥

विकरणविधि से आत्मनेपद परस्मैपद नियमविधान बलवान् है क्योंकि जो आत्मनेपद आदि के होने से पहिले विकरण ही होते हों तो (आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्, पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु) इन विकरणविधायकसूत्रों में आत्मनेपद के आश्रय से विकरणविधान क्यों किया इस से यह ज्ञापक है कि विकरणविधि से पहिले ही आत्मनेपद परस्मैपद नियम कार्य होते हैं । इस से (एधते, स्पर्द्धते) आदि में आत्मनेपद सिद्ध होगया इत्यादि प्रयोजन इस के हैं॥४१॥

(न्यविशत, व्यक्रीणीत) यहां (नि,वि) उपसर्गों से परे (विश) और (क्री) धातु से आत्मनेपद होता है सो विकरण आत्मनेपद और अट् आगम तीनों कार्य्य एक साथ प्राप्त हैं इन में से आत्मनेपद सब से पहिले होकर अब विकरण करने के पहिले और पीछे भी (अट्) प्राप्त है इस से अट् नित्य हुआ और विकरण भी अट् करने से पहिले तथा पीछे भी प्राप्त है तो विकरण भी नित्य हुए। जब दोनों नित्य हुए तो परत्व से अट् प्राप्त है। और अङ्ग कार्य अट् से विकरणों का होना प्रथम इष्ट है क्योंकि विकरण के आजाने पर सब को (अङ्ग) संज्ञा हो और अङ्ग संज्ञा के पश्चात् अट् होवे इस लिये यह परिभाषा है ॥

४२—शब्दान्तरस्य च प्राप्नुवन् विधिरनित्यो भवति ॥अ०॥१।३।६०॥

जो दो कार्य एकसाथ प्राप्त हों और वे दोनों नित्य ठहरते हों तो उन में एकविधि के होने से पहिले जिस शब्द को दूसरा विधि प्राप्त है और पहिले कार्य के होने पश्चात् वह विधि दूसरे शब्द को प्राप्त हो तो वह अनित्य होता है यहां (अट्) आगम पहिले तो केवल (विश) को प्राप्त है और विकरण किये पीछे विकरणसहित सब को अंग संज्ञा होने से सब को प्राप्त है इस लिये अट् अनित्य हुआ। फिर प्रथम विकरण हो कर पुनः प्रसंग मानने से (अट्) हो जाता है। इत्यादि प्रयोजन हैं ॥ ४२ ॥

(नृ कुट्यां भवः नार्कुटः, नृपतेरपत्यं नार्पत्यः) यहां जो (नृ) शब्द को वृद्धि होती है उसी वृद्धिरूप आकार का सहचारी रेफ रहता है उस रेफ को खर् प्रत्याहार के परे (खरवसानयोर्विसर्जनीयः) इस सूत्र से विसर्जनीय होने चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

४३—असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १५ ॥

४४—असिद्धं बहिरङ्गलक्षणमन्तरङ्गलक्षणे ॥अ० ॥६।४।१३२॥

इन में से पहिली परिभाषा बहुधा व्यवहारकाल में प्रवृत्त होती और दूसरी बहुधा व्याकरणादिशास्त्रों में लगती है। बहिरंग कार्य करने में अन्तरंग कार्य असिद्ध हो जाता है। बहिर् और अन्तर् इन दोनों शब्दों के आगे जो अंग शब्द है वह उपकारकवाची और अंग शब्द के साथ दोनों शब्दों का बहुव्रीहि समास है (निमित्तसमुदायस्य मध्ये यस्य कार्यस्यांगमुपकारि निमित्तं बहिः कार्यान्तरापेक्षया दूरमधिकं वा वर्तते तद्बहिरङ्गं कार्य्यम्, एवं निमित्तसमुदायस्य मध्ये यस्य

कार्यस्याङ्गमुपकारिनिमित्तमन्तःकार्यान्तरापेक्षया सन्निहितं वा न्यूनं वर्त्तते तदन्तरङ्गं कार्यम्, तथा बह्वपेक्षं बहिरङ्गमल्पापेक्षमन्तरङ्गम्) बहिरङ्ग उस को कहते हैं कि प्रकृति, प्रत्यय, वर्ण और पद के समुदाय में जिस कार्य के उपकारी अवयव दूसरे कार्य की अपेक्षा से दूर वा अधिक हों। और अन्तरङ्ग वह कहाता है कि प्रकृति आदि निमित्तों के समुदाय में जिस कार्य के उपकारी अवयव दूसरे कार्य की अपेक्षा से समीप वा न्यून हों। तथा जो बहुत निमित्त और व्याख्यान की अपेक्षा रक्खे वह बहिरङ्ग तथा थोड़े निमित्त और व्याख्यान की अपेक्षा रक्खे वह अन्तरङ्ग कहाता है। इस लिये प्रायः अन्तरङ्ग कार्य प्रथम होता है और बहिरङ्ग असिद्ध हो जाता है। और कहीं २ बहिरङ्ग प्रथम हो भी जावे तो अन्तरङ्ग कार्य की दृष्टि में असिद्ध अर्थात् नहीं हुआ सा ही रहता है। अब प्रकृत में (नार्कुटः, नार्पत्यः) यहां ककार पकार विसर्जनीय के निमित्त अन्तरङ्ग और वृद्धि का निमित्त तद्धित बहिरङ्ग है सो प्रथम बहिरङ्ग कार्य वृद्धि हो भी जाती है। परन्तु अन्तरङ्ग कार्य विसर्जनीय करने में वृद्धि के असिद्ध होने से रेफ ही नहीं फिर विसर्जनीय किस को हो तथा (वाह ऊठ्) इस सूत्र में (ऊठ्) नहीं पढ़ते तो संप्रसारण की अनुवृत्ति आकर (प्रष्ठ+वाह्+ण्वि+अस्) इस अवस्था में ण्वि प्रत्यय के परे वकार को (उ) संप्रसारण और पूर्वरूप हो कर। (प्रष्ठ+उह्+ण्वि+अस्) इस अवस्था में उकार को ओकार (गुण) और उस ओकार के साथ वृद्धि एकादेश हो कर (प्रष्ठौहः) आदि प्रयोग सिद्ध हो ही जाते फिर ऊठ् ग्रहण व्यर्थ हो कर यह ज्ञापक होता है कि (प्रष्ठौहः) आदि में गुण करते समय संप्रसारण (असिद्ध) होता है अर्थात् यजादि प्रत्यय निमित्त भसंज्ञा और भ संज्ञा के आश्रय संप्रसारण होता है इस प्रकार बहुत अपेक्षा वाला होने से संप्रसारण बहिरङ्ग और (वि) प्रत्यय को मान के गुण अन्तरङ्ग है फिर अन्तरंग गुण करने में जब संप्रसारण असिद्ध हुआ तो गुण की प्राप्ति नहीं जब गुण नहीं हुआ तो वृद्धि हो कर (प्रष्ठौहः) आदि प्रयोग भी नहीं बन सकते इस लिये ऊठ् ग्रहण करना चाहिये इसी ऊठ् ग्रहण के ज्ञापक से यह परिभाषा निकली है तथा (पचावेदम्, पचामेद) यहां लोट् के उत्तम पुरुष के एकार को ऐकारादेश प्राप्त है सो ऐत्व अन्तरंग की दृष्टि में (आद्गुणः) सूत्र से हुआ गुण बहिरंग होने से असिद्ध है इस लिये वहां एकार ही नहीं तो ऐकार किस को हो। इत्यादि इस परिभाषा के असंख्य प्रयोजन हैं। लोक में भी अन्तरंग कार्य करने में बहिरंग असिद्ध ही माना जाता है जैसे। मनुष्य प्रातःकाल उठ कर पहिले निज शरीर संबन्धी अन्तरंग कार्यों को करता है पीछे मित्रों के और

सम्बन्धियों के काम करता है क्यों कि मित्र आदि के कार्य निज शरीर को
ां बहिरंग हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अन्तरंगबहिरंगलक्षण परिभाषा में ये दोष हैं कि (अक्षद्यति अक्षयूः,
यूः) यहां (दिव्) धातु से क्विप् प्रत्यय के परे क्विप् को मान के वकार
होता है उस बहिरंग ऊठ् को असिद्ध मानें तो यणादेश नहीं हो सकता
दोषों की निवृत्ति के लिये यह अगली परिभाषा है ॥

५—नाजानन्तर्ये बहिष्ट्वप्रक्लृप्तिः ॥ अ० ॥ १ । ४ । २ ॥

ां दोनों अचों के समीपवा मध्य में कार्य विधान करते हो वहां अन्तरंग
लक्षण परिभाषा नहीं लगती इस से (अक्षद्यूः) आदि में बहिरंग ऊठ् को
सिद्ध नहीं माना तो यणादेश भी हो गया तथा (षत्वतुकोरसिद्धः) इस
तुक् ग्रहण का यही प्रयोजन है कि (अधीत्य, प्रेत्य) इत्यादि प्रयोगों
अन्तरंग और सवर्णदीर्घ तथा गुण एकादेश बहिरंग है जो तुक् अन्तरंग
में बहिरंग एकादेश असिद्ध हो जाता तो तुक् हो ही जाता फिर तुग्
एकादेश को असिद्ध करने से यह ज्ञापक निकला कि जो दो अचों के आश्रय
कार्य हो वह अन्तरंग कार्य की दृष्टि में असिद्ध नहीं होता। इसी तुक्
ापक से यह परिभाषा निकली है ॥ ४५ ॥

ोमान् प्रियो यस्य स गोमत्प्रियः यवत्प्रियः, गोमानिवाचरति गोमत्यते,
ते) इत्यादि प्रयोगोंमें समासाश्रित अन्तर्वर्तिनी विभक्ति का लुक् द्विपदाश्रय
बहिरंग और (हल्ड्यादि) सूत्र से प्राप्त सुलोपएकपदाश्रय होने से अन्तरंग
ा बहिरंग का बाधक अन्तरंग हो जावे तो नुम् आदि कार्य हो कर गोमत्-
योग सिद्ध न हो किन्तु (गोमान्प्रियः) ऐसा प्राप्त होवे सो अनिष्ट है इस
ह परिभाषा है ॥

—अन्तरङ्गानपि विधीन् बाधित्वा बहिरङ्गो लुग् भवति ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६८ ॥

तरंग विधियों को बाध के भी बहिरंग लुक् होता है अर्थात् जब अन्तर्वर्तिनी
का लुक् समासाश्रय होने से बहिरङ्ग हुआ एकपदाश्रय सुलोप आदि अन्तरं-
बाधक होगया तो (नलुमताङ्गस्य) इस सूत्र से नुम् आदि करने में प्रत्ययलक्षण
ध होकर (गोमत्प्रियः) इत्यादि प्रयोग बनजाते हैं तथा (प्रत्ययोत्तरपदयोश्च)

इस सूत्र का यही प्रयोजन है कि (त्वामिच्छति, त्वयति ,मद्यति,तवपुत्रस्त्वत्पुत्रः, मत्पुत्रः त्वं नाथोऽस्य त्वन्नाथः, मन्नाथः) इत्यादि प्रयोगों में (युष्मद्,अस्मद्) शब्दों को (त्व, म) आदेश होजावें (त्वं नाथोऽस्य) इस अवस्था में मध्यवर्त्तिनी विभक्ति का लुक् (त्व, म) आदेश होने के पहिले और पीछे भी प्राप्त होने से नित्य और (त्व, म) आदेश अन्तरंग हैं नित्य से अन्तरंग बलवान् होता है यह तो कहचुके हैं। सो जो अन्तरंग होने से (त्व, म) आदेश पहिले हो जावें तो इस सूत्र का कुछ प्रयोजन न रहे क्योंकि वर्त्तमान विभक्ति के परे (त्वमाविकवचने) सूत्र से (त्व, म) होही जावेंगे फिर व्यर्थ हो कर यह ज्ञापक हुआ कि अन्तरंग विधियों का भी वहिरंग लुक् बाधक होता है फिर जब बहिरंग लुक् पहिले हुआ तो सूत्र सार्थक रहा और इसी ज्ञापक से यह परिभाषा निकली ॥ ४६ ॥

(पूर्वैषुकामशमः) यहां (पूर्वेषुकामशमी) शब्द से तद्धित (अण्) प्रत्यय होता है (पूर्व+इषु+काम+शमी+अ) इस अवस्था में जो तद्धित प्रत्ययाश्रित बहिरङ्ग उत्तर पद वृद्धि से अन्तरङ्ग होने के कारण अकार इकार को गुण एकारादेश पहिले हो जावे तो पूर्वोत्तरपद के पृथक् २ न रहने और उभयाश्रय कार्य में अन्तादिवद्भाव के निषेध होने से (दिशोऽमद्राणाम्०) इस सूत्र से उभयपदवृद्धि नहीं हो सकती इत्यादिदोषों की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

४७–पूर्वोत्तरपदयोस्तावत्कार्यं भवति नैकादेशः ॥ अ०॥१।४।२ ॥

पूर्वोत्तरपदनिमित्तकार्य से अन्तरङ्ग भी एकादेश पहिले नहीं होता किन्तु पूर्वोत्तरपद निमित्त कार्य अन्तरङ्ग एकादेश से पहिले हो जाता है इस से (पूर्वैषुकामशमः) यहां अन्तरङ्ग मान कर प्रथम गुण एकादेश नहीं होता किन्तु पहिले उत्तरपद को वृद्धि हो कर वृद्धि एकादेश हो जाता है। यह भी परिभाषा (४५) वीं परिभाषा की सहचारिणी है। इस का ज्ञापक यह है कि (नेन्द्रस्य परस्य) इस सूत्र में उत्तरपदवृद्धि का निषेध है कि उत्तरपद में इन्द्र शब्द को वृद्धि न हो जिस से (सौमेन्द्रः) प्रयोग सिद्ध होजावे । सो जो सोम के साथ इन्द्र का एकादेश अन्तरङ्ग होने से पहिले हो जावे तो इन्द्र शब्द का इकार तो एकादेश में गया अन्त्य का अच् तद्धित प्रत्यय के परे लोप में गया फिर जब उत्तर पद इन्द्र शब्द में कोई अच् ही नहीं तो वृद्धि का निषेध क्यों किया इस से व्यर्थ हो कर यह ज्ञापक हुआ कि अन्तरङ्ग भी एकादेश पूर्वोत्तरपदकार्य के पहिले नहीं होता किन्तु अन्तरङ्ग का बाधक उत्तरपदवृद्धि पहिले होती है इस लिये उत्तरपद में इन्द्र शब्द को वृद्धि का निषेध किया है ॥ ४७ ॥

(प्रधाय, प्रस्थाय) इत्यादि प्रयोगों में (क्त्वा) प्रत्यय के स्थान में (ल्यप्) आदेश होता है सो ल्यप् होने से पहिले (प्रधा+त्वा) इस अवस्था में धा के स्थान में (हि) और (स्था) को इकारादेश तथा (त्वा) को (ल्यप्) भी प्राप्त है इस में हि आदि आदेश पर और अन्तरङ्ग हैं और ल्यप् बहिरङ्ग है सो पर और अन्तरङ्ग मान के हि आदि आदेश करलें तो (प्रधाय, प्रस्थाय) आदि प्रयोग नहीं बन सकें इस लिये यह परिभाषा है ॥

४८–अन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गो ल्यब् बाधते ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३६ ॥

अन्तरङ्ग विधियों का भी बहिरङ्ग ल्यबादेश बाध करता है । इस से (हि) आदि आदेशों को बाध के प्रथम (ल्यप्) हो गया फिर हि आदि की प्राप्ति नहीं तो (प्रदाय, प्रधाय, प्रस्थाय) आदि प्रयोग सिद्ध हो गये और (अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति) इस सूत्र में ल्यप् का ग्रहण नहीं करते तो तकारादि प्रत्ययमात्र की अपेक्षा रखने वाला अद धातु को (जग्धि) आदेश अन्तरङ्ग होने के कारण पूर्वपद की अपेक्षा रखने वाले समासाश्रित बहिरङ्ग ल्यप् आदेश से प्रथम हो जाता फिर ल्यप् ग्रहण व्यर्थ हो कर इस का ज्ञापक हुआ कि (अन्तरङ्गविधियों को भी बाध के पहिले ल्यप् होता है) फिर तकारादि कित् न होने से (जग्धि) आदेश प्राप्त नहीं होता इस लिये ल्यप् ग्रहण किया है । यही ल्यप् ग्रहण इस परिभाषा के निकलने में ज्ञापक है ॥ ४८ ॥

(इयाय, इययिथ) इत्यादि प्रयोगों में पर होने से गुण वृद्धि और नित्य होने से द्वित्व प्राप्त है द्वित्व होने के पश्चात् (इ+इ+अ, इ+इ+इथ) इस अवस्था में परत्व से गुण वृद्धि और अन्तरङ्ग होने से सवर्णदीर्घ एकादेश प्राप्त है सो जो बलवान् होने से अन्तरङ्ग सवर्णदीर्घ एकादेश हो जावे तो (इयाय, इययिथ) आदि प्रयोग सिद्ध नहीं हो सकें इस लिये यह परिभाषा है ॥

४९—वार्णादाङ्गं बलीयो भवति ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ७८ ॥

वर्णकार्य से अङ्ग कार्य बलवान् होता है । यहां वर्णकार्य सवर्णदीर्घ एकादेश और अंगकार्य गुण वृद्धि हैं उस वर्णकार्य से अंगकार्य बलवान् होने से गुण वृद्धि प्रथम हो कर (इयाय, इययिथ) इत्यादि प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं (अभ्यासस्यासवर्णे) इस सूत्र में असवर्ण अच् के परे अभ्यास के इवर्ण उवर्ण को (इयङ्, उवङ्) आदेश कहे हैं सो जो गुण वृद्धि का बाधक एकादेश हो जावे तो अभ्यास से

परे असवर्ण अच् हो ही नहीं सकता फिर उस असवर्ण गुण वृद्धि किये अच् के परे (इयङ्, उवङ्) कहने से निश्चित ज्ञात हुआ कि (वर्णकार्य का बाधक अंग कार्य होता है) यही असवर्ण अच् के परे (इयङ्, उवङ्) का विधान इस परिभाषा के होने में ज्ञापक है ॥ ४९ ॥

यह बात प्रथम लिख चुके हैं कि अन्तरङ्ग से भी अपवाद बलवान् होता है (जुसि च) इस सूत्र से जो गुणविधान है सो (क्ङिति च) आदि निषेध प्रकरण का अपवाद है क्योंकि (झि) के ङित् होने से उस के स्थान में जुस् भी ङित् ही आदेश होता है सो जैसे (अबिभयुः, अबिभरुः) इत्यादि में निषेध का बाध जुस् में गुण होता है वैसे ही (चिनुयुः, सुनुयुः) यहां (यासुट्) के आश्रय से प्राप्त गुणनिषेध का भी बाधक हो जावे तो (चिनुयुः, सुनुयुः) आदि प्रयोगों में गुण होना चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

५०—येन नाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति ॥ अ० ॥ १ । १ । ६ ॥

जिस कार्य की प्राप्त में अपवाद का आरम्भ किया जाता है वह अपवाद उसी कार्य का बाधक होता है और जिस की प्राप्ति अप्राप्ति में सर्वथा अपवाद का आरम्भ है उस का बाधक नहीं होता इस से यह आया कि (चिनुयुः, सुनुयुः) यहां दो ङित् हैं एक सार्वधातुक जुस् प्रत्यय का और दूसरा यासुट् का सो सार्वधातुकप्रत्ययाश्रित जो ङित्त्व है उसी को मान के प्राप्त गुण का निषेध है उस निषेध की प्राप्ति में जुस् के परे गुण कहा है और यासुट् के ङित्त्वनिमित्तप्राप्त निषेध के होने वा न होने में उभयत्र जुस् के परे गुण कहा है क्योंकि (अबिभयुः) आदि में यासुट् के विना केवल सार्वधातुक के आश्रयगुण का निषेध प्राप्त है इस लिये (चिनुयुः) आदि में गुण नहीं होता। इत्यादि इस परिभाषा के अनेक प्रयोजन हैं ॥ ५० ॥

अब इस पूर्वोक्त परिभाषा के विषय में यह विशेष विचार है कि (... दरोष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च) यह सूत्र अगले (न क्रोडादिबह्वचः, सहनञ्, इन दो सूत्रों का अपवाद है और दोनों की प्राप्ति में इस का आरम्भ भी है यदि परिभाषा के अनुकूल माना जावे तो सह,नञ् और विद्यमान पूर्वक शब्दों से निषेध का बाधक ङीष् प्रत्यय (सनासिका, अनासिका, विद्यमाननासिका आदि में भी (ङीष्) प्रत्यय होना चाहिये तो ये प्रयोग नहीं बनसकें इस... यह परिभाषा है ॥

५१—पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्ते न परान् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ५५ ॥

जो पहिले अपवाद और पीछे उत्सर्ग पढ़ा हो तो वह अपने समीपस्थ कार्य का बाधक हो और परविधि अर्थात् जिस के साथ व्यवधान है उस का बाधक नहीं होवे । इस से बह्वच् लक्षण से प्राप्त (ङीष्) के निषेध का बाधक हुआ और सह, नञ्, विद्यमान पूर्वक नासिका से प्राप्त ङीष् के निषेध का बाधक नहीं हुआ । इस प्रकार (सनासिका, अनासिका) आदि प्रयोग सिद्ध हो गये । इसी प्रकार अन्यत्र भी इस का विषय जानना ॥ ५१ ॥

अब (नासिकोदरौष्ठ०) इस सूत्र में जो ओष्ठ आदि पांच संयोगोपध शब्द हैं उन से निषेध भी प्राप्त है उस का बाधक पूर्व परिभाषा नहीं हो सकती क्योंकि (नासिकोदर०) सूत्र से भी संयोगोपध का निषेध पूर्व है (नासिकोदर०) सूत्र में नासिका और उदर शब्द तो सह आदि पूर्व होने से पर दोनों सूत्रों के अपवाद हैं और ओष्ठ आदि शब्द सह आदि पूर्व हों तो (सहनञ्) इस पर सूत्र के और सामान्य उपपद में (स्वाङ्गाच्चोप०) इस पूर्व सूत्र के भी अपवाद हों । सो दोनों के अपवाद होने चाहिये या किसी एक के । इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

५२—मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन् बाधन्ते नोत्तरान् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ५५ ॥

जो पूर्व पर दोनों ओर उत्सर्ग और मध्य में अपवाद पढ़ा होतो वह अपने से पूर्वविधि का बाधक होता है उत्तर का नहीं इस से (बिम्बोष्ठी, बिम्बोष्ठा दीर्घजङ्घी दीर्घजङ्घा) इत्यादि उदाहरणों में संयोगोपधलक्षण निषेध का बाधक होगया और (सदन्ता,अदन्ता,विद्यमानदन्ता) इत्यादि में पर सूत्र से प्राप्त निषेध की बाधा नहीं हुई । इसी प्रकार सर्वत्र योजना करलेनी चाहिये ॥ ५२ ॥

(सुडनपुंसकस्य) इस सूत्र में सुट् के सर्वनाम संज्ञा का निषेध है सो (कुण्डानि तिष्ठन्ति, वनानि तिष्ठन्ति यहां भी जो नपुंसक के सुट् की सर्वनामस्थान संज्ञा का निषेध होजावे तो (नुम्) आदि होकर (कुण्डानि) आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं सो न होसकें इसलिये यह परिभाषा है ॥

५३—अनन्तरस्य विधिर्वा प्रतिषेधो वा ॥ अ० ॥ १ । १ । ४३ ॥

जिस में कुछ अन्तर न हो अर्थात् जो अत्यन्त समीप हो उस का विधि वा निषेध होता है दूरस्थ का नहीं । इस से सुट् करके जो सर्वनामस्थान संज्ञा की प्राप्ति है उसी का निषेध करता है (शि) की सर्वनामस्थानसंज्ञा का निषेध नहीं इस से (कुण्डानि) आदि प्रयोग बन जाते हैं । और (नेटि) सूत्र में इडादि सिच् के परे वृद्धि का निषेध होता है सो जो दूरस्थ वृद्धि का भी हो तो (अमार्जीत्, अलावीत्, अपावीत्) इत्यादि में भी वृद्धि का निषेध होना चाहिये इस परिभाषा से समीपस्थ हलन्तलक्षण वृद्धि का निषेध हो जाता है समान्य करके नहीं इत्यादि प्रयोजन हैं ॥ ५३ ॥

(ददति, दधति) इत्यादि प्रयोगों में जो प्रत्ययादि झकारको अन्तरंग होने से अन्तादेश प्रथम हो जावें तो अभ्यस्तसंज्ञकों से विहित प्रत्ययादि झकार को अत् आदेश व्यर्थ और अनिष्ट प्रयोग सिद्ध होने लगें इस लिये ये परिभाषा हैं ॥

५४—नचापवादविषये उत्सर्गोऽभिनिविशते ॥
५५—पूर्वं ह्यपवादा अभिनिविशन्ते पश्चादुत्सर्गाः ॥
५६—प्रकल्प्य चापवादविषयमुत्सर्गः प्रवर्तते ॥अ०॥ ६ । १।५ ॥

ये तीनों परिभाषा उत्सर्गापवाद की व्यवस्था के लिये हैं अपवादविषय में उत्सर्ग की प्रवृत्ति नहीं होती । प्रथम अपवादों की और पश्चात् शेषविषय में उत्सर्गों की प्रवृत्ति होती है । अपवाद के विषय को छोड़ के अपने विषय में उत्सर्ग प्रवृत्त होते हैं । इस से यह आया कि अभ्यस्त संज्ञक से प्राप्त जो प्रत्ययादि झकार को अत्, आदेश उस अपवाद के विषय में उत्सर्ग की प्रवृत्ति न होने से प्रथम अपवाद प्रवृत्त हुआ तो प्रत्ययादि झकार को अत् आदेश हो कर (ददति, दधति) आदि प्रयोग सिद्ध हो गए। और जैसे अन्त आदेश का बाधक (पचेयुः, अजागरुः) आदि प्रयोगों में झि को जुस् होता है वैसे (ऐप्सन्) आदि प्रयोगों में उत्सर्ग का विषय है उस में झि को जुस् नहीं होता । अर्थात् अपवाद के विषय में उत्सर्ग की प्रवृत्ति नहीं होती और उत्सर्ग के विषयमें अपवाद की प्रवृत्ति हो ही जाती है ॥५६॥

अब पूर्व परिभाषाओं से यह आया कि अपवादविषय में उत्सर्गों की प्रवृत्ति नहीं होती किन्तु स्वविषय में अपवाद उत्सर्ग का बाधक होता है तो (दीर्घोकितः) इस सूत्र में अकित् ग्रहण व्यर्थ होता है क्यों कि जो सामान्य से अभ्यास को दीर्घ

कहते तो अनुनासिकान्त अकारोपध धातुओं के अभ्यास को दीर्घ का बाधक (नुक्) आगम हो कर अजन्त के न रहने से दीर्घ की प्राप्ति ही नहीं थी तो (यंयम्यते, रंरम्यते) आदि प्रयोग सिद्ध हो ही जाते फिर अकित्ग्रहण व्यर्थ हो कर इस वक्ष्यमाण परिभाषा के निकलने में ज्ञापक है ॥

५७-अभ्यासविकारेष्वपवादा उत्सर्गान्न बाधन्ते ॥ अ० ॥ ७।४।८३॥

अभ्यास के आदेशविधानप्रकरण में अपवाद उत्सर्गों के बाधक नहीं होते तो जब दीर्घरूप उत्सर्ग का बाधक नुक्, न रहा तो (यंयम्यते) आदि में दीर्घ की प्राप्ति हुई इस लिये अकित् ग्रहण सार्थक हुआ यह तो स्वार्थ में चरितार्थ और अन्यत्र फल यह है कि (डोढौक्यते, तोत्रौक्यते) इत्यादि प्रयोगों में उत्सर्गरूप ह्रस्व का बाधक दीर्घ नहीं होता और जो ह्रस्व का अपवाद होने से ओकार को औकार हो दीर्घ कर लेवें तो फिर ह्रस्व होकर गुण न होवे तो (डोढौक्यते) आदि प्रयोग भी सिद्ध न हों इत्यादि इस परिभाषा के अनेक प्रयोजन हैं ॥ ५७ ॥

तच्छीलादि अर्थों में (तृन्) प्रत्यय ण्वुल् का अपवाद है और (ण्वुल्) तथा (तृन्) असरूप प्रत्यय भी हैं सो धात्वधिकार में असरूप प्रत्यय उत्सर्ग का बाधक विकल्प करके होता है पक्ष में उत्सर्ग भी हो जाता है अब (निन्दहिंसक्लिश०) इस सूत्र में (वुञ्) प्रत्यय का (तृन्) अपवाद क्यों पढ़ा क्योंकि तृन् के द्वितीय पक्ष में ण्वुल् होकर (निन्दकः, हिंसकः) आदि प्रयोग बन ही जाते कि जो (वुञ्) प्रत्यय के होने से बनते हैं और (निन्दकः) आदि में (ण्वुल्, वुञ्) का स्वर भी एक ही होता है एक (असूयक) शब्द के स्वर में तो (ण्वुल्, वुञ्) के होने से भेद पड़ेगा । ण्वुल् का स्वर (असूयकः) वुञ् का (असूयकः) और (निन्दकः) आदि में आद्युदात्त ही रहेगा । फिर निन्द आदि धातुओं से वुञ् विधान व्यर्थ हुआ इसलिये यह ज्ञापक सिद्ध परिभाषा है ॥

५८—ताच्छीलिकेषु सर्व एव तृजादयो वाऽसरूपेण न भवन्ति ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४६ ॥

तृच् आदि अपवादों के साथ असरूप उत्सर्ग रूप प्रत्यय तच्छीलाधिकारविहित अपवादों के पक्ष में नहीं होते। इस से तच्छीलाधिकारविहित तृन् के पक्ष में जब ण्वुल् नहीं होसकता तो निन्द आदि धातुओं से वुञ् विधान सार्थक होगया और (असूयकः) में स्वरभेद होने के लिये (वुञ्) कहना आवश्यक ही है । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ५८ ।

अब धात्वधिकार में सर्वत्र वाऽसरूपविधि के मानने से (हसितं, हसनं वा छात्रस्य शोभनम् यहां (क्त) और ल्युट् के विषय में घञ् (इच्छति भोक्तुम्) यहां (लिङ्, लोट्) और (ईषत्पानः सोमो भवता) यहां (खल्) असरूप उत्सर्ग होने से प्राप्त हैं इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

५९—क्तल्युट्तुमुन्खलर्थेषु वाऽसरूपविधिर्नास्ति ॥ अ० ॥ ३।१।९४ ॥

क्त, ल्युट्,तुमुन् और खलर्थप्रत्ययों के विषय में असरूप उत्सर्ग प्रत्यय अपवाद पक्ष में नहीं होते इस से (हसितम्, हसनम्) आदि प्रयोगों के विषय में घञ् आदि उत्सर्ग प्रत्यय नहीं होते (अर्हे कृत्यतृचश्च) इस सूत्र में कृत्य और तृच् प्रत्यय नहीं कहते तो अर्ह अर्थ में कहे हुए लिङ् के साथ असारूप्य होने से अर्ह अर्थ में कृत्य और तृच् हो ही जाते फिर कृत्य और तृच् ग्रहण व्यर्थ होकर यह जनाते हैं कि (वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्) यह परिभाषा अनित्य है ॥ ५९ ॥

(हशश्वतोर्लङ् च) इस सूत्र में लङ् ग्रहण नहीं करते तो भूतानद्यतनपरोक्षकाल में विहित (लिट्) के साथ असरूप (लङ्) का समावेश हो ही जाता फिर लङ् व्यर्थ होकर इस परिभाषा का ज्ञापक होता है ॥

६०—लादेशेषु वाऽसरूपविधिर्न भवति ॥ अ० ॥ ३।१।९४ ॥

लकारार्थविधान में वाऽसरूपविधि नहीं होती । इस से लङ् लकार का ग्रहण सार्थक हुआ । और (लटः शतृशानचा०) यहां विकल्प की अनुवृत्ति इसी लिये करते हैं कि जिस से तिङ् का भी पक्ष में समावेश होजावे जो (वाऽसरूपविधि) होजाती तो तिङ् समावेश के लिये विकल्प नहीं लाने पड़ता इत्यादि अनेक प्रयोजन इस परिभाषा के समझने चाहिये ॥ ६० ॥

अब (तस्मिन्निति,तस्मादित्युत्तरस्य) इन सूत्रों से सप्तमीनिर्दिष्टकार्य अव्यवहित पूर्व को और पंचमीनिर्दिष्ट उत्तर को होता है सो (इको यणचि) यहां सप्तमी निर्दिष्ट पूर्व को और (द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्) द्वीपम् । यहां पंचमीनिर्दिष्ट उत्तर को होता है।परन्तु जहां पंचमी और सप्तमी दोनों विभक्तियों का निर्देश हो वहां किस को कार्य होना चाहिये इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

६१—उभयनिर्देशे विप्रतिषेधात् पंचमीनिर्देशः ॥ अ० ॥ १।१।६६ ॥

जहां सप्तमी पंचमी दोनों विभक्तियों से निर्देश किया है वहां (तस्मिन्निति० तस्मादित्यु०) इन दोनों सूत्रों में पर विप्रतिषेध मान के पंचमीनिर्दिष्ट का कार्य

होना चाहिये जैसे (बहोर्लोपो भू च बहोः) यहां (बहु) शब्द पंचमीनिर्दिष्ट और (इष्ठन्, इमनिच्, ईयसुन्) सप्तमीनिर्दिष्ट हैं यह बहु से परे इष्ठन् आदि को वा इष्ठन् आदि के परे बहु शब्द को कार्य होवे इस सन्देह की निवृत्ति इस परिभाषा से हुई कि पंचमी निर्दिष्ट को कार्य होना चाहिये अर्थात् बहु से परे इष्ठन् आदि को कार्य होवे सो पर को विहितकार्य अर्थात् ईयसुन् के आदि का लोप हो जाता है भूयान्, भूमा तथा (ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्) यहां ङम् से परे अच् को वा अच् परे होतो ङम् को कार्य हो यह सन्देह है। सो ह्रस्व से परे जो ङम् उस से परे अच् को कार्य होता है (तिङ्ङतिङः) कुर्वन्नास्ते। इत्यादि बहुत सन्देह निवृत्त हो जाते हैं ॥ ६१ ॥

इस व्याकरणशास्त्र में (स्वं रूपं शब्दस्या०) इस परिभाषा सूत्र के अनुकूल (पयस्कुम्भी, पयस्पात्री) इत्यादि प्रयोगों में विसर्जनीय को सकारादेश न होना चाहिये क्योंकि कुम्भ और पात्र आदि शब्दों के परे कहा है उन के स्वरूप ग्रहण होने से स्त्रीलिङ्ग में नहीं हो सकता। इस लिये यह परिभाषा है ॥

६२—प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणं भवति ॥ अ० ॥ ४ । १ । १ ॥

प्रातिपदिक के परे वा प्रातिपदिक को जहां कार्य कहा हो वहां पठित लिङ्ग से विशेष लिङ्ग का भी ग्रहण होना चाहिये इस से (पयस्कुम्भी) आदि प्रयोग भी सिद्ध हो जाते हैं जैसे सर्वनाम को सुट् कहा है सो (येषाम्, तेषाम्) यहां तो होता ही है (यासाम्, तासाम्,) यहां भी हो जावे जैसे (कष्टं श्रितः कष्टश्रितः) यहां समास होता है वैसे (कष्टं श्रिता कष्टश्रिता) यहां भी होजावे जैसे (हस्तिनां समूहो हास्तिकम्) यहां ठक् होता है वैसे (हस्तिनीनां समूहो हास्तिकम्) यहां भी होजावे जैसे (ग्रामेवासी) यहां सप्तमी का अलुक् होता है वैसे (ग्रामे वासिनी) यहां भी हो जावे इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ६२ ॥

जब प्रातिपदिक के ग्रहण में लिङ्गविशिष्ट का भी ग्रहण होता है तो जैसे (यूनः पश्य) यहां युवन् शब्द को सम्प्रसारण होता है वैसे (युवतीः पश्य) यहां स्त्रीलिंग में भी होना चाहिये इत्यादि सन्देहों की निवृत्ति के लिये यह परि० ॥

६३—विभक्तौ लिङ्गविशिष्टग्रहणं न ॥ अ० ॥ ७ । १ । १ ॥

विभक्ति के आश्रय कार्य करने में पठित लिंग से अन्य लिंग का ग्रहण नहीं होता। इस से भसंज्ञाश्रय सम्प्रसारण युवति शब्द को नहीं होता तथा जैसे

(गोमान्,यवमान्) यहां नुम् और दीर्घ होते हैं वैसे (गोमती,यवमती) यहां होवे सो सर्वनामस्थ विभक्त्याश्रित कार्य होने से नहीं होता जैसे(सखा,सखायौ)यहां सखि शब्द को आकारादेश होता है वैसे (सखी, सख्यौ,सख्यः) यहां स्त्रीलिङ्ग में विभक्त्याश्रित आकार नहीं होता इत्यादि इस परिभाषा के भी बहुत प्रयोजन हैं॥ ६३ ॥

(तस्यापत्यम्) इस सूत्र में (तस्य) यह पुंलिंग षष्ठी का एक वचन और अपत्य शब्द नपुंसकलिंग प्रथमैकवचननिर्देश किया है तो (कन्याया अपत्यं,कानीनः) यहां स्त्रीलिंग शब्द से कानीन शब्द नहीं सिद्ध होना चाहिये और (द्वयोर्मात्रोरपत्यं द्वैमातुरः) यहां द्विवचन से प्रत्यय त्पत्ति भी नहीं होनी चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

६४—सूत्रे लिङ्गवचनमतन्त्रम् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ९२ ॥

जो सूत्र में लिंग और वचन पढ़े हैं वे कार्य्य करने में प्रधान नहीं होते अर्थात् जहां स्त्रीलिंग, पुल्लिङ्ग वा नपुंसकलिंग से तथा एकवचन, द्विवचन बहुवचन से निर्देश किये जावें वहां उसी पठित लिंग वा वचन से कार्य्य लिया जाय यह नियम नहीं समझना चाहिये किन्तु एक किसी लिङ्ग वा वचन से शब्द पढ़ा हो तो सभी लिङ्ग वचनों से कार्य्य हो सकते हैं इस से (कानीनः,द्वैमातुरः) इत्यादि शब्द सिद्ध हो जाते हैं । इत्यादि अनेक प्रयोजन इस परिभाषा से सिद्ध होते हैं॥६४॥

अब अत्यन्त भृशादि प्रातिपदिकों से जो भू धातु के अर्थ में (क्यङ्) प्रत्यय होता है वह (क दिवा भृशा भवन्ति)यहां भी भृश शब्द से होना चाहिये इत्यादि सन्देहों की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

६५—नञिवयुक्तमन्यसदृशाधिकरणे तथा ह्यर्थगतिः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२ ॥

वाक्य में जो नञ् युक्त पद है उस के समान जो वाक्य में युक्त और उस नञ् युक्त पदार्थ के सदृश धर्म वाला हो उस में कार्य्य विधान होना चाहिये । ऐसा ही अर्थ लोक में प्रतीत होता है । अर्थात् वाक्य में जिस पदार्थ को जिस क्रिया का निषेध होवे उस पदार्थ के तुल्य धर्म वाले को उसी क्रिया का विधान कर लेना चाहिये । जैसे लोक में किसी ने कहा कि (अब्राह्मणमानय) ब्राह्मण से भिन्न को लेआ तो ब्राह्मण से भिन्न क्षत्रियादि किसी मनुष्य को ले आता है क्यों कि ब्राह्मण के तुल्य धर्म वाला मनुष्य ही होता है किन्तु यह नहीं होता कि ब्राह्मण से इतर को मंगवाने में मट्टी वा पत्थर आदि किसी पदार्थ को लेआ के अपना अभीष्ट

सिद्धि कर लेवे । इसी प्रकार शास्त्रों में भी जिस का निषेध किया हो उस के सदृश दूसरे का विधान करना चाहिये । यहां जो च्वि प्रत्ययान्त से अन्य भृशादि शब्दों से क्यङ् प्रत्यय विधान किया है वह च्वि प्रत्ययान्त के तुल्य अर्थ वाले भृशादिकों से क्यङ् होना चाहिये । च्वि प्रत्यय का अर्थ अभूततद्भाव है उसी अर्थ में क्यङ् होता है (अभृशो भृशो भवति,भृशायते) इत्यादि (क्व दिवा भृशा भवन्ति) यहां अभूततद्भाव के न होने से (क्यङ्) नहीं होता । तथा (दधिच्छादयति, मधुच्छादयति) इत्यादि प्रयोगों में (तुक्) आगम को अभक्त मानें कि न पूर्वान्त और न परादि दोनों से पृथक् है तो अतिङ् से परे तिङ् पद को निघात होजावे । सो तुक् तिङ् से भिन्न तिङ् के तुल्य धर्म वाला पद नहीं है इस से निघात नहीं पावेगा और निघात होना इष्ट है इस लिये (तुक्) को अभक्त नहीं करना किन्तु पूर्वान्त ही करना चाहिये इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ६५ ॥

(उपपदमतिङ्) इस सूत्र में अतिङ् ग्रहण का यही प्रयोजन है कि तिङन्त उपपद का समास न होवे सो जो (सुप्, सुपा) इन दोनों की अनुवृत्ति चली आतीहै तब तो तिङ्उपपद का समास प्राप्त ही नहीं फिर निषेधार्थ करना व्यर्थ हुआ इस लिये ऐसा ज्ञापक होना चाहिये कि असुबन्त के साथ असुबन्त का भी समास होता है तब तो अतिङ्ग्रहण सार्थक होता है इस लिये यह प० ॥

६६—गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः ॥ अ० ॥ ४ । १ । ४८ ॥

गति, कारक और उपपद इन का कृदन्त के साथ सु आदि की उत्पत्ति से पहिले ही समास हो जाता है । यहां केवल सुप्रहित कृदन्त के साथ समास हुआ तो अतिङ् ग्रहण सार्थक होने से स्वार्थ में चरितार्थ हो गया । और अन्यत्र फल यह है कि गति, (सांकूटिनम्) यहां जो तद्धितोत्पत्ति से पहिले सम् और कूटिन् सुबन्तों का समास करके पीछे तद्धित उत्पन्न किया चाहें तो तद्धितोत्पत्ति की विवक्षा में कूटिन् शब्द की पृथक् पदसंज्ञा रहने से सम् शब्द की वृद्धि नहीं हो सकती । और जब सुप्रहित केवल कूटिन् कृदन्त के साथ समास होता है तब समाससमुदाय की एक पद संज्ञा हो कर तद्धितोत्पत्ति होने से सम् को वृद्धि हो जाता है । कारक, (या वस्त्रेण क्रीयते सा वस्त्रक्रीती, अश्वक्रीती) इत्यादि शब्दों में केवल क्रीत कृदन्त के साथ वस्त्र आदि शब्दों का समास हो कर करण पूर्व क्रीतान्त प्रातिपदिक से (ङीष्) प्रत्यय हो जाता है । और जो सुबन्त के साथ ही समास नियम रहे तो समास की विवक्षा में ही अन्तरङ्ग होने से अकारान्त

क्रीत शब्द से टाप् होजावे पुनः अकारान्त हो जाने से अकारान्त से विहित ङीष् प्रत्यय नहीं होवे तो (दत्तक्रीती) आदि प्रयोग भी सिद्ध न हो सकें। उपपद, (माषवापिणी, व्रीहिवापिणी) यहां प्रातिपदिकान्त नकार को णत्व होता है। सो जो सुबन्तों का ही समास करें तो समास की विवक्षा में ही नकारान्त (वापिन्) शब्द से ङीप् हो कर पीछे समास हो तब उस ङीबन्त (माषवापिनी) समुदाय की प्रातिपदिक संज्ञा होवे तो प्रातिपदिकान्त ईकार के होने से फिर णत्व नहीं हो सके। और जब केवल कृदन्त वापिन् शब्द के साथ समास होता है तब केवल माषवापिन् नकारान्त शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा हो कर ङीप् होता है तो प्रातिपदिकान्त नकार को णत्व हो जाता है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं॥ ६६॥

(उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः) इस सूत्र में उगित् धातु के निषेध का यही प्रयोजन है कि (उखास्रत्, पर्णध्वत्) इत्यादि में नुम् आगम न हो सो यह प्रयोजन तो (अञ्चु) धातु के ग्रहण से निकल जाता कि (उगित्) धातु को (नुम्) आगम हो तो अञ्चु ही को हो इस नियम से अन्य उगित् धातु को नुम् होता ही नहीं फिर अधातु ग्रहण व्यर्थ हुआ। इस के व्यर्थ होने रूपज्ञापक से यह परिभाषा निकली है॥

६७—सांप्रतिकाऽभावे भूतपूर्वगतिः॥

जो पदार्थ वर्त्तमान काल में अपनी प्रथमावस्था से पृथक् हो गया हो तो उसी पूर्वावस्था के सम्बन्ध से उस को वर्त्तमान में भी कार्य्य हों जैसे (गोमन्तमिच्छति,-गोमत्यति, गोमत्यतेः क्विप्, गोमान्) यहां प्रथम तो गोमान् प्रातिपदिक है पीछे उस से क्यच् हुआ तो धातु संज्ञा हुई फिर क्यच् प्रत्ययान्त से क्विप् होने से धातु संज्ञा उस की बनी रही। सो पूर्व रही प्रातिपदिक संज्ञा के स्मरण से पीछे धातुसंज्ञा के बने रहते भी (नुम्) होता है अर्थात् अधातु निषेध नहीं लगता इस से अधातु निषेध भी सार्थक रहा। तथा (आत्मनः कुमारीमिच्छति, कुमारीयति, कुमारीयतेः कर्त्तरि क्विप्, कुमारी ब्राह्मणः, तस्मै कुमार्य्यै * ब्राह्मणाय) यहां कुमारी शब्द प्रथमावस्था में स्त्रीलिंग ईकारान्त है तब तो स्त्र्याख्य ईकारान्त नदी संज्ञा सिद्ध है पीछे जब पुल्लिङ्गवाची हो गया तब भी पूर्वावस्था के भूतपूर्व स्त्रीत्व को लेकर नदी संज्ञा हो के नदीसंज्ञा के कार्य्य भी होते हैं। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं॥ ६७॥

* यहां भूतपूर्वगति परिभाषा के मानने से कार्य्य भी चल जाता तथा अन्यत्र भी सब काम चलता है फिर [illegible]। इत्यादि प्रयोगसिद्धि के लिये नदीसंज्ञा में (प्रथमलिङ्गग्रहणञ्च) इस वार्त्तिक का भी कुछ प्रयोजन नहीं रहा क्यों कि इस परिभाषा के होने से सब काम निकल जाते हैं। वार्त्तिक एकदेशी और परिभाषा सर्वदेशी है॥

बहुव्रीहिसमास में अन्य पदार्थ प्रधान होता है अर्थात् जिन दो वा अधिकपदों का समास किया जावे उन पदों से पृथक् पद वाच्य अन्य पदार्थ कहाता है जैसे (चित्रा गावो यस्य स चित्रगुः,शवलगुः) यहां गौओं का विशेषण (चित्रगुण) और गौ इन दोनों पदों से भिन्न इन का स्वामी (चित्रगु) कहाता है इसी प्रकार (सर्व आदिर्येषां तानि सर्वादीनि) यहां सर्व और आदि दोनों शब्द से पृथक् अन्यपदार्थ लिया जावे तो सर्वशब्द की सर्वनाम संज्ञा नहीं हो सके इसलिये यह परिभाषा है॥

६८-भवति हि बहुव्रीहौ तद्गुणसंविज्ञानमपि* ॥अ०।१।१।२७॥

बहुव्रीहि दो प्रकार का होता है एक (तद्गुणसंविज्ञान) और दूसरा (अतद्गुण संविज्ञान) तद्गुण संविज्ञान उस को कहते हैं कि जहां उस अन्य पदार्थ के साथ उस के निज गुणों का समवाय सम्बन्ध हो जैसे (लम्बकर्णः, तुङ्गनासिकः, दीर्घबाहुः, लूनकेशनखश्मश्रुः) इत्यादि में अन्य पदार्थ का बोध काल आदि के सहित होता है। अतद्गुणसंविज्ञान वह है कि जिन पदों का समास किया जावे उन से अन्य पदार्थ का पृथक् सम्बन्ध बना रहे कि जैसे (चित्रगु) शब्द में दिखा दिया है। इस से सर्वादि में भी तद्गुणसंविज्ञान मान के सर्व शब्द को भी सर्वनाम संज्ञा हो जाती है। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिये ॥ ६८ ॥

जहां समास को अन्तोदात्त स्वर कहा है वहां (ब्राह्मणसमित्, राजदृषत्) इत्यादि प्रयोगों के अन्त में तकार है तो विधान सामर्थ्य से उस व्यञ्जन को ही उदात्त हो जाना चाहिये इत्यादि सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परि० ॥

६९-हल्स्वरप्राप्तौ व्यञ्जनमविद्यमानवद्भवति† ॥अ०।६।१।२२३॥

व्यञ्जन को उदात्तादि स्वर प्राप्त हो तो वह व्यञ्जन अविद्यमानवत् होता है इस से (ब्राह्मणसमित्) आदि प्रयोगों में अन्त्य तकार को अविद्यमानवत् मान के इकार

* इस परिभाषा के आगे नागेश ने (चानुकृष्टं नोत्तरत्र) यह परिभाषा लिखी है सो ठीक नहीं क्यों कि उस का मूल कहीं महाभाष्य से वा सूत्रों से नहीं निकलता। और न कोई उदाहरण मुख्य प्रयोजन का दिया।

† इस परिभाषा को नागेश भट्ट तथा अन्य लोग भी महाभाष्य से विरुद्ध लिखते पढ़ते हैं कि (स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवत्) ऐसा पाठ करने में महाभाष्यकार ने ये दोष भी दिखाये हैं कि उदात्तादि स्वरों के विधान मात्र में जो व्यञ्जन अविद्यमानवत् माना जावे तो (विद्युत्वान् वलाहकः) यहां विद्युत् के तकार को अविद्यमान मानें तो ह्रस्व से परे मतुप् को उदात्त स्वर (ह्रस्वनुड्भ्यां०) सूत्र से प्राप्त है० इत्यादि अनेक दोष आवेंगे। और (हल्स्वरप्राप्तौ०) इस प्रकार की परिभाषा में कोई दोष नहीं आता इस लिये नागेश आदि का मानना ठीक नहीं है ॥

को उदात्त होजाता है । इस का ज्ञापक (यतोऽनाव:) इस सूत्र में यत् प्रत्ययान्त द्व्यच् प्रातिपदिक को आद्युदात्त कहा है । और (नौ) शब्द का निषेध इसी लिये है कि (नाव्यम्) यहां आद्युदात्त नहो सो जब आदि में नकार है तब स्वर के होने से आद्युदात्त प्राप्त ही नहीं फिर निषेध करने से यही प्रयोजन है कि उस नकार का भी स्वर प्राप्त होता है सो अविद्यमानवत् मान के आकार को होजाता इस लिये निषेध किया । तथा अनुदात्तादि वा अन्तोदात्त से परे जो कार्य कहे हैं उन में जहां आदि और अन्त में व्यञ्जन हैं वहां उन कार्यों की प्राप्ति नहीं होगी वहां भी अविद्यमानवत् मान कर काम चल जाता है । और जो कदाचित् ऐसा मान लिया जावे कि उदात्तादि गुण व्यंजनों के ही हैं उन के संयोग से अचों के भी धर्म समझे जाते हैं सो नहीं बन सकता क्योंकि व्यंजन के विना भी केवल अचों में उदात्तादि धर्म प्रसिद्ध हैं और अच् के विना व्यंजन का उच्चारण होना भी कठिन है इस लिये उदात्तादि गुण स्वतंत्र व्यंजनों के नहीं होसकते । परन्तु यह बात तो माननी चाहिये कि अच् के संयोग से व्यंजन को भी उदात्तादि गुण प्राप्त हो जाते हैं । जैसे दो रंगे वस्त्रों के बीच एक श्वेत वस्त्र होता वह भी कुछ रंगित प्रतीत होता है ॥ ६८ ॥

(वामदेवाड् ड्यड्ड्यौ) इस सूत्र में ड्यत् और ड्य प्रत्यय ङित् इसी लिये पढ़े हैं कि ङित् के परे वामदेव शब्द के टि भाग का लोप हो जावे सो (यस्येति च) सूत्र से तद्धित के परे भसंज्ञक अवर्ण का लोप हो ही जाता फिर ङित् करण व्यर्थ हो कर इन परिभाषाओं के निकलने में ज्ञापक है ॥

७०—अननुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य ग्रहणम् ॥

७१—तदनुबन्धकग्रहणे नातदनुबन्धकस्य ग्रहणम् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ६ ॥

अनुबन्धरहित प्रयोगों के ग्रहण में अनुबन्धसहितों का ग्रहण नहीं हो सकता अर्थात् जहां यत् प्रत्यय डकार अनुबन्ध से रहित पढ़ा है और ड्यत् में डकार की इत्संज्ञा होकर यत् ही रह जाता है जहां यत् और य प्रत्यय का ग्रहण किया है वहां (ड्यत्, ड्य) प्रत्यय का ग्रहण न हो । और जिस अनुबन्ध से जो प्रत्यय पढ़ा है उस में द्वितीय अननुबन्ध के सहित प्रत्यय का ग्रहण न हो अर्थात् यत् कहने से ण्यत् भङ् कहने से चङ् और अच् कहने से णच् का ग्रहण न हो इस से यह

आया कि (ययतोश्चातदर्थे) इस स्वरविधायक सूत्र में नञ् से परे (य, यत्) प्रत्ययान्त को अन्तोदात्त स्वर होता है सो जो (ञ्यत्, ञ्य) का भी ग्रहण होवे तो (अवामदेव्यम्) यहां भी अन्तोदात्त स्वर होजावे और पूर्वपद प्रकृतिस्वर इष्ट है इस लिये ञित् ग्रहण का सार्थक होना स्वार्थ में चरितार्थ और अङ् के परे जो गुणआदि कार्य कहा है सो चङ् के परे नहीं होता और चङ् के परे जो द्वित्वादि कार्य कहा है सो अङ् के परे नहीं होता इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७० ॥ ७१॥

(णचः स्त्रियामञ्) यहां णच् प्रत्ययान्त से स्वार्थ में अञ् प्रत्यय कहा है सो (कर्म्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्) इस सूत्र से णच् प्रत्यय तो स्त्रीलिंग में ही विधान है फिर स्वार्थ में णच् प्रत्ययान्त से अञ् कहने से स्त्रीलिंग ही हो जाता क्यों कि स्वार्थिक प्रत्ययों के होने में प्रकृति के लिङ्ग और वचन की अनुवृत्ति होती है फिर स्त्रीग्रहण व्यर्थ हुआ इस लिये यह परिभाषा है ॥

७२-क्वचित्स्वार्थिका अपि प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्त्तन्ते॥

अ० ॥ ५ । ३ । ६८ ॥

कहीं २ स्वार्थिक प्रत्यय भी प्रकृति के लिङ्ग वचनों को छोड़ देते हैं । जब प्रकृति के लिङ्ग वचन स्वार्थ प्रत्ययोत्पत्ति में सर्वत्र नहीं बने रहते तो (णचः स्त्रियामञ्) सूत्र में स्त्री ग्रहण सार्थक हो गया । तथा (अप्कल्पम्) यहां नियत स्त्रीलिङ्ग बहुवचनान्त अप् शब्द से कल्पप् प्रत्यय स्वार्थ में हुआ है सो अपने लिङ्ग वचन छोड़ के नपुंसकलिङ्ग एकवचन रह जाता है तथा (गुड़कल्पाद्राक्षा, पयस्कल्पा यवागूः) यहां गुडपुंल्लिङ्ग और पयः नपुंसकलिङ्ग से कल्पप् प्रत्यय होकर स्त्रीलिङ्ग हो जाता है । और क्वचित् कहने से यह प्रयोजन है कि(बहुगुडो द्राक्षा, बहुपयो यवागूः) इत्यादि में प्रकृति के अनुकूल ही लिङ्ग वचन रहते हैं इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७२ ॥

(प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे) इस सूत्र के अंश्वादिगण में राजन् शब्द पढ़ा है तो उस का यही प्रयोजन है कि प्रति से परे तत्पुरुष समास में राजन् शब्द अन्तोदात्त हो जावे सो जब प्रतिपूर्वक राजन् शब्द से तत्पुरुष समास में समासान्त टच् प्रत्यय प्राप्त है तब तो चित् होने से अन्तोदात्त हो ही जाता फिर राजन् शब्द का पाठ व्यर्थ हुआ इस लिये यह परिभाषा है ॥

७३—विभाषा समासान्तो भवति* ॥ अ० ॥ ६ । २ । १९७ ॥

समासान्त सब प्रत्यय विकल्प करके होते हैं तो प्रतिपूर्वक राजन् शब्द से जिस पक्ष में समासान्त टच् न हुआ वहां (प्रतिराजा) में भी अन्तोदात्त हो जावे इस लिये राजन् शब्द का अश्वादिगण में पढ़ना सार्थक हो गया । तथा (द्वित्रिभ्यां पाद्दन्) इस सूत्र से भी बहुव्रीहिसमास में द्वित्रिपूर्वक मूर्द्ध शब्द को अन्तोदात्त स्वर कहा है सो यहां भी द्वित्रिपूर्वक मूर्द्ध से जब समासान्त ष प्रत्यय विधान है तो प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त सिद्ध ही है फिर मूर्द्धन् शब्द का ग्रहण इसी लिये है कि समासान्त प्रत्यय विकल्प होते हैं सो जिस पक्ष में समासान्त नहीं होता (द्विमूर्द्धा,त्रिमूर्द्धा) यहां भी अन्तोदात्त स्वर हो जावे । इत्यादि प्रयोजनों के लिये यह परिभाषा है ॥ ७३ ॥

(शतानि, सहस्राणि) यहां जब सर्वनामस्थान शि को मान के नुम् आगम होता है तब (शतन्, सहस्रन्)शब्दों के नकारान्त हो जाने से (ष्णान्ताषट्) सूत्र से षट्संज्ञा होजावे तो(षड्भ्यो लुक्) सूत्र से शि का लुक् होना चाहिये इत्यादि समाधान के लिये यह परिभाषा है ॥

७४—सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य ॥ अ० ॥ १ । १ । ३९ ॥

जो एक के आश्रय से दूसरे का सम्बन्ध होना है वह सन्निपात कहाता है उसी सन्निपातसंबन्ध का जो निमित्त हो ऐसा जो विधि कार्य है वह उस अपने निमित्त के बिगाड़ने को अनिमित्त अर्थात् असमर्थ होता है । यहां शत,सहस्र शब्द से जस् आकर शि आदेश हुआ अब शि के आश्रय से शत शब्द को नुम् हो कर शतनान्त हुआ अब जिस के आश्रय से शत को नान्तत्व गुण मिला उस नान्त गुण से उसी का विघात करे यह ठीक नहीं इस से (शतानि, सहस्राणि) आदि में शि का लुक् नहीं होता तथा (इयेष,उवोष) यहां णल् प्रत्यय के आश्रय से (इष, उष) धातु को गुण होता है गुण होने से इजादि मान कर आम् प्राप्त है और

* इस परिभाषा को नागेश भट्ट ने (समासान्तविधिरनित्यः) ऐसा लिखा है सो महाभाष्य से विरुद्ध है क्यों कि अनित्य और विभाषा में बहुत भेद है अनित्य उस को कहते हैं कि जो कभी हो और कभी न हो और विकल्प के दो पक्ष सदा बने रहते हैं और इस परिभाषा की भूमिका में (सुपथी नगरी) यह महाभाष्य का उदाहरण करके रक्खा है कि पथिन् शब्द से (इनः स्त्रियाम्) सूत्र से समासान्त कप् नहीं हुआ तो समासान्त अनित्य है । सो यह नहीं विचारा कि (न पूजनात्) सूत्र से (सुपथी नगरी) आदि जब में पूजनवाची समास से समासान्त का निषेध सिद्ध है जब कप् प्राप्त ही नहीं तो समासान्तविधि के अनित्य होने से (सुपथी नगरी) यह प्रयोग कब समर्थ हो सकता है । देखो व्याकरण में नागेश की कितनी बड़ी भूल है ॥

आम् के होजाने से उस से परे लुक् कहा है तो उसी णल् का विघात हो कि जिस के आश्रय से इष उष इजादि हुए हैं इत्यादि इस के अनेक प्रयोजन हैं। और लोक के साथ भी इस परिभाषा का सम्बन्ध है कि जो पुरुष जिस धनाढ्य के धन से स्वयंधनवान् हुआ हो वह उसी धन से धनाढ्य का विघात करे यह बहुत विरुद्ध है अर्थात् ऐसा कभी न होना चाहिये कि जिस के संग से जो सामर्थ्य प्राप्त हो उस सामर्थ्य से उसी को नष्ट करे ॥ ७४ ॥

(पञ्चेन्द्राण्यो देवता अस्य स पञ्चेन्द्रः स्थालीपाकः) पञ्चेन्द्राणी शब्द से देवता अर्थ में विहित अण् प्रत्यय का (द्विगोर्लुगनपत्ये) सूत्र से लुक् हो कर (लुक्तद्धितलुकि) सूत्र से ईकार स्त्रीप्रत्यय का भी लुक् हो जाता है। तब ङीष् के संयोग से आया जो आनुक् आगम उस का लुक् विधान किसी सूत्र सेनहीं किया सो उस आनुक् का श्रवण होतो (पञ्चेन्द्रः) आदि शब्द सिद्ध नहीं होसकें इस लिये यह परिभाषा है ॥

७५—संनियोगशिष्टानामन्यतराऽभावे उभयोरप्यभावः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १५३ ॥

जिस कार्य के होने में एक साथ दो का नियम हुआ हो उन में से जब एक का अभाव होजावे तब दूसरे का अपने आप अभाव होजाता है। जैसा किसी कार्य का नियम है कि देवदत्त यज्ञदत्त दोनों मिल के इस काम को करें सो जो देवदत्त न रहे तो यज्ञदत्त उस कार्य से स्वयं निवृत्त हो जाता है। इसी प्रकार यहां भी इन्द्र शब्द से स्त्रीत्व रूप कार्य की विवक्षा को ङीष् और आनुक् दोनों पूरी करते हैं सो जब ङीष् का अभाव होता है तब आनुक् भी वहां से निवृत्त हो जाता है। तथा (पञ्चाग्नाय्यो देवता अस्य स पञ्चाग्निः)। यहां स्त्री प्रत्यय का लुक् होने के के पश्चात् ऐकार आगम की भी निवृत्ति होजाती है। इस परिभाषा का ज्ञापक यह है कि (बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक्) इस सूत्र में बिल्वकादि से परे छ प्रत्यय का लुक् कहा है और उसी छ प्रत्यय के संयोग से बिल्वादि शब्दों को कुक् होता है। सो बिल्वादिशब्दों से छ का लुक् कह देते तो कुक् आगम की भी निवृत्ति होजाती। इस लिये बिल्वादि शब्दों को कुक् आगम के सहित पढ़ उन से परे छ प्रत्यय मात्र का लुक् कहा है। इस से सिद्ध हुआ कि आगमी की निवृत्ति में आगम की निवृत्ति होजाती है। तब सत कुगागम बिल्वकादि से छ प्रत्यय का लुक् कहा है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७५ ॥

तदनुबन्धकग्रहणे० इस पूर्व लिखित परिभाषा के अनुकूल अण् प्रत्यय के आश्रय कार्य है वह ण प्रत्यय को प्राप्त न होना चाहिये तो (कार्मस्ताच्छील्ये) इस सूत्र का यही प्रयोजन है कि ताच्छील्य अर्थ में ण प्रत्यय परे हो तो कर्मन् शब्द के टि भाग का लोप हो सो (नस्तद्धिते) सूत्र से नान्त भ संज्ञक अङ्ग के टि का लोप सिद्ध ही है तो ताच्छील्य अर्थ में (कार्मः) प्रयोग बन ही जाता फिर यह सूत्र व्यर्थ हो कर इस परिभाषा का ज्ञापक है ॥

७६—ताच्छीलिके णेऽण्कृतानि भवन्ति ॥ अ० ॥ ६। ४। १७२॥

तच्छील अर्थ में विहित ण प्रत्यय के परे अण् प्रत्ययाश्रित कार्य भी होते हैं इस से यह आया कि (अन्) सूत्र से अण् प्रत्यय के परे अन्नन्त को प्रकृतिभाव कहा है सो ताच्छील्य अर्थ में ण प्रत्यय के परे अन्नन्त कर्मन् शब्द को भी प्राप्त था इस लिये (कार्मस्ताच्छील्ये) सूत्र में टि लोप निपातन सार्थक हो गया यह स्वार्थ में चरितार्थ है । अन्यत्र फल यह है कि (चुरा शीलमस्याः सा चौरी, तपः शीलमस्याः सा तापसी) इत्यादि प्रयोगों में ताच्छीलिक णप्रत्ययान्त से (टिड्ढाणञ्०) सूत्र से अणन्त से कहा ङीप् हो जाता है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७६ ॥

(दाण्डिनाय०) इस सूत्र में भ्रौणहत्य शब्द निपातन किया है उस से यही प्रयोजन है कि (भ्रूणघ्नो भावः भ्रौणहत्यम्) यहां निपातन से तकारादेश हो जावे सो जो (हनस्तोऽचिण्णलोः) सूत्र से ष्यञ् प्रत्यय के परे हन के नकार को तकारादेश हो जाता तो फिर निपातन करना व्यर्थ है इस लिये यह परिभाषा है ॥

७७—धातोः कार्यमुच्यमानं तत्प्रत्यये भवति ॥ अ० ॥ ७।३।१४ ॥

जो धातु को कार्य कहा है वह उसी धातु से विहित प्रत्यय के परे हो अर्थात् धातु को कार्य प्रातिपदिक से विहित तद्धित के परे न हो । इस से हन् धातु को कहा तकारादेश भ्रौणहत्य में प्रातिपदिक से विहित तद्धित ष्यञ् के परे नहीं हो सकता । इसलिये भ्रौणहत्य में तकारादेश निपातन करना सार्थक हुआ और अन्यत्र फल यह है कि (भ्रौणघ्नः) यहां अण् प्रत्यय के परे तकारादेश नहीं होता तथा (कंसपरिमृड्भ्याम्) यहां प्रातिपदिक से विहित विभक्ति के परे मृज धातु को कही वृद्धि नहीं होती (रज्जुसृड्भ्याम्, देवदृग्भ्याम्) यहां झलादि अकित् विभक्ति के परे सृज धातु को अम् आगम नहीं होता । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७७ ॥

(सर्वके, विश्वके, उच्चकैः, नीचकैः) यहां सर्वनाम और अव्यय संज्ञा नहीं होनी चाहिये क्योंकि सर्वादि में सर्व विश्व शब्द और अव्ययों में उच्चैस् नीचैस् शब्द पढे हैं

सो जब शब्द के स्वरूप का ग्रहण होता है तो उक्त शब्दों की सर्वनाम और अव्यय संज्ञा कैसे होगी और संज्ञा के विना सर्वनाम और अव्यय के कार्य भी नहीं हो सकते इसलिये यह परिभाषा है ॥

७८—तदेकदेशभूतस्तद्ग्रहणेन गृह्यते ॥ अ० ॥ १ । १ । ७२ ॥

किसी के एकदेश में कोई अन्य आजावे तो वह उसी के ग्रहण से ग्रहण किया जाता है इस से यहां सर्व आदि शब्दों के मध्य में अकच् प्रत्यय आगया वह उसी के ग्रहण से ग्रहण किया गया तो सर्वनाम संज्ञा होगई । इसी प्रकार (उच्चकैः) आदि में अव्यय संज्ञा होना जानो । तथा (अहं पठामकि) यहां अतिङ् से परे तिङ्पद अनुदात्त भी हो जाता है । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७८ ॥

(गातिस्थाघुपा०) इस सूत्र में गाति निर्देश से तो अदादि के इण् धातु का ग्रहण होना ठीक है । परन्तु पा धातु के ग्रहण में संदेह है कि अलुक् विकरण भ्वादि और लुक् विकरण अदादि इन दोनों में से किस का ग्रहण किया जावे सो जो अदादि के पा धातु का भी ग्रहण होतो (अपासीदनम्) यहां भी सिच् का लुक् हो जाना चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

७९—लुग्विकरणालुग्विकरणयोरलुग्विकरणस्यैव ग्रहणम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४४ ॥

लुग्विकरण और अलुग्विकरण के ग्रहण में जहां संदेह पड़े वहां अलुग्विकरण का ही ग्रहण होना चाहिये इस से उक्त (गातिस्था०) सूत्र में (पा पाने) अलुग्विकरण धातु का ग्रहण हो जाता है । और लुग्विकरण (पा रक्षणे) का ग्रहण नहीं होता। इस का ज्ञापक यह है कि (स्वरतिसूतिसूयति) इस सूत्र में (सूति, सूयति) दोनों के स्थान में सूङ् पढते तो इन्हीं दोनों का ग्रहण हो जाता क्योंकि ये हो दोनों सूङ् हैं तीसरा नहीं परन्तु सूति लुग्विकरण अदादि और सूयति अलुग्विकरण दिवादि का है । इस से यही आया कि सामान्य सूङ् के पढ़ने से अलुग् विकरण सूयति का ग्रहण होता और सूति का नहीं होता इस लिये पृथक् २ दोनों का निर्देश किया है इत्यादि इस के अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७९ ॥

(ह्रेरचङि) इस सूत्र में अभ्यास से परे हि धातु के हकार को कुत्व कहा है परन्तु वह कुत्व चङ् में नहीं सो चङ् णिजन्त से होता है उस चङ् के परे हि की अङ्गसंज्ञा ही नहीं किन्तु णिच् के सहित और णिच् के परे हि की अंग संज्ञा है और

अंगाधिकार में अंग को कार्य का विधान वा निषेध होता है इस चङ् के परे कुत्व प्राप्त ही नहीं फिर निषेध क्यों किया इस लिये यह परिभाषा है ॥

८०—प्रकृतिग्रहणे ण्यधिकस्यापि कुत्वं भवति ॥ अ० ॥७।३।५६॥

कुत्वप्रकरण में जहां मूलप्रकृति का ग्रहण है वहां णिच्सहित प्रकृति का भी ग्रहण हो जावे। इस से चङ् के परे निषेध सार्थक होगया और अन्यत्र फल यह है कि (प्रजिघाययिषति) यहां णिजन्त हि धातु को सन् प्रत्यय के परे कुत्व हो जाता है इत्यादि प्रयोजन हैं ॥ ८० ॥

(ज्यादादीयसः) इस सूत्र में जो ज्य से परे ईयसुन् प्रत्यय को आकारादेश न कहते तो भी लोप की अनुवृत्ति आकर पर के आदि ईकार का लोप हो कर अकृत् यकारादि प्रत्यय के परे ज्य को दीर्घ होके (ज्यायान्) प्रयोग सिद्ध होही जावेगा फिर आकारादेश विधान व्यर्थ होने से यह परिभाषा है ॥

८१—असकृत्प्रवृत्तिपुनर्वृत्तावविधिः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १६० ॥

अंगाधिकार में कोई कार्य निष्पन्न हो गया होतो फिर दूसरे कार्य में प्रवृत्ति न होवे। इस से यह आया कि अंगाधिकार के एक ईयसुन्लोप कार्य होने में फिर द्वितीय कार्य दीर्घ नहीं हो सकता इस लिये पूर्वोक्त (ज्यादादीयसः) सूत्र में आकारादेश सार्थक होगया तथा (रीङ् ऋतः) यहां जो दीर्घ रीङ् न कहते तो भी (मात्रीयति) आदि में अकृत् यकारादि प्रत्यय के परे दीर्घ हो जाता फिर दीर्घ रीङ् ग्रहण का यही प्रयोजन है कि रिङ् किये पीछे दीर्घ नहीं होसकता इस लिये दीर्घ रीङ् पढ़ना चाहिये। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८१ ॥

(परमात्मानं नमस्करोति नमस्यति वा) इत्यादि प्रयोगों में नमः शब्द के योग में चतुर्थी विभक्ति (नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च) इस सूत्र से होनी चाहिये सो इस समाधान के लिये यह परिभाषा है ॥

८२—उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी ॥ अ० ॥ २।३।१९ ॥

उपपदविभक्ति से कारकविभक्ति बलवान् होती है। उपपदविभक्ति वह कहाती है कि जहां कर्मादि कारक व्यवस्था से किसी नियत विभक्ति का नियम न किया हो और जहां कर्मादि कारक व्यवस्था से नियत विभक्ति होती है उस को कारकविभक्ति कहते हैं सो (परमात्मने नमः, गुरवे नमः) इत्यादि में तो उपपदविभक्ति चतुर्थी हो जाती और (परमात्मानं नमस्करोति) इत्यादि में उपपदविभक्ति

को बाध के कारकविभक्ति हो जाती है। तथा (गाः स्वामी व्रजति) यहां स्वामी शब्द के योग में उपपदविभक्ति षष्ठी सप्तमी (स्वामीश्वराधिपति०) इस सूत्र से प्राप्त है परन्तु व्रजति क्रिया में गौओं को कर्मत्व होने से द्वितीयाविभक्ति हो जाती है। इत्यादि ॥ ८२ ॥

(मिमार्जिषति) यहां (मृज्+सन्+तिप्=) इस अवस्था में बहुपेक्ष वृद्धि की अपेक्षा में अल्पापेक्ष अन्तरङ्ग होने से द्वित्व हो कर परत्व से अभ्यास कार्य होके (मिमृज्+सन्×तिप्=) इस अवस्था में इकार ऋकार दोनों को वृद्धि प्राप्त है सो जो अभ्यास को भी वृद्धि हो जावे तो ह्रस्व का अपवाद होने से फिर ह्रस्व नहीं हो सकता तो (मिमार्जिषति) आदि प्रयोग भी सिद्ध नहीं हो सकते इस लिये यह परि०॥

८३—अनन्त्यविकारेऽन्त्यसदेशस्य कार्यं भवति ॥अ०।६।१।१३॥

जहां अनन्त्य और अन्त्य वर्ण के समीपस्थ दोनों वर्ण को जो कार्य प्राप्त हो वहां अन्त्य के समीपस्थ वर्ण को कार्य होना चाहिये और दूरस्थ व्यवहित पूर्व वर्ण को नहीं होवे इस से मिमार्जिषति में अभ्यास को वृद्धि नहीं होती तथा (अदोऽञ्चति, अदमुयङ्) यहां क्विप् प्रत्ययान्त अञ्चु धातु के परे अदस् शब्द के टि भाग को अद्रि आदेश हो कर (अदद्र्यङ्) इस अवस्था में (अदसोऽसेर्दादु दो मः) इस सूत्र से दोनों दकारों से परे उ और दकारों को मकार प्राप्त है सो इस परिभाषा से अन्त्य को होता है अनन्त्य पूर्व को नहीं इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८३ ॥

(देहि, धेहि) इत्यादि प्रयोगों में जो अभ्यास का लोप होता है सो अलोन्त्यविधि मान के अन्त्य अल् का लोप होवे तो (देहि,धेहि) आदि प्रयोग सिद्ध नहीं होसक्ते इस लिये यह परिभाषा है ॥

८४—नानर्थकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे ॥अ०॥ १।१।६५॥

अनर्थक शब्द को कहा कार्य अन्त्य अल् को न हो परन्तु अभ्यास विकार को छोड़ के धातु को जो द्वित्व किया जाता है उस में एक भाग अनर्थक और दोनों भाग सार्थक होते हैं क्यों कि वहां शब्दाधिक्य होने से अर्थाधिक्य नहीं हो जाता इस से अनर्थक अभ्यास का लोप अन्त्य अल् को न हुआ तो (देहि, धेहि) आदि प्रयोग सिद्ध हो गये। तथा (अव्यक्तानुकरणस्यात इतौ) इस में अत् भाग को कहा पर रूप इस परिभाषा के आश्रय से अन्त्य अल् को नहीं होता (घटत्+इति= घटिति, पटिति) इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८४ ॥

जैसे (ब्राह्मणश्च, ब्राह्मणी च ब्राह्मणौ वत्सश्च वत्सा च वत्सौ) यहां स्त्री वाचक शब्द के साथ पुरुषवाची शब्द एक शेष रह जाता है वैसे (ब्राह्मणवत्साच) च ब्राह्मणीवत्सश्च । यहां भी एक शेष होना चाहिये इस लिये यह परिभाषा है॥

८५—प्रधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्यसम्प्रत्ययः॥

जहां प्रधान और अप्रधान दोनों में कार्य प्राप्त हो वहां प्रधान में कार्य होना निश्चित रहे अप्रधान में नहीं (ब्राह्मणवत्सा च ब्राह्मणीवत्सश्च) यहां स्त्रीत्व और पुंस्त्व स्वार्थ में अप्रधान और स्वस्वामिसम्बन्ध में प्रधान हैं इस लिये एक शेष नहीं होता इत्यादि। तथा लोक में भी और किसी ने किसी से पूछा कि यह कौन जाता है उसने उत्तर दिया कि राजा यद्यपि राजा के साथ सेनादि सब थे तथापि प्रधान राजा का ग्रहण होता और दो मनुष्यों का देवदत्त नाम हो तो उन में जो प्रधान होता है उसी से व्यवहाहार किया जाता है॥ ८५॥

स्वस्रादि गण में मातृ शब्द पढ़ा है उस से ङीप् प्रत्यय का निषेध किया है सो जननी वाचक है और परिमाण अर्थात् तोलन करने वाली सामान्य स्त्री को भी मातृ कहते हैं सो दोनों का निषेध हो वा किसी एक का इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है॥

८६—अवयवप्रसिद्धेः समुदायप्रसिद्धिर्बलीयसी॥

अवयव की प्रसिद्धि से समुदाय की प्रसिद्धि बलवान् होती है। अवयव की प्रवृत्ति थोड़े अंश में और समुदाय की प्रवृत्ति बहुत अंश में होती है। इस कारण जननी वाचक मातृ शब्द के रूढि होने से अवयव मान कर स्वस्रादिगण से ङीप् का निषेध होजाता है और परिमाण कर्तृवाचक मातृ शब्द के यौगिक होने से समुदायवाची मान कर स्वस्रादि गण से ङीप् का निषेध नहीं होता अर्थात् परिमाणवाचक मातृ पुरुष हो तो (माता, मातारौ, मातारः) और स्त्री हो तो (मात्री, मात्र्यौ, मात्र्यः) ऐसे प्रयोग होंगे इस परिभाषा के इत्यादि प्रयोजन हैं॥ ८६॥

(अचि विभाषा) इस सूत्र में गॄ धातु के रेफ को लकारादेश होता है। सो जहां कण्ठवाची गल शब्द है वहां भी लत्व का विकल्प होता गर शब्द भी कण्ठवाचक होजावे सो नियम से विरुद्ध है क्योंकि गर शब्द केवल विष का वाची और गल शब्द कण्ठ वाची है इन दोनों के अर्थ में लत्व के विकल्प से व्यभिचार होजाना चाहिये इस के समाधान के लिये यह परिभाषा है॥

८७—व्यवस्थितविभाषयाऽपि कार्याणि क्रियन्ते ॥

व्यवस्थित विभाषा से भी कार्य किये जाते हैं। व्यवस्थित विभाषा उस को कहते हैं कि जिस कार्य का विकल्प किया हो वही कार्य किसी नियतार्थवाचक शिष्टप्रयुक्त शब्द में नित्य होजावे और किसी में होही नहीं और जहां सब प्रयोगों में उस कार्य का होना न होना दोनों भेद रहें तो उस को अव्यवस्थित विभाषा कहते हैं इस से कण्ठवाची गल शब्द में नित्य लत्व हो जाता है इस के उदाहरणों की कारिका महाभाष्य की यह है कि:—

देवत्रातो गलो ग्राह इतियोगे च सद्विधिः ।
मिथस्ते न विभाष्यन्ते गवाक्षः संशितव्रतः ॥ १ ॥

(देवश्चासौ त्रातो देवत्रातः) यहां संज्ञावाचक त्रात शब्द में (नुदविदोन्दत्रा०) इस सूत्र से निष्ठा के तकार को नकार नित्य हो नहीं होता और क्रियावाचक में तो (त्राणम्, त्रातम्) दोनों होते हैं। गल शब्द का लिख दिया। सामान्य यौगिकवाची (गरः,गलः) दोनों हो होते हैं (विभाषा ग्रहः) इस सूत्र से ग्रह धातु से ण प्रत्यय होकर (ग्राहः) प्रयोग बनता है सो यह जल जन्तु की संज्ञा है इस में नित्य ण हो जाता है। और जहां नक्षत्र आदि लोकवाची में ग्रह शब्द अच् प्रत्ययान्त होगा वहां ण नहीं होता तथा (इति) शब्द के योग में सत् संज्ञक (शतृ, शानच्) प्रत्यय विकल्प से प्राप्त भी हैं जैसे (हन्तीति पलायते, वर्षतीति धावति) यहां प्रथमासमानाधिकरण में व्यवस्थितविभाषा मान कर नित्य नहीं होते (गवाक्षः) यह झरोखा की संज्ञा है यहां गो शब्द को अवङ् आदेश विकल्प से प्राप्त है सो नित्यही हो जाता है। और जहां गौ के अक्ष नेत्र का नाम होगा वहां (गवाक्षम्, गोअक्षम्, गोऽक्षम्) ये तीन प्रयोग होजावेंगे और (संशितव्रतः) यहां (शाच्छोरन्यतरस्याम्) इस सूत्र से तादि कित् के परे शो धातु को विकल्प से प्राप्त इकारादेश नित्य होता है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८७ ॥

(आशंसायां भूतवच्च) इस सूत्र में प्रिय पदार्थ की इच्छा संबन्धी भविष्यत् काल में भूतवत् और वर्त्तमानवत् प्रत्यय कहे हैं अर्थात् भूतकालिक जिस अर्थ में प्रकृति से जो प्रत्यय कहा है वह प्रत्यय उसी अर्थ में उसी प्रकृति से होना चाहिये सो सामान्यभूत में निष्ठा और लुङ् आदि होते हैं और अनद्यतनभूत में लङ् तथा परोक्षानद्यतनभूत में लिट् होता है इस में यह संदेह है कि भूतवत् कहने से सामान्यभूतकालिक प्रत्ययों का अतिदेश होवे वा सामान्य विशेष दोनोंका। इस लिये यह परिभाषा है ॥

८८—सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशः ॥

जहां सामान्य और विशेष दोनों का अतिदेश प्राप्त हो वहां विशेष का अतिदेश नहीं होता। इस से सामान्यभूत के अतिदेश में विशेष भूत में विहित लङ् लिट् का अतिदेश नहीं होता इत्यादि ॥ ८८ ॥

(सनाशंसभिक्ष उः) इस सूत्र में सन् धातु वा सन् प्रत्यय का ग्रहण होना चाहिये इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

८९—प्रत्ययाप्रत्यययोः प्रत्ययस्यैव ग्रहणम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १ ॥

जहां प्रत्यय और अप्रत्यय दोनों का एकस्वरूप होने से ग्रहण हो सकता हो वहां प्रत्यय ही का ग्रहण हो अप्रत्यय का नहीं। इस लिये सन् धातु का ग्रहण नहीं होता किन्तु सन् प्रत्ययान्त से उ प्रत्यय होता है तथा (चिचीषति, तष्टूषति) यहां सन् के परे अजन्त का दीर्घ होता है सो (दधि सनोति, मधु सनोति) यहां सन् धातु के परे दीर्घ नहीं होवे। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८९ ॥

(विपराभ्यां जेः) इस सूत्र में वि परा पूर्वक जि धातु से आत्मनेपद कहा है सो (परा जयति सेना) यहां सेना शब्द के विशेषण परा शब्द से परे भी आत्मनेपद होना चाहिये इस संदेह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

९०—सहचरितासहचरितयोः सहचरितस्यैव ग्रहणम् ॥

सहचारी और असहचारी दोनों का जहां हो सकता हो वहां सहचारी का ही ग्रहण हो। और असहचारी का नहीं (विजयते, पराजयते) यहां आत्मनेपद होगया और (बहुवि जयति वनम्, परा जयति सेना) यहां न हुआ। क्योंकि जहां वि, परा, केवल उपसर्ग हैं वहां हो। यहां बहुविवन का और परा, सेना का विशेषण अर्थात् दोनों अनुपसर्ग हैं वहां आत्मनेपद नहीं होता। वन और सेना के विशेषण में वि और परा शब्द उपसर्ग के सह चारी नहीं है इस कारण वहां आत्मनेपद नहीं हुआ तथा (पंचम्यपाङ्परिभिः) यहां कर्मप्रवचनीय अप आङ् और परि के योग में पंचमी विभक्ति होती है सो वर्जनार्थ अपशब्द के साहचर्य से (वृक्षंपरि विद्योतते विद्युत्) यहां लक्षण अर्थ में पंचमी विभक्ति नहीं होती। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ९० ॥

जैसे (अहो आश्चर्यम्, उताहो इसे) इत्यादि में ओकारान्त निपात की प्रगृह्य संज्ञा हो कर प्रकृतिभाव हो जाता है वैसे (अतिरस्तिरः सम्पद्यत, तिरोऽभवत्) यहां च्विप्रत्ययान्त लाक्षणिक ओकारान्त की निपात संज्ञा होकर प्रगृह्य संज्ञा होजावे तो प्रकृतिभाव होना चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

६१—लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैवग्रहणम्॥ अ०॥१।१।१५॥

लक्षण नाम जो सूत्र से कार्य हो कर बना हो वह लाक्षणिक और जो स्वाभाविक है वह प्रतिपदोक्त कहाता है। उन लाक्षणिक और प्रतिपदोक्त के बीच में जहां संदेह पड़े वहां प्रतिपदोक्त को कार्य हो और लाक्षणिक को नहीं इस से (तिरोऽभवत्) यहां लाक्षणिक ओकारान्त निपात को प्रगृह्य संज्ञा हो कर प्रकृतिभाव नहीं होता। तथा (आशिषा तरति, आशिषिकः) यहां इस भाग के लाक्षणिक होने से (इसुसुक्तान्तात्कः) सूत्र से ठक् प्रत्यय को ककारादेश नहीं होता इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ६१ ॥

इस परिभाषा के होने में ये दोष हैं कि जो (दाधा घ्वदाप्) सूत्र से दाधा को घु संज्ञा होती है सो (देङ्रक्षणे, दाण्वखण्डने, धेट् पाने) आदि को घु संज्ञा नहीं होनी चाहिये क्योंकि (डुदाञ्, डुधाञ्) प्रतिपदोक्त और देङ् आदि लाक्षणिक हैं इस संदेह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

६२—गामादाग्रहणेष्वविशेषः ॥ अ० ॥ १ । १ । २० ॥

गा, मा, दा ये तीनों जिन सूत्रों में ग्रहण किये हों वहां सामान्य करके लाक्षणिक और प्रतिपदोक्त दोनों का ग्रहण होताहै इस से (देङ्) आदि लाक्षणिक धातुओं को भी घु संज्ञा हो जाती है (दैप्) धातु में पित् पढ़ने का यही प्रयोजन है कि जो दाप् को घु संज्ञा का निषेध है सो दै मात्र के पढ़ने से प्राप्त नहीं था इस लिये पित् किया सो जो लाक्षणिक दै मात्र को घु संज्ञा प्राप्त ही नहीं थी तो निषेध के लिये पित् क्यों पढ़ा। इस से यह आया कि लाक्षणिक को भी घु संज्ञा होती है (घुमास्थागापाजहातिसां हलि) यहां मा कर के मेङ् आदि को भी ईकारादेश होता है (मीयते, मेमीयते) इत्यादि गा करके गै आदि भी लिये जाते हैं (गीयते, जेगीयते) इङ् धातु के स्थान में जो गाङ् आदेश होता है उस का भी ग्रहण होता है जैसे (अध्यगीष्ट, अध्यगीषाताम्) इत्यादि बहुत प्रयोजन हैं ॥६२॥

(वृद्धिरादैच्) सूत्र में आ, ऐ, औ, इनतीनों को वृद्धि संज्ञा होती है । इस में यह संदेह होता है कि जो तीनों वर्णों को एक साथ वृद्धि संज्ञा हो जावे तो (कारकः) आदि में एक साथ तीनों वर्ण वृद्धि होने चाहिये । इस लिये यह परिभाषा है ॥

६३—प्रत्यवयवं वाक्यपरिसमाप्तिः ॥ अ० ॥ १ । १ । १ ॥

वाक्य की समाप्ति प्रत्येक अवयव के साथ होती है अर्थात् जहां समुदाय को

कार्य कहा है वहां वाक्यस्थ क्रिया जब प्रत्येक अवयव के साथ सम्बन्ध कर लेती है तब उस को पूर्ण वाक्य कहते हैं। जैसे किसीने कहा कि (देवदत्तयज्ञदत्तविष्णुमित्रा भोज्यन्ताम्) यद्यपि यहां यह नहीं कहा कि देवदत्त, यज्ञदत्त और विष्णुमित्र को पृथक् २ भोजन कराओ तथापि भोजन क्रिया प्रत्येक के साथ सम्बन्ध रखती है इसी प्रकार यहां आ, ऐ, औ को वृद्धि संज्ञा पृथक् कही है इसी से प्रत्येकवर्ण के साथ वृद्धि का सम्बन्ध पृथक्२ रहता है ऐसे ही गुण आदि संज्ञा भी प्रत्येक की होती है॥८३॥

अब इस पूर्वोक्त परिभाषा से यह दोष आया कि जो (हलोऽनन्तराः संयोगः) यहां प्रत्येक वर्ण की संयोग संज्ञा रहे तो (निर्यायात्, निर्वायात्) यहां या, वा धातु को संयोगादि मान कर (वान्यस्य संयोगादेः) इस सूत्र से एकारादेश होना चाहिये इत्यादि अनेक दोष आवेंगे। इस लिये यह परिभाषा है॥

८४—समुदाये वाक्यपरिसमाप्तिः॥ अ० ॥ १। १। ७॥

कहीं ऐसा भी होता है कि समुदाय में वाक्य की परिसमाप्ति होवे अर्थात् वाक्यस्थ क्रिया का केवल समुदाय के साथ सम्बन्ध रहे। और प्रत्येक अवयव के साथ पृथक् २ संबन्ध न होवे जैसे राजा ने आज्ञा किई कि (गर्गाः शतन्दण्ड्यन्ताम्) यहां गर्गों पर सौ रुपये दण्ड कहा तो उन में प्रत्येक पर सौ २ दण्ड किया जावे वा समुदाय पर तो जैसे समुदाय पर एक दण्ड होता है वैसेही समुदित हलों को संयोगसंज्ञा होती है। इत्यादि अनेक प्रयोजन है॥८४॥

(वृद्धिरादैच्) सूत्र में आ, ऐ, औ इन तीन दीर्घ वर्णों की वृद्धि संज्ञा की है फिर आकार तपर क्यों पढ़ा क्यों कि सवर्ण ग्रहण परिभाषा से अक्षरसमाम्नाय का ही अण् सवर्ण ग्राहक है परन्तु जो अक्षरसमाम्नाय में ह्रस्व पढ़ते हैं उन्हीं का ग्रहण होगा दीर्घों का नहीं फिर दीर्घ से सवर्ण ग्रहण की प्राप्ति ही नहीं और तपरकरण का यही प्रयोजन होता है कि तपर से भिन्नकालिक सवर्णों का ग्रहण न हो। इस के समाधान के लिये यह परिभाषा है॥

८५—भेदका उदात्तादयः॥ अ० ॥ १। १। १॥

जिस वर्ण के साथ जो उदात्तादि गुण लगता है वह उसको स्वभावसे भिन्न कर देताहै परन्तु काल भेद नहीं होता। दीर्घ उदात्त, दीर्घ अनुदात्त, दीर्घ स्वरित इनमें काल का तो भेद नहीं परन्तु उच्चत्व, नीचत्व, समत्व आदिका भेदहै सो जो आकार को तपर न पढ़ते तो भी अभेदकों का ग्रहण हो ही जाता फिर तपर से यही प्रयोजन है कि भिन्न धर्म वाले तात्कालिक उदात्तादि का भी ग्रहण हो जावे इस लिये आकार में तपरकरण सार्थक हुआ तथा अन्यत्र भी दीर्घ वर्णों को तपर पढ़ने का यही प्रयोजनहै। और लोक में भी उदात्तादि का भेद दीख पड़ताहै जैसे कोई

विद्यार्थी उदात्त के स्थान में अनुदात्त बोले तो अध्यापक उस को शासन करता है कि तू अन्यथा क्यों बोलता है। सो जो उदात्तादि में भेद नहीं होता तो शासन भी नहीं बन सकता। और यह भी दृष्टान्त है कि एक जल शीत, उष्ण और खारी आदि भेदक गुणों के होने से भिन्न २ हो जाता है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं॥८५॥

इस पूर्वोक्त विषय में ऐसे भी दृष्टान्त मिलते हैं कि एक देवदत्त बालक युवा वृद्ध आदि अवस्था गुणों और मुण्ड जटिल आदि गुणों से वही बना रहता है कोई भिन्न नहीं हो जाता। इस से यह भी आया कि गुण अभेदक हैं और (यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च) इस सूत्र में यासुट् को उदात्त न कहते किन्तु उस को उदात्त ही पढ़ देते तो उदात्तादि गुणों के भिन्न २ होने से उदात्त के पढ़ने में अनुदात्त हो ही नहीं सकता फिर उदात्त ग्रहण व्यर्थ हुआ इस लिये यह परिभाषा है॥

८६—अभेदका गुणाः ॥ अ० ॥ १ । १ । १ ॥

उदात्तादि गुण अभेदक होते हैं अर्थात् गुणीके स्वरूपको कुछ भी नहीं बदल सकते। इसी लिये (अस्थिदधि०) इत्यादि सूत्रों में उदात्त वा अनुदात्त पढ़ा है जो उदात्तादि शब्दों से उदात्त नहीं पढ़ते तो अभेदक होने से विशेष गुणों का ज्ञान नहीं होता इस से उदात्तादि शब्दों का पढ़ना सार्थक होगया। इन गुणों के अभेदक पक्षमें दीर्घों को तपर पढ़ने का द्वितीय समाधान है (आदैच्) यहां तो आकारको तपर पढ़नेका यही प्रयोजन है कि तकारसे परे ऐ औ तपर माने जावें तो (महौजाः, महौजाः) यहां चार मात्रिक स्थानों के स्थान में चार मात्राओं का आदेश भी प्राप्त होता है सो न हो किन्तु द्विमात्रिक ही (ए,ऐ,ओ, औ) आदेश होवें इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं इन दोनों में गुणों का अभेदक पक्ष ही बलवान् है ॥ ८६ ॥

(सर्वादीनि सर्वनामानि) इस सूत्र में सर्वनाम शब्द में णत्व निषेध निपातन किया है सो उस को सूत्र में चरितार्थ होजाने से लौकिक प्रयोगविषय में सर्वनाम शब्द को णत्व होना चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

८८७—बाधकान्येव हि निपातनानि ॥ अ० ॥ १ । १ । २७ ॥

जिस अप्राप्त कार्य का विधान वा प्राप्त का निषेध निपातन से कर दिया हो वह सर्वथा बाधक होजाता है फिर वह वैसा ही प्रयोग काल में भी रहेगा। इस से सर्वनाम आदि शब्दों में णत्व निषेध आदि कार्य सिद्ध हो जाते हैं ॥ ८७ ॥

(स्यन्त्स्यति) इस स्यन्दू धातु के प्रयोग में इट्का विकल्प अन्तरङ्ग और निषेध बहिरङ्ग है सो जो अन्तरङ्ग कार्यकरने में बहिरङ्ग असिद्ध माना जावे तो परस्मैपद में भी इट्का विकल्प होना चाहिये। इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

९८—प्रतिषेधाश्च बलीयांसो भवन्ति ॥ अ० ॥ १ । १ । ६३ ॥

पर, नित्य और अन्तरङ्गसे भी प्रतिषेध बलवान् होतेहैं इससे अन्तरङ्गभी इट् विकल्प को बाध के नित्य प्राप्त इट् का निषेध होजाता है इत्यादि प्रयोजन हैं ॥९८॥

(अइउण्) आदि प्रत्याहार सूत्रों में जो (ण्, क्) आदि अनुबन्ध पढ़े हैं उनका अच् के ग्रहण से ग्रहण किया जावे तो (दधिणकारीयति, जरोकरोति) इत्यादि में णकार ककार के परे इकार ईकार को यणादेश होना चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

९९—सर्वविधिभ्यो लोपविधिर्बलीयान् ॥

सब विधियों से लोपविधि बलवान् होती है। इस से (ण्, क्) आदि अनुबन्धों का प्रत्याहार की प्रवृत्ति से पहिलेही लोप होजाता है फिर अच् में णकार ककार के न रहने से (दधि णकारीयति, जरीकरोति) आदि में यणादेश नहीं होता। इत्यादि। और लोक में भी यही रीति है कि किसी का मृत्यु आजावे तो सब कामों का बाधक हो जाता है अर्थात् अदर्शन अग्रहण होता है ॥ ९९ ॥

(अर्थं प्रत्याययति स प्रत्ययः) जो अर्थ का निश्चय करावे वह प्रत्यय कहाता है इस अर्थ के न होने से केवल स्वार्थ में विहितों की प्रत्यय संज्ञा नहीं होवे इस लिये यह परिभाषा है ॥

१००—अनिर्दिष्टार्थाश्च प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति ॥ अ० ।३।२४।४॥

जिन प्रत्ययों की उत्पत्ति में कोई विशेष अर्थ नियत न किया हो वे स्वार्थ में हों अर्थात् प्रकृत्यर्थ के सहायक और बोधक रहैं। इसी से वे प्रत्यय कहावें जैसे (गुप्तिज्किद्भ्यः सन्, यावादिभ्यः कन्) इत्यादि प्रत्यय स्वार्थ में होते हैं (जुगुप्सते, यावकः) इत्यादि ॥ १०० ॥

(सुपिस्थः) इस सूत्रसे कर्त्तामें प्रत्यय होतेहैं इस लिये (आखूनामुत्थानमाखूत्थः।) इत्यादि प्रयोगोंमें भावमें क प्रत्यय नहीं हो सकता इस लिये यह परिभाषा है ॥

१०१—योगविभागादिष्टसिद्धिः ॥

जहां इष्ट कार्य की सिद्धि नहीं वहां योगविभाग करना चाहिये। और योगविभाग करके इष्ट कार्य साध लेना अनिष्ट नहीं होने देना (सुपि) इतना पृथक् सूत्र किया तो यह अर्थ हुआ कि सुबन्त उपपद होतो आकारान्त धातु से क प्रत्यय हो इस से (कच्छेन पिबति, कच्छपः, कटाहपः, द्वाभ्यां पिबति, द्विपः) इत्यादि प्रयोग सिद्ध हुए पीछे (स्थः) इतना पृथक् किया तो यह अर्थ हुआ कि स्था धातु से सुबन्त उपपद होतो क प्रत्यय हो यहां योगविभाग करके कर्त्ता से हटाया तो स्वार्थ भाव में आखूत्थ आदि प्रयोग सिद्ध होगये। इसी प्रकार सर्वत्र जानो ॥ १०१ ॥

लाघव गौरव का विचार सर्वत्र रहता है कि । जहां तक हो थोड़ा वचन पढ़के बहुत अर्थ निकालना परन्तु ॥

१०२—पर्यायशब्दानां लाघवगौरवचर्चा नाद्रियते ॥

पर्याय शब्दों में थोड़े बहुत होने का विचार नहीं करते कि जहां थोड़े वचन से काम चल सकता है तो उस का पर्याय अधिक अक्षर का शब्द न पढ़ना जैसे (अन्यतरस्याम्, विभाषा, वा उभयथा) इत्यादि एकार्थ शब्दों में किसी को पढ़ दिया यह नियम नहीं कि इतना अधिक क्यों पढ़ा इत्यादि ॥ १०२ ॥

जो ज्ञापक रूप परिभाषाओं से कार्य सिद्ध होते हैं वहां सर्वत्र ज्ञापकसिद्ध की प्रवृत्ति नहीं होती इस लिये यह परिभाषा है ॥

१०३—ज्ञापकसिद्धं न सर्वत्र ॥

जैसे अर्थवान् और अनर्थक के ग्रहण में ज्ञापकसिद्ध परिभाषा से अर्थवान् को कार्य होता है सो अन्नन्त को कहा कार्य कनिन् प्रत्यय के परे सार्थक अन् को और सन् प्रत्यय के निरर्थक अन् को भी होते हैं ॥ १०३ ॥

त्रिपादी में हुआ कार्य सपादसप्ताऽध्यायी में असिद्ध माना जाता है सो (द्रोग्धा, द्रोग्धा, द्रोढा, द्रोढा) यहां त्रिपादिस्थ (वा द्रुहमुह०) सूत्र से हकार को घ और ढ आदेश होते हैं सो जो द्वित्व करने में उस घ को असिद्ध मानें तो द्वित्व के एकभाग में घ और द्वितीय भाग में ढ आदेश रहना चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

१०४—पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने ॥ अ० ॥ ८ । १ । १ ॥

त्रिपादी का कार्य द्वित्व करने में असिद्ध न माना जावे इस से (द्रोग्धा द्रोग्धा) आदि में ढत्व नहीं होता तथा (नुन्नं नुन्नम्, नुत्तं नुत्तम्) यहां भी द्वित्व के एकभाग में न और एक में तकार प्राप्त है सो नहीं इत्यादि ॥ १०४ ॥

जैसे (गोषु स्वाम्यश्वेषु च) यहां एकस्वामी शब्द के योग में दोनों भिन्नाकृति शब्दों में एकाकृति सप्तमी विभक्ति होती है वैसे गो शब्द में सप्तमी और अश्व में षष्ठी विभक्ति क्यों नहीं होती इसलिये यह परिभाषा है ॥

१०५—एकस्या आकृतेश्चरितः प्रयोगो द्वितीयस्यास्तृतीयास्य न भवति ॥ १ । ३ । ३८ ॥

जहां एक आकृति का प्रयोग चरितार्थ होता है वहां द्वितीय वा तृतीय अन्यार्थ सम्भव कारक का प्रयोग नहीं होता इस से वहां अश्व शब्द में षष्ठी नहीं

होसकती क्यों कि एकाकृति सप्तमी विभक्ति का चरितार्थ है और षष्ठी के होने से भिन्नार्थ भी सम्भव होजावे ॥ १०५ ॥

(विव्याध) इत्यादि प्रयोगोंमें परत्वसे(हलादिःशेषः)इससूत्रसे अभ्यासके यकार का लोप होजावे तो वकारको संप्रसारण प्राप्त होता है इसलिये यहपरिभाषाहै॥

१०६—संप्रसारणं संप्रसारणाश्रयं च कार्यं बलीयो भवति॥ अ० ॥ १ । १ । १७ ॥

जो संप्रसारण और संप्रसारण के आश्रय कार्य हैं वे दोनों बलवान् होते हैं इस से (हलादिः शेषः) सूत्र से प्राप्त परलोप को भी बाध के प्रथम यकार को संप्रसारण होगया तो फिर (विव्याध) आदि प्रयोग बन गये । तथा (जुहुवतुः, जुहुवुः) यहां संप्रसारण और ह्व धातु के आकार का अजादि आर्द्धधातुक के परे लोप भी प्राप्त है परत्व से लोप होना चाहिये बलवान् होने से संप्रसारण हो जाता है और संप्रसारण हुए पीछे भी आकारलोप तथा संप्रसारणाश्रय पूर्वरूप भी प्राप्त है परत्व से आकारलोप होना चाहिये बलवान् होने से संप्रसारणाश्रय पूर्वरूप होजाता है । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ १०६ ॥

जब शुक्ल नील आदि गुणवाचक शब्द अपने केवल गुणवाचकपन अर्थात् स्वतन्त्र अर्थ में पुल्लिङ्गादि किसी विशेष लिङ्ग वा एकत्वादि वचन का आश्रय करने से नहीं प्रतीत होते पुनः जब इन का द्रव्य के साथ समानाधिकरण हो तब कौन लिङ्ग वचन इन में होना चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

१०७—गुणवचनानां हि शब्दानामाश्रयतो लिङ्गवचनानि भवन्ति ॥ अ० ॥ १ ॥ २ । ६४ ॥

गुणवाची शब्द जिस द्रव्यके आश्रित हों उस द्रव्य वाचक शब्दके जो लिङ्गवचन हों वे ही गुणवाचक शब्द के भी होजावें जैसे । शुक्लम् वस्त्रम् । शुक्ला शाटी । शुक्लः कम्बलः । शुक्लौ कंबलौ । शुक्लाः कंबलाः । इत्यादि इसी प्रकार सर्वत्र जानो ॥१०७॥

जैसे । कष्टं श्रितः, कष्टश्रितः । इत्यादि में समास होजाता है वैसे । महत् कष्टं श्रितः । यहां भी समास होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है॥

१०८—सापेक्षमसमर्थं भवति ॥ अ० ॥ २ । १ । १ ॥

जो पद विशेष्यविशेषणभाव से द्वितीय पद के साथ सम्बन्ध रखता हो वह सापेक्ष होने से समास होने में असमर्थ कहाता है उस का समास नहीं हो सकता । इस कारण महत् शब्द विशेषण के साथ कष्ट सापेक्ष होने से पद के साथ समास को प्राप्त नहीं होता तथा (भार्या राज्ञः पुरुषो देवदत्तस्य) यहां

भार्या के साथ राजन् शब्द सापेक्ष विशेषण और देवदत्त विशेषण के साथ पुरुष सापेक्ष है इस लिये राजन् और पुरुष दोनों के परस्पर असमर्थ होने से समास नहीं होता। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं॥ १०८॥

(परीयात्, अतीयात्) यहां परि–इयात्। दो इकार को दीर्घ एकादेश हुआ है सो जो अन्तादिवत् मानें तो (एतेर्लिङि) सूत्र से उपसर्गों से परे इण् धातु को ह्रस्व प्राप्त है इसलिये यह परिभाषा है॥

१०९—उभयत आश्रयेनान्तादिवत्॥ अ०॥ ६।१।८५॥

पूर्व पर के स्थान में जो एकादेश हुआ हो वह पूर्व पर दोनों के आश्रयकार्य की प्राप्ति में अन्तादिवत् न हो इस से (परीयात्, अतीयात्) आदि में ह्रस्व नहीं होता। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं॥ १०९॥

जो टित्, कित्, मित् आगम होते हैं उन में किसी टकारादि अनुबन्ध से कोई उदात्तादि विशेष स्वर का विधान नहीं किया है वहां क्या स्वर होना चाहिये इस लिये यह परिभाषा है॥

११०–आगमा अनुदात्ता भवन्ति॥ अ०॥ ३।१।३॥

टित् आदि आगम अनुदात्त होते हैं। यद्यपि यह बात है कि (अर्थवत आगम०) इस परिभाषा के अनुकूल जो प्रत्यय वा प्रकृति का स्वर है वही आगम का भी हो तो एक पद में दो स्वर नहीं रहते इस लिये (भविता) इत्यादि में आगम भी अनुदात्त विधान किये हैं इस में ज्ञापक यह है कि (यासुट् परस्मैपदेषूदा०) इस सूत्र में उदात्तादि करने का यही प्रयोजन है कि आगम सब अनुदात्त होते हैं इस से उदात्त प्राप्त नहीं था और जो प्रत्यय को आद्युदात्त स्वर होता है वह आगम को नहीं प्राप्त था इस लिये उदात्त कहा इत्यादि॥ ११०॥

गुप्, तिज्, कित् मान आदि धातुओं से स्वार्थ में सन् प्रत्यय होता है उस सन् के नित्य होने से प्रथम गण में शुद्ध प्रयोग नहीं होता तो यह सन्देह होता है कि इन से आत्मनेपद हो वा परस्मैपद हो जो सन्नन्त से पहिले कोई पद विधान होता हो वह (पूर्ववत्सनः) इस सूत्र से सन्नन्त से भी हो जाता सो तो नहीं होता और सन्नन्तों में कोई विशेष अनुबन्ध भी नहीं है इस लिये यह परिभाषा है॥

१११—अवयवे कृतं लिङ्गं तस्य समुदायस्य विशेषकं भवति यं समुदायं सोऽवयवो न व्यभिचरति॥ अ०॥ ३।१।५॥

अवयव में किया हुआ चिन्ह उस समुदाय का विशेषक होता है कि जिस को वह अवयव फिर न छोड़ देवे। इस से यह आया कि जिन गुप आदि धातुओं

में जो अनुदात्तेत् चिह्न किया है उनका सन् के विना कहीं पृथक् प्रयोग भी नहीं होता इस लिये गुप आदि धातुओं का अनुदात्तेत् सन्नन्त का विशेषक हो के अर्थात् गुप आदि सन्नन्तों को भी अनुदात्तेत् मान कर आत्मनेपद हो (जुगुप्सते, मीमांसते) यहां आत्मनेपद होगया और जुगुप्सयति वा जुगुप्सयते मीमांसयति। वा मिमांसयते यहां णिजन्त समुदाय को णिच् छोड़ देता है इसलिये परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों होते हैं तथा पण धातु अनुदात्तेत् है उस के (पणायति) प्रयोग में आय प्रत्ययान्त से परस्मैपद ही होता है क्योंकि आत्मनेपद तो व्यवहार अर्थ में और एकपक्ष में आर्द्धधातुकविषय में चरितार्थ है (शतस्य पणते) पणायां-चकार। पेणे। पणाते। और आय प्रत्ययान्त समुदाय को पण छोड़ भी देता है। इसलिये आय प्रत्ययान्त से आत्मनेपद नहीं होता और लोक में भी बैल को किसी अवयव में दाग देते हैं तो वह चिह्न उस बैल का विशेषक होजाता है कि यह अङ्कित् बैल है उसी अवयव का और सब साथ के बैलों का भी विशे-षक नहीं होता ॥ १११ ॥

(अपृक्त एकाल् प्रत्ययः) इस सूत्र में एक ग्रहण का यही प्रयोजन है कि (दर्विः, जागृविः) यहां वि प्रत्यय की अपृक्त संज्ञा नहीं सो जो एक ग्रहण न करते और अल् प्रत्यय कहते तो भी अनेकाल् में नहीं होती फिर एक ग्रहण व्यर्थ हुआ इस से यह ज्ञापक सिद्ध परिभाषा निकली ॥

११२—वर्णग्रहणे जातिग्रहणम् ॥ अ० ॥ १ । २ । ४१ ॥

वर्ण के ग्रहण में वर्ण जाति का ग्रहण होता है इस से एक ग्रहण तो सार्थक होगया क्योंकि अल् मात्र पढ़ते तो जाति ग्रहण होने से अनेक अलों का ग्रहण होजाता फिर एक ग्रहण से नहीं हुआ और (धीप्सति, धिप्सति) यहां दम्भ धातु के दो हलों में भी हल्जाति मानकर (हलन्ताच्च) सूत्र से इक् समीप हल् मान के सन् प्रत्यय कित् होजाता है। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ११२ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतविरजानन्द सरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते वेदाङ्गप्रकाशे द्वादशोऽष्टाध्याय्यां नवमश्च पारिभाषिको ग्रन्थोऽलङ्कृतिमगात् ॥

—:०:—

॥ अथ पारिभाषिकशुद्धिपत्रम् ॥

पृष्ठे	पङ्क्तौ	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	५	परिभा	पारिभा
५	६	श्रिता	श्रित
६	६	यस्तृ	यस्त
८	२	नन	जन
१९	१८	शब्दजी	शब्दकी
२१	१	अपधित्या	अपत्याधि
२३	२७	समुदया	समुदाय
२४	२	रङ्गं	रङ्गं
२५	१७	यवत्	यवमत्
३५	१	सिद्धि	सिद्ध
३८	२३	हैं	है
३९	२	दत्त	दात्त
४३	२४	सति	सूति
४६	१	ह्यण	ह्यण
९	१९	हंज्ञा	संज्ञा
५०	३१	पढ़ता	पड़ता

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

त्रयोदशो भागः ॥

धातुपाठः ।

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां

दशमो भागः ।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतसूचीपत्रेणसहितः ।

पण्डितज्वालादत्तशर्म्मणा संशोधितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां त्रयोदशं पुस्तकम् ।

मुन्शी समर्थदान के प्रबन्ध से
वैदिकयन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ

संवत् १९४० कार्तिकशुक्ला २

पहली बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य ॥)

विषयसूचीपत्रम् ॥

भूमिका॥

यह ग्रन्थ यथार्थव्याख्यान और भूमिका के सहित आख्यातिक में छप चुका है परंतु उस में धातु अर्थों के सहित व्याख्यान के बीच २ में पढ़े हैं। इस कारण उस ग्रंथ में मूल का पाठ करना तथा घोष के कण्ठ स्थ करना अध्येता ओं को कठिन पड़ता इस लिये यह मूल पुस्तक सूचीपत्र के सहित पृथक् छप वाते हैं। इस में एक प्रकार के जितने धातु हैं उन के आदि में उन की संख्या, आत्मनेपद, परस्मैपद तथा उदात्त और अनुदात्त भी रख दिया है। उदात्त से सेट् और अनुदात्त से अनिट् समझना चाहिये। उदात्तेत् से परस्मैपद और अनुदात्तेत् से आत्मनेपद तो समझा जाता है तथापि अति सुगमता के लिये आत्मनेपद परस्मैपद शब्द भी रख दिये हैं। इस से पढ़ने पढ़ाने हारे लोगों को बड़ी सुगमता होगी। परंतु धातुओं के रूप मूल पुस्तक पर लेना सेट् अनिट् आदि प्रकरणों के उपयुक्त सूत्रों को देख समझ के ही कर सकेंगे। क्योंकि कोई अनिट् धातु किसी विशेष प्रत्यय में सेट् और कोई सेट् धातु कहीं अनिठ् भी हो जाता है। इस का सूचीपत्र भी साथ ही छपता है इस में तीन संकेत हैं पहिला, भ्वादिगण का (भ्वा०) अदादि का (अ०) जुहोत्यादि का (जु०) दिवादि का (दि०) स्वादि का (स्वा०) तुदादि का (तु०) रुधादि का (रु०) तनादि का (त०) क्र्यादि का (क्र्या०) चुरादि का (चु०) और कण्ड्वादि का (कं) लिखा है। दूसरा, आत्मनेपद का (आ०) परस्मैपद का (प०) और उभयपद का (उ०) लिखा है। तीसरा, सेट्

का (से०) वा अनिट् का (अ०) लिखा है । और नीचे के धातुओं में जहां पूर्व का ही संकेत है । वहां उस के बराबर नीचे बिन्दु दिये हैं । सूची में मूल धातुओं के आदि अनुबन्ध इस लिये छोड़ दिये हैं कि उन धातुओं के आद्यक्षर में संदेह न पड़े । और जो धातु उपदेश में षकारादि और प्रयोग काल में सकारादि हो जाते हैं । उनसब को सकारादि में लिखा है । क्योंकि वे सूत्रों से विशेष कार्य होने के लिये षोपदेश हैं । दशों गण के अन्त में कण्ड्वादि गण इस लिये छप वाया है कि यह बहुधा धातुओं से अर्थ विधान के सहित सम्बन्ध रखता है । धातुपाठविषयक विशेष व्याख्यान आख्यातिक की भूमिका और उस पुस्तक को देखने से विदित हो जावेगा ॥

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु ।

इति भूमिका ।

स्थान महाराणा जी का
उदयपुर

दयानन्दसरस्वती

ओ३म्

अथ पाणिनिमुनिकृतधातुपाठाऽऽरम्भः ॥

—:※:—

भू सत्तायाम् । उदात्त उदात्तेत् परस्मैभाषः ॥

अथ तवर्गीयान्ता एधादयः कथ्यन्ताः षट्त्रिंशदात्मनेभाषाः ॥

एध, वृद्धौ । स्पर्द्ध, सङ्घर्षे । गाधृ, प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च । बाधृ, विलोडने । नाथृ, नाधृ, याञ्चोपतापैश्वर्य्याऽऽशीःषु । दध, धारणे । स्कुदि, आप्रवणे । श्विदि, श्वैत्ये । वदि, अभिवादन स्तुत्योः । भदि, कल्याणे सुखे च । मदि, स्तुतिमोदमदस्वप्न-कान्तिगतिषु । स्पदि, किञ्चिच्चलने । क्लिदि, परि देवने । मुद, हर्षे । दद, दाने । ष्वद, स्वर्द, आस्वादने । उर्द, माने क्रीडा-याञ्च । कुर्द, खुर्द, गुर्द, गुद, क्रीडायामेव । षूद, क्षरणे । ह्राद, अव्यक्ते शब्दे । ह्लादी, सुखेच । स्वाद, आस्वादने । पर्द, कुत्सितेशब्दे । यती, प्रयत्ने । युत, जुत, भासने । विथृ, वेथृ, याचने । श्रथि, शैथिल्ये । ग्रथि, कौटिल्ये । कत्थ, श्लाघायाम् ।

इत्युदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथाऽतादयः शुन्ध्यन्ता अष्टत्रिंशत्परस्मैभाषाः ॥

अत, सातत्यगमने । चिती, संज्ञाने । च्युतिर्, आसेचने । श्च्युतिर्, क्षरणे । मन्थ, विलोडने । कुथि, पुथि, लुथि, मथि, हिंसासंक्लेशनयोः । षिधु, गत्याम् । षिधू, शास्त्रे माङ्गल्ये च । खाद, भक्षणे । खद, स्थैर्ये हिंसायाञ्च । बद, स्थैर्ये । गद, व्यक्तायां वाचि । रद, विलेखने । णद, अव्यक्ते शब्दे । अर्द, गतौ याचने च । नर्द,

गर्द, शब्दे । तर्द, हिंसायाम् । कर्द, कुत्सितेशब्दे । खर्द, दन्दशूके । अति, अदि, बन्धने । इदि, परमैश्वर्ये । बिदि, भिदि, अवयवे । गडि, वदनैकदेशे । णिदि, कुत्सायाम् । टुनदि, समृद्धौ । चदि, आल्हादने दीप्तौ च । त्रदि, चेष्टायाम् । कदि, क्रदि, क्लदि, आह्वाने रोदने च । क्लिदि, परिदेवने । शुन्ध, शुद्धौ । इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ कवर्गीयान्ताः ॥

शीकादयः श्लाघन्ता द्विचत्वारिंशदात्मनेभाषाः ॥

शीकृ, सेचने । लोकृ, दर्शने । श्लोकृ, संघाते । द्रेकृ, ध्रेकृ, शब्दोत्साहयोः । रेकृ, शंकायाम् । सेकृ, स्रेकृ, स्रकि, श्रकि, श्लकि, गत्यर्थाः । शकि, शंकायाम् । अकि, लक्षणे । वकि, कौटिल्ये । मकि, मण्डने । ककि, लौल्ये । कुक, वृक, आदाने । चक, तृप्तौ प्रतिघाते च । ककि, वकि, मकि, श्वकि, त्रकि, ढौकृ, त्रौकृ, ष्वष्क, वस्क, मस्क, टिकृ, टीकृ, तिकृ, तीकृ, रघि, लघि, गत्यर्थाः । लघि, भोजननिवृत्तावपि । अघि, वघि, मघि, गत्याक्षेपे । मघि, कैतवेच । राघृ, लाघृ, द्राघृ, ध्राघृ, सामर्थ्ये । द्राघृ, आयामे च । श्लाघृ, कत्थने । इत्युदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ फक्कादय शिंघन्ता द्विपंचाशत् परस्मैभाषाः ॥

फक्क, नीचैर्गतौ । तक, हसने । तकि, कृच्छ्रजीवने । बुक्क, भषणे । कख, हसने । ओखृ, राखृ, लाखृ, द्राखृ, ध्राखृ, शोषणाऽलमर्थयोः । शाखृ, श्लाखृ, व्याप्तौ । उख, उखि, वख, वखि, मख, मखि, णख, णखि, रख, रखि, लख, लखि, इख, इखि, ईखि, वल्गु, रगि, लगि, अगि, वगि, मगि, तगि, त्वगि, शगि, श्वगि, श्लगि, इगि, रिगि, लिगि, गत्यर्थाः । रिख, त्रख, त्रखि, शिखि, इत्यपि केचित् । त्वगि, कंपने च । युगि, जुगि, वुगि, वर्जने घघ, हसने । मघि, मण्डने । लघि, शोषणे । शिघि, आघ्राणे । इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ चवर्गीयान्ताः ॥

वर्चादय ईजन्ता एकविंशतिरात्मनेभाषाः ॥

वर्च, दीप्तौ । षच, सेचने सेवने च । लोचृ, दर्शने । शच, व्यक्तायां वाचि । श्वच, श्वचि, गतौ । कच, बन्धने । कचि, काचि, दीप्तिबन्धनयोः । मुच, मुचि, कल्कने । मचि, धारणोच्छ्रायपूजनेषु । पचि, व्यक्तीकरणे । ष्टुच, प्रसादे । ऋज, गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु । ऋजि, भृजी, भर्जने । एजृ, भ्रेजृ, भ्राजृ, दीप्तौ । ईज, गतिकुत्सनयोः । इत्युदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ शुचादयो व्रज्यन्ता द्विसप्ततिः परस्मैभाषाः ॥

शुच, शोके । कुच, शब्देतारे । कुच, क्रुञ्च, गतिकौटिल्याल्पीभावयोः । लुञ्च, अपनयने । अञ्चु, गतिपूजनयोः । वञ्चु, चञ्चु, तञ्चु, त्वञ्चु, म्रुञ्चु, म्लुञ्चु, म्रुचु, म्लुचु, गत्यर्थाः । ग्रुचु, ग्लुचु, कुजु, खुजु, स्तेयकरणे । ग्लुञ्चु, षस्ज, गतौ । गुज, गुजि, अव्यक्ते शब्दे । अर्च, पूजायाम् । म्लेच्छ, अव्यक्ते शब्दे । लच्छ, लाच्छि, लक्षणे । वाच्छि, इच्छायाम् । आच्छि, आयामे । ह्रीच्छ, लज्जायाम् । हुर्छा, कौटिल्ये । मुर्छा मोहसमुच्छ्राययोः । स्फुर्छा, विस्तृतौ । युच्छ, प्रमादे । उच्छि, उञ्छे । उच्छी, विवासे । ध्रज, ध्रजि, धृज, धृजि, ध्वज, ध्वजि, गतौ । कूज, अव्यक्ते शब्दे । अर्ज, षर्ज, अर्जने । गर्ज, शब्दे । तर्ज, भर्त्सने । कर्ज, व्यथने । खर्ज, पूजने च । अज, गतिपूजनयोः । तेज, पालने । खज, मन्थे । खजि, गतिवैकल्ये । एजृ, कंपने । टुओस्फूर्जा, वज्रनिर्घोषे । क्षि, क्षये । क्षीज, अव्यक्ते शब्दे । लज, लजि, भर्जने लाज, लाजि, भर्त्सने च । जज, जजि, युद्धे । तुज, हिंसायाम् । तुजि, पालने च । गज, गजि, गृज, गृजि, मुज, मुजि, शब्दार्थाः । गज, मदे च । वज, व्रज, गतौ । इति क्षिवर्जमुदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ टवर्गीयान्ताः

अट्टादयः शाड्रन्ताः षट्त्रिंशदात्मनेभाषाः ॥

अट्ट, अतिक्रमणहिंसनयोः । वेष्ट, वेष्टने । चेष्ट, चेष्टायाम् । गोष्ट, लोष्ट, सङ्घाते । घट्ट, चलने । स्फुट, विकसने । अटि, गतौ । वटि, एकचर्यायाम् । मठि, कठि, शोके । मुठि, पालने । हेठ, विबाधायाम् । एठ, च । हिडि, गत्यनादरयोः । हुडि, संघाते । कुडि, दाहे । वडि, विभाजने । मडि, च । भडि, परिभाषणे । पिडि, संघाते । मुडि, मार्जने । तुडि, तोडने । हुडि, वरणे । चडि, कोपे । शडि, रुजायां संघाते च । तडि, ताडने । पडि, गतौ । कडि, मदे । खडि, मन्थे । हेडृ, होडृ, अनादरे । वाडृ, आप्लाव्ये । द्राडृ, ध्राडृ, विशरणे । शाडृ, श्लाघायाम् । इत्युदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ शौडादयो गडन्ता द्व्यशीतिः परस्मैभाषाः ॥

शौडृ, गर्वे । यौडृ, बन्धने । म्लेडृ, मेडृ, म्रेडृ, उन्मादे । कटे, वर्षावरणयोः । चटे, इत्येके । अट, पट, गतौ । रट, परिभाषणे । लट, बाल्ये । शट, रुजाविशरणगत्यवसादनेषु । वट, वेष्टने । किट, खिट, त्रासे । शिट, षिट, अनादरे । जट, झट, संघाते । भट, भृतौ । तट, उच्छ्राये । खट, काङ्क्षायाम् । णट, नृतौ । पिट, शब्दसंघातयोः । हट, दीप्तौ च । षट, अवयवे । लुट, विलोडने । चिट, परप्रैष्ये । विट, शब्दे । बिट, आक्रोशे । हिट, इत्येके । इट, किट, कटी, गतौ । मडि, भूषायाम् । कुडि, वैकल्ये । मुट, पुट, मर्दने । चुडि, अल्पीभावे । मुडि, खंडने । पुडि, चेत्येके । रुटि, लुटि, स्तेये । रुठि, लुठि, इत्येके । स्फुटिर् विशरणे । पठ, व्यक्तायां वाचि । वठ, स्थौल्ये । मठ, मदनिवासयोः । कठ, कृच्छ्रजीवने । रठ, परिभाषणे । हठ, प्लुतिशठत्वयोः । बलात्कारे चेत्येके ।

रुठ,लुठ,उठ,उपघाते। ऊठ,इत्येके। पिठ,हिंसासंक्लेशनयोः। शठ, कैतवे च। शुठ, प्रतिघाते। शुठीत्येके। कुठि, च। लुठि, आलस्ये प्रतीघाते च। शुठि, शोषणे। रुठि, लुठि, गतौ। चुडु भावकरणे। अड्ड, अभियोगे। कडु, कार्कश्ये। क्रीडृ, विहारे। तुडृ, तोडने। तूडृ, इत्येके। हुडृ, हूडृ,होडृ, गतौ। रौडृ, अनादरे। रोडृ, लोडृ, उन्मादे। अडृ, उद्यमने। लड, विलासे। कड, मदे। कडि, इत्येके। गडि, वदनैकदेशे॥ इत्युदात्ता उदात्तेतः॥

अथ तवर्गीयान्तास्तिपादयः ष्टुभ्यन्ताश्चत्वारिंशदात्मनेभाषाः॥

तिपृ,तेपृ, ष्टिपृ, ष्टेपृ, क्षरणार्थाः। ष्टिपृ,ष्टेपृ, इत्यन्ये। तेपृ, कम्पने। ग्लेपृ, दैन्ये। टुवेपृ, कम्पने। केपृ, गेपृ, ग्लेपृ च। मेपृ, रेपृ, लेपृ, गतौ। हेपृ, धेपृच। त्रपूष्, लज्जायाम्। कपि, चलने। रबि, अबि, लबि, शब्दे। लबि,अवस्रंसने च। कबृ, वर्णे। क्लीबृ, अधार्ष्ट्ये। क्षीबृ, मदे। शीभृकत्थने। चीभृ च। रेभृ, शब्दे। अभि, रभि, शब्दे। ष्टभिस्कभि, प्रतिबन्धे। जभी, जृभि, गात्रविनामे। शल्भ, कत्थने। बल्भ, भोजने। गल्भ, धार्ष्ट्ये। श्रम्भु, प्रमादे। ष्टुभु, स्तम्भे। इति तिपिवर्जमुदात्ता अनुदात्तेतः॥

अथ गुपादयः शुंभ्यन्ता एकचत्वारिंशत्परस्मैभाषाः॥

गुपू, रक्षणे। धूप, सन्तापे। जप, जल्प, व्यक्तायां वाचि। जप, मानसे च। चप सांत्वने। षप, समवाये। रप, लप, व्यक्तायां वाचि। चुप, मन्दायां गतौ। तुप, तुम्प, त्रुप, त्रुंप तुफ, तुम्फ, त्रुफ, त्रुम्फ, हिंसार्थाः। पर्प, रफ, रफि, अर्ब, पर्ब, लर्ब, बर्ब, मर्ब, कर्ब, खर्ब गर्ब, शर्ब, षर्ब, चर्ब, गतौ। चर्ब, अदने च। कुबि, आच्छादने। लुबि, तुबि, अर्दने। चुबि, वक्त्रसंयोगे। षृभु, षृम्भु, हिंसार्थौ। षिभु, षिम्भु, इत्येके। शुभ, शुम्भ, भाषणे। हिंसायामित्यन्ये। इत्युदात्ता उदात्तेतः॥

अथाऽनुनासिकान्ताघिण्यन्ता दशात्मनेभाषाः ॥

घिणि, घुणि, घृणि, ग्रहणे । घुण, घूर्ण, भ्रमणे । पण, व्यवहारे स्तुतौ च । पन, च । भाम, क्रोधे । क्षमूष्, सहने । कमु, कान्तौ । इति घिण्यादय उदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथाणादयः क्रम्यन्तास्त्रिंशत्परस्मैभाषाः ॥

अण, रण, वण, भण, मण, कण, क्वण, व्रण, भ्रण, ध्वण, शब्दार्थाः । ओणृ, अपनयने । शोणृ, वर्णगत्योः । श्रोणृ, संघाते । श्लोणृ च, । पैणृ, गतिप्रेरणश्लेषणेषु । ध्रण, वण, शब्दे । कनी, दीप्तिकान्तिगतिषु । ष्टन, वन, शब्दे । वन, षन, संभक्तौ । अम, गत्यादिषु । द्रम, हम्म, मीमृ, गतौ । मीमृ,शब्दे च । चमु, छमु, जमु, झमु, अदने । क्रमु, पादविक्षेपे । इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ पवर्गीयान्ता अयादयो रेवत्यन्ता सप्तत्रिंशदात्मनेभाषाः

अय, वय, पय, मय, चय, तय, णय गतौ । णय, रक्षणे च । दय, दानगतिरक्षणहिंसादानेषु । रय, गतौ । ऊयी तन्तुसन्ताने । पूयी, विशरणे, दुर्गन्धे च । क्नूयी शब्दे उन्दे च । क्ष्मायी, विधूनने । स्फायी,ओप्यायी,वृद्धौ । तायृ, सन्तानपालनयोः । शल, चलनसंवरणयोः। वल,वल्ल,संवरणे संचलने च। मल,मल्ल,धारणे । भल,भल्ल, परिभाषणहिंसादानेषु । कल,शब्दसंख्यानयोः। कल्ल,अव्यक्तेशब्दे । तेवृ, देवृ, देवने । षेवृ, गेवृ, ग्लेवृ, पेवृ,मेवृ म्लेवृ, सेवने । शेवृ, खेवृ, केवृ, इत्येके । रेवृ, प्लवगतौ । इत्युदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ मव्यादयोऽवत्यन्ताः सप्तनवतिः परस्मैभाषाः ॥

मूर्च्छ, ईर्च्छ, ईर्ष्य, इर्ष्यार्थाः । हय, गतौ । शुच्य, चुच्य, अभिषवे । हर्य्य, गतिकान्त्योः । अल, भूषणपर्याप्तिवारणेषु । ञिफला, विशरणे । मील, श्मील, स्मील, क्ष्मील, निमेषणे । पील, प्रतिष्टम्भे । णील, वर्णे । शील, समाधौ । कील, बन्धने ।

कूल, आवरणे। शूल, रुजायाम्। संघाते च। तूल, निष्कर्षे। पूल, संघाते। मूल, प्रतिष्ठायाम्। फल, निष्पत्तौ। चुल्ल, भावकरणे। फुल्ल, विकसने। चिल्ल, शैथिल्ये भावकरणे च। तिल, तिल्ल, गतौ। वेलृ, चेलृ, केलृ, खेलृ, क्ष्वेलृ, वेल्ल, चलने। पेलृ, फेलृ, खेलृ, षेलृ, शेलृ, गतौ। स्खल, संचलने। खल, संचये च। गल, अदने। षल, गतौ। दल, विशरणे। श्वल, श्वल्ल, आशुगमने। खोलृ, खोर्ऋ, गतिप्रतिघाते। धोर्ऋ, गतिचातुर्य्ये। त्सर, छद्मगतौ। क्मर, हूर्छने। अभ्र, वभ्र, मभ्र, चर, गत्यर्थाः। चर, भक्षणे च। ष्ठिवु, निरसने। जि, जये। जीव, प्राणधारणे। पीव, मीव, तीव, णीव, स्थौल्ये। क्षिवु, क्षेवु, निरसने। उर्वी, तुर्वी, थुर्वी, दुर्वी, धुर्वी, हिंसार्थाः। गुर्वी, उद्यमने। मुर्वी, बन्धने। पुर्व, पर्व, मर्व, पूरणे। चर्व, अदने। भर्व, हिंसायाम्। कर्व, खर्व, गर्व, दर्पे। अर्व, शर्व, षर्व, हिंसायाम्। इवि, व्याप्तौ। पिवि, मिवि, णिवि, सेवने। सेचने चेत्येके। हिवि, दिवि, धिवि, जिवि, प्रीणनार्थाः। रिवि, रवि, धवि, गत्यर्थाः। कृवि, हिंसाकरणयोश्च। मव, बन्धने। अव रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनक्रियेच्छादीप्त्यवाप्त्यालिंगनहिंसादानभागवृद्धिषु। इति जयतिवर्जमुदात्ता उदात्तेतः॥

धावु, गतिशुद्ध्योः। उदात्तः स्वरितेदुभयतोभाषः॥

अथोष्मान्ताः॥

तत्र धुक्षादयो घुष्यन्ता द्विपञ्चाशदात्मनेभाषाः॥

धुक्ष, धिक्ष, सन्दीपनक्लेशनजीवनेषु। वृक्ष, वरणे शिक्ष विद्योपादाने। भिक्ष, भिक्षायामलाभे लाभे च। क्लेश, अव्यक्तायां वाचि। बाधने च। दक्ष, वृद्धौ शीघ्रार्थे च। दीक्ष, मौण्ड्येज्योपनयननियमव्रतादेशेषु। ईक्ष, दर्शने। ईष, गतिहिंसादर्शनेषु। भाष, व्यक्तायां वाचि। वर्ष, स्नेहने। गेषृ, अन्विच्छायाम्। ग्लेषृ, इत्यन्ये।

पेषृ, प्रयत्ने । जेषृ, णेषृ, एषृ, प्रेषृ, गतौ । रेषृ, हेषृ, ह्रेषृ, अव्यक्ते शब्दे । कासृ, शब्दकुत्सायाम् भासृ, दीप्तौ । णासृ, रासृ, शब्दे । णस, कौटिल्ये । भ्यस, भये । आङः शसि, इच्छायाम् । ग्रसु, ग्लसु, अदने । ईह, चेष्टायाम् । बहि, महि, वृद्धौ । अहि, गतौ । गर्ह, गल्ह, कुत्सायाम् । बर्ह, बल्ह, प्राधान्ये । वर्ह, वल्ह, परिभाषणहिंसाच्छादनेषु । प्लिह, गतौ । वेहृ, जेहृ, वाहृ, प्रयत्ने । द्राहृ, निद्राक्षये । निक्षेप इत्येके । काशृ, दीप्तौ । ऊह, वितर्के । गाहू, विलोडने । गृहू, ग्लहू, ग्रहणे । घुषि, कान्तिकरणे ॥ इत्युदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ घुषिरादयोऽर्हत्यन्ता एकनवतिः परस्मैभाषाः ॥

घुषिर्, अविशब्दने । अक्षू, व्याप्तौ । तक्षू, त्वक्षू, तनूकरणे । उक्ष, सेचने । रक्ष, पालने । णिक्ष, चुम्बने । तृक्ष, स्तृक्ष, णक्ष, । गतौ । वक्ष, रोषे । संघात इत्येके । मृक्ष, संघाते । म्रक्ष, इत्येके । तक्ष, त्वचने । पक्ष, परिग्रह इत्येके । सूर्क्ष्य, आदरानादरयोः । काक्षि, वाक्षि, माक्षि, काङ्क्षायाम् । द्राक्षि, ध्राक्षि, ध्वाक्षि, घोर वाशिते च । चूष, पाने । तूष, तुष्टौ । पूष, वृद्धौ । मूष, स्तेये । लूष, रूष, भूषायाम् । शूष, प्रसवे । यूष, हिंसायाम् । जूष, च । भूष, अलंकारे । ऊष, रुजायाम् । ईष, उञ्छे । कष, खष, शिष, जष, झष, शष, वष, मष, रुष, रिष, हिंसार्थाः । भष, भर्त्सने । उष, दाहे । जिषु, विषु, मिषु, सेचने । पुष, पुष्टौ । श्रिषु, श्लिषु, प्रुषु, प्लुषु, दाहे । पृषु, वृषु, मृषु, सेचने । मृषु, सहने च । इतरौ हिंसासंक्लेशनयोश्च । घृषु, संघर्षणे । हृषु, अलीके । तुस, ह्रस, ह्लस, रस, शब्दे । लस, श्लेषणक्रीडनयोः । घस्लृ, अदने । जर्ज, चर्च, झर्झ, परिभाषणहिंसातर्जनेषु । पिसृ, पेसृ, गतौ । हसे, हसने । णिश, समाधौ । मिश, मश, शब्दे । रोषकृते च । शव, गतौ । शश, प्लुतगतौ । शसु, हिंसायाम् । शंसु, स्तुतौ । चह, परि-

कम्पने । मह, पूजायाम् । रह, त्यागे । रहि गतौ । दृह, दृहि, बृह, बृहि, वृद्धौ । बृहि, शब्दे च । बृहिर् इत्येके । तुहिर्, दुहिर्, उहिर्, अर्हने, अर्ह, पूजायाम् ॥ इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ द्युतादयः कृपूपर्यन्ताः पञ्चविंशतिरात्मनेभाषाः ॥

द्युत, दीप्तौ । श्विता, वर्णे । ञिमिदा, स्नेहने । ञिष्विदा, स्नेहनमोचनयोः । ञिक्ष्विदा, चेत्येके । रुच, दीप्तावभिप्रीतौ च । घुट, परिवर्तने । रुट, लुट, लुठ, उपघाते । शुभ, दीप्तौ । क्षुभ, संचलने । णभ, तुभ, हिंसायाम् । स्रंसु, ध्वंसु, भ्रंसु, अवस्रंसने । ध्वंसु, गतौच । भ्रशु, भ्रंशु, अधःपतने,। स्रंभु, विश्वासे । वृतु, वर्तने । वृधु,वृद्धौ । शृधु,शब्दकुत्सायाम् । स्यन्दू,प्रस्रवणे । कृपू, सामर्थ्ये (वृत्) * इति द्युतादय उदात्ता अनुदात्तेतः

अथ घटादयस्त्वरत्यन्ताः षोडशात्मनेभाषाः ॥

घट, चेष्टायाम् । व्यथ, भयसंचलनयोः । प्रथ, प्रख्याने । प्रस, विस्तारे । म्रद, मर्दने । स्खद, स्खदने । क्षजि,गतिदानयोः। दक्ष, गतिहिंसनयोः । क्रप, कृपायां गतौ च । कदि,क्रदि, क्लदि, वैक्लव्ये। वैकल्य इत्येके । कद, क्रद, क्लद, इत्यन्ये । ञित्वरा,संभ्रमे ॥ इति घटादय उदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ ज्वरादयः फणाऽन्ताः सप्तपंचाशत् परस्मैभाषाः

ज्वर,रोगे । गड,सेचने । हेड,वेष्टने । वट, भट, परिभाषणे । णट,नृतौ । ष्टक,प्रतीघाते । चक,तृप्तौ । कखे,हसने । रगे,शंकायाम् । लगे,संगे । ह्रगे,ह्लगे,षगे,ष्टगे, संवरणे । कगे,नोच्यते । क्रियासामान्यार्थत्वात् अनेकार्थत्वादित्यन्ये । अक, अग, कुटिलायां गतौ । कण, रण, गतौ । चण,शण, श्रण, दाने च । शण, गतावित्यन्ये। श्नथ, क्नथ, क्रथ, क्लथ, हिंसार्थाः । वन, च । वनु च नोच्यते ।

---

* संपूर्णो द्युतादिर्ह्वतादिश्चेत्यर्थः ॥

ज्वल, दीप्तौ । ह्वल, ह्मल, संचलने । स्मृ, आध्याने । दॄ, भये । नॄ, नये । श्रा, पाके । मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञा । कंपने, चलिः । छदि ऊर्जने । जिह्वोन्मथने, लडिः । मदी, हर्षग्लेपनयोः । ध्वन, शब्दे । दलि, वलि, स्खलि, रणि, ध्वनि, त्रपि, क्षपयश्च । स्वन, अवतंसने । घटादयो मितः । जनीजॄष्क्नसुरंजोऽमन्ताश्च । ज्वल ह्वलह्मलनमामनुपसर्गाद्वा । ग्लास्नावनुवमां च । न कम्यमिचमाम् । शमोऽदर्शने । यमो, परिवेषणे । स्खदिरवपरिभ्यां च । फण, गतौ । वृत् *। इति ज्वरादय उदात्ता उदात्तेतः

राजृ, दीप्तौ । उदात्तः स्वरितेदुभयतोभाषः ॥

टुभ्राजृ, टुभ्राशृ, टुभ्लाशृ दीप्तौ । उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः ॥

अथ स्यमादयः क्षुरत्यन्ताः सप्तविंशतिः परस्मैभाषाः ॥

स्यमु, स्वन, ध्वन, शब्दे । षम, ष्टम, अवैक्लव्ये । ज्वल, दीप्तौ चल, कंपने । जल, घातने । टल, ट्वल, वैक्लव्ये । ष्ठल, स्थाने हल, विलेखने । णल, गन्धे । बन्धन इत्येके । पल, गतौ । बल, प्राणने धान्यावरोधे च । पुल, महत्त्वे । कुल, संस्त्याने बन्धुषु च । शल, हुल, पत्लृ, गतौ । क्वथे, निष्पाके । पथे, गतौ । मथे, विलोडने । टुवम, उद्गिरणे । भ्रमु, चलने । क्षर, संचलने । क्षुर, संचये । इतिस्यमादय उदात्ता उदात्तेतः ।

अथ द्वावनुदात्तेतौ ॥

षह, मर्षणे । उदात्तोऽनुदात्तेत् ॥

रमु, क्रीडायाम् । अनुदात्तोऽनुदात्तेत् ॥

अथ षदादयः कसंताः सप्त परस्मैभाषाः ॥

षद्लृ, विशरणगत्यवसादनेषु । शद्लृ, शातने । क्रुश, आह्वाने रोदने च । कुच, संपर्चनकौटिल्यप्रतिष्टम्भविलेखनेषु । बुध, अवगमने ।

* घटादिर्गणः समाप्तः ।

रुहवीजजन्मनिप्रादुर्भावेच। कस,गतौ। कुचादय उदात्ताउदात्ते तोरुहिस्त्वनुदात्तः ॥ वृत् ॥ इति ज्वलादिर्गणः ॥

अथ हिक्कादयो गुहत्यन्ताः पंचचत्वारिंशदुभयतोभाषाः ॥

हिक्क,अव्यक्ते शब्दे। अंचु,गतौ याचने च। अचु,इत्येके,अचि, इत्यपरे। टुयाचृ, याञ्चायाम्। रेटृ, परिभाषणे। चते, चदे, याचने। प्रोथृ, पर्याप्तौ। मिदृ, मेदृ, मेधाहिंसनयोः। मेधृ,संगमे च। मिथृ,मेथृ, मेधाहिंसयोरित्येके। मिधृ,मेधृ, इत्यन्ये। णिदृ,णेदृ, कुत्सासन्निकर्षयोः। शृधु, मृधु, उन्दने। बुधिर्, बोधने उबुंदिर् निशामने। वेणृ, गतिज्ञानचिन्तानिशामनवादित्रग्रहणेषु। वेनृ, इत्येके। खनु, अवदारणे। चीवृ,आदानसंवरणयोः। चायृ,पूजा-निशामनयोः। व्यय, गतौ। दाशृ,दाने। भेषृ, भये। गतावित्येके भ्रेषृ,भ्लेषृ, गतौ। अस,गतिदीप्त्यादानेषु। अषेत्येके। स्पश, बाध-स्पर्शनयोः। लष, कान्तौ। चष, भक्षणे। छष, हिंसायाम् झष, आदानसंवरणयोः। भक्ष,भ्लक्ष, अदने। भक्ष, च। दासृ,दाने। माहृ, माने। गुहू,संवरणे। इति हिक्कादय उदात्ताःस्वरितेतः ॥

अथाऽजन्ताः श्रिञादयो नयत्यन्ताः पंचोभयतोभाषाः ॥

श्रिञ्, सेवायाम्। उदात्तः स्वरितेत्। भृञ्, भरणे। हृञ्, हरणे। धृञ्,धारणे। णीञ्,प्रापणे। इति भरत्यादयोऽनुदात्ताः स्वरितेतः ॥

अथ धेटादयो जयत्यान्ताः षट्चत्वारिंशत्परस्मैभाषाः ॥

धेट्,पाने। ग्लै,म्लै,हर्षक्षये। द्यै न्यक्करणे। द्रै,स्वप्ने। ध्रै,तृप्तौ। ध्यै, चिन्तायाम्। रै,शब्दे। स्त्यै, ष्ट्यै, शब्दसंघातयोः। खै खदने। क्षै,जै, षै, क्षये। कै, गै, शब्दे। शै,श्रै,पाके। पै,ओवै,शोषणे। ष्टै, वेष्टने। ष्णै, वेष्टने। शोभायां चेत्येके। दैप्, शोधने। पा, पाने। घ्रा,गन्धोपादाने। ध्मा, शब्दाग्निसंयोगयोः। ष्ठा, गतिनिवृत्तौ। म्ना,अभ्यासे। दाण्, दाने। ह्वृ, कौटिल्ये। स्वृ, शब्दोपतापयोः।

स्मृ, चिन्तायाम्। ह्वृ,संवरणे। सृ,गतौ। ऋ, गतिप्रापणयोः। गृ, घृ, सेचने। ध्वृ, हूर्छने। स्रु, गतौ। षु, प्रसवैश्वर्ययोः। श्रु, श्रवणे। ध्रु,स्थैर्ये। दु,द्रु,गतौ। जि,ज्रि,अभिभवे। इति धेटादयोऽनुदात्ताः॥

अथ ष्मिङ्ङादयो डीङंताङितः सप्तविंशतिरात्मनेभाषाः॥

ष्मिङ्, ईषद्धसने। गुङ्, अव्यक्ते शब्दे। गाङ्, गतौ। कुङ्, घुङ्, उङ्,ङुङ्,शब्दे। क्रुङ्, खुङ्, गुङ्, डुङ्, चेत्याहुरन्ये। च्युङ्, ज्युङ्, जुङ्, प्रुङ्, प्लुङ्, गतौ। क्लुङ् इत्येके। रुङ्, गतिरेषणयोः। धृङ्, अवध्वंसने। मेङ्, प्रणिदाने। देङ्, रक्षणे। श्यैङ्, गतौ। प्यैङ्, वृद्धौ। त्रैङ्, पालने।

इति ष्मिङ्प्रभृतयोऽनुदात्ताः॥

पूङ्, पवने। मूङ्, बन्धने। डीङ्, विहायसागतौ। इति पूङादय उदात्ताः॥

तॄ, प्लवनसंतरणयोः। उदात्तः परस्मैभाषः॥

अथ गुपादयो दहत्यन्ता अष्टावात्मनेभाषाः॥

गुप, गोपने। तिज, निशाने। मान, पूजायाम्। वध, बन्धने। गुपादयश्चत्वार उदात्ता अनुदात्तेतः॥

रभ, राभस्ये। डुलभष्, प्राप्तौ। ष्वञ्ज,परिष्वङ्गे। हद, पुरीषोत्सर्गे। रभादयश्चत्वारोऽनुदात्ता अनुदात्तेतः॥

अथ ञिष्विदादयो मेहत्यन्ताः पञ्चदश परस्मैभाषाः॥

ञिष्विदा, अव्यक्ते शब्दे। उदात्तः। स्कन्दिर्, गतिशोषणयोः। यभ, मैथुने। णम, प्रह्वत्वे शब्दे च। गम्लृ, सृप्लृ, गतौ। यम, उपरमे। तप, सन्तापे। त्यज,हानौ। षंज,संगे। दृशिर्,प्रेक्षणे। दंश, दशने। कृष, विलेखने। दह, भस्मीकरणे। मिह, सेचने। स्कन्दादयोऽनुदात्ताः। इति ष्विदादय उदात्तेतः॥

अथैकः परस्मैभाषः ॥

कित, निवासे रोगापनयने च । उदात्तेत् ॥

अथ द्वावुभयतोभाषौ ॥

दान, खंडने । शान, तेजने । स्वरितेतौ ॥

अथ पचादयो वहत्यन्ता नवोभयतोभाषाः ॥

डुपचष्, पाके । षच, समवाये । भज,सेवायाम् । रंज,रागे । शप, आक्रोशे । त्विष, दीप्तौ । यज, देवपूजासंगतिकरणदानेषु । डुवप, बीजसन्ताने छेदने च । वह, प्रापणे ॥ इति पचादयोऽनुदात्ताः स्वरितेतः सचतिरनुदात्तः ।

अथैकः परस्मैभाषः ।

वस, निवासे । उदात्तेदनुदात्तः ।

अथ व्येञादयस्त्रय उभयतोभाषाः ।

वेञ्, तन्तुसन्ताने । व्येञ् संवरणे । ह्वेञ्, स्पर्द्धायां शब्दे च । व्येञादयोऽनुदात्ताः ।

अथ द्वौ परस्मैभाषौ ।

वद,व्यक्तायां वाचि । टुओश्वि,गतिवृद्ध्योः इत्युदात्तौ । वृत् । इति यजादिर्गणः समाप्तः ।

इति शब्विकरणा भ्वादयः समाप्ताः ॥

—*—

अथाऽदादिर्गणः।

अथ द्वौपरस्मैभाषौ।

अद, भक्षणे। हन, हिंसागत्योः। अनुदात्तावुदात्तेतौ॥

अथ चत्वार उभयतोभाषाः।

द्विष, अप्रीतौ। दुह,प्रपूरणे। दिह,उपचये। लिह,आस्वादने। द्विषादयोनुदात्ताः स्वरितेतः।

अथैक आत्मनेभाषः॥

चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि। अयं दर्शनेऽपि। अनुदात्तेतोऽनुदात्तेत्॥

अथ एच्यन्ताः षोडशात्मनेभाषाः।

ईर,गतौ कंपने च। ईड, स्तुतौ। ईश, ऐश्वर्ये। आस, उपवेशने। आङः शासु, इच्छायाम्। वस, आच्छादने। कसि, गति, शासनयोः। कस इत्येके। कश,इत्यन्ये। णिसि,चुंबने। णिजि,शुद्धौ। शिजि, अव्यक्ते शब्दे। पिजि, वर्णे। पृजीत्येके। वृजी,वर्जने। पृची, संपर्चने। इतीरादय उदात्ता अनुदात्तेतः॥

अथ द्वावात्मनेभाषौ॥

षूङ्, प्राणिगर्भविमोचने। शीङ्, स्वप्ने। उदात्तौ॥

अथ पञ्च परस्मैभाषाः॥

यु, मिश्रणे अमिश्रणे च। णु, स्तुतौ। रु, शब्दे। टु,क्षु,शब्दे। क्ष्णु, तेजने। इत्युदात्ता उदात्तेतः॥

अथैक उभयतोभाषः ॥

ऊर्णुञ्, आच्छादने । उदात्तः ॥

अथ पञ्च परस्मैभाषाः ॥

ष्णु, प्रस्रवणे । ष्णु, अभिगमने । षु, प्रसवैश्वर्ययोः । कु, शब्दे । तु, गतिवृद्धिहिंसासु । इत्यनुदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ द्वावुभयतोभाषौ ॥

ष्टुञ्, स्तुतौ । ब्रूञ्, व्यक्तायां वाचि । इत्यनुदात्तौ ॥

अथैकोनविंशतिः परस्मैभाषा इङ्त्वात्मनेभाषः ॥

इण्, गतौ । इङ्, अध्ययने । इक्, स्मरणे । वी, गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु । या, प्रापणे । वा, गतिगन्धनयोः । भा, दीप्तौ । ष्णा, शौचे । श्रा, पाके । द्रा, कुत्सायां गतौ च । प्सा, भक्षणे । पा, रक्षणे । रा, दाने । ला, आदाने । दाप्, लवने । ख्या, प्रकथने । प्रा, पूरणे । मा, माने । वच, परिभाषणे । इत्यनुदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ चत्वारः परस्मैभाषाः ॥

विद, ज्ञाने । अस, भुवि । मृजूष, शुद्धौ । रुदिर्, अश्रुविमोचने । इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथैकः परस्मैभाषः ॥

ञिष्वप्, शये । उदात्तेदनुदात्तः

अथ सप्त परस्मैभाषाः ।

श्वस, प्राणने । अन, च । जक्ष, भक्षहसनयोः । जागृ, निद्राक्षये । दरिद्रा, दुर्गतौ । चकासृ, दीप्तौ । शासु, अनुशिष्टौ । इत्युदात्ता उदात्तेतः ।

अथ द्वावात्मनेभाषौ ।

दीधीङ्, दीप्तिदेवनयोः । वेवीङ्, वेतिना तुल्ये । इत्युदात्तौ ।

अथ चयः परस्मैभाषाः ।

षस, षस्ति, स्वप्ने । वश, कान्तौ । इत्युदात्ताः उदात्तेतः । चर्करीतं च ।

अथैक आत्मनेभाषः ।

ह्नुङ्, अपनयने । इत्यनुदात्तः ।

इति लुग्विकरणा अदादयः ॥

अथ जुहोत्यादिर्गणः

अथ चयः परस्मैभाषाः ।

हु, दानादनयोः । आदाने चेत्येके । ञिभी, भये । ह्री, लज्जायाम् । जुहोत्यादयो ऽनुदात्ताः ।

अथैकः परस्मैभाषः ।

पॄ, पालनपूर्णयोः उदात्तः । ह्रस्वान्तोयमित्येके ।

अथैक उभयतोभाषः ।

डुभृञ्, धारणपोषणयोः । अनुदात्तः ॥

अथ द्वावात्मनेभाषौ ।

माङ्, माने शब्दे च । ओहाङ्, गतौ ।

अथैकः परस्मैभाषः ।

ओहाक्, त्यागे । अनुदात्तः ॥

अथ द्वावुभयतोभाषौ ॥

डुदाञ्, दाने । डुधाञ्, धारणपोषणयोः । अनुदात्तौ ।

अथ त्रय उभयतोभाषाः।

णिजिर्, शौचपोषणयोः। विजिर्, पृथग्भावे। विष्लृ, व्याप्तौ। इति णिजादयोऽनुदात्ताः स्वरितेतः ॥

अथ गणान्ताः परस्मैभाषाश्छन्दसाश्चैकादश ॥

घृ, क्षरणदीप्त्योः। हृ, प्रसह्यकरणे। ऋ, सृ, गतौ। इति घ्रादय श्चत्वारोऽनुदात्ताः ॥

भस, भर्त्सनदीप्त्योः। उदात्त उदात्तेत्। कि, ज्ञाने। अनुदात्तः। तुर, त्वरणे। धिष, शब्दे। धन, धान्ये। जन, जनने। तुरादय उदात्ता उदात्तेतः। गा, स्तुतौ अनुदात्तः। छन्दसि

वृत्। इति श्लु विकरणा जुहोत्यादयः ॥

अथ दिवादिर्गणः ॥

—:॰:—

अथ दिवादयः षड्विंशतिः परस्मैभाषाः ॥

दिवु, क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु। षिवु, तन्तुसन्ताने। स्रिवु, गतिशोषणयोः। ष्ठिवु, निरसने। स्नुसु, अदने। आदान इत्येके। अदर्शन इत्यपरे। स्नसु, निरसने। क्नसु, ह्वरणदीप्त्योः। व्युष, दाहे। प्लुष, च। नृती, गात्रविक्षेपे। त्रसी, उद्वेगे। कुथ, पूतीभावे। पुथ, हिंसायाम्। गुध, परिवेष्टने। क्षिप, प्रेरणे। अनुदात्तः। पुष्प, विकसने। तिम, तीम, ष्टिम, ष्टीम, आर्द्रीभावे। व्रीड, चोदने लज्जायाञ्च इष, गतौ। षह, षुह, चक्यर्थे। जॄष्, झॄष्, वयोहानौ। इति दिवादय उदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ द्वावात्मनेभाषौ ॥

षूङ्, प्राणिप्रसवे । दूङ्, परितापे । इत्युदात्तौ ॥

अथ दीङादय एकादश आत्मनेभाषाः ॥

दीङ्, क्षये । डीङ् विहायसा गतौ । धीङ्, आधारे । मीङ्, हिंसायाम् । रीङ्, स्रवणे । लीङ्, श्लेषणे । व्रीङ्, वृणोत्यर्थे । (वृत्) स्वादय ओदितः । पीङ्, पाने । माङ्, माने । ईङ्, गतौ । प्रीङ्, प्रीणने । इति दीङादय अनुदात्ता डीङ् तूदात्तः ॥

अथ चत्वारः परस्मैभाषाः ॥

शो, तनूकरणे । छो, छेदने । षो, अन्तकर्मणि । दो, अवखंडने । श्यतिप्रभृतयोनुदात्ताः ॥

अथ पंचदशात्मनेभाषाः ॥

जनी, प्रादुर्भावे । दीपी, दीप्तौ । पूरी, आप्यायने । तूरी, गतित्वरणहिंसनयोः । धूरी, गूरी, हिंसागत्योः । घूरी, जूरी, हिंसावयोहान्योः । शूरी, हिंसास्तंभनयोः । चूरी, दाहे । तप, ऐश्वर्ये वा वृतु, वरणे । क्लिश, उपतापे । काशृ, दीप्तौ । वाशृ, शब्दे । इति तपिवर्जमुदात्ता अनुदात्तेतः ।

अथ द्वावुभयतोभाषौ ।

मृष, तितिक्षायाम् । ईशुचिर्, पूतीभावे । उदात्तौ स्वरितेतौ ।

अथ त्रय उभयतोभाषाः ।

णह, बन्धने । रंज, रागे । शप, आक्रोशे । इत्यनुदात्ताः स्वरितेतः ।

अथैकादशात्मनेभाषाः ।

पद, गतौ । खिद, दैन्ये । विद, सत्तायाम् । बुध, अवगमने । युध, संप्रहारे । अनोरुध, कामे । अण, प्राणने । उदात्तः । मन, ज्ञाने । युज, समाधौ । सृज, विसर्गे । लिश, अल्पीभावे । इत्यनुदात्ता अनुदात्तेतः ।

अथ गणान्ता एकसप्ततिः परस्मैभाषाः ।

राधोऽकर्मकाद्वृद्धावेव । व्यध, ताडने । पुष, पुष्टौ । शुष, शो-
षणे । तुष,प्रीतौ । दुष, वैकृत्ये । श्लिष, आलिंगने । शक, विभा-
षितो मर्षणे । ञिष्विदा,गात्रप्रक्षरणे । क्रुध, क्रोधे । क्षुध, बुभुक्षा
याम् । शुध, शौचे । षिधु,संराद्धौ । इत्यनुदात्ता उदात्तेतः । रध,
हिंसासंराद्ध्योः । णश, अदर्शने । तृप, प्रीणने । दृप, हर्षणमोह-
योः । द्रुह, जिघांसायाम्।मुह,वैचित्त्ये । स्नुह,उद्गिरणे । ष्णिह,
प्रीतौ । वृत् रधादयः । इत्युदात्ता उदात्तेतस्तृपिदृपीत्वनुदात्तौ ।

अथ शमादयः ॥

शमु, उपशमे । तमु,कांक्षायाम् । दमु,उपशमे । श्रमु, तपसि
खेदे च । भ्रमु, अनवस्थाने । क्षमूष्, सहने । क्लमु, ग्लानौ ।
मदी, हर्षे । इत्यष्टौ शमादयः । असु, क्षेपणे । यसु, प्रयत्ने । जसु,
मोक्षणे । तसु, उपक्षये । दसु, च । वसु, स्तंभे । बशादिरित्येके ।
ओष्ठ्यादिर्दन्त्यान्तो व्युस् इत्यन्ये । अयकारं बुस् इत्यपरे । व्युष,
विभागे । प्लुष, दाहे । बिस, प्रेरणे । कुस, संश्लेषणे । बुस, उत्सर्गे ।
मुस, खंडने । मसी, परिणामे । समी इत्येके । लुठ, विलोडने
उच, समवाये । भृशु, भ्रंशु, अधःपतने । वृश, वरणे । कृश, तनू-
करणे । ञितृष, पिपासायाम् । हृष, तुष्टौ । रुष, रिष, हिंसा-
याम् । डिप, क्षेपे । कुप,क्रोधे । गुप,व्याकुलत्वे । युपु, रुपु, लुपु,
विमोहने । लुभ, गार्ध्ये । क्षुभ, संचलने । णभ, तुभ,हिंसायाम् ।
क्लिदू,आर्द्रीभावे। ञिमिदा,स्नेहने। ञिक्ष्विदा,स्नेहनमोचनयोः।
ऋधु,वृद्धौ । गृधु,अभिकांक्षायाम् । वृत्। इत्युदात्ता उदात्तेतः ।

इति श्यन्विकरणा दिवादयः ॥

अथ स्वादिगणः ॥

—:*:—

अथ स्वादयो दशोभयतोभाषाः ।

षुञ्, अभिषवे । षिञ्, बन्धने । शिञ्, निशाने । डुमिञ्, प्रक्षेपणे । चिञ्, चयने । स्तृञ्, आच्छादने । कृञ्, हिंसायाम् । वृञ्, वरणे । धुञ्, कंपने । दीर्घान्तोपीत्येके । इति वृञ् वर्जमनुदात्ताः ।

अथ नव परस्मैभाषाः ।

टुदु, उपतापे । हि, गतौ वृद्धौ च । पृ, प्रीतौ । स्पृ, प्रीति सेवनयोः । प्रीतिचलनयोरित्यन्ये । स्मृ, इत्येके । आपॢ, व्याप्तौ । शकॢ, शक्तौ । राध, साध, संसिद्धौ । इत्यनुदात्ताः ।

अथ द्वावात्मनेभाषौ ।

अशूङ् व्याप्तौ संघाते च । ष्टिघ, आस्कन्दने । इत्युदात्तावनुदात्तेतौ ।

अथागणान्ताः षोडश परस्मैभाषाः ।

तिक, तिग, गतौ च । षघ, हिंसायाम् । ञिधृषा, प्रागल्भ्ये । दंभु, दंभने । ऋधु, वृद्धौ । छन्दसि । तृप, प्रीणन इत्येके । अह, व्याप्तौ । दघ, घातने पालने च । चमु, भक्षणे । रि, क्षि, चिरि, जिरि, दाशृ, दृ, हिंसायाम् । इत्युदात्ता उदात्तेतः ।

वृत् । इति श्नुविकरणाः स्वादयः ॥

अथ तुदादिर्गणः ।

—:※:—

अथ षडुभयतोभाषाः ।

तुद, व्यथने । णुद, प्रेरणे । दिश, अतिसर्जने । भ्रस्ज, पाके
क्षिप, प्रेरणे । कृष, विलेखने । इत्यनुदात्ताः स्वरितेतः ।

अथैकः परस्मैभाषः ।

ऋषी, गतौ । उदात्त उदात्तेत् ।

अथ चत्वार आत्मनेभाषाः ।

जुषी, प्रीतिसेवनयोः । ओविजी, भयचलनयोः । ओलजी,
ओलस्जी, व्रीडायाम् । इत्युदात्ता अनुदात्तेतः ।

अथ व्रश्चादयस्तुर्दशोत्तरशतं परस्मैभाषाः ।

ओव्रश्चू, छेदने । व्यच, व्याजीकरणे । उछि, उछी । उच्छी,
विवासे । ऋच्छ, गतीन्द्रियप्रलयमूर्त्तिभावेषु । मिच्छ, उत्क्लेशे ।
जर्ज, चर्च, झर्झ, परिभाषणभर्त्सनयोः । त्वच, संवरणे । ऋच,
स्तुतौ । उज, आर्जवे । उज्झ, उत्सर्गे । लुभ, विमोहने । रिफ,
कत्थनयुद्धनिन्दाहिंसादानेषु । रिह, इत्येके । तृप, तृंप, तृप्तौ ।
तृफ, तृंफ इत्येके । तुप, तुंप, तुफ, तुंफ, हिंसायाम् । दृफ, दृंफ,
उत्क्लेशे । दृफ, इत्यन्ये । ऋफ, ऋंफ, हिंसायाम् । गुफ, गुंफ, ग्रन्थे ।
उभ, उंभ, पूरणे । शुभ, शुंभ, शोभार्थे । दृभी, ग्रन्थे । चृती, हिंसाग्र-
न्थनयोः । विध, विधाने । जुड, गतौ । जुन, इत्येके । मृड, सुखने ।
पृड, च । पृण, प्रीणने । वृण, च । मृड, हिंसायाम् । तुण, कौटिल्ये ।
पुण, कर्मणि शुभे । मुण, प्रतिज्ञाने । कुण, शब्दोपकरणयोः ।
शुन, गतौ । द्रुण, हिंसागतिकौटिल्येषु । घुण, घूर्ण, भ्रमणे । षुर,
ऐश्वर्यदीप्त्योः । कुर, शब्दे । खुर, छेदने । मुर, संवेष्टने । क्षुर,

विलेखने । घुर, भीमार्थशब्दयोः । पुर, गमने । वृहू, उद्यमने । वृहू, इत्येके । तृहू, स्तृहू, तृंहू, हिंसार्थाः । इषु, इच्छायाम् । मिष, स्पर्द्धायाम् । किल, श्वैत्यक्रीडनयोः । तिल, स्नेहे । चिल, वसने । चल, विलसने । इल, स्वप्नक्षेपणयोः । विल, संवरणे । विल, भेदने । णिल, गहने । हिल, भावकरणे । शिल, षिल, उञ्छे । मिल,श्लेषणे । लिख, अक्षरविन्यासे । कुट, कौटिल्ये । पुट, संश्लेषणे । कुच, संकोचने । गुज, शब्दे । गुड, रक्षायाम् । डिप,क्षेपे । कुर,छेदने । स्फुट,विकसने । मुट, आक्षेपप्रमर्दनयोः । चुट, छेदने । तुट, कलहकर्मणि । चुट, छुट, छेदने । जुड,बन्धने । कड, मदे । लुठ, संश्लेषणे । लुट, इत्येके । कृड, घनत्वे । कुड, बाल्ये । पुड, उत्सर्गे । घुट, प्रतिघाते । तुड, तोडने । थुड,स्थुड, संवरणे । खुड,छुड,इत्येके । स्फुर,स्फुरणे । स्फर, इत्येके । स्फुल, संचलने । स्फुड, चुड, व्रुड, सम्वरणे । क्रुड, भृड, निमज्जने । इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथैक आत्मनेभाषः ॥

गुरी,उद्यमने । इत्युदात्तोऽनुदात्तेत् ।

अथ पंच परस्मैभाषाः ॥

णू,स्तवने । धू,विधूनने । गु,पुरीषोत्सर्गे । ध्रु, गतिस्थैर्ययोः । ध्रुव, इत्येके । इत्याद्यावुदात्तावन्त्याश्चानुदात्ताः ।

अथ द्वावात्मने भाषौ।कूङ, शब्दे।कुङ,शब्द इत्येके ।इत्युदात्तौ।

(वृत्) इति कुटादिगणः समाप्तः ॥

अथ द्वावात्मनेभाषौ ॥

पृङ, व्यायामे । मृङ, प्राणत्यागे । इत्यनुदात्तौ ॥

अथ सप्त परस्मैभाषाः ॥

——:*:——

रि, पि, गतौ । धि, धारणे । क्षि, निवासगत्योः । इत्यनुदात्ताः
षू, प्रेरणे । कॄ, विक्षेपे । गॄ, निगरणे । इत्युदात्ताः ॥

अथ द्वावात्मनेभाषौ ॥

दृङ्, आदरे । धृङ्, अनवस्थाने । इत्यनुदात्तौ ॥

अथ षोडश परस्मैभाषाः ॥

प्रच्छ, ज्ञीप्सायाम् । वृत् । किरादयो वृतः ॥

सृज, विसर्गे । टुमस्जो, शुद्धौ । रुजो, भङ्गे । भुजो, कौटिल्ये । छुप, स्पर्शे । रुश, रिश, हिंसायाम् । लिश, गतौ । स्पृश, संस्पर्शने । विच्छ, गतौ । विश, प्रवेशने । मृश, आमर्शने । णुद, प्रेरणे । षद्लृ, विशरणगत्यवसादनेषु । शद्लृ, शातने । इत्यनुदात्ता उदात्तेतो विच्छिस्तूदात्तः ॥

अथ षडुभयतोभाषाः ॥

मिल, संगमे । मुच्लृ, मोचने । लुप्लृ, छेदने । विद्लृ, लाभे । लिप, उपदेहे । षिच, क्षरणे । इत्यनुदात्ताः स्वरितेतो मिलिस्तूदात्तः ॥

अथ त्रयः परस्मैभाषाः ॥

कृती, छेदने । खिद, परिघातने । पिश, अवयवे । इत्युदात्ता उदात्तेतः खिदिस्त्वनुदात्तः । वृत् ।

इति शविकरणास्तुदादयः ॥

अथ रुधादिगणः ॥

—०—

अथ नवोभयतोभाषाः ॥

रुधिर्, आवरणे । भिदिर्, विदारणे । छिदिर्, द्वैधीकरणे रिचिर्, विरेचने । विचिर्, पृथग्भावे । क्षुदिर्, संपेषणे । युजिर्, योगे । उच्छृदिर्, दीप्तिदेवनयोः । उतृदिर्, हिंसानादरयोः इत्यनुदात्ताः स्वरितेतः छृदितृदौ तूदात्तौ ।

अथैकः परस्मैभाषः ।

कृती, छेदने । इत्युदात्त उदात्तेत् ।

अथैक आत्मनेभाषः ।

ञिइन्धी, दीप्तौ । उदात्तोऽनुदातेत्

अथ द्वावात्मनेभाषौ ।

खिद, दैन्ये । विद, विचारणे । इत्यनुदात्तावनुदात्तेतौ ।

अथ द्वादश परस्मैभाषाः ॥

शिष्लृ, विशेषणे । पिष्लृ, संचूर्णने । भंजो, आमर्दने । भुज, पालनाभ्यवहारयोः । तृह, हिंसि, हिंसायाम् । उन्दी, क्लेदने । अञ्जू, व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु । तंचू, संकोचने । ओविजी, भयचलनयोः । वृजी, वर्जने । पृची, संपर्के । इत्युदात्ता उदात्तेतः । आद्याश्चत्वारस्त्वनुदात्ताः । वृत् ।

इति श्नम्विकरणा रुधादयः ॥

अथतनादिर्गणः ॥

—:॥:—

अथसप्तोभयतोभाषाः।

तनु, विस्तारे। षणु, दाने। क्षणु, हिंसायाम्। क्षिणु, च। ऋणु, गतौ। तृणु,अदने। घृणु, दीप्तौ। इत्युदात्ताः स्वरितेतः।

अथ द्वावात्मनेभाषौ।

वनु, याचने। मनु, अवबोधने। इत्युदात्तावनुदात्तेतौ।

अथैक उभयतोभाषः।

डुकृञ्, करणे। अनुदात्तः। वृत्

इत्युविकरणास्तनादयः॥

अथ क्र्यादिर्गणः।

—:॥:—

अथ सप्तोभयतोभाषाः।

डुक्रीञ्, द्रव्यविनिमये। प्रीञ्, तर्पणे कान्तौ च। श्रीञ्, पाके। मीञ्, हिंसायाम्। षिञ्, बन्धने। स्कुञ्, आप्रवणे। युञ्, बन्धने। इत्यनुदात्ताः।

अथ नवोभयतोभाषाः।

क्नूञ्, शब्दे। द्रूञ्, हिंसायाम्। पूञ्, पवने। मूञ्, बन्धने। लूञ्, छेदने। स्तॄञ्, आच्छादने। कॄञ्,हिंसायाम्। वृञ्, वरणे। धूञ्, कम्पने। इत्युदात्ताः।

अथ आद्यो गृणात्यन्तास्त्रयोदश परस्मैभाषाः ।

शॄ, हिंसायाम् । पॄ, पालनपूरणयोः । वॄ, वरणे । स्तॄ, हिंसायाम् भॄ, भरणे । भॄ, भर्त्सने । जॄ, वयोहानौ । झॄ, इत्येके । दॄ, विदारणे । धॄ, इत्यन्ये । नॄ, नये । मॄ, हिंसायाम् । ऋॄ, गतौ । गॄ, शब्दे । इति आदय उदात्ताः ।

अथ दश परस्मैभाषाः ।

ज्या, वयोहानौ । ब्री, वरणे । री, गतिरेषणयोः । ली, श्लेषणे । व्ली, वरणे । प्ली, गतौ । वृत् । इति प्वादयः ॥

ब्लीष्, हिंसायाम् । भ्री, भये । ज्ञा, अवबोधने । बन्ध, बन्धने । इति ज्यादयोऽनुदात्ताः ।

अथैक आत्मनेभाषः ।

वृङ्, संभक्तौ । इत्युदात्तः । इति ल्वादयः ।

अथ पञ्चविंशतिः परस्मैभाषाः ।

श्रन्थ, विमोचनप्रतिहर्षयोः । मन्थ, विलोडने । श्रन्थ, ग्रन्थ, संदर्भे । कुन्थ, संश्लेषणे । मृद, क्षोदे । मृड, च । मृड, सुखेच । गुध, रोषे । कुष, निष्कर्षे । क्षुभ, सञ्चलने । णभ, तुभ, हिंसायाम् । क्लिशू, विबाधने । अश, भोजने । उध्रस, उञ्छे । इष, आभीक्ष्ण्ये । विष, विप्रयोगे । प्रुष, प्लुष, स्नेहनसेचनपूरणेषु । पुष, पुष्टौ । मुष, स्तेये । खच, भूतप्रादुर्भावे । खव, इत्येके । हिठ, च । इति श्रन्यादय उदात्ता उदात्तेतः ।

अथैक उभयतोभाषः ।

ग्रह, उपादाने । इत्युदात्तः स्वरितेत् । वृत् ।

इति श्नाविकरणाः क्र्यादयः ॥

अथ चुरादिर्गणः

---*---

अथ चुरादयस्तुधन्तास्त्रिषष्ट्युत्तरमेकशतमुदात्तेतः

परस्मैभाषाः ॥

चुर, स्तेये। चिति, स्मृत्याम्। यत्रि, सङ्कोचने। स्फुडि, परिहासे। लक्ष, दर्शनाङ्कनयोः। कुद्रि, अनृतभाषणे। लड, उपसेवायाम्। मिदि, स्नेहने। ओलडि, उत्क्षेपणे। जल, अपवारणे लजेत्येके। पीड, अवगाहने। नट, अवस्यन्दने। श्रथ, प्रयत्ने प्रस्थान इत्येके। बध, संयमने। ऊर्ज्ज, बलप्राणनयोः। पक्ष, परिग्रहे। वर्ण, वर्णने, वर्ण, चूर्ण, प्रेरणे। प्रथ, प्रख्याने। पृथ, प्रक्षेपे। पथ, इत्येके। षम्ब, संबन्धने। शम्ब, च। साम्ब, इत्येके। भक्ष, अदने। कुट्ट, छेदनभर्त्सनयोः। पूरण इत्येके। पुट्ट, चुट्ट, अल्पीभावे। अट्ट, षुट्ट, अनादरे। लुण्ठ, स्तेये। शठ, श्वठ, असंस्कारगत्योः। श्वठि, इत्येके। पिज, कुजि, तुजि, पिजि, लजि, लुजि, हिंसाबलादाननिकेतनेषु। पिस, गतौ। षान्त्व, सामप्रयोगे। श्वल्क, वल्क, परिभाषणे। ष्णिह, स्नेहने। स्फिट, इत्येके। स्मिट, अनादरे। ष्मिङ्, अनादर इत्येके। श्लिष, श्लेषणे। पथि, गतौ। पिच्छ, कुट्टने। छदि, संवरणे। श्रण, दाने। तड, आघाते। खड, खडि, कडि, भेदने। कुडि, रक्षणे। गुडि, वेष्टने च। कुठि, गुठि, चेत्यन्ये। खुडि, खंडने। वटि, विभाजने। वडि, इत्येके। चडि, कोपे। मडि, भूषायाम्। हर्षे च। भडि, कल्याणे। छर्द, वमने। पुस्त, बुस्त, आदरानादरयोः। चुद, संचोदने। नक्क, धक्क, नाशने। चक्क, चुक्क, व्यथने। क्षल, शौचकर्मणि। तल, प्रतिष्ठायाम्। तुल, उन्माने। दुल, उत्क्षेपे। पुल, महत्त्वे। चुल, समुच्छ्राये। मूल, रोहणे। वुल, निमज्जने। कल, विल, क्षेपे। बिल, भेदने। तिल, स्नेहने।

चल, भृतौ। पाल, रक्षणे । तूष, हिंसायाम्। शुल्क, माने। शूर्प, च। चुट, छेदने। मुट, संचूर्णने। पिश, नाशने। पडि, पसि, नाशने । वज, मार्गसंस्कारगत्योः। शुल्क, अतिस्पर्शने। चपि, गत्याम्। क्षपि, क्षान्त्याम्। क्षजि, कृच्छ्रजीवने। श्वर्त्त, गत्याम्। श्वभ्र, च। ज्ञप, मिच्च। क्षप, मारणतोषणनिशामनेषु। यम, च परिवेषणे। चह, परिकल्कने। बल, प्राणने। चिञ्, चयने। रह, त्यागे। घट्ट, चलने। मुस्त, संघाते। खट्ट, संवरणे। खट्ट, स्फिट्ट, चुबि, हिंसायाम्। पूल, सङ्घाते। पूण, इत्येके। पुंस, अभिवर्द्धने। टकि, बन्धने। धूस, कान्तिकरणे। कीट, वरणे। चूर्ण, संकोचने। पूज, पूजायाम्। अर्क, स्तवने। शुठ, आलस्ये। शुठि, शोषणे। जुड, प्रेरणे। गज, मार्ज, शब्दार्थौ। मर्च्च, च। घृ, प्रस्रवणे। पचि, विस्तारवचने। तिज, निशाने। कृत, संशब्दे। वर्द्ध, वर्द्ध, छेदनपूरणयोः। कुबि, आच्छादने। कुभि, इत्येके। लुबि, तुबि, अदर्शने। अर्द्दन इत्यन्ये। ह्लप, व्यक्तायां वाचि। क्लप, इत्येके। चुठि, छेदने। इल, प्रेरणे। म्रच्छ, म्लेच्छने। म्लेच्छ, म्रच्छ, छेदने। म्लेच्छ, अव्यक्तायां वाचि। ब्रूस, बर्ह, हिंसायाम्। गर्द, गर्ज, शब्दे। गर्ध, अभिकांक्षायाम्। गुर्द, पूर्वनिकेतने। जसि, रक्षणे। ईड, स्तुतौ। जसु, हिंसायाम्। पिडि, संघाते। रुष, रोषे। रुड, इत्येके। डिप, क्षेपे। ष्टुप, समुच्छ्राये॥ इत्युदात्ता उदात्तेतः॥

अथ आकुस्मात् द्विचत्वारिंशदात्मनेभाषाः॥

चित, संचेतने। दशि, दंशदर्शनयोः। दसि, दस, इत्येके। डप, डिप, संघाते। तन्त्रि, कुटुम्बधारणे। मन्त्रि, गुप्तपरिभाषणे। स्पश, ग्रहणसंश्लेषणयोः। तर्ज, भर्त्स, तर्ज्जने। बस्त, गन्ध, अर्दने। विष्क, हिंसायाम्। हिष्क, इत्येके। निष्क, परिमाणे। लल, ईप्सायाम्। कूण, संकोचने। तूण, पूरणे। भ्रूण, आशाविशंकयोः। शठ, श्लाघायाम्। यक्ष, पूजायाम्। स्यम, वितर्के।

गूर, उद्यमने। शम, लक्ष, आलोचने। लुट,छेदने। कुठ,इत्येके। कुत्स, अवक्षेपणे। गल, स्रवणे। भल, आभण्डने। कूट, आप्रदाने। अवसादन इत्येके। कुट्ट, प्रतापने। वञ्चु, प्रलंभने। वृष, शक्तिबन्धने। मद, तृप्तियोगे। दिवु, परिकूजने। गृ, विज्ञाने। विद, चेतनाख्याननिवासेषु। मन, स्तम्भे। यु, जुगुप्सायाम्। कुस्म, नाम्नोवा॥ इत्युदात्ता अनुदात्तेतः।

अथोभयतोभाषाः।

चर्च, अध्ययने। बुक्क,भाषणे। शब्द,उपसर्गादाविष्कारे च। कण, निमीलने। जभि, नाशने। षूद, क्षरणे। जसु, ताडने। पश, बन्धने। अम, रोगे। चट, स्फुट, भेदने। घट, संघाते। हन्त्यर्थाश्च। दिवु, मर्दने। अर्ज, प्रतियत्ने। घुषिर्, विशब्दने। आङः क्रन्द सातत्ये। लस, शिल्पयोगे। तसि, भूष, अलङ्कारे। अर्ह, पूजायाम्। ज्ञा, नियोगे। भज, विश्राणने। शृधु, प्रसहने। यत, निकारोपस्कारयोः। कल, गल, आस्वादने। रघ, इत्येके। रगेत्यन्ये अञ्चु, विशेषणे। लिगि,चित्रीकरणे। मुद,संसर्गे। त्रस, धारणग्रहणवारणेषु। उध्रस, उञ्छे। मुच, प्रमोचनमोदनयोः। वस, स्नेहच्छेदापहरणेषु। चर, संशये। च्यु, हसनसहनयोः। भुवो, अवकल्कने। मिश्रीकरण इत्येके। चिन्तन इत्यन्ये। कृपेश्च।

आस्वदः सकर्मकात्।

ग्रस,ग्रहणे। पुष,धारणे। दल,विदारणे। पट,पुट,लुट,तुजि, मिजि,पिजि,भजि,लघि, त्रसि,पिसि,कुसि,दसि, कुशि,घट,घटि, बृहि,वर्ह,वल्ह,गुप,धूप, विच्छ,चीव,पुथ, लोकृ, लोचृ, णद,कुप, तर्क,वृतु,वृधु,भाषार्थाः। रुट, लजि अजि,दसि,भृसि, रुषि,शीक, नट, पुटि, जिवि, रघि, लघि,अहि,रहि,महि, च। लडि, तड, नल,च। पूरी, आप्यायने। रुज, हिंसायाम्। ष्वद, आस्वादने॥

आधृषाद्वा

युज, पृच, संयमने । अर्च, पूजायाम् । षह, मर्षणे । ईर, क्षेपे । ली, द्रवीकरणे । वृजी, वर्जने । वृञ्, आवरणे । जॄ, वयोहानौ । ज्रिच, रिच, वियोजनसंपर्चनयोः । शिष, असर्वोपयोगे । तप, दाहे । तृप, तृप्तौ । छृदी, सन्दीपने । चृप, छृप, दृप, सन्दीपने । दृभी, भये । दृभ, सन्दर्भे । छद, संवरणे । श्रथ, मोक्षणे । मी, गतौ । ग्रन्थ, बन्धने । क्राथ, हिंसायाम् । स्वरितेदित्येके । शीक, आमर्षणे । चीक, च । अर्द, हिंसायाम् । अर्ह, पूजायाम् । आङः षद, पद्यर्थे । शुन्ध, शौचकर्मणि । छद, अपवारणे । स्वरितेत् । जुष, परितर्कणे । धूञ्, कंपने । प्रीञ्, तर्पणे । श्रन्थ, ग्रन्थ, सन्दर्भे । आप्लृ, लंभने । तनु, श्रद्धोपकरणयोः । उपसर्गाच्चादैर्घ्ये । वद, सन्देशवचने । स्वरितेत् । वच, परिभाषणे । मान, पूजायाम् । भू, प्राप्तावात्मनेपदी । गर्ह, विनिन्दने । मार्ग, अन्वेषणे । कठि, शोके । मृजू, शौचालंकरणयोः । मृष, तितिक्षायाम् । धृष, प्रसहने । इत्याधृषीयाः ॥

अथादन्ताः ।

कथ, वाक्यप्रबन्धे । वर, ईप्सायाम् । गण, संख्याने । शठ, श्वठ, सम्यगवभाषणे । पट, वट, ग्रन्थे । रह, त्यागे । रङ्ग, गतौ । स्तन, गदी, देवशब्दे । पत, गतौ । पष, अनुपसर्गात् । स्वर, आक्षेपे । रच, प्रतियत्ने । कल, गतौ संख्याने च । चह, परिकल्कने । मह, पूजायाम् । सार, कृप, श्रथ, दौर्बल्ये । स्पृह, ईप्सायाम् । भाम, क्रोधे । सूच, पैशुन्ये । खेट, भक्षणे । खोट, इत्येके । क्षोट, क्षेपे । गोम, उपलेपने । कुमार, क्रीडायाम् । शील, उपधारणे । साम, सान्त्वप्रयोगे । वेल, कालोपदेशे । काल, च । पल्पूल, लवनपवनयोः । वात, सुखसेवनयोः । गवेष, मार्गणे । वास, उपसेवायाम् । निवास, आच्छादने । भाज, पृथक्कर्मणि । समाज, प्रीतिदर्शनयोः ।

ऊन,परिहाने। ध्वन,शब्दे। कूट,परितापे। कूट, परिदाह इत्येके। संकेत,ग्राम,कुण,गुण,चामन्त्रणे। कूण,संकोचने। स्तेन,चौर्य्ये॥

आगर्वीदात्मनेभाषाः।

पद,गतौ। गृह,ग्रहणे। मृग, अन्वेषणे। कुह, विस्मापने। शूर,वीर,विक्रान्तौ स्थूल,परिबृंहणे। अर्थ, उपयाच्ञायाम्। सत्र, सन्तानक्रियायाम्। गर्व, माने। इत्यागर्वीयाः। सूत्र, वेष्टने। विमोचन, इत्यन्ये। मूत्र, प्रस्रवणे। रूक्ष, पारुष्ये। पार, तीर, कर्मसमाप्तौ। पुट,संसर्गे।धेक,दर्शनइत्येके।कत्र,शैथिल्ये।कर्तेत्यप्येके।

प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च॥ तत्करोतितदाचष्टे॥ तेनातिक्रामति॥ धातुरूपं च॥ कत्करणाद्धात्वर्थे॥

वल्कदर्शने। चित्र, चित्रीकरणे। कदाचिद्दर्शने। अंस,समाघाते। वट, विभाजने। वटि,लजि इत्येके। लज,प्रकाशे। मिश्र, सम्पर्के। सङ्ग्राम,युद्धे। अयमनुदात्तेत्। स्तोम,श्लाघायाम्। छिद्र, कर्णभेदने। अन्ध,दृष्ट्युपघाते। उपसंहार इत्यन्ये। दण्ड, दण्डनिपातने। अङ्क, पदे लक्षणे च। अङ्ग,च। सुख,दुःख,तत्क्रियायाम्। रस, आस्वादनस्नेहनयोः। व्यय, वित्तसमुत्सर्गे। रूप, रूपक्रियायाम्। छेद, द्वैधीकरणे। छद, अपवारणे। लाभ, प्रेरणे। व्रण,गात्रविचूर्णने। वर्ण,वर्णक्रियाविस्तारगुणवचनेषु।

बहुलमेतन्निदर्शनम्। णिङङ्गान्निरसने। श्वेताश्वाश्वतरगालोडिताह्वरकाणामश्वतरेतकलोपश्च। पुच्छादिषु धात्वर्थ इत्येव सिद्धम्॥

इति चुरादयः॥

अथ कण्ड्वादयः

—:०:—

कण्डूञ्, गात्रविघर्षणे । मन्तु, अपराधे । वल्गु, पूजामाधुर्ययोः । असु, उपतापे । असू, असूञ् इत्येके । लेट्, लोट्, धौर्त्ये पूर्वभावे स्वप्ने च । लेला, दीप्तौ । इरस् इरज् इरञ् ईर्ष्यायाम् । उषस्, प्रभातभावे । वेद, धौर्त्ये स्वप्ने च । मेधा, आशुग्रहणे । कुषुभ, क्षये । मगध, परिवेष्टने । नीचदास्य इत्यन्ये । तन्तस्, पम्पस्, दुःखे । सुख, दुःख, तत्क्रियायाम् । सपर, पूजायाम् । अरर, आराकर्मणि । भिषज्, चिकित्सायाम् । भिष्णज्, उपसेवायाम् । इषुध, शरधारणे । चरण, वरण, गतौ । चुरण, चौर्य्ये । तुरण, त्वरायाम् । भुरण, धारणपोषणयोः । गद्गद, वाक्स्खलने । एला, केला, खेला, विलासे । वेला, शेला, इले, त्यन्ये । खेला, स्खलने च । अदन्तोयमित्येके । लिट, अल्पकुत्सनयोः । लाट्, जीवने । हृणीङ्, रोषणे लज्जायाञ्च । महीङ्, पूजायाम् । रेखा, श्लाघासादनयोः । दुवस्, परिताप परिचरणयोः । तिरस्, अन्तर्द्धौ । अगद, नीरोगत्वे । उरस्, बलार्थः । तरण, गतौ । पयस्, प्रसृतौ । संभूयस्, प्रभूतभावे । अम्बर, संवर, संभरणे । आकृतिगणोऽयम् ॥

इति धातुपाठे कण्ड्वादिगणः समाप्तः ॥

इति श्रीयुतदयानन्दसरस्वतीस्वामिनाऽकारादिक्रमसूचीपत्रेण सह धातुपाठो रचितः ।

पौषवदि १० गुरुवारे
संवत् १९ ३९

—

सूचीपत्रम् ॥

ककारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	ककारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
कु ..	भ्वा० प० अ०	१७	४	कुबि ..	चु० प० से	३०	१३
कुक ..	भ्वा० आ० से	४	११	कुभि ..	,, ,, ,,	३०	१३
कुङ् ..	,, ,, अ०	१४	५	कुमार ..	चु० उ० ,,	३२	२३
कुङ् ..	तु० ,, ,,	२४	२०	कुर ..	तु० प० ,,	२३	२३
कुच ..	भ्वा० प० से	५	१०	कुर ..	,, ,, ,,	२४	८
कुच ..	,, ,, ,,	१२	२५	कुर्द ..	भ्वा० आ० ,,	३	११
कुच ..	तु० ,, ,,	२४	७	कुल ..	,, प० ,,	१२	१६
कुञ्च ..	भ्वा० ,, ,,	५	१०	कुशि ..	चु० उ० ,,	३१	२१
कुजु ..	,, ,, ,,	५	१२	कुष ..	क्र्या० प० ,,	२८	१५
कुट ..	तु० ,, ,,	२४	६	कुसुभ ..	कं० ,, ,,	३४	५
कुट्ट ..	चु० ,, ,,	२९	११	कुस ..	दि० ,, ,,	२१	१५
कुट्ट ..	,, आ० ,,	३१	३	कुसि ..	चु० उ० ,,	३१	२१
कुठ ..	,, ,, ,,	३१	१	कुस्म ..	,, आ० ,,	३१	६
कुठि ..	भ्वा० प० ,,	७	२	कुह ..	चु० उ० ,,	३३	४
कुठि ..	चु० ,, ,,	२९	१८	कूङ् ..	तु० आ० ,,	२४	२०
कुड ..	तु० ,, ,,	२४	१०	कूज ..	भ्वा० प० ,,	५	१८
कुडि ..	भ्वा० आ० ,,	६	७	कूट ..	चु० आ० ,,	३१	२
कुडि ..	,, प० ,,	६	२१	कूट ..	,, उ० ,,	३३	१
कुडि ..	चु० ,, ,,	२९	१८	कूण ..	चु० आ० ,,	३०	२५
कुण ..	तु० प० ,,	२३	२१	कूण ..	,, उ० ,,	३३	२
कुण ..	चु० उ० ,,	३३	२	कूल ..	भ्वा० प० ,,	९	१
कुत्स ..	,, आ० ,,	३१	२	कृञ् ..	स्वा० उ० अ०	२२	४
कुथ ..	दि० प० ,,	१९	१७	कृष् ..	त० उ० ,,	२७	८
कुन्थ ..	क्र्या० ,, ,,	२८	१४	कृड ..	तु० प० से०	२४	१०
कुथि ..	भ्वा० प० ,,	३	१८	कृती ..	,, ,, ,,	२५	१८
कुद्रि ..	चु० ,, ,,	२९	५	कृती ..	रु० ,, ,,	२६	८
कुप ..	दि० ,, ,,	२१	१९	कृप ..	चु० उ० ,,	३२	२१
कुप ..	चु० उ० ,,	३१	२२	कृू ..	भ्वा० आ० ,,	११	१०
कुबि ..	भ्वा० प० ,,	७	२३	कृपेस ..	चु० उ० ,,	३१	१८

खकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	गकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
खै ..	भ्वा० प० अ०	१३	२२	गल ..	चु० आ० से	३१	२
खोट ..	चु० उ० से०	३२	२२	गल ..	„ उ० „	३१	१४
खोर्ऋ ..	भ्वा० प० „	९	७	गल्ह ..	भ्वा० आ० „	१०	५
खोलृ ..	„ „ „	९	७	गल्भ ..	„ „ „	७	१५
ख्या ..	अ० „ अ०	१७	१२	गवेष ..	चु० उ० „	३२	२५
खुङ् ..	भ्वा० आ० अ०	१४	६	गा ..	जु० प० अ०	१९	९
गज ..	„ प० से०	५	२४	गाङ् ..	भ्वा० आ० अ०	१४	५
गज ..	चु० प० „	३०	११	गाधृ ..	„ „ से०	३	५
गजि ..	भ्वा० „ „	५	२४	गाहू ..	„ „ „	१०	८
गड ..	„ „ „	११	१९	गु ..	तु० प० अ०	२४	१८
गडि ..	„ „ „	४	३	गुङ् ..	भ्वा० आ० „	१४	५
गडि ..	„ „ „	७	७	गुङ् ..	„ „ „	१४	६
गण ..	चु० उ० „	३२	१७	गुज ..	„ प० से०	५	१३
गद ..	भ्वा० प० „	३	२०	गुज ..	तु० „ „	२४	७
गद्गद ..	कं० „ „	२४	१०	गुजि ..	भ्वा० „ „	५	१३
गदी ..	चु० उ „	३२	१९	गुठि ..	चु० „ „	२९	१८
गन्ध ..	„ आ० „	३०	२३	गुड ..	तु० „ „	२४	७
गम्लृ ..	भ्वा० प० अ०	१४	२१	गुडि ..	चु० „ „	२९	१८
गर्ज ..	„ „ से०	५	१९	गुण ..	„ उ० „	३३	२
गर्ज ..	चु० „ „	३०	१७	गुद ..	भ्वा० आ० „	३	११
गर्द ..	भ्वा० „ „	४	१	गुध ..	दि० प० „	१९	१८
गर्द ..	चु० „ „	३०	१७	गुध ..	क्र्या० „ „	२८	१५
गर्ध ..	„ „ „	३०	१७	गुप ..	भ्वा० आ० „	१४	१५
गर्व ..	भ्वा० „ „	७	२२	गुप ..	दि० प० „	२१	१९
गर्व ..	„ „ „	९	१३	गुप ..	चु० उ० „	३१	[illegible]
गर्व ..	चु० उ० „	३२	६	गुपू ..	भ्वा० प० „	७	१८
गर्ह ..	भ्वा० आ० „	१०	५	गुफ ..	तु० „ „	२३	१७
गर्ह ..	चु० उ० „	३२	१३	गुम्फ ..	„ „ „	२३	१७
गल ..	भ्वा० प० से०	९	६	गुरी ..	तु० आ० „	२४	१६

झकारादयः		गणादयः	पृ०	पं०	णकारादयः		गणादयः	पृ०	पं०
झर्झ	..	भ्वा० प० से०	१०	२४	णभ	..	दि० प० से०	२१	२०
झर्झ	..	तु० " "	२३	१३	णम	..	भ्वा० " अ०	१४	२१
झष	..	भ्वा० " "	१०	१९	णय	..	भ्वा० आ० से०	८	१३
झष	..	" उ० "	१२	१३	णय	..	" " "	८	१३
झॄ	..	क्रया० प० "	२८	३	णल	..	" " "	१२	१५
झृष्	..	दि० " "	१९	२०	णश	..	दि० प० "	२१	६
टकि	..	चु० " "	३०	९	णस	..	भ्वा० आ० "	१०	३
टल	..	भ्वा० " "	१२	१४	णह	..	दि० उ० अ०	२०	२०
टिकृ	..	" आ० "	४	१३	णासृ	..	भ्वा० आ० से०	१०	२
टीकृ	..	" " "	४	१२	णिक्ष	..	" प० "	१०	१२
ट्वल	..	भ्वा० प० "	१२	१४	णिजि	..	अ० आ० "	१६	१२
डप	..	चु० आ० "	३०	२१	णिजिर्	..	जु० उ० अ०	१९	२
डिप	..	" " "	३०	२२	णिदि	..	भ्वा० प० से०	४	३
डिप	..	" प० "	३०	१९	णिदृ	..	" उ० "	१३	७
डिप	..	तु० " "	२४	८	णिवि	..	" प० "	९	१४
डिप	..	दि० " "	२१	१९	णिल	..	तु० " "	२४	५
डीङ्	..	भ्वा० आ० "	१४	११	णिश	..	भ्वा० " "	१०	२५
डीङ्	..	दि० " "	२०	४	णिसि	:	अ० आ० "	१६	१२
ढौक	..	भ्वा० " "	४	१२	णीञ्	..	भ्वा० उ० अ०	१३	१८
णक्ष	..	" प० "	१०	१२	णीव	..	भ्वा० प० से०	९	१०
णख	..	" " "	४	२१	णील	..	" " "	८	२६
णखि	..	" " "	४	२१	णु	..	अ० " से०	१६	१८
णट	..	" " "	६	१८	णुद	..	तु० उ० अ०	२३	३
णट	..	" " "	११	२०	णुद	..	" प० "	२५	१०
णद	:	" " "	३	२१	णू	..	" " से०	२४	१९
णद	..	चु० उ० "	३१	२२	णेदृ	..	भ्वा० उ० "	१३	७
णभ	..	क्रया० प० से०	२८	१५	णेषृ	..	" अ० "	१०	१
णभ	:	भ्वा० आ० "	११	८	तक्ष	..	" प० "	४	१७
					तकि	..	" " "	४	१७

वकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	वकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
विष ..	क्र्या० प० से	२८	१७	वेथृ ..	भ्वा० आ० से०	३	१३
विष्लृ ..	जु० उ० अ०	१९	२	वेदृ ..	कं० प० „	३४	५
विष्क ..	चु० आ० से०	३०	२४	वेनृ ..	भ्वा० उ० „	१३	९
विस ..	दि० प० „	२१	१५	वेपृ ..	„ आ० „	७	१०
वी ..	अ० „ अ०	१७	९	वेल ..	चु० उ० „	३२	२४
वीर ..	चु० उ० से०	३३	५	वेल्ल ..	भ्वा० प० „	९	४
वुजि ..	„ प० „	२९	१३	वेला ..	कं० „ „	३४	११
वुल ..	„ „ „	२९	२४	वेलृ ..	भ्वा० „ „	९	४
वृक ..	भ्वा० आ० „	४	११	वेवीङ् ..	अ० „ „	१७	२४
वृच ..	„ „ „	९	२२	वेष्ट ..	भ्वा० आ० „	६	३
वृङ् ..	क्र्या० आ० „	२८	११	वै ..	„ प० अ०	१३	२३
वृजी ..	अ० „ „	१६	१३	व्यच ..	तु० „ से०	२३	११
वृजी ..	रु० प० „	२६	१७	व्यथ ..	भ्वा० आ० „	११	१३
वृजी ..	चु० उ० „	३२	२	व्यध ..	दि० प० „	२१	२
वृञ् ..	स्वा० „ „	२२	५	व्यय ..	भ्वा० उ० „	१३	११
वृञ् ..	चु० „ „	३२	२	व्यय ..	चु० „ „	३३	१८
वृण ..	तु० प० „	२३	२०	व्रण ..	चु० „ „	३३	२०
वृतु ..	भ्वा० आ० „	११	९	व्रश्चू ..	„ प० „	२३	११
वृतु ..	चु० उ० „	३१	१३	व्री ..	क्र्या० „ अ०	२८	६
वृधु ..	भ्वा० आ० „	११	१०	व्रीङ् ..	दि० आ० „	२०	५
वृधु ..	चु० उ० „	३१	२३	व्ली ..	क्र्या० प० „	२८	७
वृश ..	दि० प० „	२१	१७	व्युष ..	दि० „ से०	१९	१६
वृष ..	चु० आ० „	३१	३	व्युष ..	„ „ „	२१	१४
वृहि ..	„ उ० „	३१	२२	व्युस् ..	„ „ „	२१	१४
वृह ..	तु० प० „	२४	१	व्रुड ..	तु० „ „	२४	१३
वॄ ..	क्र्या० „ „	२८	२	व्रूस ..	चु० „ „	३०	१६
वॄञ् ..	„ उ० „	२७	१७	व्येञ् ..	भ्वा० उ० अ०	१५	१३
वेञ् ..	भ्वा० „ अ०	१५	१३	शक ..	दि० प० अ०	२१	३
वेणृ ..	„ „ से०	१३	९	शकि ..	भ्वा० आ० से०	४	१०

षकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	सकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
ष्या ..	भ्वा० „ अ०	१२	२	षच ..	भ्वा० आ० से०	५	३
स्रा ..	अ० „ „	१७	११	षच ..	„ उ० „	१५	६
श्लाखृ ..	भ्वा० „ से०	४	२०	षञ्ज ..	„ आ० अ०	१४	२२
श्लाघृ ..	„ आ० „	४	१६	षट ..	„ प० से०	६	१८
श्रिञ् ..	„ उ० „	१३	१७	षणु ..	त० उ० „	२७	३
श्रिषु ..	„ प० „	१०	२०	सत्र ..	चु० आ० „	३३	५
श्लिष ..	दि० „ अ०	२१	३	षद ..	„ उ० „	३२	८
श्लिष ..	चु० „ से०	२८	१६	षद्लृ ..	भ्वा० प० अ०	१२	२४
श्लिषु ..	भ्वा० „ „	१०	२०	षद्लृ ..	तु० „ „	२५	११
श्वि ..	„ „ „	१५	१६	षन ..	भ्वा० „ से०	८	८
श्विता ..	„ „ „	११	५	षप ..	„ „ „	७	१८
श्विदि ..	„ आ० „	३	७	सपर ..	कं० „ „	३४	७
ष्मील ..	„ „ „	८	२५	सभाज ..	चु० उ० „	३२	२६
स्मीज् ..	क्या० उ० अ०	२७	१२	षम ..	भ्वा० प० „	१२	१३
ष्च्युतिर् ..	भ्वा० प० से०	३	१८	समी ..	दि० „ „	२१	१६
श्रु ..	„ „ अ०	१४	२	षम्ब ..	चु० „ „	२८	१०
ष्वेङ् ..	„ आ० „	१४	८	सम्भूयस् ..	कं० „ „	३४	१६
श्रै ..	„ प० „	१३	२३	षर्ज ..	भ्वा० „ „	५	१८
श्लोकृ ..	„ आ० से०	४	८	षर्व ..	„ „ „	७	२२
श्रोणृ ..	„ प० „	८	७	षर्व ..	„ „ „	८	१३
श्रोणृ ..	„ „ „	८	८	संवर ..	कं „ „	३४	१६
ष्वस्क ..	„ आ० „	४	१३	षल ..	भ्वा० „ „	८	१६
ष्ठिवु ..	„ प० „	८	८	षस ..	„ „ „	८	६
ष्ठिवु ..	दि० „ „	१८	१४	षस्ज ..	„ „ „	५	१३
षगे ..	भ्वा० „ „	११	२१	षस ..	„ „ „	१८	२
षघ ..	स्वा० „ „	२२	१५	षस्ति ..	„ „ „	१८	२
सङ्केत ..	चु० उ० „	३३	२	षह ..	„ आ० „	१२	२१
सङ्ग्राम ..	„ „ „	३३	१५	षह ..	दि० प० „	१८	२०
				षह ..	चु० उ० से०	३२	२

सकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	सकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
स्पदि ..	भ्वा० आ० से०	३	८	स्फट्ट ..	चु० आ० से०	३०	८
स्पश ..	„ उ० „	१३	१२	स्मिङ् ..	भ्वा० „ अ०	१४	५
स्फर ..	तु० प० „	२४	१२	स्मिङ् ..	चु० प० „	२८	१६
स्यन्दू ..	भ्वा० आ० „	११	१०	स्मिट ..	„ „ से०	२८	१५
स्यम ..	चु० „ „	३०	२६	स्रिवु ..	दि० „ „	१८	१४
स्यमु ..	भ्वा० प० „	१२	१३	ष्विदा ..	भ्वा० आ० „	११	५
स्रकि ..	„ आ० „	४	८	ष्विदा ..	„ प० „	१४	२०
स्रम्भु ..	„ „ „	७	१४	ष्विदा ..	दि० „ „	२१	४
स्कम्भु ..	„ „ „	११	८	ष्टीम ..	„ „ „	१८	१८
स्रंसु ..	„ „ „	११	८	स्मील ..	भ्वा० „ „	८	२५
स्वञ्ज ..	„ „ अ०	१४	१७	स्कुञ् ..	क्रया० उ० अ०	२७	१३
ष्वद ..	भ्वा० „ से०	३	१०	स्कुदि ..	भ्वा० आ० से०	३	७
स्वद ..	चु० उ० „	३१	२५	ष्टुच ..	„ „ „	५	६
स्वन ..	भ्वा० प० „	१२	४	ष्टुञ् ..	अ० उ० अ०	१७	७
स्वन ..	„ „ „	१२	१३	ष्टुप ..	चु० प० से०	३०	१८
स्वप ..	अ० „ अ०	१७	१८	ष्टुभु ..	भ्वा० आ० „	७	१६
स्वर ..	चु० उ० से०	३२	१८	ष्णु ..	अ० प० अ०	१७	४
स्वर्द ..	भ्वा० आ० „	३	१०	ष्णुसु ..	दि० „ से०	१८	१५
ष्ठा ..	„ प० अ०	१३	२५	ष्णुह ..	„ „ „	२१	७
ष्णा ..	अ० „ „	१७	११	स्फुट ..	भ्वा० आ० „	६	४
स्ना ..	भ्वा० „ „	१२	६	स्फुट ..	तु० प० „	२४	८
स्फायी ..	„ आ० से०	८	१६	स्फुट ..	चु० उ० „	३१	१०
स्वाद ..	„ „ „	३	१२	स्फुटिर् ..	भ्वा० प० „	६	२३
ष्टिघ ..	स्वा० „ „	२२	१२	स्फुड ..	तु० „ „	२४	१३
ष्टिपृ ..	स्वा० „ „	७	८	स्फुडि ..	चु० „ „	२८	४
ष्टिम ..	दि० प० „	१८	१८	स्फुर ..	तु० „ „	२४	१२
ष्णिह ..	„ „ „	२१	७	स्फुर्छा ..	भ्वा० „ „	५	१६
ष्णिह ..	चु० „ „	२८	१५	स्फुल ..	तु० „ „	२४	१२
स्फिट ..	„ „ „	२८	१५	स्नु ..	भ्वा० „ अ०	१४	२

हकारादयः		गणादयः	पृ०	पं०	हकारादयः		गणादयः	पृ०	पं०
हृषु	..	भ्वा० प० से०	१०	२२	ह्लगे	..	भ्वा० प० से०	११	२१
हेठ	..	„ आ० „	६	६	ह्लस	..	„ „ „	१०	२३
हेड	..	„ प० „	११	१९	ह्वल	..	„ „ „	१२	१
हेडृ	..	„ आ० „	६	१०	ह्वल	..	„ „ „	१२	६
हेपृ	..	„ „ „	७	११	ह्राद	..	„ आ० „	३	१२
हेषृ	..	„ „ „	१०	१	ह्लादी	..	„ „ „	३	१२
होडृ	..	„ प० „	७	५	ह्री	..	जु० प० अ०	१८	९
ह्मल	..	„ „ „	१२	१	ह्रीच्छ	..	भ्वा० „ से	५	१५
ह्मल	..	„ „ „	१२	६	ह्रुङ्	..	अ० आ० अ०	१८	५
ह्लप	..	चु० „ „	२०	१४	ह्वृ	..	भ्वा० प० से०	१३	२६
ह्रगे	..	भ्वा० „ „	११	२१	ह्रेषृ	..	„ आ० „	१०	१
ह्रस	..	„ „ „	१०	२२	ह्वेञ्	..	„ उ० „	१५	१३

इति

शुद्धिपत्रम् ॥

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	१३	अनिठ्	अनिट्
५	५	धारणे	धारणो
५	१०	कुच	कुञ्च
५	२२	भर्ज्ज्ने	भर्ज्जने
६	१२	द्वाशीतिः	द्व्यशीतिः
८	६	वण	वण
८	२२	०	मव्यबन्धर्मे
८	२३	यर्याप्ति	पर्याप्ति
१०	१२	ष्टच्च	ष्टृच्च
११	२४	वनच	चनच
१६	८	दात्तितो	दात्तो
१८	९	हृ	ह्री
१८	१६	०	अनुदात्तौ
१९	७	भर्त्स्सन	भर्त्सन
२०	६	पीङ्	पीङ्
२१	१३	०	व्युषविभागे
२१	१४	व्युषविभागे	०
२२	१८	द	दृ
२३	२०	मृड	मृण
२४	१०	श्लेणे	श्लेषणे
२८	१८	ह्रिठ	हेठ
३०	१	तूष	लूष
३१	२५	आख्वा	आस्वा
३२	३	त्तये	क्षेपे
३२	२६	समाज	सभाज
३५	६	४ २१	४ २२
३७	३५	२४ १३	२३ १३
३७	४५	८ २४	२८ ४
४०	३९	०	समूष् दि० प० से०
४२	३६	भल्भ	गल्भ
४३	१८	९ २९	९ २६
४४	२३	„ „ „	„ ७० „
४६	२६	४ २३	४ २४
४६	२७	जुङ्	जुड
४६	२७	जृ	झॄ
४७	११	टूल	टूल
४९	२२	तूषत्तु० „ „ २१–१	०
५४	२५	पूड	पूङ्

इति

वेदाङ्गप्रकाशः ॥

—※—

ये पुस्तकें "वैदिकयंत्रालय" प्रयाग में रोक दाम भेजने से मिल सकते हैं :—

१	वर्णोच्चारणशिक्षा	=)
२	संधिविषय	।)
३	नामिक	॥
४	कारकीय	।=)
५	सामासिक	॥)
६	स्त्रैणताद्धित	
७	अव्ययार्थ	
८	आख्यातिक	
९	सौवर	
१०	पारिभाषिक	
११	धातुपाठ	
१२	गणपाठ	।≡
१३	उणादिकोष	॥।)
१४	निघंटु	
	योग	८।-

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

चतुर्दशो भागः ॥

गणपाठः ।

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्याम्

एकादशो भागः ।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।
पण्डितज्वालादत्तशर्म्मणा संशोधितः ।

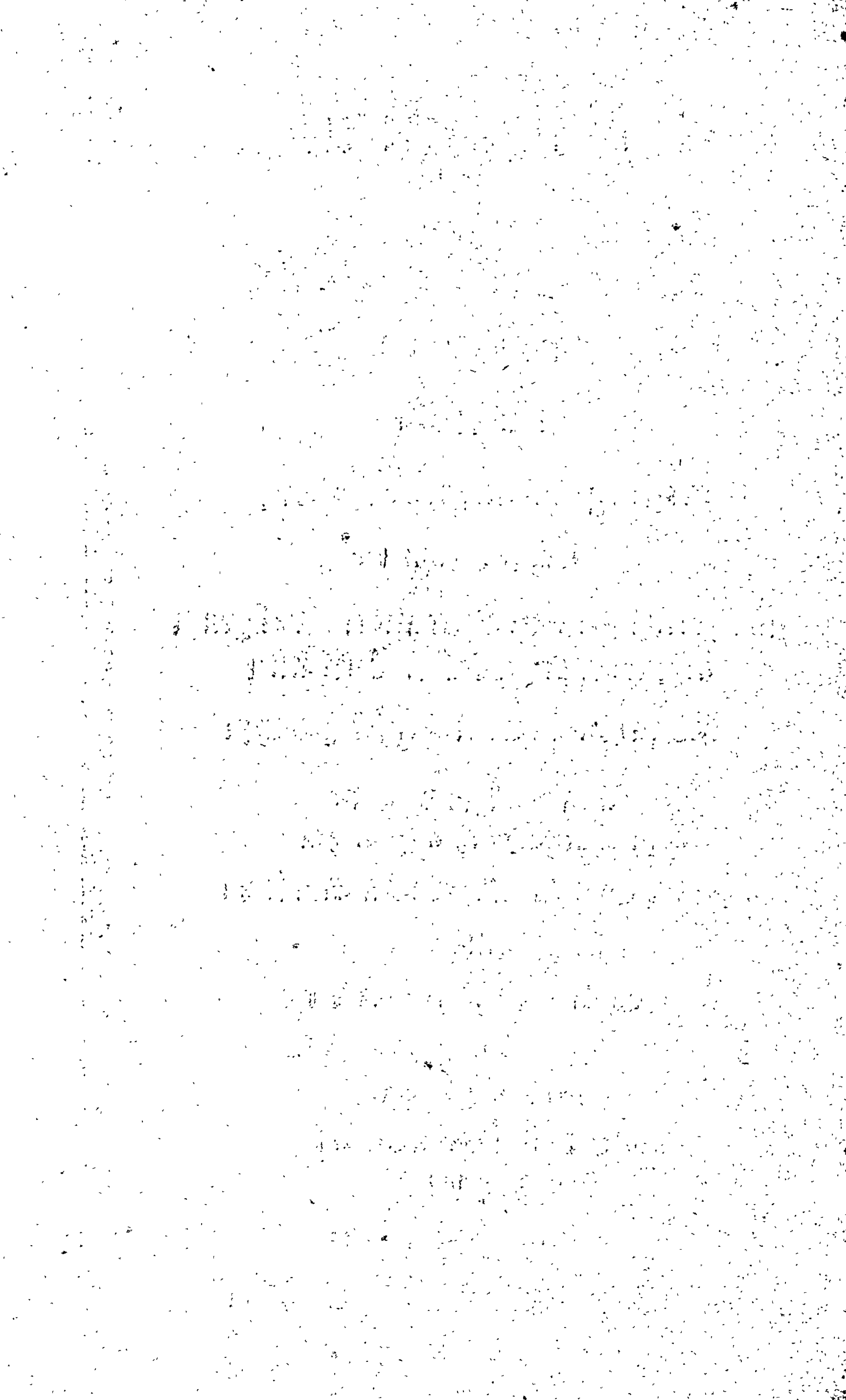
पठनपाठनव्यवस्थायां चतुर्दशं पुस्तकम् ।

मुन्शी समर्थदान के प्रबन्धसे
वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ

संवत् १९४० श्रावण कृष्ण १४

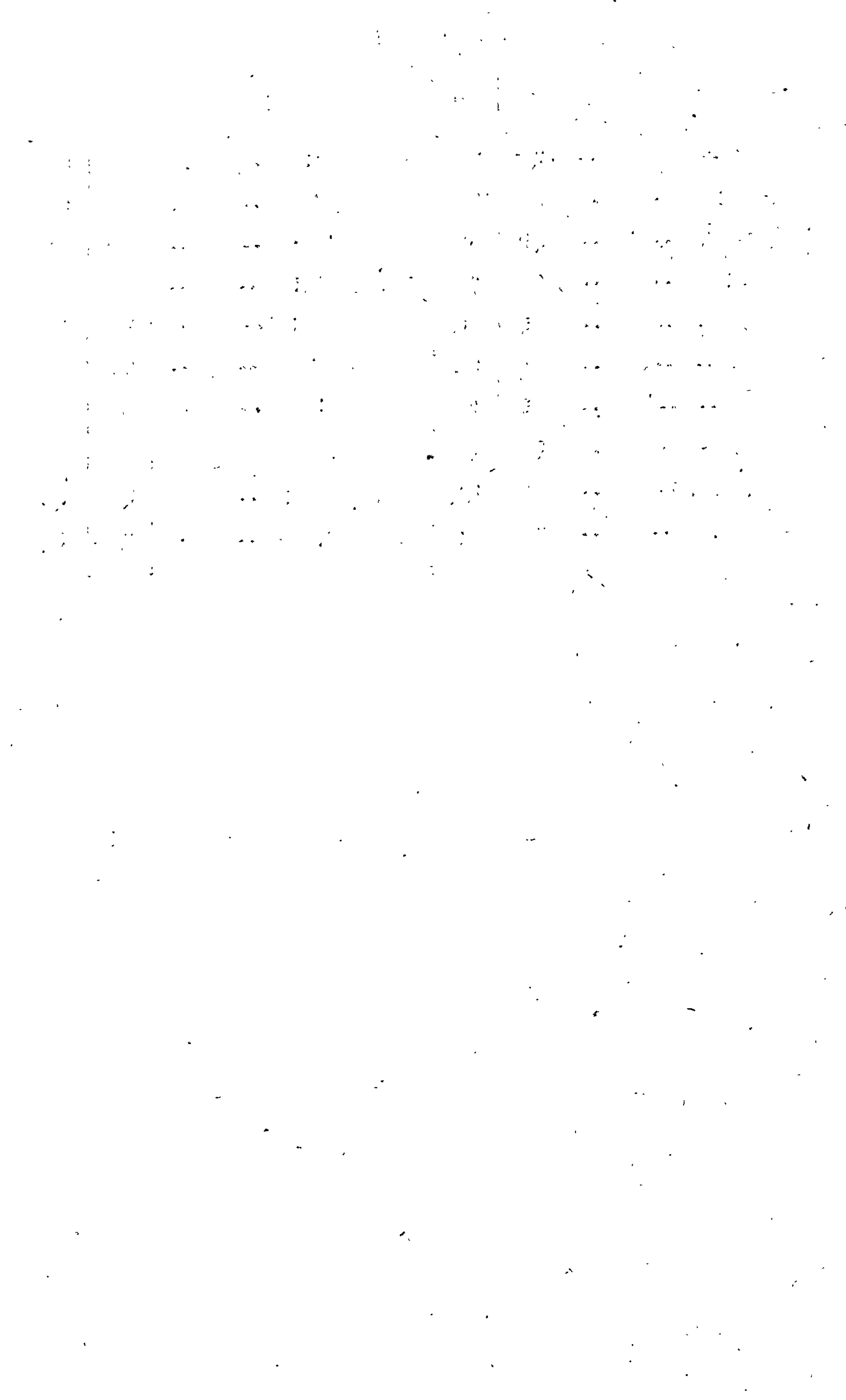
पहिली बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य ।≶)



अथ गणानां सूचीपत्रम् ॥

---o---



भूमिका ।

——0——

इस पुस्तक का नाम गणपाठ इस लिये है कि एकत्र मिला के बहुत २ शब्दों का समुदाय पठित हैं । यह पुस्तक पाणिनि मुनि जी का बनाया है इस के कार्य्यकार अष्टाध्यायी के सूत्र हैं यद्यपि काशिकादि पुस्तकों में तत्तत् सूत्र पर गणपाठ भी छप गया है तथापि बीच २ सूत्रों के दूर २ होने से गण भी दूर २ हैं इस से कण्ठस्थ करना विचारना वा अनुवृत्तिकरना कठिन होता था इस लिये उस २ गणकार्य विधायक सूत्र को सार्थक लिखकर एक दो उदाहरण देके जहां २ एक ऐसा (:--)चिन्ह बना के लिखा है वहां २ से गण पाठ का आरम्भ समझना चाहिये और जिस २ शब्द की विशेष व्याख्या अपेक्षित थी उस २ पर एक आदि अङ्क लिख और रेखा देकर नीचे विवरण (जिस को नोट कहते हैं) लिखा है । उस को भी यथायोग्य समझ लेना चाहिये इन के अर्थ अष्टाध्यायी निरुक्त निघंटु और उणादिकोष तथा प्रकृति प्रत्ययादि की ऊहा से समझ लेना योग्य हैं । यद्यपि भ्वादि और उणादि भी एक २ सूत्र पर गण हैं तो भी उन के बड़े और विलक्षण (१) होने से पृथक् श्रीपाणिनि मुनि जी ने लिखे हैं और सूत्र के समान वार्त्तिक गण हैं उन को भी वार्त्तिक के आगे लिख दिया है जो साधारणता से व्याकरण के बोध युक्त हैं वे भी इन का रूप और अर्थ पढ़ पढ़ा सकते हैं ॥

अलमतिविस्तरेण विपश्चिद्वरशिरोमणिषु ॥

स्थान महाराणा जी का उदयपुर
मिति माघ शुक्ला १० सं० १९३९

दयानन्द सरस्वती

---

(१) भ्वादि धातु अनुबंधसहित और उणादि में प्रकृतिप्रत्ययसाधुत्व पूर्वक लेख है और सर्वादि में सिद्ध शब्दों का पाठ अनुक्रम से है इसी लिये उन दोनों गणों से यह और इस से वे पृथक् २ रक्खे हैं ।

ओम्

अथ गणपाठः ।

१—सर्वादीनि सर्वनामानि ॥ अ० ॥ १ । १ । २७ ॥

सर्वादीनि प्रातिपदिकानि सर्वनामसंज्ञानि भवन्ति । सर्वे । सर्वस्मै । सर्वेषां नामानि सर्वनामानीति समासेनान्वर्थसंज्ञा विज्ञानात् सर्वो नाम कश्चिन् मनुष्यविशेषस्तस्मै सर्वाय देहीति सर्वनामसंज्ञा न भवति । अत एव विशेषणवाचकानि सर्वादीनि प्रादिपदिकानि विज्ञेयानि :–

सर्व । विश्व । उभ । उभय । डतर । डतम । इतर । अन्य । अन्यतर । त्व । त्वत् । नेम । सम (१) सिम (२) पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् ॥ स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् ॥ अन्तरम्बहिर्योगोपसंव्यानयोः ॥ त्यद् । तद् । यद् । एतद् । इदम् । अदस् । एक । द्वि । युष्मद् । अस्मद् । भवतु । किम् । इति सर्वादिर्गणः ॥

२—स्वरादिनिपातमव्ययम् ॥ अ० ॥ १ । १ । ३७ ॥

स्वरादयश्च निपाताश्चैषां समाहारः । स्वरादिनिपातमव्ययसंज्ञं भवति । निपाताश्चादयो वक्ष्यन्ते :–

स्वर् । अन्तर् । प्रातर् । एते अन्तोदात्ताः । पुनर् । आद्युदात्तः । सनुतर् । उच्चैस् । नीचैस् । शनैस् । ऋधक् । आरात् । ऋते । युगपत् । पृथक् । अन्तोदात्ताः । ह्यस् । श्वस् । दिवा । रात्रौ । सायम् । चिरम् । मनाक् । ईषत् । जोषम् । तूष्णीम् । बहिस् । आविस् । अवस् । अधस् । समया । निकषा । स्वयम् । मृषा । नक्तम् । नञ् । हेतौ । अद्धा । इद्धा । सामि । ह्यस्प्रभृतयोऽप्यन्तोदात्ताः । वत् (३) सन् ।

---

(१) सूत्रान्तरे समानामिति निर्देशात्सर्वपर्यायस्यैव समशब्दस्य सर्वनामसंज्ञेष्यते तेन तुल्यवाचकस्य न भवति ॥

(२) इमानि त्रीणि सूत्राण्यष्टाध्याय्यामपि पठ्यन्ते । तत्र जसि विभाषा सर्वनामसंज्ञा । अत्र तु सामान्येन ॥

(३) वदिति तदन्तस्य वतिप्रत्ययान्तस्य ग्रहणम् । ब्राह्मणवत् । क्षत्रियवत् । स्थानिवत् । इत्यादि ॥

सनात् । सनत् । तिरस् । एत आद्युदात्ताः । अन्तरा । अयमन्तोदात्तः । अन्तरेण । ज्योक् । कम् । शम् । सना । सहसा । विना । नाना । स्वस्ति । स्वधा । अलम् । वषट् । अन्यत् । अस्ति । उपांशु । क्षमा । विहायसा । दोषा । मुधा । मिथ्या । (१) क्त्वातोसुन्कसुनः । कृन्मकारान्तः सन्ध्यक्षरान्तोऽव्ययीभावश्च ॥ पुरा । मिथो । मिथस् । प्रबाहुकम् । आर्यहलम् । अभीक्ष्णम् । साकम् । सार्द्धम् । समम् । नमस् । हिरुक् । (२) तसिलादयः प्राक्पाशपः । शस्प्रभृतयः प्राक् समासान्तेभ्यः । मान्तः । कृत्वोर्थाः । तसिः । आम्थालौ । प्रतान् । प्रशान् । इति स्वरादिगणः ॥

३—चादयोऽसत्त्वे ॥ अ० ॥ १ । ४ । ५७ ॥

अद्रव्यवाचकाश्चादयो निपातसंज्ञा भवन्ति । असत्त्व इति किम् । पशुर्वै पुरुषः । अत्र पशुशब्दस्य द्रव्यवाचकत्वादव्ययसंज्ञा न भवति :—

च । वा । ह । अह । एव । एवम् । नूनम् । शश्वत् । युगपत् । सूपत् । कूपत् । कुवित् । नेत् । चेत् । चण् । कच्चित् । यत्र । नह । हन्त । माकिम् । नकिम् । माङ् । नञ् । यावत् । तावत् । त्वा । त्वै । द्वै । रै । श्रौषट् । वौषट् । स्वाहा । वषट् । स्वधा । ओम् । किल । तथा । अथ । सु । स्म । अस्मि । अ । इ । उ । ऋ । लृ । ए । ऐ । ओ । औ । अम् । तक । उञ् । उकञ् । वेलायाम् । मात्रायाम् । यथा । यत् । यम् । तत् । किम् । पुरा । अद्धा । धिक् । हाहा । हे । है । प्याट् । पाट् । थाट् । अहो । उताहो । हो । तुम् । तथाहि । खलु । आम् । आहो । अथो । ननु । मन्ये । मिथ्या । असि । ब्रूहि । तु । नु । इति । इव । वत् । चन । वत । इह । शाम् । शम् । कम् । अनुकम् । नहिकम् । हिकम् । सुकम् । सत्यम् । ऋतम् । वाकिर् । नकिर् । आङ् । अ । मा । नो । ना । वाकिरादयः । प्रतिषेधे । उत । दह । अद्धा । इडा । मुधा । नोचेत् । नचेत् । नहि । जातु । कथम् । कुतः । कुत्र । अव । अनु । हाहो । हैहा । ईहा । आहोस्वित् । छम्वट् । खम् । दिष्ट्या । पशु । वट् । सह । आनुषक् । अङ्ग । फट् । ताजक् । अये । अरे । चटु । वाट् । कुम् । खुम् । घुम् । हुम् । आईम् । शीम् । सम् । वै । त्वे । तुवै । न्वै । नुवै । अध । अथम् । स्मि । अच्छ । अदल् । दह । हेहे । हैहै । नौ । म ।

(१) क्त्वादीनामष्टाध्याय्यां सूत्रपाठे ग्रहणमस्ति । तेषामेवात्र स्वरादिषु परिगणनं कृतम् । न कश्चिद्विशेषः ॥

(२) तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिरिति सूत्रेण येषामव्ययसंज्ञा तेषामेव तद्धितप्रत्ययानामत्र विस्पष्टार्थं परिगणनम् ॥

आम् । अस् । शुकम् । शम् । वव । वात् । हिकम् । हिनुक । वशम् । शिकम् । खकम् । सनुकम् । नुकम् । अन्त । यो । सुक् । भाजक् । अले । वट् । वाट् । किम् । उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपाताः (१) इति चादिगणः ॥

४—प्रादयः ॥ अ० ॥ १ । ४ । ५८ ॥

असत्त्ववाचकाः प्रादयो निपातसंज्ञा भवति । पराजयति । पराजयते इत्यादि । असत्त्व इति किम् । परा जयति सेना । अत्रोपसर्गसंज्ञयात्मनेपदं माभूत् :—
प्र । परा । अप । सम् । अनु । अव । निस् । निर् । दुस् । दुर् । वि । आङ् । नि । अधि । अपि । अति । सु । उत् । अभि । प्रति । परि । उप । इति प्रादयः ॥

५—ऊर्यादिच्विडाचश्च ॥ अ० ॥ १ । ४ । ६१ ॥

ऊर्यादयः शब्दाश्च्व्यन्ताडाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञा भवन्ति । च्वि । शुक्लीकृत्य । शुक्लीकृतम् । डाच् । पटपटाकृत्य । पटपटाकृतम् । ऊरीकृत्य । शुक्लीकरोति । पटपटाकरोति ऊरीकरोति । इत्यादि :—
ऊरी उररी । पापी । ताली । आताली । वेताली । धूसी । शकला । संशकला । ध्वंसकला । भ्रंशकला ॥शकलादयो हिंसायाम्॥ गुलुगुधा पीडार्थे ॥ सजूः सहार्थे ॥ फलू, फली, विक्ली, आक्ली । इति विकारे ॥ आलोष्टी । कराली । केवाली । शेवाली । वर्षाली । मस्मसा । मसमसा । एते हिंसायाम् । वषट् । वौषट् । श्रौषट् । स्वाहा । स्वधा । बन्धा । प्रादुस् । श्रत् । आवित् । इत्यूर्यादयः ॥

६—साक्षात्प्रभृतीनि च ॥ अ० ॥ १ । ४ । ७४ ॥

साक्षादादीनि प्रातिपदिकानि कृञ्योगे विभाषा गतिसंज्ञानि भवन्ति । असाक्षात् साक्षात्कृत्वा । साक्षात्कृत्य । साक्षात्कृत्वा । इत्यादि :—
साक्षात् । मिथ्या । चिन्ता । भद्रा । लोचना । विभाषा । सम्पत्का । आस्था । अमा । श्रद्धा । प्राजर्या । प्राजरुहा । वीजर्या । वीजरुहा । संसर्या । अर्थे । लवणम् । उष्णम् । शीतम् । उदकम् । आर्द्रम् (२) अग्नौ । वशे । विकम्पने । विहसने । प्रहसने । प्रतपने । प्रादुस् । नमस् । आविस् । इति साक्षात्प्रभृतयः ॥

---

(१) उपसर्गप्रतिरूपकाः । अवदत्तम् । विदत्तम् । प्रदत्तम् । अत्राच उपसर्गादिति तत्वं न भवति । विभक्ति प्रतिरूपकाः । चिरेण । चिरात् । चिराय । इत्यादयः । स्वरप्रतिरूपकाः:— अ । इ । उ । ऋ । ए । ओ । इत्येवमादयः ॥

(२) लवणादय आर्द्रपर्यन्ताः शब्दा गतिसंज्ञासन्नियोगेन मकारान्ता निपात्यन्ते नतु सर्वत्र ॥

७—तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च ॥ अ० ॥ २ । १ । १७ ॥

तिष्ठद्ग्वादयः समुदायाः कृतसमासा अव्ययीभावसंज्ञका विभाषया निपात्यन्ते। तिष्ठन्ति गावो यस्मिन् काले दोहनाय स तिष्ठद्गु कालविशेषः। खलेयवादीनि प्रथमान्तानि विभक्त्यन्तरेण नैव संबध्यन्ते। अन्यपदार्थे च काले वर्त्तन्ते।

तिष्ठद्गु। वहद्गु। आयतीगवम्। खलेयवम्। खलेबुसम्। लूनयवम्। लूयमानयवम्। पूतयवम्। पूयमानयवम्। संहृतयवम्। संह्रियमाणयवम्। संहृतबुसम्। संह्रियमाणबुसम्। एते कालशब्दाः। समभूमि। समपदाति। सुषमम्। विषमम्। निष्षमम्। दुष्षमम्। अपरसमम्। आयतीसमम्। प्राह्णम्। प्ररथम्। प्रमृगम्। प्रदक्षिणम्। अपरदक्षिणम्। सम्प्रति। असम्प्रति। पापसमम्। पुण्यसमम्। इच्कर्मव्यतिहारे (१) इति तिष्ठद्गुप्रभृतयः॥

८—सप्तमी शौण्डैः॥ अ० ॥ २ । १ । ४० ॥

शौण्डैरिति बहुवचनादेव गणनिर्देशः। सप्तम्यन्तंसुबन्तं शौण्डादिभिः सह विभाषा समस्यते सप्तमी तत्पुरुषश्च स समासो भवति। अक्षेषु धूर्त्तोऽक्षधूर्त्तः। अक्षकितवः। इत्यादि :-

शौण्ड। धूर्त्त। कितव। व्याड। प्रवीण। संवीत। अन्तर। अधिपटु। पण्डित। कुशल। चपल। निपुण। संव्याड। मन्य। समीर। इति शौण्डादयः॥

९—पात्रेसंमितादयश्च॥ अ०॥ २ । १ । ४८ ॥

पात्रे संमितादयः समुदायाः क्षेपे गम्यमाने सप्तमीतत्पुरुषसंज्ञा निपात्यन्तेः— (२) पात्रेसम्मिताः। पात्रेबहुलाः। उदरक्रिमिः। कूपकच्छपः। कूपचूर्णकः। अवटकच्छपः। कूपमण्डूकः। कुम्भमण्डूकः। उदपानमण्डूकः। नगरकाकः। नगरवायसः। मातरिपुरुषः। पिण्डीशूरः। गेहेशूरः। गेहेनर्दी। गेहेक्ष्वेडी। गेहेविजिती। गेहेव्याडः। गेहेतृप्तः। गेहेधृष्टः। गर्भेतृप्तः। आखनिकबकः। गोष्ठेशूरः। गोष्ठेविजिता। गोष्ठेक्ष्वेडी। गेहेमेही। गोष्ठेपटुः। गोष्ठेपण्डितः। गोष्ठेप्रगल्भः। कर्णेटिट्टिभः। कर्णेचुरचुरा। आकृतिगणोयम्॥

---

(१) कर्मव्यतिहारेऽर्थे समासान्तो इच्प्रत्ययान्ता अपि शब्दा अव्ययीभावसंज्ञा भवन्ति। दण्डादण्डि। मुसलामुसलि। नखानखि। केशाकेशि। इत्यादि॥

(२) येऽत्र गणे क्तान्तास्तत्र क्षेप इति पूर्वसूत्रेणैव सिद्धे पुनः पाठो युक्तारोह्याद्यन्तर्गत पात्रेसम्मितादीनां पूर्वपदाद्युदात्तार्थः॥

१०—उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे ॥अ०॥ २।१।५६॥

सामान्यधर्मस्याप्रयोगे सत्युपमेयवाची सुबन्तमुपमानवचनैर्व्याघ्रादिभिः सह विभाषा समस्यते, स समानाधिकरणतत्पुरुषः समासो भवति व्याघ्र इव पुरुषः पुरुषव्याघ्रः। पुरुषसिंहः। इत्यादि। सामान्याप्रयोग इति किम्। पुरुषो व्याघ्र इव शूरः। उपमानोपमेयप्रधानो धर्मः शूरत्वमत्र प्रयुज्यतेऽतः समासनिषेधः :—

व्याघ्र। सिंह। ऋच। ऋषभ। चन्दन। वृच। वृष। वराह। हस्तिन्। कुञ्जर। रुरु। पृषत्। पुण्डरीक। बलाहक (१) आकृतिगणोऽयम्। इति व्याघ्रादयः॥

११—श्रेण्यादयः कृतादिभिः ॥ अ० ॥ २ । १ । ५९ ॥

श्रेण्यादयः सुबन्ताः कृतादिभिः समानाधिकरणैः सह विभाषा समस्यन्ते। अश्रेणयः श्रेणयः कृताः श्रेणिकृताः (२) एकक्रतावसन्ति वणिजः। इत्यादि :—

श्रेणि। एक। पूग। कुण्ड। राशि। विशिख। निचय। निधान। इन्द्र। देव। मुण्ड। भूत। श्रवण। वदान्य। अध्यापक। ब्राह्मण। क्षत्रिय। पटु। पण्डित। कुशल। चपल। निपुण। कृपण। इतिश्रेण्यादयः। कृत। मित। मत। भूत। उक्त। समाम्नात। समाम्नात। समाख्यात। सम्भावित। अवधारित। निराकृत। अवकल्पित। उपकृत। उपाकृत। आकृतिगणोऽयम्। इति कृतादयः॥

१२—वा०-कृतापकृतादीनामुपसंख्यानम् (३) ॥ २ । १ । ६० ॥

कृतापकृतम्। भुक्तविभुक्तम्। पीतविपीतम्। गतप्रत्यागतम्। यातानुयातम्। क्रयाक्रयिका। पुटापुटिका। फलाफलिका। मानोन्मानिका। इतिकृतापकृतादयः।

---

(१) अत्राकृतिगणेनेदमपि सिद्धं भवति। मुखं पद्ममिव, मुखपद्मम्। मुखकमलम्। करकिसलयम्। पार्थिवचन्द्रः॥

(२) अत्र श्रेण्यादिषु च्व्यर्थवचनमिति वार्त्तिकेन च्व्यर्थलाभः। यदा च च्व्यन्ताः श्रेण्यादयस्तदा च्विप्रत्ययान्तानां गतिसंज्ञत्वात् कुगतिप्रादय इति नित्यसमासः श्रेणीकृताः। इत्यादि॥

(३) अनञ्विशिष्टक्तान्तेनापि समासो यथा स्यादिति वार्त्तिकम्। कृतंचापकृतं च कृतापकृतं। वार्त्तिकोपरि तत्सूत्रसंख्या सर्वत्र धरिष्यते। यस्योपरि महाभाष्ये वार्त्तिकमस्ति॥

१३—वा०—समानाधिकरणाधिकारे शाकपार्थिवादीनामुपसंख्यानमुत्तरपदलोपश्च (१) २ । १ । ६९ ॥

शाकभोजी पार्थिवः शाकपार्थिवः । कुतपसौश्रुतः । अजातौल्वलिः । यष्टिमौद्गल्यः । इत्यादि ॥

१४—मयूरव्यंसकादयश्च ॥ अ० ॥ २ । १ । ७२ ॥

मयूरव्यंसकाः समुदायाः कृतसमासाः समानाधिकरणतत्पुरुषसंज्ञका निपात्यन्ते। चकारो निश्चयार्थः । परममयूरव्यंसकइतिसमासान्तरं न भवति :—

मयूरव्यंसकः । छात्रव्यंसकः (२) । काम्बोजमुण्डः । यवनमुण्डः । (३) छन्दसि । हस्तेगृह्य । पादेगृह्य । लाङ्गूलेगृह्य । पुनर्दाय ॥ (४) एहीडादयोऽन्यपदार्थे ॥ एहीडम् । एहियवं वर्त्तते । एहिवाणिजाक्रिया। अपेहिवाणिजा ।प्रेहिवाणिजा। एहिस्वागता ।अपेहिस्वागता।प्रेहिस्वागता। एहिद्वितीया। अपेहिद्वितीया। प्रोहकटा। अपोहकटा । प्रोहकर्दमा । अपोहकर्दमा । उद्धरचूडा। आहरचेला । आहरवसना। आहरवनिता। कृन्तविचक्षणा । उद्धरोत्सृजा । उद्धमविधमा । उत्पचविपचा। उत्पतनिपता । उच्चावचम् । उच्चनीचम् । अपचितोपचितम् । अवचितपराचितम्। निश्चप्रचम् । अकिंचनम् । स्नात्वाकालकः । पीत्वास्थिरकः । भुक्त्वा सुहितः । प्रोष्य पापीयान् । उत्पत्यव्याकुला । निपत्यरोहिणी । निषण्णश्यामा । अपेहिप्रघसा । इहपञ्चमी । इहद्वितीया । जहिकर्मणा।बहुलमाभीक्ष्ण्ये कर्त्तारंचाभिदधाति (५)।

---

(१) शाकपार्थिवादिषु समानाधिकरणतत्पुरुषः समासो यथा स्यात् । पूर्वसमासे यदुत्तरपदं तस्य च लोपः । यथा दृष्टं विज्ञेयम् ॥

(२) मयूर इव व्यंसको धूर्त्तो मयूरव्यंसकः । छात्र इव व्यंसकः ।कम्बोज इव मुण्डः । इत्युपमानसमासापवादोऽयं समासः ॥

(३) अतोऽग्रे चत्वारः शब्दाश्छन्दसि वेदविषये निपात्यन्ते ॥

(४) त्वं यस्येडामन्नंस्तुतिं वा—एहि प्राप्नुहि तत्, एहीडम् । एवमेहियवादिषु यथाप्रयोगमर्थानुकूलः समासोज्ञेयः ॥

(५) जहिक्रियाऽऽभीक्ष्ण्येऽर्थे स्वेनैव कर्मणा सह बहुलंसमस्यते समाससमुदायश्च कर्तृवाचको भवति । त्वंजोड़ंजहि, इति जहिजोड़स्त्वम् । उज्जहिजोडः । जहिस्तम्बः । इत्यादि । आख्यातः क्रियाशब्द आख्यातेनैव सहसमस्यते । अश्नीत च पिबति च, इति समासेकृते प्रातिपदिकसंज्ञायक्रियाविशेषणे टाप् । अश्नीत पिबता । इत्यादि ॥

जहिजोडः । उज्जहिजोडः । जहिस्तम्बः । उज्जहिस्तम्बः । (आख्यातमाख्यातेन क्रियासातत्ये) ॥ अश्नीतपिबता । पचतभृज्जता । खादतमोदता । खादताचमता आहरनिवपा । आवपनिष्किरा । उत्पचविपचा । भिन्द्धिलवणा । छिन्द्धिविचक्षणा । पचलवणा । पचप्रकूटा । (१) इतिमयूरव्यंसकादयः ॥

१५—याजकादिभिश्च ॥ अ० ॥ २ । २ । ९ ॥

षष्ठ्यन्तं सुबन्तं याजकादिभिः सुबन्तैः सह समस्यते स षष्ठीतत्पुरुषः समासो भवति । ब्राह्मणयाजकः । क्षत्रिययाजकः । प्रतिषेधबाधकमिदं सूत्रम् :—

याजक । पूजक । परिचारक । परिषेचक । परिवेषक । स्नातक । अध्यापक । उत्सादक । उद्वर्त्तक । हर्तृ । वर्त्तक । होतृ । पोतृ । भर्तृ । रथगणक । पतिगणक । इति याजकादयः ॥

१६—राजदन्तादिषु परम् ॥ अ० । २ । २ । ३१ ॥

राजदन्तादिषु परमुपसर्जनं प्रयोक्तव्यम् । पूर्वनिपातापवादः । दन्तानां राजा, राजदन्तः । अनेन दन्तशब्दस्य पूर्वनिपातो बाध्यते । :—

राजदन्तः । अग्रेवणम् । लिप्तवासितम् । नग्नमुषितम् । सिक्तसंमृष्टम् । मृष्टलुञ्चितम् । अवक्लिन्नपक्वम् । अर्पितोप्तम् । उप्तगाढम् । उलूखलमुसलम् । तण्डुलकिण्वम् । दृषदुपलम् । आरग्वायनबन्धकी । चित्ररथबाह्लीकम् । आवन्त्यश्मकम् । शूद्रार्यम् । स्नातकराजानौ । विष्वक्सेनार्जुनौ । अक्षिभ्रुवम् । दारगवम् । धर्मार्थौ । अर्थधर्मौ । कामार्थौ । अर्थकामौ । शब्दार्थौ (२) । अर्थशब्दौ । वैकारिमतम् । गजवाजम् । गोपालधानीपूलासम् । पूलासककरण्डम् । स्थूलपूलासम् । उशीरबीजम् । सिञ्जास्थम् । चित्रास्वाती । भार्य्यापती । जायापती (३) । जम्पती । दम्पती । पुत्रपती । पुत्रपशू । केशश्मश्रू । श्मश्रुकेशौ । शिरोबीजम् । सर्पिर्मधुनी । मधुसर्पिषी । आद्यन्तौ । अन्तादी । गुणवृद्धी । वृद्धिगुणौ । इति राजदन्तादयः ॥

---

(१) अविहितलक्षणस्तत्पुरुषो मयूरव्यंसकादिषु द्रष्टव्यः ॥

(२) धर्मादिषूभयमिति वार्त्तिकेन कृतद्वन्द्वयोर्द्वयोरपि पर्य्यायेण पूर्वनिपातः । अत्र गणान्तेऽपि केशादयो धर्मादिषु द्रष्टव्याः ॥

(३) अत्र जायाशब्दस्य जम्भावो दम्भावश्च निपात्यते । अस्मिन् गणे सर्वेषु समासेषूपसर्जनमनुपसर्जनं वा निपात्यते । सर्वेषां च यथाप्राप्तानामपवादः ॥

१७—वा॰ आहिताग्न्यादिषु ॥ अ॰ ॥ २ । २ । ३७ ॥

आहिताग्न्यादिषु निष्ठान्तस्य विभाषा पूर्वनिपातो भवति पक्षे च परनिपातः। आहितोऽग्निर्येन सः—

आहिताग्निः। अग्न्याहितः। जातपुत्रः। पुत्रजातः। जातदन्तः। जातश्मश्रुः। तैलपीतः। घृतपीतः। ऊढभार्यः। गतार्थः। आकृतिगणोऽयम् (१)। इत्याहिताग्न्यादयः ॥

१८—कडाराः कर्मधारये ॥ अ॰ ॥ २ । २ । ३८ ॥

कर्मधारये समासे कडारादयः शब्दा विभाषा पूर्वं प्रयोक्तव्याः। कडारश्चासौ जैमिनिश्च कडारजैमिनिः। जैमिनिकडारः। इत्यादि। कडारादीनां गुणवाचकाद्विशेषणस्य पूर्वनिपातः प्राप्तः स बाध्यते :—

कडार। गडुल। काण। खञ्ज। कुण्ठ। खञ्जर। खलति। गौर। वृद्ध। भिक्षुक। पिङ्गल। तनु। वटर। इति कडारादयः। कर्मधारय इति किम्। कडारपुरुषो ग्रामः। अत्र बहुव्रीहौ माभूत् ॥

१९—वा॰—तृतीयाविधाने प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् (२) ॥ २।३।१८ ॥

प्रकृति। प्राय। गोत्र। सम। विषम। द्विद्रोण। पञ्चक। साहस्र। आकृतिगणोऽयम्। इति प्रकृत्यादयः ॥

२०—गवाश्वप्रभृतीनि च ॥ अ॰ ॥ २ । ४ । ११ ॥

गवाश्वप्रभृतीनि कृतैकवद्भावानि द्वन्द्वरूपाणि सिद्धानि प्रातिपदिकानि निपात्यन्ते। गौश्चाश्वश्च :—

गवाश्वम्। गवाविकम्। गवैडकम्। अजाविकम्। अजैडकम्। कुब्जवामनम्। कुब्जकैरातम्। पुत्रपौत्रम्। श्वचण्डालम्। स्त्रीकुमारम्। दासीमाणवकम्। शाटीपिच्छकम्। उष्ट्रखरम्। उष्ट्रशशम्। मूत्रशकृत्। मूत्रपुरीषम्। यकृन्मेदः। मांसशोणितम्। दर्भशरम्। दर्भपूतीकम्। अर्जुनशिरीषम्। तृणोलपम्। दासीदासम्। कुटीकुटम्। भागवतीभागवतम् (३)। इति गवाश्वप्रभृतयः ॥

---

(१) अत्राकृतिगणेन गडुकण्ठादयोऽपि द्रष्टव्याः। कण्ठेगडुः। गडुकण्ठः। गडुशिराः। इत्यादि ॥

(२) प्रकृत्यादिभ्यस्तृतीयाविभक्तिर्यथा स्यात्। कर्तृकरणाभावादप्राप्ता विधीयते। प्रकृत्याऽभिरूपः। प्रकृत्या दर्शनीयः। इत्यादि ॥

(३) अत्र गणे यथोच्चारित एव द्वन्द्वो द्रष्टव्यः। तेन रूपान्तरे न भवति। गोश्वम्। गोश्वौ। अत्र पशुद्वन्द्वो विभाषैकवद् भवति ॥

२१—न दधिपयआदीनि ॥ अ० ॥ २ । ४ । १४ ॥

दधिपयआदीनि शब्दरूपाणि द्वन्द्वे नैकवद्भवन्ति :—

दधिपयसी । सर्पिर्मधुनी । मधुसर्पिषी । ब्रह्मप्रजापती । शिववैश्रवणौ । स्कन्दविशाखौ । परिव्राट्कौशिकौ । परिव्राजककौशिकौ । प्रवर्ग्योपसदौ । शुक्लकृष्णौ । इध्माबर्हिषी । दीक्षातपसी । श्रद्धातपसी । मेधातपसी । अध्ययनतपसी । उलूखलमुसले । आद्यावसाने । श्रद्धामेधे । ऋक्सामे । वाङ्मनसे । इति दधिपयआदयः ॥

२२—अर्द्धर्चाः पुंसि च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३१ ॥

अर्द्धर्चादयः शब्दाः पुंसि चान्नपुंसके च भाष्यन्ते :—

अर्द्धर्च । गोमय । कषाय । कार्षापण । कुतप । कपाट । शङ्ख । चक्र । गूथ । यूथ । ध्वज । कबन्ध । पद्म । गृह । सरक । कंस । दिवस । यूप । अन्धकार । दण्ड । कमण्डलु । मण्ड । भूत । द्वीप । द्यूत । चक्र । धर्म । कर्मन् । मोदक । शतमान । यान । नख । नखर । चरण । पुच्छ । दाडिम । हिम । रजत । सक्तु । पिधान । सार । पात्र । घृत । सैन्धव । औषध । आढक । चषक । द्रोण । खलीन । पात्रीव । षष्टिक । वार । बाण । प्रोथ । कपित्थ । शुष्क । शील । शुल्व । सीधु । कवच । रेणु । कपट । सीकर । मुसल । सुवर्ण । यूप । चमस । वर्ण । चीर । कर्ष । आकाश । अष्टापद । मङ्गल । निधन । निर्यास । जृम्भ । वृत्त । पुस्त । क्ष्वेडित । शृङ्ग । शृङ्खल । मधु । मूल । मूलक । शराव । शाल । वप्र । विमान । मुख । प्रग्रीव । शूल । वज्र । कर्पट । शिखर । कल्क । नाट । मस्तक । वलय । कुसुम । तृण । पङ्क । कुण्डल । किरीट । अर्बुद । अङ्कुश । तिमिर । आश्रम । भूषण । इल्कस । मुकुल । वसन्त । तडाग । पिटक । विटङ्क । माष । कोश । फलक । दिन । दैवत । पिनाक । समर । स्थाणु । अनीक । उपवास । शाक । कर्पास । चषाल । खण्ड । दर । विटप । रण । बल । मल । मृणाल । हस्त । सूत्र । ताण्डव । गाण्डीव । मण्डप । पटह । सौध । पार्श्व । शरीर । फल । छल । पुर । राष्ट्र । विश्व । अम्बर । कुट्टिम । मण्डल । ककुद । तोमर । तोरण । मञ्चक । पुङ्ख । मध्य । बाल । वल्मीक । वर्ष । वस्त्र । देह । उद्यान । उद्योग । स्नेह । स्वर । सङ्गम । निष्क । क्षेम । शूक । छत्र । पवित्र । यौवन । पानक । मूषिक । वल्कल । कुञ्ज । विहार । लोहित । विषाण । भवन । अरण्य । पुलिन । दृढ । आसन । ऐरावत । शूर्प । तीर्थ । लोमश । तमाल । लोह । दण्डक । शपथ । प्रतिसर । दारु । धनुस् । मान । तङ्क । वितङ्क । मव । सहस्र । ओदन । प्रवाल । शकट । अपराह्ण । नीड । शकल । कुणप । मुण्ड । पूत । मरु । लोमन । लिङ्ग । सीर । व्रत । ऋण । कडार । पूर्ण । पणव । विशाल ।

वुस्त । पुस्तक । पल्लव । निगड । खल । स्थूल । शार । नाल । प्रवर । कटक । कण्टक । छाल । कुमुद । पुराण । जाल । स्कन्ध । ललाट । कुङ्कुम । कुशल । विडङ्ग । पिण्याक । आर्द्र । हल । योध । विम्ब । कुक्कुट । कडप । खण्डल । पञ्चक । वसु । उद्यम । स्तन । स्तेन । चत्र । कलह । पालक । वर्चस्क । कूर्च । तण्डक । तण्डुल । इत्यर्द्धर्चादयः ॥

२३—पैलादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५९ ॥

पैलादिप्रातिपदिकेभ्यो युवप्रत्ययस्य लुग्भवति । पीलाया अपत्यं पैलः । तस्य युवापत्यमिति फिञ् तस्य लुक् । पैलः पिता । पैलः पुत्रः । एवं शालङ्किः । इत्यादि ।

पैल । शालङ्कि । सात्यकि । सात्यकामि । देवि । औदमज्जि । औदव्रजि । औदमेघि । औदबुद्धि । दैवस्थानि । पैङ्गलायनि । राणायनि । रौहक्षिति । भौलिङ्गि । औद्गाहमानि । औज्जिहानि । रागचति । राणि । सौमनि । जहमानि । तद्राजाचाणः (१) आकृतिगणोयम् इति पैलादयः ॥

२४—न तौल्वलिभ्यः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ६१ ॥

तौल्वल्यादिभ्यः परस्य युवप्रत्ययस्य लुङ् न भवति तुल्वलस्य गोत्रापत्यं तौल्वलिः । तस्ययुवापत्यं तौल्वलायनः :—

तौल्वलि । धारणि । रावणि । पारणि । दैलीपि । देवलि । देवमति । दैवयज्ञि प्रावाहणि । मान्धातकि । आनुहारति । श्वाफल्कि । आनुमति । आहिंसि । आसुरि । आयुधि । नैमिषि । आसिबन्धकि । बैकि । पौष्करसादि । वैरकि । वैलकि वैहति । वैकर्णि । कारेणुपालि । कामलि । रान्धकि । आसुराहति । प्राणाहति पौष्कि । कान्दकि । दौषकगति । आन्तराहति । इति तौल्वल्यादयः ॥

२५—यस्कादिभ्यो गोत्रे ॥ अ० ॥ २ । ४ । ६३ ॥

यस्कादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः परस्यास्त्रीलिङ्गस्य बहुवचनेवर्त्तमानस्य गोत्रप्रत्ययस्य लुग्भवति यदि तेनैव गोत्रप्रत्ययेन कृतं बहुत्वं भवेत्तदा । यस्कस्य गोत्रापत्यं यास्कः । यास्कौ । यस्काः । लभ्याः । तेनैवेति किम् । प्रियौ यास्कौ येषां ते प्रिययास्काः अस्त्रियामिति किम् । यास्क्यः स्त्रियः । गोत्र इति किम् । यास्काश्छात्राः । :—

यस्क । लभ्य । दुह्य । अयःस्थूण । तृणकर्ण (२) । सदामत्त । कम्बलभार । अहियोग । कर्णाटक । पर्णाडक । पिण्डीजङ्घ । बकसक्थ (३) ।

---

(१) वङ्गानांराजा वाङ्गः । तस्ययुवापत्यम् वाङ्गः । अंगस्यापत्यमांगः पिता पुत्रो वा ॥

(२) यस्कादिपंचभ्यः शिवादित्वादण् ॥

(३) सदामत्तादिसप्तभ्य इञ् ॥

वस्ति । कद्रु । विस्रि । कद्रु । अजवस्ति । मित्रयु (१) । रक्षामुख । जङ्घारथ । मन्यक । उत्कासकटुकमन्थक । पुष्करसद् । विषपुट । उपरिमेखल । क्रोष्टुमान । क्रोष्टुपाद । शीर्षमाय (२) । खरप (३) । पदक । वर्मक (४) भन्दन (५) । भडिल । भण्डिल । भडित । भण्डित (६) । इतियस्कादयः ॥

२६—नगोपवनादिभ्यः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ६७ ॥

गोपवनादिप्रातिपदिकेभ्यः परस्य गोत्रप्रत्ययस्य बहुवचनविभक्तौ लुङ्न भवति यञञोश्चेति प्राप्तो लुक् प्रतिषिध्यते । गोपवनस्य गोत्रापत्यं गौपवनः । गौपवनौ । गौपवनाः । :—

गोपवन । शिग्रु । बिन्दु । भाजन । अश्व । अवतान । श्यामाक । श्वापर्ण । इत्यष्टौ बिदाद्यन्तर्गता गोपवनादयः ॥

२७—तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे ॥ अ० ॥ २ । ४ । ६८ ॥

तिकादिभ्यः कितवादिभ्यश्च परस्य गोत्रप्रत्ययस्य द्वन्द्वसमासे बहुवचनविभक्तौ लुग्भवति । तैकानयश्च कैतवायनयश्चेत्यत्र तिकादिभ्यः फिञ् तस्य लुक् :—

तिककितवाः । वङ्खरभण्डीरथाः (७) उपकलमकाः (८) पफकनरकाः । बकनखश्वगुदपरिणद्धाः (९) । उब्जककुभाः (१०) । लङ्कशान्तमुखाः (११)

---

(१) वस्त्यादिषड्भ्यो गृष्ट्यादित्वाड् ढञ् ॥

(२) रक्षामुखाद्येकादशभ्य इञ् ॥

(३) खरपशब्दान्नडादित्वात्फक् ॥

(४) पदकवर्मकाभ्यामिञ् ॥

(५) भन्दनशब्दाच्छिवादित्वादण् ॥

(६) भडिलादिचतुर्भ्योऽश्वादित्वात् फञ् ॥

(७) वाङ्खरयश्च भांडीरथयश्चेतीञ् ॥

(८) औपकायनश्च लामकायनश्चेति नडादित्वात् फक् ।

(९) पाफकयश्च नारकयश्च, बाकनखयश्च, श्वागुदपरिणद्धयश्च सर्वेभ्योऽत इञ् तस्य लुक् ॥

(१०) औब्जयश्च, इञ् । काकुभाश्च, शिवादित्वादण् । तयोर्लुक् ॥

(११) लाङ्कयश्च शान्तमुखयश्च, इञ् तस्य लुक् ॥

उरसलङ्कटाः (१)। भ्रष्टककपिष्ठलाः। कृष्णाजिनकृष्णसुन्दराः (२) अग्निवेशदासेरकाः (३)॥ इतितिककितवादयः॥

२८—उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे ॥ अ० ॥ २। ४। ६९॥

उपकादिप्रातिपदिकेभ्यः परस्य गोत्रप्रत्ययस्य बहुवचनविभक्तौ द्वन्द्वे चाद्वन्द्वे च विभाषा लुग्भवति। अद्वन्द्वग्रहणं द्वन्द्वाधिकारनिवृत्त्यर्थम्। एतेषां मध्ये त्रयो द्वन्द्वास्तिककितवादिषु पठिताः। उपकलमकाः। भ्रष्टककपिष्ठलाः। कृष्णाजिनकृष्णसुन्दराः। तेभ्यः पूर्वसूत्रेणैव नित्यलुग्भवति। अद्वन्द्वेत्वनेन विकल्पः। उपकाः। औपकायनाः। लमकाः। लामकायनाः। शेषाणां द्वन्द्वेऽद्वन्द्वे च विकल्पः:—

उपक। लमक। भ्रष्टक। कपिष्ठल। कृष्णाजिन। कृष्णसुन्दर। पण्डारक। अण्डारक। गडुक। सुपर्य्यक। सुपिष्ट। मयूरकर्ण। खारीजङ्घ। शलावल। पतञ्जल। कठेरणि। कुषीतक। काशकृत्स्न। निदाघ। कलशीकण्ठ। दामकण्ठ। कृष्णपिङ्गल। कर्णक। पर्णक। जटिलक। बधिरक। जन्तुक। अनुलोम। अर्द्धपिङ्गलक। प्रतिलोम। प्रतान। अनभित। चूडारक। उदङ्क। सुधायुक। अबन्धक। पदञ्चल। पानुपद। अपजरध। कमक। लेखाभ्र। कमन्दक। पिञ्जल। मसूरकर्ण। मदाघ। कदामत्त। इत्युपकादयः॥

२९—भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः॥ अ० ॥ ३। १। १२॥

अच्व्यन्तेभ्यो भृशादिप्रातिपदिकेभ्यो भवत्यर्थे क्यङ् प्रत्ययो भवति हलन्तानां चान्त्यलोपः। अभृशो भृशो भवतीति भृशायते। सुमनायते। अच्वेरिति किम्। भृशीभवति। अत्र मा भूत्:—

भृश। शीघ्र। मन्द। चपल। पण्डित। उत्सुक। उन्मनस्। अभिमनस्। सुमनस्। दुर्मनस्। रहस्। रेहस्। शश्वत्। बृहत्। वेहत्। नृषत्। शुधि। अधर। ओजस्। वर्चस्। विमनस्। रभन्। हन्। रोहत्। शुचिस्। अजरस्। इति भृशादिः॥

---

(१) औरसायनश्च, तिकादित्वात् फिञ्। लाङ्कटयश्च, इञ् तयोर्लुक्॥

(२) भ्राष्टकयश्च, कापिष्ठलयश्च। कार्ष्णाजिनयश्च कार्ष्णसुन्दरयश्च। अत इञ् तस्य लुक्॥

(३) आग्निवेश्याश्च, गर्गादित्वाद् यञ्। दासेरकयश्च, अत इञ् तयोर्लुक्।

३०—लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३ ॥

अच्व्यन्तेभ्यो लोहिताभ्यो डाजन्तेभ्यश्च भवत्यर्थे क्यष् प्रत्ययो भवति। अलोहितो लोहितो भवति लोहितायते । लोहितायति । अपटपटा पटपटा भवति पटायति। पटपटायते :–

लोहित । नील । हरित । पीत । मद्र । फेन । मन्द । आकृतिगणत्वात् । वर्मन् । निद्रा । करुणा । कृपा । इति लोहितादयः ॥

३१—भविष्यति गम्यादयः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३ ॥

गम्यादयः शब्दा भविष्यति काले साधवो भवन्ति। ग्रामंगमी :–

गमी । आगामी । प्रस्थायी ।प्रतिरोधी ।प्रतिबोधी । प्रतियोधी । प्रतियोगी ॥ प्रतियायी । आयायी । भावी । इति गम्यादयः ॥

३२—षिद्भिदादिभ्योऽङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०४ ॥

षिद्भ्यो भिदादिभ्यश्च धातुभ्यः स्त्रियामङ् प्रत्ययो भवति। जृष्–जरा । त्रपा । भिदादयः पठ्यन्ते :—

भिदा (१) । छिदा । विदा । चिपा ॥ गुहा गिर्योषध्योः ॥ श्रद्धा । मेधा । गोधा । आरा । हारा । कारा । क्षिया । भारा । धारा । रेखा । लेखा । चूडा । पीडा । वपा । वसा । सृजा ॥ क्रपेः संप्रसारणं च ॥ कृपा ॥ भिदा, विदारणे ॥ छिदा, द्वैधीकरणे ॥ आरा, शस्त्राम् ॥ धारा प्रपाते । इति भिदादयः ॥

३३—वा०—संपदादिभ्यः क्विप् (२) ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०८॥

संपत् । विपत् । प्रतिपत् । आपत् । परिषत् । इति संपदादयः ॥

३४—भीमादयोऽपादाने ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७४ ॥

भीमादयः शब्दा उणादिषु अपादानकारके निपात्यन्ते :–

भीमः । भीष्मः । भयानकः । वरुः । चरुः । भूमिः । रजः । संस्कारः । संक्रन्दनः । प्रपतनः । समुद्रः । स्रुचः । स्रुक् । खलतिः ॥ इति भीमादयः ॥

---

(१) भिदादिगणेऽयमर्थनियमः स महाभाष्यकारेणैव कृतोऽस्ति । विदारणादन्यार्थे भित्तिरिति सर्वत्रार्थान्तरे क्तिन् ॥

(२) संपदादिगणपठितेभ्य एव स्त्रियां क्विप् प्रत्ययो भवति । संपदादिराकृतिगणो विज्ञेयः । कृत्ल्युटो बहुलमिति बहुलवचनात् क्तिन्नपि भवति । संपत्तिः। विपत्तिः । इत्यादि ॥

३५—अजाद्यतष्टाप् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ४ ॥

अजादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽकारान्ताच्च स्त्रियां टाप् प्रत्ययो भवति । अजा । देवदत्ता । अदितितपरकरणं तत्कालार्थम् । कीलालपाः, ब्राह्मणी । अत्र टाप् न भवति अजादिग्रहणं तु जात्यादिलक्षणस्य ङीषादेर्बाधनार्थम् :—

अजा । एडका । चटका । अश्वा । मूषिका (१) । बाला । होढा । पाका । वत्सा । मन्दा । विलाता । पूर्वापहरणा । अपरापहरणा (२) ॥ संभस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात् ॥ संफला । (३) भस्त्रफला । अजिनफला । शणफला । पिण्डफला ॥ सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात् ॥ (४) सत्पुष्पा । प्राक्पुष्पा । प्रत्यक्पुष्पा । काण्डपुष्पा । प्रान्तपुष्पा । शतपुष्पा । एकपुष्पा ॥ शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिः ॥ (५) क्रुञ्चा । उष्णिहा । देवविशा (६) ज्येष्ठा । कनिष्ठा । मध्यमा । (७) कोकिला । (८) मूलान्नञः । (९) अमूला । इत्यजादयः ॥

३६—न षट्स्वस्रादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । १ । १० ॥

षट्संज्ञकेभ्यः स्वस्रादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रीप्रत्ययो न भवति । सप्त । अष्ट :— स्वसा । दुहिता । ननान्दा । याता । माता । तिस्रः । चतस्रः । इति स्वस्रादयः ॥

३७—षिद्गौरादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । ४१ ॥

षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च । प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति नर्त्तकी खनकी । रजकी । गौरादिभ्यः । गौरी मत्सी :—

गौर । मत्स्य । मनुष्य । शृङ्ग । हय । गवय । मुकय । ऋष्य । पुट । द्रुण । द्रोण । हरिण । कण । पटर । उकण । आमलक । कुवल । बदर । बिम्ब । तर्कार । शर्कार । पुष्कर ।

(१) अजादिभ्यः पंचभ्यो जातिलक्षणो यो ङीष् प्राप्तः स बाध्यते ॥

(२) बालादिभ्यः षड्भ्यो वयसि ङीप् प्राप्तः ॥

(३) आभ्यां टिल्लक्षणो ङीप् प्राप्तः ॥

(४) समादिभ्यः फलात् सदादिभ्यश्च पुष्पाद् बहुव्रीहौ यः पाककर्णेति सूत्रेण ङीष् प्राप्तः स बाध्यते ॥

(५) अमहत्पूर्वाच्छूद्रशब्दाज्जातौ टाप् । शूद्रा । पुंयोगे तु ङीषेव शूद्रस्य स्त्री शूद्री । अमहदिति किम् । महाशूद्री ॥

(६) कुञ्चादिभ्यस्त्रिभ्योऽप्राप्तष्टाब्विधिः ॥

(७) ज्येष्ठादिभ्यस्त्रिभ्यः पुंयोगे ङीष् प्राप्तोऽनेन बाध्यते ज्येष्ठस्य भार्या ज्येष्ठा ॥

(८) कोकिलशब्दाज्जातिलक्षणो ङीष् प्राप्तः ॥

(९) मूलशब्दाद् बहुव्रीहौ पाककर्णेति ङीष् प्राप्तः । नास्ति मूलमस्याः साऽमूला

शिखण्ड । सुषम । सलन्द । गडुज । आनन्द । सृपाट । सृगेठ । आढक । शष्कुल । सूर्म । सुब । सूर्य । पूष । मूष । घातक । सकलूक । सल्लक । मालक । मालत । साल्वक । वेतस । अतस । पृस । मह । मठ । छेद । श्वन् । तक्षन् । अनडुही । अनड्वाही । एषण,करणे । देह । काकादन । गवादन । तेजन । रजन । लवण । पान । मेध । गौतम । आप । स्थूण । भौरि । भौलिक । भौलिङ्गि । औद्गाहमानि । आलिङ्गि । आपिच्छिक । आरट । टोट । नट । नाट । मूलाट । शातन । पातन । पावन । आस्तरण । अधिकरण । एत । अधिकार । आग्रहायणी । प्रत्यवरोहिणी । सेवन । सुमङ्-गलात्संज्ञायाम् । सुन्दर । मण्डल । पट । पिण्ड । विटक । कुर्द । गूर्द । पाण्ट । लोफाण्ट । कन्दर । कन्दल । तरुण । तलुन । बृहत् । महत् । सौधर्म । रोहिणी,नक्षत्रे रेवती,नक्षत्रे । विकल । निष्कल । पुष्कल ॥ कटाच्छ्रोणिवचने ॥ पिङ्गल । भट्ट । दृहन । कन्द । काकण । पिप्पल्यादयश्च । पिप्पली । हरीतकी । कोशातकी । शमी । करीरी । पृथिवी । क्रोष्टी । मातामह (१) । पितामह । इति गौरादयः ॥

३८—बह्वादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । ४५ ॥

बह्वादिप्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां वा ङीष् प्रत्ययो भवति । बह्वी । बहुः ।

बहु । पद्धति । अञ्चति । अङ्कति । अंहति । वहति । शकटि ॥ शक्तिः शस्त्रे ॥ शारि । वारि । गति । अहि । कपि । मुनि । यष्टि ॥ इतः प्राण्यङ्गात् ॥ कृतिकारा-दक्तिनः ॥ सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके (२) ॥ चण्ड । अराल । कमल । कृपाण । विकट । विशाल । विशंकट । भरुज । ध्वज ॥ चन्द्रभागान्नद्याम् ॥ चन्द्रभागी । कल्याण । उदार । पुराण । अहन् ॥ इति बह्वादयः ॥

३९—न क्रोडादिबह्वचः ॥ अ० ॥ ४ । १ । ५६ ॥

क्रोडाद्यन्तात् बह्वजन्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष्प्रत्ययो न भवति । स्वाङ्गादिति प्राप्तः प्रतिषिध्यते । शोभनक्रोडा । शोभनखुरा । पृथुजघना ।—

क्रोड । खुर । बाल । शफ । गुद । घोण । नख । मुख । भग । गल । आकृतिगणोऽयम् । इति क्रोडादयः ॥

---

(१) अत्र डामहच् प्रत्ययस्य षित्वादेव ङीषि सिद्धे पुनः पाठेन षिल्लक्षणस्य ङीषोऽनित्यत्वं ज्ञाप्यते तेन दंष्ट्रा, इति सिद्धं भवति । पृथिवीशब्दे औणादिकः षिवन् प्रत्ययस्य षित्वान् ङीषि सिद्धे उणादीनामव्युत्पन्नत्वज्ञापनार्थः पाठः ॥

(२) इकारान्तात् प्राण्यङ्गवाचकान् ङीष् भवति । अङ्गुली । इकारान्तात् कृदन्तात् स्त्रियां ङीष् । कृषी । भूमी । वापी । केषांचिन्मते क्तिन्नधिकारस्थादिकारान्तमात्रादेव ङीष् न भवति । तदा कृषिः । वापिः । इत्येव ॥

४०—शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ७३ ॥

शार्ङ्गरवादिभ्योऽञन्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीन् प्रत्ययो भवति । शार्ङ्गरवी । वैदी । जातिग्रहणमत्रानुवर्त्तते तेन जातिलक्षणो ङीषऽनेन बाध्यते न पुंयोगलक्षणः :—

शार्ङ्गरव । कापटव । गौगुलव । ब्राह्मण । गौतम । कामण्डलेय । ब्राह्मकृतेय । आनिचेय । आनिधेय । आशोकेय । वात्स्यायन । मौञ्जायन । कैकसेय । काव्य । शैव्य । एहि । पर्य्येहि । आश्मरथ्य । औदपान । अराल । चण्डाल । वतण्ड । भोगवद्गौरिमतोः संज्ञायाम् ॥ भोगवती । गौरिमती ॥ नृनरयोर्वृद्धिश्च ॥ नारी । इति शार्ङ्गरवादयः ॥

४१-क्रौड्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । ८० ॥

क्रौड्यादिप्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ष्यङ् प्रत्ययो भवति । अगुरूपोत्तमार्थं आरम्भः । क्रौड्या । लाड्या :—

क्रौडि । लाडि । व्याडि । आपिशलि । आपक्षिति । चौपयत । चैटयत । शैकयत । वैल्वयत । वैकल्यत । सौधातकि ॥ सूतात् युवत्याम् ॥ सूत्या, युवतिः ॥ भोज, क्षत्रिये ॥ भोज्या, क्षत्रिया । भौरिकि । भौलिकि । शाल्मलि । शालास्थलि । कापिष्ठलि । गौकक्ष्य ॥ इति क्रौड्यादयः ॥

४२—अश्वपत्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । ८४ ॥

अश्वपत्यादिप्रातिपदिकेभ्यः प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेष्वण् प्रत्ययो भवति । पत्युत्तरपदात् प्राप्तस्य ण्यस्यापवादः । आश्वपतम् । शातपतम् :—

अश्वपति । शतपति । धनपति । गणपति । राष्ट्रपति । कुलपति । गृहपति । धान्यपति । पशुपति । धर्मपति । सभापति । प्राणपति । क्षेत्रपति । स्थानपति । यज्ञपति । धन्वपति । अधिपति । बन्धुपति । इत्यश्वपत्यादयः ॥

४३—उत्सादिभ्योऽञ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ८६ ॥

उत्सादिभ्यः प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेष्वञ् प्रत्ययो भवति । औत्सः । औदपानः । अणस्तदपवादानां च बाधकः :—

उत्स । उदपान । विकर । विनोद । महानद । महानस । महाप्राण । तरुण । तलुन । वष्क यासे (१) ॥ धेनु । पृथिवी । पंक्ति । जगती । त्रिष्टुप् । अनुष्टुप् ।

(१) वष्कयशब्दादसे ऽर्थात् केवलादेवाञ् । तदन्तात्त्वणेव भवति ॥

जनपद । भरत । उशीनर । ग्रीष्म । पीलु । कुल । उदस्थान, देशे ॥ पृष, दंशे (१) ॥ भल्लकीय । रथन्तर । मध्यन्दिन । बृहत् । महत् । सत्वन्तु (२) । कुरु । पञ्चाल । इन्द्रावसान । उष्णिक् । ककुप् । सुवर्ण । सुपर्ण । देव । ग्रीष्मादच्छन्दसि (३) ॥ इत्युत्सादयः ॥

४४—बाह्वादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । ९६ ॥

बाह्वादिशब्देभ्योऽपत्यसामान्ये इञ् प्रत्ययो भवति । बाहोरपत्यं बाहविः । सौमित्रिः । इत्यादि :—

बाहु । उपबाहु । विवाकु । शिवाकु । वटाकु । उपबिन्दु । वृक । चूडाला । मूषिका । बलाका । भगला । छगला । ध्रुवका । धुवका । सुमित्रा । दुर्मित्रा । पुष्करसत् । अनुहरत् । देवशर्मन् । अग्निशर्मन् । कुनामन् । सुनामन् । पञ्चन् । सप्तन् । अष्टन् ।। अमितौजसः सलोपश्च (४) ॥ उदञ्चु । शिरस् । शराविन् । क्षेमवृद्धिन् । शृङ्खलातोदिन् । खरनादिन् । नगरमर्दिन् । प्राकारमर्दिन् । लोमन् । अजीगर्त्त । कृष्ण । सलक । युधिष्ठिर । अर्जुन । साम्ब । गद । प्रद्युम्न । राम । उदङ्कः संज्ञायाम् ॥ सम्भूयोम्भसोः सलोपश्च ॥ (५) ॥ आकृतिगणोऽयम् (६) ॥ इति बाह्वादयः ॥

४५—गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ९८ ॥

गोत्रसंज्ञकेऽपत्ये वाच्ये कुञ्जादिभ्यश्च्फञ् प्रत्ययो भवति । इञोऽपवादः । कुञ्जस्य गोत्रापत्यं कौञ्जायन्यः । कौञ्जायन्यौ । कौञ्जायनाः । स्वार्थे ञ्यस्तस्य तद्राजत्वाद्बहुषु लुक् । गोत्र इति किम् । कुञ्जस्यानन्तरापत्यं कौञ्जिः :—

कुञ्ज । ब्रध्न । शङ्ख । भस्मन् । गण । लोमन् । शठ । शाक । शाकट । शुण्डा । शुभ । विपाश । स्कन्द । स्तम्भ । शुम्भा । शिव । शुभंया । इति कुञ्जादयः ॥

---

(१) उदस्थानशब्दाद्देशार्थ एवाञ् । अन्यार्थेऽणेव भवति । एवमन्यत्रापि ॥

(२) अत्र सत् शब्दान्मतुप्—सत्वन्, तु, अव्ययम् । सत्वतोऽपत्यं सात्वताः ॥

(३) अत्र छन्दःशब्देन वृत्तं गृह्यते न तु वेदः । ततोऽन्यत्राञ् ॥

(४) अमितौजसोऽपत्यमामितौजिः ॥

(५) सम्भूयसोऽपत्यं साम्भूयिः । आम्भिः ॥

(६) सूत्रस्थचकारेणाकृतिगणत्वं बोध्यते । तेन । जाम्बिः । ऐन्द्रशर्म्मिः । आजधेनविः । आजबन्धविः । औडुलोमिः । इत्यादिष्विञ् सिद्धो भवति ॥

४६—नडादिभ्यः फक् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ९९ ॥

नडादिप्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्ये फक् प्रत्ययो भवति । नडस्य गोत्रापत्यं नाडायनः । चारायणः :—

नड । चर । बक । मुञ्ज । इतिक । इतिश । उपक । लमक ॥ शलङ्कु शलङ्कञ्च (१) ॥ सप्तल । वाजप्य । तिक । अग्निशर्मन् वृषगणे । प्राण । नर । सायक । दास । मित्र । द्वीप । पिङ्गर । पिङ्गल । किङ्कर । किङ्कल । कातर । कातल । काश्य । काश्यप । काव्य । अज । अमुष्य ॥ कृष्णरणौ ब्राह्मणवासिष्ठयोः (२) ॥ अमित्र । लिगु । चित्र । कुमार ॥ क्रोष्टु क्रोष्टञ्च (३) ॥ लोह । दुर्ग । स्तम्भ । शिंशपा । अग्र । तृण । शकट । सुमनस् । सुमत । मिमत । ऋच् । जत् । युगन्धर । हंसक । दण्डिन् । हस्तिन् । पंचाल । चमसिन् । सुकृत्य । स्थिरक । ब्राह्मण । चटक । बदर । अश्वक । खरप । कामुक । ब्रह्मदत्त । उदुम्बर । शोण । अलोह । दण्ड । एक । वानव्य । शावक । नाव्य । अन्वजत् । अन्तजन । इत्वरा । अंशक । अश्वला । अध्वरादण्डय । इति नडादयः ॥

४७—अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । १०४ ॥

बिदादिप्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽञ् प्रत्ययो भवति । येऽत्र गणेऽनृषिवाचकास्तेभ्यस्त्वनन्तरापत्य एव । बिदस्य गोत्रापत्यं बैदः । पुत्रस्यानन्तरापत्यं पौत्रः । दौहित्रः :—

बिद । उर्व । कश्यप । कुशिक । भरद्वाज । उपमन्यु । किलालप । किदर्भ । विश्वानर । ऋष्टिषेण । ऋतभाग । हर्यश्व । प्रियक । आपस्तम्ब । कूचवार । शरद्वत् । शुनक । धेनु । गोपवन । शिग्रु । बिन्दु । भाजन । अश्वावतान । श्यामाक । श्यमाक । श्यापर्ण । हरित । किन्दास । वह्यस्क । अर्कलूष । वध्योष । विष्णुवृद्ध । प्रतिबोध । रथन्तर । रथीतर । गविष्ठिर । निषाद । मठर । मृद । पुनर्भू । पुत्र । दुहितृ । ननान्दृ । परस्त्री, परशुं च (४) ॥ किता । सम्बक । शावली । श्यायक । अलस । इति बिदादयः ॥

---

(१) शलङ्कु शब्दस्य शलङ्कादेशः । शलङ्कोऽपत्यं शालङ्कायनः ॥

(२) कृष्णस्यापत्यं कार्ष्णायनो ब्राह्मणः । राणायनो वासिष्ठः ॥

(३) क्रोष्टोरपत्यं क्रौष्टः ॥

(४) परस्त्रिया अपत्यं पारशवः

४८—गर्गादिभ्यो यञ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । १०५ ॥

गर्गादिभ्योऽन्तरे गोत्रापत्ये यञ् प्रत्ययो भवति । गार्ग्यः। अनन्तरापत्ये तु गार्गिरित्येव :—

गर्ग । वत्स । वाजाऽसे (१) संकृति । अज । व्याघ्रपात् । विदभृत् । प्राचीनयोग । अगस्ति । पुलस्ति । रेभ । अग्निवेश । शङ्ख । शठ । धूम । अवट । चमस । धनञ्जय । मनस । वृक्ष । विश्वावसु । जनमान । लोहित । संशित । बभ्रु । मण्डु । मक्षु । अलिगु । शङ्कु । लिगु । गुलु । मन्तु । जिगीषु । मनु । तन्तु । मनायी । भूत । कथक । कष । तण्ड । वतण्ड । कपि । कत । कुरुकत । अनडुह् । कण्व । शकल । गोकक्ष । अगस्त्य । कुण्डिन । यज्ञवल्क । उभय । जात । विरोहित । वृषगण । रहूगण । शण्डिल । वण । कचुलुक । मुद्गल । मुसल । पराशर । जतूकर्ण । मन्त्रित । संहित । अश्मरथ । शर्कराक्ष । पूतिमाष । स्थूण । अररक । पिङ्गल । कृष्ण । गोलुन्द । उलूक । तितिक्ष । भिषज् । भडित । भण्डित । दल्भ । चिकित । देवहू । इन्द्रहू । एकलू । पिप्पलू । वृदग्नि । जमदग्नि । सुलोभिन् । उकत्थ । कुटीगु ॥ इतिगर्गादयः ॥

४९—अश्वादिभ्यः फञ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ११० ॥

अश्वादिभ्यो गोत्रापत्ये फञ् प्रत्ययो भवति । आश्वायनः । आश्मायनः । येस्मिन् गणेऽपत्यैकप्रत्ययान्ताः पठ्यन्ते तेषु सामर्थ्याद्यूनिप्रत्ययो विज्ञायते :—

अश्व । अश्मन् । शङ्ख । विद । पुट । रोहिण । खर्जूर । । खर्जूल । पिञ्जूर । भडिल । भण्डिल । भडित । भण्डित । भण्डिक । प्रहृत । रामोद । क्षत्र । ग्रीवा । काश । गोलाङ्क्य । अर्क । स्वन । ध्वन । पाद । चक्र । कुल । पवित्र । गोमिन् । श्याम । धूम । धूम्र । वाग्मिन् । विश्वानर । कुट । वेश । आत्रेय । नक्ष । तड । नड । ग्रीष्म । अर्ह । विशम्य । विशाला । गिरि । चपल । चुनम । दासक । वैल्य । धर्म । आनडुह्य । पुंसिजात । अर्जुन । शूद्रक । सुमनस् । दुर्मनस् । क्षान्त । प्राच्य । कित । काण । चुम्प । श्रविष्ठा । वीक्ष्य । पविन्दा । कुल्स । आतव । कितव । शिव । खदिर ॥ आत्रेय, भारद्वाजे । भरद्वाज, आत्रेये (२) ॥ पथ । कन्थु । अुव । सूनु । कर्कटक । रुक्ष । तरुक्ष । तलुक्ष । प्रतुल । विलम्ब । विष्णुज । इत्यश्वादयः ॥

---

(१) असेऽसमासे वाजशब्दाद्यञ् । सुवाजस्यापत्यं सौवाजिः । अत्र यञ् न भवति ॥

(२) आत्रेयशब्दाद् भारद्वाजगोत्रे फञ् । आत्रेयायणो भारद्वाजः । भारद्वाजशब्दादात्रेयगोत्रे फञ् । भारद्वाजायन आत्रेयः ॥

५०—शिवादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ११२ ॥

शिवादिभ्यः सामान्यापत्येऽण् प्रत्ययो भवति । यथाप्राप्तानामिञादीनामणपवादानां च बाधकः । शिवस्यापत्यं शैवः :—

शिव । प्रोष्ठ । प्रोष्ठिक । चण्ड । भण्ड । जम्भ । मुनि । सन्धि । भूरि । कुठार । अनभिम्लान । अनभिग्लान । ककुत्स्थ । कहोड । लेख । रोध । खञ्जन । कोहड । पिष्ट । हैहय । खञ्जार । खञ्जाल । सुरोहिका । पर्ण । कहूष । परिल । वतण्ड । तृण । कर्ण । क्षीरह्रद । जलह्रद । परिषिक । जटिलिक । गोफिलिक । बधिरिका । मञ्जीरक । वृष्णिक । रेख । आलेखन । विश्रवण । रवण । वर्त्तनाक्ष । पिटक । पिटाक । तृक्षाक । नभाक । ऊर्णनाभ । जरत्कारु । उत्क्षिपा । रोहितिक । आर्यश्वेत । सुपिष्ट । खर्जूरकर्ण । मसूरकर्ण । तूणकर्ण । मयूरकर्ण । खडरक । तक्षन् । ऋष्टिषेण । गङ्गा । विपाशा । यस्क । लह्य । द्रुघ । अयःस्थूण । भलन्दन । विरूपाक्ष । भूमि । इला । सपत्नी ॥ द्व्यचो नद्याः ॥ त्रिवेणी, त्रिवणं च (१) । कह्वय । कबोध । परल । ग्रीवाक्ष । गोभिलिक । राजल । तडाक । वडाक । इति शिवादयः ॥

५१—शुभ्रादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । १२३ ॥

शुभ्रादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति । यथा प्राप्तमिञादीनामपवादः । शुभ्रस्यापत्यं शौभ्रेयः :—

शुभ्र । विष्टपुर । ब्रह्मकृत । शतद्वार । शतावर । शलाका । शालाचल । शलाकाभ्रू । लेखाभ्रू । विमातृ । विधवा । कृकसा । रोहिणी । रुक्मिणी । दिशा । शालूक । अजवस्ति । शकन्धि । लक्षणश्यामयोर्वसिष्ठे (२) ॥ गोधा । कृकलास । अणीव । प्रवाहण । भरत । भारत । भारम । मृकण्डु । मघष्टु । मकष्टु । कर्पूर । इतर । अन्यतर । आलीढ । सुदत्त । सुचक्षस् । सुनामन् । कद्रु । तुद । अकशाप । कुमारिका । किशोरिका । कुवेणिका । जिह्माशिन । परिधि । वायुदत्त । ककल । खट्वर । अम्बिका । अशोका । शुद्धपिङ्गला । खडोन्मत्ता । अनुदृष्टि । जरतिन् । बलिवर्दिन् । विग्रज । बीज । श्वन् । अश्मन् । अश्व । अजिर । स्थूल । सृकण्डू । मकष्टु । यमष्टु । काष्टु । सृकण्ड । मृकण्ड । गुद । रूद । कुशेरिका । शकल । शवल । उग्र । अजिन ॥ इति शुभ्रादयः ॥

---

(१) स्त्रीवाचकाद् द्व्यच इति सूत्रेण ढक् प्राप्तः स नदीवाचकान्माभूत् । रेवाया अपत्यं रैवः । त्रिवेण्यास्त्रिवणादेशो विशेषः । त्रिवेण्या अपत्यं त्रैवणः ॥

(२) लक्षणस्यापत्यं लाक्षणेयो वसिष्ठः । श्यामाया अपत्यं श्यामेयो वसिष्ठः । मानुषो वाचकात् श्यामाशब्दादण् प्राप्तः सोऽनेन बाध्यते ॥

५२—कल्याण्यादीनामिनङ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । १२६ ॥

कल्याण्यादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति तस्मिन् सति इनङादेशः। कल्याण्या अपत्यं काल्याणिनेयः। सौभागिनेयः (१)। :–

कल्याणी। सुभगा। दुर्भगा। बन्धकी। अनुदृष्टि। अनुसृष्टि। जरती। बलीवर्दी। ज्येष्ठा। कनिष्ठा। मध्यमा। परस्त्री। इति कल्याण्यादयः॥

५३—गृष्ट्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । १३६ ॥

गृष्ट्यादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये ढञ् प्रत्ययो भवति। अणादीनामपवादः। गृष्टेरपत्यं गार्ष्टेयः। :–

गृष्टि। हृष्टि। हलि। बलि। विश्रि। कुद्रि। अजबस्ति। मित्रयु। फलि। अलि। दृष्टि। इति गृष्ट्यादयः॥

५४—रेवत्यादिभ्यष्ठक् ॥ अ० ॥ ४ । १ । १४६ ॥

रेवत्यादिभ्योऽपत्ये ठक् प्रत्ययो भवति। ढगादीनामपवादः। रेवत्या अपत्यं रैवतिकः :–

रेवती। अश्वपाली। मणिपाली। द्वारपाली। वृकवञ्चिन्। वृकग्राह। कर्णग्राह। दण्डग्राह। कुक्कुटाक्ष। वृकबन्धु। चामरग्राह। ककुदाक्ष॥ इति रेवत्यादयः॥

५५—कुर्वादिभ्यो ण्यः ॥ अ० ॥ ४ । १ । १५१ ॥

कुर्वादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये ण्यः प्रत्ययो भवति। कुरोरपत्यं कौरव्यः। काव्यः:–

कुरु। गर्ग। मङ्गुष। अजमारक। रथकार। वावदूक। सम्राजः क्षत्रिये (२) कवि। मति। वाक्। पितृमत्। इन्द्रजालि। दामोष्णीषि। गणकारि। कैशोरि। कापिञ्जलादि। कुट। शलाका। मुर। एरक। अभ्र। दर्भ। केशिनी। वेनाच्छन्दसि॥ शूर्पणाय। श्यावनाय। श्यावरथ। श्यावपुत्र। सत्यंकार। वडभीकार। शङ्कु। शाक। पथिकारिन्। मूढ। शकन्धु। कर्तृ। हर्तृ। शाकिन्। इनपिण्डी। विस्फोटक। काक। स्फाण्टक। शाकिन्। घातकि। धेनुजि। वृत्तिकार। वामरथस्य कण्वादिवत् स्वरवर्जम् (३। इतिकुर्वादयः॥

---

(१) कल्याण्यादिभ्यो ढक् तु सिद्ध आदेशार्थं वचनम्। हृदभसिन्ध्वन्त इत्युभयपदवृद्धिः॥

(२) सम्राट्शब्दात् क्षत्रिये वाच्येऽण् भवति सम्राजोऽपत्यं साम्राज्यः क्षत्रियः॥

(३) वामरथशब्दाण् ण्य प्रत्ययो भवति कण्वादिवच्च स्वरर्जकार्यमतिदिश्यते। कण्वादयो गर्गाद्यन्तर्गतास्तेभ्यः शैषिकोऽण्। यथा काराव्यस्येमे छात्राः काण्वाः। एवं वामरथादपि शैषिकोऽण् वामरथ्यस्य छात्रा वामरथाः। बहुवचने यञ्वण्योऽपि लुक्। वामरथाः। यजश्चेति ङीप्। वामरथी। इत्यादि स्वरस्त्वन्तोदात्त एव॥

५६—तिकादिभ्यः फिञ् ॥ अ० ॥ ४ ॥ १ । १५४ ॥

तिकादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये फिञ् प्रत्ययो भवति । तिकस्यापत्यं तैकायनिः । कैतवायनिः :—

तिक । कितव । संज्ञा । बाल। शिखा । उरस् । शाट्य । सैन्धव । यमुन्द। रूप्य । ग्राम्य । नील । असित । गोकच्य । कुरु । देवरथ । तैतिल । औरस । कौरव्य । भौरिकि । भौलिकि । चौपयत । चैटयत । शैकयत। चैतयत ध्वाजवत । चन्द्रमस् । शुभ । गङ्गा । वरेण्य । सुयामन् । आरद्ध । वह्यका । खल्य । वृष (१) । लोमक । उदन्य । यज्ञ । ऋथ । भीत । जाजल । रस । लावक । ध्वजवद् । वसु । बन्धु । आवन्धका । सुपामन् ॥ इति तिकादयः ॥

५७—वाकिनादीनां कुक् च ॥ अ० ॥ ४ । १ । १५८ ॥

वाकिनादिशब्देभ्योऽपत्ये फिञ् प्रत्ययो भवति । तत्सन्नियोगेन चैषां कुगागमः वाकिनस्यापत्यं वाकिनकायनिः :—

वाकिन । गारेध । कार्कट्य । काक । लङ्का ॥ चर्मिवर्मिणोर्नलोपश्च (२) । इति वाकिनादयः ॥

५८—वा०-कम्बोजादिभ्यो लुग्वचनम् ॥ ४ । १ । १७५ ॥

कम्बोजादिशब्देभ्योऽपत्ये तद्राजनि विहितस्य लुग्भवति। कम्बोजस्यापत्यं तद्राजो वा कम्बोजः :—

कम्बोज । चोल । केरल । शक । यवन । इति कम्बोजादयः ॥

५९—न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । १ । १७८ ॥

प्राच्यक्षत्रियवाचकेभ्यो भर्गादिभ्यो यौधेयादिभ्यश्चोत्पन्नस्य तद्राजप्रत्ययस्य लुङ् न भवति । अतश्चेति प्राप्तः प्रतिषिध्यते । प्राच्य । पञ्चालानां राज्ञी पाञ्चाली । वैदेही । भार्गी । यौधेयी :—

भर्ग । करूष । केकय । कश्मीर । साल्व । सुस्थाल । उरश । कौरव्य । इतिभर्गादयः ॥ यौधेय । शौभ्रेय । शौक्रेय । ग्रावाणेय । वार्त्तेय । धार्त्तेय । त्रिगर्त्त । भरत । उशीनर । इतियौधेयादयः ॥

---

(१) फिञ् प्रत्ययसम्बंधे वृषशब्दस्य यकारान्तत्वं महाभाष्ये कृतम् । वृषस्यापत्यं वार्ष्यायणिः ॥

(२) चार्मिकायणिः वार्मिकायणिः ॥

६०—भिक्षादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ३८ ॥

षष्ठी समर्थभिक्षादिशब्देभ्यः समूहार्थेऽण् प्रत्ययो भवति । अञादिबाधनार्थमण्ग्रहणम् । भिक्षाणां समूहो भैक्षम् । गार्भिणम् :—

भिक्षा । गर्भिणी । क्षेत्र । करीष । अंगार । चर्मिन् । धर्मिन् । चर्मन् । धर्मन् सहस्र । युवति । पदाति । पद्धति । अथर्वन् । अर्वन् । दक्षिणा । भूत । विषय । श्रोत्र ॥ वृक्षादिभ्यः खण्डः (१) ॥ वृक्षखण्डः । वृक्ष । तरु । पादप । इति भिक्षादयः ।

६१—खण्डिकादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । ४५ ॥

खण्डिकादिभ्यः समूहार्थेऽञ् प्रत्ययो भवति । खण्डिकानां समूहः खाण्डिकम् :—

खण्डिका । वडवा ॥ क्षुद्रकमालवात्सेनासंज्ञायाम् ॥ (२) भिक्षुक । शुक । उलूक । श्वन् । युग । अहन् । वरत्रा । हलबन्ध । इति खण्डिकादयः ॥

६२—पाशादिभ्यो यः ॥ अ० ॥ ४ । २ । ४९ ॥

षष्ठीसमर्थपाशादिभ्यः समूहार्थे यः प्रत्ययो भवति । पाशानां समूहः पाश्या रज्जुः । तृण्या :—

पाश । तृण । धूम । वात । अंगार । पोत । बालक । पिटक । पिटाक । शकट । हल । नड । वन । पाटलका । गल । इति पाशादयः ॥

६३—राजन्यादिभ्यो वुञ् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ५३ ॥

राजन्यादिप्रातिपदिकेभ्यो विषयो देश इत्येतस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति । राजन्यानां विषयो देश, राजन्यकः :—

राजन्य । देवयान । शालङ्कायन । जालन्धरायण । आत्मकामेय । अम्बरीष पुत्र । वसाति । बैल्वान । शैलूष । उदुम्बर । बैल्ववल । आर्जुनायन । संप्रिय । दाक्षि । ऊर्णनाभ । आप्रीत । अनीड । वैतिल । बाभ्रक (३) । इति राजन्यादयः ॥

---

(१) खण्डशब्दः पुस्तकान्तरपठितो न सर्वत्र क्वचित्तु वृक्षादिभ्यः षण्डः । इतिपाठः । वृक्षषण्डः ॥

(२) क्षुद्राश्च मालवाश्चेति क्षत्रियद्वन्द्वः । ततः पूर्वेणैवाञिसिद्धे गोत्रवुञ् बाधनार्थं वचनम् । क्षुद्रकमालवानां समूहः क्षौद्रकमालवी सेना । सेनासंज्ञेतिनियमार्थम् । अन्यत्राञ् न भवति । क्षौद्रकमालवकम् ॥

(३) अयमाकृतिगणस्तेन मालवानां विषयो देशः, मालवकः । वैराटकः । त्रैगर्त्तकः । इत्यादयः शब्दाः सिद्धा भवन्ति ॥

६३—भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ ॥ अ० ॥४।२।५४ ॥

विषयो देश इत्येतस्मिन् विषये षष्ठीसमर्थेभ्यो भौरिक्यादिभ्य ऐषुकार्यादिभ्यश्च यथासंख्यं विधल्भक्तलौ प्रत्ययौ भवतः। अणोऽपवादः। भौरिकीणां विषयो देशः, भौरिकिविधः। ऐषुकारिभक्तः॥

भौरिकि। भौलिकि। वैपेय। चैटयत। काणेय। वाणिजक। कालिज। वालिज्यक। शैकयत। वैकयत। इति भौरिक्यादयः॥ ऐषुकारि। सारस्यायन। चान्द्रायण। द्व्याक्षायण। त्र्यायण। औडायन। जौलायन। खाडायन। सौवीर। दासमित्रि। दासमित्रायण। शौद्रायण। दाक्षायण। शयण्ड। तार्क्ष्यायण। शौभ्रायण। सायण्डि। शौण्डि। वैश्वमाणव। वैश्वधेनव। नद। तुण्डदेव। अलायत। औलालायत। शौण्ड। शयाण्ड। वैश्वदेव॥ इत्यैषुकार्य्यादयः॥

६५—क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट् ठक्॥ अ० ॥ ४ । २ । ६० ॥

तदधीते तद्वेदेत्यस्मिन् विषये क्रतुविशेषवाचिभ्य उक्थादिभ्यः सूत्रान्ताच्च प्रातिपदिकाट् ठक् प्रत्ययो भवति। अणोऽपवादः। अग्निष्टोममधीते वेद वा, आग्निष्टोमिकः। वाजपेयिकः। औक्थिकः। वार्त्तिकसूत्रमधीते, वार्त्तिकसूत्रिकः सांग्रहसूत्रिकः :—

उक्थ। लोकायत। न्याय। न्यास। निमित्त। पुनरुक्त। निरुक्त। यज्ञ। चर्चा। धर्म। क्रमेतर। श्लक्ष्ण। संहिता। पद। क्रम। संघात। वृत्ति। संग्रह। गुणागुण। आयुर्वेद॥ द्विपदी, ज्योतिषि (१)॥ अनुपद। अनुकल्प। अनुगुण। इत्युक्थादयः॥

६६—क्रमादिभ्यो वुन्॥ अ० ॥ ४ । २ । ६१ ॥

तदधीते तद्वेदेत्यर्थे क्रमादिभ्यो वुन् प्रत्ययो भवति। क्रममधीतेऽक्रमकः पदकः :—

क्रम। पद। शिक्षा। मीमांसा। सामन्। इति क्रमादयः॥

६७—वसन्तादिभ्यष्ठक्॥ अ० ॥ ४ । २ । ६३ ॥

तदधीते तद्वेदेत्यस्मिन् विषये वसन्तादिप्रातिपदिकेभ्यष्ठक् प्रत्ययो भवति। वसन्तसहचरितो ग्रन्थो वसन्तस्तमधीते वेद वा स वासन्तिकः। वार्षिकः। एवं सर्वत्र:—

वसन्त। वर्षा। शरद्। हेमन्त। शिशिर। प्रथम। गुण। चरम। अनुगुण। अपर्वन्। अथर्वन्॥ इतिवसन्तादयः॥

(१) द्विपदीं ज्योतिःशास्त्रमधीते जानाति वा स द्वैपदिकः॥

६८—संकलादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । ७५ ॥

संकलादिप्रातिपदिकेभ्यश्चातुर्थिकोऽञ् प्रत्ययो भवति । अणोऽपवादः । पुष्क
स्मिन् सन्तीति पौष्कलो देशः । सिकताया अदूरभवो ग्रामः सैकतः । यथा स
वमर्थसंबन्धः :—

संकल । पुष्कल । उद्दय । उडुप । उत्पुट । कुम्भ । विधान । सुदक्ष । सुद
सुभूत । सुनेत्र । सुपिङ्गल । सिकता । पूतीकी । पूलास । कूलास । पला
निवेश । गवेश । गम्भीर । इतर । शर्मन् । अहन् । लोमन् । वेमन् । वरुण । बहु
सद्योज । अभिषिक्त । गोभृत् । राजभृत् । गृह । भृत । भल्ल । माल । (वृत्) इ
संकलादयः ॥

६६—सुवास्त्वादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ७७ ॥

सुवास्त्वादिप्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिकोऽण् प्रत्ययो भवति । अञोऽपवादः । सु
स्तोरदूरं नगरं, सौवास्तवम् । सौवास्तवी । नदी :—

सुवास्तु । वर्णु । भण्डु । खण्डु । कण्डु । सेचालिन् । कर्पूरिन् । शिखण्डि
गर्त । कर्कश । शटीकर्ण । कृष्ण । कर्क । कर्कन्धूमती । गोह्य । गाह्वि । अहिसक्
(वृत्) इति सुवास्त्वादयः ॥

७०—वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठको ऽरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसंकाशबलपक्षकर्ण सुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । २ । ८० ॥

अरीहणादिसप्तदशगणस्थप्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिका वुञादयः सप्तदशैव प्रत्
यथासंख्येन भवन्ति । आदिशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते । यथासम्भवमर्थसम्बन्
अरीहणादिभ्यो वुञ् । शिरीषाणामदूरभवो ग्रामः शैरीषकः । अरीहणानां निव
देश आरीहणकः :—

अरीहण । द्रुघण । खदिर । सार । भगल । उलन्द । सांपरायण । क्रौष्
यण । भास्त्रायण । मैत्रायण । त्रैगर्त्तायन । रायस्पोष । विपथ । उद्दण्ड । उदञ्
खाडायन । खण्ड । वीरण । काशकृत्स्न । जाम्बवन्त । शिंशपा । किरण । रैव
वैल्व । वैमतायन । मैमतायण । सौसायन । शाण्डिल्यायन । शिरीष । बधि
वैगर्त्तायण । गोमतायण । सौमतायण । खाण्डायण । विपाश । सुयज्ञ । जम्बु । सुश
इत्यरीहणादयः ॥ कृशाश्वादिभ्यश्छण् । कार्शाश्वीयः । अरिष्टेन निर्वृत्तमारिष्टीयम्

कृशाश्व । अरिष्ट । अरीश्व । वेश्मन् । विशाल । रोमक । शबल । कू
रोमन् । वर्वर । सुकर । सूकर । प्रतर । सदृश । पुरग । सुख । धूम । अजि

सिनता । वनिता । अवनत । विकुधास । अरुस् । अवयास । अयावस् । मौद्गलाय ।
इति काशाश्वादयः ॥ ऋश्यादिभ्यः कः ॥ न्यग्रोधानामदूरभवं वनं न्यग्रोधकम् :—

ऋश्य । न्यग्रोध । शिरा । निलीन । निवास । निधान । निवात । निबद्ध ।
विबद्ध । परिगूढ । उपगूढ । उत्तराश्मन् । स्थूलबाहु । खदिर । शर्करा । अनडुह् ।
परिवंश । वेणु । वीरण । खण्ड । परिवृत्त । कर्दम । अंशु । इति ऋश्यादयः ॥ कुमु-
दादिभ्यष्ठच् ॥ बल्वजाः सन्त्यस्मिन् स बल्वजिको देशः :—

कुमुद । शर्करा । न्यग्रोध । उत्कट । इत्कट । गर्त्त । बीज । अश्वत्थ । बल्वज । परिवाप ।
शिरीष । यवाष । कूप । विकङ्कत । कण्टक । कङ्कट । संकट । पलाश । तिक । कत ।
दशग्राम । इति कुमुदादयः ॥ काशादिभ्य इलः । काशाः सन्ति यत्र स काशिलो देशः :—

काश । वाश । अश्वत्थ । पलाश । पीयूष । विश । विस । तृण । नर । चरण ।
कर्दम । कर्पूर । कण्टक । गुह । आवास । नड । वन । बधूल । बर्बर । इति का-
शादयः ॥ तृणादिभ्यः शः ॥ तृणानि यत्र सन्ति स तृणशो देशः :—

तृण । नड । बुस । पर्ण । वर्ण । चरण । अर्ण । जन । बल । लव । वन ।
इति तृणादयः ॥ प्रेक्षादिभ्यः इनिः । प्रेक्षया निर्वृत्तः प्रेक्षी :—

प्रेक्षा । हलका । फलका । बन्धुका । ध्रुवका । क्षिपका । न्यग्रोध । इक्कट ।
बुधका । संकट । कूपका । कर्कटा । सुकटा । मङ्कट । सुक । महा । इति प्रेक्षादयः ॥
अश्मादिभ्योरः । अश्मना निर्वृत्तः, अश्मरः :—

अश्मन् । यूष । रूष । मीन । दर्भ । वृन्द । गुड । खण्ड । नग । शिखा । यूथ । रुष । नद । नख ।
काट । पाम । इत्यश्मादयः ॥ सख्यादिभ्यो ढञ् । सखायः सन्त्यत्र साखेयो देशः :—

सखि । सखिदत्त । वायुदत्त । गोहित । गोहिल । भल्ल । पाल । चक्रपाल ।
चक्रवाल । छगल । अशोक । करवीर । सीकर । सकर । सरस । समल । चर्क ।
चक्रपाल । उशीर । सुरस । रोह । तमाल । कदल । सप्तल । इति सख्यादयः ॥

संकाशादिभ्यो ण्यः । सांकाश्यम् । काम्पिल्यस्यादूरभवो ग्रामः काम्पिल्यः :—

संकाश । काम्पिल्य । समीर । कश्मर । शूरसेन । सुपथिन् । सक्थच । यूप ।
अंश । राग । अश्मन् । कूट । मलिन । तीर्थ । अगस्ति । विरत । चिकार । विरह ।
नासिका । इति संकाशादयः ॥ बलादिभ्यो यः प्रत्ययः । बलेन निर्वृत्तो बल्यः :—

बल । वुल । तुल । डल । डुल । कवल । वन । कुल । इति बलादयः ॥ पक्षा-
दिभ्यः फक् प्रत्ययः । पक्षेण निर्वृत्तः पाक्षायणः :—

पक्ष । तुष । अण्ड । कम्बलिक । चित्र । अश्मन् । अतिस्वन् ॥ पथिन्, पन्थच
(१) ॥ कुम्भ । सीरज । सीरक । सरक । सलक । सरस । समल । रोमन् ।

(१) पथोऽदूरभवं वनं पान्थायतनम् ॥

लोमन्। हंसका। लोमक। सकण्डक। अस्तिवल। यमल। हस्त। सिंहक। इति पक्षादयः॥ कर्णादिभ्यः फिञ् प्रत्ययः। कर्णस्य निवासः कार्णायनिः :—

कर्ण। वसिष्ठ। अलुश। शल। द्रुपद। अनडुह्य। पाञ्चजन्य। स्थिरा। कुलिश। कुम्भी। जीवन्ती। जित्व। आण्डीवत्। अर्क। लूष। स्फिक्। ग्रावत्। इतिकर्णादयः॥ सुतङ्गमादिभ्य इञ् प्रत्ययो भवति। सुतङ्गमेन निर्वृत्तः सौतङ्गमिः

सुतङ्गम। मुनिचित्त। विप्रचित्त। महापुत्र। श्वेत। गडिक। शुक्र। विग्र। बीजवापिन्। श्वन्। अर्जुन। अजिर। जीव। इति सुतङ्गमादयः॥ प्रगदिन्नादिभ्यो ञ्यः प्रत्ययो भवति। प्रगदिनो यत्र सन्ति स प्रागद्यो देशः :—

प्रगदिन्। मगदिन्। शरदिन्। कलिव। खडिव। गडिव। चूडार। मार्जार कोविदार॥ इति प्रगदिन्नादयः॥ वराहादिभ्यः कक् प्रत्ययः। वराहाः सन्ति-यत्र स वाराहको देशः। पालाशकः :—

वराह। पलाश। शिरीष। पिनद्ध। स्थूण। विदग्ध। विदग्ध। विभग्न। बाहु। खदिर। शर्करा। विनद्ध। निबद्ध। विरुद्ध। मूल। इतिवराहादयः॥ कुमुदादिभ्यष्ठक् प्रत्ययो भवति। कुमुदाः सन्ति यस्मिन् देशे स कौमुदिको देशः :—

कुमुद। गोमथ। रथकार। दशग्राम। अश्वत्थ। शाल्मली। कुण्डल। मुनिस्थूल। कूट। मुचुकर्ण। कुन्द। मधुकर्ण। शुचिकर्ण। शिरीष। इति कुमुदादयः॥

७१—वरणादिभ्यश्च॥ अ०॥ ४। २। ८२॥

वरणादिप्रातिपदिकेभ्य उत्पन्नस्य चातुरर्थिकप्रत्ययस्य लुब् भवति वरणानाम-दूरभवं नगरं वरणाः :—

वरणाः। पूर्वेगोदौ। पूर्वेणगोदौ। अपरेणगोदौ। आलिङ्ग्यायन। पर्णी। शृङ्गी। शल्मलयः। सदाण्वी। वणिकि। वणिक्। जालपद। मथुरा। उज्जयिनी। गया। तक्षशिला। उरशा। आकृत्या (१)। इति वरणादयः॥

७२—मध्वादिभ्यश्च॥ अ०॥ ४। २। ८६॥

मध्वादिशब्देभ्यश्चातुरर्थिको मतुप् प्रत्ययो भवति। मध्वस्मिन्नस्तीतिमधुमान् :—

मधु। विस। स्थाणु। मुष्टि। हृष्टि। इक्षु। वेणु। रम्य। ऋक्ष। कर्कन्धु। शमी। किरीर। हिम। किशरा। शर्पणा। मरुत्। मरुव। दार्वाघाट। शर। इष्टका। तक्षशि-ला। शक्ति। आसन्दी। आसुति। शलाका। आमिधी। खडा। वेटा। इति मध्वादयः॥

(१) अत्र सूत्रस्थचकारेणाकृतिगणत्वं बुध्यते। तेन कटुकवदर्या अदूरभवो ग्रामः कटुकबदरी। शिरीषाः। काञ्ची इत्यादिषु लुप् सिद्धो भवति॥

७३—उत्करादिभ्यश्छः ॥ अ० ॥ ४ । २ । ९० ॥

उत्करादिप्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिकश्छः प्रत्ययो भवति । यथासंभवमर्थसंबन्धः। अर्काणामदूरभवो ग्रामः, अर्कीयः :—

उत्कर । संफल । संकर । शफर । पिप्पल । पिप्पलीमूल । अश्मन् । अर्क । पर्ण । सुपर्ण । खलाजिन । इडा । अग्नि । तिक । कितव । आतप । अनेक । पलाश । तृणव । पिचुक । अश्वत्थ । शकाक्षुद्र । भस्त्रा । विशाला । अवरोहित । गर्त्त । शाल । अन्य । जन्या । अजिन । मञ्च । चर्मन् । उत्क्रोश । शान्त । खदिर । शूर्पणाय । श्यावनाय । नैव । बक । नितान्त । वृक्ष । इन्द्रवृक्ष । आर्द्रवृक्ष । अर्जुनवृक्ष । इत्युत्करादयः ॥

७४—नडादीनां कुक् च ॥ अ० ॥ ४ । २ । ९१ ॥

नडादिप्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिकश्छः प्रत्ययो भवति तस्मिन् सति कुगागमश्च। यथासंभवमर्थसंबंधः । नडाः सन्ति यत्र तन्नडकीयं वनम् :—

नड । प्लक्ष । बिल्व । वेणु । वेत्र । वेतस । तृण । इक्षु । काष्ठ । कपोत । क्रुञ्चाया ह्रस्वत्वं च (१) ॥ तक्षन्नलोपश्च ॥ इति नडादयः ॥

७५—कत्त्र्यादिभ्यो ढकञ् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ९५ ॥

कत्त्र्यादिशब्देभ्यः शैषिके ढकञ् प्रत्ययो भवति । कत्त्र्यां भवः कात्त्रेयकः :—

कत्त्रि । उम्भि । पुष्कर । पुष्कल । मोदन । कुम्भी । कुण्डिन । नगर । वञ्जी । भक्ति । माहिष्मती । चर्मण्वती । वर्मती । ग्राम । उख्या । कुल्याया यलोपश्च (२)॥ इति कत्त्र्यादयः ॥

७६—नद्यादिभ्यो ढक् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ९७ ॥

नद्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शैषिको ढक् प्रत्ययो भवति । नद्यां भवं नादेयम् :—

नदी । मही । वाराणसी । श्रावस्ती । कौशाम्बी । नवकौशाम्बी । काशफरी । खादिरी । पूर्वनगरी (३) । पावा । मावा । साल्वा । दार्वा । दाल्वा । वासेनकी । वडवाया वृषे ॥ इति नद्यादयः ॥

---

(१) क्रुञ्चाः सन्त्यस्मिन् तत् क्रुञ्चकीयं वनम् । तक्षकीयो ग्रामः ॥

(२) कुल्यां भवः कौलेयकः । यकारलोपः ॥

(३) पूर्वनगर्यां भवः पौर्वनगरेयः । अत्र—पूः । वन । गिरि । इतिपाठान्तरम् । तदा—पौरेयम् । वानेयम् । गैरेयमिति विभक्तं रूपत्रयं सिध्यति ॥

७७—प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण् ॥ अ० ॥ ४ ।२।११० ॥

प्रस्थोत्तरपदात् पलद्यादिभ्यः कोपधाच्च प्रातिपदिकादण् प्रत्ययो भवति शैषिकः। मद्रीप्रस्थे भवो माद्रीप्रस्थः । माहकीप्रस्थः । पलद्यां भवः पालदः । पारिषदः । कोपधात् । नैलीनकः । :–

पलदी । परिषत् । यकृल्लोमन् । रोमक । कालकूट । पटच्चर । वाहीक । कलकीट । मलकीट । कमलकीट । कमलभिदा । कमलकीर । बाहुकीट । नैतकी । परिखा । शूरसेन । गोमती । उदपान । पद्म । कललकीट । कललकीकटा । गोष्ठी । नैधिकी । नैकेती । सकृल्लोमन् । इति पलद्यादयः ॥

७८–कण्वादिभ्यो गोत्रे ॥ अ० ॥ ४ । २ । १११ ॥

गोत्रप्रत्ययान्तकण्वादिप्रातिपदिकेभ्यः शैषिकोऽण् प्रत्ययो भवति । काण्वस्येमे काण्वाश्छात्राः । गर्गाद्यन्तर्गताः कण्वादयः । अतएवात्र न लिख्यन्ते ॥

७९—काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ ॥ अ० ॥ ४ । २ । ११६ ॥

काश्यादिप्रातिपदिकेभ्यः शैषिकौ ठञ्ञिठौ प्रत्ययौ भवतः । प्रत्यययोर्ञकार विपर्ययभेदात् स्त्रीप्रत्यये विशेषः । ठञन्तान् ङीप् ञिठान्तात् तु टाबेव भवति । काश्यां भवः काशिकः । काशिकी । काशिका :—

काशि । चेदि । वैदि । संज्ञा । संवाह । अच्युत । मोहमान । शकुलाद । हस्तिकर्षू । कुदामन् । कुनामन् । हिरण्य । करण । गोधाशन । भौरिकि । भौलिङ्गि । अरिन्दम । सर्वमित्र । देवदत्त । साधुमित्र । दासमित्र । दासग्राम । सौधावतान । युवराज । उपराज । सिन्धुमित्र । देवराज । आपदादिपूर्वपदान्तात् कालान्तात् ॥ आपत्कालिकी । आपत्कालिका । और्ध्वकालिकी । और्ध्वकालिका । तात्कालिकी । तात्कालिका । इति काश्यादयः ॥

८०—धूमादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । १२७ ॥

देशवाचिभ्यो धूमादिप्रातिपदिकेभ्यः शैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति । अणोऽपवादः धूमे भवो धौमकः :–

धूम । खण्ड । खडण्ड । शशादन । आर्जुनाद । दाण्डायनस्थली । माहकस्थली घोषस्थली । माषस्थली । राजस्थली । राजगृह । सत्रासाह । भक्षास्थली । मद्रकूल गर्त्तकूल । आञ्जीकूल । द्व्याहाव । त्र्याहाव । संहीय । वर्बर । वर्चगर्त्त । विदेह। आनर्त्त । माठर । पाथेय । घोष । शिष्य । मित्र । वल । आराज्ञी । धार्त्तराज्ञी ।

अवयात । तीर्थ । कूलात्सौवीरेषु ॥ समुद्रान्नावि मनुष्ये च (१) ॥ कुक्षि । अन्तरीप । द्वीप । अरुण । उज्जयिनी । दक्षिणापथ । साकेत । मानवल्ली । वल्ली । सुराष्ट्री । इति धूमादयः ॥

८१—कच्छादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । १३३ ॥

कच्छादिदेशवाचिप्रातिपदिकेभ्यः शैषिकोऽण् प्रत्ययो भवति । वुञादेरपवादः । कच्छे भवः काच्छः :—

कच्छ । सिन्धु । वर्णु । गन्धार । मधुमत् । कम्बोज । कश्मीर । साल्व । कुरु । रङ्कु । अणु । अण्ड । खण्ड । द्वीप । अनूप । अजवाह । विजापक । कुलून । इति कच्छादयः ॥

८२—गहादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । १३८ ॥

गहादिप्रातिपदिकेभ्यः शैषिकश्छः प्रत्ययो भवति अणञोरपवादः । अन्तःस्थे भव अन्तःस्थीयः :—

गह । अन्तःस्थ । सम । विषम । मध्यमध्यमं चाण् चरणे (२) उत्तम । अङ्ग । वङ्ग । मगध । पूर्वपक्ष । अपरपक्ष । अधमशाख । उत्तमशाख । समानशाख । एकग्राम । एकवृक्ष । एकपलाश । इष्वग्र । इष्वनीक । अवस्यन्दी । अवस्कन्द । कामप्रस्थ । खाडायनि । खाण्डायनी । काविरणि । कामवेरणि । शैशिरि । शौङ्गि । आसुरि । आहिंसि । आमित्रि । व्याडि । वैदजि । भौजि । आढ्यश्वि । आनृशंसि । सौवि । पारकि । अग्निशर्मन् । देवशर्मन् । श्रौति । आरटकि । वाल्मीकि । क्षेमवृद्धिन् । उत्तर । अन्तर ॥ मुखपार्श्वतसोर्लोपः ॥ जनपरयोः कुक् च ॥ देवस्य च ॥ वेणुकादिभ्यश्छण् (३) ॥ इति गहादयः ॥

---

(१) समुद्रशब्दान्नावि मनुष्ये च वाच्ये वुञ् । समुद्रे भवा सामुद्रिका नौः । सामुद्रको मनुष्यः । अन्यत्र सामुद्रं जलम् ॥

(२) अस्यैव सूत्रस्य शेषवार्त्तिकप्रमाणेन पृथिवीमध्यशब्दस्य मध्यमादेशश्चरणेऽभिधेये निवासलक्षणोऽण् प्रत्ययः । अन्यत्र तु छ एव । पृथिवीमध्येनिवास एषां ते माध्यमाश्चरणाः । चरणादन्यत्र । मध्ये भवो मध्यमीयः ॥

(३) मुखपार्श्वयोस्तसन्तयोरन्त्यलोपः । मुखतोभवं मुखतीयम् । पार्श्वतीयम् । जने भवो जनकीयः । परकीयः । देवो भक्तिरस्य देवकीयः । वेणुकादिराकृतिगणः । वेणुकदेशे भवो वैणुकीयः । वैरेणकीयः । पालाशकीयः ॥

८३—सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १६ ॥

सन्धिवेलादिभ्य ऋतुभ्यो नक्षत्रेभ्यश्च कालवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शैषिकोऽण् प्रत्ययो भवति । ठञोऽपवादः । अण्ग्रहणं वृद्धाच्छस्य बाधनार्थम् । सन्धिवेलायां जातः सान्धिवेलः । ग्रैष्मः । तैषः । पौषः :—

सन्धिवेला । सन्ध्या । अमावास्या । त्रयोदशी । चतुर्दशी । पंचदशी । पौर्णमासी । प्रतिपत् ॥ संवत्सरात् फलपर्वणोः ॥ सांवत्सरं फलम् । सांवत्सरं पर्व ॥ इति सन्धिवेलादयः ॥

८४—दिगादिभ्यो यत् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ५४ ॥

सप्तमीसमर्थदिगादिप्रातिपदिकेभ्यो भवार्थे यत् प्रत्ययो भवति । अणश्छस्य चापवादः । दिशि भवं दिश्यम् :—

दिश । वर्ग । पूग । गण । पक्ष । धाय्या । मित्र । मेधा । अन्तर । पथिन् । रहस् । अलीक । उखा । साक्षिन् । आदि । अन्त । मुख । जघन (१) । मेघ । यूथ । उदकात्संज्ञायाम् (२) न्याय । वंश । अनुवंश । विश । काल । अप् । आकाश । इति दिगादयः ॥

८५—वा०—ड्यप्रकरणे परिमुखादिभ्य उपसंख्यानम् ॥४।३।५९॥

अव्ययीभावसंज्ञकेभ्यः परिमुखादिप्रातिपदिकेभ्यो ड्यप्रत्ययो भवति । नियमार्थं वार्त्तिकमिदम् । सूत्रेण सामान्याव्ययीभावाद् ड्यः प्राप्तो नियम्यते । परिमुखं भवं पारिमुख्यम् । पारिहनव्यम् । नियमादिह न भवति । उपकूलं भवमौपकूलम् :—

परिमुख । परिहनु । पर्योष्ठ । पर्युलू । औपमूल । खल । परिसीर । अनुसीर । उपसीर । उपस्थल । उपकलाप । अनुपथ । अनुखड्ग । अनुतिल । अनुशीत । अनुमाष । अनुयव । अनुयूप । अनुवंश । अनुखड्ग । इति परिमुखादयः ॥

८६—वा०—अध्यात्मादिभ्यश्च ॥ ४ । ३ । ६० ॥

अध्यात्मादिभ्यो भवार्थे ठञ् प्रत्ययो भवति । अध्यात्मं भवमाध्यात्मिकम् :—

अध्यात्म । अधिदेव । अधिभूत । आकृतिगणोऽयम् । इत्यध्यात्मादयः ॥

---

(१) मुखजघनशब्दाभ्यां शरीरावयवत्वादेव यति सिद्धे पुनरत्र दिगादिषु पाठोऽशरीरावयवार्थः । सेनामुखे भवः सेनामुख्यम् । सेनाजघन्यम् । सेनाया अग्रपश्चाद्भागौ गृह्येते । तदन्तविधिना यत् ॥

(२) उदके भवा उदक्या रजस्वला । संज्ञाग्रहणादिह न भवति । उदके भव औदको मत्स्यः ॥

८७—अण् ऋगयनादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ७३ ॥

षष्ठीसप्तमीसमर्थेभ्य ऋगयनादिप्रातिपदिकेभ्यो भवव्याख्यानयोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति । ऋगयने भवमार्गयनः । तस्य व्याख्यानो वा । अण्ग्रहणं बाधकबाधनार्थम् वास्तुविद्याया व्याख्यानो ग्रन्थो वास्तुविद्यः । अत्र छ प्रत्ययो माभूत् :–

ऋगयन । पदव्याख्यान । छन्दोमान । छन्दोभाषा । छन्दोविचिति । न्याय । पुनरुक्त । व्याकरण । निगम । वास्तुविद्या । अङ्गविद्या । क्षत्रविद्या । उत्पात । उत्पाद । संवत्सर । मुहूर्त्त । निमित्त । उपनिषद् । शिक्षा । छन्दोविजिनी । व्याय । निरुक्त । विद्या । उद्याव । भिक्षा । इति, ऋगयनादयः ॥

८८—शुण्डिकादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ७६ ॥

पंचमीसमर्थशुण्डिकादिप्रातिपदिकेभ्य आगतार्थेऽण् प्रत्ययो भवति । शुण्डिकादागतः शौण्डिकः :–

शुण्डिक । कृकण । स्थण्डिल । उदपान । उपल । तीर्थ । भूमि । तृण । पर्ण । इति शुण्डिकादयः ॥

८९—शण्डिकादिभ्यो ञ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ९२ ॥

प्रथमासमर्थशण्डिकादिप्रातिपदिकेभ्योऽभिजन ऽभिधेये ञ्यः प्रत्ययो भवति शण्डिकोऽभिजनोऽस्य स शाण्डिक्यः :–

शण्डिक । सर्वकेश । सर्वसेन । शक । सट । रक । शङ्ख । बोध । इति शण्डिकादयः ॥

९०–सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ९३ ॥

प्रथमासमानाधिकरणेभ्यः सिन्ध्वादिभ्यस्तक्षशिलादिभ्यश्चाभिजनेऽर्थे यथासंख्यमणञौ प्रत्ययौ भवतः । सिन्धुरभिजनोऽस्य स सैन्धवः । तक्षशिलाऽभिजनोऽस्य स ताक्षशिलः । प्रत्ययभेदः स्वरभेदार्थः :—

सिन्धु । वर्णु । गन्धार । मधुमत् । कम्बोज । कश्मीर । साल्व । किष्किन्धा । गब्दिका । उरस । दरत् । कुलून । दिरसा । इति सिन्ध्वादयः ॥

तक्षशिला । वत्सोद्धरण । कौमेदुर । काण्डवारण । ग्रामणी । सरालक । कंस । किन्नर । संकुचित । सिंहकोष्ठ । कर्णकोष्ठ । बर्बर । अवसान । इतितक्षशिलादयः ॥

९१—शौनकादिभ्यश्छन्दसि ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १०६ ॥

तृतीयासमर्थशौनकादिप्रातिपदिकेभ्यश्छन्दसि वेदे प्रोक्तार्थे णिनिः प्रत्ययो भवति । छाणोरपवादः । शौनकेन प्रोक्तमधीयते, शौनकिनः । वाजसनेयिनः । छन्दसीति किम् । शौनकीया शिक्षा । अत्र छन्द एव भवति :–

शौनक । वाजसनेय । साङ्गरव । शाङ्गरव । सापेय । शाखेय । खाडायन । स्कन्द । स्कम्ब । देवदत्तशठ । रज्जुकण्ठ । रज्जुभार । कठशाठ । कशाय । तलवकार । पुरुषासक । अश्वपेय । स्कम्भ । इति शौनकादयः ॥

९२—कुलालादिभ्यो वुञ् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ११८ ॥

तृतीयासमर्थकुलालादिप्रातिपदिकेभ्यो वुञ् प्रत्ययो भवति । कृतमित्येतस्मिन्नर्थे संज्ञायां गम्यमानायाम् । कुलालेन कृतं कौलालकम् । वारुडकम् :–

कुलाल । वरुड । चण्डाल । निषाद । कर्मार । सेना । सिरिध्र । सेन्द्रिय । देवराज । परिषत् । वधू । रुरु । ध्रुव । रुद्र । अनडुह् । ब्रह्मन् । कुम्भकार । श्वपाक । इति कुलालादयः ॥

९३—बिल्वादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ११६ ॥

षष्ठीसमर्थबिल्वादिप्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति बिल्वस्य विकारोऽवयवो वा बैल्वः :–

बिल्व । व्रीहि । काण्ड । मुद्ग । मसूर । गोधूम । इक्षु । वेणु । गवेधुका (१) कर्पासी । पाटली । कर्कन्धू । कुटीर ॥ इति बिल्वादयः ॥

९४—पलाशादिभ्यो वा ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १४१ ॥

पलाशादिप्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरञ् प्रत्ययो भवति । पलाशस्य विकारः पालाशम् । खादिरम् :–

पलाश । खदिर । शिंशपा । स्यन्दन । करीर । शिरीष । यवास । विकङ्कत । इति पलाशादयः ॥

९५—नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १४४ ॥

वृद्धेभ्यः शरादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भक्ष्याच्छादनयोर्विकारावयवयोर्भाषायां विषये नित्यं मयट् प्रत्ययो भवति । वृद्ध-आम्रमयम् । शालमयम् । शरमयम् । दर्भमयम् :–

शर । दर्भ । मृत् । कुटी । तृण । सोम । बल्वज । इति शरादयः ॥

---

(१) अस्मात्कोपधाच्चेत्यणि सिद्धे पुनःपाठो मयड्बाधनार्थः एतस्मिन् पक्षेऽपि मयण् माभूदिति ॥

९६—तालादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १५२ ॥

तालादिप्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरण् प्रत्ययो भवति । तालस्य विकारः तालं धनुः । अन्यत्र तालमयम् । वृद्धत्वान्मयट् :—

तालाद्धनुषि । बार्हिण । इन्द्रालिश । इन्द्रादृश । इन्द्रायुध । चाप । श्यामाक । पीयुक्षा ॥ इति तालादयः ॥

९७—प्राणिरजतादिभ्योऽञ् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १५४ ॥

प्राणिवाचिभ्यो रजतादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरञ् प्रत्ययो भवति । कापोतस्य विकारः कापोतम् । राजतम् :—

रजत । सीस । लोह । उदुम्बर । नीच । नील । दारु । रोहितक । बिभीतक । कपीत । दारु । तीव्रदारु । त्रिकण्टक । कण्टकार । इति रजतादयः ॥

९८—प्लक्षादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १६४ ॥

प्लक्षादिप्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवत्वेन विवक्षिते फलेऽभिधेयेऽण् प्रत्ययो भवति । प्लक्षस्य विकारः प्लाक्षम् नैयग्रोधम् :—

प्लक्ष । न्यग्रोध । अश्वत्थ । इङ्गुदी । शिग्रु । कर्कन्धु । कर्कन्तु । ऋक्रतु । बृहती । काक्ष । तुरुरु ॥ इति प्लक्षादयः ॥

९९—हरीतक्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १६७ ॥

हरीतक्यादिप्रातिपदिकेभ्यः फलेऽभिधेये प्रत्ययस्य लुब् भवति । लुकि प्राप्ते लुपो विधानं युक्तवद्भावार्थम् । हरीतक्याः फलं हरीतकी । हरीतक्याः फलानि हरीतक्यः (१) :—

हरीतकी । कोशातकी । नखरजनी । नखररजनी । शष्कण्डी । शाकण्डी । दाडी । दोडी । दडी । श्वेतपाकी । अर्जुनपाकी । काला । द्राक्षा । ध्वाङ्क्षा । गर्गरिका । कण्टकारिका । शेफालिका ॥ इति हरीतक्यादयः ॥

१००—पर्पादिभ्यः ष्ठन् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १० ॥

पर्पादिभ्यश्चरतीत्यर्थे ष्ठन् प्रत्ययो भवति । षकारो ङीषर्थः । पर्पेण चरति, पर्पिकः । पर्पिकी :—

पर्प । अश्व । अश्वत्थ । रथ । जाल । न्यास । व्याल ॥ पादः पच्च ॥ पदिकः ॥ इति पर्पादयः ॥

---

(१) हरीतक्यादिषु व्यक्तिर्भवति युक्तवद्भावेनेति वार्त्तिकेन लिङ्गस्यैवयुक्तवद्भावो न तु वचनस्य ॥

१०१—वेतनादिभ्यो जीवति ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १२ ॥

तृतीयासमर्थवेतनादिप्रातिपदिकेभ्यो जीवतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । वेतनेन जीवति, वैतनिकः :-

वेतन । वाह । अर्द्धवाह । धनुर्दण्ड (१) । जाल । वेस । उपवेस । प्रेषण । उपस्ति । सुख । शय्या । शक्ति । उपनिषत् । उपवेष । स्रक् । पाद । उपस्थान । इति वेतनादयः ॥

१०२—हरत्युत्सङ्गादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १५ ॥

तृतीयासमर्थोत्सङ्गादिप्रातिपदिकेभ्यो हरतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । उत्सङ्गेन हरति, औत्सुङ्गिकः :-

उत्सङ्ग । उडुप । उत्पत । पिटक । उडप । पिटाक । इत्युत्सङ्गादयः ॥

१०३—भस्त्रादिभ्यः ष्ठन् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १६ ॥

भस्त्रादितृतीयासमर्थप्रातिपदिकेभ्यो हरतीत्यर्थे ष्ठन् प्रत्ययो भवति । भस्त्रया हरति, भस्त्रिकः । भस्त्रिकी :-

भस्त्रा । भरट । भरण । भारण । शीर्षभार । शीर्षेभार । अंसभार । अंसेभार । इति भस्त्रादयः ॥

१०४—निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १९ ॥

अक्षद्यूतादितृतीयासमर्थप्रातिपदिकेभ्यो निर्वृत्तेऽर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । अक्षद्यूतेन निर्वृत्तम्, आक्षद्यूतिकं वैरम् :-

अक्षद्यूत । जानुप्रहृत । जङ्घाप्रहृत । पादस्वेदन । कण्टकमर्दन । गतागत । यातोपयात । अनुगत । इत्यक्षद्यूतादयः ॥

१०५—अण् महिष्यादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ४ । ४८ ॥

षष्ठीसमर्थमहिष्यादिप्रातिपदिकेभ्यो धर्म्यमित्यर्थेऽण् प्रत्ययो भवति । महिष्या धर्म्यं माहिषम् :-

महिषी । प्रजावती । प्रलेपिका । विलेपिका । अनुलेपिका । पुरोहित । मणिपाली । अनुचारक । होतृ । यजमान । इति महिष्यादयः ॥

---

(१) अत्र संघातविगृहीतयोर्ग्रहणं भवति । धनुर्दण्डेन जीवति धानुर्दण्डिकः । धनुषा जीवति धानुष्कः । दाण्डिकः ॥

१०६—किशरादिभ्यः ष्ठन् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । ५३ ॥

प्रथमासमानाधिकरणकिशरादिप्रातिपदिकेभ्यः पण्यमित्यर्थे ष्ठन् प्रत्ययो भवति। गन्धविशेषवाचकाः किशरादयः। किशराः पण्यमस्य, किशरिकः। किशरिकी :—

किशर। नरद। नलद। सुमङ्गल। तगर। गुग्गुल। उशीर। हरिद्रा। हरिद्रायणी ॥ इति किशरादयः॥

१०७—छत्रादिभ्यो णः ॥ अ० ॥ ४ । ४ । ६२॥

प्रथमासमानाधिकरणछत्रादिप्रातिपदिकेभ्यः शीलमित्यर्थे णः प्रत्ययो भवति। इव शब्दस्यात्र लोपो द्रष्टव्यः। छत्रमिव शीलमस्य सछात्रः शिष्यः। छत्रवद्गुरुरक्षकः :—

छत्र। बुभुक्षा। शिक्षा। पुरोह। स्था (१)। चुरा। उपस्थान। ऋषि। कर्मन्। विश्वधा। तपस्। सत्य। अनृत। शिबिका। इति छत्रादयः ॥

१०८—प्रतिजनादिभ्यः खञ् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । ६६ ॥

सप्तमीसमर्थप्रतिजनादिप्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्यस्मिन्नर्थे खञ् प्रत्ययो भवति। प्रतिजने साधुः, प्रातिजनीनः। जने जने साधुरित्यर्थः :—

प्रतिजन। इदंयुग। संयुग। समयुग। परयुग। परकुल। परस्य कुल। अमुष्यकुल। सर्वजन। विश्वजन। पञ्चजन। महाजन। इति प्रतिजनादयः ॥

१०९—कथादिभ्यष्ठक् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १०२ ॥

सप्तमीसमर्थकथादिप्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। कथायां साधुः काथिकः :—

कथा। विकथा। वितण्डा। कुष्टचित्। जनवाद। जनेवाद। वृत्ति। सद्गृह। गुण। गण। आयुर्वेद। इति कथादयः ॥

११०—गुडादिभ्यष्ठञ् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १०३ ॥

सप्तमीसमर्थगुडादिप्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति। गुडे साधुः, गौडिक इक्षुः :—

गुड। कुल्माष। सक्तु। अपूप। मांसौदन। इक्षु। वेणु। संग्राम। संघात। प्रवास। निवास। उपवास। इति गुडादयः ॥

---

(१) अत्र स्थग्रहणेन सोपसर्गस्य ग्रहणमिष्यते। आस्था शीलमस्य स, आस्थः। संस्थः। आवस्थः ॥

१११—उगवादिभ्यो यत् ॥ अ० ॥ ५ । १ । २ ॥

उवर्णान्ताद् गवादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्राक्क्रीतीयेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति। ङ्कवे हितं शाङ्कव्यम् दारु । गवे हितं गव्यम् :—

गो । हविस् । बर्हिस् । खट । अष्टका । युग । मेधा । स्रक् ॥ नाभि नभं च ॥ ः संप्रसारणं वा च दीर्घत्वं तत्सन्नियोगेन चान्तोदात्तत्वम् (१) ॥ शुन्यम् । शून्यम्॥ सोऽनङ् च ॥ ऊधन्यः । कूपः । उदर । खर । खद । अक्षर । विष । स्कन्द । वा । इति गवादयः ॥

११२—विभाषा हविरपूपादिभ्यः ॥ अ० ॥ ५ । १ । ४ ॥

हविर्विशेषवाचिभ्योऽपूपादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्राक्क्रीतीयेष्वर्थेषु विभाषा यत् यो भवति। पक्षे छः । पुरोडाशाय हिताः पुरोडाश्याः पुरोडाशीया वा तण्डुलाः। पूपेभ्यो हितं, अपूप्यम् । अपूपीयम् :—

अपूय । तण्डुल । अभ्यूष । अभ्योष । पृथुक । अभ्येष । अर्गल । मुसल । सूप। ष्टक । कर्णवेष्टक । किण्व ॥ अन्नविकारेभ्यश्च (२) ॥ यूप । स्थूणा । पीप । अश्व। । कट । अयःस्थूण । ओदन । अवीष । प्रदीप । इत्यपूपादयः ॥

११३—असमासे निष्कादिभ्यः ॥ अ० ॥ ५ । १ । २० ॥

असमस्तेभ्यो निष्कादिप्रातिपदिकेभ्य आर्हीयेष्वर्थेषु ठक् प्रत्ययो भवति। निष्कं रिमाणमस्य नैष्किकम्। असमासे किम्। परमनैष्किकम् । अत्र ठञ्स्वरभेदः :—

निष्क । पण । पाद । माष । वाहद्रोण । षष्टि । इति निष्कादयः ॥

११४—गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत् ॥ अ० ॥ ५ । १ । ३९ ॥

संख्यापरिमाणाश्वादिविवर्जिताद् गोशब्दाद् द्व्यचश्च प्रातिपदिकाद्यत् प्रत्ययो ति । तस्य निमित्तं संयोगोत्पाताविल्यर्थे । गोर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा गव्यः। च्–धनस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा । धन्यम् । स्वर्ग्यम्। यशस्यम् । आयुष्यम्। ख्या– पञ्चानां निमित्तं पञ्चकम् । परिमाण–प्रास्थिकम् । अश्वादिः–आश्विकम्। त्र यत् न भवति :—

अश्व । अश्मन् । गण । ऊर्णा । उमा । वसु । वर्ष । भङ्ग । इत्यश्वादयः ॥

---

(१) नाभये हितो नभ्योऽक्षः । नभ्यमञ्जनम् । यस्तु शरीरावयववाची नाभि स्ततः शरीरावयवादिति यति कृते नाभये हितं नाभ्यम् तैलमिति भवति । कारस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वान्नस्तद्धित इति लोपो न भवति ॥

(२) अन्नविकारवाचिभ्यो यत् प्रत्ययो भवति । शष्कुलीभ्यो हितं शष्कुल्यम् । प्यम् । ओदन्यम् ॥

११५—तद्धरतिवहत्यावहतिभाराद्वंशादिभ्यः ॥ अ० ॥ ५ । १ । ५० ॥

द्वितीयासमर्थाद् वंशादिभ्यः परस्माद् भारशब्दाद्धरत्यादिषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति । वंशभारं हरति वहत्यावहति वा, वांशभारिकः । कौटजभारिकः । भारादिति किम् । वंशं हरति । वंशादिभ्य इति किम् । व्रीहिभारं हरति । अत्र मा भूत् :–

वंश । कुटज । बल्वज । मूल । अक्ष । स्थूणा । अश्मन् । अश्व । इक्षु । खट्वा । इति वंशादयः ॥

११६—छेदादिभ्यो नित्यम् ॥ अ० ॥ ५ । १ । ६४ ॥

द्वितीयासमर्थछेदादिप्रातिपदिकेभ्यो नित्यमर्हतीत्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति छेदनं नित्यमर्हति । छैदिकः :—

छेद । भेद । द्रोह । दोह । वर्त । कर्ष । संप्रयोग । विप्रयोग । प्रेषण । संप्रश्न । विप्रकर्ष । विराग विरंगं च । वैरङ्गकः । इति छेदादयः ॥

११७—दण्डादिभ्यो यः ॥ अ० ॥ ५ । १ । ६६ ॥

द्वितीयासमर्थदण्डादिप्रातिपदिकेभ्योऽर्हतीत्यर्थे यः प्रत्ययो भवति । दण्डमर्हति, दण्ड्यः :–

दण्ड । मुसल । मधुपर्क । कशा । अर्घ । मेधा । मेघ । युग । उदक । वध । गुहा । भाग । इभ । इति दण्डादयः ॥

११८—व्युष्टादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ५ । १ । ९७ ॥

सप्तमीसमर्थव्युष्टादिप्रातिपदिकेभ्यो दीयते कार्यमित्येतयोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति । व्युष्टे दीयते कार्यं वा वैयुष्टम् :–

व्युष्ट । नित्य । निष्क्रमण । प्रवेशन । तीर्थ । संभ्रम । आस्तरण । संग्राम । संघात । अग्निपद । पीलुमूल । प्रवास । उपसंक्रमण । दीर्घ । उपवास । इति व्युष्टादयः ॥

११९—तस्मै प्रभवति संतापादिभ्यः ॥ अ० ॥ ५ । १ । १०१ ॥

चतुर्थीसमर्थसन्तापादिप्रादिपदिकेभ्यः प्रभवतीत्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति । सन्तापाय प्रभवति, सान्तापिकः :–

सन्ताप । संनाह । संग्राम । संयोग । संपराय । संपेष । निष्पेष । निसर्ग । असर्ग । विसर्ग । उपसर्ग । उपवास । प्रवास । संघात । संमोदन । सक्तु ॥ मांसौदनादिगृहीतादपि । मांसौदनिकः । मांसिकः । औदनिकः ॥ निर्घोष । सर्ग । संपात । संवाद । संवेशन । इति संतापादयः ॥

१२०—अनुप्रवचनादिभ्यश्छः ॥ अ० ॥ ५ । १ । १११ ॥

प्रथमासमानाधिकरणानुप्रवचनाप्रातिपदिकेभ्यः प्रयोजनमित्यर्थे छः प्रत्ययो भवति अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य, अनुप्रवचनीयम् :—

अनुप्रवचन । उत्थापन । प्रवेशन । अनुप्रवेशन । उपस्थापन । संवेशन । अनुवेशन । अनुवचन । अनुवादन । अनुवासन । आरम्भण । आरोहण । प्ररोहण । अन्वारोहण । इत्यनुप्रवचनादयः ॥

१२१—पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ॥ अ० ॥ ५ । १ । १२२ ॥

षष्ठीसमर्थपृथ्वादिप्रातिपदिकेभ्यो भावेऽर्थे इमनिच् प्रत्ययो वा भवति । वावचन मणादेः समावेशार्थम् । पृथोर्भावः प्रथिमा । पार्थवम् । पृथुत्वम् । पृथुता :—

पृथु । मृदु । महत् । पटु । तनु । लघु । बहु । साधु । वेणु । आसु । बहुल । गुरु । दण्ड । ऊरु । खण्ड । चण्ड । बाल । अकिंचन । होड । पाक । वत्स । मन्द । स्वादु । ह्रस्व । दीर्घ । प्रिय । वृष । ऋजु । क्षिप्र । क्षुद्र । इति पृथ्वादयः ॥

१२२—वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च ॥ अ० ॥ ५ । १ । १२३ ॥

वर्णविशेषवाचिभ्यो दृढादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावे ष्यञ् चादिमनिच् प्रत्ययो भवति । शुक्लस्य भावः शौक्ल्यम् । शुक्लिमा । शुक्लत्वम् । शुक्लता । दार्ढ्यम् । द्रढिमा । दृढत्वम् । दृढता :—

दृढ । परिवृढ । भृश । कृश । चक्र । आम्र । लवण । ताम्र । अम्ल । शीत । उष्ण । जड । बधिर । पण्डित । मधुर । मूर्ख । मूक । वेर्यातलाभमतिमनःशारदानाम् ॥ समो मतिमनसोर्जवने (१) ॥ बाल । तरुण । मन्द । स्थिर । बहुल । दीर्घ । मूढ । आक्रुष्ट । इति दृढादयः ॥

१२३—गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ॥ अ० ॥ ५ । १ । १२४ ॥

गुणवचनेभ्यो ब्राह्मणादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावे कर्मणि चाभिधेये ष्यञ् प्रत्ययो भवति । जडस्य भावः कर्म वा जाड्यम् । ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा ब्राह्मण्यम् :—

ब्राह्मण । वाडव । माणव । चौर । मूक । आराधय । विराधय । अपराधय । उपराधय । एकभाव । द्विभाव । त्रिभाव । अन्यभाव । समस्थ । विषमस्थ । परमस्थ ।

(१) वेः परेभ्यो यातादिभ्यः ष्यञ् । वैयात्यम् । वैलाभ्यम् । वैमत्यम् । वैमनस्यम् । वैशारद्यम् । समः पराभ्यां मतिमनोभ्यां वेगेऽर्थे ष्यञ् । साम्मत्यम् । साम्मनस्यम् ॥

मध्यमस्थ । अनीश्वर । कुशल । कपि । चपल । अचेतस् । निपुण ।अर्हतो नुम् च॥ आर्हन्त्यम् । संवादिन् । संवेशिन् । बहुभाषिन् । बालिश । दुष्पुरुष । कापुरुष। दायाद । विशसि । धूर्त । राजन् । संभाषिन् । शीर्षपातिन् । अधिपति । अलस । पिशाच । पिशुन । विशाल ।गणपति ।धनपति ।नरपति ।गडुल ।निव । निधान । विष । सर्ववेदादिभ्यः स्वार्थे (२) ॥ चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च ॥ चातुर्वैद्यम् ।स्वभाव। निघातिन् । विघातिन् । राजपुरुष । विशस्ति । विशाय । विशात । विजात । नयात । सुहित । दीन । विदग्ध । उचित । समग्र । शली । तत्पर । इदम्पर । यथातथा । पुरस् । पुनः । पुनर् । अभीक्ष्ण । तरतम । प्रकाम । यथाकाम । निष्कुल ।स्वराज । महाराज । युवराज । सम्राज् । अविदूर । अपिशुन । अनृशंस। अयथातथ । अयथापुर । स्वधर्म्म । अनुकूल । परिमाण्डल । विश्वरूप । ऋत्विज् । उदासीन । ईश्वर । प्रतिभू । साक्षि । मानुष । आस्तिक । नास्तिक । युगपत् । पूर्वापर । उत्तराधर । इति ब्राह्मणादयः ॥

१२४-वा०-चातुर्वर्ण्यादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम्॥अ०॥५।१।१२४

चत्वार एव वर्णाश्चातुर्वर्ण्यम् । चातुराश्रमम् :—

चतुर्वर्ण । चतुराश्रम । त्रिलोक । त्रिस्वर । षड्गुण । सेना । सन्निधि । समीप। उपमा । सुख । इति चतुर्वर्णादयः ॥

१२५—पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ॥अ०॥ ५ । १ । १२८॥

षष्ठीसमर्थेभ्यः पत्यन्तेभ्यः पुरोहितादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावकर्मणोर्यक् प्रत्ययो भवति सेनापतेर्भावः कर्म,वा सैन्यापत्यम् । प्राजापत्यम् । पुरोहितस्य भावः कर्म वा, पौरोहित्यम् :—

पुरोहित । राजन् । संग्रामिक । एषिक ।वर्मित ।खण्डिक ।दण्डिक ।छत्रिक। मिलिक । पिण्डिक । बाल ।मन्द । स्नानिक ।चडितिक । कृषिक ।पूतिक ।पत्रिक। प्रतिक ।अजानिक ।सलनिक ।सूचिक।राक्षर। सूचक ।पक्षिक। सारथिक। जलिक। सूतिक । अञ्जलिक । शर्मिक । चर्मिक ।कर्मिक ।शीलिक । मूलिक । तिलिका। तिल्विक । अञ्जतिका । ऋषिक । पुत्रक । पथिका । प्रचिका । प्रविक । परिचक पूजनिक ॥ राजाऽसे (१) । मूचिक । स्वरिक । चडिक ॥ इति पुरोहितादयः॥

---

(१) सर्वे एव वेदाः सार्ववैद्यम् । सार्वलौक्यम् । सार्वराज्यम् । सार्वगुण्यम् । आकृतिगणोऽयम् ॥

(२) राज्ञो भावः कर्म वा राज्यम् । समासेतु ब्राह्मणादित्वात्ष्यञ् सौराज्यम्॥

१२६—प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् ॥ अ० ॥ ५ । १ । १२९ ॥

प्राणभृज्जातिभ्यो वयोवचनेभ्य उद्गात्रादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावकर्मणोरञ् प्रत्ययो भवति । अश्वस्य भावः कर्म वा, आश्वम् । औष्ट्रम् । कौमारम् । कैशोरम् । औद्गात्रम् :—

उद्गातृ । उन्नेतृ । प्रतिहर्त्तृ । रथगणक । पक्षिगणक । पत्तिगणक । सुष्ठु । दुष्ठु । अध्वर्यु । वधू ॥ सुभग मंत्रे (१) ॥ प्रशास्तृ । होतृ । पोतृ । कर्त्तृ । इत्युद्गात्रादयः ॥

१२७—हायनान्तयुवादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ५ । १ । १३० ॥

हायनान्तेभ्यो युवादिभ्यश्च षष्ठीसमर्थप्रातिपदिकेभ्यो भावकर्मणोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति। द्विहायनस्य भावः कर्म वा, द्वैहायनम्। यूनो भावः कर्म वा, यौवनम् :—

युवन् । स्थविर । होतृ । यजमान । कमण्डलु ॥ पुरुषाऽसे (२)॥ सुभ्रातृ । यातृ । श्रवण । कुस्त्री । सुस्त्री । सुहृदय । सुभ्रातृ । वृषल । दुर्भ्रातृ ॥ हृदयाऽसे (३) ॥ चौलज्ञ । कतक । परिव्राजक । कुशल । चपल । निपुण । पिशुन । सब्रह्मचारिन् । कुतूहल । अनृशंस । भ्रातृ । कुचुक । कन्दुक । दुःस्त्री । दुर्हृदय । दुर्हृत् । मिथुन । कुलली । महस् । कतक । कितव । पोत ॥ इति युवादयः ॥

१२८—द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । १ । १३३ ॥

द्वन्द्वसंज्ञकेभ्यो मनोज्ञादिभ्यश्च षष्ठीसमर्थप्रातिपदिकेभ्यो भाववकर्मणोरर्थयोर्वुञ् प्रत्ययो भवति । गोपालपशुपालानां भावः कर्म वा, गौपालपशुपालिका । शैष्योपाध्यायिका । मनोज्ञस्य भावः कर्म वा, मानोज्ञकम् :—

मनोज्ञ । कल्याण । प्रियरूप । छान्दस । छात्र । मेधाविन् । अभिरूप । आढ्य । कुलपुत्र । श्रोत्रिय । चोर । धूर्त । वैश्वदेव । युवन् । ग्रामपुत्र । ग्रामखण्ड । ग्रामकुमार अमुष्यपुत्र । अमुष्यकुल । शतपुत्र । कुशल । बहुल । अवश्य । अहोपुरुष ॥ इति, मनोज्ञादयः ॥

---

(१) सुभगस्य भावः सौभगो मंत्रः ॥

(२) पुरुषस्य भावः कर्म पौरुषम् सुपुरुषत्वमिति समासे ॥

(३) हार्दयम् । समासेतु परमहृदयत्वमित्येव ॥

१२९—तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ ॥ अ० ॥ ५ । २ । २४ ॥

पील्वादिभ्यः कर्णादिभ्यश्च षष्ठीसमर्थं प्रातिपदिकेभ्यो यथासंख्यं पाकमूलयोरर्थयोः कुणब्जाहचौ प्रत्ययौ भवतः । पीलूनां पाकः पीलुकुणः । कर्णस्य मूलं, कर्णजाहम् :—

पीलु । कर्कन्धु । शमी । करीर । कुवल । बदर । अश्वत्थ । खदिर । इति पील्वादयः॥

कर्ण । अक्षि । नख । मुख । मख । केश । पाद । गुल्फ । भ्रूभङ्ग । दन्त । ओष्ठ । पृष्ठ । अङ्गुष्ठ ॥ इति कर्णादयः ॥

१३०—तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् ॥ अ० ॥ ५ । २ । ३६

प्रथमासमर्थेभ्यस्तारकादिप्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे इतच् प्रत्ययो भवति। तारकाः संजाता अस्य,तारकितं नभः।पुष्पितो वृक्षः संजातग्रहणप्रकृतिविशेषणम् :—

तारका । पुष्प । मुकुल । कण्टक । पिपासा । सुख । दुःख । ऋजीष । कुड्मल । सूचक । रोग । विचार । तन्द्रा । वेग । पुत्त्रा । श्रद्धा । उत्कण्ठ । भर । द्रोह । गर्भादप्राणिनि (१) ॥ फल । उच्चार । स्तबक । पल्लव । खण्ड । क्षिनुष्या । अभ्र । अङ्गारक । अङ्गार । वर्णक । पुलक । कुवलय । शैवल । गर्व । तरङ्ग । कल्लोल । पण्डा । चन्द्र । स्रवक । मुद्रा । राग । हस्त । कर । सीमन्त । कर्दम । कज्जल । कलङ्क । कुतूहल । कन्दल । आन्दोल । अन्धकार । कोरक । अङ्कुर । रोमाञ्च । हर्ष । उत्कर्ष । क्षुधा । ज्वर । गोर । दोह । शास्त्र । मुकुर । तिलक । बुभुक्षा । निद्रा । तारकादिराकृतिगणः ॥ इति तारकादयः ॥

१३१—विमुक्तादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ५ । २ । ६१ ॥

अध्यायानुवाकयोरभिधेययोर्विमुक्तादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थेऽण् प्रत्ययो भवति। विमुक्तं वर्त्तते ऽस्मिन् स वैमुक्तोऽध्यायो ऽनुवाको वा । दैवासुरः :—

विमुक्त । देवासुर । वसुमत् । सत्वत् । उपसत् । दशार्हपयस् । हविर्धान । मित्री । सोमापूषन् । अग्नाविष्णू । वृत्रहति । इडा । रक्षोऽसुर । सदसत् । परिषादक् । वसु । मरुत्वत् । पत्नीवत् । महीयल । सत्वत् (२) । दशार्ह । वयस् । पतत्रि । सोम । महित्री । हेतु । अस्यहत्य । दशार्ण । उर्वशी । सुपर्ण । इति विमुक्तादयः ॥

---

(१) गर्भिताः शालयः । अप्राणिनो तिवचनाद् गर्भिणी भार्या । इत्यत्रेतच् न भवति ॥

(२) सत्वदिति शब्दोऽस्मिन् गणे द्विवारं पठ्यते । यद्येकस्तालव्यादिर्भवेत्तदा तु युक्त मन्यथा प्रामादिकः पाठः ॥

१३२—गोषदादिभ्यो वुन् ॥ अ० ॥ ५ । २ । ६२ ॥

अध्यायानुवाकयोरभिधेययोर्गोषदादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे वुन् प्रत्ययो भवति। गोषदशब्दोऽस्मिन्नस्ति, गोषदकोऽध्यायोऽनुवाको वा । इषेत्वकः :—

गोषद । इषे त्वा । मातरिश्वन् । देवस्य त्वा । देवीरापः । कृष्णोऽस्याखरेष्टः । देवीं धियम् । रक्षोहण । अञ्जन । प्रभूत । प्रतूर्त । कृशान । युञ्जान । सहस्रशीर्षा । वार्तस्रते । कशास्व । स्वाहाप्राण । प्रसुस्त ॥ इति गोषदादयः ॥

१३३—आकर्षादिभ्यः कन् ॥ अ० ॥ ५ । २ । ६४ ॥

आकर्षादिभ्यः सप्तमीसमर्थप्रातिपदिकेभ्यः कुशल इत्यर्थे कन् प्रत्ययो भवति । आकर्षे कुशल आकर्षकः :—

आकर्ष । त्सरु । पिपासा । पिचण्ड । अशनि । अश्मन् । विचय । चय । जय । आचय । अय । नय । निपाद । गद्गद । दीप । ह्रद । ह्राद । ह्लाद । शकुनि । पिशाच । पिण्ड ॥ इत्याकर्षादयः ॥

१३४—रसादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । ९५ ॥

प्रथमासमानाधिकरणरसादिप्रातिपदिकेभ्योऽस्यास्त्यस्मिन्नित्यर्थे मतुप् प्रत्ययो भवति । रसादिगुणवाचकेभ्योऽन्येमत्वर्थीयाः प्रत्यया माभूवन्निति सूत्रारम्भः।रूपिणी कन्येत्यत्र तु शोभापरत्वं रूपस्य । रसोऽस्मिन्नस्तीति,रसवान् । रूपवान् :—

रस । रूप । गन्ध । स्पर्श । शब्द । स्नेह । गुणात् । एकाचः (१) ॥ इतिरसादयः ॥

१३५—सिध्मादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । ९७ ॥

सिध्मादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे विकल्पेन लच् प्रत्ययो भवति । सिध्मोऽस्यास्तीति सिध्मलः । सिध्मवान् । अत्र पक्षे मतुबिष्यते नत्वत इनिठनौ :—

सिध्म । गडु । मणि । नाभि । जीव । निष्पाव । पांसु । सक्तु । हनु । मांस । परशु ॥ पार्ष्णिधमन्योर्दीर्घश्च ॥ पार्ष्णीलः । धमनीलः । पर्ण । उदक । प्रज्ञा । मण्ड । पार्श्व । गण्ड । ग्रन्थि । वातदन्तबलललाटगलानामूङ् च ॥ वातूलः । दन्तूलः । बलूलः । ललाटूलः । गलूलः ॥ जटाघटाकालाः क्षेपे ॥ जटालः । घटालः । कालालः । सक्थि । कर्ण । स्नेह । शीत । श्याम । पिङ्ग । पित्त । शुष्क । पृथु । मृदु । मञ्जु । पत्र । चटु । कपि । कण्डु । संज्ञा । क्षुद्रजन्तूपतापाच्चेष्यते । क्षुद्रजन्तुः । यूकालः । मक्षिकालः । उपताप—विचर्चिकालः । विपादिकालः । मूर्च्छालः । इति सिध्मादयः ॥

---

(१) अत्र गुणशब्दो रसादीनां विशेषणम् । एकाच् शब्दादपि मतुब् भवति नत्वतइनिठनौ । स्ववान् । स्ववान् ॥

१३६—लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ॥ अ० ॥ ५ । २ । १००॥

लोमादिभ्यः पामादिभ्यः पिच्छादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे यथासंख्यं श, न, इलच् इत्येते प्रत्यया भवन्ति । लोमान्यस्य सन्तीति लोमशः । लोमवान् । पाम विद्यतेऽस्य स पामनः । पामवान् । पिच्छमस्यास्तीति पिच्छिलः । पिच्छलवान् :–

लोमन् । रोमन् । वल्गु । बभ्रु । हरि । कपि । शुनि । तरु । इति लोमादयः ॥ पामन् । वामन् । हेमन् । श्लेष्मन् । कद्रु । वलि । श्रेष्ठ । पलल । सामन् । अङ्गात्कल्याणे ॥ शाकीपलालीदद्र्वा ह्रस्वत्वं च ॥ विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसन्धेः ॥ लक्ष्म्या अच्च (१) ॥ इति पामादयः ॥ पिच्छ । उरस् । ध्रुवका । क्षुवका । जटाघटाकालात् क्षेपे (२) ॥ वर्ण । उदक । पङ्क । प्रज्ञा । इति पिच्छादयः ॥

१३७—व्रीह्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । ११६ ॥

प्रथमासमानाधिकरणव्रीह्यादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे इनिठनौ प्रत्ययौ भवतः । व्रीहयोऽस्य सन्तीति व्रीही । व्रीहिकः । व्रीहिमान् :–

व्रीहि । माया । शिखा । मेखला । संज्ञा । बलाका । माला । वीणा । वडवा । अष्टका । पताका । कर्मन् । चर्मन् । हंसा (३) । यवखद । कुमारी । नौ (४) । शीर्षान्नञः ॥ अशीर्षी । अशीर्षिका । इति व्रीह्यादयः ॥

१३८—तुन्दादिभ्य इलच्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । ११७ ॥

तुन्दादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे इलच् चकारादिनिठनौ मतुप् च प्रत्यया भवन्ति । तुन्दोऽस्यास्तीति तुन्दिलः । तुन्दी । तुन्दिकः । तुन्दवान् :—

तुन्द । उदर । पिचण्ड । घट । यव । व्रीहि । स्वाङ्गाद्विवृद्धौ च (५) ॥ इति०

---

(१) अङ्ग शब्दात्कल्याणे नः प्रत्ययः । कल्याणकरमंगं शरीरमस्याः सा, अङ्गना । शाकिनः । पलालिनः । दद्रुणः । विषु—अच् इत्यवस्थायां नः प्रत्ययस्तदेवोत्तरपदस्याच् भागस्य लोपः।विष्वगस्यास्तीति विषुणः।लक्ष्मी अस्यास्तीति लक्ष्मणः।

(२) कुत्सिता जटा अस्य सन्तीति जटिलः । एवं घटिलः । कालिलः ॥

(३) शिखादिभ्य इनिरेवेष्यते नतु ठक् ॥

(४) यवखदादिभ्यष्ठगेवेष्यते शेषादुभयम् ॥

(५) विवृद्ध्युपाधिभूतात् स्वाङ्गवाचिनः प्रातिपदिकादिलच् । दीर्घा नासिकाऽस्यास्तीति नासिकिलः । लम्बौ कर्णौ यस्य स कर्णिलः । ओष्ठिलः ॥

१३९—अर्श आदिभ्योऽच् ॥ अ० ॥ ५ । २ । १२७ ॥

अर्श आदिप्रातिपदिकेभ्योमत्वर्थेऽच् प्रत्ययो भवति। अर्शांस्यस्य विद्यन्तेऽस, अर्शसः:—

अर्शस् । उरस् । तुन्द । चतुर । पलित । जटा । घटा । अभ्र । कर्दम । आम। लवण । स्वाङ्गाद्धीनात् ॥ वर्णात् (१) ॥ आकृतिगणोयम् । इत्यर्श आदयः ॥

१४०—सुखादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । १३१ ॥

सुखादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे इनिः प्रत्ययो भवति। मतुबादीनामपवादः। सुखमस्यास्तीति सुखी । दुःखी :—

सुख । दुःख । तृप्र । कृच्छ्र । आस्र । अलीक । करुणा ।कृपण ।सोढ । प्रमीप। शील । हल ॥ माला क्षेपे (२) ॥ प्रणय । इति सुखादयः ॥

१४१—पुष्करादिभ्यो देशे ॥ अ० ॥ ५ । २ । १३५ ॥

पुष्करादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे देशेऽभिधेये इनिः प्रत्ययो भवति पुष्करोऽस्मिन्नस्तीति पुष्करी देशः । पद्मी वा । देश इति किम् । पुष्करवान् हस्ती :—

पुष्कर । पद्म । उत्पल । तमाल । कुमुद । नड । कपित्थ । बिस । मृणाल । कर्दम । शालूक । विगर्ह । करीष । शिरीष । यवास । प्रवास । हिरण्य । कैरव । कल्लोल । तरङ्ग । वयस । इति पुष्करादयः ॥

१४२—बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ५ । २ । १३६ ॥

बलादिप्रातिपादिकेभ्यो मत्वर्थे विकल्पेन मतुप् पक्ष इनिः ठक् तु न भवति। बलमस्यास्तीति बलवान् । बली :—

बल । उत्साह । उद्भाव । उद्वास । उद्वाम । शिखावल । वृगमूल । दंश । कुल आयाम। व्यायाम । उपयाम। आरोह । अवरोह । परिणाह । युद्ध ॥ इति बलादयः ॥

१४३—देवपथादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । ३ । १०० ॥

देवपथादिप्रातिपदिभ्यो इवार्थे प्रतिकृतौ संज्ञायां च विहितस्य कन् प्रत्ययस्य लुब् भवति । देवपथस्येव प्रतिकृतिः, देवपथः । हंसपथः :—

देवपथ । हंसपथ । वारिपथ । जलपथ । राजपथ । शतपथ । सिंहगति । उष्ट्रग्रीवा । चामरज्जु । रज्जु । हस्त । इन्द्र । दण्ड । पुष्प । मत्स्य । रथपथ । शङ्कुपथ । सिंहपथ । आकृतिगणोऽयम् । इति देवपथादयः ॥

---

(१) हीनशब्दात्परस्मात् स्वाङ्गादजेव स्यान्नतु मतुबादिः ।अक्षिभ्यां हीनो हीनाक्षः । हीनहस्तः । हीनबाहवः । वर्णादिति श्वेतादेर्ग्रहणंनलकारादेः । श्वेतो वर्णोऽस्यास्तीति श्वेतः । नीलः । कालः । पीतः । हरितः । इत्यादि ॥

(२) कुत्सिता मालाऽस्यास्तीति माली । मतुम्माभूत् । प्रणयी ॥

१४४—शाखादिभ्यो यत् ॥ अ० ॥ ५ । ३ । १०३ ॥

शाखादिप्रातिपदिकेभ्यो इवार्थे यत् प्रत्ययो भवति। शाखेव शाख्यः। मुख्यः :—

शाखा । मुख । जघन । शृङ्ग । मेघ । चरण । स्कन्ध । शिरस् । उरस् । अग्र। शरण । इति शाखादयः ॥

१४५—शर्करादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ५ । ३ । १०७ ॥

शर्करादिप्रातिपदिकेभ्यो इवार्थेऽण् प्रत्ययो भवति । शर्करेव, शार्करम् :—

शर्करा । कपालिका । पिष्टिका । कनिष्ठिक । कपिष्ठिक । पुण्डरीक । शतपत्र । गोलोमन् । गोपुच्छ । नराचि । नकुल । सिकता । इति शर्करादयः ॥

१४६—अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक् ॥ अ० ॥ ५ । ३ । १०८ ॥

अङ्गुल्यादिप्रातिपदिकेभ्यः इवार्थे ठक् प्रत्ययो भवति । अङ्गुलिरिवाङ्गुलिकः :—

अङ्गुलि । भरुज । बभ्रु । वल्गु । मण्डर । मण्डल । शष्कुल । कपि । उदश्वित् । गोणी । उरस् । शिखा । कुलिश । इत्यङ्गुल्यादयः ॥

१४७—दामन्यादित्रिगर्त्तषष्ठाच्छः ॥ अ० ॥ ५ । ३ । ११६ ॥

दामन्यादिभ्यस्त्रिगर्त्तषष्ठेभ्यश्चायुधजीविसंघवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे छः प्रत्ययो भवति । त्रिगर्त्तः षष्ठो येषां ते त्रिगर्त्तषष्ठाः । दामन्येवदामनीयः । दामनीयौ । दामन्यः । तद्राजत्वाद् बहुवचने लुक् । त्रिगर्त्तषष्ठाः । कौण्डोपरथएव, कौण्डोपरथीयः । अन्यत्पूर्ववत् । दाण्डकि । कौष्टकि । जालमानि । ब्रह्मगुप्त । जानकि । इति त्रिगर्त्तषष्ठाः । अत्र जानकिरित्यस्यैव त्रिगर्त्त इति नामान्तरम् :—

दामनी । औलपि । आकिदन्ती । काकरन्ति । काकदन्ति । शत्रुन्तपि । सार्वसेनि । बिन्दू । मौञ्जायन । उलभ । सावित्रीपुत्र । अच्युतन्ति । कोकतन्ती । तुलभ । दैवथापि । औतकी । अपच्युतकी । कर्की । पिण्ड ॥ इति दामन्यादयः ॥

१४८—पर्श्वादियौधेयादिभ्यामणञौ ॥ अ० ॥ ५ । ३ । ११७ ॥

पर्श्वादिभ्यो यौधेयादिभ्यश्चायुधजीविसंघवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थेऽणञौ प्रत्ययौ यथासंख्यं भवतः । पर्शुरेव, पार्शवः । यौधेयः :—

पर्शु । असुर । रक्षस् । वाल्हीक । वयस् । मरुत् । दशार्ह । पिशाच । विशाल । अशनि । कार्षापण । सत्वत् । वसु । इति पर्श्वादयः ॥

यौधेय । कौशेय । क्रौशेय । शौक्रेय । शौभ्रेय । धार्त्तेय । वार्त्तेय । जाबालेय । त्रिगर्त्त । भरत । उशीनर । इति यौधेयादयः ॥

१४९—स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन् ॥ अ० ॥ ५ । ४ ३ ॥

स्थूलादिप्रातिपदिकेभ्यःप्रकारवचनेद्योत्येकन् प्रत्ययोभवति।स्थूलप्रकारः,स्थूलकः :-

स्थूल । अणु । माष । इषु ॥ कृष्णतिलेषु ॥ यवव्रीहिषु ॥ इक्षुतिलपाद्यकालावदाताः सुरायाम् ॥ गोमूत्र आच्छादने ॥ सुराया अहौ ॥ जीर्णशालिषु । पत्रमूले समस्तव्यस्ते (१) कुमारी पुत्र । कुमार । श्वशुर । मणि ॥ इति स्थूलादयः ॥

१५०—यावादिभ्यः कन् ॥ अ० ॥ ५ । ४ । २९ ॥

यावादिप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति । याव एव, यावकः :-

याव । मणि । अस्थि । चण्ड । पीतस्तम्ब । ऋतावुष्णशीते । पशौ लूनवियाते । अणुनिपुणे । पुत्रकृत्रिमे ॥ स्नात वेदसमाप्तौ ॥ शून्यरिक्ते । दानकुत्सिते ॥ तनुसूत्रे ॥ (२) । ईयसश्च ॥ श्रेयस्कः । ज्ञात । कुमारीक्रीडनकानिच । इति यावादयः ॥

१५१—विनयादिभ्यष्ठक् ॥ अ० ॥ ५ । ४ । ३४ ॥

विनयादिप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे ठक् प्रत्ययो भवति । विनयएव,वैनयिकः :-

विनय । समय । उपायाद् ध्रस्वत्वं च । औपयिकः । संगति । कथंचित् । अकस्मात् । समयाचार । उपचार । समाचार । व्यवहार ।सम्प्रदान । समुत्कर्ष । समूह । विशेष । अत्यय । अस्थि । कण्डु । इति विनयादयः ॥

१५२—प्रज्ञादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । ४ । ३८ ॥

प्रजानातीति प्रज्ञः । प्रज्ञादिप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति । प्रज्ञ एव प्राज्ञः । प्राज्ञी स्त्री । यस्यास्तु प्रज्ञा विद्यते सा प्राज्ञा भवति :-

प्रज्ञ । वणिक् । उशिक् । उष्णिक् । प्रत्यक्ष । विद्वस् । विदन् । षोडन् । षोडश । विद्या । मनस् । श्रोत्र शरीरे । श्रोत्रम् । जुह्वत् । कृष्ण मृगे । कार्ष्णः । चिकीर्षत् । चोर । शक । योध । वक्षस् । चक्षुस् । धूर्त्त । वसु । एत् । मरुत् । क्रुङ् । राजा । सत्वन्तु । दशार्ह । वयस् । आतुर । असुर । रक्षस् । पिशाच । अशनि । कार्षापण । देवता । बन्धु ॥ इति प्रज्ञादयः ॥

---

(१) कृष्ण प्रकाराः कृष्णकास्तिलाः । यवका व्रीहयः । इक्षुका । तिलका । पाद्यका । कालका । अवदातका वा सुरा । मूत्रकमाच्छादनम् । सुराकः सर्पः । जीर्णकाः शालयः । पत्रकंसमस्तम् । मूलकं व्यस्तम् ॥

(२) उष्णकः,शीतको वा ऋतुः । लूनकः,वियातको वा पशुः ।अणुको निपुणः। पुत्रकः कृत्रिमः।स्नातको वेदपारगः।शून्यकं रिक्तम्।कुत्सितं दानं दानकम् ।तनुकंसूत्रम् ॥

१५३—द्विदण्ड्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । ४ । १२८ ॥

द्विदण्ड्यादिशब्देषु बहुव्रीहिसमासे समासान्त इच् प्रत्ययो निपात्यते । द्वाभ्यां दण्डाभ्यां हन्यतेऽसौ द्विदण्डि । अव्ययीभावसमासे परिगणनमतोऽव्ययत्वम् । एवं द्विमुसलि :—

द्विदण्डि । द्विमुसलि । उभाञ्जलि । उभयाञ्जलि । उभाकर्णि । उभयाकर्णि । उभादन्ति । उभयादन्ति । उभाहस्ति । उभयाहस्ति । उभापाणि । उभयापाणि । उभावाहु । उभयावाहु (१) । एकपदि । प्रोष्ठपदि । आढ्यपदि । सपदि । निकुच्यकर्णि । संहतपुच्छि ॥ इति द्विदण्ड्यादयः ॥

१५४—पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ॥ अ० ॥ ५ । ४ । १३८ ॥

हस्त्यादिवर्जितादुपमानात्परस्य पादशब्दस्य लोपो बहुव्रीहौ । व्याघ्रपादाविव पादावस्य, स व्याघ्रपात् । अहस्त्यादिभ्य इति किम् । हस्तिपादः :—

हस्तिन् । कटोल । गण्डोल । गण्डोलक । महिला । दासी । गणिका । कुसूल । इति०

१५५—कुम्भपदीषु च ॥ अ० ॥ ५ । ४ । १३९ ॥

कुम्भपदीप्रभृतयः कृतपादसमासान्तलोपाः समुदाया बहुव्रीहौ समासे निपात्यन्ते :—

कुम्भपदी । शतपदी । अष्टापदी । जालपदी । एकपदी । मालापदी । मुनिपदी । गोधापदी । गोपदी । कलशीपदी । घृतपदी । दासीपदी । निष्पदी । आर्द्रपदी । कुणपदी । कृष्णपदी । द्रोणपदी । द्रुपदी । शकृत्पदी । सूपपदी । पञ्चपदी । अर्वपदी । स्तनपदी । स्थूलपदी । सूत्रपदी । कलहंसपदी । द्विपदी । विषपदी । सुपदी । सूकरपदी । सूचीपदी । इति कुम्भपदीप्रभृतयः ॥

१५६—उरःप्रभृतिभ्यः कप् ॥ अ० ॥ ५ । ४ । १५१ ॥

उरःप्रभृत्यन्ताद्बहुव्रीहेः समासान्तः कप् प्रत्ययो भवति । व्यूढमुरोऽस्य स व्यूढोरस्कः । प्रियसर्पिष्कः :—

उरस् । सर्पिस् । उपानह् । पुमान् । अनड्वान् । नौः । पयः । लक्ष्मीः । दधि । मधु । शालिः ॥ अर्थान्नञः ॥ अनर्थकः । इत्युरःप्रभृतयः ॥

१५७—उञ्छादीनाञ्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६० ॥

उञ्छादीनां शब्दानामन्त उदात्तः स्वरो भवति :—

उञ्छ । म्लेच्छ । जञ्ज । जल्प । जप । व्यध । वध ॥ युगकालविशेषे रथाद्यु-

(१) अत्रोभयत्र निपातनादिच्प्रत्ययस्यलोपः । प्रत्ययलक्षणेन चाव्ययीभावसंज्ञाभवत्येव । अत्रापिकेचिच्छन्दात्तत्पुरुषसमासान्ता निपात्यन्ते । तेऽर्थसंगत्या ज्ञेयाः ॥

पकरणे च ॥ गरौ दूष्येऽन्तः ॥ वेगवेदचेष्टबन्धाः करणे ॥स्तुयुद्रुवश्छन्दसि । परिष्टुत् । संयुत् । परिद्रुत् ॥ वर्त्तनिः स्तोत्रे ॥ श्वभ्रे दरः ॥ साम्वतापौ भावगर्हायाम् ॥ उत्तमशश्वत्तमौ सर्वत्र ॥ भचमन्थभोगदेहाः ॥ इत्युञ्छादयः ॥

१५८—वृषादीनाञ्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । २०३ ॥

वृषादीनामादिरुदात्तो भवति :—

वृषः । जनः । ज्वरः । ग्रहः । हयः । गयः । नयः । तयः । पयः । वेदः । अंशः । दवः । सूदः । गुहा ॥ शमरणौ संज्ञायां संमतौ भावकर्मणोः ॥ मंत्रः । शान्तिः । कामः । यामः । आरा । धारा । कारा । वहः । कल्पः । पादः ॥ आकृतिगणोऽयम् । अविहितलक्षणमाद्युदात्तत्वं वृषादिषु द्रष्टव्यम् ॥ इति वृषादयः ॥

१५९—कार्तकौजपादयश्च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ३७ ॥

कृतद्वन्द्वसमासाः कार्त्तकौजपादयः शब्दाः पूर्वपदप्रकृतिस्वरा भवन्ति ।कृतस्यापत्यं कार्त्तः । कुजपस्यापत्यम् कौजपः । कार्त्तश्च कौजपश्च :—

कार्त्तकौजपौ । सावर्णिमाण्डूकेयौ । आवन्त्यश्मकाः । पैलश्यापर्णेयाः ।पैलश्यापर्णेयौ।कपिश्यापर्णेयाः । शैतिकाचपांचालेयाः । कटुकवार्चलेयौ । शाकलशुनकाः । शाकलसणकाः ।शुनकधात्रेयाः ।सणकबाभ्रवाः ।आर्चाभिमौद्गलाः । कुन्तिसुराष्ट्राः । चिन्तिसुराष्ट्राः । तण्डवतण्डाः । गर्गवत्साः । अविमत्तकामविद्धाः । बाभ्रवशालङ्कायनाः । बाभ्रवदानच्युताः । कठकालापाः । कठकौथुमाः । कौथुमलौकाक्षाः । स्त्रीकुमारम् । मौदपैप्पलादाः । मौदपैप्पलादाः । द्विःपाठः समासान्तोदात्तार्थः । वत्सजरत् । सौश्रुतपार्थवाः । जरामृत्यू । याज्यानुवाक्ये ॥ इति कार्त्तकौजपादयः ॥

१६०—कुरुगार्हपतरिक्तगुर्वसूतजरत्यश्लीलदृढरूपापारेवडवातैतिलकद्रूःपण्यकम्बलोदासीभाराणाञ्च ॥अ०॥ ६ । २ । ४२ ॥

कुरुगार्हपत, रिक्तगुरु, असूतजरती, अश्लीलदृढरूपा, पारेवडवा, तैतिलकद्रू, पण्यकम्बल इत्येषां समासानां दासीभारादीनां च पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । कुरूणां गार्हपतं कुरुगार्हपतम् । रिक्तो गुरुः रिक्तगुरुः । असूता जरती, असूतजरती । अश्लीला दृढरूपा अश्लीलादृढरूपा । दास्या भारो दासीभारः :—

दासीभारः । देवहूतिः । देवजूतिः । देवसूतिः । देवनीतिः । वसुनीतिः । ओषधिः । चन्द्रमाः । अविहितलक्षणः पूर्वपदप्रकृतिस्वरो दासीभारादिषु द्रष्टव्यः ॥

१६१—युक्तारोह्यादयश्च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ८१ ॥

युक्ता रोह्यादिषु पूर्वपदमाद्युदात्तं निपात्यते :—

युक्तारोही।आगतरोही।आगतयोधी।आगतवञ्ची।आगतनर्दी।आगतप्रहारी। आगतमत्स्या।क्षीरहोता।भगिनीभर्त्ता।ग्रामगोधुक्। अश्वत्रिरात्रः।गर्गत्रिरात्रः। व्युष्टत्रिरात्रः। शणपादः।समपादः।एकशितिपात् ॥ पात्रेसम्मितादयश्च ॥इति०

१६२—घोषादिषु च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ८५ ॥

घोषादिषु चोत्तरपदेषु परेषु पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति :—

दाक्षिघोषः। दाक्षिकटः। दाक्षिपल्वलः। दाक्षिवल्लभः। दाक्षिह्रदः। दाक्षिबदरी। दाक्षिपिङ्गलः। दाक्षिपिशङ्गः।दाक्षिशालः।दाक्षिरक्षः। दाक्षिशिल्पी। दाक्ष्यश्वत्थः। कुन्दतृणम्। दाक्षिशाल्मली। आश्रममुनिः। शाल्मलिमुनिः। दाक्षिपुंसा। दाक्षिकूटः। इति घोषादयः ॥

१६३—प्रस्थेऽवृद्धमकर्क्यादीनाम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । ८७ ॥

प्रस्थ उत्तरपदेकर्क्यादिरहितमवृद्धं पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति। इन्द्रप्रस्थः। कुण्डप्रस्थः। अवृद्धमिति किम्।दाक्षिप्रस्थः। अकर्क्यादीनामिति किम्। कर्कीप्रस्थः :—

कर्की।मघी।मकरी।कर्कन्धू।शमी।करीर।कटुक।कुवल।कवल।बदर ।।इति०

१६४—मालादीनां च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ८८ ॥

प्रस्थ उत्तरपदे मालादय आद्युदात्ता भवन्ति। मालाप्रस्थः। शालाप्रस्थः :—

माला। शाला। शोणा। द्राक्षा। क्षौमा।क्षामा। काञ्ची।एक काम। इति०

१६५—क्रत्वादयश्च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ११८ ॥

सोरुत्तरपदस्थाः क्रत्वादयो बहुव्रीहौ समासे आद्युदात्ता भवन्ति। सुक्रतुः :—

क्रतु। दृशीक। प्रतीक। प्रपूर्त्ति। हव्य। भग। इति क्रत्वादयः ॥

१६६—आदिश्चिहणादीनाम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १२५ ॥

कन्थान्ते नपुंसकेतत्पुरुषेचिहणादिपूर्वपदानामादिरुदात्तोभवतिचिहणकन्थम् :—

चिहण। मडर। मडुर। वैतुल। पटत्क। वैडालिकर्णः। वैतालिकर्णिः। कुक्कुट। चिक्कण। चित्कण ॥ इति चिहणादयः ॥

१६७—चूर्णादीन्यप्राणिषष्ठ्याः ॥ अ० ॥ ६ । २ । १३४ ॥

तत्पुरुषसमासेऽप्राणिवाचिनः षष्ठ्यन्तात्पराणि चूर्णादीन्युत्तरपदानि आद्युदात्तानि भवन्ति । मुद्गस्य चूर्णं मद्गचूर्णम् :—

चूर्ण । करिप । करिव । शाकिन । शाकट । द्राक्षा । तूस्त । कुन्दम । दलप चमसी । चक्कन । चक्कन । चौल ॥ इति चूर्णादीनि ॥

१६८—उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४० ॥

वनस्पत्यादिषु समासेषूभे पूर्वोत्तरपदे युगपत्प्रकृतिस्वरे भवतः :—

वनस्पतिः । बृहस्पतिः । शचीपतिः । तनूनपात् । नराशंसः । शुनःशेपः । शण्डामर्कौ तृष्णावरूत्री । बम्बाविश्ववयसौ । मर्मृत्युः । इति वनस्पत्यादयः ॥

१६९—संज्ञायामनाचितादीनाम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४६ ॥

संज्ञायां विषये गतिकारकोपपदात्परं क्तान्तमुत्तरपदमन्तोदात्तं भवति । आचितादीन् वर्जयित्वा । संभूतः । धनुष्खाता । अनाचितादीनामिति किम् :—

आचितम् । पर्य्याचितम् । आस्थापितम् । परिगृहीतम् । निरुक्तम् । प्रतिपन्नम् प्रश्लिष्टम् । उपहतम् । उपस्थितम् । संहिताऽगवि ॥ इत्याचितादयः ॥

१७०—प्रवृद्धादीनां च ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४७ ॥

प्रवृद्धादिशब्दानां क्तान्तमुत्तरपदमन्तोदात्तं भवति । प्रवृद्धं यानम् :—

प्रवृद्धो वृषलः । प्रयुक्ताः सक्तवः । आकर्षेऽवहितः । अवहितो भोगेषु । खट्वारूढः । कविशस्तः । आकृतिगणत्वात् पुनरुत्स्यूतं वासोदेयम् । पुनर्निष्कृतो रथः । इति०

१७१—निरुदकादीनि च ॥ अ० ॥ ६ ॥ २ । १८४ ॥

निरुदकादीनि च शब्दरूपाण्यन्तोदात्तानि निपात्यन्ते :—

निरुदकम् । निरुलपम् । निरुपलम् । निर्मशकम् । निर्मक्षिकम् । निष्कालकः । निष्कालिकः । निष्पेपः । दुस्तरीपः । निस्तरीपः । निस्तरीकः । निरजिनम् । उदजिनम् । उपाजिनम् ॥ परेर्हस्तपादकेशकर्षाः । परिहस्तः । परिपादः । परिकेशः । परिकर्षः । आकृतिगणोऽयम् ॥ इति निरुदकादयः ॥

१७२—प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे ॥ अ० ॥ ६ । २ । १९३ ॥

तत्पुरुषसमासे प्रतेरुत्तरा अंश्वादयोऽन्तोदात्ता भवन्ति । प्रतिगतोंऽशुः प्रत्यंशुः :—

अंशु । जन । राजन् । उष्ट्र । खेटक । अजिर । आर्द्रा । श्रवण । कृत्तिका । अर्द्ध । पुर ॥ इत्यंश्वादयः ॥

१७३—उपाद् द्व्यजजिनमगौरादयः ॥ अ० ॥ ६ । २ । १९४ ॥

उपादुत्तरं द्व्यच्कमजिनं च तत्पुरुषसमासे गौरादिवर्जितमन्तोदात्तं भवति। उपगतो देवमुपदेवः । उपसोमः । उपाजिनम् ।अगौरादय इति किम्।उपगौरः :—

गौर।तैष।तैल ।लेट।लोट।जिह्वा।कृष्णा।कन्या।गुड।कल्प।पाद । इति गौरादयः॥

१७४—स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ३४ ॥

भाषितपुंस्कशब्दात्परस्य समानाधिकरणस्त्रीलिङ्गे पूरणीप्रियादिवर्जिते उत्तरपदे परतः पुंशब्दस्येवरूपं भवति। दर्शनीया भार्या यस्य स दर्शनीयभार्यः । दीर्घजङ्घः ।अप्रियादिष्वितिकिम्। कल्याणीप्रियः :—

प्रिया । मनोज्ञा । कल्याणी । सुभगा । दुर्भगा । भक्तिः । सचिवा । अम्बा । कान्ता ।क्षान्ता ।समा । चपला । दुहिता । वामा ॥इति प्रियादयः ॥

१७५—वनगिर्योःसंज्ञायांकोटरकिंशुलकादीनाम्॥अ०॥६।३।११७॥

वन, गिरि, इत्येतयोरुत्तरपदयोः परयोर्यथासंख्यं कोटरादीनां किंशुलादीनां च संज्ञायां विषये दीर्घो भवति । कोटरावणम् । किंशुलकागिरिः :—

कोटर । मिश्रक । पुरक । सिध्रक । सारिक । इति कोटरादयः ॥ किंशुलक । साल्वक । अञ्जन । लोहित । कुक्कुट । इति किंशुलकादयः ॥

१७६—मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम् ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ११९ ॥

मतौ प्रत्यये परतोऽजिरादिवर्जितस्य बह्वचो दीर्घो भवति संज्ञायां विषये ।उदुम्बरावती । मशकावती । अमरावती । अनजिरादीनामिति किम् :—

अजिरवती।खदिरवती।पुलिनवती।हंसकारण्डवती।चक्रवाकवती।इत्यजिरादयः॥

१७७—शरादीनां च ॥ अ० ॥ ६ । ३ । १२० ॥

संज्ञायां विषये मतौ परतः शरादीनां च दीर्घो भवति । शरावती । वंशावती:—

शर । वंश । धूम । अहि । कपि । मणि । मुनि । शुचि । हनु । इति शरादयः॥

१७८— द्वारादीनां च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ४ ॥

द्वारादीनां य्वाभ्यामुत्तरस्याचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्न भवति ।किन्तु ताभ्यां पूर्वावैजागमौ भवतः। द्वारेनियुक्तः,दौवारिकः।स्वरमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः,सौवरः :—

द्वार । स्वर । व्यल्कश । स्वस्ति । स्फ्यकृत । स्वादुमृदु । श्वन् स्व ।इति द्वारादयः ॥

१७६—स्वागतादीनां च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७ ॥

स्वागतादीनां शब्दानां य्वाभ्यां पूर्वौ ञित् णित् कित् तद्धिते परत ऐजागमौ न भवतः । वृद्धिस्तुभवत्येव । स्वागतमित्याह स्वागतिकः । स्वध्वरेण चरति, स्वाध्वरिकः :–

स्वागत । स्वध्वर । स्वङ्ग । व्यङ्ग । व्यड । व्यवहार । स्वपति । इतिस्वागतादयः॥

१८०—अनुशतिकादीनां च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । २० ॥

ञितिणितिकितिचतद्धिते परतोऽनुशतिकादिशब्दानां पूर्वपदस्योत्तरपदस्याचामादेरचःस्थानेवृद्धिर्भवति। अनुशतिकस्येदमानुशातिकम् :–

अनुशतिक । अनुहोड । अनुसंवत्सर । अङ्गारवेणु । असिहत्य । वध्योग । पुष्करसत् । अनुहरत् । कुरुकत । कुरुपञ्चाल । उदकशुद्ध । इहलोक । परलोक । सर्वलोक । सर्वपुरुष । सर्वभूमि । प्रयोग । परस्त्री । राजपुरुषात् ष्यञि ॥सूत्रनड॥ आकृतिगणोऽयम् (१) ॥ इत्यनुशतिकादयः ॥

१८१—न्यङ्क्वादीनां च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ५३ ॥

न्यङ्क्वादिषु कुत्वं निपात्यते । नितरामञ्चतीति :–

न्यङ्कुः । मद्गुः । भृगुः । दूरेपाकः । फलेपाकः । क्षणेपाकः । फलेपाका । दूरेपाकुः । फलेपाकुः । तक्रम् । वक्रम् । व्यतिषङ्गः । अनुषङ्गः । अवसर्गः । उपसर्गः । मेघः । श्वपाकः । मांसपाकः । कपोतपाकः । उलूकपाकः । संज्ञायामघः । अवदाघः । निदाघः (२) । न्यग्रोधः ॥ इति न्यङ्क्वादयः ॥

१८२—पूजनात्पूजितमनुदात्तंकाष्ठादिभ्यः ॥अ०॥८।१। ६७ ॥

पूजनवाचिभ्यः काष्ठादिभ्यः परं पूजितमुत्तरपद मनुदात्तं भवति। काष्ठश्चासावध्यापकः काष्ठाऽध्यापकः :–

काष्ठ । दारुण । अमातापुत्र । अयुत । अद्भुत । अनुक्त । भृश । घोर । परम । सु । अति । अनुज्ञात । कल्याण । वेश ।। इति काष्ठादयः ॥

१८३—मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ९ ॥

मकारान्तान्मकारोपधादवर्णान्तादवर्णोपधाच्च परस्य मतुपोमकारस्य वकारादेशो भवति मतु यवादिभ्यः परस्य मस्य वो भवति । मान्तात् किंवान् । शंवान् ।

(१)अत्राकृतिगणेनेदमपि सिद्धं भवति। अभिगममर्हति,अभिगामिकः । अधिदेवेभवमाधिदैविकम्।आधिभौतिकम्।आध्यात्मिकम्।चतस्रएवविद्याः,चातुर्वैद्यम्।स्वार्थेष्यञ्।

(२) अघ, अवदाघ, निदाघ, इति त्रिषु शब्देषु संज्ञायामेव कुत्वम् । अन्यत्र । अर्हः । अवदाहः । निदाहः ॥

मकारोपधात् । शमीवान् । दाडिमीवान् । अवर्णान्तात् । वृक्षवान् । खट्वावान् । अवर्णोपधात् । यशस्वान् । भास्वान् । मादुपधायाश्चेति किम् । अग्निमान् । अयवादिभ्य इति किम् । यवमान् :-

यव । दल्मि । ऊर्मि । भूमि । कृमि । क्रुञ्चा । वशा । द्राक्षा । ध्रजा । वेशा । भ्रजि । ध्वजि । सञ्जि । वजि । व्रजि । शञ्जि । सिञ्जि । हरित् । ककुत् । गरुत् । इक्षु । मधु । द्रुम । मण्ड । धूम । आकृतिगणोऽयम् ॥

१८४—कस्कादिषु च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ४८ ॥

कस्कादिशब्देषु विसर्जनीयस्य सः षो वा कवर्ग पवर्गयोः परतः :-

कस्कः । कौतस्कुतः । भ्रातुष्पुत्रः । शुनस्कर्णः । सद्यस्कालः । सद्यस्क्रीः । साद्यस्कः । कांस्कान् । सर्पिष्कुण्डिका । धनुष्कपालम् । बर्हिष्पूलम् । यजुष्पात्रम् । अयस्काण्डः । मेदस्पिण्डः । आकृतिगणोऽयम् । इति कस्कादयः ॥

१८५—सुषामादिषु च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ९८ ॥

सुषामादिषु सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो निपात्यते । शोभनं साम यस्यासौ सुषामा ब्राह्मणः :-

सुषामा । निःषामा । दुष्षेधः । सुषन्धिः । दुःषन्धिः । निषन्धिः । सुष्ठु । दुष्ठु । गौरिषक्थः संज्ञायाम् ॥ प्रतिष्णिका । जलाषाहम् । नौषेचनम् । दुन्दुभिषेवनम् ॥ अविहितलक्षणो मूर्द्धन्यः सुषामादिषु द्रष्टव्यः । इति सुषामादयः ॥

१८६—नरपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ११० ॥

रेफपरस्य सकारस्य सृपिसृजिस्पृशिस्पृहि सवनादीनां सस्य मूर्द्धन्यादेशो न भवति । रपर, विस्रंसिका । विस्रब्धः । विसृपः । विसर्जनम् । सुस्पृशम् । निस्पृहम् :-

सवने सवने । सूते सूते । सामे सामे । सवनमुखे सवनमुखे । अनुसवनमनुसवनम् । बृहस्पतिसवः । शकुनिसवनम् । संवत्सरे संवत्सरे । मुसलं मुसलम् । गोसनिम् । अश्वसनिम् । इति सवनादयः ॥

१८७—क्षुभ्नादिषु च ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३९ ॥

क्षुभ्ना इत्यादि शब्देषु नस्य णकारादेशो न भवति । यथाप्राप्तिनिषेधः :-

क्षुभ्नाति । क्षुभ्नीतः । क्षुभ्नन्ति । नृनमन । नन्दिन् नन्दिन् । नगर । नरीनृत्यते । तृप्नु । नर्त्तन । गहन । नन्दन । निवेश । निवास । अग्नि । अनूप ॥ आचार्यादणत्वं च ॥ आचार्यभोगीनः । आचार्यानी ॥ हायन ॥ इरिकादिभ्यः वनोत्तरपदेभ्यः संज्ञायाम् ॥

इरिका । तिमिर । समीर । कुवेर । हरि । कर्मार । क्षुभ्नादिराकृतिगणः ॥ इति क्षुभ्नादयः ॥ समाप्तश्चायं ग्रंथः ॥

अथ गणपाठशुद्धिपत्रम् ॥

पृष्ठे	पङ्क्तौ	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	३	पुस्तककौं	पुस्तकौं
४	६	क्वर्थः	क्त्वोर्थः
१२	७	गौपनौ	गौपवनौ
१५	२	लोहिताभ्यो	लोहितादिभ्यो
१८	१६	०	गौलस्य
२३	१२	द्वार	द्वार
२६	८	०	विश्वदेव
२८	१२	विदग्ध	विजग्ध
३३	१	ह्यतु	हृतु
३७	८	सुङ्गि	सङ्गि
३८	३	शाङ्कव्यम्	शङ्कव्यम्
३८	२४	न्	न
४०	८	छेदनं	छेदं
४०	११	वैरङ्कः	वैरङ्गिकः
४२	१०	परिमाण्डल	परिमण्डल
४२	१८	सासैन्यापत्यम्	वासैनापत्यम्
४८	२०	प्रज्ञः	प्राज्ञः
५१	२२	तैतित	तैतिल
५१	२५	अश्लीला	अश्लील
५२	२	पूर्ण	पूर्व
५४	१६	०	भजन

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

पंचदशो भागः ॥

उणादिकोषः ।

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां

द्वादशो भागः ।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।
पण्डितज्वालादत्तशर्म्मणा संशोधितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां पञ्चदशं पुस्तकम् ।

मुन्शी समर्थदान के प्रबन्ध से
वैदिकयन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ

संवत् १९४० आश्विनकृष्णा ३

पहली बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य ॥।)

अथ भूमिका ॥

सब उणादिगणस्थ शब्द इस वक्ष्यमाण एक सूत्र की विशेष व्याख्या में हैं ॥

उणादयो बहुलम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १ ॥

वर्त्तमान काल में विहित धातुओं से उणादि प्रत्यय बहुल करके होते हैं ॥

भूतेऽपि दृश्यन्ते ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २ ॥

और कहीं २ भूतकाल में भी इन का विधान दीख पड़ता है ॥

भविष्यति गम्यादयः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३ ॥

और गमी आदि गणपठित वक्ष्यमाण शब्द भविष्यत्काल में ही होते हैं। उणादि प्रत्ययों के होने के लिये यह तीनों काल का नियम है । गम्यादि शब्द । गमी । आगामी । प्रस्थायी । प्रतिरोधी । प्रतिबोधी । प्रतियोधी । प्रतियोगी । प्रतियायी । आयायी । भावी । इन से अन्य शब्द भूत और वर्त्तमान अर्थों के बोधक होते हैं । अब जितनी प्रकृतियों से जितने उणादि प्रत्यय कहे हैं उतने ही जानना चाहिये वा कुछ विशेष । इस लिये—

बाहुलकं प्रकृतेस्तनुदृष्टेः प्रायसमुच्चयनादपि तेषाम् ।
कार्यसशेषविधेश्च तदुक्तं नैगमरूढिभवं हि सुसाधु ॥ १ ॥
नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम् ।
यन्न पदार्थविशेषसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम् ॥ २ ॥
संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।
कार्याद्विद्यादनुबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥ ३ ॥ महाभाष्ये

इसी सूत्र की व्याख्या में महाभाष्यकार पतञ्जलिमुनि उणादि पाठ की व्यवस्था बांधते हैं कि (बाहुलकम्) उणादि पाठ में थोड़े से धातुओं से प्रत्यय विधान किया है सो बहुल के होने से वे प्रत्यय अन्य धातुओं से भी होते हैं। इसी प्रकार प्रत्यय

भी थोड़े से संकेतमात्र पढ़े हैं। सत्प्रयोगों में देख के इन से अन्य भी नवीनप्रत्ययों की कल्पना कर लेनी चाहिये । जैसे (ऋफिडः) इस शब्द में ऋधातु से फिड प्रत्यय समझा जाता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिये। तथा जितने शब्द उणादिगण से सिद्ध होते हैं उन में जितने कार्य्य सूत्रों से प्राप्त हैं वे सब नहीं होते यह भी बहुलग्रहण का ही प्रताप है। इस में यदि कोई ऐसा प्रश्न करे कि उणादिपाठ में जितने धातुओं से जितने प्रत्यय विधान किये और शब्दों की सिद्धि में जितने कार्य सूत्रों से हो सकते हैं उन से अधिक वा न्यून क्यों होते हैं। तो इस का उत्तर यह है कि (नैगम०) वैदिक शब्द और लौकिक संज्ञा शब्द ये सब अच्छे प्रकार सिद्ध नहीं हो सकते। इस लिये पूर्वोक्त तीन प्रकार के कार्य उणादि-गण में बहुल वचन से होते हैं इस बहुल के होने से अनेक प्रकार के सहस्रों शब्द सिद्ध होते हैं ॥ १ ॥

संज्ञा शब्द वे ही कहाते हैं जो किसी निज वाच्य के साथ संबन्ध रक्खें फिर उन को सिद्ध करने से क्या प्रयोजन है क्योंकि वे संज्ञाशब्द जिस निज अर्थ के बोधक हैं उस का बोध तो प्रकृति प्रत्ययार्थ सम्बन्ध के विना भी कराते ही हैं वही पश्चात् होगा इस लिये (नामच०) इस विषय में निरुक्तकारों और वैयाकरणों में शाकटायन ऋषि का ऐसा मत है कि सब संज्ञा (रूढि) शब्द प्रकृति प्रत्ययार्थ के संबन्ध से यौगिक तथा योगरूढता से अर्थों के बोधक होते हैं। इन से भिन्न अन्य ऋषियों के मतानुसार सब संज्ञा शब्द रूढि अर्थात् अव्युत्पन्न होते हैं। अब जहां शब्दों में प्रकृतिप्रत्यय कुछ भी नहीं जान पड़ता वहां(प्रत्ययतः०)यदि प्रत्यय जान पड़े तो धातु की कल्पना और धातु जान पड़े तो नवीन प्रत्यय की कल्पना कर लेनी चाहिये। इस प्रकार उन शब्दों का अर्थ ज्ञान कर लेना चाहिये ॥ २ ॥ संज्ञा शब्दों में धातुओं का रूप पूर्व भाग में और शब्द के पर भाग में धातु से परे प्रत्यय की कल्पना करनी चाहिये। और जिस शब्द में जिस अनुबन्ध का कार्य्य दीख पड़े वैसे ही सानुबन्धक धातु वा प्रत्ययों की ऊहा करनी चाहिये। अर्थात् आत्मनेपद दीख पड़े तो अनुदात्तेत् वा ङित् धातु जानना और जो आद्युदात्त स्वर हो तो ञित् वा नित् प्रत्यय की कल्पना करनी चाहिये। यह कल्पना सर्वत्र नहीं करनी किन्तु वैदिक वा लौकिक सत्प्रयुक्त शब्दों के अर्थ जान ने के लिये शब्द के पूर्व भाग में धात्वर्थ की और पर भाग में प्रत्ययार्थ की कल्पना करनी चाहिये। यह सब संबन्ध ऋषि लोगों ने इस लिये बांधा है कि अगाध शब्दसागर की थाह व्याकरण से भी नहीं मिल सकती। जो कहें कि ऐसा व्याकरण क्यों नहीं बनाया

कि जिस से शब्दसागर के पार पहुंच जाते तो यह समझना चाहिये कि कितने ही पोथा बनाते और जन्म जन्मान्तरों भर पढ़ते तो भी पार होना दुर्लभ ही था इस लिये यह पूर्वोक्त व्याकरण से सब प्रबन्ध जताया है ॥ ३ ॥ उणादिगण में कारक व्यवस्था का यह नियम है कि –

दाशगोघ्नौ संप्रदाने ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७३ ॥

यह सूत्र सामान्य कृदन्त का नियामक है कि दाश और गोघ्न शब्द औणादिक हो वा अष्टाध्यायी से सिद्ध हों परन्तु प्रत्यय संप्रदान कारक में ही हों। इस नियम से ये दोही शब्द संप्रदान में होते हैं अन्य नहीं ॥

भीमादयोऽपादाने ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७४ ॥

भीमादि शब्दों में अपादान कारक में ही प्रत्यय होते हैं।भीमादि शब्द औणा-दिक हैं जैसे–भीमः । भीष्मः ।भयानकः । वरुः ।चरुः । भूमिः । रजः । संस्कारः । संक्रन्दनः । प्रपतनः । समुद्रः । स्रुचः । स्रुक् । खलतिः । इति भीमादिगणः ॥

ताभ्यामन्यत्रोणादयः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७५ ॥

उन संप्रदान और अपादान दोनों कारकों से भिन्न अन्य कारकों में उणादि प्रत्यय होते हैं । व्युत्पन्न पक्ष में उणादि प्रत्ययान्त शब्दों के यौगिक होने से प्रत्ययों को कृत्संज्ञक मान के कर्त्ता में प्राप्त हैं इस लिये यह कारक नियम है । और भाव में भी उणादि प्रत्यय होते हैं । संप्रदान और अपादान को छोड़ के अन्य कारकों में तो उणादि प्रत्ययों का यथेष्ट विधान है परन्तु बहुलवचन से कहीं संप्रदान में भी कोई प्रत्यय कर दिये हों तो चिन्ता नहीं । इस उणादिगण की एक वृत्ति छपी भी है परन्तु वही पोपलीला आदि का जगड्वाल बहुत और प्रयोजन थोड़ा सिद्ध होता है । इस लिये यह कोष बनाना पड़ा । इस ग्रंथ में सूत्रों का पाठ तथा अर्थ बहुधा सुगम है इसी लिये प्रति सूत्र का अर्थ वृत्ति में नहीं किया और जहां कुछ कठिन जान पड़ा वहां खोल दिया है । अनुवृत्ति भी बहुधा जनादी है । इस का मूल ऊपर २ पृथक् इस लिये छपवाया है कि अध्येता लोगों को पाठ करने और घोषण से कण्ठस्थ करने में सुगमता रहेगी । जो अंक सूत्र के अन्त में लिखा है वही नीचे वृत्ति के आदि में डाल दिया है । इस से बड़ी सुग-मता होगी । इस में विशेष करके लौकिक शब्द और सामान्य से वैदिक लौकिक दोनों ही सिद्ध किये हैं । निघण्टु में जितने वैदिक शब्द हैं उन में से बहुतों का

निर्वचन वृत्ति में मिले गा । सो दोनों को अकारादि सूची को देख के खोज लेना चाहिये । निर्वचन तो सब शब्दों का कर दिया है परन्तु वे धातुगणानुबंध और अर्थ के सहित यहां नहीं लिखे हैं क्यों कि ग्रंथ बहुत बढ़ जाता इस लिये धातु के प्रयोग से गण अनुबंध तथा उस के पर्य्याय शब्द से धातु के अर्थ का बोध कर लेना चाहिये । संस्कृत में वृत्ति बना ने का यही प्रयोजन है कि जो लोग पठन पाठन व्यवस्था के पहिले पुस्तकों को पढें गे उन के लिये संस्कृत कुछ कठिन नहीं होगा । और संस्कृत भी सरल ही बनाया है । कई शब्दों के अर्थ इति शब्द लगा कर भाषा में भी खोल दिये हैं ॥

इति भूमिका

स्थान महाराणा जी का उदयपुर
माघकृष्ण १ संवत् १९३९

दयानन्दसरस्वती

---*---

ओ३म् ॥

अथोणादिकोषः ॥

—◦※◦—

कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् ॥१॥ कारुः । वायुः । पा
जायुः । मायुः । स्वादुः । साधुः । आशु । आशुः ॥ १ ॥

छन्दसीणः ॥ २ ॥ आयुः ॥ २ ॥

दृसनिजनिचरिचटिरहिभ्यो ञुण् ॥३॥ दारु । सानु । जा
चारु । चाटु । राहुः ॥ ३ ॥

---

(१) करोतीति कारुः कर्त्ता शिल्पी वा । वाति गच्छति जानाति वेति
पवनः परमेश्वरो वा । पाति रक्षति स पायू रक्षकः गुदेन्द्रियं वा । जयत्यभि
तिरस्करोति शत्रूनिति जायुः शूरः । जयति रोगानिति जायुरौषधं वैद्यो वा
मिनोति प्रक्षिपति स मायुः । अथवा मिनोति प्रक्षिपत्यूष्माणमिति मायुः पि
गां विकृतां वाचं मिनोतीति गोमायुः शृगालः । स्वद्यते भोक्तुमभीप्स्यते त
भोज्यमन्नं वा । साध्नोति धर्म्यं कर्मेति साधुः सज्जनः । अश्नुते व्याप्नोति त
शीघ्रम् । अश्नुते सद्योऽध्वानमित्याशुरश्वः । वाऽश्यते भुज्यते शीघ्रमित्याशु
ब्रीहिः बहुलवचनात्—स्नाति शोधयत्यङ्गानीति स्नायुर्नाड़ी वा । कक्यते लोल
भवति येनेति काकुः । भयादिः ध्वनेर्विकारो वा । हल्यते छिद्यतेऽन्नमने
हालुः । दन्तो वा । वसति जगदस्मिन् वा सर्वस्मिन् यो वसति स वासुरीश्वरः। इल

(२) वेद इण् धातोरुण् । एति प्राप्नोति सर्वानित्यायुर्जीवनकालः । स
द्वितीयपादे वक्ष्यते ॥

(३) दीर्यते भिद्यत इति दारु काष्ठं वा । सनति संभजति सनोति द
वा स सानुः । पर्वतैकदेशश्रृङ्गबुधमार्गवात्यापर्णवनानि च सानूनि वा । ज
ऽस्मात्सज्जानु जङ्घाया उपरिभागो वा । जनिवध्योश्चेति प्रतिषेधाऽप्यनुवर्त
सामर्थ्याद्वृद्धिर्भवति । चरति चक्षुरादिष्विति चारु शोभनम् । चटति भिनत्ति
प्रियं वचो वा । रहति त्यजति दोषानिति राहुः । ग्रहविशेषो वा ॥

क्विंजरयोः श्रिणः ॥ ४ ॥ किंशारुः । जरायुः ॥४ ॥

त्रो रश्च लः ॥ ५ ॥ तालु ॥ ५ ॥

कृके वचः कश्च ॥ ६ ॥ कृकवाकुः ॥ ६ ॥

भृमृशीङ्तॄचरित्सरितनिधनिमिमस्जिभ्य उः ॥ ७ ॥ भरुः । मरुः । शयुः । तरुः । चरुः । त्सरुः । तनुः । धनुः । मयुः । मद्गुः ॥७॥

अणश्च ॥ ८ ॥ अणुः ॥ ८ ॥

धान्ये नित् ॥ ९ ॥ अणवः ॥ ९ ॥

(४) किं शृयतेऽनेनेति किंशारुः धान्यविशेषो वा । जरां जीर्णतामेति जरायुः । गर्भाशयो गर्भावरणं वा ॥

(५) तृधातोर्ञुण् रेफस्य लत्वम् ।तरन्ति निःसरन्ति वर्णा यत इति तालु मुखैकदेशः।बाहुलकात्।अर्यते प्राप्यत इत्यालु भक्ष्यं कन्दं वा । भृणाति सन्तापेन छेदयति पदार्थानिति भालुः सूर्यः। शृणाति चित्तं हिनस्तीति शालुः । कषायद्रव्यं वा । इत्यादि ॥

(६) कृकोपपदाद्वचधातोर्ञुण् । कृकेन कण्ठेन वक्तीति कृकवाकुर्ध्वनादिर्मयूरो वा

(७) भरति बिभर्त्ति वेति भरुः । स्वामी । म्रियन्ते भूतान्यस्मिन्निति मरुर्निर्जलो देशो वा । शेतेऽसौ शयुः शयनशीलः । यस्तरति येन वा स तरुः वृक्षो वा । चरति चर्य्यतेऽग्निना भक्ष्यत इति चरुः । यज्ञपाको वा । त्सरति कुटिलं गच्छतीति त्सरुः । खड्गमुष्टिर्वा । तन्यन्ते कर्माण्यनेनेति तनुः शरीरं स्वल्पं वा । धन्यते धनं प्राप्यतेऽनेनेति धनुः शास्त्रं शस्त्रं वा । मिनोति सुशब्दं प्रक्षिपतीति मयुः वानरो वा । मज्जति शुद्धो भवतीति मद्गुः जलप्लवो पक्षी वा । न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वम् । बाहुलकात्–गण्डति स गण्डुः वदनैकदेशः।उपधानम्–तकिया इतिप्रसिद्धं तैलं वा

(८) अणति शब्दयतीत्यणुः । अतिसूक्ष्मं वा । अत्र चकारग्रहणाद्वा–कटति जिह्वां विकारयतीति कटू रसः।वटति गुणकर्माणि विभजतीति वटुः। द्विजसुतो वा

(९) अणन्ति शब्दायन्ते येस्तेऽणवोऽन्नविशेषा वा नित्करणमाद्युदात्तस्वरार्थम् ।

शृस्वृस्निहित्रप्यसिवसिहनिक्लिदिबन्धिमनिभ्यश्च ॥ १० ॥ शरुः । स्वरुः । स्नेहुः । त्रपु । असुः । वसुः । हनुः । क्लेदुः । बन्धुः । मनुः ॥ १० ॥

स्यन्देः सम्प्रसारणं धश्च ॥ ११ ॥ सिन्धुः ॥ ११ ॥

उन्देरिच्चादेः ॥ १२ ॥ इन्दुः ॥ १२ ॥

ईषेः किच्च ॥ १३ ॥ इषुः ॥ १३ ॥

स्कन्देः सलोपश्च ॥ १४ ॥ कन्दुः ॥ १४ ॥

सृजेरसुम् च ॥ १५ ॥ रज्जुः ॥ १५ ॥

(१०) अत्र धातुप्रत्यययोर्निर्दिष्टसंबन्धः । एवमर्थ एव पृथक्पाठः । शृणाति-हिनस्ति येनेति शरुरायुधं क्रोधो वा । स्वयन्त उपतप्यन्ते प्राणिनोऽनेनेति स्वरुर्वज्रम् । स्निह्यति यस्मिन् स स्नेहुर्व्याधिर्वा । अग्निं प्राप्य यत्त्रपते लज्जितमिव भवतीति तत् त्रपु सीसकं रंगं वा । अस्यति प्रक्षिपति वायुमित्यसुः प्राणः । असुं प्राणं राति ददातीत्यसुरो मेघः । वस्त आच्छादयति दुःखं येन तद्वसु धनं वा । वसन्ति प्राणिनो येषु ते वसवोऽग्न्यादयोऽष्टौ । हन्यतेऽनेनेति हनुः कपोलावयवः प्रहरणं मृत्युर्वा । क्लिद्यत्यार्द्रीकरोति चित्तमिति क्लेदुश्चन्द्रमा वा प्रेम्णा बध्नातीति बन्धुः सज्जनो वा । मन्यते चराचरं जगज्जानातीति मनुरीश्वरः मनुतेऽवबुध्यते शास्त्रमिति मनुर्विद्वान् राजर्षिः । बहुलवचनात् । बिन्दत्यवयवी भवतीति बिंदुः परिमाणं जलादिकणो वा ।

(११) स्यन्दन्ते प्रस्रवन्त्युदकान्यस्मिन्निति सिन्धुः ॥

(१२) उन्दधातोरुः प्रत्यय आदिवर्णस्येकारादेशश्च । उनत्त्यार्द्रीकरोति पदार्थानितीन्दुश्चन्द्रमा वा ॥

(१३) अत्र चकारात्किच्चेत्यनुवर्त्तते तेन दीर्घस्य ह्रस्वो भवति ईषति गच्छति हिनस्ति वा शत्रूनिति, इषुर्बाणो वीरो वा । कित्त्वाद् गुणाऽभावः ॥

(१४) स्कन्दति गच्छति शुष्यति वा येन स कन्दुः कुमाराणां क्रीडार्थे गेंद-इति प्रसिद्धं वा ॥

(१५) अत्र पूर्वसूत्रात्सलोप इत्यनुवर्त्तते । धातोरसुमागम आदिसकारलोपश्च । पुनर्ऋकारस्य यणादेश आगमसकारस्य जश्त्वं च । सृजन्त्युदकनिस्सारणायेति रज्जुर्जलोद्धरणं वा ॥

कृतेराद्यन्तविपर्ययश्च ॥ १६ ॥ तर्कुः ॥ १६ ॥

नावञ्चेः ॥ १७ ॥ न्यङ्कुः ॥ १७ ॥

फलिपाटिनमिमनिजनां गुक्पटिनाकिधतश्च ॥ १८ ॥ फल्गुः । पटुः । नाकुः । मधुः । जतुः ॥ १८ ॥

वलेर्गुक्च ॥ १९ ॥ वल्गुः ॥ १९ ॥

शः कित्सन्वच्च ॥ २० ॥ शिशुः ॥ २० ॥

यो द्वे च ॥ २१ ॥ ययुः ॥ २१ ॥

कुर्भश्च ॥ २२ ॥ बभ्रुः ॥ २२ ॥

---

(१६) आद्यन्तविपर्ययोर्थादादौ तकारोऽन्ते ककारः । उश्च प्रत्ययः कृन्तति छिनत्ति वस्त्रादिकमनेन स तर्कुः । कर्त्तनी वा ॥

(१७) ये नितरामञ्चन्ति गच्छन्ति ते न्यङ्कवो जातिविशेषाः पशवो वा ॥

(१८) उप्रत्यये फलधातोर्गुगागमः फलति निष्पद्यते स फल्गुः असारो वा नपुंसके फल्गु फलम् ।पाटिधातोः पटिरादेशः। पाटयति ज्ञापयति सदसत्पदार्थान् स पटुर्वाग्मी विशारदो वा । नमधातोर्नाकिरादेशः नमतीति नाकुः । वल्मीको वा मनधातोर्धकारादेशः । मन्यन्ते विशेषेण जानन्ति यस्मिन् स मधुश्चैत्रो मासः । मधूको मद्यं चौन्द्रं पुष्परसो वा । जनधातोस्तकारादेशः । जायते प्रादुर्भूयतेऽनेनेति जतु लाचा वा ॥

(१९) वलति प्राणयतीति वल्गुः । नपुंसके वल्गु शोभनम् ॥

(२०) सन्वद्भावाद् द्वित्वादिकम् । श्यति तनूकरोति पित्रोः शरीरमिति शिशुर्बालकं वा ॥

(२१)अत्र सन्वदित्यनुवर्तमानेपि द्वे ग्रहणमभ्यासेत्वनिवृत्त्यर्थम् । यान्ति प्राप्नुवन्ति देशान्तरमनेनेति ययुरश्वो वा ॥

(२२)अत्र द्वे इत्यनुवर्त्तते भृधातोः कुः प्रत्ययो द्वित्वं च । बिभर्त्ति सर्वमिति बभ्रुः नकुलः पिंगलो वा। सूत्रे चकारग्रहणादन्यधातुभ्योऽपि कुःप्रत्ययस्तेषां द्वित्वं च भवति । तद्यथा । करोतीति चक्रुः कर्त्ता । हन्तीति जघ्नुर्हन्ता । पाति रक्षतीति पपुः पालकः । इत्यादि ॥

पॄभिदिव्यधिगृधिधृषिहृषिभ्यः ॥ २३ ॥ पुरुः । भिदुः । विधुः । गृधुः । धृषुः । हृषुः ॥ २३ ॥

कृग्रोरुच्च ॥ २४ ॥ कुरवः । गुरुः ॥ २४ ॥

अपदुःसुषु स्थः ॥ २५ ॥ अपष्ठुः । दुष्ठुः । सुष्ठुः ॥ २५ ॥

रपेरिच्चोपधायाः ॥ २६ ॥ रिपुः ॥ २६ ॥

अर्जिदृशिकम्यमिपंसिबाधामृजिपशितुक्धुक्दीर्घहकाराश्च॥२७॥ ऋजुः । पशुः । कन्तुः । अन्धुः । पांसुः । बाहुः ॥ २७ ॥

(२३) एभ्यः कुः । पिपर्त्ति पालयति पूरयति वा स पुरुः । बहुरिन्द्रियं वा भिनत्तीति भिदुर्वज्रं वा । विध्यति दुर्गन्धं दिवसं वेति विधुः कर्पूरं चन्द्रमा वा । व्यधिर्ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम् । गृध्नोत्यभिकाङ्क्षते येन स गृधुः कामो वा । धृष्णोति प्रगल्भो भवतीति धृषुर्दक्षः । हृष्यति स हृषुर्हर्षकः । दृशीति पाठान्तरे दृशुर्दर्शकः ॥

(२४) यः करोति येन वा स कुरुः । कुरवो राजानो वा । गृणात्युपदिशति वेद-शास्त्रविद्यामाचारं च स गुरुः सर्वेषां गुरुत्वादीश्वरः । आचार्यः पिता वा ॥

(२५) अप, दुः, सु, इत्येतेषूपपदेषु स्थाधातोः कुः । अपतिष्ठतीत्यपष्ठुर्वामभागः प्रतिकूलः पदार्थो वा निन्दितस्तिष्ठतीति दुष्ठुरविनीतः । सुतिष्ठतीति सुष्ठु शोभ-नम् । सर्वत्र सुषामादित्वात् षत्वम् ॥

(२६) अनिष्टं रपति वदतीति रिपुः शत्रुः । चकारग्रहणात्कुप्रत्यये परे इका-रादेश एव समुच्चीयते ॥

(२७) कुप्रत्यये सति—अर्ज्यादिप्रकृतीनामृज्यादय आदेशा भवन्ति अर्जयति संचिनोति गुणानिति, ऋजुः कोमलो वा । पश्यति सर्वमिति पशुः पश्यन्ति येन वा स पशुरग्निः । पश्यति जानाति स्वार्थमिति पशुर्गवादिः । कमधातोस्तुक् । कामयन्ते यं स कन्तुः कामी वा । अमधातोर्धुक् । अमति रुजति गच्छति वेत्यन्धुः कूपो वा । अस्मिन् सूत्रे चकारग्रहणाद्बहुलवचनाद्वा अमधातोर्बुगागमोऽपि भवति अमन्ति गच्छन्ति चेष्टन्ते प्राणिनो येन तदम्बु जलम् । पंसयति नष्टमिव भवतीति पांसुर्धूलिर्वा पंसधातोर्दीर्घः चेनार्थं चिरकालात्संचितं गोमयं वा । इत्याद्येष्वर्थेषु पांशुरिति तालव्यान्तोऽपि शब्दो दृश्यते । बाध्यन्ते विलोड्यन्ते पदार्था याभ्यां तौ बाहू भुजौ । प्रायेणा यं द्विवचनान्तः ॥

प्रथिम्रदिभ्रस्जां संप्रसारणं सलोपश्च ॥ २८ ॥ पृथुः । मृदुः । भृगुः ॥ २८ ॥

लंघिवंह्योर्नलोपश्च ॥ २९ ॥ लघुः । बहुः ॥ २९ ॥

ऊर्णोतेर्नुलोपश्च ॥ ३० ॥ ऊरुः ॥ ३० ॥

महति ह्रस्वश्च ॥ ३१ ॥ उरु ॥ ३१ ॥

श्लिषेः कश्च ॥ ३२ ॥ श्लिकुः ॥ ३२ ॥

आङ्परयो खनिशृभ्यां डिच्च ॥ ३३ ॥ आखुः । परशुः ॥३३॥

हरिमितयोर्द्रुवः ॥ ३४ ॥ हरिद्रुः । मितद्रुः ॥ ३४ ॥

---

(२८) प्रथ्यादिभ्यः कुः प्रत्ययस्तस्मिन् सति प्रथिम्रद्योः संप्रसारणं सलोपश्च प्रथते कीर्त्तिः वा विस्तारयति स पृथूराजविशेषो विस्तीर्णः पदार्थो वा । म्रदते म्रदितुं शक्यते स मृदुर्मार्दकः । कोमलं वा । भृज्जति तपसा शरीरमिति भृगुर्ऋषिः प्रतापो वा । न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वम् ॥

(२९) लंघिवंहिभ्यां कुरनयोर्नलोपश्च । लङ्घति गन्तुं शक्नोतीति लघुः स्वल्पो वा । अस्यैव, वालमूललघ्वसुरालमङ्गुलीनां वालोरत्वमापद्यत इति वार्त्तिकेन रेफः । रघू राजविशेषः । वंहतेवर्धतेऽन्येभ्य इति बहुः । प्रचुरः संख्या वा ॥

(३०) ऊर्णोत्याच्छादयति यां सा ऊरुर्जङ्घा । कुप्रत्यये नुभागलोपः ॥

(३१) ऊर्णुधातोः कुप्रत्ययस्तस्मिन् नुभागलोप ऊकारस्य ह्रस्वत्वं च ऊर्णोत्याच्छादयत्यल्पानित्युरु महत् ॥

(३२) श्लिष्यति पदार्थैः सह संबध्यते स श्लिकुः । परवशो ज्योतिषं वा ॥

(३३) आसमन्तात्खनति भूमिमित्याखुर्मूषको वराहो वा परान् शत्रून् शृणाति हिनस्ति येन स परशुः । शस्त्रभेदः कुठारो वा पृषोदरादित्वादकारलोपे पूर्वार्थ एव पर्शुरपि दृश्यते ॥

(३४) हरिणाऽश्वेन वा द्रवति गच्छतीति हरिद्रुः । दारु हरिद्रा वा । मितं परिमितं द्रवतीति मितद्रुः शोभनगमनो वा ॥

शते च ॥ ३५ ॥ शतद्रुः ॥ ३५ ॥

खरुशङ्कुपीयुनीलङ्गुलिगु ॥ ३६ ॥

मृगय्वादयश्च ॥ ३७ ॥ मृगयुः । देवयुः । मित्रयुः ॥ ३७ ॥

मन्दिवाशिमथिचतिचङ्क्यङ्किभ्य उरच् ॥ ३८ ॥ मन्दुरा । वाशुरा । मथुरा । चतुरः । चङ्कुरः । अङ्कुरः ॥ ३८ ॥

(३५) शतधा बहुप्रकारैर्द्रवति गच्छतीति शतद्रुः । नदीभेदो गङ्गा वा । अत्र बाहुलकात्केवलादपि द्रुधातोः कुप्रत्ययो दृश्यते । यं द्रवन्ति कार्यार्थं प्राणिनः प्राप्नुवन्तीति स द्रुर्वृक्षः शाखा वा । द्रवः शाखा अस्मिन् सन्तीति द्रुमो वृक्षः (द्युद्रुभ्यां मः) इति सूत्रेण मत्वर्थीयो मः प्रत्ययः ॥

(३६) खरु इत्येवमादयश्शब्दाः कुप्रत्ययान्ता निपात्यन्त । खनधातोः कुर्नस्य रः । खनति शरीरमिति खरुः कामः । दन्तः संहर्त्ता दर्पोऽश्वो वा । श्वेतार्थे तु वाच्यवत् यथा खरुरियं ब्राह्मणी । खरु कुलम् खरुः पुमान् । यं दृष्ट्वा शङ्कते सन्दिग्धो भवतीति तत् शंकु विषम् । कीलं शस्त्रं संख्या वृक्षभेदो जलभेदः पापं स्थाणुर्वा । पिबति पाति वा स पीयुः कालः काको वा । कुप्रत्यये धातोरीकारादेशो युगागमश्च । नितरां लङ्गति गच्छतीति नीलङ्गुः । क्रिमिजातिर्भ्रमरः पुष्पं वा । कुप्रत्यये उपसर्गस्य दीर्घत्वम् । सर्वत्र लगति संगच्छते तत् लिगु चित्तं वा लगे धातोरुपधाया इत्वम् । बाहुलकात् खंजति गमने विकलो भवतीति पङ्गुः । गतिहीनो वा कुप्रत्यये खञ्जधातोः पङ्गादेशः । स्वगन्धेनान्यगन्धान् हन्तीति हिङ्गुर्वैणिग्द्रव्यम् ॥

(३७) मृगयुप्रभृतयः कुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते मृग,देव,मित्र,कुमार,अध्वरइत्येतेषूपपदेषु या प्रापण इत्यस्मात् कुप्रत्ययो भवति । मृगान् याति प्राप्नोतीति मृगयुर्व्याधः देवान् विदुषो याति स देवयुर्धार्मिकः । मित्रान् यातीति मित्रयुर्लोकव्यवहारवित् । कुमारावस्थां यातीति कुमारयुः राजपुत्रो वा । अध्वरं यज्ञं यातीत्यध्वर्युर्याजकः । अध्वरस्यान्त्यलोपश्च बहुलवचनात् कोहयति विस्मापयतीति कुहुः । यस्यां चन्द्रो न दृश्यते साऽमावास्या वा कुहूः पण्डति गच्छतीति पाण्डुः रङ्गविशेषो राजविशेषो वा । पीलति प्रतिष्टभ्नोति निरुणद्धि जीवानिति पीलुर्हस्ती । वृक्षः काणुः परमाणवः पुष्पाणि वा । मंजिः सौत्रो धातुस्तस्मात्कुः । मंजति चित्तं प्रसादयतीति मंजु शोभनम् । एवं निघण्टु पलाण्डु कर्करेटु करेटु डमरु प्रभृतयः शब्दा अप्यनेनैव दृष्टव्या आकृतिगणत्वादस्य ॥

(३८) मन्दते स्तौति माद्यति वा यस्यां सा मन्दुरा । अश्वशाला वा । वाश्यते शब्दं करोतीति वाशुरा रात्रिर्वा । मथति विलोडयतीति मथुरा नगरीवा ।

व्यथेः सम्प्रसारणं धः किच्च ॥ ३८ ॥ विधुरः ॥ ३८ ॥

मकुरदर्दुरौ ॥ ४० ॥

मद्गुरादयश्च ॥ ४१ ॥ मद्गुरः । कर्बुरः । बन्धुरः । कुक्कुरः । कुकुरः ॥ ४१ ॥

असेरुरन् ॥ ४२ ॥ असुरः ॥ ४२ ॥

चतते याचते स चतुरो दक्षः कुशलो वा । चङ्क इति सौत्रो धातुः । चङ्कति सर्वतो भ्रमति येन स चङ्कुरो रथो वा । अङ्क्यते । लक्ष्यते निःसृतं दृश्यते सोऽङ्कुरो बीजोत्पादो वा । अत्र खर्जूरादिवक्ष्यमाणगणेन, । ऊर प्रत्ययेऽङ्कूर इत्यपि । अर्थः स एव ॥

(३८) व्यथति बिभेति यस्मात् स विधुरोऽत्यन्तवियोगः शरीरत्यागो वा । संप्रसारणे सति गुणनिषेधाय कित्वम् । बाहुलकात्थकारस्य धकारो न तेन विथुर इत्यपि सिद्धं भवति । विथुरश्चौरो दुष्टो वा ॥

(४०) मकुरदर्दुरावुरच्प्रत्ययान्तौ निपात्येते । मङ्कतेऽलङ्करोति येन स मकुरो दर्पणो वा । मङ्कधातोर्नलोपः । बाहुलकाद्धातोरकारस्योकारे कृते दर्पणार्थ एव मुकुर इत्यपि सिद्धम् । दृणाति विदारयत्युष्णमिति दर्दुरो मेघो मण्डूको वाद्यभेदः पर्वतभेदो वा।उरचि दृधातोर्द्विर्वचनमभ्यासस्य रुगागमो धातोष्टिलोपश्च निपात्यते॥

(४१) मद्गुरप्रभृतयः शब्दा उरजन्ता निपात्यन्ते । माद्यति हृष्यतीति मद्गुरो मत्स्यभेदो वा धातोर्गुगागमः कवतेर्वर्णविशेषो भवतीति स कर्बुरः श्वेतो दुष्टो वा धातोरुमागमः । बध्नाति मार्दवेन स बन्धुरो नम्रः सुन्दरो वा । खर्जूरादित्वादूरप्रत्ययेपि बन्धूर उक्तार्थ एव । चिन्वन्त्येकीकुर्वन्ति याँस्ते चिकुराः । अत्र धातोः कुगागमः । कोकत आदत्ते परपदार्थमिति कुक्कुरः कुकुरः श्वा । एकार्थौ । विकल्पेनात्र कुगागमो निपातनम् अतति निरन्तरं गच्छतीति, आतुरोऽशान्तः । धातोरादेर्दीर्घः । वान्ति मृगान् प्राप्नुवन्ति यया सा वागुरा मृगबन्धनी मृगबन्धनार्थंजालम् अत्र धातोर्गुगागमो निपातनम्।शक्नोति तरितुमिति शकुलो मत्स्यः।वङ्कतेकुटिलो भवतीति वकुलो वृक्षभेदो वा । अत्रोभयत्र प्रत्ययरेफस्य लत्वम् । वङ्केर्नलोपश्च ॥

(४२) अस्यति प्रक्षिपति धर्मं शुभगुणांश्च सोऽसुरः । मेघो दुर्जनादिर्वा । नित्कारणमाद्युदात्तस्वरार्थम् ॥

मसेश्च ॥ ४३ ॥ मसुरा ॥ ४३ ॥

शावशेराप्तौ ॥ ४४ ॥ श्वशुरः ॥ ४४ ॥

अविमह्योष्टिषच् ॥ ४५ ॥ अविषः । महिषः ॥ ४५ ॥

अमेर्दीर्घश्च ॥ ४६ ॥ आमिषम् ॥ ४६ ॥

रुहेर्वृद्धिश्च ॥ ४७ ॥ रौहिषम् ॥ ४७ ॥

तवेर्णिद्वा ॥ ४८ ॥ ताविषी । तविषी ॥ ४८ ॥

नञि व्यथेः ॥ ४९ ॥ अव्यथिषः ॥ ४९ ॥

किलेर्बुक्च ॥ ५० ॥ किल्बिषम् ॥५० ॥

(४३) मस्यन्ति सुष्ठु तया परिणमन्ते ते मसुरा द्विदलविशेषाः । अत्रैव पंचमपादे मसधातोरूरन् प्रत्यये मसूर इत्यपि सिद्धम् । एकार्थाविमौ द्विदलान्नेषु मसूर इति प्रसिद्धम् ॥

(४४) शु इति शीघ्रार्थवाचिन्युपपदे आप्तौ गम्यमानायां शुङ्धातोरुरन् शु शीघ्रमश्नत आप्नोति जामाता यं स श्वशुरः । दम्पत्योः पिता ॥

(४५) यत्रावन्ति नद्यो गच्छन्ति स अविसः समुद्रः।महति पूजयति स्वपुरुषार्थेन इति महिषो महान् राजा वा तद्योगान्महिषी राज्ञी पशुविशेषो वा । अवति प्रीणाति प्राणिन इत्यविषी नदी वा ॥

(४६) टिषच् । असन्ति गच्छन्ति येन तदामिषं मांसं वा।अथवाऽमन्ति रोगिणो भवन्ति येन भक्षितेन तदामिषम् । इत्येकार्थः ॥

(४७) टिषच् रुहन्त्युत्पद्यन्ते यानि तानि रौहिषाणि तृणानि । रौहिषो मृगभेदो वा ॥

(४८) तव इति सौत्रो धातुस्तस्माट्टिषच् णिद्विकल्पे न भवति तवतीति ताविषी तविषी नदी बलं सेना भूमिर्वा ॥

(४९) न व्यथत इत्यव्यथिषः समुद्रः सूर्यो वा । अव्यथिषी पृथिवी रात्रिर्वा ॥

(५०) किलति क्रीडति विचारशून्यतया कार्येषु प्रवर्त्तते यत् तत् किल्बिषं पापम्

इषिमदिमुदिखिदिछिदिभिदिमन्दिचन्दितिमिमिहिमुहिमुचिरुचिरुधिबन्धिशुषिभ्यः किरच् ॥ ५१ ॥ इषिरः । मदिरा । मुदिरः । खिदिरः । छिदिरः । भिदिरम् । मन्दिरम् । चन्दिरम् । तिमिरम् । मिहिरः । मुहिरः । मुचिरः । रुचिरम् । रुधिरम् । बधिरः । शुषिरम् ॥ ५१ ॥

अशेर्नित् ॥ ५२ ॥ अशिरः ॥ ५२ ॥

अजिरशिशिरशिथिलस्थिरस्फिरस्थविरखदिराः ॥ ५३ ॥

(५१) इष्यादि षोडश धातुभ्यः किरच् । इच्छन्तीष्टं साध्नुवन्त्यनेनेति, इषिरोऽग्निः । माद्यति मत्तो भवति यया सा मदिरा सुरा मद्यम् । मोदतेऽसौ मुदिरः कामुको वा । मोदन्तेऽनेनेति मुदिरो मेघः । खिद्यति येन स खिदिरः । चन्द्रमाः वा छिनत्ति येन स छिदिरोऽसिः । कुठारो वा । भिनत्ति येनेति भिदिरं वज्रम् । मदन्ते स्तुवन्ति स्वपन्ति वा यस्मिंस्तन्मन्दिरं गृहं नगरं वा । चन्दन्त्याह्लादयन्ति येन स चन्दिरश्चन्द्रमा हस्ती वा । तेमत्यार्द्रीभवत्यस्मिन् तत्तिमिरम् । नेत्ररोगो वा । यो मेहयति सेचयति पृथिवीं मेघजलेन स मिहिरः । सूर्य्यो वा । मुह्यति यस्मै वा यो मुह्यति स मुहिरः । कामः । पदार्थोऽसभ्यो जनो वा । यो मुंचति स्वपदार्थमन्येभ्यो ददाति स मुचिरो दानशीलो वा । यद्रोचते प्रीतिकरं भवति तद्रुचिरं शोभनम् । रुचिरं वस्त्रं रुचिरः पुत्रो रुचिरा कन्या वा । रुध्यते चर्म्मणा यत्तद्रुधिरं शोणितम् । बध्यते शब्दश्रवणान्निरुध्यते स बधिरोऽश्रोत्रविकलः । किलच् प्रत्ययस्य कित्त्वादनिदितामिति नलोपः । शुष्यन्ति पदार्था येन तच्छुषिरं छिद्रमाकाशो वा ॥

(५२) अश्नाति यः पदार्थान् सोऽशिरोऽग्निः । दुष्टतयाऽश्नाति वाऽशिरो दुर्जनः ॥

(५३) अजिरादयः सप्त किरच् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । अजन्ति गच्छन्ति यत्र तदजिरमङ्गनम् । गृहाग्रभागः । आंगन इति प्रसिद्धम् । शश्यति दिनाल्पत्वा च्छीघ्रं गच्छति तच्छिशिरमृतुर्हिमं शीतलं वस्तु वा । श्रथति विमुंचति पुरुषार्थमिति शिथिलः पुरुषः । शिथिला कन्या । शिथिलानि तृणानि मृदूनीत्यर्थः । धातोरुपधाया इत्वं रेफस्य लोपः प्रत्ययस्थस्य रेफस्य लत्वं च निपात्यते । गमनागमननिवृत्त्या तिष्ठतीति स्थिरं निश्चलम् । धातोराकारलोपः । स्फायते प्रवर्द्धते स स्फिरः । प्रभावो वा । आयभागस्य लोपो निपातनम् । गमनेऽसमर्थत्वात्तिष्ठतीति स्थविरः । वृद्धो भिक्षुको वा । धातोर्वुक् ह्रस्वत्वञ्च । खदति हिनस्तीति खदिरः । वृक्षभेदो वा ॥ बाहुलकात् । यः शेते स शिविरः । शेरते यस्मिन् तत् शिविरं स्थानं वा । शीङ् धातोर्वुक् ह्रस्वत्वञ्च ॥

सलिकल्यनिमहिभडिभण्डिशण्डिपिण्डितुण्डिकुकिभूभ्य इलच् ॥ ५४ ॥ सलिलम् । कलिलम् । अनिलः । महिलः । भडिलः । भण्डिलः । शण्डिलः । पिण्डिलः । तुण्डिलः । कोकिलः । भविलः ॥ ५४ ॥

कमेः पश्च ॥ ५५ ॥ कपिलः ॥ ५५ ॥

गुपादिभ्यः कित् ॥ ५६ ॥ गुपिलः । तिजिलः । गुहिलः ॥

मिथिलादयश्च ॥ ५७ ॥ मिथिला ॥ ५७ ॥

---

(५४) सल्यादिभ्य इलच् । सलति गच्छतीति सलिलम् । जलं वा । कलति संख्याति तत् कलिलम् । मिश्रं दुःखेन साध्यं गहनमिति वा । अनिति जीवति जीवयति वा स अनिलः । वायुर्वा । यो महयति यं महयन्ति येन वा मह्यते पूज्यते स महिलः पुमान् । महिलं स्थानम् । महिला स्त्री वा । बाहुलकादिलच् इकारस्यैकारे सति महेला स्त्री इत्यपि सिद्धं भवति । भड इति सौत्रो धातुः । भडति हिनस्तीति भडिलः शूरो वा । भडति परिचरति स्वामिनमिति भडिलः सेवकः । इत्यादि । भण्डयति परिहसति येन स भण्डिलः । कल्याणं वा । शण्डति रोगयुक्तो भवतीति शण्डिलः । ऋषिविशेषो वा यस्य गोत्रापत्यं शाण्डिल्य इति प्रसिद्धम् । पिण्डति सङ्घातं करोति स पिण्डिलः गणको वा । तुण्डति तोडति पृथक् करोति स तुण्डिलः । उन्नताभिजनो वा । कोकत आदत्तेऽसौ कोकिलः । पक्षिविशेषो वा । यो भवति स भविलः । भवितुं योग्यो वा । बाहुलकात् कुटति कौटिल्यं करोति स कुटिलः क्रूरकर्मा वा ॥

(५५) कमेरिलच् मस्य पः कामयतेऽसौ कपिलः । वर्णभेदो मुनिविशेषो वा ॥

(५६) इलचः कित्वं गुणनिषेधार्थम् । गोपायति रक्षति प्रजा इति गुपिलः । राजा वा । तेजते तीक्ष्णीकरोति वा तिज्यते सह्यते सर्वैः स तिजिलः । चन्द्रमा वा । पूजितुमर्हः योग्यः पूजिलो विद्वान् । शोषयति सर्वमिति शुषिलो वायुः । देवते प्रकाशयति धर्ममिति देविलो धार्मिको वा गूहते वृक्षैराच्छादितो भवतीति गुहिलं वनं वा ॥

(५७) मिथिलादय इलच् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते मथ्यते या सा मिथिला मथ्यन्ते शत्रवो यत्र सा मिथिला विदेहानां राज्ञां नगरी वा । अकारस्येत्वं निपात्यते । गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति यां सा गतिला वेत्रलता वा । गमेस्तकारान्तादेशः । या तकति कृच्छ्रेण जीवति सा तकिला । नलोपः । ओषधिर्वा । चमति भक्षयतीति चण्डिला काचिन्नदी वा । धातोर्डुगागमः । यः पथति निरन्तरं गच्छति स पथिलः पथिको वा । इत्यादि ॥

पतिकठिकुठिगडिगुडिदंशिभ्य एरक् ॥५८॥ पतेरः । कठेरः । कुठेरः । गडेरः । गुडेरः । दशेरः ॥

कुम्बेर्नलोपश्च ॥ ५९ ॥ कुबेरः ॥

शदेस्तश्च ॥ ६० ॥ शतेरः ॥

मूलेरादयः ॥ ६१ ॥ मूलेरः । गुहेरः । मुहेरः ॥

कबेरोतच् पश्च ॥ ६२ ॥ कपोतः ॥

भातेर्डवतुप् ॥ ६३ ॥ भवान् ॥

कठिचकिभ्यामोरन् ॥ ६४ ॥ कठोरः । चकोरः ॥

(५८) पतति गच्छतीति पतेरो गन्ता पक्षी वा कठति कृच्छ्रेण जीवतीति कठेरः। कारागारिको वा कठेरोऽपि कृच्छ्रजीवी पर्णासो वा । कटहर इति प्रसिद्धम् । गडति सिंचतीति गडेरः मेघो वा गुडति रक्षति स गुडेरो रक्षकः । दशति दंष्ट्राभ्यामिति दशेरः । हिंसको जीवो वा । अनुनासिकलोपः ॥

(५९) कुम्बत्यन्यानाऽऽच्छादयति कुबेरः । धनाढ्यश्चो विद्वान् वा इदित्वादप्राप्तनलोपः एरकि विधीयते ॥

(६०) शीयते शातयति दुःखाकरोतीति शतेरः शत्रुर्वा धातोर्दकारस्य तकारादेशः॥

(६१) मूलेरादय एरक्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । यो मूलति सर्वोपरि तिष्ठति स मूलेरः । भूपतिर्वा । गुधति सर्वतो वेष्टयतीति । गुधेरः । रक्षको वा । गृह्यते येन स गुहेरः लोहघातनो वा मुह्यति विचित्त इव भवतीति मुहेरो मूर्खः। मुह्यन्तेनेन वृषभादिरितिवा मुहेरःकणमर्दनादौ वृषभमुखबन्धनमृमुहेरइत्येव भाषायां प्रसिद्धम्॥

(६२) ओतच् प्रत्ययो बकारस्य पकारः कबते विचित्रवर्णो भवतीति कपोतः । पक्षिभेदो वा ॥

(६३) भाति दीप्तो भवति दीपयति वा स भवान् । सर्वनामवाचकः सर्वनामसंज्ञकश्चाऽयं शब्दः ॥

(६४) कठति कृच्छ्रेण जीवति येन स कठोरः कठिनः पूर्णो वा चकते तृप्यति स चकोरः पक्षिविशेषो वा ॥

किशोरादयश्च ॥ ६५ ॥ किशोरः । सहोरः ॥ ६५ ॥

कपिगडिगण्डिकटिपटिभ्य ओलच् ॥६६॥ कपोलः । गडोलः गण्डोलः । कटोलः । पटोलः ॥ ६६ ॥

मीनातेरूरन् ॥ ६७ ॥ मयूरः ॥ ६७ ॥

स्यन्देः संप्रसारणं च ॥ ६८ ॥ सिन्दूरम् ॥ ६८ ॥

सितनिगमिमसिसच्यविधाञ्क्रुशिभ्यस्तुन् ॥ ६९ ॥ सेतुः । तन्तुः । गन्तुः । मस्तुः । सक्तुः । ओतुः । धातुः । क्रोष्टुः ॥ ६९ ॥

(६५) किशोरादय ओरन् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । किंशृणाति हिनस्तीति किशोरः । अश्वशावको वा । किमो मलोपः शृधातोष्टिलोपश्च निपातनम् । सोढुंशीलः सहोरः साधुर्वा । गायति शब्दं करोतीति गौरः । अरुणे श्वेते पीते निर्मले च वाच्यलिङ्गः । गौरः कुमारः । गौरी कन्या । गौरं कुलम् । गौरं कमलम् । गौरः सर्षपः । इत्यादि । गैधातोराकारादेशे कृत ओरना सह वृद्ध्येकादेशः । आयादेशस्त्वात्वात्प्राप्तो भवति ।

(६६) कम्पते चलति स कपोलः । वदनैकदेशो वा । सूत्रे निर्देशादेव नलोपः । गडति सिंचति स गडोलः । गण्डति स गण्डोलः । वदनैकदेशो वा । गडोलगण्डोलौ गुडकपर्यायौ वा । कटति वर्षत्यावृणोति वा स कटोलः कटुरसो वा । पटति गच्छति स पटोलः । फलविशेषो वस्त्रविशेषो वा । बाहुलकात् कण्डति माद्यतीति कण्डोलः । चाण्डालो वा ॥

(६७) मीनाति हन्तीति मयूरः । पक्षिविशेषो वा । धातोर्गुणादेशः । बहुलवचनात् मीनातेरात्वनिषेधः ॥

(६८) स्यन्दते प्रस्रवति तत् सिन्दूरम् । रक्तचूर्णं वृक्षभेदो वा । इत्यादि । ऊरन् प्रत्यये यकारस्य संप्रसारणम् ॥

(६९) सिनोति बध्नातीति सेतुः । समुद्रो वा । (तितुत्रतथ०) इतीट्निषेधः । तनोति विस्तृणोतीति तन्तुः । सूत्रं वा । वरामुत्तमां विद्यां तनोति स वरतन्तुर्मुनिः । वरतन्तुना प्रोक्तो वारतन्तवीयो ग्रन्थः । गच्छतीति गन्तुः । पथिको वा । समन्तान्गच्छति भ्रमतीति, आगन्तुरभ्यागतो वा । मस्यति परिणमतीति मस्तुः । दधनि निस्सृतमुदकं वा । सच्यन्ते समवेताः क्रियन्ते ते सक्तवः । पक्वयवादिचूर्णं वा । अवति रक्षणादिकं करोति स ओतुः । विडालो वा । अव धातोर्ज्वरत्वर इति सूत्रेणोपधावकारयोरूठ् । दधाति धरति पोषति वा स धातुः । अश्मनो विकारः । सुवर्णादिः शरीरस्थवातादिर्वा । क्रोशत्याह्वयति रोदिति वा स क्रोष्टुः क्रोष्टा शृगालो वा ।

वसेरगारे णिच्च ॥ ७० ॥ वास्तु ॥ ७० ॥

पः किच्च ॥ ७१ ॥ पीतुः ॥ ७१ ॥

अर्त्तेश्च तुः ॥ ७२ ॥ ऋतुः ॥ ७२॥

कमिमनिजनिगाभायाहिभ्यश्च ॥ ७३ ॥ कन्तुः । मन्तुः । जन्तुः । गातुः । भातुः । यातुः । हेतुः ॥ ७३ ॥

चायः की ॥ ७४ ॥ केतुः ॥ ७४ ॥

आप्नोतेर्ह्रस्वश्च ॥ ७५ ॥ अप्तुः ॥ ७५ ॥

डुकृञः क्रतुः ॥ ७६ ॥ क्रतुः ॥ ७६ ॥

एधिवह्योश्च तुः ॥ ७७ ॥ एधतुः । वहतुः ॥ ७७ ॥

---

(७०) वसन्ति प्राणिनो यत्र तद्वास्तु गृहं वा । अगारादन्यत्र णित्त्वाभावः । वसन्ति येन तद्वस्तु द्रव्यं वा ॥

(७१) पिबत्युदकादिकं, पाति प्राणिनो रक्षति वा स पीतुः । अग्निः सूर्यो वा । कित्वादीत्वम् ॥

(७२) चकारात्तुः किद्भवति पुनः पुनरृच्छति गच्छत्यागच्छतीति ऋतुः । वसन्तादिः स्त्रीणां रजःपतनकालो वा ॥

(७३) कामयते येन स कन्तुः कामश्चित्तं वा मन्यते जानाति वा येन स मन्तुः । अपराधो वा । जन्यते शरीरादिधारणेन प्रादुर्भवति स जन्तुर्जीवः । गायति षड्जादिस्वरानाऽऽलापयति स गातुर्गायकः । गाते गच्छतीति गातुः पथिको वा । भृङ्गगन्धर्वौ वा । भाति प्रकाशयतीति भातुः सूर्यो वा । याति प्रापयतीति यातुः । अध्वगः कालो वा । हिनोति येन यो वा कार्यरूपेण वर्धतेऽसौ हेतुः कारणम् ॥

(७४)चायते पूजयति निशामयति श्रावयति वा स केतुः । ग्रहः पताका वा धूमकेतुरुत्पातः ॥

(७५) आप्नोति व्याप्नोति सर्वान् पदार्थानिति, अप्तुः । शरीरं वा तुप्रत्यये आप्लृ धातोर्ह्रस्वत्वम् ॥

(७६) डुकृञ् धातोः क्रतुः प्रत्ययो भवति यः क्रियते यया करोति वेति क्रतुः । प्रज्ञा यज्ञो वा कित्वाद् यण् गुणाऽभावश्च ॥

(७७) एधते वर्द्धतेऽसावेधतुः । पुरुषो वा । वहति भारमिति वहतुः । अनड्वान् वा । चित्करणमन्तोदात्तार्थम् ॥

जीवेरातुः ॥ ७८ ॥ जीवातुः ॥ ७८ ॥

आत्कन् वृद्धिश्च ॥ ७९ ॥ जैवातृकः ॥ ७९ ॥

कृषिचमितनिधनिसर्जिखर्जिभ्य ऊः स्त्रियाम् ॥ ८० ॥ कर्षूः। चमूः । तनूः । धनूः । सर्जूः । खर्जूः ॥ ८० ॥

मृजेर्गुणश्च ॥ ८१ ॥ मर्जूः ॥ ८१ ॥

खडेर्डुङ्वा ॥ ८२ ॥ खड्डूः । खडूः ॥ ८२ ॥

वहेर्धश्च ॥ ८३ ॥ वधूः । ८३ ॥

कषेश्छश्च ॥ ८४ ॥ कच्छूः ॥ ८४ ॥

णित्कशिपद्यर्त्तेः ॥ ८५ ॥ काशूः । पादूः । आरूः ॥ ८५ ॥

अणो डश्च ॥ ८६ ॥ आडूः ॥ ८६ ॥

---

(७८) जीव्यते येन यो वा जीवति स जीवातुः । जीवनमौषधं वा ॥

(७९) जीवधातोरात्कन् प्रत्ययस्तस्मिन् सति वृद्धिश्च भवति । यो जीवति पूर्णावस्थापर्य्यन्तं स जैवातृक आयुष्मान् निशाकरो वा ॥

(८०) कृषादिभ्य ऊः प्रत्ययः कर्षत्याकर्षति पदार्थानिति कर्षूः शुष्कगोमयोऽग्निर्नदी वा । चमति भक्षयतीति चमूः । शत्रुभक्षिणी सेना वा । तनोति कार्याणि येन सा तनूः शरीरं वा दधति धनमर्जयति स धनूः शस्त्रं वा । सर्जति, उपार्जति कार्याणीति सर्जूः वैश्यो वा । खर्जति पीडयतीति खर्जूः । कंडूर्वा ॥

(८१) मार्ष्टि शोधयतीति मर्जूः । शुद्धिर्वा । ऊप्रत्ययस्याकित्त्वान्नित्यापि प्राप्ता वृद्धि र्गुणेन बाध्यते ॥

(८२) खडति भिनत्तीति खड्डूः । खडूः । बाहुअङ्घयोराभूषणं मृतशय्या वा ।

(८३) वहति सुखानि प्रापयतीति वधूः । नवोढा स्त्री वा ॥

(८४) कषति हिनस्ति दुःखयतीति कच्छूः पामा वा । खाज इति प्रसिद्धा । षकारस्य छकारः ॥

(८५) काश्यादिभ्य ऊ णिद्भवति । काष्टे गच्छति शास्ति वेति काशूः । विकलधातुर्जनः शक्तिर्वा पद्यन्ते गच्छन्ति यया सा पादूः। उपानही वा ऋच्छति प्राप्नोति स आरूः पिङ्गलो वा ॥

(८६) अणति शब्दयतीति, आडूः । णस्य डः । जलगामि द्रव्यं वा ॥

लम्बेर्नलोपश्च ॥ ८७ ॥ अलाबूः ॥ ८७ ॥
के श्र एरङ् चास्य ॥ ८८ ॥ कशेरूः ॥ ८८ ॥
त्रो दुट् च ॥ ८९ ॥ तर्दूः ॥ ८९ ॥
दरिद्रातेर्यालोपश्च ॥ ९० ॥ दर्द्रूः ॥ ९० ॥
नृतिशृध्योः कूः ॥ ९१ ॥ नृतूः । शृधूः ॥ ९१ ॥
ऋतेरम् च ॥ ९२ ॥ रतूः ॥ ९२ ॥
अन्दूदृम्भूजम्बूकम्बूकफेलूकर्कन्धूर्दिधिषू ॥ ९३ ॥

---

(८७) ऊप्रत्यये लम्बधातोर्नलोपो भवति । न लम्बतेऽधो न स्रवति गच्छति सा अलाबूः । तुम्बी वा ॥

(८८) ककारोपपदात् शृ धातोरूप्रत्ययस्तस्मिन् प्रकृतेरङादेशः । कष्टे शास्ति स कशेरूः । तृणकन्दं वा । बहुलवचनादूप्रत्ययस्य ह्रस्वे कृते कशेरुरिति ह्रस्वान्तोऽपि दृश्यते ॥

(८९) तरति येन यया वा स तर्दूः दारुहस्तः पुरुषो यष्टिर्वा । तृधातोर्दुगागमः

(९०) दरिद्राधातोरूप्रत्यये (इ, आ) इत्येतयोर्वर्णयोर्लोपः । दरिद्राति दुर्गतिं करोतीति दर्द्रूः कुष्ठभेदो वा । मृगय्वादित्वात् (रि, आ) इत्यनयोर्लोपे दद्रुरित्यपि सिद्धम् । अत्र सूत्रेऽपि (रि आ) इत्येतयोर्लोपे दद्रूरिति भवति ॥

(९१) नृत्यतीति नृतूर्नर्तकः शर्धते कुत्सितं शब्दयतीति शृधूः अपानवायुर्वा । प्रत्ययस्य कित्वाद् गुणनिषेधः ॥

(९२) ऋत इति सौत्रो धातुः ऋतीयते घृणां करोतीति रतूः सत्यं दिव्यनदी वा । धातोरमागमः ॥

(९३) अन्दूप्रभृतयः शब्दाः कूप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । अन्दति बध्नाति येन यया वा सा अन्दूः हस्तिबन्धनी शृङ्खला वा जंजीर इति प्रसिद्धा । दृम्फत्युत्कृष्टं क्लेशं ददातीति दृम्फूः सर्पजातिर्वा । जमन्ति भक्षयन्ति या सा जम्बूः वृक्षविशेषजातिर्वा । धातोर्बुगागमः । बाहुलकादूप्रत्ययस्य ह्रस्वे कृते जम्बुरित्यपि दृश्यते । कामयते स कम्बूः परद्रव्यापहारी वा । धातोर्बुक् । कफं श्लेष्माणं लात्याददातीति कफेलूः । श्लेष्मविशेषो वा । एकारान्तत्वं कफशब्दस्य निपातनम् कर्कं कण्टकं दधाति धरतीति कर्कन्धूः । बदरीफलं वा । कित्त्वादाकारलोपः । उपपदस्य नुगागमो निपातनम् । दिधिं धैर्यमिन्द्रियदौर्बल्यात्स्यति त्यजतीति दिधिषूः । पुनर्भूर्वा निपातनात् षत्वम्

मृग्रोरुतिः ९४ ॥ मरुत् । गरुत् ॥ ९४ ॥

ग्रो मुट्च ॥ ९५ ॥ गरुत् ॥ ९५ ॥

हृषेरुलच् ॥ ९६ ॥ हृषुलः ॥ ९६ ॥

हृसृरुहियुषिभ्य इतिः ॥ ९७ ॥ हरित् । सरित् । रोहित् । योषित् ॥ ९७ ॥

ताडेर्णिलुक् च ॥ ९८ ॥ तडित् ॥ ९८ ॥

शमेर्ढः ॥ ९९ ॥ शण्ढः ॥ ९९ ॥

कमेरठः ॥ १०० ॥ कमठः ॥ १०० ॥

रमेर्वृद्धिश्च ॥ १०१ रामठम् ॥ १०१ ॥

शमेः खः ॥ १०२ ॥ शङ्खः ॥ १०२ ॥

---

(९४) म्रियते मारयति वा स मरुत् मनुष्यजातिः पवनो वा । गिरति निगलतीति गरुत् पक्षी वा ॥

(९५) गिरति येन तत् गरुत् सुवर्णं तृणजातिभेदो वा ॥

(९६) हृष्यति तुष्टो भवतीति हृषुलः । मृगः कामी वा । बाहुलकात् चटति वर्षत्यावृणोति वा स चटुलः शोभनो वा ॥

(९७) आहरति गृह्णाति द्रव्यमिति हरित् दिक् वर्णस्तृणमश्वविशेषो वा । सरति गच्छतीति सरित् नदी वा । रोहति प्रादुर्भवतीति रोहित् लताविशिष्टा हरिणी वा । युष इति सौत्रो धातुः अथवा जुष इत्यस्य वर्णविकारेण पाठः । जुष्यते सेव्यते प्रीणयति वा सा योषित् स्त्री वा ॥

(९८) ताडयति पीडयतीति तडित् । विद्युद्वा । प्रत्ययलक्षणेन णिलोपेऽपि वृद्धिः स्यादिति लुग्विधीयते ॥

(९९) शाम्यति शान्तो भवतीति शण्ढः स्वतंत्रो वृषभः । सांड इति प्रसिद्धः । नपुंसकं वा ॥ ॥

(१००) कामयतेऽसौ कमठः कच्छपो वा । कमठमिति भाण्डभेदो वा । बाहुलकात् । जीर्यत्यवस्थाहीनो भवतीति जरठः पाण्डुरङ्गो वा । शमठः। शान्तो वा

(१०१) रमतेऽसौ रामठं हिंगु वा अठ प्रत्यये रमधातोर्वृद्धिः ॥

(१०२) शाम्यतीति शङ्खः । निधिभेदः । जलजं ललाटास्थि वा । बहुलवचनात् खकारस्येत्संज्ञा न भवति ॥

कणेष्ठः ॥ १०३ ॥ कण्ठः ॥ १०३ ॥

कलस्तृपश्च ॥ १०४ ॥ तृपला ॥ १०४ ॥

शमेर्वश्च ॥ १०५ ॥ शवलः ॥ १०५ ॥

वृषादिभ्यश्चित् ॥ १०६ ॥ वृषलः ॥ १०६ ॥

कमेर्वुक् ॥ १०७ ॥ कम्बलः ॥ १०७ ॥

लङ्गेर्वृद्धिश्च ॥ १०८ ॥ लाङ्गलम् ॥ १०८ ॥

(१०३) कणति येन शब्दं करोतीति कण्ठः। गलो ध्वनि र्वा ॥

(१०४) तृपधातोः कलप्रत्ययः। तृप्यति यया सा तृपला लता वा। अत्र सूत्रे पकारग्रहणात् तृफधातोरपि कलप्रत्ययस्तेन तृफला इत्यपि सिद्धम्। तृफला त्रिफला इत्योषधिविशेषपर्यायौ। वाहुलकात् काम्यतेऽसौ कमलः। कमलं पद्मं वा। उदकं ताम्रमौषधं च। मृगभेदः कमलः। कमला श्रीपतिप्रिया वा। मण्डति भूषयति प्रतिपादयति वा स मण्डलः। मण्डलं चक्राकारं देशभेदो बिम्बं कदम्बः कुष्ठं यज्ञभेदः श्वा च। कुण्डति दहतीति कुण्डलम्। वलयं पाशं कर्णभूषणं वा। पटति गच्छतीति पटलः। अक्षिरोगस्तिलकं वा। इत्यादि। छ्यति छिनत्ति पराऽभिप्रायमिति छलम् ॥

(१०५) शपत्याक्रोशति स शवलः वर्णभेदो वा ॥

(१०६) वृषादिधातुभ्यः कलप्रत्ययश्चिद्भवति। वर्षति सिञ्चतीति वृषलः शूद्रो वा। तस्य स्त्री वृषली। कोशति श्लिष्यति कोशति व्यवहर्त्तुं जानातीति वा कुशलो निपुणः कुशलं क्षेममितिवा। वाहुलकाद् गुणे कोशल इति देशभेदो वा। पलति गच्छति येन तत् पललम्। तिलचूर्णं पङ्कं मांसं वा। दीव्यत्यधर्मिणो विजिगीषतीति देवलो धार्मिकः। सरति सर्वत्र गच्छतीति सरलः। अकुटिल उदारो वा। धावति गच्छति शुद्धो भवति वा स धवलः। श्वेतः शुद्धो वा। धावुधातोर्बाहुलकाद्ध्रस्वत्वम्। वृषादेराकृतिगणत्वात् केवलकवलतरलानलजम्भलपेशलमर्दलादयोऽपि शब्दादृष्टव्या मुस्यति खण्डयति मोषयति चोरयति वा स मुसलः। मुषलो वा। मुशलं मुसलमिति लोहाग्रभागि कुट्टनसाधनम्। मुषलश्चौरो वा ॥

(१०७) काम्यतेऽभीप्स्यते यः स कम्बलः। ऊर्णाविकार उदकं वा। कमधातोः कलप्रत्यये वुक् ॥

(१०८) लङ्गन्ति प्राप्नुवन्ति,अन्नादिकं येन तल् लांगलम्। हलं वा। वहुलवचनात्। कान्दल्याशयति सा कदली। वृक्षभेदः केला इति प्रसिद्धा वा। वाहुलकाद्धात्वोर्नलोपः॥

कुटिकशिकौतिभ्यो मुट् च ॥ १०९ ॥ कुट्मलम् । कश्मलम् । कोमलम् ॥ १०९ ॥

मृजेष्टिलोपश्च ॥ ११० ॥ मलम् ॥ ११० ॥

चुपेरच्चोपधायाः ॥ १११ ॥ चपलम् ॥ १११ ॥

शकिशम्योर्नित् ॥ ११२ ॥ शकलम् । शमलम् ॥ ११२ ॥

छो गुग्घ्रस्वश्च ॥ ११३ ॥ छगलः ॥ ११३ ॥

अमन्ताड् डः ॥ ११४ ॥ दण्डः । रण्डा । खण्डः । मण्डः । वण्डः । अण्डः । षण्डः । गण्डः । चण्डः । पण्डः । पण्डा ॥ १०४ ॥

(१०९) कुटादिभ्यो विहितस्य कलप्रत्ययस्य मुट् । कुटतीति कुट्मलः । बाहुलकात् । कुण्डति दहतीति कुड्मलः । किंचिद्विकसितपुष्पनाम्नो वा । कष्टे गच्छति शास्ति वा स कश्मलःकश्मलं कल्मषं पापं वा।कौतिशब्दयतीति कोमलः। कोमलं मृदु जलं वा । बाहुलकात् । पिङ्क्ते वर्णयतीति पिंगलः । वर्णभेदो वा ।

(११०) यन् मृज्यते शोध्यते तन्मलम् । पुरीषं पापम् । कृपणः पुरुषो वा । मृजधातोष्टिलोपः ॥

(१११) चोपति मन्दं मन्दं गच्छति स चपलः । चणिकं शीघ्रं वा । चपला पिप्पली विद्युद्वा । धातोरुकारस्याकारादेशः ॥

(११२) शक्नोतीति शकलः । खण्डो मत्स्यभेदो वा । शाम्यतीति शमलः । अशुद्धं वा ॥

(११३) च्छ्यति छिनत्तीति छगलः । छागो वर्करो वा । धातोर्गुगागमो ह्रस्वश्च ॥

(११४) अमिति प्रत्याहारग्रहणम् । अ, म, ङ, ण, न् इत्येते वर्णा अन्तेऽस्य तस्माड् डः प्रत्ययो भवति बहुलवचनादित्संज्ञानिषेधः । दाम्यन्त्युपशाम्यन्त्यनेन स दण्डः । यष्टिभेदो वा । रमतेऽसौ रण्डा विधवा नारी वा । खण्डतेऽवदीर्यतेऽसौ खण्डः। विभागो मिष्टभेदो वा। खांड इति प्रसिद्धः भिन्नः पदार्थो वा। मन्यते जानातीति मण्डः । मण्डा धात्री समाख्याता मण्डं पक्वौदनोदकम् । वनति शब्दयति संभजति वा । स वण्डः ।छिन्नहस्तको वा। अमन्ति संप्रयोगं प्राप्नुवन्ति येन सोऽण्डः प्राण्यङ्गावयवो वा। सनोति ददातीति षण्डः । नपुंसको वनं गोपः सङ्घातो वा गच्छतीति गण्डः।कपोलव्याधिविशेषो वा । चणति ददातीति चण्डः हिंसकस्तीव्रो वा। कोपना स्त्री चण्डी।चडिकोप इत्यस्य प्रजन्तोपि चण्डः क्रोधी । पणयति व्यवहरति स्तौति वा स पण्डः । नपुंसकः पण्डा बुद्धिर्वा । फणति गच्छत्यनेनेति फण्डः । पन्था फण्डमुदरं वा ॥

क्वादिभ्यः कित् ॥ ११५ ॥ कुण्डम् । काण्डम् । गुडः । घुण्डः ॥११५॥

स्थाचतिमृजेरालज्वालञालीयचः ॥ ११६ ॥ स्थालम् । चात्वालः मार्जालीयः ॥ ११६ ॥

पतिचण्डिभ्यामालञ् ॥ ११७ ॥ पातालम् । चण्डालः ॥ ११७ ॥

तमिविशिविडिमृणिकुलिकपिपलिपञ्चिभ्यः कालन् ॥ ११८ ॥ तमालः । विशालः । विडालः । मृणालम् । कुलालः । कपालम् । पलालम् । पञ्चलाः ॥ ११८ ॥

---

(११५) कवर्गादिधातुभ्यो डः किद् भवति । कुणति शब्दयत्युपकरोति वा स कुण्डः । पत्यौ जीवति पुरुषान्तरादुत्पन्नः पुत्रो जलाधारविशेषो वा । कुण्डा कुण्डिका वा । गवतेऽव्यक्तशब्दं करोतीति गुडः । गोल इक्षुपाको वा । घोणते भ्राम्यतीति घुण्डः । भ्रमरो वा । काम्यते जनैस्तत्काण्डम् । ग्रंथैकदेशः । परिमाणविशेषो वाणोऽवसरो वा ॥

(११६) तिष्ठन्त्यस्मिन् तत्स्थालम् । पात्रभेदो वा थाल इति प्रसिद्धम् । स्थाली सूपादिपचनी । गौरादित्वात् ङीष् । चतधातोर्वालञ् । चतते याचतेऽसौ चात्वालः । चात्वालं यज्ञकुण्डं दर्भो वा । मृजेरालीयच् । मार्ष्टीति मार्जालीयः । विडालो वा ॥

(११७) पतन्ति गच्छन्ति यत्र स पातालो देशः पादस्य तले वर्त्तत इति वा । पातालः पृषोदरादित्वात् सिद्धः चण्डति कुप्यतीति चाण्डालः मातङ्गो वा । चण्डं कुपितमलं भूषणमस्येति समासेऽपि चण्डालः सिद्धः ॥

(११८) ताम्यन्ति काङ्क्षन्ति यं स तमालः वृक्षभेदो वा । विशति सर्वत्रेति विशालः । विशाला मानिनी भार्या विशालः सुन्दरः पुमान् । विशालोज्जयिनी प्रोक्ता विशालं च बृहद् गृहम् । विडत्याक्रोशतीति विडालः । मार्जारो वा । स्त्री विडाली मृणति हिनस्तीति मृणालः मृणालं पद्ममूलं वा । कोलति सङ्घातयतीति कुलालः । कुम्भकारो वा । कम्पते येन तत्कपालम् । नृशिरो घटखण्डो वा । पल्यते प्राप्यतेऽसौ पलालः । निष्फलानि व्रीहितृणानि वा । प्यार इति प्रसिद्धम् । पञ्चति व्यक्तं करोतीति पञ्चालः । देशविशेषो वा । बहुलवचनात् शोधातोरपि कालन् । श्यन्ति सूक्ष्माणि कार्याणि कुर्वन्त्यत्र सा शाला गृहम् ॥

पतेरङ्गच् पक्षिणि ॥ ११९ ॥ पतङ्ग: ॥ ११९ ॥

तरत्यादिभ्यश्च ॥ १२० ॥ तरङ्ग: । लवङ्ग: ॥ १२० ॥

विडादिभ्य: कित् ॥१२१॥ विडङ्ग: । मृदङ्ग: । कुरङ्ग: ॥१२१॥

सृवृञोर्वृद्धिश्च ॥ १२२ ॥ सारङ्ग: । वारङ्ग: ॥ १२२ ॥

गन् गम्यद्योः ॥ १२३ ॥ गङ्गा । अद्‌ग: ॥ १२३ ॥

छापूखडिभ्य: कित् ॥ १२४ ॥ छाग: । पूग: । खड्ग: ॥ १२४ ॥

भृञः किन्नुट् च ॥ १२५ ॥ भृङ्ग: ॥ १२५ ॥

(११९) पक्षिण्यभिधेये पतधातोरङ्गच् प्रत्ययो भवति पतति गच्छतीति पतङ्ग: पक्षी पक्षिणीत्युच्यमानेऽपि बाहुलकात् । पतङ्ग: सूर्योऽग्निरश्व: शलभ: शालिभेदो वा । इत्यादीनामपि नामानि भवन्ति ॥

(१२०) तरति प्लवत्यनेन स तरङ्ग: । जलोर्मिर्वस्त्रं भङ्गा वा । लुनात्यनेन स लवङ्ग: । ओषधिर्वा । तरत्याद्याकृतिगण: ॥

(१२१) विडत्याक्रोशतीति विडङ्ग: । ओषधिविशेषो वा । मृद्नाति यं स मृदङ्ग: । वाद्यभेदो वा । किरति विक्षिपतीति कुरङ्ग: । हरिणो वा । कुरङ्गी हरिणी स्त्रियां गौरादित्वान् ङीष् । बाहुलकाद् ऋकारस्योत्वं रपरत्वं च ॥

(१२२) सृवृञ्भ्यामङ्गच् धातोर्वृद्धिश्च । सरति सर्वत्र गच्छतीति सारङ्ग: । पक्षी हरिणो भृङ्गो वा । यो वृणोति गृह्णाति स वारङ्ग: खड्गादिमुष्टिर्वा । बाहुलकात् । नृणाति नयति स नारङ्ग: । रस: पिप्पली वृक्षफलभेदो वा ॥

(१२३) गच्छतीति गङ्गा । नदीभेदो वा । अत्ति वाऽद्यते भक्ष्यतेऽसावद्‌ग: । पुरोडाशो वा । बाहुलकात् । अमगत्यादिष्वित्यस्मादपि गन् । गच्छति प्राप्नोति कर्माणि विषयान् वा येन तदङ्गम् । गात्रमुपाय: प्रतीकमप्रधानं देशविशेषो वा ॥

(१२४) छादिभ्यो गन् किद् भवति छिनत्तीति छाग: । बर्करो वा । पूयते सुखं येन स पूग: । क्रमुक: फलविशेष: सुपारीति प्रसिद्ध: । समूहो वा । खडति भिनत्ति येन स खड्ग: । शस्त्रं गण्डक:–गेंड़ा इति प्रसिद्ध: । बाहुलकात् सेटत्यनाद्रियते स षिड्ग: । चंचलमना: जारमध्यस्थो मणिर्वा । बहुलवचनादिट् सत्वनिषेध: ॥

(१२५) भृञ् धातोर्गन् प्रत्यय: कित् तस्य च नुट् बिभर्ति धरति पुष्यति वा स भृङ्ग: । भ्रमरो वा ।

शृणातेर्ह्रस्वश्च ॥ १२६ ॥ शृङ्गः ॥ १२६ ॥

गण् शकुनौ ॥ १२७ ॥ शार्ङ्गः ॥ १२७ ॥

मुदिग्रोर्गग्गौ ॥ १२८ ॥ मुद्गः । गर्गः ॥ १२८ ॥

अण्डन् कृसृभृवृञः ॥ १२९ ॥ करण्डः । सरण्डः । भरण्डः वरण्डः ॥ १२९ ॥

शृदृभसोऽदिः ॥ १३० ॥ शरत् । दरत् । भसत् ॥ १३० ॥

दृणातेः पुग्घ्रस्वश्च ॥ १३१ ॥ दृषत् ॥ १३१ ॥

---

(१२६) कित् नुट् चेत्यनुवर्त्तते शृणाति हिनस्ति येन तत् शृङ्गम् वृषभादि-विषाणं पर्वताग्रं मत्स्यभेद ओषधिभेदः सुवर्णभेदो वा ।

(१२७) गणप्रत्ययस्य णित्त्वाद्धातोर्वृद्धिः पूर्ववन्नुट् च । शृणातीति शार्ङ्गः पक्षी बाहुलकात्प्रत्ययस्यादावकारागमेन शारङ्ग इत्यपि सिद्धं भवति ॥

(१२८) मुदधातोर्गक् । मोदतेऽसौ मुद्गः अन्नभेदो वा । मुद्गान् लाति गृह्णा-तीति मुद्गलो मुनिः । यस्य गोत्रापत्यं मौद्गल्य इति प्रसिद्धम् । गृणात्युपदिश-तीति गर्गः । ऋषिविशेषो वा । गृधातोर्गः प्रत्ययः ॥

(१२९) कृञादिभ्योऽण्डन् प्रत्ययः । क्रियतेऽसौ करण्डः पुष्पभाण्डभेदः करण्डो वंशविकारपात्रम् । पिटारी इति प्रसिद्धा । सरति गच्छतीति सरण्डः पक्षी वा । बिभर्त्ति पुष्यतीति भरण्डः स्वामी । वृणोति स्वीकरोतीति वरण्डः । मुखरोगः सन्दोहो वा । बाहुलकात् तरति येन स तरण्डः । जलतरणसाधनं वा । वनति संभजति धर्ममिति वतण्डः । ऋषिविशेषो वा । धातोस्तकारान्तादेशः । कमति भक्षयतीति कमण्डः । मातापितृशून्यो वा । शेतेऽसौ शयण्डः । विषयी वा । इत्यादयः शब्दा बहुलवचनादेव सिद्धा भवन्ति ।

(१३०) शृदृभसधातुभ्योऽदिः प्रत्ययः शृणाति हिनस्त्यस्मिन्निति शरत् । काल-विशेष ऋतुर्वा । दीर्यतेऽसौ दरत् हृदयं कूलं वा । बिभस्ति भत्संयति प्रकाशते वा । स भसत् जघनं वा । बाहुलकात् पर्षति स्निह्यति प्रीतिकरं प्रसन्नं भवति चित्तमस्यां सा पर्षत् । सभा समाजो वा ॥

(१३१) दीर्यतेऽसौ दृषत् । पाषाणो वा । अदिप्रत्यये धातोः पुक् ह्रस्वागमश्च भवति ।

त्यजितनियजिभ्यो डित् ॥ १३२ ॥ त्यद् । तद् । यद् ॥१३२॥

एतेस्तुट् च ॥ १३३ ॥ एतद् ॥ १३३ ॥

सर्त्तेरटिः ॥ १३४ ॥ सरट् ॥ १३४ ॥

लङ्घेर्नलोपश्च ॥ १३५ ॥ लघट् ॥ १३५ ॥

पारयतेरजिः ॥ १३६ । पारक् ॥ १३६ ॥

प्रथेः कित्सम्प्रसारणं च ॥ १३७ ॥ पृथक् । १३७ ॥

भियः षुग्घ्रस्वश्च ॥ १३८ ॥ भिषक् । १३८ ॥

युष्यसिभ्यां मदिक् ॥ १३९ ॥ युष्मद् । अस्मद् । १३९ ॥

अर्त्तिस्तुसुहुसृधृक्षिक्षुभायावापदियक्षिनीभ्यो मन् ॥ १४० ॥
अर्मः । स्तोमः । सोमः । होमः । सर्मः । धर्मः । क्षेमम् ।
क्षोमम् । भामः । यामः । वामः । पद्मम् । यक्ष्मः । नेमः । १४० ॥

(१३२) त्यजति क्लेशादिहीनो भवतीति त्यद् । तनुते विस्तृतो भवतीति तद् यजति सर्वैः पदार्थैः संगतो भवतीति यत् । ब्रह्मणो नामानि त्रयाणि । त्यदादीनां सर्वनामसंज्ञा भवति तेन सामान्यवाचकास्त्यदादयः ।

(१३३) इण् धातोरदिः प्रत्ययस्तस्य तुडागमश्च । एति प्राप्नोतीत्येतत् । अस्यापि सर्वनामसंज्ञा ।

(१३४) सरति गच्छतीति सरट् । वायुर्मेघो वा । सृधातोरटिः प्रत्ययः ॥

(१३५) लङ्घति शोषयतीति लघट् । वायुर्वा । धातोर्नलोपः ॥

(१३६) पारयति कर्म समापयतीति पारक् सुवर्णं वा । चौरादिकात्पारिधातोरजिः प्रत्ययः ॥

(१३७) प्रथयति संघातादिस्तृतो भवतीति पृथक् नानात्वं वा । स्वरादिपाठादव्ययत्वम् ॥

(१३८) बिभेत्यसौ भिषक् । वैद्यो वा सुमङ्गलभेषजाच्चेति निपातनाद्गुणे कृते भेषजम् । भेषजमेव भैषज्यम् ॥

(१३९) योषति सेवतेऽसौ युष्मद् । युषसौत्रो धातुः । अस्यति प्रक्षिपत्यन्यमित्यस्मद् । सर्वनामवाचकाविमौ ॥

(१४०) ऋच्छति प्राप्नोति सोऽर्मः । चक्षूरोगो वा । स्तौति येन स स्तोमः । सङ्घातो वा सवत्यैश्वर्यहेतुर्भवतीति सोमः । कर्पूरश्चन्द्रमा वा । हूयते दीयतेऽसौ

जहातेः सन्वद्वाकारलोपश्च ॥ १४१ ॥ जिह्मः । १४१ ॥

अवतेष्टिलोपश्च ॥ १४२ ॥ ओम् । १४२ ॥

ग्रसेराच्च ॥ १४३ ॥ ग्रामः । १४३ ॥

अविसिविसिशुषिभ्यः कित् ॥ १४४ ॥ ऊमम् । स्यूमः । सिमः । शुष्मम् ॥ १४४ ॥

इषियुधीन्धिदसिश्याधूसूभ्यो मक् ॥ १४५ ॥ इष्मः । युध्मः इध्मः । दस्मः । श्यामः । धूमः । सूमः । १४५ ॥

होमः । यज्ञो वा । स्रियते गम्यते स सर्मो गमनम् । ध्रियते सुखप्राप्तये सेव्यते स धर्मः । पक्षपातरहितो न्यायः सत्याचारो वा । क्षयत्यज्ञानं नाशयतीति क्षेमम् । कुशल वा क्षौति शब्दयतीति क्षौमम् । वस्त्रभेदो वा । दुकूलमतसीकुसुमं च । भाति प्रकाशते ऽसौ भामः । क्रोधः सूर्यो दीप्तिर्वा । याय्यते प्राप्यते स यामः । प्रहरो वा । वाति गच्छति ग्रन्थं वा गृह्णातीति वामः । शोभनः दुष्टः पार्श्वभेदो वा । पद्यते प्राप्नोतीति पद्मम् । कमलं निधिः शङ्खो वा । यक्ष्यते पूजयतीति यक्ष्मः । राजरोगो वा नयतीति नेमः । प्रकारमूलं वा । अर्द्धवाचीतु सर्वनामसंज्ञकः ॥

(१४१) मनित्यनुवर्त्तते । जहाति त्यजतीति जिह्मः । कुटिलो मन्दो वा ॥

(१४२) मन् प्रत्ययस्य टिलोपो धातोरुपधावकारयोरूठ् । अवति रक्षादिकं करोतीति ओम् । प्रणव आरम्भोऽनुमतिर्वा । चादिषु पाठादस्याव्ययत्वम् ॥

(१४३) मन् । ग्रसतेऽत्ति यो वा ग्रस्यते स ग्रामः । शालासमुदायः प्राणि-निवासो वा । संग्रामो युद्धं वा । शालीनां ग्रामः समूहः शालिग्रामः । एवं शब्दग्रामः ग्रामो गानविद्यायां स्वरभेदश्च ॥

(१४४) मन्—कित् । अवति रक्षणादिकं भवति यत्र तत् ऊमम् । नगरं वा । टापि कृते बाहुलाद्ध्रस्वे च । उमा । विशिष्टा स्त्री वा । सीव्यति तन्तून् संतनोतीति स्यूमः । रश्मिर्वा । सिनोति बध्नातीति सिमः । सर्वनामसंज्ञः सर्वपर्यायः । शुष्यति निस्सारं करोतीति शुष्मम् । अग्निर्वायुर्वा ॥

(१४५) य इच्छति य इष्यते स इष्मः । कामो वसन्त ऋतुर्वा । युध्यते यो येन वा स युध्मः । वाणो वा । य इन्धे दीप्यते वा येनेन्धे स इध्मः । समिद्धः । दस्यत्युपक्षयति दुःखयति वा स दस्मः । यजमानो वा । श्यायति गच्छति प्राप्नोति वा स

युजिरुचितिजां कुश्च ॥ १४६ ॥ युग्मम् । रुक्मम् । तिग्मम् ।

हन्तेर्हि च ॥ १४७ ॥ हिमम् ॥ १४७ ॥

भियः षुग् वा ॥ १४८ ॥ भीमः । भीष्मः ॥ १४८ ॥

घर्मग्रीष्मौ ॥ १४९ ॥

प्रथेः षिवन्षवन्ष्वनः संप्रसारणं च ॥ १५० ॥ पृथिवी । पृथवी । पृथ्वी ॥ १५० ॥

अशूप्रुषिलटिकणिखटिविशिभ्यः क्वन् ॥ १५१ ॥ अश्वः । प्रुष्वः । लट्वा । कण्वम् । खट्वा । विश्वः ॥ १५१ ॥

श्यामः । हरितः कृष्णो वा । अप्रसूता स्त्री श्यामा लतौषधी वा । इत्यादि धूनोति कम्पयतीति धूमः । अग्निसम्भवो वा । सूते जनयति प्राणिगर्भं विमुञ्चतीति सूमो-ऽन्तरिक्षं वा । बाहुलकात् । ईर्मं गच्छति कम्पते वा तदीर्मम् । व्रणं वा । क्षौति शब्दयति सा क्षमा । अतसी वा । जजन्ति जायते स जन्मः । उत्पत्तिर्वा ॥

(१४६) मक् । युज्यते तद्युग्मम् । द्वयोरेककर्मणि संबन्धः । रोचते प्रदीप्तवर्णो भवति स रुक्मो वर्णभेदो वा । तद्वर्णयोगाद्रुक्मं सुवर्णम् । रुक्मो वर्णोऽस्यास्तीति रुक्मिणी स्त्री । तेजते छिनत्तीति तिग्मम् । तीक्ष्णम् । विशेष्यलिंगोऽयं शब्दः तिग्माधीः । तिग्मस्तीव्रो वा ॥

(१४७) मक् । हन्त्युष्णं दुर्गन्धिं वा तद्धिमम् । हेमन्त ऋतुस्तुषारश्चन्दनं वा । महत् हिमं हिमानी । ङीष् आनुक् ॥

(१४८) बिभेति बिभ्यति वा यस्मात् यस्या वा स भीमः । भीमा वा । भीष्मः । भीष्मा वा । भीमो भयानकः । पाण्डुपुत्रो वा । भीमा भयानका सेना यस्य स भीमसेनः । एवं भीष्मसेनो वा ॥

(१४९) मक् प्रत्ययान्तौ निपात्येते जिघर्त्ति रचति नश्यति दीप्यते वा प्राणिनो जगद्वा येन स घर्मः । यद्वा आतपो ग्रीष्म ऋतुः स्वेदकं वा । ग्रसते शीतं रसादिकं वा स ग्रीष्मः । अत्युष्णकालो वा । ग्रसधातोर्ग्रीभावः । षुगागमश्च निपातनात् ॥

(१५०) प्रथते विस्तीर्णा भवतीति पृथिवी । पृथवी । पृथ्वी । इत्येकार्थास्त्रयः। भूमिरन्तरिक्षं वा ॥

(१५१) अश्नुते व्याप्नोतीत्यश्वः । तुरङ्गो वन्हिर्वा । अजादिपाठात् स्त्रिया मश्वा । यः प्रुष्णाति स्निह्यति सिञ्चति पूरयति वा स प्रुष्वः । ऋतुः सूर्यो वा ।

दृगाशीभ्यां वन् ॥ १५२ ॥ एवः । शेवः ॥ १५२ ॥

सर्वनिघृष्वरिष्वलष्वशिवपद्वप्रह्वेष्वा अतन्त्रे ॥ १५३ ॥

शेवायह्वजिह्वाग्रीवाऽप्वामीवाः ॥ १५४ ॥

कृगृशृदृभ्यो वः ॥ १५५ ॥ कर्वः । गर्वः । शर्वः । दर्वः ॥१५५॥

लटति बाल इव भवति सा लट्वा। नियतस्त्रीलिंगः । करञ्जभेदः । फलं वाद्यं पक्षिभेदो वा । कणति निमीलति चेष्टतेऽसौ कण्वः | कण्वं पापं कण्वो मुनिर्वा । येनादावश्यापिता कारावी शाखेति प्रसिद्धा वा । खट्यते काङ्क्ष्यते या सा खट्वा । शय्यादिर्वा । विशति सर्वत्र स विश्वः । विश्वं जगत् । विश्वाऽतिविषया वा । सर्वादिपाठात्सर्वनामसंज्ञश्च ॥

(१५२) एति प्राप्नोतीत्येवः । बाहुलकात् एवेत्यवधारणेऽव्ययम् । शेतेऽसौ शेवः। सुखं मेढ्रं वा ॥

(१५३) सर्वादयो वन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । सरतीति सर्वः । संपूर्णवाची सर्वनामसंज्ञो विशेषणम् । नितरां घर्षति पिनष्टीति निघृष्वः । गुणाभावः । खुरं वा । रेषति हिनस्तीति रेष्वो हिंसकः । लषति कामयतेऽसौ लष्वः । नर्त्तको वा । शेतेऽसौ शिवः । धातोर्ह्रस्वत्वम् । शिव ईश्वरः शिवं भद्रं सुखमुदकं च । शिवा हरीतकी पद्यन्ते गच्छन्त्यनेनेति पद्वः । भूलोको वा । प्रजहाति त्यजति स प्रह्वः । नम्रो वा । अकारलोपो निपातनम् । ईषते हिनस्त्यज्ञानमिति, ईष्वः । आचार्यो वा । अतन्त्र इति किम् सर्त्ता,सारक इत्यादिसूत्रेषु पठिताः सर्वादिशब्दा यौगिका माभूवन् । बाहुलकात् । ऋसति शब्दयति ऋस्वः । वामन एकमात्रो वर्णो वा ॥

(१५४) शेवादयो वन्नन्ता निपात्यन्ते । शेतेऽसौ शेवा । लिङ्गाकृतिर्वा । यजतीति यह्वः । यजमानो वा । जकारस्य हकारः जयति यया सा जिह्वा । इन्द्रियं वा । धातोरिक् । निगलति यया सा ग्रीवा । शरीराङ्गं वा । धातोर्ग्रीभावः । आप्नोति यया सा अप्वा । कण्ठस्थानं वा । मीनाति हिनस्तीति मीवः । उदरकृमिर्वा ॥

(१५५) किरति विक्षिपति चित्तमिति कर्वः । कामो वा | गिरतीति गर्वः । अहङ्कारो वा । शृणाति दुःखमिति शर्वः परमेश्वरः सुखं वा । दृणाति विदारयति प्राणिन इति दर्वः हिंसको जनो वा ॥

कनिन् युवृषितक्षिराजिधन्विद्युप्रतिदिवः ॥ १५६ ॥ युवा । वृषा । तक्षा । राजा धन्वा । द्युवा । प्रतिदिवा ॥ १५६ ॥

सप्यशूभ्यां तुट् च ॥ १५७ ॥ सप्त । अष्ट ॥ १५७ ॥

नञि जहातेः ॥ १५८ ॥ अह्नः ॥ १५८ ॥

श्वन्नुक्षन्पूषन्प्लीहन्क्लेदन्स्नेहन्मूर्धन्मज्जन्नर्यमन्विश्वप्सन्परिज्वन्मातरिश्वन्मघवन्निति ॥ १५९ ॥ श्वा । उक्षा । पूषा । प्लीहा । क्लेदा । स्नेहा । मूर्द्धा । मज्जा । अर्यमा । विश्वप्सा । परिज्वा । मातरिश्वा । मघवा ॥ १५९ ॥

इत्युणादिषु प्रथमः पादः ॥ १ ॥

(१५६) यौति मिश्रयत्यमिश्रयति वा स युवा मध्यावस्थस्तरुणो जनो वा । वर्षतीति वृषा सूर्यो वा । तक्षति तनूकरोति स तक्षा वर्धकिर्वा । राजते प्राप्तो भवतीति राजा भूपतिश्चन्द्रमा वा । धन्वति गच्छतीति धन्वा । बाणक्षेपणं वा । द्योत्यभिगच्छतीति द्युवा । सूर्यो वा । प्रतिदीव्यन्ति यस्मिन् स प्रतिदिवा । दिवसो वा बहुलवचनात् केवलादपि दिवधातोः कनिन् तेन । दिवा दिवानौ । इत्याद्यपि सिद्धम् । दशतीति दशन् । संख्याविशेषो वा । नौतीति नवन् संख्या वा । बाहुलकाद् गुणः ॥

(१५७) सपति समवैतीति सप्तन् संख्याभेदो वा । अश्नुते व्याप्नोतीत्यष्टन् । संख्या वा बाहुलकात् पञ्चति व्यक्तीकरोतीति पञ्चन् संख्यावाचको वा ॥

(१५८) जहाति त्यजति पृथक्करोत्यन्धकारमित्यह्नः दिनम् ।

(१५९) श्वनादयस्त्रयोदश शब्दाः कनिनन्ता निपात्यन्ते । श्वयति गच्छति वर्द्धतेऽसौ श्वा । कुक्कुरो वा । स्त्रियां ङीप् । शुनी । उक्षति सिञ्चतीति, उक्षा बलीवर्दो वा ।पूषति वर्धतेऽसौ पूषा । सूर्यो वायुर्वा । प्लिह्यते प्राप्यतेऽन्तरिति प्लीहा । कुक्षि व्याधिर्वा । धातोरुपधादीर्घत्वम् । क्लिद्यत्यार्द्रीभवतीति क्लेदा चन्द्रमा वा । धातोर्गुणः। स्निह्यति प्रीतिं करोतीति स्नेहा । व्याधिर्वा । धातोर्गुणः । मूर्वति बध्नाति स मूर्द्धा शिरो वा । उकारस्य दीर्घो वकारस्य धकारश्च । मज्जति शुन्धतीति मज्जा अस्थिसारो वा । अर्यं स्वामिनं मिमीते मन्यते जानातीति, अर्यमा । आदित्यो वा । आकारलोपः । विश्वं प्साति भक्षयतीति विश्वप्सा अग्निर्वा । परितो जवति

कृहृभ्यामेणुः ॥ १ करेणुः । हरेणुः ॥ १ ॥

हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन् ॥ २ ॥ हथः । कुष्ठः । नीथः । रथः । काष्ठम् ॥ २ ॥

अवे भृञः ॥ ३ ॥ अवभृथः ॥ ३ ॥

उषिकुषिगार्त्तिभ्यस्थन् ॥४॥ ओष्ठः।कोष्ठः । गाथा । अर्थः॥४॥

वेगवान् भवतीति परिज्वा । चन्द्रमाः । जु इति सौत्रो धातुस्तस्य यणादेशः मातरि अन्तरिक्षे श्वयति गच्छति वर्द्धते वा, अथ वा मातरि श्वसिति जीवयति शेते वा, स मातरिश्वा वायुर्वा । मह्यते पूज्यतेऽसौ मघवा सूर्यो वा । महधातोर्हकारस्य घत्वमवुगागमश्च । मघवदिति तकारान्तोऽप्ययं शब्दो दृश्यते । तत्र मघं धनमस्यास्तीति मघवान् मघवन्तौ । मघवन्तः । इति मतुबन्तः । कनिनन्तस्तु । मघवा । मघवानौ । मघवानः । मघवन् । मघवानम् । मघवानौ । मघोनः । अस्मिन् सूत्र इति शब्दः प्रकारार्थे । एवंविधा अन्येऽपि कनिन न्ता शब्दा यथाप्रयोगं साध्याः । पादसमाप्त्यर्थो वेति शब्दः ॥

इत्युणादिव्याख्यायां वैदिकलौकिककोषे प्रथमः पादः ॥ १ ॥

———:०:———

(१) करोतीति करेणुः हस्ती हस्तिनी वा । हरति स हरेणुः । गन्धद्रव्यं कलापो वा । मटर इति प्रसिद्धः ॥

(२) यो हन्यते येन वा स हथः । दुःखितः शस्त्रविशेषो वा । कुष्णाति निरन्तरं कर्षतीति कुष्ठम् । व्याधिभेदः । कूट इत्याख्यौषधिर्वा । नीयते स नीथः । नयनं वा शोभनो नीथोऽस्यास्तीति सुनीथो धर्मशीलः । रमते यस्मिन् येन वा स रथः । यानं शरीरं पादो वेतसो वा । काशते दीप्यते तत्काष्ठम् । इन्धनं स्थानं कालमानं वा । काष्ठा दिक्, दारु हरिद्रा वा ॥

(३) क्थन् । अव बिभर्त्तीति,अवभृथः । पवित्रोदो यज्ञान्तस्नानं वा ।

(४) ओषति यो दहति येन वा स ओष्ठः । मुखावयवो वा । कुष्णाति निरन्तरं कर्षति स कोष्ठः । कोष्ठं कुक्षिः कुशूलमन्तर्गृहं वा । गीयते या सा गाथा वाग्भेदः श्लोको वा । अर्थते प्राप्यतेऽसावर्थः । शब्दानां वाच्यो धनं कारणं वस्तु प्रयोजनं निवृत्तिर्विषयो वा । बाहुलकात् श्यति तनूकरोतीति शोथः । रोगविशेषो वा । शोतनूकरण इत्यस्यात्वनिषेधः ॥

सर्त्तेर्णित् ॥ ५ ॥ सार्थः ॥ ५ ॥

जॄवृञ्भ्यामूथन् ॥ ६ ॥ जरूथम् । वरूथः ॥ ६ ॥

पातॄतुदिवचिरिचिसिचिभ्यस्थक् ॥ ७ ॥ पीथः । तीर्थम् । तुत्थः । उक्थम् । रिक्थम् । सिक्थम् ॥ ७ ॥

अर्त्तेर्निरि ॥ ८ ॥ निर्ऋथः ॥ ८ ॥

निशीथगोपीथावगथाः ॥ ९ ॥

गश्चोदि ॥ १० ॥ उद्गीथः ॥ १० ॥

समीणः ॥ ११ ॥ समिथः ॥ ११ ॥

(५) सरति गच्छति स सार्थः समूहो वा थन्प्रत्ययस्य णित्वाद् वृद्धिः ॥

(६) जीर्यति वयोहीनो भवति स जरूथः मांसं वा । वृणोति येन स्वीकरोति स वरूथः । लोहेन रथावरणं वा ॥

(७)यः पिबति यं वा स पीथः। सूर्यो घृतं वा। तरन्ति येन यत्र वा तत्तीर्थम् । गुरुर्यज्ञः पुरुषार्थो मंत्री जलाशयो वा । यो येन वा तुदति व्यथां प्राप्नोति स तुत्थः । अग्निरञ्जनं तुत्था नीली ओषधिर्गौर्वडवा वा । सूक्ष्मैला वा । छोटी इलाची इति प्रसिद्धा । उच्यते परितो भाष्यते यत्तदुक्थम् । सामवेदो वा । य उक्थमधीते वेत्ति वा स औक्थिकः। रिणक्ति पृथक् करोतीति यत्तद् रिक्थम्। दायादधनं सुवर्णं वा। बाहुलकात् । ऋचस्तुताविव्यस्मादपि थक् । ऋचति यदर्थं स्तौतीति ऋक्थम् । धनं वा । सिञ्चति प्रसादयति तत्सिक्थम् । मधूच्छिष्टम् । मोम इति प्रसिद्धम् । ओदनान्निसृतं मण्डं वा ॥

(८) निरन्तरमृच्छन्ति गच्छन्ति यस्मिन्नसौ निर्ऋथः । सामवेदो वा ॥

(९) नितरां शेतेऽस्मिन् स निशीथः । अर्द्धरात्रः । सर्वरात्रो वा । गां वाणीं पृथिवीं वा पातीति गोपीथः । पण्डितो राजा वा गावः पिबन्त्युदकमस्मिन् स नद्याजलाशयो वा । अवगातेऽवगच्छते जानीतेऽसाववगाथः । प्रातःस्नानं वा ॥

(१०) उदुपपदाद्गाधातोस्थक् । य उद्गीयत उच्चैः शब्द्यते स उद्गीथः । सामध्वनिः प्रणवो वा ॥

(११) समेति सम्यक् प्राप्नोति पदार्थानिति समिथः । अग्निर्वा ॥

तिथपृष्ठगूथयूथप्रोथाः ॥ १२ ॥

स्फायितञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदिसृपितृपिदृपिवन्द्युन्दिश्विति-वृत्यजिनीपदिमदिमुदिखिदिछिदिभिदिमन्दिचन्दिदहिदसि-दम्भिवसिवाशिशीङ्हसिसिधिशुभिभ्यो रक्॥ १३ ॥ स्फारम् । तक्रम् । वक्रः । शक्रः । क्षिप्रम् । क्षुद्रः । सृप्रः । तृप्रः । दृप्रः । वन्द्रः । उद्रः । श्वित्रम् । वृत्रः । वीरः । नीरम् । पद्रः । मद्रः । मुद्रा । खिद्रः । छिद्रम् । भिद्रम् । मन्द्रः । चन्द्रः । दह्रः । दस्रः । दभ्रः । वस्रः । वाश्रः । शीरः । हस्रः । सिध्रः । शुभ्रम् ॥ १३ ॥

(१२) तिथादयस्थक्प्रत्ययान्ता निपाताः । तेजते सह्यतेऽसौ तिथः । अग्निः कामो वा । पर्षति सिञ्चति यो येन वा तत्पृष्ठम् । शरीरस्य पश्चाद्भागः स्तोत्रं वा । यो येन वा गवतेऽव्यक्तशब्दं करोति तद्गूथम् । अपानमार्गः पुरीषं वा । यौति मिश्रयत्यमिश्रयति वा स यूथः । समुदायो वा । यः प्रवते गच्छति येन वा स प्रोथः। तुरङ्गनासिका । प्रस्थितः पुरुषो वृक्षभेदः प्रियमुदकमन्नं स्त्रीगर्भश्च । प्रोथ उच्यते॥

(१३) यः स्फायते वर्द्धतेऽसौ स्फारः । सुवर्णादेर्विकारो बुद्बुदो वा । वलि रेफे यलोपः । तनक्ति संकोचयतीति तक्रम् । मथितं दधि वा । वञ्चति प्रलम्भते स वक्रः। कुटिलः । क्रूरो वा । शक्नोति यः स शक्रः । समर्थः कुटजो वृक्षविशेषो वा । क्षिप्यते प्रेर्य्यते तत् क्षिप्रम् । शीघ्रं वा । क्षुणत्ति संपिनष्टि यः स क्षुद्रः । अधमः क्रूरः क्षपणो वा । अत्र वाच्यलिङ्गः । क्षुद्रा वेश्या । कण्ट कारिका (भटकटाई) तथा मधुमक्षिका च । सर्पति गच्छतीति सृप्रः । चन्द्रमा वा यस्तृप्यति येन वा स तृप्रः । पुरोडाशो वा । दृप्यति हृष्यति मुह्यति वा स दृप्रः । बलवान् वा । वन्दतेऽभिवदति स्तौति वा स वन्द्रः सत्कर्त्ता वा । उनत्ति क्लिद्यति स उद्रः । जलचरो वा । सम्यगुनत्तीति समुद्रः। अनिदितामिति नलोपः । श्वेतते वर्णविशिष्टो भवतीति श्वित्रम्। कुष्ठभेदो वा वर्त्तते सदैवाऽसौ वृत्रः । मेघः । शत्रुस्तमः । पर्वतश्चक्रं वा । अजति गच्छति शत्रून् वा प्रक्षिपति स वीरः । सुभटः श्रेष्ठश्चतुष्पथं वा । वीरा चीरकाकोली, पतिपुत्रवती स्त्री मदिरा मधुरर्णिकौषधिर्वा नयति शरीरमिति नीरम् । जलम् वा । पद्यन्ते गच्छन्त्यस्मिन् वा स पद्रः। ग्रामः संवेगः स्थानं वा । माद्यतीति मद्रः । हर्षो देशभेदो वा । मोदन्ते हृष्यन्ति यया सा मुद्रा यंत्रिता सुवर्णादिधातुमया वा । यः खिद्यते येन वा दीनो भवतीति स खिद्रः । रोगो दरिद्रो वा । छिद्यते यत्तच्छिद्रम् । विवरं वा । भिनत्ति येन तद्भिद्रम् वज्रो वा । मन्दते

चक्रिरम्योरुच्चोपधायाः ॥ १४ ॥ चुक्रम् । रुम्नः । १४ ॥

वौ कसेः ॥ १५ ॥ विकसः । १५ ॥

अमितम्योर्दीर्घश्च ॥ १६ ॥ आम्रम् । ताम्रम् । १६ ॥

निन्देर्नलोपश्च ॥ १७ ॥ निद्रा । १७ ॥

अर्देर्दीर्घश्च ॥ १८ ॥ आर्द्रम् । १८ ॥

शुचेर्दश्च ॥ १९ ॥ शूद्रः । १९ ॥

स्तौतीति मन्द्रः गम्भीरध्वनिर्वा । चन्दति हर्षयति दीपयति वा स चन्द्रः कर्पूरश्चन्द्रमा वा दहति भस्मीकरोतीति दह्रः दावाग्निर्वा । दस्यति रोगानुपचयतीति दस्रः । वैद्यश्चौरो वा यो दभ्नोति दम्भं करोति स दभ्रः । चुद्रो जनः समुद्रो वा । वसतीति, उस्रः । रश्मिर्वा । उस्रा गौः । वाश्यते शब्दयतीति वाश्रम् । पुरीषं दिवसो मन्दिरं चतुष्पथं वा । शेतेऽसौ शीरः । महासर्पो वा । ह्रसतीति ह्रस्रः । मूर्खो वा । मेधति गच्छति सिध्यति वा स सिध्रः । साधुर्वृक्षजातिर्वा । कुत्सिताः सिध्रा वृक्षाः सिध्रकास्तासां वनं सिध्रकावणम् । वनं पुरगामिश्रकासिध्रकेतिसूत्रेण णत्वम् शोभते दीप्यते तत् शुभ्रम् रुचिरं शुक्लं पाण्डुरं वा । बाहुलकात् मेशति शब्दयतीति मिश्रः संयोगी वा । पुण्डति खण्डयतीति पुण्ड्रः । दुष्टो वा । सिनोति बध्नाति मांसरुधिरादिकमिति सिरा । नाडी वा । मुस्यति खण्डयतीति मुस्रम् । नेत्रोदकं वा । अस्यतीति, अस्रम् । रुधिरम् वा । अस्रम् पिबतीति, अस्रपो दंशः ॥

(१४) चकते तृप्यति प्रतिहन्यते वा । स चुक्रः । अम्लमम्लवेतसमित्यादि । रमन्तेऽस्मिन् स रुम्नः । अरुणः शोभनो वा ॥

(१५) विकसति विशेषतया गच्छतीति विकुस्रः । चन्द्रमा वा कस धातोरुपधाया उत्वम् ॥

(१६) अम्यते सम्भज्यते सेव्यते तदाम्रम् । चूतो वा । ताम्यति काङ्क्षतीति । ताम्रम् । धातुभेदो रक्तवर्णो वा ॥

(१७) या निन्दति यया वा सा निद्रा शयनं वा ॥

(१८) आर्दति गच्छति याचते वा तत्, आर्द्रम् । सरसद्रव्यमार्द्रा नक्षत्रं वा ॥

(१९) दीर्घश्चानुवर्त्तते । शोचतीति शूद्रः सेवको वा । पुंयोगे शूद्रस्य स्त्री शूद्री शूद्रा तज्जातिर्वा ॥

दुरीणो लोपश्च ॥ २० ॥ दूरम् । २० ॥
कृतेश्छः क्रू च ॥ २१ ॥ कृच्छ्रम् । क्रूरः । २१ ॥
रोदेर्णिलुक् च ॥ २२ ॥ रुद्रः । २२ ॥
जोरी च ॥ २३ ॥ जीरः । २३ ॥
सुसूधाञ्गृधिभ्यः क्रन् ॥ २४ ॥ सुरः । सूरः । धीरः । गृध्रः ॥ २४ ॥
शुसिचिमीनां दीर्घश्च ॥ २५ ॥ शूरः । सीरः । चीरम् । मीरः ॥ २५ ॥

(२०) दुरुपपदादिण्धातोरक् धातोश्च लोपः दुःखेनेयते प्राप्यते तद्दूरम् । विप्रकृष्टं वा ॥

(२१) कृतधातोरन्त्यस्य छः सर्वस्य च क्रू इत्येतावादेशौ रक् च । कृन्तति छिनत्तीति कृच्छ्रं क्रूरश्च कठिनं दुःखं खलो वा ॥

(२२) पापिनो रोदयतीति रुद्रः । ईश्वरः प्राणादिश्च रुद्रा जीवो वा । बाहुलकादन्यत्रापि धात्वन्तरे संज्ञाछन्दसोः सामान्यप्रत्ययादौ च णिलुक् पाशं बन्धनं धारयतीति पाशधरः । शूलधरः । चक्रधरः । वज्रधरः । शक्तिधरो वा कुमारः । उदकधरो मेघः । दण्डधरो राजा । अत्र सर्वत्राचि प्रत्यये धृधातोः परस्य णिलुक् । पर्णानि शोषयति मोचयति रोहयति वा स पर्णशुट् । पर्णमुट् । पर्णरुट् । इति ण्यन्तात् शुषधातोः क्विप् णिलुक् । जश्त्वकुत्वादिकार्यम् । वान्ति पर्णशुषो वाता वान्ति पर्णमुचोऽपरे । ततः पर्णरुहो वान्ति ततो देवः प्रवर्षति ॥ १ ॥

(२३) जुधातोररकि प्रत्यय ईकारादेशः । जवति सूक्ष्मो भवतीति जीरः । अणुः खड्गो वणिग्द्रव्यं वा । महाभाष्यकारसंमत्या,रकि ज्यः सम्प्रसारणम् । भा०१।१।४। ज्यावयोहानावित्यस्य रकि प्रत्यये सम्प्रसारणम् । जिनात्यवस्थां जहातीति जीरः । तथा महाभाष्यकारसंकत्या जीवधातोरदानुक् । जीवति प्राणान् धारयतीति जीरदानुः । वैदिकं रूपमेतत् । अत्र च जीवधातोर्वलि वलोपः । ऊठ्निषेधश्च बाहुलकादेव । इत्यादि ॥

(२४) सुनोति सवति उत्पादयत्यैश्वर्य्यवान् वा भवतीति सुरः । देवसंज्ञो विद्वान् स्त्रियां सुरा मद्यं वा । सूयते वा सुवति प्राणिनः समर्थयतीति सूरः । सूर्यो वा दधाति सर्वान् पोषयति वा स धीरः पण्डितो वा । गृध्यत्यभिकाङ्क्षतीति गृध्रः । पक्षिविशेषो वा ॥

(२५) शु इति सौत्रो धातुः । शवति गच्छतीति शूरः । विक्रमणशीलः पुरुषो वा । सिनोति बध्नातीति सीरः । हलं वा । चिनोतीति चीरम् । वल्कलं वा । मिनाति प्रक्षिपतीति मीरः । समुद्रो वा ॥

वा विन्धेः ॥ २६ ॥ वीध्रम् ॥ २६ ॥

वृधिवपिभ्यां रन् ॥ २७ ॥ वर्ध्रम् । वप्रः ॥ २७ ॥

ऋज्रेन्द्राग्रवज्रविप्रकुब्रचुब्रक्षुरखुरभद्रोग्रभेरभेलशुक्रशुक्लगौ-रवन्रेरामालाः ॥ २८ ॥

समि कस उकन् ॥ २९ ॥ संकसुकः ॥ २९ ॥

(२६) विशेषेणेन्धते प्रदीप्यते तद्वीध्रम् । स्वभावशुद्धः ॥

(२७) वर्द्धते तद्वर्ध्रम् । चर्म्म वा । वपति बीजं छिनत्ति वा स वप्रः । पिता केदारः प्राकारो रोधो वा ॥

(२८) ऋज्राद्येकोनविंशतिः शब्दा निपात्यन्ते । अर्जति गच्छति तिष्ठति वा स ऋज्रः । नायको वा । गुणाभावः । इन्दति परमैश्वर्य्यवान् भवतीति इन्द्रः । समर्थोऽन्तराऽऽत्मादित्यो योगी वा । अङ्गति गच्छतीति अग्रम् । प्रधानमुपरिभागो वा । वजति प्राप्नोति प्राप्यते वा स वज्रः । हीरकं शास्त्रं वा वपति धर्म्ममिति विप्रः । मेधावी वा । कुम्बत्याच्छादयतीति कुब्रम् । अरण्यं वा । चुम्बति यो येन वा तच्चुब्रम् । मुखं वा । अत्रोभयत्रेदितोऽपि नलोपः । यः क्षरति विलिखति येन वा । छिनत्तीति स क्षुरः । छेदनद्रव्यं कोकिलाक्षं गोक्षुरो लोमच्छेदकं नापितशस्त्रं वा । खुरति छिनत्ति यो येन वा स खुरः शफं वा । अत्रोभयत्र रकि रेफलोपो गुणाऽभावश्च । भन्दते कल्याणं करोतीति भद्रम् कल्याणम् । नकारलोपः । उच्यति समवैतीति, उग्रः । महेश्वर उत्कटः क्षत्रं वा । बिभेत्यस्मात्स भेरः । भेरी दुन्दुभिर्वा गौरादित्वान् ङीष् । पक्षे भेरशब्दस्य लत्वम् । भेलो जलतरणद्रव्यं ह्रस्वकायः कातरो वा । शुच्यते पवित्रीभवतीति शुक्रम् । बृह्माग्निराषाढः प्राणिबीजं नेत्ररोगो वा । अस्यैव व्यवस्थितविभाषया पक्षे लत्वम् शुक्लः श्वेतं रजतं वा । गवतेऽव्यक्तं शब्दयतीति गौरः । श्वेतो रक्तवर्णो वा । गौरी स्त्री । ङीष् । वनति सम्भजतीति वन्रः विभागी । एति गच्छति यया सा इरा । उदकं मद्यं वा । इरावान् समुद्रः ऐरावती नदी । इरया मद्येन माद्यतीति, इरम्मदः । माति मानहेतुर्भवतीति माला । पुष्पादिस्रक् । मालं क्षेत्रम् । मालो जनः । बाहुलकात् । तितिक्षते येन तत्तीव्रम् । तीक्ष्णं वा । जस्य वो दीर्घत्वं च धातोः ॥

(२९) सम्यक् कसति गच्छतीति सङ्कसुकः संशयमापन्नश्चपलो दुर्जनो वा ।

पचिनशोर्णुकन्कुमौ च ॥ ३० ॥ पाकुकः । नंशुकः ॥ ३० ॥

भियः क्रुकन् ॥ ३१ ॥ भीरुकः ॥ ३१ ॥

क्वुन् शिल्पिसंज्ञयोरपूर्वस्यापि ॥ ३२ ॥ रजकः । इक्षुकुट्टकः । तक्षकः । ध्रुवकः । अभ्रकम् । चरकः । चषकः । शुनकः । भषकः ॥ ३२ ॥

रमेरश्च लो वा ॥ ३३ ॥ रमकः । लमकः । ३३ ॥

जहातेर्द्वे च ॥ ३४ ॥ जहकः । ३४ ॥

ध्मो धम च ॥ ३५ ॥ धमकः । ३५ ॥

---

(३०) पचनशधातुभ्यां णुकन् प्रत्ययः पचधातोश्चस्य कः । नशधातोर्नुम् च पचतीति पाकुकः सूपकारो वा । नश्यतीति नंशुकः । अणुवाचको वा ॥

(३१) यो बिभेति यस्माद्वा स भीरुकः कातरो वा ॥

(३२) शिल्पिनि संज्ञायां च गम्यमानायां सोपपदादनुपपदाद्वा सामान्याद्धातोः क्वुन् भवति । रजतीति रजकः । वस्त्रशोधको वा । इक्षून् कुट्टयतीति, इक्षुकुट्टकः गौडिकस्येयं संज्ञा । तक्षति तनूकरोतीति तक्षको वर्धकिः शिल्पी । ध्रुवको गर्भमोचको जनः संज्ञा वा । अभ्रति गच्छति येन तदभ्रकमौषधं संज्ञा वा । चरतीति चरको वैद्यकशास्त्रं गन्ता वा । चषति भक्षयत्यस्मिन्निति चषकं पानपात्रं शालं वा मत्स्यभेदः प्राकारो वा । शालान् भञ्जन्ति यस्यां सा शालभञ्जिका क्रीडा । काष्ठं पुत्रयति यस्यां सा काष्ठपुत्रिका क्रीडा । पुष्पैः प्रचायन्ते पूजयन्ति यस्यां सा पुष्पप्रचायिका क्रीडा वा । शुनति गच्छतीति शुनकः श्वा । भषति भर्त्सयतीति भषकः श्वा वा । आमलति समन्ताद्धारयतीत्यामलको वृक्षभेदः । गौरादित्वान् ङीष् । आमलकी । कलामंशं पाति रक्षतीति कलापकश्चन्द्रमा वा । मल्लते गन्धं धरतीति मल्लिका पुष्पजातिर्वा । कन्यते दीप्यते काम्यतेऽभीप्स्यते वा तत्कनकं सुवर्णं वा । कटत्यावृणोत्यङ्गमिति कटकमाभूषणं वा । कड़ा इति प्रसिद्धं । शिखरं राजधानी नितम्बश्वा । लटति बाल इव भवतीति लटको दुर्जनो वा । इत्यादिषु शिल्पिसंज्ञयोः क्वुन् बोध्यः ॥

(३३) रमतेऽसौ रमकः । रमणशीलो वा । लमकोऽपि स एव ॥

(३४) जहाति त्यजति हानिं करोतीति जहकः त्यागी कालो वा ॥

(३५) धमति शब्दं करोति अग्निं वा संयुनक्ति स धमकः कर्मकारो वा ॥

हनो वध च ॥ ३६ ॥ वधक: । ३६ ॥

बहुलमन्यत्रापि ॥ ३७ ॥ कुहक: । कृतकम् । भिदक: । छिद्-
कम् । रुचकम् । लङ्कक: । उज्भक: । ३७ ॥

कृषेर्वृद्धिश्चोदीचाम् ॥ ३८ ॥ कार्षक: । कृषक: । ३८ ॥

उदकञ्च ॥ ३९ ॥

वृश्चिकृषो: किकन् ॥ ४० ॥ वृश्चिक: । कृषिक: । ४० ॥

प्राङि पणिकष: ॥ ४१ ॥ प्रापणिका । प्राकषिक: । ४१ ॥

मुषेर्दीर्घश्च ॥ ४२ ॥ मूषिक: । ४२ ॥

स्यमे: सम्प्रसारणं च ॥ ४३ ॥ सीमिक: । ४३ ॥

क्रिय इकन् ॥ ४४ ॥ क्रयिक: । ४४ ॥

---

(३६) हन्तीति वधको हिंसक: ॥

(३७) बहुलवचनादन्यत्रापि कुन् । कोहयति विस्मयं कारयतीति कुहक: । दाम्भिको नौहारी वा कृन्तति छिनत्तीति कृतकं मिथ्या वा भिनत्ति येन स भिदक: खड्गो वा । छिनत्ति येन तच्छिदकं वज्रो वा । रोचतेऽनेन तद्रुचकं मातुलुङ्गकं वा । विजौरा नीबू इति प्रसिद्धं वा । लङ्गति गच्छतीति लङ्गक: । प्रियो वा । उज्भत्युत्सृजतीति, उज्भक: । योगी मेघो वा ॥

(३८) कृषतीति कार्षक: कृषको वा कृषीवल: ॥

(३९) उनत्ति क्लेदयतीत्युदकं जलं वा ॥

(४०) वृश्चति छिनत्तीति वृश्चिक: विषी जीवविशेष: शूककीटो वा । कँचुआ इति प्रसिद्ध: । कृषति येन स कृषक: फाली वा ॥

(४१) प्रकर्षेण समन्तात्पणायत्यसौ प्रापणिक: । पण्यविक्रयी वा प्राकषति छिनत्तीति प्राकषिक: पारदारिको वा ॥

(४२) मुष्णाति पदार्थानिति मूषिक: । आखुर्वा स्त्रियां मूषिका । अजादित्वाट्टाप् ॥

(४३) स्यमति शब्दयतीति सीमिक: । वृक्षभेदो वा ॥

(४४) क्रीणाति द्रव्येण पदार्थान्तरं ददाति गृह्णाति वा स क्रयिक: क्रेता । विक्रयिको विक्रेता ॥

आङि पणिपनिपतिखनिभ्यः ॥ ४५ ॥ आपणिकः । आपनिकः । आपतिकः । आखनिकः । ४५ ॥

श्यास्त्याहृञविभ्य इनच् ॥ ४६ ॥ श्येनः । स्त्येनः । हरिणः । अविनः ॥ ४६ ॥

वृजेः किच्च ॥ ४७ ॥ वृजिनम् ॥ ४७ ॥

अजेरज च ॥ ४८ ॥ अजिनम् ॥ ४८ ॥

बहुलमन्यत्रापि ॥ ४९ ॥

द्रुदक्षिभ्यामिनन् ॥ ५० ॥ द्रविणम् । दक्षिणः । दक्षिणा ॥

(४५) समन्तात्पणायति व्यवहरति स आपणिकः । वैश्यो वा । आपणेन व्यवहरतीति तद्धिते ठकि सिद्धे नित्स्वरार्थं वचनम् । आपनायतीति, आपनिकः । म्लेच्छजातिर्वा । समन्तात् पततीत्यापतिकः । श्येनो वा समन्तात् खनतीत्याखनिकः । मूषिको वराहो वा ॥

(४६) श्यायति गच्छतीति श्येनः । पक्षिभेदो वा स्त्यायति शब्दयति संघातयतीति स स्त्येनः । चोरो वा । हरतीति हरिणः । मृगः पाण्डुवर्णो वा । स्त्रियां हरिणी सुन्दरी छन्दोभेदो हरितवर्णा वा । अवति रक्षणादिकं करोतीति, अविनः । अध्वर्युर्वा ॥

(४७) इनच् कित् । वृक्तेवर्जयतीति वृजिनः केशः पापं वक्रो या ॥

(४८) अजति गच्छति क्षिपति वा तत् अजिनम् । चर्म वा । अजादेशो वीभावनिवृत्त्यर्थः

(४९) कठति कृच्छ्रेण जीवतीति कठिनम् । कठोरं वा । कुण्डते दहतीति कुण्डिनः । ऋषिर्वा । यस्यापत्यं कौण्डिन्यः बर्हते प्रधानो भवतीति बर्हिणः । मयूरो वा । फलति विशीर्णो भवतीति फलिनः । फलवान् वृक्षो वा । नलति गन्धयुक्तो भवतीति नलिनम् । कमलं वा । मस्यति परिणमतीति मसिनम् । सुपिष्टं वा । मलते धरतीति मलिनः । मलयुक्तो वा । द्रुह्यति जिघांसतीति द्रुहिणः । ब्रह्मा वा । अन्धकारं द्यत्यवखण्डयतीति दिनम् । दिवसं वा । इनचः कित्वादाकारलोपः ॥

(५०) द्रवति गच्छति द्रूयते प्राप्यते वा तद् द्रव्यं सुवर्णं पराक्रमो वा । दक्षते वर्धते शीघ्रकारी भवति वा स दक्षिणः सरलो वामभागः परतंत्रोऽनुवर्त्तनं च स्त्रियां दक्षिणादानं प्रतिष्ठा वा ॥

ऋर्त्तेः किदिच्च ॥ ५१ ॥ इरिणम् ॥ ५१ ॥

वेपितुह्योर्ह्रस्वश्च ॥ ५२ ॥ विपिनम् । तुहिनम् ॥ ५२ ॥

तलिपुलिभ्यां च ॥ ५३ ॥ तलिनम् । पुलिनम् ॥ ५३ ॥

गर्वेरत उच्च ॥ ५४ ॥ गुर्विणी ॥ ५४ ॥

रुहेश्च ॥ ५५ ॥ रोहिणः ॥ ५५ ॥

महेरिनण् च ॥ ५६ ॥ माहिनम् । महिनम् ॥ ५६ ॥

क्विब् वचिप्रच्छिश्रिस्रुद्रुप्रुज्वां दीर्घोऽसंप्रसारणं च ॥ ५७ ॥
वाक् । प्राट् । श्रीः । स्रूः । द्रूः । कटप्रूः । जूः ॥ ५७ ॥

आप्नोतेर्ह्रस्वश्च ॥ ५८ ॥ आपः ॥ ५८ ॥

---

(५१) ऋच्छन्ति गच्छन्ति यत्र यस्माद्वा जनास्तत्,इरिणम् । शून्यमूषरभूमिर्वा

(५२) यो वेपते कम्पते यत्र वा तद्विपिनम् । गहनं वा । तोहति गच्छति याचते वा । तत्तुहिनं । हिमं वा । गुणे कृते ह्रस्वः ॥

(५३) तालयति प्रतितिष्ठतीति तलिनम् । विरलं पृथग्भूतं स्वल्पं स्वच्छं वा । पोलयति महान् भवतीति पुलिनम् । जलसामीप्यं वा ॥

(५४) गर्वति प्राप्नोति गर्वयति मुंचति वा सा गुर्विणी । गर्भिणी वा ॥

(५५) रोहति वीजेन जायते स रोहिणः । चन्दनवृक्षो वा । जातिवाचकात् स्त्रियां ङीष् रोहिणी गौर्वा । प्रज्ञादित्वादण् रौहिणः ॥

(५६) महति मह्यते पूज्यते वा तन्महिनम् । राज्यं वा । चादिनजनुवर्त्तते ॥

(५७) वक्ति शब्दानुच्चारयति यया सा वाक् । पृच्छतीति प्राट् शब्दं पृच्छतीति शब्दप्राट् शिष्यो वा । शब्दप्राशौ । शब्दप्राशः । छ्वोः शूडनुनासिके चेति छस्य शः। श्रयति श्रीयते वा सा श्रीः । ईश्वररचना शोभा वा । या स्रवति यस्या वा सा स्रूः यज्ञसाधनं वा । द्रूयते प्राप्यते दुःखमनया सा द्रूः । हिरण्यं वा । कटेन कटिभागेन प्रवते गच्छतीति कटप्रूः । कामुको जनः कीटो वा । जवति शीघ्रं गच्छतीति जूः शशोऽश्वो वृषभ आकाशं विद्या वा । बाहुलकात् । प्रवर्षन्ति मेघा यस्यां सा प्रावृट् । ऋतुः । द्वारयति संवृणोति यया सा द्वाः । द्वारी । उदकेन श्वयति वर्धन्ते तत् उदश्वित् । तक्रं वा । ऋचन्ति स्तुवन्ति यया सा ऋक् ॥

(५८) आप्नुवन्ति शरीरमित्यापः । अस्य नित्यं बहुवचनत्वंस्त्रीत्वं च । अपः । अद्भिः । अद्भ्यः । इत्यादि ॥

परौ व्रजेः षश्च पदान्ते ॥ ५९ ॥ परिव्राट् ॥ ५९ ॥

हुवः श्लुवच्च ॥ ६० ॥ जुहूः ॥ ६० ॥

स्रुव कः ॥ ६१ ॥ स्रुवः ॥ ६१ ॥

च्चिक् च ॥ ६२ ॥ स्रुक् ॥ ६२ ॥

तनोतिरनश्च वः ॥ ६३ ॥ त्वक् ॥ ६३ ॥

ग्लानुदिभ्यां डौः ॥ ६४ ॥ ग्लौः । नौः ॥ ६४ ॥

च्चिरव्ययम् ॥ ६५ ॥

रातेर्डैः ॥ ६६ ॥ राः ॥

गमेर्डोः ॥ ६७ ॥ गौः ॥ ६७ ॥

---

(५९) क्विप् । परितः सर्वतो व्रजति स परिव्राट् । परिव्राजौ । परिव्राजः संन्यासी वा ॥

(६०) जुहोति ददात्यत्ति वा यया सा जुहूः । स्रुग्भेदो वा ॥

(६१) स्रवति घृतमस्मात् स स्रुवः । यज्ञसाधनं वा । बहुलवचनात् । ध्रवति स्थिरं भवतीति ध्रुवम् । निश्चलं वा ॥

(६२) स्रु धातोश्चिक् प्रत्ययोऽपि भवति । घृतमस्याः स्रवति सा स्रुक् । यज्ञोचितद्रव्यं वा ॥

(६३) तनोति विस्तृता भवतीति त्वक् । त्वचौ । त्वचः । शरीरावरणं चर्म्म वल्कलं वा ॥

(६४) ग्लायति हर्षक्षयं करोतीति ग्लौः । चन्द्रमा वा । नुदति प्रेरयतीति नौः । जलतरणसाधनं वा ॥

(६५) अत्रस्थ एजन्तप्रत्ययान्तश्च्व्यन्त एवाव्ययसंज्ञो भवति । एतेन नियमेनोणादीनां व्युत्पन्नपक्षे कृन्मेजन्त इत्यनेनाच्व्यन्तानामव्ययसंज्ञा न भवति । अग्लौ ग्लौः संपद्यत इति ग्लौ करोति । ग्लौ भवति । ग्लौ स्यात् । नौ करोति । इत्यादि । ग्लौः । नौः । अत्र केवलानामव्ययसंज्ञाऽभावाद्विभक्तिलुङ् न भवति ॥

(६६) राति ददाति रायते दीयते वा सा राः । रायौ । रायः । धनं सुवर्णं वा । च्विप्रत्यये रैकरोति । इत्यादि ॥

(६७) गच्छति यो यत्र यया वा सा गौः । पशुरिन्द्रियं सुखं किरणो वज्रं चन्द्रमा भूमिर्वाणी जलं वा । गौरिवाऽयोगमनं प्राप्तिर्वाऽस्येति गवयो गोसदृशो वनपशुविशेषः । स्त्री गवयी । गौरादित्वान् ङीष् । च्विप्रत्यये गो करोतीत्यादि । द्योतन्ते लोका अस्यां वा यया द्योतते सा द्यौः । अन्तरिक्षं वा । द्यावौ । द्यावः । इत्यादि ॥

भ्रमेश्च डूः ॥ ६८ ॥ भ्रूः । अग्रेगूः ॥ ६८ ॥
दमेर्डोसिः ॥ ६९ ॥ दोः ॥ ६९ ॥
पणेरिज्यादेश्च वः ॥ ७० ॥ वणिक् ॥ ७० ॥
वशः कित् ॥ ७१ ॥ उशिक् ॥ ७१ ॥
भृज उच्च ॥ ७२ ॥ भुरिक् ॥ ७२ ॥
जसिसहोरुरिन् ॥ ७३ ॥ जसुरिः । सहुरिः ॥ ७३ ॥
सुयुरुवृञो युच् ॥७४॥ सवनः । यवनः । रवणः । वरणः॥७४॥
अशेरशच् ॥ ७५ ॥ रशना ॥ ७५ ॥
उन्देर्नलोपश्च ॥ ७६ ॥ ओदनः ॥ ७६ ॥
गमेर्गश्च ॥ ७७ ॥ गगनम् ॥ ७७ ॥

(६८) चाद्गमधातोर्डूः । भ्रमति चलतीति भ्रूः । नेत्रयोरुपरि रेखा वा । अग्रे गच्छतीत्यग्रेगूः । सेवको वा ॥

(६९) दाम्यत्युपशाम्यति यो येन वा स दोः । दोषौ । दोषः । बाहुर्वा ॥

(७०) पणायति व्यवहरतीति वणिक् । वणिजौ । वणिजः । वैश्यो वा । प्रज्ञादित्वात् स्वार्थेऽण् वाणिजः ॥

(७१) वष्टि यं कामयते यत्काम्यते वा स उशिक् । उशिजौ । उशिजः । अग्निर्घृतं वा ॥

(७२) इजिः कित् । भरति सर्वं धरतीति भुरिक् । भूमिर्वा । भुरिजौ । भुरिजः ॥

(७३) जसयति मुञ्चति जासयति हिनस्ति वेति जसुरिः । वज्रं वा । सहते भारमिति सहुरिः । सूर्यो भूमिर्वा ॥

(७४) सवत्युत्पादयति सुनोति निस्सारयति रसान् वा स सवनः । चन्द्रमा वा । यौति मिश्रयत्यमिश्रयति वा स यवनः । म्लेच्छभेदो वा । रौति शब्दयतीति रवणः । कोकिलः पक्षी वा । वृणोति स्वीकरोतीति वरणः । उदकं वृक्षभेदो वा ॥

(७५) युच् धातोरशादेशश्च । अश्नुते व्याप्नोतीति रशना । स्त्रियाः कटिभूषणं वा । दन्त्यसकारवांस्तु रसना शब्दो नन्द्यादित्वाल्ल्युप्रत्ययान्तः । रसयत्यास्वादयति यया सा रसना जिह्वा । कृत्ल्युटो बहुलमिति करणे ल्युः ॥

(७६) उनत्त्यार्द्रीभवतीत्योदनः । भक्तं वा ॥

(७७) मस्य गः गच्छन्त्यस्मिन्निति गगनम् । आकाशं वा ॥

बहुलमन्यत्रापि ॥ ७८ ॥

रञ्जेः क्युन् ॥ ७९ ॥ रजनम् ॥ ७९ ॥

भूसूधूभ्रस्जिभ्यश्छन्दसि ॥ ८० ॥ भुवनम् । सुवनम् । निधुवनम् । भृज्जनम् ॥ ८० ॥

कॄपॄवृजिमन्दिनिधाञः क्युः ॥ ८१ ॥ किरणः । पुरणः । वृजनम् । मन्दनम् । निधनम् ॥ ८१ ॥

धृषेर्धिषच् संज्ञायाम् ॥ ८२ ॥ धिषणा ॥ ८२ ॥

(७८) अन्यधातुभ्योपि बहुलं युच् प्रत्ययो भवति । द्योततेऽसौ द्योतनः प्रदीपो वा । स्यन्दते प्रस्रवति गच्छतीति स्यन्दनः । रथो वा । नयते प्राप्नोति रूपं येन तन्नयनम् । नेत्रं वा । चन्दत्याह्लादयतीति चन्दनम् । सुगन्धिर्वृक्षो वा । रोचतेऽसौ रोचना । गोरोचनमौषधं वा । अस्यति प्रक्षिपतीति, असनः । पीतवर्णः शालवृक्षो वा। राजानमततीति राजातनः । पुष्पं वा । शृणोत्यनया सा श्रवणा नक्षत्रं वा । एवमन्येऽपि यथाप्रयोग युच्प्रत्ययान्ताः शब्दाः साध्याः ॥

(७९) रजति वस्त्राण्यनेन तद्रजनम् । कुसुम्भं वा । स्त्रियां ङीष् । रजनी हरिद्रा । ल्युट्प्रत्यये सति रञ्जनमित्येव स्वरभेदश्च भवति । बाहुलकात् । कल्पतेऽसौ कृपणः । लोभयुक्तो वा ॥

(८०) क्युन् । भवतीति भुवनम् । लोको वा । बहुलवचनाद् भाषायामपि प्रयुज्यते । सूते सूयते वा स सुवनः । ईश्वरः सूर्यो वा । धूनोति कम्पयतीति धुवनः। अग्निर्वा । निधुवनम् । रतिक्रीडा वा यद् यस्मिन् वा भृज्जति परिपक्वं भवतीति भृज्जनम्। अन्नभर्जनकपालं वा ॥

(८१) किरति विक्षिपत्यन्धकारमिति किरणः । पिपर्त्ति पालयति पूरयति वा स पुरणः । जलैः पूर्णो भवतीति समुद्रो वा । वृक्तं वर्जयतीति वृजनम् । अन्तरिक्षं बलं वा । यो येन वा मन्दते स्तौति स्वपिति कामयते वा तन् मदनम् । स्तोत्रं वा । नितरां दधाति यत्तन्निधनम् । मरणं वा । बाहुलकात्केवलादपि धनम् ॥

(८२) धृष्णोति प्रागल्भ्यं ददाति स धिषणः गुरुः । धिषणा बुद्धिर्वा । अत्र संज्ञाग्रहणेन ज्ञायते । उणादयः सामान्यार्थे यौगिका भवन्तीति । संज्ञायास्तस्मिन्नर्थे रूढत्वात् । यदि च प्रकृतिप्रत्ययविभागेन उणादिभ्यो यौगिकोऽर्थो न निस्सरेत् तर्हि सर्वे उणादिस्थाः शब्दाः संज्ञावाचका एव स्युः । पुनः संज्ञाग्रहणमनर्थकं स्यात्

हन्तेर्घुरच् ॥ ८३ ॥ घुरणः ॥ ८३ ॥

वर्त्तमाने पृषद्‌बृहन्महज्जगच्छतृवच्च ॥ ८४ ॥

संश्चत्तृपद्वेहत् ॥ ८५ ॥

छन्दस्यसानच्शुजृभ्याम् ॥ ८६ ॥ शवसानः । जरसानः ॥ ८६ ॥

ऋञ्जिवृधिमन्दिसहिभ्यः कित् ॥ ८७ ॥ ऋञ्जसानः । वृधसानः । मन्दसानः । सहसानः ॥ ८७ ॥

(८३) हन्ति हननेन वा प्रादुर्भवति स घुरणः । शब्दो वा ॥

(८४) पृषदादयो वर्त्तमानार्थवाचका अतिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । शतृवच्चैषां कार्यं भवतीति । पर्षति सिञ्चति हिनस्ति वा तत् पृषत् । मृगविशेषो विन्दुर्वा । पृषती । पृषन्ति । स्त्रियां पृषती । वर्हति वर्धतेऽसौ बृहत् । महत्यर्थे त्रिलिङ्गः । स्त्रियां बृहती छन्दोभेदो वा । महति पूजयति पूज्यते वा तन्महत् । महान् । महती भावो महिमा । स्त्रियां ङीप् । महती । नारदस्य सप्ततंत्री वीणा वा । गच्छतीति जगत् । धातोर्जगादेशः । संसारे नपुंसकं वायुर्वा जगत् पुंसि । जङ्गमवाचिनि त्रिलिङ्गः । स्त्रियां जगती छन्दोभेदो जनो वा ॥

(८५) एतेऽप्यतिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । संश्चीयतेऽसौ संश्चत् कुहको वा । प्रत्ययस्य सुट् धातोरिकारलोपश्च । संश्चदिवाचरति संश्चायते धूर्त्तः । भृशादित्वात्-क्यङ् । तृप्नोति प्रीणयतीति तृपत् । छत्रं वा । विशेषेण हन्तीति वेहत् । विहन्ति गर्भमिति गर्भोपघातिनी गौर्वा । वेरुपसर्गस्यैकारादेशो धातोश्च टिलोपः । पूर्वसूत्रात् पृथक्करणं शतृवद्भावनिवृत्त्यर्थम् । तेन वेहती । वेहतः । संश्चती । इत्यादि-सिद्धम् ॥

(८६) शवन्ति गच्छन्त्यस्मिन् स शवसानः । मार्गो वा । जीर्यति वयसा हीनो भवतीति जरसानः । वृद्धो जनो वा । बाहुलकाद् दृणाति तमो विदारयतीति दरसानः । प्रकाशो वा । तरयति येन स तरसानः । नौका वा । वृणोतीति वरसानः । क्षतदारो वा ॥

(८७) ऋज्जत्योषध्यादिकं पाचयतीति, ऋञ्जसानः । मेघो वा । वर्धतेऽसौ वृधसानः । पुरुषो वा । मन्दते सुप्त्यादिकं करोतीति मन्दसानः । जीवोऽग्निर्वा । सहतेऽसौ सहसानः । मयूरो यज्ञो वा ॥

अर्त्तेर्गुणः शुट् च ॥ ८८ ॥ अर्शसानः ॥ ८८ ॥

सम्यानच् स्तुवः ॥ ८९ ॥ संस्तवानः ॥ ८९ ॥

युधिबुधिदृशः किच्च ॥ ९० ॥ युधानः । बुधानः । दृशानः ॥ ९० ॥

हुच्छेः सनो लुक् छलोपश्च ॥ ९१ ॥ जुहुराणः ॥ ९१ ॥

श्वितेर्दश्च ॥ ९२ ॥ शिश्विदानः ॥ ९२ ॥

मुचियुधिभ्यां सन्वच्च ॥ ९३ ॥ मुमुचानः । युयुधानः ॥ ९३ ॥

तृन्तृचौ शंसिक्षदादिभ्यः संज्ञायां चानिटौ ॥ ९४ ॥ शंस्ता । शंस्तारौ । क्षत्ता । क्षत्तारौ ॥ ९४ ॥

नप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृपोतृभ्रातृजामातृमातृदुहितृ ॥ ९५ ॥

(८८) य ऋच्छति प्राप्नोति सर्वान् स, अर्शसानः । अग्निर्वा । धातोर्गुणः प्रत्ययस्य शुडागमश्च ॥

(८९) सम्यक् स्तौतीति संस्तवानः । वाग्मी वा ॥

(९०) युध्यतेऽसौ युधानः । शत्रुर्वा । बुध्यते स बुधानः । आचार्यो वा । पश्यतीति दृशानः । लोकपालः सूर्यो वा । बाहुलकात् कल्पते समर्थो भवतीति कृपाणः खड्गो वा ॥ पाषयति स्थूलो भवतीति पाषाणः । णित्त्वाद्वृद्धिः ॥

(९१) हूर्च्छति कुटिलो भवतीति जुहुराणः । चन्द्रमा वा ॥

(९२) सनो लुक् तकारस्य दकारः किदित्यनुवृत्तेर्गुणनिषेधः । श्वेततेऽसौ शिश्विदानः । पापकर्मा वा ॥

(९३) मुञ्चत्यसौ मुमुचानो मोचकः । युध्यतेऽसौ युयुधानो योद्धा ॥

(९४) शंसादिभ्यः क्षदादिभ्यश्च यथाक्रमं तृन्तृचौ तौ चानिटौ । शंसति स्तौतीति शंस्ता स्तोता । अप्तृन्तृजिति सूत्रे नप्तृप्रभृतीः पृथक् पाठादौणादिकयोस्तृन्तृचोर्ग्रहणं न भवति । तेन शंस्तरौ । शंस्तरः इत्यादिषु दीर्घो न भवति शास्ति शिक्षते धर्मादिकमिति शास्ता । पण्डितो वा । प्रशास्ता राजा । प्रशास्तारौ । प्रशास्तारः । परिगणनाद्दीर्घः । क्षद संवृताविति सौत्रोधातुः । क्षदति संवृणोतीति क्षत्ता । सारथिर्द्वारपालो वैश्यायां शूद्राज्जातो वा । चुनत्ति संपिनष्टि येन स चोत्ता मुसलो वा । उन्नयति कार्याणीत्युन्नेता । ऋत्विग्वा । मन्यते जानात्यसौ मन्ता । विद्वान् । हन्तीति हन्ता चौरो वा । धाता । ईश्वरो वा । उपदेष्टा गुरुः । इत्यादि ॥

स्वसेर्ऋन् ॥ ९६ ॥ स्वसा ॥ ९६ ॥

यतेर्वृद्धिश्च ॥ ९७ ॥ याता ॥ ९७

नञि च नन्देः ॥ ९८ ॥ ननन्दा । ननान्दा ॥ ९८ ॥

दिवेर्ऋ ॥ ९९ ॥ देवा ॥ ९९ ॥

नयतेर्डिच्च १०० ॥ ना ॥ १०० ॥

सव्येस्थश्छन्दसि ॥ १०१ ॥ सव्येष्ठा ॥ १०१ ॥

अर्त्तिसृधृधम्यम्यश्यवितृभ्योऽनिः ॥ १०२ ॥ अरणिः । सरणिः धरणिः । धमनिः । अमनिः । अशनिः । अवनिः । तरणिः ॥१०२॥

---

(९५) नप्त्रादयो दश तृन्तृजन्ता निपात्यन्ते । नपतीति नप्ता । पौत्रो दौहित्रो वा । नमुः पुत्रः प्रनप्ता स्यात् । नप्त्री पौत्री । नञः प्रकृतिभावः । नयतेः षुक् । नयतीति नेष्टा । ऋत्विग्वा । दीप्यतेऽसौ त्वष्टा । सूर्यो वा इकारस्याकारः । जुहोतीति होता यजमानो वा । व्यापकत्वेन सर्वं पुनातीति पोता विष्णुरीश्वरः । भ्राजते दीप्यतेऽसौ भ्राता । सोदर्यो वा । जकारलोपः । जायां कन्यां माति मिनोति मिमीते मार्जयति वा स जामाता दुहितुः पतिः । मृजधातोः सति रेफजकारलोपः । मानयति सत्करोतीति माता । उत्पादिका वा । स्वस्रादित्वाट्टाप्निषेधः पाति रक्षतीति पिता । जनको वा । दोग्धि कार्याणि प्रपूरयतीति दुहिता पुत्री वा । दुहितुरपत्यं दौहित्रः ॥

(९६) सुष्ठु स्यतीति स्वसा भगिनी वा ॥

(९७) यततेऽसौ याता । भ्रातॄणां भार्याः परस्परं यातारो भवन्ति ॥

(९८) न नन्दति तुष्यतीति ननान्दा बाहुलकाद् ह्रस्वभावे ननन्दा । पत्युर्भगिनी वा ॥

(९९) दीव्यति क्रीडादिकं करोतीति देवा । पत्युः कनीयान् भ्राता वा ॥

(१००) ऋप्रत्ययस्य डित्वाट्टिलोपः । कार्याणि नयतीति ना । नरौ । नरः । वृद्धस्त्रीवा वधूर्वा ॥

(१०१) डित्वादालोपः । सव्ये वामभागे तिष्ठतीति सव्येष्ठा । सारथिर्वा सप्तम्या अलुक् ॥

(१०२) ऋच्छति प्राप्नोति येन स, अरणिः । अग्न्युत्पत्तये मथनी द्वे दारुणी वा । सरन्ति गच्छन्त्यस्मिन् स सरणिः । मार्गो वा । ण्यन्तात्सृधातोरनिः सारणिः

आङि शुषे सनश्छन्दसि ॥ १०३ ॥ आशुशुक्षणिः ॥ १०३ ॥
कृषेरादेश्च धः ॥ १०४ ॥ धर्षणिः ॥ १०४ ॥
अदेर्मुट् च ॥ १०५ ॥ अद्मनिः ॥ १०५ ॥
वृतेश्च ॥ १०६ ॥ वर्त्तनिः ॥ १०६ ॥
क्षिपेः किच्च ॥ १०७ ॥ क्षिपणिः ॥ १०७ ॥
अर्चिशुचिहुसृपिछादिछर्दिभ्य इसिः ॥१०८॥ अर्चिः।शोचिः।
हविः। सर्पिः। छदिः। छर्दिः ॥ १०८ ॥
बृंहेर्नलोपश्च ॥ १०९ ॥ बर्हिः ॥ १०९ ॥

स्त्रियां सारणी। बाहुलकात्। शृणाति हिनस्तीति शरणिः धरति सर्वमिति धरणिः पृथिवी वा। धमिः सौत्रो धातुः धमति प्रापयति रसादिकमिति धमनिः नाड़ी वा अमतीत्यमनिः। गतिर्वा। येनाश्नाति, योऽश्नुते व्याप्नोति वा। स, अशनिः। वज्रं वा। अवति रक्षणादिकं करोतीत्यवनिः। भूमिर्वा। तरति येन यया वा। स सा वा तरणिः। सूर्यः कुमारी नौकौषधिभेदो वा। बाहुलकात् रजतीति रजनिः रात्रिर्वा। नलोपः। स्त्रियां रजनी द्राक्षा हरिद्रा वा।

(१०३) समन्तादाङ्पूर्वादनिः प्रत्ययः। समन्तात् शुष्यन्ति पदार्था येन स आशुशुक्षणिः। अग्निर्वा ॥

(१०४) कृषतीति धर्षणिः। पुंश्चली स्त्री वा ङीष् धर्षणी ॥

(१०५) अत्तीत्यद्मनिः। अग्निर्वा ॥

(१०६) वर्तते यस्मिन्निति वर्तनिः। मार्ग एकपदी वा ॥

(१०७) क्षिपत्यनेन शत्रून् स क्षिपणिः। आयुधं वा ॥

(१०८) अर्चति येन तदर्चिः। दीप्तिर्वा। शोचति शोचयतीति शोचिः। प्रकाशो वा। हूयते यत्तद्धविः। होमयोग्यं वस्तु वा। यो येन वा सर्पति तत् सर्पिः। घृतं वा। छादयति येन तच्छदिः। छादनं तृणादिकाछादनसाधनं वा। इस्मन्, त्रनिति ह्रस्वादेशः। छर्दति यत्तच्छर्दिः। वमनं व्याधिर्वा। बाहुलकात् [illegible]न्तादव तीति, आविः। प्राकट्यम्। अव्ययशब्दोऽयम् ॥

(१०९) बृंहति वर्द्धते तद बर्हिः। दर्भो वा ॥

द्युतेरिसिन्नादेश्च जः ॥ ११० ॥ ज्योतिः ॥ ११० ॥

वसौ रुचेः संज्ञायाम् ॥ १११ ॥ वसुरोचिः ॥ १११ ॥

भुवः कित् ॥ ११२ ॥ भुविः ॥ ११२ ॥

सहो धश्च ॥ ११३ ॥ सधिः ॥ ११३ ॥

पिबतेस्थुक् ॥ ११४ ॥ पाथिः ॥ ११४ ॥

जनेरुसिः ॥ ११५ ॥ जनुः ॥ ११५ ॥

मनेर्धश्छन्दसि ॥ ११६ ॥ मधुः ॥ ११६ ॥

अर्त्तिपॄवपियजितनिधनितपिभ्यो नित् ॥ ११७ ॥ अरुः । परुः । वपुः । यजुः । तनुः । धनुः । तपुः ॥ ११७ ॥

एतेर्णिच्च ॥ ११८ ॥ आयुः ॥ ११८ ॥

चक्षेः शिच्च ॥ ११९ ॥ चक्षुः ॥ ११९ ॥

(११०) द्योतते प्रकाशते तज्ज्योतिः । अग्निः सूर्यादिकं वा । ज्योतिरधिकृत्य कृतो ग्रंथो ज्योतिषम् । संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वाद् वृद्धिनिषेधः ॥

(१११) वसूनग्न्यादीन् रोचतेऽसौ वसुरोचिः । यज्ञो वा । बाहुलकात् केवलादपि रोचिः ज्वाला वा ॥

(११२) इसिन् कित् । यो भवति यस्मिन् वा स भुविः समुद्रो वा ॥

(११३) इसिन् । सहते भारमिति सधिः । अनड्वान् वा ॥

(११४) पिबति यो येन वा तत् पाथिः चक्षुः समुद्रो वा ॥

(११५) जायते यत्तज्जनुः । जनुषी । जननं वा । बाहुलकान्मनधातोरपि मन्यते जानातीति मनुः । मनुषी ॥

(११६) मन्यते बुध्यते यो येन वा तन् मधुः पवित्रद्रव्यं वा ॥

(११७) ऋच्छति प्राप्नोतीत्यरुः । आदित्यो व्रणो वा । पिपर्त्ति येन तत् परुः । ग्रंथिर्वा । वपति बीजादिकमस्मात्तद्वपुः शरीरं वा । यजति येन तद्यजुः । वेदविशेषो वा । तनोति कार्याण्यनेन तत्तनुः शरीरं वा । दिधन्ति धनादिकं प्राप्नोति येन तद्धनुः बाणक्षेपणं वा । तपति दुःखयतीति तपुः सूर्योऽग्निः शत्रुर्वा ॥

(११८) ईयते प्राप्यते यत्तदायुः । जीवनं वा जटापूर्वाज्जटायुः । पक्षिराजः ॥

(११९) चष्टे रूपमनुभवन्त्यनेन तच्चक्षुः । नेत्रं वा । चक्षुषा गृह्यत इति चाक्षुषं रूपम् ।

मुहेः किच्च ॥ १२० ॥ मुहुः ॥ १२० ॥

कॄगॄशॄवृञ्चतिभ्यः ष्वरच् ॥ १२१ ॥ कर्वरः । गर्वरः । शर्वरी वर्वरः । चत्वरम् ॥ १२१ ॥

नौ षदेः ॥ १२२ ॥ निषद्वरः ॥ १२२

इत्युणादिषु द्वितीयः पादः ॥

छित्वरछत्वरधीवरपीवरमीवरचीवरतीवरनीवरगह्वरकट्वरसं यद्वराः ॥ १ ॥

---

(१२०) मुह्यति भ्रान्तो भवतीति मुहुः । पौनः पुन्येऽर्थेऽव्ययं वा ॥

(१२१) किरति विक्षिपतीति कर्वरः । व्याघ्रो दुष्टो वा । कर्वरी रात्रिर्व्याघ्री दुष्टा वा । गिरति निगरतीति गर्वरोऽहंकारः । अहङ्कारयोगाद्गर्वरो नायकः शृणाति हिनस्ति प्रकाशमिति शर्वरी रात्रिर्वा । वृणातीति वर्वरः । प्राकृतजनो वा । चतते याचते स्वीक्रियते यत्तत् चत्वरम् । अङ्गनं वा ॥

(१२२) निषीदति यो यत्र वा स निषद्वरः । पङ्को निषद्वरी रात्रिर्वा ॥

इत्युणादिव्याख्यायां वैदिकलौकिककोषे द्वितीयः पादः ॥

---

(१) छित्वरादय एकादश शब्दाः ष्वरच् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । छिनत्तीति छित्वरः धूर्त्तः । शत्रुश्छेदनद्रव्यं वा । छदतेऽपवारयतीति छत्वरः । गृहं लताच्छादितं स्थानं वा । अत्रोभयत्र धातुदकारस्य तकारः । डुधाञ्, पा पाने, मा माने । एषामीत्वमन्त्यस्य । दधातीति धीवरः । नौवाहको वा । पिबति दुग्धादिकमिति पीवरः स्थूलो वा । माति मीनाति हिनस्ति वा स मीवरः। हिंसको वा । चिनोति त्वगादिना चीयते वा स चीवरः । चीवरं वस्त्रं मुनिस्थानं वा । धातोर्दीर्घादेशः । तीरयति कर्म्मसमाप्तिं करोतीति तीवरो जातिविशेषो वा । रेफलोपो गुणाभावश्च । नयतीति नीवरः । गुणनिषेधः । परिव्राट् वा । गाहते विलोडयतीति गह्वरम् । गहनं वा । ह्रस्वादेशः । कटति वर्षत्यावृणोति वा तत् कट्वरम् । भोज्यं व्यञ्जनं वा । संयच्छतीति संयद्वरः । नृपो वा । मकारस्य दकारः । बाहुलकात् । उपजुह्वोतीत्युपह्वरः । रथो वा । ष्वरच् प्रत्ययस्य षित्वात् स्त्रियां छित्वरी । इत्यादि सर्वत्र ङीष् ॥

दुणसिञ्जिदीङुष्यविभ्यो नक् ॥ २ ॥ दूनः । सिनः । जिनः दीनः । उष्णः । ऊनः ॥ २ ॥

फेनमीनौ ॥ ३ ॥

कृषेर्वर्णे ॥ ४ ॥ कृष्णः ॥ ४ ॥

बन्धेर्ब्रधिबुधी च ॥ ५ ॥ ब्रध्नः । बुध्नः ॥ ५ ॥

धापॄवस्यज्यतिभ्यो नः ॥ ६ ॥ धानाः । पर्णम् । वस्नः । वेनः अत्नः ॥ ६ ॥

लक्षेरट्मुट् च ॥ ७ ॥ लक्षणम् । लक्ष्मणम् ॥ ७ ॥

वनेरिच्चोपधायाः ॥ ८ ॥ वेन्ना ॥ ८

(२) एतीति इनः । ईश्वरो राजा प्रभुः सूर्यो वा । इनेन स्वामिना सह वर्त्त इति सेना । सिनोति बध्नातीति सिनः । काणो वा । जयतीति जिनः । अतिवृद्ध जयशीलो नास्तिकभेदो वा । दीयते क्षीणो भवतीति दीनः । दुःखी वा । ओषति दहतीत्युष्णम् । ईषत्तप्तं वा । वाच्यलिङ्गः । अवति रक्षादिकं करोतीत्यूनः असंपूर्णं वा ॥

(३) स्फायते वर्द्धते स फेनः । डिण्डीरः । समुद्रफेन इतिप्रसिद्धः । जलविकारं वा । फेनायते नदी । मीनाति हिनस्तीति मीनः । राश्यन्तरो मत्स्यो वा ॥

(४) कृषतीति कृष्णो नीलवर्णो वा । कृष्णा पिप्पली वा । बाहुलकात् । जिघ घ्नरति चित्तं यया सा घृणा दौर्मनस्यं वा ॥

(५) बध्नातीति ब्रध्नः । बुध्नो वा । ब्रध्नो महान् सूर्यो वा । बुध्नो मेघो व मूलमन्तरिक्षं वा ॥

(६) दधातीति धानाः । अग्निपक्वा यवा वा । नित्यं स्त्रीलिङ्गो बहुवचनश्च पिपर्त्ति पालयति पूरयति वा तत् पर्णम् । पत्रं वा । वसति येन स वस्नः । मूल्य वेतनं वा । अजति गच्छति प्राप्नोति वा स वेनः । कमनीयः प्रजापतिरीश्वरो वा अतति निरन्तरं गच्छतीति अत्नः । सूर्यो वा । बाहुलकात् शृणोतीति श्रोणः । पङ्गुर्वा ।

(७) लक्षयतीति लक्षणः । लक्ष्मणम् । चिह्नं नाम वा । रामभ्राता लक्ष्मणः वा । हंसस्त्री लक्ष्मणा सारसी वा ॥

(८) वन्यते सम्भज्यते या सा वेन्ना । नदी वा ॥

सिवेष्टेर्यू च ॥ ६ ॥ स्योनः ॥ ६ ॥

कृवृजृसिद्रुपन्यनिस्वपिभ्यो नित् ॥ १० ॥ कर्णः । वर्णः । जर्णः
सेना । द्रोणः । पन्नः । अन्नम् । स्वप्नः । १० ॥

धेट इच्च ॥ ११ ॥ धेनः । धेना । ११ ॥

तृषिशुषिरसिभ्यः कित् ॥१२॥ तृष्णा । शुष्णः । रस्नम् । १२

सुञो दीर्घश्च ॥ १३ ॥ सूना । १३ ॥

रमेस्तश्च ॥ १४ ॥ रत्नम् । १४ ॥

रास्नासास्नास्थूणावीणाः ॥ १५ ॥

---

(६) सीव्यति तन्तून्सन्तनोतीति स्यूनः । आदित्यो वा । टिभागस्य यू इत्य
देशः । बाहुलकात् केवलोऽपि नप्रत्ययस्तेन ऊठादेशे कृते स्योनः सुखी स्योनं सुख
मित्यपि सिद्धं भवति ॥

(१०) नो नित् । किरति विक्षिपतीति कर्णः । श्रोत्रं क्षत्रियविशेषो वा
वृणोति व्रियते वा स वर्णः । ब्राह्मणादिः शुक्लादिः स्तुतिर्यशोरूपमक्षरं स्तोकारश्च
जीर्यतीति जर्णः । चन्द्रमा वृक्षो वा । सिनोति बध्नाति शत्रूनिति सेना । इनेः
सह वर्त्तत इति पूर्वमुक्तम् । द्रवति गच्छतीति द्रोणः । कृष्णकाको मानविशेषोऽ
नगुरुर्वा । द्रोणी जलसेचनी वा । पनायति स्तौतीति पन्नः । सर्पो वा । अनि
जीवयतीत्यन्नमोदनादिकं वा । यः स्वपिति यत् सुप्यते वा स स्वप्नः । निद्रा वा ।

(११) धयन्ति पिबन्ति यस्मात्स धेनः समुद्रो धेना नदी वा । आत्वनिवृत्त्य
इकारादेशः ॥

(१२) तृष्यति काङ्क्षति पिपासति वा यया सा तृष्णा । लिप्सा पिपासा व
शुष्यति रसादिकमिति शुष्णः । सूर्योऽग्निर्वा । रसति शब्दयतीति रस्नम् । द्रव्यं वा

(१३) यः सुनोति यत्र वेति सूना । जन्तुवधस्थानं वा ॥

(१४) ण्यन्ताद्रमेर्नप्रत्ययो मस्य तश्चादेशः । रमयति हर्षयतीति रत्नम् । जातौ
जातौ यदुत्कृष्टं तद्धि रत्नं प्रचक्षते । अश्वरत्नम् । गजरत्नम् । मणिरत्नम् । स्त्रीरत्नम्
इत्यादि ॥

(१५) रसति शब्दयतीति रास्ना । गन्धद्रव्यं वा । सस्ति स्वपिति यया स
सास्ना । गवादीनां कण्ठाऽधोभागचर्म वा । तिष्ठति छादनादिकमनया सा स्थूण
गृहस्तम्भो वा । आकारस्य ऊ आदेशः । वेति व्याप्नोति शब्दोऽस्याः सा वीणा वाद्य
विशेषो वा । निपातनात्सत्वम् ॥

गादाभ्यामिष्णुच् ॥ १६ ॥ गेष्णुः । देष्णुः । १६ ॥

कृत्यशूभ्यां क्स्नः ॥ १७ ॥ कृत्स्नम् । अक्ष्णम् ॥ १७ ॥

तिजेर्दीर्घश्च ॥ १८ ॥ तीक्ष्णम् । १८ ॥

श्लिषेरच्चोपधायाः ॥ १९ ॥ श्लक्ष्णम् । १९ ॥

यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो युच् ॥ २० ॥ यज्युः । मन्युः । शुन्ध्युः । दस्युः । जन्युः ॥ २० ॥

भुजिमृङ्भ्यां युक्त्युकौ ॥ २१ ॥ भुज्युः । मृत्युः । २१ ॥

सरतेरयुः ॥ २२ सरयुः । २२ ॥

पानीविषिभ्यः पः ॥ २३ ॥ पापम् । नीपः । वेष्पः । २३ ॥

च्युवः किच्च ॥ २४ ॥ च्युपः ॥ २४ ॥

---

(१६) गायति शब्दं करोतीति गेष्णुः । गायको वा । ददातीति देष्णुः । दानशीलो वा ॥

(१७) कृन्तति खल्यमिति कृत्स्नम् । संपूर्णं वा । अश्नुते व्याप्नोतीत्यक्ष्णम् । अखण्डं वा ॥

(१८) तितिक्षते तत् तीक्ष्णम् । तीव्रम् । वाच्यलिङ्गोऽयं शब्दः । तीक्ष्णा बुद्धिः । तीक्ष्णः पुरुषः । तीक्ष्णं घृतम् ॥

(१९) कृस्नः । श्लिष्यतीति श्लक्ष्णम् । सुकुमारं त्रिलिङ्गेषु वा ॥

(२०) यजतीति यज्युः । अध्वर्युर्वा । मन्यतेऽसौ मन्युः । शोकः क्रोधो वा । शुन्धतीति शुन्ध्युः । अग्निर्वा । दस्यति नाशयति परपदार्थानिति दस्युः । तस्करो वा । जायते प्रादुर्भवतीति जन्युः । शरीरी वा । बाहुलकादनादेशाभावः ॥

(२१) यो भुनक्ति यत्र वा स भुज्युः पात्रं वा । म्रियत इति मृत्युः । शरीरवियोगो वा स्त्रीलिंगः पुंल्लिंगश्च ॥

(२२) यः सरति यत्र जलानि वा सरन्ति स सरयुः । नदी वा । अयूप्रत्यय इति पाठान्तरम् । सरयूः ॥

(२३) पान्ति रक्षन्त्यात्मानमस्मादिति पापमधर्मो वा । तद्योगात्पापः पुरुषः । नयतीति नेपः । पुरोहितो वा । वेवेष्टि व्याप्नोतीति वेष्पः । पेयमुदकं वा ॥

(२४) च्यवते प्राप्नोति वदति वा येन स च्युपः । मुखं वा ॥

स्तुवो दीर्घश्च ॥ २५ ॥ स्तूपः ॥ २५ ॥

सुशृभ्यां निच्च ॥ २६ ॥ सूपः । शूर्पम् ॥ २६ ॥

कुयुभ्यां च ॥ २७ ॥ कूपः । यूपः ॥ २७ ॥

खष्पशिल्पशष्पबाष्परूपपर्पतल्पाः ॥ २८ ॥

स्तनिहृषिपुषिगदिमदिभ्यो णेरित्नुच् ॥ २९ ॥ स्तनयित्नुः । हर्षयित्नुः । पोषयित्नुः । गदयित्नुः । मदयित्नुः ॥ २९ ॥

कृहनिभ्यां क्त्नुः ॥ ३० ॥ कृत्नुः । हत्नुः ॥ ३० ॥

गमेः सन्वच्च ॥ ३१ ॥ जिगत्नुः ॥ ३१ ॥

(२५) स्तौतीति स्तूपः । भूमिसमुच्छ्रायो यज्ञवेदिर्वा ॥

(२६) किद् दीर्घश्च । सुनोति सूयते पच्यते वा स सूपः पक्वं द्विदलान्नं वा शृणाति हिनस्तीति शूर्पं मानभेदोऽन्नशोधकं पात्रं वा ॥

(२७) कित् दीर्घश्च । कौति शब्दयतीति कूपः । यौति मिश्रयतीति यूपः । यज्ञशाला स्तम्भो वा ॥

(२८) खष्पादयः पप्रत्ययान्ता निपाताः । खनतीति खष्पः । क्रोधो बलात्कारो वा । नकारस्य षत्वम् । यत् शीलति समादधाति तत् शिल्पम् कौशलं वा। ह्रस्वादेशः। शष्यते हन्यते तच्छष्पम् । बालतृणं कान्तिक्षयो वा । षत्वम् । बाधते दुःखयतीति बाष्पम् । नेत्रजलमूष्मा वा । धकारस्य सत्वम् । रौति शब्दयतीति रूपम् । आकृतिः स्वभावः सौन्दर्यं वा । दीर्घादेशः । पिपर्त्तीति पर्पम् । गृहं बालतृणं वा । तलयति प्रतिष्ठां करोतीति तल्पम् । शय्या स्त्रियो वा । बाहुलकात् । चमति भक्षयतीति चम्पा । नगरी वा । पाति रक्षतीति पम्पा। नदी वा । ह्रस्वत्वं मुडागमश्च ॥

(२९) स्तनयति शब्दयतीति स्तनयित्नुः । मेघो विद्युद्वा । हर्षयतीति हर्षयित्नुः । हर्षयिता । सुवर्णं वा। पोषयतीति पोषयित्नुः । पोषयिता। गादयतीति गदयित्नुः । वावदूको वा । मादयतीति मदयित्नुः । मदिरा वा । अत्र सर्वत्र । अयामन्ताल्वाय्येत्नु० इतिसूत्रेण णेरयादेशः ॥

(३०) करोतीति कृत्नुः । शिल्पी वा यो हन्ति येन वा स हत्नुः । व्याधिः शस्त्रं वा ॥

(३१) गमयति शरीराणीति जिगत्नुः प्राणो वा ॥

दाभाभ्यां नुः ॥ ३२ ॥ दानुः । भानुः ॥ ३२ ॥

वचेर्गश्च ॥ ३३ ॥ वग्नुः ॥ ३३ ॥

धेट इच्च ॥ ३४ ॥ धेनुः ॥ ३४ ॥

सुवः कित् ॥ ३५ ॥ सूनुः ॥ ३५ ॥

जहातेर्द्वे ऽन्त्यलोपश्च ॥ ३६ ॥ जह्नुः ॥ ३६ ॥

स्थो णुः ॥ ३७ ॥ स्थाणुः ॥ ३७ ॥

अजिवृरीभ्यो निच्च ॥ ३८ ॥ वेणुः । वर्णुः । रेणुः ॥ ३८ ॥

विषेः किच्च ॥ ३९ ॥ विष्णुः ॥ ३९ ॥

कृदाधारार्चिकलिभ्यः कः ॥ ४० ॥ कर्कः । दाकः । धाकः । राका । अर्कः । कल्कः ॥ ४० ॥

(३२) ददातीति दानुः । दानशीलो बुद्ध्यादिविचक्षणो वा । भाति दीप्यतेऽसौ भानुः सूर्यः प्रकाशः किरणो वा । स्वर्भानूराहुः । चित्रभानुः सूर्योऽग्निर्वा । बृहद्भानुरग्निः ॥

(३३) वक्तीति वग्नुः । वाचालो वा ॥

(३४) धयन्ति पिबन्ति यस्याः सा धेनुः । नवप्रसूता गौर्वा । कनि सति धेनुका हस्तिनी वा ॥

(३५) सूयत उत्पद्यतेऽसौ सूनुः । अनुजः पुत्रः सूर्यो वा ॥

(३६) जहाति दोषानिति जह्नुः । कश्चिद्राजर्षिर्वा ॥

(३७) तिष्ठतीति स्थाणुः शुष्कवृक्षो निश्चलो वा ॥

(३८) अजति गच्छति प्रक्षिपति वा स वेणुः । वंशो राजविशेषो वा । व्रियते सम्भजतीति वर्णुः । नदो देशभेदो वा । रिणाति गच्छति हिनस्ति हन्यते वा स रेणुः । धूलिः । सुरेणुः सुवर्णरजः । त्रसरेणुः सुरेणुर्वा ॥

(३९) वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगदिति विष्णुर्जगदीश्वरः ॥

(४०) बहुलवचनान्न ककारस्येत्संज्ञा । करोतीति कर्कः । अग्निः शुक्लाश्वो दर्पणो घटो वा । ददातीति दाकः । यजमानो वा । दधातीति धाकः । आधारोऽनड्वान् वा । राति ददातीति राका । पौर्णमासी नदीभेदो वा । अर्चयतीत्यर्कः । अर्कपर्णं स्फटिकं सूर्यो वा । कलते शब्दयतीति कल्कम् । दम्भः किल्बिषं वा । बाहुलकात् । रमतेऽसौ रङ्कः क्षपणो मन्दो वा । कपिलकादित्वाल्लत्वे कृते । लङ्का दुष्टनगरी वृक्षशाखा पुंश्चली वा ॥

सृवृभूशुषिमुषिभ्यः कक् ॥ ४१ ॥ सृकः । वृकः । भूकम् । शुष्कः । मुष्कः ॥ ४१ ॥

शुक्रवल्कोल्काः ॥ ४२ ॥

इण्भीकापाशल्यतिमर्चिभ्यः कन् ॥ ४३ ॥ एकः । भेकः । काकः । पाकः । शल्कम् । अत्कः । मर्कः ॥ ४३ ॥

नौ हः ॥ ४४ ॥ निहाका ॥ ४४ ॥

नौ सदेर्डिच्च ॥ ४५ ॥ निष्कः ॥ ४५ ॥

स्यमेरीट् च ॥ ४६ ॥ स्यमीकः । स्यमिकः ॥ ४६ ॥

अजियुधुनीभ्यो दीर्घश्च ॥४७॥ वीकः । यूका । धूकः । नीकः ४७॥

---

(४१) सरतीति सृकः । वाणो वज्रं वायुरुत्पलं वा । वृणोतीति वृकः काकः श्वापदो वा । वृक एव वार्केण्यः । भवतीति भूकम् । छिद्रं कालो वा । शुष्यतीति शुष्कः । नीरसो वा । मुष्यत आम्रियत इति मुष्कः अण्डकोषः सङ्घातो वा । मुष्को ऽस्यास्तीति मुष्करः । बाहुलकाद्भवति रचणहेतुर्भवतीत्योकः । राशिः स्थानं वा । मूर्च्छति वध्यतेऽसौ मूकः । वचनवर्जितो वा । रेफवकारयोर्लोपः ॥

(४२) शुकादयः कप्रत्ययान्ता निपाताः । शोभतेऽसौ शुकः । पक्षिजातिर्व्यासपुत्रो वा । वलते संवृणोति येन तत् वल्कलं वा । ओषति दहतीति, उल्का । विद्युदग्निर्ज्वाला वा । षकारस्य लत्वम् ॥

(४३) एति प्राप्नोतीत्येकः । मुख्योऽन्यः केवलो वा । यो बिभेति यस्माद्वा स भेकः । मण्डूको मेघो वा । कायति शब्दयतीति काकः । वायसो वा । पिबत्यसाविति पाकः शिशुर्दैत्यो वा । शल्यति गच्छति शल्यते वा तत् शल्कम् वल्कलं वा । अतति निरन्तरं गच्छतीत्यत्कः । पथिकः शरीरावयवो वा । मर्च इति सौत्रो धातुः मर्चति चेष्टतेऽसौ मर्कः । शरीरवायुर्वा । बाहुलकात् । श्यतीति शाकम् । स्यतीति साकं वा ॥

(४४) नितरां जहाति त्यजतीति निहाका । गोधिका वा ॥

(४५) निषीदतीति निष्कः । परिमाणभेदो वा ॥

(४६) स्यमति शब्दयतीति स्यमीकः । वल्मीको वृक्षभेदो वा । चकारादिडागमे स्यमिकः ॥

(४७) अजति गच्छतीति वीकः । वायुः पक्षी वा । यौतीति यूका । शिरः केशजन्तुर्वा । धूनोति कम्पयतीति धूकः । वायुर्वा । नयतीति नीकः । वृक्षविशेषो वा ॥

ह्रियो रश्च लो वा ॥ ४८ ॥ ह्रीका । ह्लीका ॥ ४८ ॥

शकेरुनोन्तोन्त्युनय: ॥ ४९ ॥ शकुन: । शकुन्त: । शकुन्ति: । शकुनि: ॥ ४९ ॥

भुवो झिच् ॥ ५० ॥ भवन्ति: ॥ ५० ॥

कन्युच् क्षिपेश्च ॥ ५१ ॥ क्षिपण्यु: । भुवन्यु: ॥ ५१ ॥

अनुङ् नदेश्च ॥ ५२ ॥ नदनु: । क्षिपणु: ॥ ५२ ॥

कॄवॄदारिभ्य उनन् ॥ ५३ ॥ करुणा । वरुण: । दारुणम् ॥ ५३ ॥

तॄ रश्च लो वा ॥ ५४ ॥ तरुण: । तलुन: ॥ ५४ ॥

क्षुधिपिशिमिथिभ्य: कित् ॥ ५५ ॥ क्षुधुन: । पिशुन: । मिथुनम् । ५५ ॥

---

(४८) जिह्रेति लज्जां करोतीति ह्रीका ह्लीका लज्जा वा ॥

(४९) उन, उन्त, उन्ति, उनि, इत्येते प्रत्यया भवन्ति । शक्नोतीति शकुन: । शकुन्त: । शकुन्ति: । शकुनि: । पक्षिनामानि वा ॥

(५०) भवन्ति पदार्था यस्मिन् स भवन्ति: । वर्त्तमानकालो वा । कामयतेऽसौ कुन्ति: । स्त्रियां कुन्ती । धातो: कुरादेश: प्रत्ययादिलोपश्च । अवतीति, अवन्ति: । राजा वा । वदतीति वदन्ति: । कोलाहलो वा । किंवदन्ती जनश्रुति: । कुन्त्यादयो बाहुलकादेव भवन्ति ॥

(५१) चाद्भुव: । क्षिप्यति प्रेरयतीति क्षिपण्यु: । वसन्त ऋतुर्वा । भवतीति भुवन्यु: । स्वामी सूर्यो वा ॥

(५२) चात् क्षिपे: । नदत्यव्यक्तं शब्दं करोतीति नदनु: मेघो वा क्षिप्यतीति क्षिपणु: वायुर्वा ॥

(५३) किरति विक्षिपति दुर्गुणमिति करुण: । वृक्षभेदो वा । करुणा कृपा वा । करुणा शीलमस्येति कारुणिक: । वृणोति व्रियते वाऽसौ वरुण: । उत्तमं जलं वृक्षभेदो वा । दारयति यो येन वा तद्दारुणं भीषणं वा ॥

(५४) उनन् । तरतीति तरुण: तलुन: । युवा वृक्षभेदो वा । स्त्रियां गौरादित्वान् ङीष् तरुणी तलुनी वा युवती ॥

(५५) क्षुध्यति भोक्तुमिच्छतीति क्षुधुन: । म्लेच्छजातिर्वा । पिशत्यवयवं करोतीति पिशुन: । खल: सूचको वा । मेथति जानाति ज्ञायते हिनस्ति वा तन् मिथुनम् । द्वयो: संयोगो राशिर्वा ॥

फलेर्गुक् च ॥ ५६ ॥ फल्गुनः । ५६ ॥

अशेर्लश्च ॥ ५७ ॥ लशुनम् ॥ ५७ ॥

अर्जेर्णिलुक् च ॥ ५८ ॥ अर्जुनः । ५८ ॥

तृणाख्यायां चित् ॥ ५९ ॥ अर्जुनम् । ५९ ॥

अर्तेश्च ॥ ६० ॥ अरुणः । ६० ॥

अजियमिशीङ्भ्यश्च ॥ ६१ ॥ वयुनम् । यमुना । शयुनः । ६१ ॥

वृतृवदिवचिवसिहनिकमिकषिभ्यः सः ॥ ६२ ॥ वर्षम् । तर्षः । वत्सः । वक्षः । वत्सम् । हंसः । कंसः । कक्षम् । ६२ ॥

प्लुषिरञ्ज्योपधायाः ॥ ६३ ॥ प्लक्षः । ६३ ॥

मनेर्दीर्घश्च ॥ ६४ ॥ मांसम् । ६४ ॥

(५६) फलति निष्पन्नो भवतीति फल्गुनः शुक्लो वा ॥

(५७) उनन् । अश्यते भुज्यते यत्तल्लशुनम् । औषधरूपः कन्दो वा ॥

(५८) उनन् अर्जयतीत्यर्जुनः । शुक्लो मयूरो वृक्षभेदो वा । अर्जुनी । सौरभेयी ॥

(५९) अर्जयति यत्तदर्जुनं तृणम् । चित्करणमन्तोदात्तार्थम् ॥

(६०) ऋच्छति प्राप्नोतीत्यरुणः सूर्यः कुष्ठं रक्तं वा ॥

(६१) वीयते गम्यतेऽनेनेति वयुनम् । मन्दिरं वा । यच्छतीति यमुना । नदीभेदो वा । शेतेऽसौ शयुनः । अजगरो वा ॥

(६२) वृणोति स्वीकरोतीति वर्षम् । संवत्सरो वृष्टिरार्यावर्त्तो मेघो वा । स्त्रियां बहुवचनान्तो वर्षाः प्रावृषि ऋतौ । तरति येन यत्र वा स तर्षः । समुद्रो वा । वदतीति वत्सः । बालो वक्षःस्थलं वा । हन्तीति हंसः । निर्लोभः सूर्यः पक्षिभेदो श्वभेदः शरीरस्थो वायुर्वा । कामयते परपदार्थानिति कंसः । तैजसद्रव्यं पात्रं तस्करो वा । कषति हिनस्तीति कक्षः तृणं लता वनसमीपं बाहुमूलं वा । बाहुलकात् । राजते दीप्यते सा राक्षा लाक्षा । कपिलकादित्वाल्लत्वम् । यौतीति योषा स्त्री वा ॥

(६३) प्लोषति दहतीति प्लक्षः । पिप्पलं पर्कटी वा । पाकरि इति प्रसिद्धा । द्वीपभेदो गृहस्य द्वारपार्श्वं वा ॥

(६४) मन्यते ज्ञायतेऽनेन तन्मांसम् । शरीरोपचयो वा ॥

अशेर्देवने ॥ ६५ ॥ अक्षः । ६५ ॥

स्नुव्रश्चिकृत्यृषिभ्यः कित् ॥ ६६ ॥ स्नुषा । वृक्षः । कृत्स्नम् । ऋक्षम् । ६६ ॥

ऋषेर्जातौ ॥ ६७ ॥ ऋक्षः । ६७ ॥

उन्दिगुधिकुषिभ्यश्च ॥ ६८ ॥ उत्सः । गुत्सः । कुक्षः । ६८ ॥

गृधिपण्योर्दकौ च ॥ ६९ ॥ गृत्सः । पक्षः ॥ ६९ ॥

अशेः सरन् ॥ ७० ॥ अक्षरम् ॥ ७० ॥

वसेश्च ॥ ७१ ॥ वत्सरः ॥ ७१ ॥

संपूर्वाच्चित् ॥ ७२ ॥ संवत्सरः ॥ ७२ ॥

---

(६५) अश्नुते व्याप्नोतीत्यक्षः । अक्षाणीन्द्रियाणि तुषं चक्रं शकटं व्यवहारो वा ॥

(६६) स्नौति प्रस्रवतीति स्नुषा । यवीयसो भ्रातुर्भार्या वा । वृश्च्यते छिद्यतेऽसौ वृक्षः । वृक्ष वरण इत्यस्मादपीगुपधात् के प्रत्यये वृक्ष इति सिध्यति । अर्थभेदायात्र-वृश्चिग्रहणं तेन छेद्यत्वात् कार्यं जगदपि वृक्ष उच्यते । कृन्तति छिनत्तीति कृत्स्नमुदकम् । ऋषति गच्छतीति ऋक्षम् । नक्षत्रसामान्यं वा । बाहुलकात् । समन्तान्मिषति हिनस्तीत्यामिक्षा । क्षीरविकारो वा । लिश्यतेऽल्पा भवतीति लिक्षा । शिरःकेशज-न्तुर्वा । रोहति बीजाज्जायतेऽसौ रुक्षः । वृक्षजातिः प्रीतिहीनो वा ॥

(६७) ऋषति गच्छतीति ऋक्षः । मृगजातिभेदो भल्लूकः । पूर्वसूत्रेण सिद्धे जातिनियमार्थौ यौगिके ऋषधातोः षः प्रत्ययो वा ॥

(६८) उनत्ति क्लिद्यतीत्युत्सः । जलस्रवणस्थानमृषिर्वा । गुध्नाति रोषं करोतीति गुत्सः । हारभेदः पुष्पगुम्फो वा । कुष्णाति निष्कर्षतीति कुक्षः । जठरस्थानं वा ॥

(६९) चित् गृध्यति अभिकाङ्क्षतीति गृत्सः । कामो वा । गकारस्य भष्भा-वनिवृत्त्यर्थो दकारादेशः । पणायति स्तौति व्यवहरति वा येन यत्र वा स पक्षः । मासार्द्धः पार्श्वभागः साध्यविरोधः समूहो बलं मित्रसहायो वा ॥

(७०) अश्नुते व्याप्नोतीत्यक्षरम् । ब्रह्म वर्णो मोक्ष उदकं वा ॥

(७१) वसन्त्यस्मिन्निति वत्सरः । वर्षो वा ॥

(७२) चित्वादन्तोदात्तस्वरः । सम्यग्वसन्त्यत्र स संवत्सरः ॥

कृधूमदिभ्य: क्सिन् ॥ ७३ ॥ कृसर: । धूसर: । मत्सर: ॥ ७३ ॥

पतेरश्च लः ॥ ७४ ॥ पत्सलः ॥ ७४ ॥

तन्यृषिभ्यां क्सरन् ॥ ७५ ॥ तसर: । ऋक्षर: ॥ ७५ ॥

पीयुक्वणिभ्यां कालन् ह्रस्वः संप्रसारणञ्च ॥ ७६ ॥ पियाल: । कुणाल: ॥ ७६ ॥

कठिकुषिभ्यां काकु: ॥ ७७ ॥ कठाकु: । कुषाकु: ॥ ७७ ॥

सर्त्तेर्दुक् च ॥ ७८ ॥ सृदाकु: ॥ ७८ ॥

वृतेर्वृद्धिश्च ॥ ७९ ॥ वार्त्ताकु: । वार्त्ताकम् ॥ ७९ ॥

पर्देर्नित्संप्रसारणमल्लोपश्च ॥ ८० ॥ पृदाकु: ॥ ८० ॥

सृयुवचिभ्योऽन्युजागूजक्नुच: ॥ ८१ ॥ सरण्यु: । यवागू: । वचक्नु: ॥ ८१ ॥

---

(७३) य: करोति क्रियते वा स कृसर: । तिलौदनं मिश्रं वा । धूनोतीति धूसर: । ईषत्पाण्डुरो वा । माद्यतीति मत्सर: । असह्यपरसंपत्तिर्जन: कृपण: क्रुद्धो वा मत्सरा मक्षिका वा ॥

(७४) पतन्ति गच्छन्ति यत्र स पत्सल: । पन्था वा ॥

(७५) तनोतीति तसर: । सूत्रवेष्टनो वा । ऋषति प्राप्नोति वा स ऋक्षर:। ऋत्विग्वा ॥

(७६) पीयु: सौत्रो धातु:पीयति तर्पयतीति पियाल: । वृक्षभेदो वा । चिरौंजी इति प्रसिद्धा । क्वणति शब्दं करोतीति कुणाल: । देशभेदो वा । बाहुलकात् । भजतीति भगालम् । नरमस्तकं वा । कुलं च ॥

(७७) कठतीति कठाकु:।पक्षी वा।कषति हिनस्तीति कषाकु:।अग्नि: सूर्य्यो वा॥

(७८) सरतीति सृदाकु: । वायुर्वा । सरन्त्यापोऽस्यामिति सृदाकुर्नदी ॥

(७९) वर्त्ततेऽसौ वार्त्ताकु: । हिंगुली । वृन्ताक इति प्रसिद्धम् । बाहुलकादुकारस्य अ, ई भवत: । वार्त्ताकं । वार्त्ताकी वा ॥

(८०) पर्दते कुत्सितं शब्दं करोतीति पृदाकु: । व्याघ्र: सर्पो वा ॥

(८१) सरतीति सरण्यु: । मेघो वायुर्वा । यौति मिश्रयतीति यवागू: । दुग्धे पक्वयवचूर्णं वा । वक्तीति वचक्नु: वाचाल: प्राज्ञो वा ॥

आनकः शीङ्भियः ॥ ८२ ॥ शयानकः । भयानकः ॥ ८२ ॥

आणको लूधूशिङ्घिधाञ्भ्यः ॥ ८३ ॥ लवाणकः । धवाणकः । शिङ्घाणकः । धाणकः ॥ ८३ ॥

उल्मुकदर्विहोमिनः ॥ ८४ ॥

ह्रियः कुक्रश्च लो वा ॥ ८५ ॥ ह्रीकुः । ह्लीकुः ॥ ८५ ॥

हसिमृग्रिण्वामिदमिलूपूधुर्विभ्यस्तन् ॥ ८६ ॥ हस्तः । मर्त्तः । गर्त्तः । एतः । वातः । अन्तः । दन्तः । लोतः । पोतः । धूर्त्तः ॥ ८६ ॥

नञ्याप इट् च ॥ ८७ ॥ नापितः ॥ ८७ ॥

(८२) शेतेऽसौ शयानकः । अजगरो वा । बिभेत्यस्मादिति भयानको भयप्रदः ॥

(८३) लुनाति येन तल्लवाणकम् । दात्रं वा । धूनोतीति धवाणकः । वायुर्वा शिङ्घति समन्ताज्जिघ्रतीति शिङ्घाणकः । श्लेष्मा वा । बाहुलकात् ककारलोपे शिङ्घाणम् । काचपात्रं लोहनासिकयोर्मलं वा । दधाति धीयते वा स धाणकः । व्यवहारयोग्यद्रव्यभागो वा ॥

(८४) ओषति दहती गुल्मुकम् । ज्वलदङ्गारो वा । मुकप्रत्ययो धातोः षकारस्य लत्वम् । दृणाति विदारयति येन स दर्विः । परिवेषणपात्रं वा । विन् प्रत्ययः जुहोतीति होमी । यजमानो वा । अत्र मिन् प्रत्ययः ॥

(८५) जिह्रेति लज्जां करोतीति ह्रीकुर्लज्जावान् । ह्लीकुः । जतु त्रपुणी लाचादिर्वा ॥

(८६) हसतीति हस्तः । नचत्र करो वा । हस्तोऽस्यास्तीति हस्ती । म्रियतेऽसौ मर्त्तः । मनुष्यो वा । मर्त्त एव मर्त्यः स्वार्थे यत् । गिरति निगलति स गर्त्तः । अवटः पतनस्थानं वा । एति प्राप्नोति यं स एतः । विचित्रवर्णो वा । स्त्रियां, एनी एता । वातीति वातः । वायुर्व्याधिर्वा अमति गच्छतीति, अन्तः । नाशः समीपं तत्त्वस्वरूपं मनोहरं वा । दाम्यत्युपशाम्यति यो येन वा स दन्तः । दशनो वा । शोभना दन्ता यस्याः सा सुदती युवतिः । दन्तावली दन्तुरो वा हस्ती । लुनातीति लोतः । अश्रुचिन्हं वा । पुनातीति पोतः । बालो वहित्रो वा । धूर्वतीति धूर्त्तः । शठो लवणं धत्तूरं वा । बाहुलकात् । तौसति शब्दयतीति तूस्तम् । पापं जटा वा । तूस्तं करोति तूस्तयति । छ्यति छिनत्तीति छातः । दुर्वलो वा । अभितो म्लायतीति, अभिम्लातः । हर्षक्षीणो वा ॥

(८७) नाप्नोति सत्कर्माणीति नापितः । केशच्छेदको वा ॥

तनिमृङ्भ्यां किच्च ॥ ८८ ॥ ततम् । मृतम् ॥ ८८ ॥

अञ्जिघृसिभ्यः क्तः ॥ ८९ ॥ अक्तम् । घृतम् । सितम् ॥ ८९ ॥

दुतनिभ्यां दीर्घश्च ॥ ९० ॥ दूतः । तातः ॥ ९० ॥

जेर्मूट् चोदात्तः ॥ ९१ ॥ जीमूतः ॥ ९१ ॥

लोष्टपलितौ ॥ ९२ ॥

हृश्याभ्यामितन् ॥ ९३ ॥ हरितः । श्येतः ॥ ९३ ॥

रुहेरश्च लो वा ॥ ९४ ॥ रोहितः । लोहितम् ॥ ९४ ॥

पिशेः किच्च ॥ ९५ ॥ पिशितम् ॥ ९५ ॥

(८८) तनोतीति ततम् । वीणादिकं वाद्यं वा । म्रियते येन तन्मृतम् । याचितं भैक्ष्यं वा ॥

(८९) यदनक्ति प्रकटीकरोति तदक्तम् । व्याप्तः परिमितं वा । जिघर्त्ति संचलति दीप्यते वा तत्, घृतम् । उदकं सर्पिः प्रदीप्तं वा । सिनोति बध्नातीति सितम् । शुक्लं वा । बहुलवचनात् । ह्वर्च्छति कुटिलं भवतीति मुहूर्त्तम् । घटिकाद्वयकालो वा । धातोर्मुडागमो राल्लोप इति छलोपः । ऋच्छत्यात्मानं प्राप्नोतीति ऋतम् । यथार्थं वा । वसति यत्रेति वस्तम् । स्थानं वा ॥

(९०) द्रवति गच्छति दुनोत्युपतपति वा स दूतः । बहुकार्यसाधको राजभृत्यो वा । स्त्रियां दूती । तनोति कार्याणीति तातः । पिता वा । बाहुलकात् । स्यति कर्मसमाप्तिं करोतीति सीता येन हलेन कृता रेखा स्त्रीविशेषो वा ॥

(९१) धातोर्दीर्घः प्रत्ययस्य मूडुदात्तत्वं च । यो जयति येन वा । स जीमूतः । मेघः पर्वतो वा ॥

(९२) लोष्टते सङ्घातो भवतीति लोष्टम् । मृत्पिण्डो वा । पल्यते प्राप्यते तत् पलितम् । वृद्धावस्थया केशादीनां शुक्लत्वं वा ॥

(९३) हरतीति हरितः । वर्णभेदो वा । श्यायति गच्छतीति श्येतः । श्यामवर्णो वा । स्त्रियां हरिणी । हरिता । श्येनी श्येता ॥

(९४) रोहति प्रादुर्भवतीति रोहितः । मृगमत्स्ययोर्भेदो रोहितं रुधिरं वा । लोहितोऽङ्गारको रुधिरम् रक्तवर्णो वा ॥

(९५) पिश्यते ऽवयवरूपं क्रियते तत् पिशितं मांसं वा ॥

श्रुदक्षिस्पृहिगृहिभ्य आय्यः ॥ ९६ ॥ श्रवाय्यः । दक्षाय्यः । स्पृहयाय्यः । गृहयाय्यः ॥ ९६ ॥

दधातेर्द्वित्वमित्वं षुक् च ॥ ९७ ॥ दधिषाय्यः ॥ ९७ ॥

वृञ एण्यः ॥ ९८ ॥ वरेण्यः ॥ ९८ ॥

स्तुवः क्रेय्यश्छन्दसि ॥ ९९ ॥ स्तुवेय्यम् ॥ ९९ ॥

राजेरन्यः ॥ १०० ॥ राजन्यः ॥ १०० ॥

शृरम्योश्च ॥ १०१ ॥ शरण्यम् । रमण्यम् ॥ १०१ ॥

अर्त्तेर्निच्च ॥ १०२ ॥ अरण्यम् ॥ १०२ ॥

पर्जन्यः ॥ १०३ ॥

वदेरान्यः ॥ १०४ ॥ वदान्यः ॥ १०४ ॥

अमिनक्षियजिबधिपतिभ्योऽत्रन् ॥ १०५ ॥ अमत्रम् । नक्षत्रम् । यजत्रम् । बधत्रम् । पतत्रम् ॥ १०५ ॥

---

(९६) श्रावयतीति श्रवाय्यः । दानपशुर्वा । दक्षयति वर्द्धतेऽसौ दक्षाय्यः । गृध्रो वा । स्पृहयतीति स्पृहयाय्यः । अभीप्सुर्नक्षत्रं वा । गर्हयति पदार्थान् गृह्णातीति गृहयाय्यः । गृहस्वामी वा । आय्यप्रत्यये णेरयादेशः ॥

(९७) दधिस्यति समापयतीति दधिषाय्यो घृतम् । निपातनात् षत्वम् ॥

(९८) व्रियते स्वीक्रियतेऽसौ वरेण्यः । श्रेष्ठो वा ॥

(९९) स्तूयतेऽसौ स्तुवेय्यः पुरन्दरो वा । क्सेय्य इति पाठान्तरं तदा स्तुषेय्यः ॥

(१००) राजते दीप्यतेऽसौ राजन्यः । अग्निर्वा । क्षत्रियजातौ तु राज्ञोऽपत्यं राजन्यः । तत्रान्त्यस्वरितः ॥

(१०१) शृणाति हिनस्तीति शरण्यम् । अज्ञानं वा । रमतेऽस्मिँस्तद्रमण्यम् । गृहं वा

(१०२) ऋच्छन्ति गृहाद् गच्छन्ति यत्र तदरण्यम् । वनं वा । महदरण्यमरण्यानी

(१०३) पर्षति सिञ्चतीति पर्जन्यः । मेघः समर्थो वा निपातनात् षकारस्य जकारः

(१०४) उद्यते वदतीति वा स वदान्यः । वाग्मी त्यागी वा ॥

(१०५) अमति प्राप्नोति यत्र तत् अमत्रम् । पात्रं वा । नक्षति गच्छतीति नक्षत्रम् । तारका वा । इज्यते यजति वा तद् यजत्रम् । अग्निहोत्रं होता वा । बधीति हनः स्थाने बधादेशो निपात्यते । हन्ति येन तद् बधत्रम् । आयुधं वा । पतति गच्छति येन तत्पतत्रम् । वाहनं लोमानि वा ॥

गडेरादेश्च कः ॥ १०६ ॥ कडत्रम् । कलत्रम् ॥ १०६ ॥

वृञश्चित् ॥ १०७ ॥ वरत्रा ॥ १०७ ॥

सुविदेः कत्रन् ॥ १०८ ॥ सुविदत्रम् ॥ १०८ ॥

कृतेर्नुम् च ॥ १०९ ॥ कृन्तत्रम् ॥ १०९

भृमृदृशियजिपर्विपच्यमितमिनमिहर्य्यिभ्योऽतच् ॥ ११० ॥

भरतः । मरतः । दर्शतः । यजतः । पर्वतः । पचतः । अमतः । तमतः नमतः । हर्य्यतः ॥ ११० ॥

पृषिरञ्जिभ्यां कित् ॥ १११ ॥ पृषतः । रजतम् ॥ १११ ॥

खलतिः ॥ ११२ ॥

---

(१०६) गडति सिञ्चतीति कडत्रम् । बाहुलकाड्डस्य लः । कलत्रम् । कटिभागो भार्या वा ॥

(१०७) वृणोत्युदकादिकं यया या वा सा वरत्रा चर्मरज्जुर्वा ॥

(१०८) सुष्ठु विद्यते तत् सुविदत्रम् कुटुम्बं वा ॥

(१०९) कृन्तति छिनत्ति येन तत्कृन्तत्रम् । लाङ्गलं वा ॥

(११०) भरति पुष्णातीति भरतः । राजभेदो नटो रामानुजो वा । म्रियतेऽसौ मरतः मृत्युर्वा । पश्यन्ति येन स दर्शतः । चन्द्रः सूर्यो वा । यजतीति यजतः । ऋत्विग्वा । पर्वति पूर्णो भवतीति पर्वतः । पर्व विद्यतेऽस्मिन्निति मत्वर्थीयस्तकार प्रत्ययो वा । गिरिर्वा । पचति येन स पचतः । अग्निर्वा । अमति गच्छतीति, अमतः । रेणुर्वा । ताम्यति काङ्क्षतीति तमतः । तृष्णापरो वा । नमतीति नमतः नम्रो वा । हर्यति गच्छतीति हर्यतः । अश्वो वा । बाहुलकात् । मलते स्वरूपं धरतीति मालती । उपधादीर्घो गौरादित्वान् ङीष् ॥

(१११) पर्षति सिञ्चतीति पृषतः । बिन्दुर्मृगो वा । रजति प्रियं भवतीति रजतम् । रूप्यं शुक्लं वा ॥

(११२) स्खलति संचलतीति खलतिः । निष्केशशिराः पुरुषो वा । धातोः सलोपः प्रत्ययान्तस्येत्वं निपातः ॥

शीङ्शपिरुगमिवञ्चिजीविप्राणिभ्योऽथः ॥ ११३ ॥ शयथः । शपथः । रवथः । गमथः । वञ्चथः । जीवथः । प्राणथः । दरथः । शमथः । दमथः ॥ ११३ ॥

भृञश्चित् ॥ ११४ ॥ भरथः ॥ ११४ ॥

रुविदिभ्यां ङित् ॥ ११५ ॥ रुवथः । विदथः ॥ ११५ ॥

उपसर्गे वसेः ॥ ११६ ॥ आवसथः । संवसथः ॥ ११६ ॥

अत्यविचमितमिनमिरभिलभिनभितपिपतिपनिपणिमहिभ्योऽसच् ॥ ११७ ॥ अतसः । अवसः । चमसः । तमसः । नमसः । रभसः । लभसः । नभसः । तपसः। पतसः । पनसः । पणसः । महसम् ॥

(११३) शेतेऽसौ शयथः । अजगरो वा । शप्यत आक्रुश्यत इति शपथः । निश्चय करणं वा रौतीति रवथः कोकिलो वा । गच्छतीति गमथः । पथिको वा । वञ्चति प्रलम्भयतीति वञ्चथो धूर्त्तः । अस्य स्थाने वन्दीति पाठान्तरे वन्दथः स्तोता स्तुत्यं वा । जीवतीति जीवथ आयुष्मान् । प्राणितीति प्राणथः । बलवान् वा । बाहुलकात् । दृणातीति दरथः । दिचु प्रसरणं गर्त्तो वा । शाम्यतीति शमथः । शान्तिः । दाम्यतीति दमथः । दमो वा ॥

(११४) बिभर्त्तीति भरथः । लोकपालो राजा वा ॥

(११५) रौतीति रवथः । श्वा वा । वेत्तीति विदथः । योगी वा ॥

(११६ समन्तादवसति यत्र स आवसथः । गृहं वा । सम्यग्वसन्ति यत्र स संवसथः । ग्रामो वा ॥

(११७) अतति निरन्तरं गच्छतीत्यतसः । वायुर्वा । स्त्रियामतसी । अवति रक्षादिकं करोतीत्यवसः। राजा वा । चमति भक्षयति येन स चमसः । गौरादित्वाच्चमसी । ताम्यति काङ्क्षतीति तमसः । ध्वान्तं वा । नमतीति नमसः। अनुकूलं वा। रभतेऽसौ रभसः । वेगो हर्षो वा। लभतेऽसौ लभसः। अश्वबन्धनं वा । नभते हिनस्तीति नभसः । आकाशं वा । तपति तापहेतुर्भवतीति तपसः। चन्द्रमा वा । पततीति पतसः। पक्षी वा । पनायति स्तौतीति पनसः। कण्टकिफलं वा । महतीति महसम् । ज्ञानं वा। बाहुलकात् अम्यते प्राप्यते तत्तामरसम्। कमलं वा। प्रत्ययस्य णित्वाद् वृद्धिर्धातोश्च तुट् स्यति कर्म समापयतीति साध्वसम् । पश्चाद् ज्ञानं वा । धातोर्धुक्। कंकते चञ्चलं । भवतीति कीकसम् । अस्थि वा । धातोः कीकादेशः । तरतीति तरसम् । मांसं वा॥

वेञस्तुट् च ॥ ११८ ॥ वेतसः ॥ ११८ ॥

वहियुभ्यां णित् ॥ ११९ ॥ वाहसः । यावसः ॥ ११९ ॥

वयश्च ॥ १२० ॥ वायसः ॥ १२० ॥

दिवः कित् ॥ १२१ ॥ दिवसम् ॥ १२१ ॥

कृशृशलिकलिगर्दिभ्योऽभच् ॥१२२॥ करभः । शरभः । शलभः । गर्दभः ॥ १२२ ॥

ऋषिवृषिभ्यां कित् ॥ १२३ ॥ ऋषभः वृषभः ॥ १२३ ॥

रुषेर्नित्लुष् च ॥ १२४ ॥ लुषभः ॥ १२४ ॥

रासिवल्लिभ्यां च ॥ १२५ ॥ रासभः । वल्लभः ॥ १२५ ॥

जॄविशिभ्यां झच् ॥ १२६ ॥ जरन्तः । वेशन्तः ॥ १२६ ॥

---

(११८) वयति तन्तून् संतनोतीति वेतसः । वृक्षभेदो वा ॥

(११९) वहतीति वाहसः । अजगरो वा । यौति मिश्रयत्यमिश्रयति वा स यावसः । तृणसन्ततिर्वा ॥

(१२०) वयते गच्छतीति वायसः काको वा ॥

(१२१) दीव्यति प्रकाशते सूर्यो यत्र तद्दिवसम् । दिवसो वा । अर्द्धादिपाठाद्द्विलिंगः ॥

(१२२) किरति विक्षिपतीति करभः । हस्तस्य बहिर्भागो बालो वा । शृणातीति शरभः । आरण्यानां मध्ये हिंसकविशेषपशुजातिः । शलति गच्छतीति शलभः । पतङ्गो वा । कलते संख्यां करोति स कलभः । करिशावको वा । गर्दयति शब्दं करोतीति गर्दभः । खरो वा ॥

(१२३) ऋषति गच्छतीति ऋषभः । वर्षतीति वृषभः । श्रेष्ठपर्यायौ बलीवर्दौ वा ॥

(१२४) रोषति हिनस्तीति लुषभः । मत्तहस्ती वा ॥

(१२५) रासति शब्दयतीति रासभः । खरो वा । वल्लते संवृणोतीति वल्लभः प्रियो वा ॥

(१२६) प्रत्ययादिझकारस्य झोऽन्त इत्यन्तादेशः । जीर्यति स जरन्तः । महिषो वा । विशति प्रवेशं करोतीति वेशन्तः अल्पजलाशयो वा । बाहुलकात् । अर्हति पूज्यो भवतीति, अर्हन्तः ॥

रुहिनन्दिजीविप्राणिभ्यः षिदाशिषि ॥ १२७ ॥ रोहन्तः । नन्दन्तः । जीवन्तः । प्राणन्तः । रोहन्ती ॥ १२७ ॥

तॄभूवहिवसिभासिसाधिगडिमंडिजिनन्दिभ्यश्च ॥ १२८ ॥ तरन्तः। भवन्तः। वहन्तः। वसन्तः। भासन्तः। साधन्तः। गण्डयन्तः। मण्डयन्तः। जयन्तः। नन्दयन्तः ॥ १२८ ॥

हन्तेर्मुट् हि च ॥ १२९ ॥ हेमन्तः । १२९ ॥

भन्देर्नलोपश्च ॥ १३० ॥ भदन्तः । १३० ॥

ऋच्छेररः ॥ १३१ ॥ ऋच्छरः । १३१ ॥

---

(१२७) रोहतीति रोहन्तः । वृक्षभेदो वा । नन्दति समृद्धियुक्तो भवतीति नन्दन्तः । पुत्रो वा । यो जीवति स जीवन्तः । औषधं वा । प्राणिति श्वासप्रश्वासान् प्रवर्त्तयति स प्राणन्तः । वायुर्वा । षित्वात् स्त्रियां ङीष् । प्राणन्ती । रोहन्ती । नन्दन्ती । जीवन्ती ॥

(१२८) झच् । यस्तरति येन यत्र वा । स तरन्तः समुद्रस्तरन्ती नौका वा । यो भवतीति यत्र वा स भवन्तः । कालो वा । वहति कार्याणि प्रापयतीति वहन्तः वायुर्वा । यो वसति यत्र वा स वसन्तः ऋतुभेदो वा । भासयते दीप्यतेऽसौ भासन्तः । सूर्यो वा । साध्नोति कार्याणीति साधन्तः । भिक्षुको वा । गण्डयति सेचयतीति गण्डयन्तः । मेघो वा । मण्डयति शोभितं करोतीति मण्डयन्तः । भूषणं वा । जयतीति जयन्तो जयशीलः ।

स्त्रियां जयन्ती पुष्पभेदो वा। विजयन्तः कश्चिद्राजविशेषस्तस्य प्रासादो वैजयन्तः । वैजयन्ती पताका । नन्दन्ति येन स नन्दन्तः । आनन्दकरो वा । अतः पूर्वसूत्रेऽपि नन्दिः पठितः । अत्र पुनर्ग्रहणमनाशिष्यपि यथा स्यात् ॥

(१२९) यो हन्ति शीतेन स हेमन्तः । ऋतुभेदो वा ॥

(१३०) भन्दते कल्याणं करोतीति भदन्तः प्रव्रजितो वा ॥

(१३१) ऋच्छति गच्छति स ऋच्छरः । ऋच्छरा वेश्या वा । बाहुलकात् वदतीति बदरम् । बदर्याः फलं वा कन्दति वैकल्यं करोतीति कदरः श्वेतखदिरो वा । कपिलकादित्वाल्लत्वे गौरादित्वान् ङीष् कदली । कदरी । बदरी । मन्दरकन्दरशीकरकोटरशवरसमरबर्बरवर्करकर्परपिञ्जराम्बराडम्बरजर्जरकर्करनखरतोमरप्रभृतयोऽपि—अरप्रत्ययान्ता बहुलवचनादेव साधनीयाः ॥

अर्त्तिकलिभ्रमिचमिदेविवासिभ्यश्चित् ॥ १३२ ॥ अररः । कमरः । भ्रमरः । चमरः । देवरः वासरः । १३२ ॥

कुवः क्रारन् ॥ १३३ ॥ कुररः । १३३ ॥

अङ्गिमदिमन्दिभ्य आरन् ॥ १३४ ॥ अङ्गारः । मदारः । मन्दारः ॥ १३४ ॥

गडेः कड च ॥ १३५ ॥ कडारः । १३५ ॥

शृङ्गारभृङ्गारौ ॥ १३६ ॥

कञ्जिमृजिभ्यां चित् ॥ १३७ ॥ कञ्जारः । मार्जारः । १३७ ॥

कमेः किदुच्चोपधायाः ॥ १३८ ॥ कुमारः ॥ १३८ ॥

(१३२) ऋच्छति गच्छति यतः स, अररः । कपाटो वा । कामयतेऽसौ कमरः । कामुको वा । भ्राम्यतीति भ्रमरः षट्पदः । कामुको वा । चमति भक्षयतीति चमरः । मृगभेदो वा । गौरादित्वात् स्त्रियां ङीष् । चमरी सुरा गौः । चमर्य्या अयं चामरो वालसमूहः । दीव्यति क्रीडादिकं करोतीति देवरः । विधवाया द्वितीयः पतिः पत्युः कनिष्ठभ्राता । वासयतीति वासरः मङ्गलादिवारो वा ॥

(१३३) कौति शब्दयतीति कुररः । पक्षिभेदो वा ॥

(१३४) अङ्गति गच्छति स अङ्गारः । निर्धूमोऽग्निर्भूमिविकारो वा । माद्यति मत्तो भवतीति मदारः । वराहो वा । मन्दते स्तौतीति मन्दारः । निम्बतरुर्कवृक्षो वा । बाहुलकान्मन्दधातोरारप्रत्ययोऽपि भवति । मन्दतेऽसौ मन्दारः । निम्बार्को वा ॥

(१३५) गडति सिञ्चतीति कडारः । पीतवर्णो वा ॥

(१३६) शृणाति हिनस्तीति शृङ्गारः । हस्तिशोभा नाट्यरसो दम्पत्योरन्योऽन्यं सम्भोगस्पृहा वा । अत्र धातोर्नुम् ह्रस्वादेशश्च । बिभर्त्ति पुष्यतीति भृङ्गारः । सुवर्णपात्रविशेषो वा । स्त्रियां भृङ्गारी कीटजातिभेदो वा । झींगर इति प्रसिद्धः ॥

(१३७) कञ्जति रौतीति कञ्जारः । मयूरो व्यंजनं वा । मार्ष्टि शुन्धतीति मार्जारः । बिडालो वा । स्त्रियां मार्जारी ॥

(१३८) चिदनुवर्त्तते । कामयते भोगानिति कुमारः । शिशुर्युवराजो वा । कुमारक्रीडायामित्यस्मादपि पचाद्यचि कृते कुमारशब्दो व्युत्पद्यते तदुपायान्तरमर्थभेदश्च ॥

तुषारादयश्च ॥ १३९ ॥ तुषारः । कासारः । सहारः । १३९ ॥

दीङो नुट् च ॥ १४० ॥ दीनारः ॥ १४० ॥

सर्त्तेरपः षुक् च ॥ १४१ ॥ सर्षपः ॥१४१॥

उषिकुटिदलिकचिखजिभ्यः कपन् ॥१४२॥ उषपः । कुटपः । दलपः । कचपम् । खजपम् ॥ १४२ ॥

क्वणेः संप्रसारणं च ॥ १४३ ॥ कुणपम् ॥ १४३ ॥

कपश्चाक्रवर्मणस्य ॥ १४४ ॥

विटपविष्टपविशिपोलपाः ॥ १४५ ॥

वृतेस्तिकन् ॥ १४६ ॥ वर्त्तिका ॥ १४६ ॥

---

(१३९) यस्तुष्यति येन वा तत्तुषारम् । हिमं वा । कासते शब्दयति निन्दति वा स कासारः । सरसी वा । सहतीति सहारः । आम्रभेदो वा । तर्कयति भाषते ऽसौ तर्कारः । स्त्रियां गौरादित्वात् तर्कारी । जयन्ती विशेषलता वा ॥

(१४०) दीयते चयति येन वा स दीनारः । सुवर्णाभरणं वा ॥

(१४१) सरति गच्छति स सर्षपः । कटुस्नेहवान् वा ॥

(१४२) ओषति दहति स उषपः । अग्निः सूर्यो वा । कुटतीति कुटपः । मानभांडं वा । दालयति विदारयतीति दलपः । प्रहारो वा । कचते बध्नातीति कचपम् । शाकपात्रं वा । खजति मथ्नाति मथ्यत इति खजपम् । घृतं वा ॥

(१४३) क्वणति शब्दं करोतीति कुणपः । शवो मृद्भेदो वा ॥

(१४४) चाक्रवर्मणस्य मते कपे सति प्रत्ययस्यादिरुदात्तः । अन्यमते सङ्घातस्याद्युदात्तत्वम् ॥

(१४५) कपप्रत्ययान्ता निपाताः वेटति शब्दयति वायुनेति विटपः । शाखाविस्तारो वा । विशन्ति यत्रेति विष्टपम् । भुवनं वा । त्रिविष्टपः । सुखविशेषभोगो वा । धातोर्वैकारस्य पत्वम् । प्रत्ययस्य तुट् च । त्रिविष्टप इति वा । विशन्ति यत्रेति विशिपम् । मन्दिरं वा । प्रत्ययादेरित्वम् । वलते संवृणोतीत्युलपम् । कोमलतृणं वा । धात्वादेः संप्रसारणम् ॥

(१४६) वर्त्ततेऽसौ वर्त्तिका पक्षिभेदो वा । यस्तु वृत धातोर्ण्वुल् प्रत्यये वर्त्तका शब्दस्तत्र वार्त्तिकेनेत्वनिषेधादत्तका इत्येव । तत्रोणादीनामव्युत्पन्नत्वादत्तकाव्युत्पन्न इति भेदः ॥

कृतिभिदिलतिभ्यः कित् ॥ १४७ ॥ कृत्तिका । भित्तिका । लत्तिका ॥ १४७ ॥

इष्यशिभ्यां तकन् ॥ १४८ ॥ इष्टका । अष्टका ॥ १४८ ॥

इणस्तशन्तशसुनौ ॥ १४९ ॥ एतशः । एतशाः ॥ १४९ ॥

विपतिभ्यां तनन् ॥ १५० ॥ वेतनम् । पत्तनम् ॥ १५० ॥

हृदलिभ्यां भः ॥ १५१ ॥ दर्भः । दलभः ॥ १५१ ॥

अर्त्तिगृभ्यां भनन् ॥ १५२ ॥ अर्भः । गर्भः ॥ १५२ ॥

इणः कित् ॥ १५३ ॥ इभः ॥ १५३ ॥

असिसञ्जिभ्यां क्थिन् ॥ १५४ ॥ अस्थि । सक्थि ॥ १५३ ॥

(१४७) कृन्ततीति कृत्तिका । नक्षत्रं वा । भिनत्तीति भित्तिका भित्तिर्वा । लततीति लत्तिका गोधा वा ॥

(१४८) इष्यतेऽसाविष्टका । अश्नुते सा अष्टका । वैदिककर्मविशेषो वा । बाहुलकात् मस्यति परिणमतीति मस्तकम् । शिरो वा । दधातीति धातकम् । स्त्रियां धातकी पुष्पभेदः ॥

(१४९) एति प्राप्नोतीति एतशः । एतशाः । एतशो । अश्वो ब्राह्मणो वा । एकोऽदन्तोऽपरः सान्तः ॥

(१५०) वेत्ति प्राप्नोति खादति वा तद्वेतनम् । भृतिर्वा । वेतनेन जीवति वैतनिकः कर्मकरः । पतति गच्छतीति पत्तनम् । नगरं वा ॥

(१५१) दृणाति विदारयतीति दर्भः । कुशो वा । दलते विशीर्णो भवतीति दलभः । ऋषिचक्रं वा ॥

(१५२) इयर्त्ति गच्छतीत्यर्भः । शिशुर्वा । अल्पोऽर्भोऽर्भकः । गिरति गृणात्युपदिशतीति गर्भः । जठरं तत्स्थो वा । गर्भादप्राणिनीति तारकादित्वादितच् । गर्भिताः शालयः । प्राणिनि तु गर्भिणी ॥

(१५३) एतीति इभः । हस्ती वा ॥

(१५४) अस्यति प्रक्षिपति येन तत् अस्थि । कीकसं शरीरान्तरवयवो वा । सजतीति सक्थि । ऊरुदेशो वा ॥

सुषिकुषिशुषिभ्यः क्सिः॥१५५॥सुक्षिः । कुक्षिः।शुक्षिः॥१५५॥

अशेर्नित् ॥ १५६ ॥ अक्षिः ॥ १५६ ॥॥

इषेः क्सुः ॥ १५७ ॥ इक्षुः १५७ ॥

अवितृस्तृतन्त्रिभ्य ईः ॥ १५८ ॥ अवीः । तरीः । स्तरी । तन्त्रीः ॥ १५८ ॥

यापोः किद् द्वे च ॥ १५९ ॥ ययीः । पपीः ॥ १५९ ॥

लक्षेमुट् च ॥ १६० ॥ लक्ष्मीः ॥ १६० ॥

इत्युणादिषु तृतीयः पादः ॥

---

(१५५) प्लोषति दहतीति सुक्षिः । अग्निर्वा । कुष्णाति निष्कर्षतीति कुक्षिः । जठरं गर्भाशयो वा । शोषयतीति शुक्षिः । वायुर्वा । अत्रान्तर्गतो णिच् तस्य च पर्णशुङ्वत् णिलुक् ॥

(१५६) अश्नुते व्याप्नोति विषयान् येन तदक्षि । नेत्रं वा ॥

(१५७) इष्यते स इक्षुः । मधु तृणं वा ॥

(१५८) अवतीति अवीः । रजस्वला स्त्री वा । तरति यया सा तरीः । नौका वस्त्रादिरचकं भांडं वा । स्तृणोत्याच्छादयतीति स्तरीः । धूमो वा । तंत्रयति कुटुंबं धरतीति तन्त्रीः । वीणा वा । णिलोपः ॥

(१५९) याति प्रापयति स ययीः । अश्वो वा । पिबति पाति रक्षतीति वा स पपीः । सूर्यश्चन्द्रो वा ॥

(१६०) लक्षयति पश्यत्यङ्कयति वा सा लक्ष्मीः । विभूतिर्वा । लक्ष्मीरस्यास्तीति लक्ष्मणः । लक्ष्म्या अचेति पामादिपाठान्मत्वर्थीयो नः ॥

इत्युणादिव्याख्यायां वैदिकलौकिककोषे तृतीयः पादः ॥

---*---

वातप्रमीः ॥ १ ॥

ऋतन्यञ्जिवन्यञ्ज्यर्पिमद्यत्यङ्गिकुयुक्रशिभ्यः कतिच्यतुजलिजिष्णुजिष्ठजिसनृस्यनिथिन्नुल्यसासानुकः ॥ २ ॥ रत्निः । तन्यतुः । अञ्जलिः । वनिष्णुः । अञ्जिष्ठः । अर्पिसः । मत्स्यः । अतिथिः । अङ्गुलिः । कवसः । यवासः । कृशानुः ॥ २ ॥

शृः करन् ॥ ३ ॥ शर्करा ॥ ३ ॥

पुषः कित् ॥ ४ ॥ पुष्करम् ॥ ४ ॥

कलँश्च ॥ ५ ॥ पुष्कलम् ॥ ५ ॥

---

(१) वात इव प्रमिणोति प्रक्षिपतीति वातप्रमीः । अतिशीघ्रगामी हरिणविशेषो वा । पुंल्लिंग एवायं शब्दः । वातप्रमीन् मृगान् । ङी तु वातप्रमी । अमि वातप्रमीम् । बाहुलकात् । वष्टि कामयतेऽसौ उशी वाञ्छा तत्कुशला नरा अस्मिन् सन्तीति उशीनरो देशः अत्र बहुलवचनादेव सम्प्रसारणम् ॥

(२) एभ्यो द्वादशधातुभ्यः कनिजादयो द्वादश प्रत्यया यथासंख्यं भवन्ति । ऋच्छति गच्छतीति रत्निः । बद्धमुष्टिहस्तो वा । प्रसृताङ्गुलिररत्निः तनु–यतुच् । तनोति विस्तृणोतीति तन्यतुः । वायूरात्रिर्वा । अञ्जू–अलिच् । अनक्ति व्यक्तं करोतीति,अञ्जलिः । संयुतौ करौ वा । वनु–इष्णुच् । वनोति याचतेऽसौ वनिष्णुः । अपानवायुर्वा । अञ्जू–इष्ठच् । अनक्ति प्रकटयति पदार्थानिति, अञ्जिष्ठः । सूर्यो वा । अर्पि–इसन् । अर्पयतीति, अर्पिसः । अग्रमांसं वा । माद्यति हृष्यतीति मत्स्यः । मीनो वा । अत–इथिन् । अतति निरन्तरं गच्छति भ्रमतीत्यतिथिः । अकस्मादागतः सज्जनो वा । न विद्यते नियता तिथिरस्येति व्युत्पत्त्यन्तरम् । स्त्रियां कृदिकारादक्तिन इति ङीष् अतिथी स्त्री । अङ्गि– उलि । अङ्गति चेष्टतेऽनेन सोऽङ्गुलिः । करशाखा वा । कु–अस । कौति वा कवत इति कवसः । कण्टकजातिर्वा । अच इति पाठान्तरम् । तदा कवत इति कवचम् । यौति मिश्रयतीति यवासः । कण्टकवृक्षभेदो वा । कृषति तनूकरोतीति कृशानुः । अग्निर्वा ॥

(३) शृणातीति शर्करा । खण्डविकारो मृद्विकारो वा ॥

(४) पुष्णातीति पुष्करम् । अन्तरिक्षं कमलमुदकं वा ॥

(५) पुष धातोः कलनपि । पुष्यतीति पुष्कलम् पूर्णं वा ॥

गमेरिनिः ॥ ६ ॥ गमी ॥ ६ ॥
आङि णित् ॥ ७ ॥ आगामी ॥ ७ ॥
भुवश्च ॥ ८ ॥ भावी ॥ ८ ॥
प्रे स्थः ॥ ९ ॥ प्रस्थायी ॥ ९ ॥
परमे कित् ॥ १० ॥ परमेष्ठी ॥ १० ॥
मन्थः ॥ ११ ॥ मन्थाः । मन्थानौ ॥ ११ ॥
पतः स्थ च ॥ १२ ॥ पन्थाः ॥ १२ ॥
खजेराकः ॥ १३ ॥ खजाकः ॥ १३ ॥
बलाकादयश्च ॥ १४ ॥ बलाका । शलाका । पताका ॥ १४ ॥

(६) गमिष्यतीति गमी पथिको वा । भविष्यति गम्यादय इति कालनियमः ॥

(७) णित्वाद् वृद्धिः । आगमिष्यतीत्यागामी ॥

(८) इनिः णित् । भविष्यतीति भावी ॥

(९) इनिः णित् । णित्वाद्युक् । प्रस्थातुमिच्छतीति प्रस्थायी गन्तुमनाः ॥

(१०) परमे उत्तमे व्यवहारे तिष्ठतीति परमेष्ठी । सर्वेषां पितामह ईश्वरो वा । सप्तम्या अलुक् षत्वं च ॥

(११) इनिः कित् कित्त्वान्नलोपः । मन्थयति विलोडयतीति मन्थाः । मथिन् शब्दस्यसर्वनामस्थान आत्वम् । मन्थानौ । मन्थानः । दध्यादिमन्थनदण्डो वज्रोवायुर्वा ॥

(१२) पतन्ति गच्छन्ति यत्र स पन्था मार्गः । पन्थानौ । पूर्ववदात्वम् । पथे गतावित्यस्माद्धातोः पचाद्यचि कृते पथः । पथौ । पथाः । इत्यदन्तोऽपि दृश्यते ॥

(१३) खजति मथ्नातीति खजाकः पक्षिः । खजाकादर्विर्वा । बहुलवचनान्मन्थन्तिस्यूयन्ते तानि मन्दाकानि स्रोतांसि वा । तान्यस्याः सन्तीति मन्दाकिनी । नदीभेदः ॥

(१४) बलति संवृणोत्यसौ बलाका । बकपंक्तिः कामिनी बलाको बकपक्षी वा । मन्यते जानाति सा मनाका । हस्तिनी वा । पुनातीति पवाका । यां शलन्ति गच्छन्तीति शलाका । अञ्जनयष्टिका वा । पटति गच्छतीति पटाकः । पक्षी वा । पत्यते ज्ञायतेऽसौ पताका ध्वजा वा ॥

पिनाकादयश्च ॥ १५ ॥ पिनाकः । तडाकः ॥ १५ ॥

कषिदूषिभ्यामीकन् ॥ १६ ॥ कषीका । दूषीका ॥ १६ ॥

अनिहृषिभ्यां किच्च ॥ १७ ॥ अनीकम् । हृषीकम् ॥ १७ ॥

चङ्कणः कङ्कण च ॥ १८ ॥ कङ्कणीका ॥ १८ ॥

शॄपॄवृञां द्वे रुक् चाभ्यासस्य ॥ १९ ॥ शर्शरीकः ॥ पर्परीकः । वर्वरीकः । १९ ॥

फर्फरीकादयश्च ॥ २० ॥ फर्फरीकम् । दर्दरीकम् । तिन्तिडीकः । चञ्चरीकः । मर्मरीकः । कर्करीकम् । पुण्डरीकः ॥ २० ॥

(१५) पाति रक्षयतीति पिनाकः । त्रिशूलं धातुर्वा । ताडयत्याहन्तीति तडाकः प्रभा वा । बहुलवचनात् आगप्रत्यये सति तडागः । इत्यपि सिद्धं भवति । भन्दतेऽसौ भदाकः । कल्याणम् । श्यायति प्राप्नोतीति श्यामाकः व्रीहिभेदो वा । समा इति प्रसिद्धः । मुगागमो निपातनम् । न भाति प्रकाशत इति नभाकम् । मेघयुतमाकाशं वा । स पिनष्टि सम्यक् चूर्णयति स पिण्याकः । तिलकल्को वा । धातोः षकारस्य धत्वं युगागमश्च । वर्त्तते येन स वार्त्ताको वार्त्ताकी वा । वनभण्टा इति प्रसिद्धः । धातोर्वृद्धिः । गुवति पुरीषमुत्सृजतीति गुवाकः । पूगीफलं वा । कुटादित्वाद् गुणाभावः ॥

(१६) कषति हिनस्तीति कषीका । पक्षिजातिर्वा । दूषयतीति दूषीका । नेत्रमलं वा ।

(१७) अनिति जीवयतीत्यनीकम् । विरुद्धं सैन्यं वा । हृष्यति तुष्टो भवतीति येन तत् हृषीकम् । ज्ञानेन्द्रियं वा ॥

(१८) यङ्लुगन्तात्कणधातोरीकन् कंकणादेशश्च । पुनः पुनः कणति शब्दयतीति कङ्कणीका । वाद्यसाधनविशेषो वा । घरियार इति प्रसिद्धः । किङ्किणीका क्षुद्रघण्टिका । बहुलवचनात् सिद्धम् ॥

(१९) शृणाति हिनस्तीति शर्शरीको हिंसकः । पिपर्त्ति पालयतीति पर्परीकः सूर्यो वा । वृणोति स्वीकरोतीति वर्वरीकः । कुटिलकेशो जनो वा ॥

(२०) स्फुरति चेतनो भवतीति फर्फरीकम् । पत्रादिसहितः शाखाग्रन्थिर्वा ईकन्प्रत्यये धातोः फर्फरादेशः । दृणातीति दर्दरीकम् । वादित्रं वा । करोति कार्य्याणि येन तत् कर्करीकम् । शरीरं वा । कर्करीका गलन्तिका । कलशी इति प्रसिद्धा । अत्रोभयत्र धातोर्द्वित्वमभ्यासस्य रुक् च । तिम्यत्यार्द्रीकरोतीति तिन्तिडीकः । वृक्षजातिर्वा । मकारस्य डकारोऽभ्यासस्य नुट् च । चरति गच्छति भक्षयति वा स चञ्चरीकः । भ्रमरो वा । अभ्यासस्य नुम् । म्रियतेऽसौ मर्मरीकः । हीनजनो वा । पुणति शुभ कर्माचरतीति पुण्डरीकम् । श्वेताम्भोजं सितपत्रं भेषजं व्याघ्रोऽग्निर्वा ॥

ईषिः किद् ध्रस्वश्च ॥ २१ ॥ इषीका । २१ ॥
ऋजेश्च ॥ २२ ॥ ऋजीकः । २२ ॥
सर्त्तेर्नुम् च ॥ २३ ॥ सृणीका । २३ ॥
मृडः कीकच् कङ्कणौ ॥ २४ ॥ मृडीकः । मृडङ्कणः । २४ ॥
अलीकादयश्च ॥२५॥ अलीकम् । व्यलीकम् । वलीकम् । २५ ॥
कॄतॄभ्यामीषन् ॥ २६ ॥ करीषः । तरीषः ॥ २६ ॥
शॄपॄभ्यां किच्च ॥ २७ ॥ शिरीषः । पुरीषम् ॥ २७ ॥
अर्जेर्ऋज च ॥ २८ ॥ ऋजीषम् ॥ २८ ॥
अम्बरीषः ॥ २९ ॥

---

(२१) कित्वाद् गुणाभावः । ईषते गच्छतीति इषीका । मुञ्जादिशलाका वा ॥

(२२) कित् । अर्जति गच्छतीति ऋजीकः । उपहतो वा कित्त्वाद्गुणनिषेधः ॥

(२३) सरति प्राप्नोतीति सृणीका । लाला वा । ष्ठीवनभेदः । लार इतिप्रसिद्धम् ॥

(२४) मृडति सुखयतीति मृडीकः । सुखदाता । मृडङ्कणः । बालो वा । बहुलवचनात् कायति शब्दयतीति कङ्कणः । करभूषणं वा ॥

(२५) कीकन् प्रत्ययान्ता अमी निपात्यन्ते । अलति वारयतीत्यलीकम् । मिथ्या वा । विपूर्वाद् व्यलीकमप्रियं खेदो वा । वलते संवृणोत्यनेन तत् वलीकम् । गृहच्छादनसामग्री वा । अन्येपि वलते संवृतो भवतीति वल्मीकम् । छिद्रसर्पिभेदो वा । तस्यापत्यं वाल्मीकिः । मुडागमः । वहतीति वाहीकः । गौरखो वा । धातोर्वृद्धिः । सुष्ठु प्रैतीति सुप्रतीकः अग्निर्वा । धातोस्तुट् च ॥

(२६) कीर्यते विक्षिप्यते स करीषः । शुष्कगोमयं वा । तरति येन स तरीषः । नौका वा ॥

(२७) शृणाति हिनस्तीति शिरीषः । वृक्षभेदो वा । पिपर्त्ति तत् पुरीषम् । शकृद्वा ॥

(२८) अर्जति सञ्चितो भवति यस्मात्तत्, ऋजीषम् । पिष्टपचनं वा । तवा इतिप्रसिद्धम् ॥

(२९) अम्बते शब्दयतीति, अम्बरीषः । आकाशः स्वेदनी वा । भाड़ इति प्रसिद्धम् ॥

कृशृपृकटिपटिशौटिभ्य ईरन् ॥ ३० ॥ करीरः । शरीरम् । परीरम् । कटीरः । पटीरः । शौटीरः ॥ ३० ॥

वशेः किच्च ॥ ३१ ॥ उशीरम् ॥ ३१ ॥

कशेर्मुट् च ॥ ३२ ॥ कश्मीरः ॥ ३२ ॥

कृञ उच्च ॥ ३३ ॥ कुरीरम् ॥ ३३ ॥

घसेः किच्च ॥ ३४ ॥ क्षीरम् ॥ ३४ ॥

गभीरगम्भीरौ ॥ ३५ ॥

विषाविहा ॥ ३६ ॥

पच एलिमच् ॥ ३७ ॥ पचेलिमः ॥ ३७ ॥

---

(३०) किरतीति करीरः । वृक्षभेदो वंशाङ्कुरो वा । शीर्य्यते हिंस्यत इति शरीरम् । प्राणिकायो वा । पूर्य्यतेऽनेनेति परीरम् । फलं वा । कट्यत आव्रियतेऽसौ कटीरः । कुटी जघनदेशो वा । पटति गच्छतीति पटीरः । कन्दुकः कामश्चन्दनवृक्षो वा । शौटति गर्वं करोतीति शौटीरः । त्यागी वीरो वा । ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् शौटीर्य्यम् । वैराग्यम् । बहुलवचनात् । हिण्डत इतस्ततो गच्छतीति हिंडीरः । समुद्रफेनो दाडिमो वा । किर्मीर तूणीरजम्बीरकुम्भीरकुटीरादयोऽपीरन् प्रत्ययान्ता बाहुलकादेव बोद्धव्याः ॥

(३१) उश्यते काम्यते तदुशीरम् वीरणमूलं वा । खस २ इति प्रसिद्धम् ॥

(३२) ईरन्नित्येव । कष्टे गच्छति शास्ति वाऽसौ कश्मीरः । देशभेदो वा ॥

(३३) क्रियते तत् कुरीरम् । मैथुनं वा । कपिलकादित्वाल्लत्वे कुलीरः । जलजन्तुभेदो वा ॥

(३४) अद्यते भक्ष्यते यत्तत् क्षीरम् दुग्धं वा ॥

(३५) गमधातोर्मकारस्य भकार एकस्मिन् पक्षे नुमागमश्च । गम्यते प्राप्यते ज्ञायते वा स गभीरः शान्तो महाशयो वा । विशेष्यलिङ्गावेतौ शब्दौ ॥

(३६) विशेषेण स्यति कर्मान्तं करोतीति विषा । बुद्धिर्वा । विशेषेण जहाति त्यजति दुःखमिति विहा सुखलोको वा । स्वभावादनयोरव्ययत्वम् ॥

(३७) पचति पदार्थानिति पचेलिमः । अग्निः सूर्यो वा । यस्तु पचधातोः सामान्य वार्त्तिकेन तव्यार्थे केलिमज् विधीयते स भावे कर्मणि कर्मकर्त्तरिवेतिभेदः ॥

शीङो धुक्लक्वलञ्वालनः ॥ ३८ ॥ शीधु । शीलम् । शैवलः । शैवालम् । शैपालः ॥ ३८ ॥

मृकणिभ्यामूकोकणौ ॥ ३९ ॥ मरूकः । काणूकः ॥ ३९ ॥

वलेरूकः ॥ ४० ॥ वलूकः ॥ ४० ॥

उलूकादयश्च ॥४१॥ उलूकः। वावदूकः। भल्लूकः। शम्बूकः॥४१॥

शलिमण्डिभ्यामूकण् ॥ ४२ ॥ शालूकम् मण्डूकः । ४२ ॥

नियो मिः ॥ ४३ ॥ नेमिः । ४३ ॥

अर्त्तेरुच्च ॥ ४४ ॥ ऊर्मिः । ४४ ॥

भुवः कित् ॥ ४५ ॥ भूमिः । ४५ ॥

अश्नोतेरशच् ॥ ४६ ॥ रश्मिः । ४६ ॥

---

(३८) शेते येन तत् शीधु । मद्यं वा । शीलं स्वभावः । शैवलम् । शैवालम् । बाहुलकात् प्रत्ययवकारस्य पकारः । शैपालम् । जलनील्यानामान्येतानि । उदके लता रूपमुत्पन्नं सेवार इति प्रसिद्धम् ॥

(३९) म्रियतेऽसौ मरूकः । मृगो वा । कणति शब्दयतीति काणूकः काको वा ॥

(४०) वलते संवृणोतीति वलूकः । पक्षी कमलमूलं वा ॥

(४१) ऊक प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । वलतेऽसावुलूकः । पक्षिभेदो वा । धातोः संप्रसारणम् । भृशं वक्तीति वावदूको वक्ता । यङ्लुगन्तादूकः । जलशुक्तिर्वा । धातोर्बुक । बाहुलकादुकप्रत्यये शम्बुक इत्यपि सिद्धम् । भल्लते परितो भाषतेऽसौ भल्लूकः । ऋक्षो वा । बाहुलकाद् ह्रस्वे भल्लुक इत्यपि । तथा भलतेऽसौ भालूकः स एव । मह्यतीति मधूकः । वृक्षभेदो वा । तथा । एलूकजम्बूकवम्बूकवास्तूकादयोऽप्यत्रैव द्रष्टव्याः ॥

(४२) शल्यते प्राप्यते यत्तत्, शालूकम् । मूलद्रव्यं वा । मण्डति शोभते ऽसौ मण्डूकः । भेको जलजन्तुर्वा ॥

(४३) नयतीति नेमिः । चक्रावयवो वा बाहुलकात् । याति कार्याणि प्रापयतीति यामिः । आदेर्जत्वं जामिः । स्वसा कुलस्त्री वा ॥

(४४) ऋच्छति गच्छतीत्यूर्मिः । जलतरङ्गो वा ॥

(४५) भवन्ति पदार्था अस्यामिति भूमिः । उत्पत्तिस्थानम् । अल्पा भूमिर्भूमिका । कृदिकारादिति ङीष् भूमी ॥

(४६) अश्नुते व्याप्नोतीति रश्मिः । किरणो रज्जुर्वा ।

दलिमः ॥ ४७ ॥

वीज्याज्वरिभ्यो निः ॥ ४८ ॥ वेणिः । ज्यानिः । जूर्णिः ॥ ४८ ॥

सृवृषिभ्यां कित् ॥ ४९ ॥ सृणिः । वृष्णिः । ४९ ॥

अङ्गेर्नलोपश्च ॥ ५० ॥ अग्निः । ५० ॥

वहिश्रिश्रुयुद्रुग्लाहात्वरिभ्यो नित् ॥ ५१ ॥ वह्निः । श्रेणिः । श्रोणिः । योनिः । द्रोणिः । ग्लानिः । हानिः । तूर्णिः । ५१ ॥

घृणिपृश्निपार्ष्णिचूर्णिभूर्णयः ॥ ५२ ॥

वृदृभ्यां विन् ॥ ५३ ॥ वर्विः । दर्विः । ५३ ॥

(४७) दलति येन विदृणातीति दलिमः । सूर्यकिरण उत्तमायुधं वा ॥

(४८) वीयते क्षिप्यते स वेणिः । केशविन्यासो वा । निपातनात्सत्वम् । जिनाति वयोहीनो भवतीति ज्यानिः । क्षतिर्वा । ज्वरति रोगी भवतीति जूर्णिः । स्त्रीरोगो वा । बाहुलकात् क्षौति शब्दयतीति क्षोणिः । ङीष् क्षोणी । भूमिर्वा । क्रीणातीति क्रेणिः । क्रेणी ॥

(४९) सरति गच्छतीति सृणिः । अङ्कुशं वा । वर्षतीति वृष्णिः । क्षत्रियो वैश्य वा ॥

(५०) अङ्गति गच्छति प्राप्नोति जानाति वा सोऽग्निः । वह्निः । प्रसिद्धो वा ॥

(५१) वहतीति वह्निः । अग्निर्वा । श्रयति सेवतेऽसौ श्रेणिः । पङ्क्तिर्वा । निपूर्वाच्छ्रिश्रेणी । अधिरोहणी वा । शृणोतीति श्रोणिः । कटिप्रदेशो वा । यौति संयोजयति पृथक्करोति वा स योनिः । कारणमुपस्थेन्द्रियं वा । द्रवन्ति गच्छन्ति यत्र स द्रोणिः । सेचनी देशविशेषो वा । ग्लायति यस्मिन् स ग्लानिः । दौर्बल्यं दौर्मनस्यं वा । हीयते जहाति वा स हानिः । अपचयो वा । प्रहाणिः परिहाणिः । कृत्यच इति णत्वम् । त्वरति सम्यग्भ्रमतीति तूर्णिः । मनो वा । बहुलवचनात् । शेतेऽसौ शिनिः । क्षत्रियो वा । धातोर्ह्रस्वत्वं च । म्लायतीति म्लानिः । आनन्दक्षयो वा ॥

(५२) जिघर्त्ति क्षरति दीप्यते वा स घृणिः । किरणो वा । स्पृशति संयुक्तो भवतीति पृश्निः । अल्पशरीरो वा । धातोः सलोपः पर्षति सिञ्चतीति पार्ष्णिः । पादतलं वा । धातोर्वृद्धिः । चरति गच्छति भक्षयति चूर्णयति प्रेरयतीति वा चूर्णिः । विवरणं वा । बिभर्त्ति धरति सर्वमिति भूर्णिः । पृथिवी वा । बाहुलकात् । घुरति शब्दयतीति घूर्णिः ॥

(५३) वृणोतीति वर्विः । भक्षको वा । दृणाति यया सा दर्विः । सूपचालनपात्रं वा । ङीप् । दर्वी ॥

जॄशॄस्तॄजागृभ्यः क्विन् ॥ ५४ ॥ जीर्विः । शीर्विः । स्तीर्विः । जागृविः ॥ ५४ ॥

दिवो द्वे दीर्घश्चाभ्यासस्य ॥ ५५ ॥ दीदिविः । ५५ ॥

कृविघृष्विच्छविस्थविकिकीदिवि ॥ ५६ ॥

पातेर्डतिः ॥ ५७ ॥ पतिः । ५७ ॥

शकेर्ऋतिन् ॥ ५८ ॥ शकृत् ॥ ५८ ॥

अमेरतिः ॥ ५९ ॥ अमतिः ॥ ५९ ॥

वहिवस्यर्त्तिभ्यश्चित् ॥६०॥ वहतिः । वसतिः । अरतिः ॥ ६०॥

अञ्चेः को वा ॥ ६१ ॥ अङ्कतिः । अञ्चतिः ॥ ६१ ॥

---

(५४) जीर्य्यतीति जीर्विः । पशुर्वा । शृणातीति शीर्विः । स्तृणीत्याच्छादयतीति स्तीर्विः । अध्वर्युर्वा । जागर्त्तीति जागृविः नृपतिर्वा ॥

(५५) दीव्यतीति दीदिविः । सुखमन्नंवा । क्वन्प्रत्ययस्य वाहुलकादेवेत्संज्ञा लोपौ न भवतः ॥

(५६) करोति येन स कृविः । तन्तुवायद्रव्यं वा । घर्षति सिञ्चतीति घृष्विः । वराहो वा । छ्यति सूक्ष्मं करोतीति छविः । दीप्तिर्वा । धातोर्ह्रस्वत्वं च । तिष्ठतीति स्थविः । तन्तुवायो वा । अत्रापि ह्रस्वः । किकिना शब्देन दीव्यतीति किकिदीविः । चाषो वा । नीलकण्ठ इति प्रसिद्धः । किकीदिविः । किकिदिविः । किकिदीविः । किकिदिवः । किकीदीविः । इति पंचभेदा वहुलवचनादेव मन्तव्याः ॥

(५७) पाति रक्षतीति पतिः । स्वामी वा ।

(५८) शक्नोतीति शकृत् । वाहुलकात् । यजतीति यकृत् । कालखण्डं वा । धातोर्जकारस्य ककारः ॥

(५९) अमति गच्छतीति, अमतिः कालो वा । वाहुलकात् व्रतमाचरतीति व्रततिः । विस्तारी व्रतती लता वा । मालयति गन्धं धारयतीति मालती मालतिः । सुमना वा । चमेली इति प्रसिद्धा । स्थापयति धर्म्ममिति स्थपतिः । वाग्मी यज्ञकर्त्ता वा । ण्यन्तस्य स्थाधातोः पुकि सति ह्रस्वत्वम् ॥

(६०) वहति प्रापयति पदार्थान् प्राप्नोति वेति वहतिः । पवनो वा । वसन्ति यत्रेति वसतिर्वसती वा गृहं रात्रिर्वा । ऋच्छति गच्छतीति, अरतिः क्रोधो वा । वाहुलकात् । अलति भूषयति समर्थो वा भवति । स, अलतिः । गीतमालिका वा ॥

(६१) अञ्चति गच्छति पूजयति वा स, अङ्कतिः । अञ्चतिः । वायुर्वा ॥

हन्तेरंह च ॥ ६२ ॥ अंहतिः ॥ ६२ ॥

रमेर्नित् ॥ ६३ ॥ रमतिः ॥ ६३ ॥

सूङः क्रिः ॥ ६४ ॥ सूरिः ॥ ६४ ॥

अदिशदिभूशुभिभ्यः क्रिन् ॥ ६५ ॥ अद्रिः । शद्रिः । भूरिः । शुभ्रिः ॥ ६५ ॥

वङ्क्यादयश्च ॥ ६६ ॥ वङ्क्रिः । वप्रिः । अंह्रिः । तन्द्रिः । भेरिः ॥ ६६ ॥

राशदिभ्यां त्रिप् ॥ ६७ ॥ रात्रिः । शत्रिः ॥ ६७ ॥

अदेस्त्रिनिश्च ॥ ६८ ॥ अत्री । अत्रिः ॥ ६८ ॥

पतेरत्रिन् ॥ ६९ ॥ पतत्रिः ॥ ६९ ॥

मृकणिभ्यामीचिः ॥ ७० ॥ मरीचिः । कणीचिः ॥ ७० ॥

---

(६२) अतिः । हन्यनेनेति, अंहतिः । दानं वा ॥

(६३) रमन्तेऽस्मिन् स रमतिः कालः कामो वा ॥

(६४) सूते प्राणिनः प्रसवति समर्थयतीति,सूरिः । पण्डितो वा । स्त्रियां सूरी॥

(६५) योऽत्ति, अदन्ति यत्रेति वा स, अद्रिः । पर्वतो मेघो वृक्षः सूर्यो वा । शीयते शातयतीति शद्रिः । शर्करा वा । भवतीति भूरिर्बहु सुवर्णं वा। भूरिप्रयोजनमस्य स भौरिकः। कनकाध्यक्षो वा । शोभतेऽसौ शुभ्रिः । चतुर्वेदविद् ब्रह्मा वा ॥

(६६) वङ्कतेऽसौ वङ्क्रिः । वाद्यभेदो गृहदारु वा । वपन्ति यस्मिन् स वप्रिः क्षेत्रं वा । सम्प्रसारणाभावो बाहुलकात् । अंहयति भाषतेऽसावंह्रिः । पादो वा । तन्द्रिः सौत्रो धातुः।तन्द्रति क्लिश्नातीति तन्द्रिः मोहो वा। स्त्रियां तन्द्री। बिभेति येन स भेरिः । वाद्यविशेषो वा । भेरी वा ॥

(६७) राति सुखं ददातीति रात्रिः । प्रसिद्धा वा । शीयते छिनत्तीति शत्रिः हस्ती वा ॥

(६८) चात् त्रिप् । अत्ति भक्षयतीति, अत्री, । अत्रिणौ । पापं वा । अत्रिः । मुनिभेदो वा । तस्यापत्यमात्रेयः ॥

(६९) पततीति पतत्रिः । पक्षी वा । पतत्रयः । पक्षवाचकात्पतत्रशब्दान्मत्वर्थ इनिः । पतत्री । पतत्रिणौ ॥

(७०) म्रियतेऽसौ मरीचिः । दीप्तिर्महर्षिर्वा । कणति शब्दयतीति कणीचिः। पत्रादियुक्ता शाखा शब्दो वा ॥

श्वयतेश्चित् ॥ ७१ ॥ श्वयीचिः ॥ ७१ ॥
वेञो डिच्च ॥ ७२ ॥ वीचिः ॥ ७२ ॥
ऋहनिभ्यामूषन् ॥ ७३ ॥ अरूषः । हनूषः ॥ ७३ ॥
पुरः कुषन् ॥ ७४ ॥ पुरुषः । पूरुषः ॥ ७४ ॥
पृनहिकलिभ्य उषच् ॥ ७५ परुषः । नहुषः । कलुषम् ॥ ७५ ॥
पीयेरूषन् ॥ ७६ ॥ पीयूषम् । पेयूषम् ॥ ७६ ॥
मस्जेर्नुम् च ॥ ७७ ॥ मञ्जूषा ॥ ७७ ॥
गण्डेश्च ॥ ७८ ॥ गण्डूषः ॥ ७८ ॥
अर्त्तेररुः ॥ ७९ ॥ अररुः ॥ ७९ ॥
कुटः किच्च ॥ ८० ॥ कुटरुः ॥ ८० ॥
शकादिभ्योऽटन् ॥८१॥ शकटः । कङ्कटः । देवटः । करटः ॥८१॥

(७१) श्वयति गच्छति वर्धते वा स श्वयीचिः । व्याधिर्वा ॥

(७२) वयति तन्तून् सन्तनोतीति वीचिः । डित्वाट्टिलोपः । तरङ्गो वा ॥

(७३) ऋच्छति गच्छतीति, अरूषः । सूर्यो वा । हन्तीति हनूषो दस्युः ॥

(७४) पुरत्यग्रं गच्छतीति पुरुषः पुमान् । अन्येषामपि दृश्यत इति दीर्घेपूरुषो वा

(७५) पिपर्त्तीति परुषम् । निष्ठुरं वचो वा । नह्यति बध्नातीति नहुषः । राजर्षिः सर्पविशेषो वा । कलते शब्दयतीति कलुषम् । पापम् ॥

(७६) पीयति पीयते वा तत् पीयूषम् । पेयूषम् । नूतनं पयोऽमृतं वा । सप्तरात्रप्रसूतायाः क्षीरम् । बहुलवचनात् । अङ्कवते लक्षयतीति अङ्कूषः । नकुलो वा ॥

(७७) धातोर्नुम् । स चाचोऽन्त्यात्परः । जश्त्वश्चुत्वे । मज्जति शुद्धो भवतीति मञ्जूषा । काष्ठमयं द्रव्यं वा ॥

(७८) गण्डति वदनावयवं दिशतीति गण्डूषः । जलादिना पूर्णं मुखम् कुल्ला इति प्रसिद्धम् ॥

(७९) ऋच्छति प्राप्नोति येन तत् । अररुः । आयुधं वा ॥

(८०) कुटतीति कुटरुः । वस्त्रगृहं वा ॥

(८१) शक्नोतीति शकटः । शकटं यानविशेष ऋषिर्वा यस्यापत्यं शाकटायनः । वृणोतीति वरटः । कीटभेदो वरटा हंसयोषिद्वा । कङ्कते गच्छतीति कङ्कटः । कवचो वा । सरति प्रसरतीति सरटः । कृकलासो वा । गिरगट इति प्रसिद्धः । देवते

छकदिकडिकटिभ्योऽम्बच् ॥ ८२ ॥ करम्बम् । कदम्बः । कडम्बः कटम्बः ॥ ८२ ॥

कदेर्णित् पक्षिणि ॥ ८३ ॥ कादम्बः । ८३ ॥

कलिकर्द्योरमः ॥ ८४ ॥ कलमः । कर्दमः । ८४ ॥

कुणिपुल्योः किन्दच् ॥ ८५ ॥ कुणिन्दः । पुलिन्दः । ८५ ॥

कुपेर्वा वश्च ॥ ८६ ॥ कुविन्दः । कुपिन्दः । ८६ ॥

नौ षञ्जेर्घथिन् ॥ ८७ ॥ निषङ्गथिः । ८७ ॥

उद्यर्त्तेश्चित ॥ ८८ ॥ उदरथिः । ८८ ॥

व्यवहरतीति देवटः । शिल्पी वा । कम्पते येन स कपटः । माया वा । धातोर्नलोपः । कर्कमर्ककर्पाः सौत्रा धातवः । कर्कतीति कर्कटः । जलजन्तुभेदो वा । मर्कतीति मर्कटः । वानरो वा । स्त्रियां गौरादित्वान् ङीष् । मर्कटी । कर्पतीति कर्पटः । छिन्नं पुराणं वस्त्रं वा । पर्पति गच्छतीति पर्पटः । ऊषरभूमिर्वा । कखति हसतीति कक्खटम् । कठिनं वा । कुगागमः । चपति सान्त्वयतीति येन स चपेटः । चर्पटो वा । प्रसृताङ्गुलिर्हस्तो वा । एकत्र प्रत्ययादेरित्वमपरत्र रेफागमश्च । मयते प्राप्नोति यं स मयटः । प्रासादो वा । किरति विक्षिपतीति करटः । काको वा । एवमन्येऽपि शब्दा अटन्प्रत्ययान्ता यथाप्रयोगं सध्याः ॥

(८२) करोतीति करम्बम् । व्यामिश्रम् कदतीति कदम्बः । वृक्षभेदो वा । कडत्याहणोतीति कडम्बः । अग्रभागो वा । कटतीति कटम्बो वादित्रं वा ॥

(८३) कदति विकलो भवतीति कादम्बः पक्षिभेदो वा बक इति प्रसिद्धः ॥

(८४) कलति संख्यातीति कलमः । शालिभेदो वा । कर्दति कुत्सितं शब्दयतीति कर्दमः पापं वा ॥

(८५) कुण्यते शब्द्यतेऽसौ कुणिन्दः । शब्दो वा । पोलति महान् भवतीति पुलिन्दः । शबरश्चाण्डालभेदो वा । बाहुलकात् । अलति भूषयतीति, अलिन्दः । गृहैकदेशो वा । प्रज्ञादित्वादणि आलिन्द इत्यपि सिद्धम् ॥

(८६) कुप्यति क्रुद्धो भवति स कुविन्दः । कुपिन्दः । तन्तुवायो वा ॥

(८७) नितरां सजति सङ्गं करोतीति निषङ्गथिः । आलिङ्गकी वा । घित्वात् कुत्वम् ॥

(८८) उदृच्छन्त्यूर्ध्वं गच्छन्त्यापोऽस्मिन् स उदरथिः । समुद्रो वा ॥

सर्त्तेर्णिच्च ॥ ८९ ॥ सारथिः । ८९ ॥

खर्जिपिञ्जादिभ्य ऊरोलचौ ॥ ९० ॥ खर्जूरः । कर्पूरः । धुस्तूरः । वल्लूरम् । पिञ्जूलम् । लाङ्गूलम् । ९० ॥

कुवश्चट् दीर्घश्च ॥ ९१ ॥ कूची ॥ ९१ ॥

समीणः ॥ ९२ ॥ समीचः । समीची ॥ ९२ ॥

सिवेष्टेरू च ॥ ९३ ॥ सूचः । सूची ॥ ९३ ॥

शमेर्वन् ॥ ९४ ॥ शम्बः ॥ ९४ ॥

उल्वादयश्च ॥ ९५ ॥ उल्वम् । विल्वम् ॥ ९५ ॥

(८९) सारयतीति नियमेन चालयतीति सारथिः । नियन्ता वा। अत्र णेर्लोपो णित्वाद् वृद्धिः ॥

(९०) खर्ज्यादिभ्यः ऊरः । खर्जति मार्जयतीति खर्जूरः। वृक्षभेदो रजतं वा ॥ स्त्रियां गौरादित्वान् ङीष् । खर्जूरी । कल्पते समर्थो भवतीति कर्पूरः । सुगन्धिद्रव्यं वा । बाहुलकादत्र लत्वाभावः । धुनोति कम्पयतीति धुस्तूरः । कनकाह्वयः । धतूरा इति प्रसिद्धः । वल्लते संवृणोतीति वल्लूरम् । शुष्कमांसं वा । शालयति गमयतीति शालूरः । मण्डूको वा । मल्लते धरतीति मल्लूरः । कस्ते गच्छति प्राप्नोति शास्ति वा स कस्तूरः । स्त्रियां कस्तूरी प्रसिद्धा । सुगन्धिभेदः । पिञ्जादिभ्य ऊलः । पिङ्क्ते वर्णयतीति पिञ्जूलम् । कुशवर्तिर्वा ।कञ्चते दीप्यतेऽसौ कञ्चूलः । स्त्रीगात्राभरणं वा । लङ्गति गच्छतीति लांगूलम् । पुच्छं वा । धातोर्वृद्धिः । ताम्यति काङ्क्षति यस्तत् ताम्बूलमिति प्रसिद्धम् । धातोर्वुक् । धातोर्दुक् दीर्घत्वं च । शृणाति हिनस्तीति शार्दूलः । व्याघ्रो वा । धातोर्दुक् वृद्धिश्च । दुनोत्युपतापयतीति दुकूलम् । स्त्रिया अधोवस्त्रम् । धातोः कुक् । कुस्यति श्लिष्यतीति कुसूलः। धान्यपात्रं वा ॥

(९१) कौति शब्दयतीति कूचः । स्तनं हस्तो वा । स्त्रियां कूची चित्रलेखनी॥

(९२) सम्यगीति गच्छतीति समीचः । समुद्रो वा । समीची हरणी ॥

(९३) इवभागस्य टेरू आदेशः । सीव्यति येन स सूचः । दर्भाङ्कुरो वा । स्त्रियां सूचीति प्रसिद्धा ॥

(९४) शाम्यतीति शम्बः । मुसलस्य लोहमुखं वा । शामी इति प्रसिद्धा ॥

(९५) वन् प्रत्ययान्ता निपाताः । उच्यति समवैतीति उल्वः । गर्भो वा । वकारस्य लत्वं गुणाभावश्च । शोचतीति शुल्वम् । ताम्रं वा । पूर्ववत्सर्वम् । नयति गापयतीति शुभगुणानिति निम्बः । वृक्षभेदो वा । बीयते काम्यते तत् बिम्बम् ।

स्थः स्तोऽम्बजवकौ ॥ ९६ ॥ स्तम्बः । स्तवकः ॥ ९६ ॥
शाशपिभ्यां ददनौ ॥ ९७ ॥ शादः । शब्दः ॥ ९७ ॥
अब्दादयश्च ॥ ९८ ॥ अब्दः । कुन्दः ॥ ९८ ॥
वलिमलितनिभ्यः कयन् ॥ ९९ ॥ वलयम् । मलयः । तनयम् ॥ ९९ ॥
वृह्रोः षुग्दुकौ च ॥ १०० ॥ वृषयः । हृदयम् ॥ १०० ॥
मीपीभ्यां रुः ॥ १०१ ॥ मेरुः । पेरुः ॥ १०१ ॥
जत्वादयश्च ॥ १०२ ॥

मण्डलमोषधिविशेषो वा। अत्रोभयत्र नौ वौ धातोर्नुमागमो ऋस्तत्वं च । स्त्रियां गौरादित्वात्। बिम्बी। बिम्बफलमिवौष्ठौ यस्याः सा बिम्बोष्टी। कन्या। दिधन्ति धान्य-हेतुर्भवतीति धन्वम्। धनुर्वा। तद्योगाद्धन्वी जनः। जमति भक्षयतीति जम्बः। पङ्को वा॥

(९६) अम्बच् अवक इत्येतौ प्रत्ययौ तिष्ठतीति स्तम्बः । शाखाशून्यो ब्रीह्या-देर्गुच्छो वा । स्तवकः । पुष्पगुच्छो वा ॥

(९७) श्यति सूक्ष्मं करोतीति शादः । कर्दमो बालतृणं वा । शप्यत आह्वयते ऽनेन स शब्दो नादः । पस्य वः ॥

(९८) ददन् प्रत्ययान्ता निपाताः । अवति रक्षणादिकं करोतीति अब्दः । सम्वत्सरोऽवसरो मेघो वा । कौति शब्दयतीति कुन्दः । पुष्पजातिर्वा । धातोर्मुम् वृणोतीति वृन्दं समूहो वा । नुम् गुणाभावश्च । कनति दीप्यतेऽसौ कन्दः । सस्य मूलं सूकरो वा। तुदति व्यथतीति तुन्दः। स्थूलमुदरं वा। तुन्दी स्थूलोदरी धातोर्नुम्॥

(९९) वलते संवृणोतीति वलयः । करभूषणं वा । मलते धरतीति मलयः । पर्वतो वा । तनोति सुखमिति तनयः। पुत्रो वा वाहुलकात् । आमयति पीडयतीति आमयः रोगो वा ॥

(१००) वृणोतीति वृषयः । आश्रयो वा । षुक् । हरति विषयानिति हृदयम्। मनो वा । दुक् ॥

(१०१) मिनोति प्रक्षिपतीति मेरुः । सुमेरुः पर्वतो वा । पीयते पिवतीति वा पेरुः । आदित्यो वा । वाहुलकात् । पिवतीति पारुः । स एव ॥

(१०२) जायते तत् जत्रु। स्कन्धसन्धिर्वा । नस्य तः जतुणी। जतुणि । शेतेऽसौ शिग्रुः । शोभाञ्जनस्तरुः । सहिंजना इति प्रसिद्धः । शाकं वा । मनुष्यविशेषो वा । तत्र शिग्रोरपत्यं शैग्रवः । विशेषेण तनोतीति वितद्रुः । नदी वा । नकारस्य दः । कवतेऽसौ कद्रुः । वर्णभेदो वा । वस्य दः । अस्यति प्रक्षिपति जलमिति अस्रुः । बहुलवचनात् । शकारभेदे । अश्रुः । नेत्रजलं वा ॥

रुशातिभ्यां क्रुन् ॥ १०३ ॥ रुरुः । शत्रुः ॥ १०३ ॥

जनिदाच्युसृवृमदिषमिनमिभृञ्भ्य इत्वन्त्वन्तण्क्निनृशक्स्यठढाटचः ॥ १०४ ॥ जनित्वः । दात्वः । च्यौत्नः । सृणिः । वृशः । मत्स्यः । षण्ढः । नटः भरटः ॥ १०४ ॥

अन्येऽपि दृश्यन्ते ॥ १०५ ॥ पेत्वम् ॥ १०५ ॥

कुसेरुम्भोमेदेताः ॥ १०६ ॥ कुसुम्भम् । कुसुमम् । कुसीदम् । कुसितः ॥ १०६ ॥

सानसिवर्णसिपर्णसितण्डुलाङ्कुशचषालेल्वलपल्वलधिष्ण्यशल्याः ॥ १०७ ॥

(१०३) रौति शब्दं करोतीति रुरुः । मृगभेदो वा । शीयते शातयतीति शत्रुः । प्रज्ञादित्वादण् । शात्रवः । वैरी ॥

(१०४) जायते जनयति वा । स जनित्वः । मातापितरौ वा । यो ददाति यत्र वा स दात्वः । यज्ञकर्म वा । च्यवते गच्छतीति च्यौत्नम् । बलं वा । सरतीति सृणिः चन्द्रोऽङ्कुशो वा । वृणोतीति वृशः । ओषधिर्वा । माद्यतीति मत्स्यः । मीनो वा स्त्रियां मत्सी । मत्स्या । शाम्यतीति शण्ढः । अकृतदारो वा । नमतीति नटः । वंशावरोहीति प्रसिद्धः । डित्वाट्टिलोपः । बिभर्त्तीति भरटः । कुलालो वा ॥

(१०५) इत्वनादय इति शेषः । पीयते यत् पेत्वम् । अमृतं वा । कथ्यते बध्यतेऽसौ कच्छः । शाकमूलं वा । सरतीति सरटः । वायुर्वा । ध्यायते तद् ध्यात्वम् । चिन्ता वा जुहोतीति होत्रः । यजमानो वा । लूयतेऽसौ लूनिः । व्रीहिर्वा इत्यादि ॥

(१०६) कुस्यति श्लिष्यतीति कुसुम्भम् । महारजनं वा । कुसुमम् । पुष्पं वा । कुसीदम् । वृद्धिजीविका वा । कुसितः । देशो वा ॥

(१०७) सनोति ददाति सन्यते वा स सानसिः । हिरण्यं वा । असिप्रत्यय उपधावृद्धिश्च । वृणोतीति वर्णसिः । जलं वा । धातोर्नुक् । पिपर्त्तीति पर्णसिः । जलरुहं वा । पूर्ववत्सर्वम् । तण्डति ताडयति ताड्यते वा । स तण्डुलः । उलच् । तुषरहितो व्रीहिर्वा । अङ्कते लक्षयति येन स, अङ्कुशः । शस्त्रभेदो वा । उशच् । चषति भक्षयतीति चषालः । यूपकङ्कणं वा । इलति स्वपितीति, इल्वलः । नक्षत्रविशेषो वा । पलति गच्छतीति पल्वलम् । अल्पसरो वा । अनयोर्वलच् गुणाभावश्च । धृष्णोति प्रगल्भो भवतीति धिष्ण्यः । स्थानमग्निरालयो वा । ऋकारस्येकारो ण्यप्रत्ययश्च । शलति गच्छतीति शल्यम् । शस्त्रविशेषो बाणाग्रभागो वा ॥

मूशक्यविभ्यः क्लः ॥ १०८ ॥ मूलम् । शक्लः । अम्बूलः । अम्लः ॥ १०८ ॥
माछाशसिभ्यो यः ॥ १०९ ॥ माया । छाया । सस्यम् ॥ १०९ ॥
सनोतेः ॥ ११० ॥ सव्यम् ॥ ११० ॥
जनेर्यक् ॥ १११ ॥ जन्यम् । जाया ॥ १११ ॥
अघ्न्यादयश्च ॥ ११२ ॥ अघ्न्या । कन्या । बन्ध्या ॥ ११२ ॥
स्नामदिपद्यर्त्तिपॄशकिभ्यो वनिप् ॥ ११३ ॥ स्नावा । मद्वा ।
मद्वा । अर्वा । पर्वा । शक्वा । शक्वरी ॥ ११३ ॥

(१०८) मनते बध्नातीति मूलमिति प्रसिद्धम्। शक्नोतीति शक्लः। प्रियम्वदो वा। अम्बते शब्दं करोतीत्यम्बूलः। बाहुलकात्। अमति गच्छतीति, अम्लः । रसविशेषो वा॥

(१०९) मात्यन्तर्भवतीति माया । छलं मिथ्याजालो वा । छ्यति प्रकाशमिति छाया । प्रकाशावरणमुल्लोचक प्रतिविम्बो वा । शस्यते यत्तत् सस्यम् । चेत्रपक्कमन्नं गुणो वा बाहुलकात् अनितिजीवयतीत्यन्यः । इतरो वा ॥

(११० सुनोत्यभिषवतीति सव्यम् । वामभागो वा ॥

(१११) या जायते यस्यां वा सा जाया पत्नी। ये विभाषेति व्यवस्थितविभाषया अन्यां जाया नित्यमात्वमन्यत्र जन्यम् । निवादो युद्धं वा ॥

(११२) यगन्ता निपाताः । यो न हन्यते न हन्तीति वा स, अघ्न्यः । प्रजापालको वा । धातोरुपधालोपो हस्य घत्वं च । अघ्न्या गौर्वा । सन्दधाति यस्यां वेलायां सा सन्ध्या । आतो लोपः । सायंकालः प्रतिज्ञा वा । सम्यग्ध्यायन्ति परं ब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या। इति तु स्त्रियां क्तिन्नित्यधिकारे, आतश्चोपसर्गे इत्यङ्। कन्यते दीप्यते काम्यते गच्छति वा सा कन्या । कुमारी वा । बध्यतेऽसौ बन्ध्या अप्रसूता वा । कौति शब्दयतीति कुड्यम् । भित्तिर्वा । धातोर्डुक् । मन्यते येन तन्मध्यम् । द्वयोरन्तरालं वा । नस्य धः । उह्यते यत्तद् वह्यम् । मनुष्यविशेषो वा । अहति व्याप्नोतीत्यहल्या । रात्रिर्वा । अहर्लीयतेऽस्यामिति व्युत्पत्यन्तरम् । पूर्ववत् धातोरलुगागमः। ऋषति गच्छतीति ऋष्यः मृगभेदो वा । कष्टं गच्छति यास्ति वा स कश्यः । मद्यं वा । इत्यादि ॥

(११३) स्नाति शुध्यतीति स्नावा। रसिको वा । स्नावानौ । स्नावानः माद्यतीति मद्वा । कल्याणदातेश्वरो वा । पद्यन्ते यत्र स पद्वा । पन्था वा । ऋच्छतीत्यर्वा । अश्वो निन्द्यो वा । पिपर्त्तीति पर्व । ग्रन्थिर्वा । शक्नोतीति शक्वा । हस्ती वा । स्त्रियां ङीब्रेफौ । शक्वरी । नदीछन्दो भेदो वा ॥

शीङ्क्रुशिरुहिजिक्षिसृधृभ्यः क्वनिप् ॥ ११४ ॥ शीवा । क्रुश्वा । रुह्वा । जित्वा । क्षित्वा । सृत्वा । धृत्वा ॥ ११४ ॥

ध्याप्योः संप्रसारणं च ॥ ११५ ॥ धीवा । पीवा ॥ ११५ ॥

अदेर्ध च ॥ ११६ ॥ अध्वा ॥ ११६ ॥

प्र ईरशदोस्तुट् च ॥ ११७ ॥ प्रेत्वा । प्रशत्त्वा । प्रेत्वरी । प्रशत्त्वरी ॥ ११७ ॥

सर्वधातुभ्य इन् ॥ ११८ ॥ पचिः । तुण्डिः । बलिः । बटिः । मणिः । वह्निः । यजिः । गण्डिः । तडिः । भाडिः । काशिः । बाशिः । घटिः । घटी । यतिः । केलिः । मषिः । कोटिः । जटिः । कटिः । हलिः । हेलिः । पशिः । कलिः ॥ ११८ ॥

---

(११४) शेतेऽसौ शीवा । अजगरो वा । क्रोशतीति क्रुश्वा । शृगालो वा । रोहति बीजादुत्पद्यत इति रुह्वा । वृक्षो वा । जयतीति जित्वा । जयशीलः । क्षयति नाशयति क्षिपति निवसति गच्छति वा स क्षित्वा । वायुर्वा । सरतीति सृत्वा । प्रजापतिर्वा । धारयतीति धृत्वा । व्यापको जगदीश्वरो वा । स्त्रियां जित्वरी इत्यादि बोध्यम् ॥

(११५) ध्यायतीति धीवा । कर्मकारो वा । स्त्रियां धीवरी । मत्स्याधानं पात्रम् । प्यायते वर्द्धतेऽसौ पीवा । स्थूलो वा । पीवरी तरुणी ॥

(११६) अत्ति भक्षयतीति, अध्वा । मार्गो वा ॥

(११७) प्रैतेऽसौ प्रेत्वा । सागरो वा । प्रेत्वरी । प्रशीयतेऽसौ प्रशत्त्वा समुद्रो वा । प्रशत्त्वरी नदी ॥

(११८) पचति येन स पचिः । अग्निर्वा । तुण्डति छिनत्तीति तुण्डिः । वलते संवृणोतीति बलिः । महाराजो वा । वाटयति ग्रथ्नाति स बटिः । विभाजको वा । मणति शब्दयतीति मणिः । बहुमूल्यः पाषाणो वा । प्रशंसितो मणिर्मणिकः । तदेव माणिक्यम् । वल्हते प्रधानो भवतीति बल्हिः । बल्हिका नाम क्षत्रिया जनपदो वा । यजतीति यजिः । संगन्ता होता वा । गण्डति स गण्डिः । वदनैकदेशो वा । ताड़यतीति तडिः । पीडकः । भाडते विशेषेण छिनत्तीति भाडिः । पुष्पचयो वा । काश्यते दीप्यतेऽसौ काशिः । देशभेदो वा । तद्देशान्तर्गतत्वाद्वाराणसी नगरी काशिः । काशी । तस्य देशस्य राजा काश्यः । वाश्यते शब्दयतीति वाशिः । कण्ठभेदिनी वा । घटतेऽसौ घटिः । घटी । यततेऽसौ यतिः । नियमधारी संन्यासी वा । केलति चलति

हृपिषिरुहिवृतिविदिछिदिकीर्त्तिभ्यश्च ॥ ११६ ॥ हरिः । पेषिः । रोहिः । वर्त्तिः । वेदिः । छेदिः । कीर्त्तिः ॥ ११६ ॥

इगुपधात् कित् ॥ १२० ॥ कृषिः । ऋषिः । रुचिः । शुचिः । लिपिः ॥ १२० ॥

भ्रमेः संप्रसारणं च ॥ १२१ ॥ भृमिः । भ्रमिः । १२१ ॥

क्रमितमिशतिस्तम्भामत इच्च ॥ १२२ ॥ क्रिमिः । क्रमिः । तिमिः । शतिः । स्तिभिः । १२२ ॥

यस्यां सा केलिः । क्रीडा वा । मस्यति परिणमते स मसिः।मसी। पात्राञ्जनं वा । कुटतीति कोटिः । संख्यावरणमग्रभागो वा । बाहुलकाद् गुणः । जटति संघातं करोतीति जटिः जटाधारी वा । कटतीति कटिः । कटी । शरीरमध्यं वा। हलति येन विलिखतीति हलिः । कृषीवलः । कृषिसाधनं वा । हेलति विरुद्धं बहु भाषत इति हेलिः । प्रहेलिः । यः पणायति व्यवहरति स पणिः विपणिः । वणिजां वीथी वा । कलन्ते स्पर्द्धमाना भाषन्ते यत्र स कलिः । कलहो विग्रहो वा। नन्दति यत्रे ति नन्दिः । वृद्धिर्वा । इत्यादीन्यनेकान्युदाहरणानि सन्ति ॥

(११६) हरतीति हरिः । सर्पो मण्डूकोऽश्वः सिंहः सूर्यो वा । इगुपधात् किदिति वक्ष्यते तद्बाधनार्थं पिष्यादीनां ग्रहणम् । तत्र हि कित्वाद् गुणनिषेधः प्राप्तः स न स्यात् । पिनष्टि येन स पेषिः । वज्रो वा । रोहतीति रोहिः । व्रती वा। वर्त्तते सा वर्त्तिः।दीपोपकरणं वा।विद्यते या सा वेदिः।यज्ञभूमिर्वा छिनत्तीति छेदिः। वर्धकिश्छेत्ता वा । कीर्त्यते संशब्द्यते सा कीर्त्तिः । पुण्यं यशो वा ॥

(१२०) कृष्यते विलेख्यते या सा कृषिः । खेतीति प्रसिद्धा । ऋषति गच्छति प्राप्नोति जानाति वा स ऋषिः । मंत्रार्थद्रष्टा । वा । रुच्यते सा रुचिः दीप्तिर्वा । शुच्यतीति शुचिः । शुद्धिर्वा । लिम्पतीति लिपिः । लेखो वा बाहुलकात् । वत्वे लिविः । इत्यपि लिविं करोतीति लिविकरः । लिप्यर्थ एव । तूलते निष्कर्षतीति तूलिः । तूली । कूर्चिका दध्यादिना सह पक्वः क्षीरविकारो वा । इत्यादि ॥

(१२१) भ्राम्यतीति भृमिः । वायुर्वा । बाहुलकात् । भ्रमिरित्यपि सिद्धम् ॥

(१२२) क्राम्यति पादान् विक्षिपतीति क्रिमिः । क्षुद्रजन्तुर्वा । संप्रसारणानुवृत्तेः क्रमिरित्यपि । ताम्यत्याकाङ्क्षतीति तिमिः । मत्स्यभेदो वा । शतिस्तम्भौ सौत्रौ धातू । शितिः कृष्णः । शुक्लो वा । स्तभ्नातीति स्तिभिः । समुद्रो वा ॥

मनेरुच्च ॥ १२३ ॥ मुनिः । १२३ ॥

वर्णेर्बलिश्चाहिरण्ये ॥ १२४ ॥ बलिः । १२४ ॥

वसिवपियजिराजिव्रजिसदिहनिवाशिवादिवारिभ्य इञ् ॥ १२५ ॥

वासिः । वापिः । याजिः । राजिः । व्राजिः । सादिः । निघातिः । वाशिः । वादिः । वारिः । १२५ ॥

नहो भश्च ॥ १२६ ॥ नाभिः । १२६ ॥

कृषेर्वृद्धिश्छन्दसि ॥ १२७ ॥ कार्षिः । १२७ ॥

शः शकुनौ ॥ १२८ ॥ शारिः । शारिका । १२८ ॥

कृञ उदीचां कारुषु ॥ १२९ ॥ कारिः । १२९ ॥

(१२३) किदित्येव । मन्यते जानातीति मुनिः । मननशीलः । मुनिरियं ब्राह्मणी । बह्वादित्वान् मुनी । मुनेर्भावः कर्म वा मौनम् ॥

(१२४) वर्णिः सौत्रो धातुः वर्णयति स बलिः । राजकरः सत्कारसामग्री शरीराङ्गं वा । हिरण्ये तु वर्णिः सुवर्णम् ॥

(१२५) वस्त आच्छादयति वसति वा स वासिः । छेदनवस्तु वा । वपन्ति यत्रेति वापिर्वापी वा । जलाशयभेदो वा । यजतीति याजिः । यष्टा वा । राजते दीप्यतेऽसौ राजिः । राजी । पंक्तिर्वा । राजीवं पद्मम् । व्रजतीति व्राजिः । वायुसमूहो वा । सीदतीति सादिः । सारथिर्वा । हन्ति यया सा घातिः । निघातिर्लोहघाता धारा । वाश्यते शब्दयतीति वाशिः । अग्निर्वा । वादयति व्यक्तमुच्चारयति स वादिः । विद्वान् वा । वारयति निवारयतीति वारिः । गजबन्धनी शृङ्खला वा । जले नपुंसकम् । वारि । बाहुलकात् । हरतीति हारिः । पथिकसंसतिर्वा । संग्रहारिः । योद्धा । खटति काङ्क्षतीति खाटिः । शुष्कव्रणस्थानं वा ॥

(१२६) नह्यति दुष्टं नाडीर्वा बध्नातीति नाभिः । क्षत्रियः प्राण्यङ्गं वा । नाभी ङीष् ॥

(१२७) कर्षत्याकर्षतीति कार्षिः । अग्निर्वा । लोके तु कृषिः ॥

(१२८) शृणाति हिनस्तीति शारिः पक्षी । स्त्री शारिका । शुकशारिकमिति पक्ष एकवद्भावः । शारीन् हन्तीति शारिका वा । शकुनेरन्यत्र शरिर्हिंस्रः । कपिलकादित्वाल्लत्वम् । शलिः । अपिशलिर्मुनिविशेषस्तस्यापत्यमापिशलिः । बाह्वादित्वादिञ् ॥

(१२९) करोतीति कारिः । शिल्पी । शिल्पिनोऽन्यत्र करिः ॥

जनिघसिभ्यामिण् ॥ १३० ॥ जनि: । घासि: ॥ १३० ॥
अज्यतिभ्यां च ॥ १३१ ॥ आजि: । आति: । १३१ ॥
पादे च ॥ १३२ ॥ पदाजि: । पदाति: । १३२ ॥
अशिपणाय्योरुडायलुकौ च ॥ १३३ ॥ राशि: । पाणि: ॥ १३३ ॥
वातेर्डिच्च ॥ १३४ ॥ वि: । १३४ ॥
प्रे हरते: कूपे ॥ १३५ ॥ प्रहि: । १३५ ॥
नौ व्यो यलोप: पूर्वस्य च दीर्घ: ॥ १३६ ॥ नीवि: । १३६ ॥
समाने ख्य: स चोदात्त: ॥ १३७ ॥ सखा । १३७ ॥
आङि श्रिहनिभ्यां ह्रस्वश्च ॥ १३८ ॥ अश्रि: । अहि: ॥ १३८ ॥

(१३०) जायतेऽसौ जानि: । जननं वा । घसति भक्षयतीति घासि: । अग्निर्वा । बाहुलकात् शल्यते प्राप्यतेऽसौ शालि: । व्रीहयो वा । पलति गच्छतीति पालि: खड्गादेरग्रभागो वा । प्रत्ययान्तरकरणं स्वरार्थम् ॥

(१३१) अजन्ति क्षिपन्ति शस्त्रादिकं यत्र स आजि: । संग्रामो वा । अतति निरन्तरं गच्छतीति, आति: । तित्तिरिभेदो वा । शोभन:–आतो स्वाती नक्षत्रम् ॥

(१३२) पद्भ्यामजत्यतति वा स पदाजि: । पदाति: । पदग: । पादस्य पदाज्याति० सूत्रेण पदादेश: ॥

(१३३) अशेरुट् पणायते रायलुक् । अश्नुते व्याप्नोतीति राशि: । समूहो वा । पणायति व्यवहरति येन स पाणि: । हस्तो वा ॥

(१३४) वाति वायुवद्गच्छतीति वि: पक्षी वा । डित्त्वादाकारलोप: । अटन्ति वयोऽस्यामित्यटविर्नगरी । पदस्य वि: । पदवी ॥

(१३५) हृञ्–डित् । प्रहरति जलमस्मात् स प्रहि: कूपो वा । कूपादन्यत्र हरि: ॥

(१३६) पूर्वस्योपसर्गस्य दीर्घ: । निवीयते संव्रियते सा नीवि: । नीवी । सूत्रधनं दुकूलवन्धनं वा ॥

(१३७) समानं ख्यातीति सखा । सखायौ । सखाय: । मित्रं सहायो वा ॥

(१३८) आश्रयति तनोति, अश्रि: । कोणो वा । आहन्तीति, अहि: । मेघ: सर्पो वा । अत्राङुपसर्गस्यैव ह्रस्वत्वम् ॥

अच इः॥ १३९॥ रविः। कविः। पविः। अरिः। अलिः॥ १३९॥

खनिकष्यज्यसिवसिवनिसनिध्वनिग्रन्थिचरिभ्यश्च॥ १४०॥ खनिः। कषिः। अजिः। असिः। वसिः। वनिः। सनिः। ध्वनिः। ग्रन्थिः। चरिः॥ १४०॥

वृतेश्छन्दसि॥ १४१॥ वर्त्तिः।॥ १४१॥

भुजेः किच्च॥ १४२॥ भुजिः॥ १४२॥

कृगृशृपृकुटिभिदिच्छिदिभ्यश्च॥१४३॥ किरिः। गिरिः। शिरिः पुरिः। कुटिः। भिदिः। छिदिः॥ १४३॥

(१३९) अजन्ताद्धातोरिः प्रत्ययः। लुनाति छिनत्तीति लविः। छेदको लोहो वा। पुनातीति पविः। वज्रं छीरकं वा। तरति येन स तरिः। वस्त्रादिस्थापनभाण्डं वा। स्त्रियां तरी। रौतीति रविः। सूर्यो वा। कौति शब्दयत्युपदिशति स कविः। मेधावी विद्वान् क्रान्तदर्शनो वा। स्त्रियां कवी। ऋच्छति प्राप्नोति परपदार्थानित्यरिः। शत्रुर्वा। कपिलकादित्वाल्लत्वे। अलिः। भ्रमरो वा। नखेनातिक्रामतीति नखयति तस्मात्। नखिः। सूचयतीति सूचिः॥ इत्यादि॥

(१४०) खनति येन खन्यते यत्रेति वा स खनिः। धनस्थानं वा। बाहुलकाद्दीर्घत्वे खानिरित्यपि। कषति हिनस्तीति कषिः। हिंसको वा अनक्ति व्यनक्ति कार्यमित्यज्जिः। प्रेषणकर्त्ता। छोष्। अज्जी मङ्गलार्थः। अस्यति क्षिपत्यनेनेत्यसिः खड्गो वा। वस्त आच्छादयत्यनेनेति वसिः। वस्त्रं वा। वनति संभजतीति वनिः। अग्निर्वा। धान्यवनिर्धान्यराशिः वन्यते याच्यत इति वनिः। तं वनिं याचनमिच्छतीति वनीयति तदन्ताण्ण्वुल्। वनीयकः। प्रार्थकः। सनोति ददातीति सनिः। अध्येषणं वा। ध्वन्यत उच्चार्यते स ध्वनिः। शब्दो वा। यं ग्रन्थाति समुदेति स ग्रन्थिः पर्व। चरतीति चरिः। पशुर्वा॥

(१४१) वर्त्तते तत्र येन वा स वर्त्तिः। योगक्रिया साधनद्रव्यं मार्गो वा॥

(१४२) भुनक्ति पालयति भक्षयति वा स भुजिः। अग्निर्वा॥

(१४३) किदिति वर्त्तते। किरतीति किरिः। वराहो वा। गिरति गृणाति वा स गिरिः। गोतमऋषिरोगः पर्वतो मेघो वा शृणातीति शिरिर्हन्ता। पिपर्त्तीति पुरिः नगरं नदी वा। कुटतीति कुटिः कुटी। शाला वा। भिनत्ति येन स भिदिः। वज्रं वा। छिनत्त्यनेन स छिदिः। परशुर्वा बहुलवचनात्। तरति प्लवतेऽसौ तित्तिरिः। पक्षिभेदो वा। तॄधातोरिः प्रत्ययः स च कित् सन्वत्कार्यमभ्यासस्य तुगागमश्च॥

कुण्ठिकम्प्योर्नलोपश्च ॥ १४४ ॥ कुठिः । कपिः ॥ १४४ ॥

सर्वधातुभ्यो मनिन् ॥ १४५ ॥ कर्म । चर्म । भस्म । जन्म । शर्म । हेम । श्लेष्मा । तर्म । स्थाम । दाम । छद्म । सुत्रामा ॥१४५॥

बृंहेर्नोऽच्च ॥ १४६ ॥ ब्रह्म ॥ १४६ ॥

अशिशकिभ्यां छन्दसि ॥ १४७ ॥ अश्मा । शक्मा । १४७ ॥

हृभृधृसृस्तृशृभ्य इमनिच् ॥ १४८ ॥ हरिमा । भरिमा । धरिमा । सरिमा । स्तरिमा । शरिमा । १४८ ॥

जनिमृङ्भ्यामिमनिन् ॥ १४९ ॥ जनिमा । मरिमा । १४९ ॥

---

(१४४) कुण्ठति गतिं प्रतिहन्तीति कुठिः । पर्वतो वृक्षो वा । कम्पतेऽसौ कपिः वानरो वर्णभेदो वा । कपिवर्णमस्यास्तीति कपिशः । कपिलवर्णः । लोमादिपाठाच्च मत्वर्थीयः शप्रत्ययः ॥

(१४५) क्रियते तत् कर्म क्रिया वा । अर्द्धर्चादित्वादुभयलिङ्गः कर्मशब्दः । कर्माणं कुरुते शुभम् । चरति गच्छति येन तच्चर्म । प्रसिद्धम् । भसितं दीपितमिति यत्तद्भस्म । जायते यत्र तज्जन्म । उत्पत्तिः । शृणातीति शर्म । सुखं गृहं वा । हिनोति वर्धते येन तत्, हेम । सुवर्णं वा । श्लिष्यतीति श्लेष्मा । कफोद्भावो वा । श्लेष्माऽस्यास्तीति पामादित्वान्मत्वर्थे नः प्रत्ययः । श्लेष्मणः । सिध्मादित्वात् । श्लेष्मलः तरतीति तर्म यूपाग्रं वा । तर्मणी । तर्माणि । तिष्ठति येन तत् स्थाम । बलं वा । स्थामनी । ददातीति दाम । स्रग्वा । छादयतीति छद्म । माया वा । इस्मन्निति ह्रस्वत्वम् । सुष्ठु त्रायत इति सुत्रामा । ओषति दहतीति, ऊष्मा । अन्येषामपीति दीर्घे । ऊष्मा । ग्रीष्मर्त्तुर्वाष्पो वा ॥

(१४६) बृंहति वर्धते तद् ब्रह्म । ईश्वरो वेदस्तत्त्वं तपो वा ॥

(१४७) अश्नात्यश्नुते व्याप्नोति वा स, अश्मा । मेघः पाषाणो वा । भाषायामपि दृश्यते । अश्मानं दृषदं मन्ये । शक्नोतीति शक्मा सूर्यो वा ॥

(१४८) छन्दसीति वर्त्तते । हरति स हरिमा । कालो वा । भर्त्तुं योग्यो भरिमा । कुटुम्बं वा । ध्रियत इति धरिमा । रूपं वा । सरतीति सरिमा । वायुर्वा । स्तीर्यते आच्छाद्यत इति स्तरिमा । तल्पं वा । शृणातीति शरिमा । प्रसवो वा ॥

(१४९) छन्दसीत्यनुवर्त्तते । जायत इति जनिमा जन्म । म्रियत इति मरिमा मृत्युः ॥

वेञः सर्वत्र ॥ १५० ॥ वेमा । १५० ॥

नामन्सीमन्व्योमन्रोमन्लोमन्पाप्मन्ध्यामन् ॥ १५१ ॥

मिथुने मनिः ॥ १५२ ॥ सुशर्मा । सुधर्मा । १५२ ॥

सातिभ्यां मनिन्मनिणौ ॥ १५३ ॥ साम । आत्मा । १५३ ॥

हनिमशिभ्यां सिकन् ॥ १५४ ॥ हंसिका । मक्षिका । १५४ ॥

कोररन् ॥ १५५ ॥ कवरः । १५५ ॥

गिर उडच् ॥ १५६ ॥ गरुडः । १५६ ॥

इन्देः कमिन्नलोपश्च ॥ १५७ ॥ इदम् । १५७ ॥

कायतेर्डिमिः ॥ १५८ ॥ किम् । १५८ ॥

---

(१५०) वयति वस्त्राणि येन स वेमा । तन्तुवायदण्डः । वस्त्रनिर्माणसामग्री वा । सर्वत्र वचनाच्छन्दसीति निवृत्तम् ॥

(१५१) सप्तामी मनिनन्ता निपात्यन्ते । म्नायतेऽभ्यस्यते येन तत् नाम संज्ञा । स्वार्थे वार्त्तिकेन धेयट्।नामैव नामधेयम्।सिनोति बध्नातीति सीमा।अवधिर्वा।व्ययति संवृणोतीति व्योम । अन्तरिक्षं वा। रौति शब्दयतीति रोम । लूयते छिद्यते तल्लोम । गात्रकेशा वा।पिबतीति पाप्मा।किल्बिषं वा धातोः पुक् ध्यायते स ध्यामा परिमाणं तेजो वा । बाहुलकात् । यक्षयति पूजयतीति यक्ष्मा । राजरोगो वा।सुवति प्रेरयतीति सोमा।चन्द्रो वा।हूयतेऽसौ होमा।आहुतिर्वा।दधाति यद्यत्र वेति धाम स्था तेजो वा॥

(१५२) यत्रोपसर्गौ धातुक्रियया सम्बद्धस्तन्मिथुनम् । तस्मिन् सत्युक्तेभ्यो वक्ष्यमाणेभ्यश्च धातुभ्यो मनिः प्रत्ययः स्यान्नतु मनिन् स्वरभेदार्थो नियमः । सुष्ठु शृणातीति सुशर्मा । राजविशेषो वा । सुधरतीति सुधर्मा । इत्यादि ॥

(१५३) स्यति कर्माणि समापयतीति साम वेदभेदो वा । अतति निरन्तरं कर्मफलानि प्राप्नोति व्याप्नोति वा स आत्मा । आत्मने हितमात्मनीनम् ॥

(१५४) हन्तीति हंसिका । हंसस्त्री वा । मशति शब्दयति रोषं करोति वा सा मक्षिका । प्रसिद्धा जातिर्वा ॥

(१५५) कौत्युपदिशतीति कवरः । पाठको वा । केशविन्यासः कवरी । अन्यत्र कवरा कन्या पाठिकेत्यर्थः ॥

(१५६) गिरति निगलतीति गरुडः । पक्षिभेदो वा ॥

(१५७) इन्दति परमैश्वर्यहेतुर्भवतीति, इदम् । प्रत्यक्षविषयबोधकः सर्वनामसंज्ञको वा ॥

सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन् ॥ १५९ ॥ वस्त्रम् । अस्त्रम् । छत्त्रम् । १५९ ॥

भ्रस्जिगमिनमिहनिविश्यशां वृद्धिश्च ॥ १६० ॥ भ्राष्ट्रः । गान्त्रम् । नान्त्रम् । हान्त्रम् । वेष्ट्रम् । आष्ट्रम् । १६० ॥

दिवेर्द्युच्च ॥ १६१ ॥ द्यौत्रम् ॥ १६१ ॥

उषिखनिभ्यां कित् १६२ ॥ उष्ट्रः । खात्रम् ॥ १६२ ॥

सिविमुच्योष्टेरू च ॥ १६३ ॥ सूत्रम् । मूत्रम् ॥ १६३ ॥

अमिचिमिशसिभ्यः क्त्रः ॥ १६४ ॥ अन्त्रम् । चित्रम् । मित्रम् । शस्त्रम् ॥ १६४ ॥

पुवो ह्रस्वश्च ॥ १६५ ॥ पुत्रः ॥

---

(१५८) कायति शब्दयतीति किम् । प्रश्नाद्यर्थे वा ॥

(१५९) वस्त आच्छाद्यत इति वस्त्रम् । अस्यति क्षिपतीति, अस्त्रम् । छादयति घर्मादिकमपवारयतीति छत्त्रमिति प्रसिद्धम् । इस्मन्त्रन्क्विषुच्चेति सूत्रेण ह्रस्वादेशः । पतति यो गच्छति येन वा तत्पत्त्रम् । वाहनं वा । राजतेऽसौ राष्ट्रः राष्ट्रं राज्यं देशो वा । जातिविशेषो वा । अन्येपि गच्छत्यनया सा गन्त्री । मह्चच्छकटं वा । पिबत्यनेन तत् पात्रम् । पाति रक्षतीति पात्रः सज्जनो वा । दशति यया सा दंष्ट्रा दन्तो वा । इत्यादि ॥

(१६०) भृज्जति यत्रेति भ्राष्ट्रः । अम्बरीषो वा । गच्छति येन तद्गान्त्रम् । शकटं वा । नमति येन तन्नान्त्रम् । स्तोत्रं वा । हन्यते तत् हान्त्रम् । मरणं वा । विशन्ति यत्रेति वेष्ट्रम् । लोको वा । अश्नुते व्याप्नोतीति आष्ट्रम् । आकाशो वा ॥

(१६१) वृद्धिरित्यनुवर्त्तते । दीव्यति द्योतते प्रकाशते तद् द्यौत्रम् ॥

(१६२) ओषति दहत्युष्ट्रः । पशुजातिभेदो वा । खन्यते तत् खात्रम् । खनित्रम् । जलाधारविशेषो वा । जनसनखनामित्यात्वम् ॥

(१६३) सीव्यति येन यदर्थं बध्नाति वा तत् सूत्रम् । तन्तुः शास्त्रैकादेशो वा । मुच्यते यत्तत् मूत्रम् । प्रस्रावो वा ॥

(१६४) अमति जानाति प्राप्नोति येन तत् अन्त्रम् । उदरनाड़ी वा । चीयते तत् चित्रम् । चित्रा नक्षत्रं वा । चैत्रो मासः । मिनोति मान्यं करोतीति मित्रम् । सुहृद्वा । नित्यं नपुंसकम् । क्वचित् पुंल्लिङ्गी वा । शत्रो मित्र इत्यादिषु । अयं मित्रम् । इयं मित्रम् । शोभनानि मित्राण्यस्याः सन्तीति सुमित्रा तस्या अपत्यं सौमित्रिः । वाह्वादित्वादिञ् । शंसति हिनस्तीति येन तत् शस्त्रम् । आयुधं वा ॥

(१६५) पुनाति पवित्रं करोतीति पुत्रः । आत्मजो वा ॥

स्त्यायतेर्ड्रट् ॥ १६६ ॥ स्त्री ॥ १६६ ॥

गुधृवीपचिवचियमिसदिक्षदिभ्यः त्रः ॥ १६७ ॥ गोत्रम् । गोत्रम् । गोत्रा । धर्त्रम् । वेत्रम् । पक्त्रम् । वक्त्रम् । यन्त्रम् । सत्रम् । क्षत्रम् ॥ १६७ ॥

हुयामाश्रुभसिभ्य स्त्रन् ॥ १६८ ॥ होत्रम् । यात्रा । मात्रा । श्रोत्रम् । भस्त्रा ॥ १६८ ॥

गमेरा च ॥ १६९ ॥ गात्रम् ॥ १६९ ॥

दादिभ्यश्छन्दसि ॥ १७० ॥ दात्रम् । पात्रम् ॥ १७० ॥

भूवादिगृभ्यो णित्रम् ॥ १७१ ॥ भावित्रम् । वादित्रम् । गारित्रम् ॥ १७१ ॥

---

(१६६) स्त्यायति शब्दयति गुणान् गृह्णाति वा सा स्त्री । प्रसिद्धा भार्य्या वा ॥

(१६७) गवते शब्दयत इति गोत्रम् । नामवंशो वा । गोत्रा पृथिवी । धरतीति धर्त्रम् । गृहं वा । वेति गच्छतीति वेत्रम् । लताविशेषो वा । पचति येन यत्र वा तत् पक्त्रम् । गार्हपत्यं वा । वक्ति येन तद् वक्त्रम् । मुखं वा । यच्छति उपरमति येन तद्यन्त्रम् । कलाविशेषो वा । सीदन्ति यत्रेति सत्रम् । यज्ञो वा । सतः सत्पुरुषान् त्रायते तत् सत्रमिति व्युत्पत्यन्तरम् । क्षद सौत्रो धातुः । क्षदति रक्षतीति क्षत्रम् । वर्णभेदो वा । क्षतात्त्रायत इत्यपि ॥

(१६८) हूयत इति होत्रं होमः । यायत इति यात्रा गमनं वा । मातीति मात्रा । मानं भूषणं वा । श्रूयतेऽनेन तत् श्रोत्रम् । कर्णं वा । बिभस्ति दीप्यते यया सा भस्त्रा । अग्निज्वलनी वा ॥

(१६९) गच्छति चेष्टतेऽनेनेति गात्रम् । अवयवः शरीरं वा ॥

(१७०) दाति लुनाति तत् दात्रम् । धान्यादिछेदनसाधनं वा । पिबन्त्यनेनेति पात्रम् । योग्यो भाजनं वा । पूर्वत्रापि पात्रमिति साधितम् । तत्र प्रत्ययस्य षित्वात्पात्री । ब्राह्मणीत्यपि साधितम् । क्षयति नश्यति निवासहेतुर्भवतीति क्षेत्रम् । केदारः कलत्रं वा । एवमन्येपि शब्दा द्रष्टव्याः ॥

(१७१) भवतीति भावित्रम् । लोकत्रयी वा । वाद्यते तद्वादित्रम् । तूर्यादिर्वा । गीर्य्यते भक्ष्यते तद् गारित्रम् । ओदनो वा ॥

चरेर्वृत्ते ॥ १७२ ॥ चारित्रम् ॥ १७२ ॥

अशित्रादिभ्य इत्रोत्रौ ॥ १७३ ॥ अशित्रम् । वहित्रम् । धरित्री । तोत्रम् । वस्त्रम् ॥ १७३ ॥

अमेर्द्विषति चित् ॥ १७४ ॥ अमित्रः ॥ १७४ ॥

आः समिण्निकषिभ्याम् ॥१७५॥ समया । निकषा ॥ १७५॥

चितेः कणः कश्च ॥ १७६ ॥ चिक्कणम् ॥ १७६ ॥

सूचेः स्मन् ॥ १७७ ॥ सूक्ष्मम् ॥ १७७ ॥

पातेर्डुम्सुन् ॥ १७८ ॥ पुमान् ॥ १७८ ॥

रुचिभुजिभ्यां किष्यन् ॥ १७९ ॥ रुचिष्यम् । भुजिष्यः ॥१७९॥

---

(१७२) चरतीति चारित्रम् । वृत्तान्तं समाचारो वा । इत्रच्प्रत्यये चरित्रं सुशीलम् ॥

(१७३) अश्यादिभ्यः इत्रः अश्नुते व्याप्नोतीति अशित्रम् । चरुर्वा । कटतीति कटित्रम् । कवचभेदो वा । वहति येन तद्वहित्रम् । वाहनं वा । बध्नातीति बधित्रम् । कामो वा । धरतीति धरित्री । पृथिवी वा । त्रादिभ्य उत्रः । त्रायते येन तत् तोत्रम् । प्रहारो वा । लुनाति छिनत्ति येन तल्लोत्रम् । चौरचिह्नं वा । वृणातीति वस्त्रम् । प्रावरणं वा ॥

(१७४) शत्रौ वाच्येऽमेरित्रः । अमति गच्छतीति अमितः । शत्रुः ॥

(१७५) समेतीति समया । निकषति हिनस्तीति निकषा । समीपवाचकौ वा । स्वरादिपाठादनयोरव्ययत्वम् । बाहुलकाद्दीव्यतीति दिवा । दिनं वा । दुष्यतीति दोषा । रात्रिर्वा । अनयोरपि तत्रैव पाठादव्ययत्वम् । स्वदते स्वादुक्रियते या सा स्वधा । न्यायेनैश्वर्यक्रिया तृप्तिर्वा । धातोर्दस्य धः ॥

(१७६) चेतति जानाति येन तत् चिक्कणम् । स्निग्धं वा ॥

(१७७) सूचयति पैशुन्यं करोतीति सूक्ष्मम् । अल्पं वा ॥

(१७८) पाति रक्षतीति । पुमान् । पुमांसौ । पुमांसः । असुङादिकार्य्यम् । शोभनः पुमान् यस्याः सा सुपुंसी । असुङ उगित्वान् ङीप् ॥

(१७९) रोचते तत्, रुचिष्यम् । इष्टं वा । भुनक्तीति भुजिष्यः । दासो वा ॥

वसेस्तिः ॥ १८० ॥ वस्तिः ॥ १८० ॥

स्वावसेः ॥ १८१ ॥ स्वस्ति ॥ १८१ ॥

वौ तसेः ॥ १८२ ॥ वितस्तिः ॥ १८२ ॥

पदिप्रथिभ्यां नित् ॥ १८३ ॥ पत्तिः । प्रथितिः ॥ १८३ ॥

दृणातेर्ह्रस्वः ॥ १८४ ॥ दृतिः ॥ १८४ ॥

कॄतॄकृपिभ्यः कीटन् ॥ १८५ ॥ किरीटम् । तिरीटम् । कृपीटम् ॥ १८५ ॥

रुचिवचिकुचिकुटिभ्यः कितच् ॥ १८६ ॥ रुचितम् । उचितम् । कुचितम् । कुटितम् ॥ १८६ ॥

(१८०) वस्त आच्छादयति सा वस्तिः । वसनस्य दशा कोणो नाभेरधोभागो वा । बाहुलकात् । शास्ति शिक्षत इति शास्तिः । राजदण्डो वा । यजतीति यष्टिः यष्टी वा । काष्ठदण्डो वा । अस्यते क्षिप्यते या सा, अस्तिः । अगं वृक्षमस्यत्युत्पाटयति स, अगस्तिः । मुनिर्वा । तस्यापत्यमागस्त्यः । शकन्ध्वादित्वादत्र पररूपम् । पुलं महत्त्वमसते गच्छति प्राप्नोतीति पुलस्तिः । ऋषिर्वा । तस्यापत्यं पौलस्त्यः । गभमन्धकारमस्यतीति गभस्तिः किरणो वा । दूयते परितापयतीति दूतिः । दूती वा । इतस्ततः समाचारज्ञापिका स्त्री वा ॥

(१८१) सुष्ठु, अस्ति वर्त्तत इति स्वाती कल्याणं वा । बहुलवचनाद् भूभावनिषेधः । स्वरादित्वादव्ययत्वं च ॥

(१८२) विशेषेण तस्यत्युपक्षिपति वा सा वितस्तिः । द्वादशाङ्गुलं परिमाणं वा ॥

(१८३) पद्यते गच्छत्यसौ पत्तिः । पदातिः पुरुषो वा । प्रथ्यते या सा प्रथितिः । प्रख्यातिर्वा । तितुत्रे ति सूत्रेऽग्रहादीनामिति वार्त्तिकेनेट् ॥

(१८४) दीर्यतेऽसौ दृतिः चर्ममयं पात्रं वा ॥

(१८५) किरति विक्षिपतीति किरीटम् मुकुटं शिरोवेष्टनं वा । तरतीति तिरीटम् । शिरोवेष्टनं लोध्रो वा कल्पतेऽसौ कृपीटम् । कुक्षिरुदकं वा । बाहुलकादत्र लत्वाभावः ॥

(१८६) रोचते तत्, रुचिरम् । मिष्टं वा । वक्तुं योग्यमुचितम् । योग्यं वा । कोचति अल्पतारं करोतीति कुचितम् परिमितम् वा । कुटतीति कुटितम् कुटिलं वा ॥

कुटिकुषिभ्यां क्मलन् ॥ १८७ ॥ कुट्मलम् । कुष्मलम् ॥ १८७ ॥
कुषेर्लश्च ॥ १८८ ॥ कुल्मलम् ॥ १८८ ॥
सर्वधातुभ्योऽसुन् ॥ १८९ ॥ चेतः । सरः । सदः ॥ १८९ ॥
रपेरत एच्च ॥ १९० ॥ रेपः ॥ १९० ॥
अशेर्देवने युट् च ॥ १९१ ॥ यशः ॥

(१८७) कुटतीति कुड्मलम् मुकुलम् (फूलती हुई कली) इतिप्रसिद्धम् । कुष्णाति निष्कर्षतीति कुष्मलम् । पर्णं वा ॥

(१८८) कुष्णातीति कुल्मलम् । पापं वा ॥

(१८९) वर्चते दीप्यतेऽसौ वर्चः । तेजः पुरीषं वा । रक्षतीति रक्षः । पालको दुष्टो वा । प्रज्ञादित्वादणि स एव राक्षसः । रुणद्धि येन स रोधः । तटो वा । चेतति जानाति येन तत्, चेतः । चित्तं वा । सरन्ति गच्छन्त्यापो यत्र तत् सरः । तडागो वा । स्त्रीत्वविवक्षायां गौरादित्वात्सरसी महासरो वा । सरस्वान् समुद्रः । सरोवि-ज्ञानमुदकं वा विद्यतेऽस्यां सा सरस्वती वाक् नदी वा । रोदतीति रोदः । गौरादि-त्वाद्रोदसी द्यावापृथिव्यौ वा । वेति गच्छतीति वयः कालकृताऽवस्था वा । अथवा वेति खादतीति वयो वय एव वायसः काकः । प्रज्ञादित्वादण् । सीदन्त्यत्रेति सदः सभा वा । एति प्राप्नोतीति, अयः । लोहं वा । अयः कामयतेऽसावयस्कान्तश्चुम्बक मणिः । अनिति जीवति येनेति, अनः । ओदनं पक्वान्नं वा । अनो महत्सम्पद्यते यत्र तन्महानसम् । पाकस्थानम् । समासान्तष्टच् । ताम्यति काङ्क्षति येन तत् तमः । गुणः क्लेशोरात्रिरन्धकारो वा । तमशब्दोऽच्प्रत्ययान्तोऽदन्तोऽपि दृश्यते । महति पूजयति पूज्यो भवति वेति महः । महहा । महसी । महांसि । अच् प्रत्यये ऽकारान्तोऽपि । सहते यत्रेति सहः । बलं मार्गशीर्षो वा । सहसा बलेन सह प्रवर्त्तते स साहसिको दस्युर्दुष्टकर्मा वा । सहो बलं विद्यते यत्रेति सहस्यः पौषो मासः । तपति दुःखी भवति तप्यते समर्थो वा भवति येन तत् तपः । धर्मसेवनं माघमासो वा । तपसि साधुस्तपस्यः फाल्गुनो मासः । ग्रीष्मेऽकारान्तस्तपशब्दः । मिमीते येन समाः । मासो वा । इत्यादि ॥

(१९०) रप्यत उच्यत इति रेपः । अवद्यं वचो वा । बहुलवचनादन्यत्रापि । पीयते सत् पयः । उदकं दुग्धं वा । पयोऽस्या अस्तीति पयस्विनी गौः । पयस्वी तड़ागः । विनिः । धातोरीत्वम् । पुनर्गुणेसत्यथादेशः ॥

(१९१) अश्यते दीव्यते क्रीडादि क्रियते येन तत्, यशः । कीर्त्तिर्वा ॥

उब्जेर्बले बलोपश्च ॥ १९२ ॥ ओज: ॥ १९२ ॥
श्वे: सम्प्रसारणं च ॥ १९३ ॥ शव: ॥ १९३ ॥
श्रयते: स्वाङ्गे शिर: किच्च ॥ १९४ ॥ शिर: ॥ १९४ ॥
अर्त्तेरुच्च ॥ १९५ ॥ उर: ॥ १९५ ॥
व्याधौ शुट् च ॥ १९६ ॥ अर्श: ॥ १९६ ॥
उदके नुट् च ॥ १९७ ॥ अर्ण: ॥ १९७ ॥
इण आगसि ॥ १९८ ॥ एन: ॥ १९८ ॥
रिचेर्धने घिच्च ॥ १९९ ॥ रेक्ण: ॥ १९९ ॥
चायतेरन्ने ह्रस्वश्च ॥ २०० ॥ चन: ॥ २०० ॥
वृङ्शीङ्भ्यां रूपस्वाङ्गयो: पुट् च ॥२०१॥वर्प:। शेप: ॥२०१॥

(१९२) उब्जति कोमलो भवतीति, ओज: । पराक्रमो वा । ओजसा वर्त्तते, ओजसिक: । ठक् ॥

(१९३) श्वयति गच्छतीति शव: । मृतकशरीरं वा । बाहुलकात् । वहति यत इति ऊध: । गवादेर्दुग्धस्थानं वा । धातो: सम्प्रसारणे कृते दीर्घत्वं धकारश्चान्तादेश: घट इवोधो यस्या: सा घटोध्नी कुण्डोध्नी । गौर्महिषी वा ॥

(१९४) श्रीयत आश्रीयते तत् शिर: । मस्तकम् । शिरसी । शिरांसि ॥

(१९५) स्वाङ्ग इत्यनुवर्त्तते । ऋच्छति प्राप्नोति येन तत्, उर: । हृदयस्थानं वा । पिच्छादित्वादिलच् । बहूरोऽस्यास्तीत्युरसिल: ॥

(१९६) ऋच्छति प्राप्नोति दु:खं येन तत्, अर्श: । गुदरोगो वा । अर्शोऽस्यास्तीत्यर्शस: पुमान् । अर्श आदित्वादच् ॥

(१९७) अर्शरिवैव । ऋच्छति गच्छतीत्यर्णो जलम् अर्णोऽस्मिन्नस्तीत्यर्णव: समुद्र: । वप्रत्यये सलोप: ॥

(१९८) ईयते प्राप्यते दु:खमनेन तदेन: पापं वा ॥

(१९९) रिणक्ति व्ययं करोति यत् तत् रेक्ण: । सुवर्णं वा । घित्वात्कुत्वम् ॥

(२००)चायते पूज्यतेऽनेन तत् चनो भक्तम् प्रत्ययस्य नुडागमे सति यलोपो ह्रस्वश्च

(२०१) व्रियते स्वीक्रियते तत् वर्पो रूपम् । शेते येन तत् शेप: । लिङ्गेन्द्रियं वा । अकारान्तोऽपि मेढ्रवाची शेपशब्दो दृश्यते । शुन इव शेपोऽस्य स शुन:शेपो मुनि: । षष्ठ्या अलुक् । बाहुलकात् । वर्णव्यत्यये वर्फ: शेफ इत्यपि सिद्धम् ॥

स्रुरीभ्यां तुट् च ॥ २०२ स्रोतः । रेतः ॥ २०२ ॥

पातेर्बले जुट् च ॥ २०३ ॥ पाजः ॥ २०३ ॥

उदके थुट् च ॥ २०४ ॥ पाथः ॥ २०४ ॥

अन्ने च ॥ २०५ ॥ पाथः ॥ २०५ ॥

अदेर्नुम्धौ च ॥ २०६ ॥ अन्धः ॥ २०६ ॥

स्कन्देश्च स्वाङ्गे ॥ २०७ ॥ स्कन्धः ॥ २०७ ॥

आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा ॥२०८॥ अप्नः । अपः । आपः ॥ २०८ ॥

रूपे जुट् च ॥ २०९ ॥ अब्जः ॥ २०९ ॥

उदके नुम्भौ च ॥ २१० ॥ अम्भः ॥ २१० ॥

नहेर्दिवि भश्च ॥ २११ ॥ नभः ॥ २११ ॥

(२०२) स्रवति चलतीति स्रोतः । स्रती जलचरणं वा । रीयते स्रवतीति रेतः । वीर्यं वा ॥

(२०३) पाति रक्षतीति पाजः बलं वा ॥

(२०४) पातेरेव । पातीति पाथो जलम् ॥

(२०५) थुट् । पाति रक्षतीति पाथो भक्तम् ॥

(२०६) अद इत्यनुवर्त्तते । अद्यते भक्ष्यते तदन्धोऽन्नमोदनो वा ॥

(२०७) स्कन्दते गच्छति चेष्टते शुष्यति वा येन तत् स्कन्धो बाहुमूलं वृक्षावयवो वा । अकारान्तोप्ययम् ॥

(२०८) आप्यते सुखं येन तत्, अप्नः । अपः । अपत्यं सुकर्म वा ह्रस्वस्यापि विकल्पे । आप इत्यपि भवति आपोभिर्मार्जनमित्यादि सत्प्रयोगदर्शनात् ॥

(२०९) आप इत्येव । आप्यते यत्, तद अब्जो रूपम् । अद्भ्यो जात इति निर्वचने अब्जः कमलं वा ॥

(२१०) आप इत्येव । आप्यते तत्, अम्भः । उदकम् । अम्भसा वर्तत इत्याम्भसिको मत्स्यः ॥

(२११) नह्यति घर्मं बध्नातीति नभो मेघधूल्यादियुक्त आकाशः श्रावणमासो वा । नभोऽस्मिन् शुद्धमस्तीति नभस्यो भाद्रो मासः ॥

इण आगोऽपराधे च ॥ २१२ ॥ आगः ॥ २१२ ॥

अमेर्हुक् च ॥ २१३ ॥ अंहः ॥ २१३ ॥

रमेश्च ॥ २१४ ॥ रंहः ॥ २१४ ॥

देशे ह च ॥ २१५ ॥ रहः ॥ २१५ ॥

अञ्च्यञ्जियुजिभृजिभ्यः कुश्च ॥ २१६ ॥ अङ्कः । अङ्गः । योगः । भर्गः ॥ २१६ ॥

भूरञ्जिभ्यां कित् ॥ २१७ ॥ भुवः । रजः ॥ २१७ ॥

वसेर्णित् ॥ २१८ ॥ वासः ॥ २१८ ॥

चन्देरादेश्च छः ॥ २१९ ॥ छन्दः ॥ २१९ ॥

---

(२१२) ईयते प्राप्यते ज्ञायते वा तत्,आगोपराधो दण्डो वा ॥

(२१३) अमन्ति प्राप्नुवन्ति दुःखं येन तत्, अंहः । पापं वा ॥

(२१४) चात्–हुक् । रमते येन तत् रंहः । वेगो वा ॥

(२१५) चादमेरसुन् । रमन्तेऽस्मिन्निति रहः । एकान्तो विश्वासदेशो वा । रह एकान्ते भवं रहस्यं वेदान्तं वा। देशादन्यत्र रहोऽव्ययं शब्दान्तरं वास्ति । रहो मैथुनसमयस्तत्र भवं रहस्यं मैथुनम् । दिगादित्वाद्यत् ॥

(२१६) अञ्चति गच्छति येन तत् अङ्कः । संख्याद्योतकं चिन्हं वा । अनक्ति व्यक्तीकरोतीति अङ्गः । पक्षो वा । अवयवेऽङ्गशब्दोऽदन्तः । युज्यते स योगः । समाधिः कालो वा । भर्जति पक्वं भवतीति भर्गः । प्रजापतिः तेजो वा। बाहुलकात् उच्यते यत्र तत् ओकः । स्थानं वा । न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वम् ॥

(२१७) भवन्ति यस्मिन्निति भुवः । अन्तरिक्षं वा । रजति तत् रजः । लोकः। सूक्ष्मधूलिः । स्त्रीपुष्पं गुणो वा । आकारान्तश्च ॥

(२१८) वस्त आच्छादयति शरीरादिकमनेन तत् । वासो वस्त्रं वा । असुनो णिद्वद्भावाद्वृद्धिः ॥

(२१९) चन्दति हृष्यति येन दीप्यते वा तत् छन्दः। गायत्र्यादि कपटमिच्छाऽभिप्रायो वशो वा । छन्दानुवृत्तिः । इत्यादि प्रयोग दर्शनादकारान्तोऽप्ययं शब्द इति मन्तव्यम् ॥

पचिवचिभ्यां सुट् च ॥ २२० ॥ पच्चः । वच्चः ॥ २२० ॥

वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि ॥२२१॥ वच्चाः।हासाः ।धासाः॥२२१॥

इणश्चासिः ॥ २२२ ॥ अयाः ॥ २२२ ॥

मिथुनेऽसिः ॥ २२३ ॥ सुपयाः । सुयशाः ॥ २२३ ॥

नञि हन एह च ॥ २२४ ॥ अनेहाः ॥ २२४ ॥

विधाञो वेध च ॥ २२५ ॥ वेधाः ॥ २२५ ॥

नुवो धुट् च ॥ २२६ ॥ नोधाः ॥ २२६ ॥

गतिकारकयोः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च ॥ २२७ ॥ सुतपाः । जातवेदाः ॥ २२७ ॥

---

(२२०) पचतीति पच्चः । पूर्वोत्तरपचौ वा । वक्ति येन तद्वच्चः । हृदयं वा ॥

(२२१) सुट् । वहति भारमिति वच्चाः । अनड्वान् वा । हीयते हीनो भवतीति हासाः । चन्द्रमा वा । दधातीति धासाः । पर्वतो वा ॥

(२२२) एति प्राप्नोति अयाः । अग्निर्वा । स्वरादिपाठादव्ययम् । अत एव दीर्घादिरासिः प्रत्ययः ॥

(२२३) यत्रोपसर्गौ धातुक्रियया संयुक्तस्तन्मिथुनम् । तत्र सति येभ्यो धातुभ्योऽसुन् विधीयते तेभ्यः सर्वेभ्योऽसिरेव स्यात् । स्वरभेदार्थं सूत्रमिदम् । सुपयाः । सुतपाः । सुपेशाः । न्योजाः । सुजवाः । सुस्रोताः । इत्यादयो द्रष्टव्याः ॥

(२२४) न हन्यते विच्छिन्नो न भवतीत्यनेहाः । कालो वा । अनेहसौ । अनेहसः ॥

(२२५) विशेषेण दधातीति वेधाः । वेधसौ । वेधसः । वेधसम् । विद्वान् विधाता जगदीश्वरो वा ॥

(२२६) नौति स्तौति नूयते स्तूयते वा स नोधाः । ऋषिर्वा ॥

(२२७) गतिकारकोपपदाद्धातोरसिः प्रत्ययो भवति तस्मिन् सति गतिकारकयोः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् । उत्तरपदप्रकृतिस्वरस्यापवादः । सुतपाः । सुतेजाः । सुवचाः । कारके । उग्रतेजाः । हिरण्यरेताः । जातवेदाः । सर्ववेदाः । विश्ववेदाः । इदेभ्यः शृणोतीति इदश्रवाः । विष्ठर आसने शृणोतीति विष्टरश्रवाः । इत्यादि ॥

चन्द्रे मो डित् ॥ २२८ ॥ चन्द्रमा: ॥ २२८ ॥

वयसि धाञ: ॥ २२९ ॥ वयोधा: ॥ २२९ ॥

पयसि च ॥ २३० ॥ पयोधा: ॥ २३० ॥

पुरसि च ॥ २३१ ॥ पुरोधा: २३१ ॥

पुरूरवा: ॥ २३२ ॥

चक्षेर्बहुलं शिच्च ॥ २३३ ॥ नृचक्षा: । २३३ ॥

उष: किच्च ॥ २३४ ॥ उष: । २३४ ॥

दमेरुनसि: ॥ २३५ ॥ दमुना: । २३५ ॥

अङ्गेरसि: ॥ २३६ ॥ अङ्गिरा: । २३६ ॥

---

(२२८) चन्द्रमानन्दं मिमीतेऽसौ चन्द्रमा: । सोमो वा । चन्द्रमसौ । चन्द्रमस: ॥

(२२९) वयो दधातीति वयोधा: । तरुणो वा ॥

(२३०)धाञ इत्येव । पयो दधातीति पयोधा: । समुद्रो वा । मेघविशेष: स्तनो वा ॥

(२३१) धाञ इत्येव । पुरोऽग्रे यजमानं दधातीति पुरोधा: । पुरोहितो वा ॥

(२३२) पुरु बहु रौत्युपदिशति ब्रवीति वा स पुरूरवा: । राजर्षिर्वा ॥

२३३) विशेषेण चष्टेऽसौ विचक्षा: । उपाध्यायो वा नॄन् चष्टे पश्यति ख्याति वा स नृचक्षा: । ईश्वरो दुष्टो वा । शित्त्वाभावपक्षे । आचष्टेऽसौ । आख्या: । प्रख्या: प्रजापतिर्वा ॥

(२३४) असि: । ओषति । दहतीति, उष: । कर्णछिद्रं पर्वतभेद: स्त्रियां सूर्योदयात्प्राक् प्रभातप्रकाश उषा वा । उष: काले बुध्यत इत्युषर्बुध: । अग्निर्बाल: संयमी वा । कप्रत्ययान्ताट्टापि कृते । उषा रात्रिरित्यपि भवति ॥

(२३५) दाम्यत्युपशमयतीति दमुना: । अग्निर्वा ॥

(२३६) अङ्गति प्राप्नोति जानाति वा स, अङ्गिरा: । ईश्वरोऽग्निर्ऋषिभेदो वा । तस्यापत्यमाङ्गिरस: । असिप्रत्ययस्य रुडागम: ॥

अप्सराः ॥ २३७ ॥

विदिभुजिभ्यां विश्वेऽसिः ॥२३८॥ विश्ववेदाः । विश्वभोजाः ।

वशेः कनसिः ॥ २३९ ॥ उशनाः । २३९ ॥

इत्युणादिषु चतुर्थः पादः ॥

———0———

अदिभुवो डुतच् ॥ १ ॥ अद्भुतम् । १ ॥

गुधेरूमः ॥ २ ॥ गोधूमः । २ ॥

मसेरूरन् ॥ ३ ॥ मसूरा । ३ ॥

स्थः किच्च ॥ ४ ॥ स्थूरः । ४ ॥

पातेरतिः ॥ ५ ॥ पातिः । ५ ॥

(२३७) अप्सरति विरुद्धं गच्छतीत्यप्सराः । उपसर्गान्त्यलोपः । अथवाऽप्सु जलेषु प्राणेषु वा सरन्तीत्यप्सरसः । किरणा वा । अथवा न प्सान्ति भक्षयन्ति रक्षां कुर्वन्तीत्यप्सरसः । प्रत्ययस्य रुट् । नित्यबहुवचनान्तः स्त्रीलिङ्गश्च ॥

(२३८) विश्वं सर्वं वेत्ति जानातीति विश्ववेदाः जगदीश्वरो वा । विश्वे विद्यते विश्वं वा विन्दति स विश्ववेदाः । अग्निर्वा । विश्वं भुनक्ति प्रलयसमये कारणरूपेण स्वात्मनि स्थापयति वा विश्वं पालयतीति विश्वभोजाः । ईश्वरो राजा वा ॥

(२३९) वष्टि कामयते स उशनाः । शुक्रवारो वा । संप्रसारणादिकार्यम् ॥

इत्युणादिव्याख्यायां वैदिकलौकिककोषे चतुर्थः पादः ॥

———0———

(१) अदित्यव्ययं कदाचिदर्थे । अद् भवतीत्यद्भुतम् । आश्चर्यम् । अद्भुतमधीते । अद्भुताध्यापकः ॥

(२) गुध्यति वेष्टयतीति गोधूमः । अन्नविशेषो वा । गोधूमस्य विकारो गोधूममयः ।

(३) मस्यति परिणमतेऽसौ मसूरा । व्रीहिभेदो वेश्या वा ॥

(४) तिष्ठतीति स्थूरः । मनुष्यो वा । तस्यापत्यं स्थौर्यिः ॥

(५) पाति रक्षतीति पातिः स्वामी । सम्पातिः पक्षिराजो वा ॥

वातेर्नित् ॥ ६ ॥ वातिः । ६ ॥

अर्त्तेश्च ॥ ७ ॥ अरतिः । ७ ॥

तृहेः क्नो हलोपश्च ॥ ८ ॥ तृणम् । ८ ॥

वृञ्‌ लुठितमिताडिभ्य उलच् तण्डश्च ॥ ९ ॥ तण्डुलाः ॥ ९ ॥

दंसिष्टनौ न आ च ॥ १० ॥ दासः । १० ॥

दाशेश्च ॥ ११ ॥ दाशः । ११ ॥

उदि चेर्डैसिः ॥ १२ ॥ उच्चैः । १२ ॥

नौ दीर्घश्च ॥ १३ । नीचैः । १३ ॥

सौ रमे क्तो दमे पूर्वपदस्य च दीर्घः ॥ १४ ॥ सूरतः ॥ १४ ॥

पूञो यण् णुग्घ्रस्वश्च ॥ १५ ॥ पुण्यम् ॥ १५ ॥

---

(६) वाति गच्छतीति वातिः सूर्य्यश्चन्द्रो वा ॥

(७) अर्य्यते गम्यते सा अरतिः । उद्वेगो वा ॥

(८) तृह्यते हन्यते तत्, तृणम् । प्रसिद्धमेव ॥

(९) व्रियन्ते लुठ्यन्ते तन्यन्ते ताड्यन्ते वा ते तण्डुलाः प्रसिद्धा वा वृञादीनां स्थाने तण्डादेशः ॥

(१०) दंसयन्ति दशति पश्यति वा स दासः । सेवकः शूद्रो वा । टित्त्वान् ङीप् । दासी । नकारस्याकारः । नित्करणं पच आद्युदात्तार्थम् ॥

(११) टटनौ नकारस्य चात्वम् । दशति मत्स्यादिकमिति दाशो धीवर-स्त्रियां दाशी । धीवरी ॥

(१२) उच्चीयते वर्ध्यतेऽसावुच्चैः । महान् वा । स्वरादित्वादव्ययम् ॥

(१३) चेरिथेव । निचीयत इति नीचैः । अधोऽधमो वा । अस्यापि स्वरादित्वा-देवाव्ययत्वम् ॥

(१४) सुष्ठु रमत इति सूरतः । उपशान्तः कृपालुर्वा । दमार्थादन्यत्र सुरतः । क्रीडायुक्तः ॥

(१५) पवते पवित्रो भवति येन तत् पुण्यम् । सुकृतो धर्मो वा ॥

स्रंसेः शिः कुट् किञ्च ॥ १६ ॥ शिक्यम् ॥ १६ ॥

ऋतेः क्युजुञ्च ॥ १७ ॥ उरणः ॥ १७ ॥

हिंसेरीरन्नीरचौ ॥ १८ ॥ हिंसीरः ॥ १८ ॥

उदि दृणातेरजलचौ पूर्वपदान्त्यलोपश्च ॥ १९ ॥ उदरम् ॥

डित्खनेर्मुट् चोदात्तः ॥ २० ॥ मुखम् ॥ २० ॥

अमेः सन् ॥ २१ ॥ अंसः ॥ २१ ॥

मुहेः खो मूर्च ॥ २२ ॥ मूर्खः ॥ २२ ॥

नहेर्हलोपश्च ॥ २३ ॥ नखम् ॥ २३ ॥

शीङो ह्रस्वश्च ॥ २४ ॥ शिखा ॥ २४ ॥

---

(१६) स्रंसते गच्छतीति शिक्यम्। काचः छींका इति प्रसिद्धः। तत्र धृतं वस्तु शैक्यम् ॥

(१७) ऋच्छति गच्छतीति उरणः। मेषो वा ॥

(१८) हिनस्तीति हिंसीरः। व्याघ्रो दुष्टो वा। प्रत्ययद्वयं स्वरभेदार्थम् ॥

(१९) उद् दृणाति येनान्नमिति, उदरम्। कुक्षिस्थानम्। प्रत्ययभेदोऽत्रापि स्वरभेदार्थः ॥

(२०) खनेरजलचौ। तयोर्डित्त्वं धातोर्मुडागमश्च। तस्योदात्तत्वम्। खनत्यन्ना-दिकमनेनेति मुखमास्यम्। मुखे भवो मुख्यो रोगः। शरीरावयवाद्यत्। मुखमिवोत्तमं मुख्यम्। शाखादित्वादिवार्थे यः ॥

(२१) अमति गच्छति प्राप्नोति येन स, अंसः। स्कन्धो विभागो वा। अंसोऽस्यास्तीत्यंसलः ॥

(२२) मुह्यति विक्षिप्त इव भवतीति मूर्खः। मूर्खस्य भावो मौर्ख्यं मूर्खिमा वा। बाहुलकात् खस्येमादेशाभावः ॥

(२३) नह्यति बध्नाति रुधिरादिकमिति नखः प्राण्यङ्गं वा ॥

(२४) खः। शेतेऽसौ शिखा। चूडा केशभेदो ज्वाला वा। ह्रस्वविधानसामर्थ्याद् गुणाऽभावः ॥

माङ ऊखो मय च ॥ २५ ॥ मयूखः ॥ २५ ॥

कलिगलिभ्यां फगस्योच्च ॥ २६ ॥ कुल्फः । गुल्फः ॥ २६ ॥

स्पृशेः श्वण्शुनौ पृ च ॥ २७ ॥ पार्श्वः । पर्शुः ॥ २७ ॥

श्मनि श्रयतेर्डुन् ॥ २८ ॥ श्मश्रु ॥ २८ ॥

अश्नोतेराशुकर्मणि वरट् च ॥ २९ ॥ अश्रु ॥ २९ ॥

जनेष्टन् नलोपश्च ॥ ३० ॥ जटा ॥ ३० ॥

अच् तस्य जङ्घ च ॥ ३१ ॥ जङ्घा ॥ ३१ ॥

हन्तेः शरीरावयवे द्वे च ॥ ३२ ॥ जघनम् ॥ ३२ ॥

क्लिशेरन्लो लोपश्च ॥ ३३ ॥ केशः ॥ ३३ ॥

फलेरितजादेश्च पः ॥ ३४ ॥ पलितम् ॥ ३४ ॥

(२५) मिमीते मान्यहेतुर्भवतीति मयूखः। किरणः कान्तिः करो ज्वाला वा ॥

(२६) कलति संख्यातीति कुल्फः । शरीरावयवो रोगो वा । गलति भक्षयतीति गुल्फः । पादग्रंथिर्वा ॥

(२७) स्पृशति येन स पार्श्वः । कक्षयोरधोभागो वा । पर्शुः । आयुधं वा ॥

(२८) श्मनि मुखे श्रयतीति,श्मश्रु । श्मश्रुणी। श्मश्रूणि। पुरुषमुखरोमाणि वा ॥

(२९) अश्नुते व्याप्नोतीति, अश्रु नेत्रजलं वा। क्रुन् प्रत्ययो रुडागमश्च । एवमन्येऽपि यथायोग्यं द्रष्टव्याः ॥

(३०) जायतेऽसौ जटा। दीर्घाः केशा वा। जटा अस्य सन्तीति जटालः। सिध्मादित्वाल्लच् । जटिलः । पिच्छादित्वादिलच् ॥

(३१) तस्य जनेः । जायतेऽसौ जङ्घा । जानोरधोभागो वा ॥

(३२) हन्ति येन यो वा हन्यते तज्जघनम् । जानोरुपरिभागो वा । इवार्थे शाखादित्वाद्यः । जघनमिव जघन्यं नीचम् ॥

(३३) क्लिश्यति येन स केशः । शिरलोमानि वा । केशा अस्य सन्तीति केशवः केशिकः । केशी ॥

(३४) फलति निष्पन्नं पक्वमिव भवतीति पलितम्। केशश्वैत्यं वा। फस्य पः ॥

कृञादिभ्यः संज्ञायाम् ॥ ३५ ॥ करकः । कटकः । नरकः । कोरकः ॥ ३५ ॥

चीकयतेराद्यन्तविपर्ययश्च ॥ ३६ ॥ कीचकः । ३६ ॥

पचिमच्योरिच्चोपधायाः ॥ ३७ ॥ पेचकः । मेचकः । ३७ ॥

जनेररष्ठ च ॥ ३८ ॥ जठरम् । ३८ ॥

वचिमनिभ्यां चिच्च ॥ ३९ ॥ वठरः । मठरः । ३९ ॥

ऊर्जिदृणातेरलचौ ॥ ४० ॥ ऊर्दरः । ४० ॥

कृदरादयश्च ॥ ४१ ॥ कृदरः । मृदरः । सृदरः । ४१ ॥

हन्तेर्युन्नाद्यन्तयोर्घत्वतत्वे ॥ ४२ ॥ घतनः । ४२ ॥

(३५) करोतीति करकः करका । वृष्टिपाषाणो वा । करको दाडिमः कमण्डलुर्वा । कटति वर्षत्यावृणोति वा स कटकः । बाहुभूषणं शिखरो वा । नृणाति नयतीति नरकम् । पापभागो वा । सरति गच्छतीति सरकम् । गमनं वा । अलति भूषितो भवतीत्यलकम् । शीतादिकं वा । अलति वारयति येन तेऽलकाः । कुटिलाः केशा वा । कुरति शब्दयतीति
कोरकः । कलिका (कली) इति प्रसिद्धा ॥

(३६) चीकयते सहतेऽसौ कीचकः । वंशभेदो वा ॥

(३७) पचतीति पेचकः । उलूकपक्षी वा । मचते शब्दयतीति मेचकः । कृष्णवर्णो मयूरपक्षचिह्नं वा ॥

(३८) जायतेऽस्मादिति जठरम् । उदरं कठिनं वा ॥

(३९) अन्त्यस्य ठः वक्तीति वठरः । मूर्खो वा । मन्यतेऽसौ मठरः । मुनिभेदो मत्तो वा । तस्यापत्यं माठरः । माठर्यः ॥

(४०) ऊर्क् पराक्रमं रसं वा दृणातीति, ऊर्दरः । शूरो दुष्टो वा । स्वरभेदार्थं प्रत्ययद्वयम् ॥

(४१) कृत्स्नं दृणातीति कृदरः । कुशूलो वा । मृदं दृणातीति मृदरः व्याधिर्विलं वा । सृष्टिं दृणातीति सृदरः सर्पः ॥

(४२) हन्तीति घतनः । मारको वा ॥

क्रमिगमिक्षमिभ्यस्तुन् दृद्धिश्च ॥ ४३ ॥ क्रान्तुः । गान्तुः । क्षान्तुः । ४३ ॥

हर्यतेः कन्यन् हिरच् ॥ ४४ ॥ हिरण्यम् ॥ ४४ ॥

कृञः पासः ॥ ४५ ॥ कर्पासः । ४५ ॥

जनेस्तुरश्च ॥ ४६ ॥ जर्तुः ॥ ४६ ॥

ऊर्णोतेर्डः ॥ ४७ ॥ ऊर्णा । ४७ ॥

दधाते र्यन्नुट् च ॥ ४८ ॥ धान्यम् । ४८ ॥

जीर्यतेः क्रिन् रश्च वः ॥ ४९ ॥ जिव्रिः । ४९ ॥

मव्यतेर्यलोपो मश्चायतुट्चालः ॥ ५० ॥ ममायतालः ॥ ५० ॥

ऋजेः कीकच् ॥ ५१ ॥ ऋजीकः । ५१ ॥

---

(४३) क्रामति पादान् विक्षिपतीति क्रान्तुः । पक्षी वा । गच्छतीति गान्तुः । पथिको वा । आगान्तुरभ्यागतः । क्षमतेऽसौ क्षान्तुः । सहनशीलो वा ॥

(४४) हर्यते काम्यते तत्, हिरण्यम् । सुवर्णं वा ॥

(४५) क्रियत उत्पाद्यतेऽसौ कर्पासः तस्य भेदो वा । कर्पासस्य विकारः कार्पासं वस्त्रम् । विल्वादित्वादण् ॥

(४६) जायते यत इति जर्तुः । उपस्थेन्द्रियं हस्ती वा ॥

(४७) ऊर्णोत्याच्छादयति यया सा, ऊर्णा । अविमेषयो रोमाणि वा । ऊर्णां याति प्राप्नोतीत्यूर्णायुः । मेषो मेषोर्णा कम्बलो वा । ऊर्णा इव नाभिरस्य स ऊर्ण-नाभः । समासान्तोऽच् ऊर्णनाभिरिति वा समासान्तस्य विधेरनित्यत्वात् । लूताहिर्वा ॥

(४८) दधाति पुष्णाति लोकानिति धान्यम् । व्रीहिर्वा । धाने पोषणे साधु धान्यमित्यपि ॥

(४९) यो जीर्यति येन वा स जिव्रिः । कालः पक्षी वा । हलिचेति बाहुल-काद्दीर्घाभावः ॥

(५०) मव्यति बध्नातीति ममायतालः । बन्धनहेतुर्विषयो वा ॥

(५१) अर्जति गच्छतीति, ऋजीकः । सूर्यो धूमो वा ॥

तनोतेर्डउः सन्वच्च ॥ ५२ ॥ तितउ ॥ ५२ ॥

अर्भकपृथुकपाका वयसि ॥ ५३ ॥

अवद्यावमाधमार्वरेफाः कुत्सिते ॥ ५४ ॥

लीरीङोर्ह्रस्वः पुट् च तरौ श्लेषणकुत्सनयोः ॥५५॥ लिप्तम्। रिप्रम् ॥ ५५ ॥

क्लिशेरीच्चोपधायाः कन् लोपश्चलो नाम् च ॥५६॥ कीनाशः।

अश्नोतेराशुकर्मणि वरट् च ॥ ५७ ॥ ईश्वरः ॥ ५७ ॥

चतेरुरन् ॥ ५८ ॥ चत्वारः ॥ ५८ ॥

प्रातेररन् ॥ ५९ ॥ प्रातः ॥ ५९ ॥

---

(५२) तनोति विस्तृणोति येन तत् तितउ । चालनी पेषणशोधकपात्रम् ॥

(५३) ऋध्यति वर्धतेऽसावर्भकः ऋधुधातोर्वुन् धस्य भः । प्रथते वर्धते स पृथुकः । कुकन् प्रत्ययः सम्प्रसारणं च पिबतीति पाकः । कन् प्रत्ययः । अर्भकपृथुकपाका बालकपर्यायाः ॥

(५४) वदितुमयोग्यमवद्यम् । नञ्पूर्वाद्वदधातोर्यत् । अवतीत्यवमः । अमः प्रत्ययः । तत्रैव वस्य धः । अधमम् । ऋच्छति गच्छतीत्यर्वा । वन् । अश्वो वा । रिफति निन्दतीति रेफः । कुत्सितपर्याया इमे ॥

(५५) लीयते श्लिष्यत इति लिप्तम् । श्लिष्टम् । रीयते तत्, रिप्रं कुत्सितम् । तरौ प्रत्ययौ पुडागमः ॥

(५६) क्लिश्नातीति कीनाशः । कर्षीवलो न्यायाधीशो वा । धातोरुपधाया ईत्वं लकारलोपः कन् प्रत्ययो नामागमश्चान्त्यादचः परः ॥

(५७) अश्नुते, आशु, शीघ्रं करोति जगद्रचयति स, ईश्वरः । स्वामी वा । टित्वादीश्वरी । वरच् प्रत्यये । ईश्वरा ॥

(५८) चतते याचतेऽसौ चतुः । संख्यावाची वा । चत्वारः । चतस्रः ॥

(५९) प्रकृष्टमतति गच्छतीति प्रातः । प्रभातकालो वा । स्वरादित्वादव्ययम् ॥

अमेस्तुट् च ॥ ६० ॥ अन्तः ॥ ६० ॥

दहेर्गोऽन्त्यलोपो दस्य नः ॥ ६१ ॥ नगः ॥ ६१ ॥

षिचेः संज्ञायां हनुमौ कश्च ॥ ६२ ॥ सिंहः ॥ ६२ ॥

व्याङि घ्रातेश्च जातौ ॥ ६३ ॥ व्याघ्रः ॥ ६३ ॥

हन्तेरच् घुर च ॥ ६४ ॥ घोरम् ॥ ६४ ॥

क्षमेरुपधालोपश्च ॥ ६५ ॥ क्ष्मा ॥ ६५ ॥

तरतेड्रिः ॥ ६६ ॥ त्रयः ॥ ६६ ॥

ग्रहेरनिः ॥ ६७ ॥ ग्रहणिः ॥ ६७ ॥

प्रथेरमच् ॥ ६८ ॥ प्रथमः ॥ ६८ ॥

चरेश्च ॥ ६९ ॥ चरमः ॥ ६९ ॥

(६०) अमति गच्छतीति यत्रेति, अन्तः । मध्यं वा । पूर्ववदव्ययम् ॥

(६१) दहति दह्यते वा स नगः । पर्वतो वृक्षो वा । बाहुलकान्नकारस्य नाकारो नागः सर्पभेदो वा ॥

(६२) सिञ्चतीति सिंहः । प्रसिद्धो वा । हकारप्रत्ययो नुमागमः । चस्य कः । ककारस्य च लोपः हिनस्तीति सिंहः इति पृषोदरादित्वाद्वर्णाद्यन्तविपर्ययः ॥

(६३) विशेषेण समन्ताज् जिघ्रतीति व्याघ्रः हस्ती वा ॥

(६४) हन्तीति घोरम् । भयानकं वा ॥

(६५) क्षमते सहते सर्वमिति क्ष्मा पृथिवी वा ॥

(६६) तरतीति त्रिः । संख्यावाची वा । त्रयः । त्रीन् । त्रिभ्यः ॥

(६७) गृह्णातीति ग्रहणिः । कृदिकारादिति ङीष् । ग्रहणी संग्रहणी व्याधिभेदो वा ॥

(६८) प्रथते प्रख्यातो भवतीति प्रथमः । आद्य उत्तमो नूतनो वा ॥

(६९) चरति गच्छति भक्षयति वा स चरमः । अन्त्यः पश्चिमो वा ॥

मङ्गेरलच् ॥ ७० ॥ मङ्गलम् ॥ ७० ॥

इत्युणादिषु पञ्चमः पादः समाप्तः ॥

मन्थानंविशदंविधायबहुलंव्युत्पन्नपक्षेनवा
ऽव्युत्पन्नेनदलेनयेनविधिवद्वाग्वारिधिर्मन्थितः ।
व्यक्ताव्यक्ततराणियत्ववचसांरत्नान्यदीप्यन्तवै
भूयात्सोयमुणादिरुत्तमगणोध्येतुर्यशोद्वये ॥ १ ॥

(७०) मङ्गति प्राप्नोति सुखं येन तन्मङ्गलम् । प्रशस्तम् मङ्गलो वारभेदो वा । मङ्गलस्य भावो माङ्गल्यम् ॥

इतिश्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतोणादिव्याख्यायां
वैदिकलौकिककोषे पञ्चमः पादः समाप्तः ॥
समाप्तश्चायं ग्रन्थः

———0———

अथोणादिशब्दसूचीपत्रम् ॥

—:*:—

शब्दाः	पा०	सू०	शब्दाः	पा०	सू०	शब्दाः	पा०	सू०
अषमम्	५	५४	अञ्जिष्ठः	४	२	अणुः	१	८
अव्यथिषः	१	४९	अतिथिः	४	२	अद्भुतम्	५	१
अवसः	३	११७	अत्रिः	४	६८	अन्धुः	१	२७
अशनिः	२	१०२	अद्रिः	४	६५	अप्सुः	१	७५
अश्वः	१	१५१	अनिलः	१	५४	अम्बु	१	२७
अष्ट	१	१५७	अपिशलिः	४	२२८	अरुः	२	११७
अष्टका	३	१४८	अभिम्लातः	३	८६	अर्जुनः	३	५८
अंसः	५	२१	अमित्रः	४	१७४	अर्जुनम्	३	५९
अस्त्रम्	४	१५९	अरिः	४	१२९	अरुणः	३	६०
असनः	२	७८	अर्चिः	२	१०८	अश्रुः	५	२९
अस्मद्	१	१३९	अर्पिसः	४	२	असुः	१	१०
अस्मम्	२	१२	अलिः	४	१३९	अस्रुः	४	१०२
अहः	१	१५८	अविनः	२	४६	असुरः	१	४२
अंहः	४	२१३	अविषः	१	४५	अङ्कूषः	४	७६
अंहतिः	४	६२	अश्रिः	४	१३८	अन्दूः	१	९३
अहल्या	४	११२	अश्वित्रम्	४	१७३	अरूषः	४	७३
अङ्गारः	३	१३४	अशिरः	१	५२	अग्रेगूः	२	६८
अध्वा	४	११६	असिः	४	१४०	अनेहाः	४	२२४
अथर्वा	१	१५४	अस्तिः	४	१८०	**आ**		
अपाः	४	२२२	अस्थि	३	१५४	आखनिकः	२	४५
अर्वा	४	११३	अहिः	४	१३८	आगः	४	२१२
अलाबूः	१	८७	अंह्रिः	४	६६	आडम्बरः	३	१३१
अश्मा	४	४७	अत्री	४	६८	आपः	२	५८
अक्षि	३	१५६	अनीकम्	४	१७	आपः	४	२०८
अग्निः	४	५०	अवीः	३	१५८	आपाथिकः	२	४५
अङ्गिराः	४	२३६	अलीकम्	४	२५	आपतिकः	२	४५
अग्निः	४	१४०	अङ्कुशः	४	१०७	आपनिकः	२	४५
अजिनम्	२	४८	अङ्कुरः	१	३८	आमयः	४	९९
अजिरः	१	५३	अङ्गुलिः	४	२	आम्रम्	२	१६

शब्दाः	पा०	सू०	शब्दाः	पा०	सू०	शब्दाः	पा०	सू०
कन्या	४	११२	क्रतुः	१	७६	कश्यः	४	११२
कपटम्	४	८१	कर्दमः	४	८४	कशेरुः	१	८८
कपालम्	१	११८	कर्पटः	४	८१	कशेरूः	१	८८
कपिः	४	१४४	कर्परः	३	१३१	कश्विः	४	१४०
कपिलः	१	५५	कर्पासः	५	४५	कषाकुः	३	७७
कपोतः	१	६२	कर्पूरः	४	९०	कषीका	४	१६
कपोलः	१	६६	कर्बुरः	१	४१	क्षत्रम्	४	१६७
कफेलूः	१	९३	करभः	३	१२२	क्षत्ता	२	९४
कबरः	४	१५५	कर्म	४	१४५	कंसः	३	६२
कमठः	१	१००	करम्बम्	४	८२	कस्तूरः	४	९०
कम्बलः	१	१०७	क्रयिकः	२	४४	कस्तूरी	४	९०
कम्बूः	१	९३	करीरः	४	३०	काकः	३	४३
कमरः	३	१३२	कर्वः	१	१५५	काकुः	१	१
कमलम्	१	१०४	कर्वरः	२	१२१	काणूकः	४	३९
कमलः	१	१०४	करीषः	४	२६	काण्डम्	१	११५
करिः	४	१२९	कर्षूः	१	८०	कादम्बः	४	८३
कर्कः	३	४०	कलिः	४	११८	कारिः	४	१२९
करकः	५	३५	कल्कः	३	४०	कारुः	१	१
कर्कटः	४	८१	कलत्रम्	३	१०६	क्रान्तुः	५	४३
कर्कन्धूः	१	९३	कलापकम्	२	३२	कार्षिः	४	१२७
कर्करः	३	१३१	कलभः	३	१२२	कार्षकः	२	३८
कर्करीकम्	४	२०	कलमः	४	८४	काशिः	४	११८
कर्करेटुः	१	३७	कलिलम्	१	५४	काशूः	१	८५
करटः	४	८१	कलुषम्	४	७५	काष्ठम्	२	२
करेटुः	१	३७	कविः	४	१३९			
कर्णः	३	१०	कवलः	१	१०६	काष्ठपुत्रिका	२	३२
करण्डः	१	१२९	कवसः	४	२	क्षान्तुः	५	४३
करुणा	३	५३	कश्मलम्	१	१०९	क्ष्मा	५	६५
करेणुः	२	१	कश्मीरः	४	३२	कासारः	३	१३९

शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्
कृतुः	३	३०	कोमलम्	१	१०९	ग		
कृत्तम्	३	६६	कोरकः	५	३५	गगनम्	२	७७
कृत्स्नम्	३	१७	क्रोष्टुः	१	६९	गङ्गा	१	१२३
कृदरः	५	४१	कोशलः	१	१०६	गडेरः	१	५८
कृन्तत्रम्	३	१०९	कोष्ठः	२	४	गडोलः	१	६६
कृपीटम्	४	१८५	क्षोणिः	४	४८	गण्डः	१	११४
कृपणः	२	७९	क्षौमा	२	९४	गण्डयन्तः	३	१२८
कृपाणः	२	९०	क्षौमम्	१	१४०	गण्डिः	४	११८
कृमिः	४	११२	ख			गण्डुः	१	७
कृविः	४	५६	खजपम्	३	१४२	गण्डूषः	४	७८
कृशानुः	४	२	खजाकः	४	१३	गण्डोलः	१	६६
कृषिः	४	१२०	खट्वा	१	१५१	गतिला	१	५७
कृषिः	४	१२७	खड्गः	१	१२४	गदयित्नुः	३	२९
कृषकः	२	३८	खडूः	१	८२	गन्त्री	४	१५९
कृषिकः	२	४०	खड्डूः	१	८२	गन्तुः	१	६९
कृष्णः	३	४	खण्डः	१	११४	गभीरः	४	३५
कृसरः	३	७३	खदिरः	१	५३	गभस्तिः	४	१८०
केतुः	१	७४	खनिः	४	१४०	गमथः	३	११३
क्रेणिः	४	४८	खनित्रम्	४	१६२	गमी	४	६
क्लेदा	१	१५९	खरुः	१	३६	गम्भीरः	४	३५
क्लेदुः	१	१०	खर्जूः	१	८०	गर्गः	१	१२८
केलिः	४	११८	खर्जूरः	४	९०	गरुडः	४	४६
केवलः	१	१०६	खलतिः	३	११२	गरुत्	१	९४
केशः	५	३३	खष्पः	३	२८	गर्त्तः	३	८६
क्षेत्रम्	४	१७०	खाटिः	४	१२५	गर्दभः	३	११२
क्षेमम्	१	१४०	खातम्	४	१६२	ग्रन्थिः	४	१४०
कोकिलः	१	५४	खिद्रः	२	१३	गर्भः	३	१५२
कोटरः	३	१३१	खिदिरः	१	५१	गर्मुत्	१	९५
कोटिः	४	११८	खुरः	२	२८	गर्वः	१	१५५

शब्दाः	पा॰	सू॰	शब्दाः	पा॰	सू॰	शब्दाः	पा॰	सू॰
पथिलः	१	५७	परीरम्	४	३०	पशुः	१	२७
पदाजिः	४	१३२	पर्परीकः	४	१९	पाकः	३	४३
पदातिः	४	१३२	परिव्राट्	२	५९	पाकः	५	५३
पद्मम्	१	१४०	पर्वतः	३	११०	पाकुकः	२	३०
पद्रः	२	१३	पर्वा	४	११३	पाजः	४	२०३
पद्या	४	११३	प्रगल्वा	४	११७	पाण्डुः	१	३७
पविः	४	१३९	प्रशल्वरी	४	११७	पाणिः	४	१३३
पन्थाः	४	१२	प्रशास्ता	२	९५	पातालम्	१	११७
पन्नः	३	१०	पर्शुः	१	३३	पातिः	५	५
पनसः	३	११७	पर्शुः	५	२७	पात्रम्	४	१५९
पपीः	३	१५९	परशुः	१	३३	पात्रम्	४	१७०
पपुः	१	२२	पर्षत्	१	१३०	पाथः	४	२०४
पम्पा	३	२८	प्रस्थायी	४	९	पाथः	४	२०५
पयः	४	१९०	परुः	२	११७	पाथिः	२	११४
पयोधाः	४	२३०	परुषः	४	७५	पादूः	१	८५
प्रख्याः	४	२३३	प्रहाणिः	४	५१	पापम्	३	२३
पर्जन्यः	३	१०३	परिहाणिः	४	५१	पाप्मा	४	१५१
परिज्वा	१	१५९	प्रहिः	४	१३५	पायुः	१	१
पर्णम्	३	६	प्रहेलिः	४	११८	पारुः	४	१०१
पर्णसुट्	२	२२	प्रक्षः	१	१५३	पारक्	१	१३६
पर्णरुट्	२	२२	प्लक्षः	३	६३	प्राकर्षिकः	२	४१
पर्णशुट्	२	२२	पलाण्डुः	१	३७	प्राट्	२	५७
पर्णसिः	४	१०७	पलितम्	५	३४	प्राणथः	३	११३
प्रतिदिवा	१	१५६	पलितः	३	९२	प्राणन्तः	३	१२७
प्रथितिः	४	१८३	पललम्	१	१०६	प्रातः	५	५९
प्रथमः	५	६८	पलालम्	१	११८	प्रापणिका	२	४१
पर्पः	३	२८	पल्वलः	४	१०७	प्रावृट्	२	५७
पर्पटः	४	८१	पवाका	४	१४	पार्श्वम्	५	२७
परमेष्ठी	४	१०	पविः	४	१३९	पार्ष्णिः	४	५२

शब्दाः	पा०	सू०	शब्दाः	पा०	सू०	शब्दाः	पा०	सू०
विधुः	१	२३	वृशः	४	१०४	शक्रः	२	१३
विधुरः	१	३९	वृश्चिकः	२	४०	शकलम्	१	११२
विपणिः	४	११८	वृषपः	४	१००	शकुलः	१	४१
विपिनम्	२	५२	वृषा	१	१५६	शक्वा	४	११३
विप्रः	२	२८	वेणिः	४	४८	शक्वरी	४	११३
विल्वम्	४	९५	वेणुः	३	३८	शङ्कुः	१	३६
विशिपः	३	१४५	वेतनम्	३	१५०	शङ्खः	१	१०२
विशालः	१	११८	वेत्रम्	४	१६७	शण्ठः	४	१०४
विश्वम्	१	१५१	वेतसः	३	११८	शण्डिलः	१	५४
विश्वप्सन्	१	१५९	वेदिः	४	११९	शण्ढः	१	९९
विश्वभोजाः	४	२३८	वेधाः	४	२२५	शतद्रुः	१	३५
विश्ववेदाः	४	२३८	वेनः	३	६	शतिः	४	१२२
विषा	४	३६	वेन्ना	३	८	शत्रिः	४	६७
विष्टपः	३	१४५	वेमा	४	१५०	शत्रुः	४	१०३
विष्टरश्रवाः	४	२२७	वेशन्तः	३	१२६	शतेरः	१	६०
विष्णुः	३	३९	वेष्टम्	४	१६०	शद्रिः	४	६५
विश्वा	४	३६	वेष्पः	३	२३	शपथः	३	११३
वीकः	३	४०	वेहत्	२	८५	शब्दः	४	९७
वीचिः	४	७२	वैजयन्तः	३	१२८	शबलः	१	१०५
वीणा	३	१५	व्योम	४	१५१	शमठः	१	१००
वीध्रम्	२	२६	**श**			शमथः	३	११३
वीरः	२	१३	शकटः	४	८१	शम्बः	४	९४
वृकः	३	४१	शक्तिधरः	२	२२	शम्बुकः	४	४१
वृक्षः	३	६६	शकृत्	४	५८	शम्बूकः	४	४१
वृजनम्	२	८१	शकुनः	३	४९	शमलम्	१	११२
वृजिनम्	२	४७	शकुनिः	३	४९	श्मश्रुः	५	२८
वृत्रः	२	१३	शकुन्तः	३	४९	शयण्डः	१	१२९
वृद्धश्रवाः	४	२२७	शकुन्तिः	३	४९	शयथः	३	११३
वृधसानः	२	८७	शक्मा	४	१४७	शयानकः	३	८२

शब्दाः	पा०	सू०	शब्दाः	पा०	सू०	शब्दाः	पा०	सू०
शयुः	१	७	शष्पः	३	२८	शिरीषः	४	२०
शयुनः	३	६१	शस्त्रम्	४	१६४	श्लिकुः	१	३२
शरिः	४	१२८	शंस्ता	२	९४	शिल्पम्	३	२८
शरुः	१	१०	शाकम्	३	४३	श्वित्रम्	२	१३
शर्करा	४	३	शादः	४	९७	शिवः	१	१५३
शरणम्	३	१०१	श्यामः	१	१४६	शिश्विदानः	२	९२
शरणिः	२	१०२	श्यामाकः	४	१५	शिविरम्	१	५३
शरत्	१	१३०	शारिका	४	१२८	शिशिरः	१	५३
शरभः	३	१२२	शारिः	४	१२८	शिशुः	१	२०
शर्म	४	१४५	शार्ङ्गः	१	१२७	शीकरः	३	१३१
शरिमा	४	१४८	शार्दूलः	४	९०	शीधुः	४	३८
शरीरम्	४	३०	शालभञ्जिका	२	३२	श्रीः	२	५७
शर्वः	१	१५५	शालिः	४	१३०	शीरः	२	१३
श्रवणा	२	७८	शालुः	१	५	शीर्विः	४	५४
श्रवाय्यः	३	९६	शालूकम्	४	४२	शीलम्	४	३८
शर्वरी	२	१२१	शालूरः	४	९०	शीवा	४	११४
शर्शरीकः	४	१९	श्वा	१	१५९	शुकः	३	४२
शल्कम्	३	४३	शास्ता	२	९४	शुचिः	३	१५५
शल्कः	४	१०८	शास्तिः	४	१८०	शुक्रः	२	२८
श्लक्ष्णम्	३	१९	शिक्यम्	५	१६	शुक्लम्	२	२८
शलाका	४	१४	शिखा	५	२४	शुचिः	४	१२०
शलभः	३	१२२	शिग्रुः	४	१०२	शुनकः	२	३२
शल्यम्	४	१०७	शिङ्घाणकः	३	८३	शुन्ध्युः	३	२०
शलिः	४	१२८	शिङ्घाणम्	३	८३	शुभ्रम्	२	१३
शवः	४	१९३	शितिः	४	१२२	शुभ्रिः	४	६५
श्वयीचिः	४	७१	शिथिलः	१	५३	शुल्वम्	४	९५
शवरः	३	१३१	शिनिः	४	५१	शुष्कः	३	४१
शवसानः	२	८६	शिरः	४	१९४	शुष्णः	३	१२
श्वसुरः	१	४४	शिरिः	४	१४३	शुष्मम्	१	१४४

शब्दाः	पा०	सू०	शब्दाः	पा०	सू०	शब्दाः	पा०	सू०
स्यूनः	३	९	**ह**			हालुः	१	१
स्यूमः	१	१४४	हतुः	३	३०	हासाः	४	२२१
स्यूः	२	५७	हथः	२	२	हिङ्गुः	१	३६
सूरः	२	२४	हन्ता	२	९४	हिण्डीरः	४	३०
सूरतः	५	१४	हनुः	१	१०	हिमम्	१	१४७
सूरिः	४	६४	हनूषः	४	७३	हिरण्ययम्	५	४४
सृकः	३	४१	हरिः	४	११९	हिरण्यरेताः	४	२२७
सृणिः	४	१०४	हरिणः	२	४६	हिंसीरः	५	१८
सृणिः	४	४९	हरेणुः	२	१	ह्रीका	३	४८
सृणीका	४	२३	हरित्	१	९७	ह्रीकुः	३	८५
सृत्वा	४	११४	हरितः	३	९३	ह्लीका	३	४८
सृदाकुः	३	७८	हरिद्रुः	१	३४	ह्लीकुः	३	८५
सृदरः	५	४१	हरिमा	४	१४८	हृदयम्	४	१००
सृप्रः	२	१३	हर्यतः	३	११०	हृषीकम्	४	१७
स्पृहयाय्यः	३	९६	हर्षयित्नुः	३	२९	हृषुः	१	२३
सेतुः	१	६९	हर्षुलः	१	९६	हेतुः	१	७३
स्येनः	२	४६	ह्रस्वः	१	१५३	हेम	४	१४५
सेना	३	१०	हलिः	४	११८	हेमन्तः	३	१२९
स्नेहा	१	१५९	हविः	२	१०८	हेलिः	४	११८
स्नेहुः	१	१०	हंसः	३	६२	होता	२	९५
सोमः	१	१४०	हंसिका	४	१५४	होत्रम्	४	१६८
स्तोमः	१	१४०	हस्तः	३	८६	होमः	१	१४०
सोमः	४	१५१	हस्वः	२	१३	होमा	४	१५१
स्योनः	३	९	हान्तम्	४	१६०	होमी	३	८४
स्रोतः	४	२०२	हानिः	४	५१	होलः	४	१०५
			हारिः	४	१२५			

इति

शुद्धिपत्रम् ॥

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
६	०	अ०१ पा०१	पा० १
६	८	श्रुयते	शृणाति
८	०	अ०१ पा०१	पा० १
१०	१०	कार्त्तिः	कौर्त्तिम्
१४	२०	वुक्	वुँक्
१५	५	कपिल	कपिलः
१९	१३	आमुष्मान्	आयुष्मान्
१९	१६	तनूः	धनूः
२२	२९	ज्ञान्ती	ज्ञाती
२३	२९	पंन्था	पन्था
२४	८	ङः	ढः
२७	२४	भेषज	भेषज
३२	२	हाथः	हृथः
३५	२२	दम्नम्	दाम्नम्
३६	२१	संकत्या	संमत्या
४०	२	स्त्येनः	श्येनः
४०	१७	या	वा
४०	२७	द्वति	द्रवति
४२	२१	व्युत्यन्न	व्युत्पन्न
४७	२३	०	नारी
५१	२६	लच्चणा	लक्षणा
५५	२७	रञ्जकः	रङ्कः
५७	२६	युवती	युवतिः
८५	२९	वाणग्र	वाणाग्र
८६	८	मनते	मवते
९३	१९	किथुनम्	मिथुनम्
९४	१	१५९	१५८
९४	२२	कादेशोवा	कदेशोवा
९६	१७	अमितः	अमित्रः
९६	२०	क्रियये	क्रियते
९८	२४	फागुनो	फाल्गुनो
११२	०	पा० ४	पा० ५
११४	२२	४७	१४७
११४	८३	आपाणिक	आपणिकः
११६	५५	९	९०
११६	८१	१०१	१०८
११८	३२	४	१
१२०	८	६०	१६०
१२०	३१	२६	९६
१२४	५९	धिषसा	धिषणा
१२५	८३	६४	६९
१२७	१९	पालुः	पीलुः
१२९	६८	मरिचिः	मरीचिः
१३१	१५	युवाः	युवा
१३१	५९	२५	१२५

इति



॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रस्थः ।

षोडशो भागः ॥

निघण्टुः

यास्कमुनिनिर्मितो वैदिककोषः

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतशब्दानुक्रमणिकया सहितः ।

पण्डितज्वालादत्तशर्मणा संशोधितः

पठनपाठनव्यवस्थायां षोडशं पुस्तकम् ।

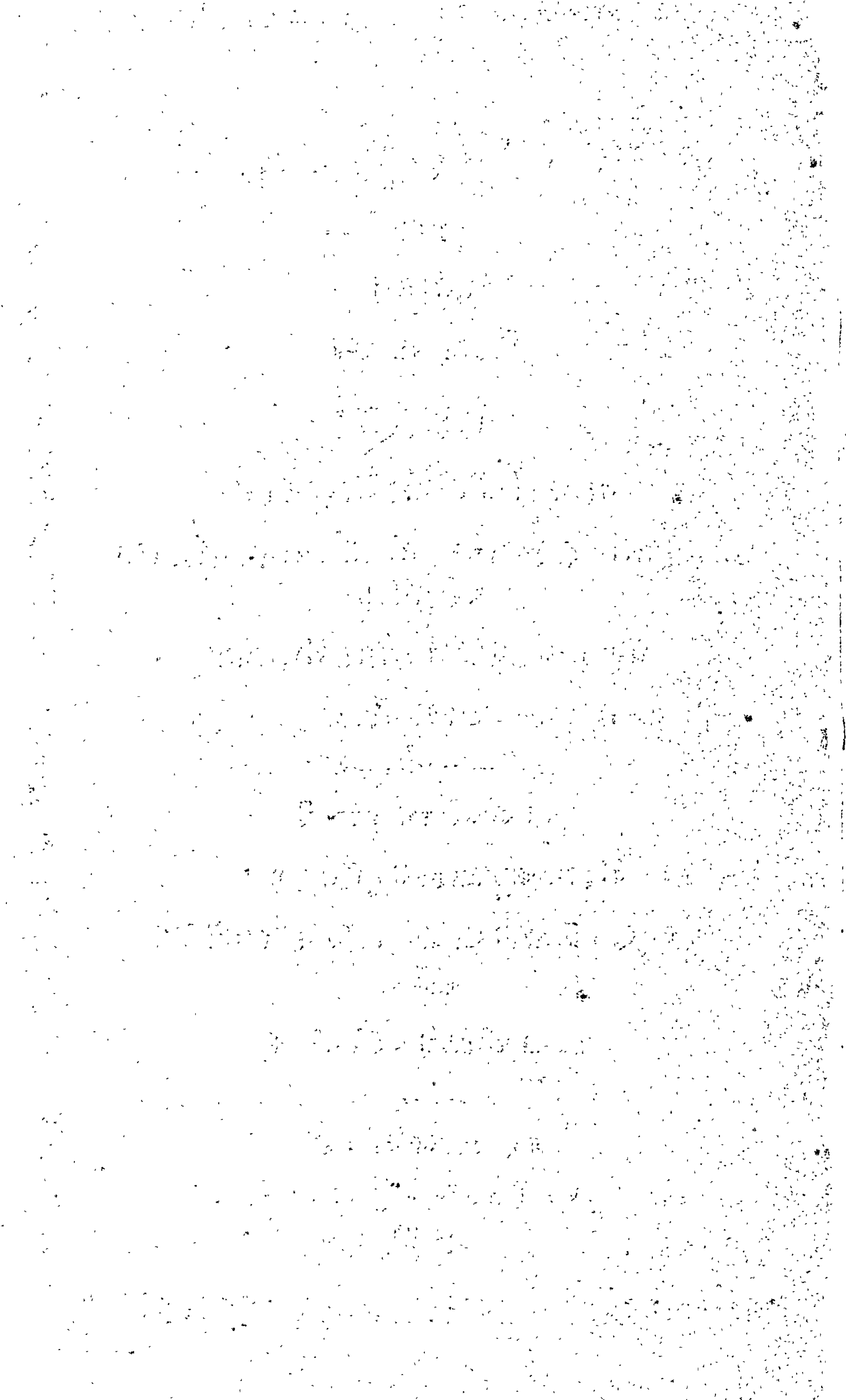
मुन्शी समर्थदान के प्रबन्ध से

वैदिकयन्त्रालयप्रयाग में मुद्रित हुआ ।

संवत् १९४० आश्विनकृष्णा २

पहली बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य ॥)



विषयसूचीपत्रम् ॥

इति

ओ३म्।

निघण्टुर्वैदिककोशः।

अथास्य भूमिका।

यह ग्रन्थ ऋग्वेदी लोगों के पठितव्य दश ग्रन्थों में है। विशेष कर वेद और सामान्य से लौकिक ग्रन्थों से भी संबन्ध रखता है। यह मूल और इस का भाष्य निरुक्त यह दोनों ग्रन्थ यास्क मुनि जी के बनाये हैं। सदा से चले आने से प्राचीन हैं। इस को बहुत पुस्तकों से मिला कर जो २ पुस्तकान्तरों में विशेष शब्द पाये वे नोट में धर दिये हैं। अकारादि शब्द क्रम से इस की शब्दानुक्रमणिका भी बना कर छपवाई है कि जिस से जिस शब्द को देखना चाहे झटिति देख सकता है इस में पांच अध्याय हैं। उस के प्रथम अध्याय में १७ खण्ड द्वितीयाध्याय में २२ तृतीयाध्याय में ३० चतुर्थाध्याय ३ और पंचमाध्याय में ६ खंड हैं। इस की शब्दानुक्रमणिका में प्रथम अङ्क से अध्याय और द्वितीय से खंड समझना। तृतीय कोष्ठ में अकारादि शब्द और चतुर्थ में जिस का नाम है लिखा है। परन्तु यह सब शब्द वेद में यौगिक और योगरूढि आते हैं केवल रूढि नहीं। इस में जो पदनाम हैं वे पद धातु के गत्यर्थ अर्थात् ज्ञान गमन प्राप्त्यर्थ के वाचक हो कर यौगिक हो जाते हैं। यह ग्रन्थ सर्वत्र उपलब्ध नहीं था अब छपने से प्राप्त होने लगा है इस से बड़ा उपकार यह होगा। कि जो पुराण वालों ने अर्थ का अनर्थ किया है। सो इन आर्ष ग्रन्थों से निवृत्त हो कर सब के आत्मा में सत्य का प्रकाश होगा। निदर्शन जैसे पुराणी लोगों ने वृत्र शम्बर और

असुर शब्द से दैत्य निघंटुमें मेघ। पु० अहि शब्दसे सर्प नि० मेघ। पु० अद्रि गिरि तथा पर्वत से केवल पहाड़ नि०मेघ।पु० अश्मा, ग्रावा; शब्दोंसे पाषाण और नि०मेघ। पु०वराह से सुअर नि० मेघ। पु० धारा से जल का प्रवाह नि० वाणी । पु० गौरी से महादेव की स्त्री नि० वाणी पु० कर्मकाण्डी स्वाहा शब्द सेअग्नि की स्त्री और स्वधा शब्द से पितृ की स्त्री नि० स्वाहा वाणी और स्वधा से अन्न। पु० शची शब्दसे इन्द्र की स्त्री नि०में वाणी कर्म और प्रज्ञा का नाम है । पुराणीलोग शचीपति शब्द से देवों का राजा इन्द्र और वेद में वाणी कर्म और प्रज्ञा का पालन करने हारा स्वामी लिया जाता है। पु०गय शब्द से एक मृतकों के अर्थ पिण्डप्रदानार्थ स्थानविशेष और निघं० अपत्य,धन और गृह का नाम है।पु० घृताची शब्द से देवलोक की वेश्या विशेष स्त्री और नि० में रात्रि का नाम है। आज कल के लोग विप्र शब्द से केवल ब्राह्मण और निघंटु में बुद्धिमान् का नाम है।पु०श्रद्धा सेप्रीति और श्राद्ध से मृतकों की तृप्ति मानते हैं और नि० में श्रत् शब्द से सत्य और जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण हो वह श्रद्धा और जो इस से धर्मयुक्त कर्म किया जाय सो श्राद्ध कहाता है अब कहां तक लिखें मनुष्य लोग जब इस कोश को पढ़ें गे तभी नवीन पुराणादि ग्रन्थों का मिथ्यापन और वेदों का सत्यत्व तथा वेदों के अर्थ करने में प्रवृत्ति अपने आप हो जायगी तब तक वेदार्थ में प्रवृत्ति नहीं होती और व्याकरणादि का पढ़ना निष्फल है। यद्यपि जहां तहां यंत्रालयों में निघंटु छपा है तथापि इस के छापने का मुख्य प्रयोजन यही है कि अकारादिशब्द क्रम से इस के साथ शब्दानुक्रमणिका ठिकाने के सहित छपवा दिई है कि जिस शब्द को निकालना चाहैं उस को शब्दानुक्रमणिका के अनुकूल देख के शीघ्र निकाल लेवें गे इस से जिस को

कंठस्थ ग्रन्थ न होगा वह भी शब्दानुक्रमणिका से लाभ ले सकेगा अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु ॥

इतिभूमिका समाप्ता ॥

निधि (९) रामा (३) ङ्क(६) चन्द्रे(१)ब्दे मार्गशीर्षसिते दले ॥
चतुर्थ्यां गुरुवारेयं निघंटुः शोधितोनघाः ॥ १ ॥

श्रीमन्महामहिमविक्रमभूपतेरेकोनचत्वारिंशदुत्तर
एकोनविंशतितमे संवत्सरे यन्त्रणाय मुनिवर
यास्कमुनिनिर्मितः सशब्दानुक्रमणिको
निघंटुः प्रेषितः ॥

स्थान महाराणा जी का उदयपुर

दयानन्दसरस्वती

॥ अथ निघण्टुः ॥
प्रथमोऽध्यायः ॥

गौः । ग्मा । ज्मा । क्ष्मा । क्षा । क्षमा (१) । क्षोणिः (२) । क्षितिः । अवनिः । उर्वी । पृथ्वी । मही । रिपः (३) । अदितिः । इळा । निर्ऋतिः । भूः । भूमिः । पूषा । गातुः । गोत्रेत्येकविंशतिः पृथिवीनामधेयानि ॥ १ ॥

हेम (४) । चन्द्रम् । रुक्मम् । अयः । हिरण्यम् । पेशः । कृशनम् । लोहम् । कनकम् । काञ्चनम् । भर्म । अमृतम् । मरुत् । दत्रम् । जातरूपमिति पञ्चदश हिरण्यनामानि ॥ २ ॥

अम्बरम् । वियत् । व्योम । बर्हिः । धन्व । अन्तरिक्षम् । आकाशम् । आपः । पृथिवी । भूः । स्वयम्भूः । अध्वा । पुष्करम् । सगरः (५) । समुद्रः । अध्वरमिति षोडशान्तरिक्षनामानि ॥ ३ ॥

स्वः । पृश्निः । नाकः (६) । गौः । विष्टपम् । नभ इति षट् साधारणानि ॥ ४ ॥

खेदयः । किरणाः । गावः । रश्मयः (७) । अभीशवः । दीधितयः (८) । गभस्तयः । वनम् । उस्राः । वसवः । मरीचिपाः । मयूखाः । सप्तऋषयः । साध्याः । सुपर्णाः । इति पंचदश रश्मिनामानि ॥ ५ ॥

---

(१) इत्यस्यस्थाने । क्ष्मः । क्षामा । क्षामः । क्षाम । इति चत्वारः शब्दाः पुस्तकान्तरेषु क्वचित् २ दृश्यन्ते ॥ (२) क्वदिकारादक्तिन इति ङीषि सति क्षोणी । इत्यपि भवति ॥ (३) स्वरभेदेन रिपः, इत्यपि पु० २ दृश्यते ॥ (४) हेमाः, इत्यपि पु०२ ॥ (५) सगरम् । इति लिङ्गभेदेन पुस्तकान्तरपाठः ॥ (६) नाकाः । इति बहुवचनान्तः क्वचित् ॥ (७) रश्म्यः । इति ङीषि सति पु० २ ॥ (८) दिधीतयः । इत्यपि पुस्तकान्तरपाठः ॥

आताः । आशाः । उपराः । आष्ठाः । काष्ठाः । व्योम । ककुभः । हरितः । इत्यष्टौ दिङ्नामानि ॥ ६ ॥

श्यावी । क्षपा । शर्वरी । अक्तुः । ऊर्म्या । राम्या (१) । यम्या । नम्या । दोषा । नक्ता । तमः । रजः । असिक्नी । पयस्वती । तमस्वती । घृताची । शिरिणा (२) । मोकी । शोकी । ऊधः (३) । पयः । हिमा (४) । वस्वी (५) । इति त्रयोविंशती रात्रिनामानि ॥ ७ ॥

विभावरी । सूनरी । भास्वती । ओदती । चित्रामघा । अर्जुनी । वाजिनी । वाजिनीवती (६) । सुम्नावरी । अहना । द्योतना । श्वित्या । अरुषी (७) । सूनृता । सूनृतावती । सूनृतावरी । इति षोडशोषोनामानि ॥ ८ ॥

वस्तोः । द्युः (८) । भानुः । वासरम् । स्वसराणि । घ्रंसः । घर्मः । घृणः (९) । दिनम् । दिवा । दिवेदिवे । द्यविद्यवि । इति द्वादशाह्ननामानि ॥ ९ ॥

अद्रिः । ग्रावा । गोत्रः । बलः । अश्नः । पुरुभोजाः । वलिशानः (१०) । अश्मा । पर्वतः । गिरिः । व्रजः । चरुः । वराहः । शम्बरः । रौहिणः । रैवतः । फलिगः । उपरः । उपलः । चमसः । अहिः । अभ्रम् (११) । बलाहकः । मेघः । दृतिः (१२) ।

(१) रम्या इति पाठः ॥ (२) शीर्णा इत्यपि पु॰ २ (३) ऊधा । इत्यपि पु॰ २ ॥ (४) हिम इत्यपि पु॰ २ ॥ (५) वसु । वस्ता । वसी । इत्यपि पु॰ २ ॥ (६) वाजिनिवती । इत्यपि पु॰ ॥ (७) अरूषी इत्यपि पु॰ ॥ (८) द्यौ इति पा॰ ॥ (९) घृणिः इत्यपि पु॰ ॥ (१०) पशानः । पर्णानः । इमावपि क्वचित् ॥ (११) अभ्वम् इत्यपि पु॰ ॥ (१२) दृत्तिः इति च पु॰ ।

ओदनः (१) । वृषन्धिः (२) । वृत्रः । असुरः । कोशः । इति
त्रिंशन्मेघनामानि ॥ १० ॥

श्लोकः । धारा । इळा । गौः । गौरी । गान्धर्वी । गभीरा ।
गम्भीरा । मन्द्रा । मन्द्राजनी । वाशी । वाणी । वाणीची ।
वाणः । पविः । भारती । धमनिः । नाळीः (३) । मेळिः । मेना ।
सूर्या । सरस्वती । निवित् । स्वाहा । वग्नुः (४) । उपब्दिः । मायुः ।
काकुत् (५) । जिह्वा । घोषः । स्वरः । शब्दः । स्वनः । ऋक् ।
होत्रा । गीः । गाथा । गणः (६) । धेना । ग्नाः । विपा (७) ।
नना । कशा । धिषणा । नौः । अक्षरम् । मही । अदितिः ।
शची । वाक् । अनुष्टुप् । धेनुः । वल्गुः (८) । गल्दा (९) । सरः ।
(१०) । सुपर्णी (११) । वेकुरा (१२) । इति सप्तपंचाशद्
वाङ्नामानि ॥ ११ ॥

अर्णः । क्षोदः । क्षद्म (१३) । नभः । अम्भः । कबन्धम् (१४) ।
सलिलम् । वाः । वनम् । घृतम् । मधु । पुरीषम् । पिप्पलम् ।
क्षीरम् । विषम् । रेतः । कशः (१५) । जन्म (१६) । बृबूकम् ।
बुसम् । तुग्र्या बर्बुरम् (१७) । सुक्षेम (१८) । धरुणम् ।

(१) ओदनम् । इति नपुंसकम् पु० ॥ (२) विषन्धिः । इत्यपि पु० ॥
(३) नालिः । नीलिः । इमौ क्वचित् ॥ (४) गग्नु । इति क्वचित् ॥
(५) काकुप् इति पु० ॥ (६) गणा । इति पु० (७) मंग्ना, इति पु०॥ (८) वग्नुः ।
इति पु० ॥ (९) गल्दः । गल्दाः । इमौ पु०॥ (१०) रसः । रासः । इमौ च पु० ॥
(११) सुपर्णा, इति च पु० ॥ (१२) वेकु, इति पु०॥ (१३) चद्मा । चद्मः । चन्म । इमे
त्रयः पु० ॥ (१४) कवन्धम् । इति वकारभेदेन क्वचिद् दृश्यते ॥ (१५) ग्रकम् । पु०॥
(१६) जह्म । जह्मा । इमावस्यैव स्थाने पु० दृश्यते ॥ (१७) वुवुरम् । वुवुरः । इमौ च
तद्वत् ॥ (१८) सुक्षेमा । सुक्षोम । एतौ च ॥

सिरा (१)। अरिन्दानि (२)। ध्वस्मन्वत्। जामि (३)। आयुधानि। क्षपः। अहिः। अक्षरम् (४)। स्रोतः। तृप्तिः। रसः। उदकम् (५)। पयः। सरः। भेषजम्। सहः। शवः। यहः। ओजः। सुखम्। क्षत्रम्। आवयाः। शुभम्। यादुः (६)। भूतम्। भुवनम्। भविष्यत्। महत्। आपः। व्योम। यशः। महः। सर्णीकम् (७)। स्वृतीकम् (८)। सतीनम् (९)। गहनम्। गभीरम् (१०)। गम्भरम् (११)। ईम् (१२)। अन्नम्। हविः। सद्म। सदनम्। ऋतम्। योनिः। ऋतस्ययोनिः। सत्यम्। नीरम्। रयिः। सत्। पूर्णम्। सर्वम्। अक्षितम्। बर्हिः। नाम। सर्पिः। अपः। पवित्रम्। अमृतम्। इन्दुः। हेम (१३)। स्वः। सर्गाः। शम्बरम्। अभ्वम्। वपुः। अम्बु (१४)। तोयम्। तूयम्। कृपीटम् (१५)। शुक्रम्। तेजः। स्वधा। वारि। जलम्। जलाषम्। इदम्। इत्येकशतमुदकनामानि ॥ १२ ॥

अवनयः। यव्याः (१६)। खाः। सीराः। स्रोत्याः। एन्यः। धुनयः। रुजानाः। वक्षणाः। खादोअर्णाः। रोधचक्राः। हरितः। सरितः। अग्रुवः। नभन्वः (१७)। वध्वः। हिरण्यवर्णाः। रोहितः।

---

(१) सुरा। सुरा। इतिपु० ॥ (२) अररिदानि। इतिपु० ॥ (३) जामिः। जामिवत्। इतिपु० ॥ (४) अचरः। अचराः। इति पाठान्तरम् ॥ (५) पयः। इत्यपि पु० ॥ (६) यादः इति क्वचित् पु० ॥ (७) स्वर्णीकम्। इति पु० ॥ (८) सतीकम्। सृतीकम्। इति पु० ॥ (९) सतिनम्। पु० ॥ (१०) गम्भीरम्। इति पु० ॥ (११) गह्वरम्। इति पु० ॥ (१२) कम्। इत्यधिकं क्वचित् पु० ॥ (१३) हेमा इति पु० ॥ (१४) अम्बुः, इति लिङ्गभेदेन क्वचित् ॥ (१५) तृपीटम्। नृपीटम्। इति पुस्तकान्तरपाठः ॥ (१६) यह्वाः। इति पु० ॥ (१७) नभन्वाः, इति मात्राभेदेन पु० ॥

सस्रुतः । अर्णाः । सिन्धवः । कुल्याः । वर्यः (१) । उर्व्यः । इरावत्यः । पार्वत्यः (२) । स्रवन्त्यः (३) । ऊर्जस्वत्यः । पयस्वत्यः । सरस्वत्यः । तरस्वत्यः । हरस्वत्यः । रोधस्वत्यः । भास्वत्यः । अजिराः मातरः । नद्यः । इति सप्तत्रिंशन्नदीनामानि ॥ १३ ॥

अत्यः । हयः । अर्वा । वाजी । सप्तिः । वह्निः । दधिक्राः । दधिक्रावा । एतग्वः (४) । एतशः । पैद्वः । दौर्गहः । औच्चैःश्रवसः (५) । तार्क्ष्यः । आशुः । ब्रध्नः । अरुषः । मांश्चत्वः (६) । अव्यथयः (७) । श्येनासः । सुपर्णाः । पतङ्गाः । नरः । ह्वार्याणाम् (८) । हंसासः । अश्वाः । इति षड्विंशतिरश्वनामानि ॥ १४ ॥

हरी इन्द्रस्य । रोहितोऽग्नेः । हरित आदित्यस्य । रासभावश्विनोः । अजाः पूष्णः पृषत्यो मरुताम् । अरुण्यो गाव उषसाम् । श्यावाः सवितुः । विश्वरूपा बृहस्पतेः । नियुतो वायोः । इति दशाऽऽदिष्टोपयोजनानि ॥ १५ ॥

भ्राजते । भ्राशते (९) । भ्राश्यति । दीदयति । शोचति । मन्दते । भन्दते । रोचते । द्योतते । ज्योतते द्युमत् । इत्येकादश ज्वलतिकर्माणः ॥ १६ ॥

जमत् । कल्मलीकिनम् । जञ्जणाभवन् । मल्मलाभवन् । अर्चिः । शोचिः । तपः । तेजः (१०) । हरः । घृणिः (११) । शृङ्गाणि । इत्येकादश ज्वलतो नामधेयानि ॥ १७ ॥

गौर्हेमाम्बरं स्व१ः खेदय आताः श्यावी विभावरीवस्तोरद्रिः ग्लोकोऽर्णोऽवनयोऽत्यो हरीइन्द्रस्य भ्राजते जमदिति सप्तदश ॥

इति निघण्टौ प्रथमाध्यायः समाप्तः ॥

(१) ऋतावर्यः । इति पु० ॥ (२) वार्वत्यः । अर्वत्यः । इमौ पा० ॥ (३) रेवत्यः । इति पु० ॥ (४) एतग्वा इति पु० ॥ (५) उच्चैःश्रवसः । इति पु० ॥ (६) मंश्चतो । मंश्चतुः । इति पा० ॥ (७) व्यथयः । इति पा० ॥ (८) वार्याणाम् । इति पाठान्तरम् ॥ (९) भ्लाश्यति । भ्लाशते । भ्लाश्यते । इमे पुस्तकान्तरेषु दृश्यन्ते ॥ (१०) पयः । इति पु० ॥ (११) ह्वर्णिः । हर्णिः । इति पाठभेदः ॥

अथ द्वितीयाध्यायारम्भः ।

अपः । अप्नः । दंसः । वेषः । वेपः (१) । विष्ट्वी । व्रतम् । कर्वरम् । शक्म (२) । क्रतुः । करणाम् (३) । करणानि । करांसि । करन्ती (४) । करिक्रत् । चक्रत् (५) । कर्त्वम् (६) । कर्त्तोः । कर्त्तवै । कृत्वी । धीः । शची । शमी । शिमी । शक्तिः । शिल्पमिति षड्विंशतिः कर्मनामानि ॥ १ ॥

तुक् । तोकम् । तनयः (७) । तोक्म । तक्म । शेषः । अप्नः । गयः । जाः । अपत्यम् । यहुः । सूनुः । नपात् । प्रजा । बीजम् । इति पंचदशापत्यनामानि ॥

मनुष्याः । नरः (८) । धवाः । जन्तवः । विशः । क्षितयः । कृष्टयः । चर्षणयः । नहुषः (९) । हरयः । मर्याः । मर्त्याः । मर्त्ताः । व्राताः । तुर्वशाः । द्रुह्यवः । आयवः (१०) । यदवः । अनवः । पूरवः । जगतः । तस्थुषः । पञ्चजनाः । विवस्वन्तः । पृतनाः । इति पंचविंशतिर्मनुष्यनामानि ॥ ३ ॥

आयती । च्यवाना । अभीशु । अप्नवाना । विनङ्गृसौ । गभस्ती । कुरस्नौ । बाहू । भुरिजौ । क्षिपस्ती (११) । शक्वरी । भरित्रे । इति द्वादश बाहुनामानि ॥ ४ ॥

---

(१) वेशः । विष्टी । इति पुस्तकान्तर० ।(२) शग्म । शक्म् । अस्यैव भेदः पु० ॥(३) करणम् । इति पु० ॥(४) कुरन्ति । इति पु० ॥(५) चक्रतुः । इति पु० ॥ (६) कर्तुम् । इति पाठभेदपु० ॥ (७) तनयम् । इति लिङ्गभेदेन क्वचित् पु० ॥ (८) नराः । इति पुस्तकान्तरेषु ॥ (९) नहुषाः । इति वचन भेदेन क्वचित् पाठः ॥ (१०) अयवः । इति पु० ॥ (११) क्षिपती । क्षिपन्ती । इति पु० ॥

अग्रुवः । अण्व्यः (१)। विशः (२) । क्षिपः । शर्यः ।
रशनाः । धीतयः । अथर्यः (३) । विपः । कक्ष्याः । अवनयः ।
हरितः (४)। स्वसारः । जामयः । सनाभयः । योक्त्राणि ।
योजनानि । धुरः । शाखाः । अभीशवः । दीधितयः । गभस्तयः
(५) । इति द्वाविंशतिरङ्गुलिनामानि ॥ ५ ॥

उश्मि । उश्मसि (६) । वेति । वेनति । वेसति (७) ।
वाञ्छति । वष्टि (८) । वनोति । जुषते । हर्यति (९) । आचके ।
उशिक् । मन्यते । छन्त्सत् (१०) । चाकनत् । चकमानः । कनति ।
कानिषत् । इत्यष्टादश कान्तिकर्माणः ॥ ६ ॥

अन्धः (११) । वाजः । पयः । प्रयः (१२) । पृक्षः । पितुः । वयः ।
सुतः (१३) । सिनम् (१४) । अवः । क्षु (१५) । धासिः । इरा । इळा ।
इषम् । ऊर्क् । रसः । स्वधा । अर्कः । क्षद्म (१६) । नेमः । ससम् ।
नमः । आयुः । सूनृता । ब्रह्म । वर्चः । कीलालम् । यशः । इत्य-
ष्टाविंशतिरन्ननामानि ॥ ७ ॥

आवयति । भर्वति । बभस्ति । वेति । वेवेष्टि । अविष्यन् ।
बप्सति । भसथः । बब्धाम् । ह्वरति (१७) । इतिदशात्तिकर्माणः ॥ ८ ॥

(१) विभ्वाः, इत्यधिकं क्वचित् पु० ॥ (२) द्रशः । इति पाठान्तरम् ॥ (३) अथर्यवः ।
अथर्याः इति पाठान्तरम् ॥ (४) रोहितः, इति क्वचित् पाठः ॥ (५) सुहस्त्यः । सुस्तुतः ।
अस्यैव स्थाने इमौ लभ्येते पु० ॥ (६) इतोऽग्रे, अववेति, इत्यधिकं पुस्तकान्तरेषु ॥
(७) विसति । वेशति । इति पुस्तकान्तरपाठः ॥ (८) वेष्टि, इति क्वचित् पु० ॥
(९) ईयर्षि । उशत् । इमावधिकौ पुस्तकान्तरेषु ॥ (१०) शंसनत् । इति पु० ॥
(११) पाजः । इत्यधिकं क्वचित् पु० ॥ (१२) अवः, इति क्वचित् पु० ॥ (१३)
सुतम् इति लिङ्गभेदेन दृश्यते पु० ॥ (१४) सीनमिति पु० ॥ (१५) क्षुमत् ॥
क्षुत् । इत्येतौ क्षु, इत्यस्यैव स्थाने दृश्येते पुस्तकान्तरेषु ॥ (१६) क्षद्मः । इति पु० ।
(१७) ह्वयति, इति पु० ॥

ओजः (१)। पाजः । शवः । तरः । तवः । त्वक्षः । शर्द्धः (२)। बाधः । नृम्णम् । तविषी । शुष्मम् । शुष्णम् । शूषम् । दक्षः । वीळु । च्यौत्नम् । सहः । यहः । बधः । वर्गः । वृजनम् । वृक् (३) । मज्मना । पौंस्यानि । धर्णसिः (४) । द्रविणम् । स्यन्द्रासः । शम्बरम् । इत्यष्टाविंशतिर्बलनामानि ॥ ९ ॥

मघम् । रेक्णः । रिक्थम् । वेदः । वरिवः । श्वात्रम् । रत्नम् । रयिः । क्षत्रम् । भगः । मीढुम् (५) । गयः । नृम्णम् । द्युम्नम् । तना । बन्धुः । इन्द्रियम् । वसु । रायः । राधः । भोजनम् । मेधा । यशः । ब्रह्म । द्रविणम् (६) । श्रवः । वृत्रम् (७) । वृतम् । इत्यष्टाविंशतिरेव धननामानि ॥ १० ॥

अघ्न्या । उस्रा । उस्रिया । अही मही । अदितिः (८)। इळा । जगती शक्वरी । इति नव गोनामानि ॥ ११ ॥

रेळते । हेळते । भामते । भृणीयते (९) । भ्रीणाति । भ्रेषति । दोधति । वनुष्यति । कम्पते । भोजते । इति दश क्रुध्यतिकर्माणः ॥ १२ ॥

हेळः । हरः । हृणिः (१०)। त्यजः । भामः । एहः । ह्वरः (११)। तपुषी । जूर्णिः । मन्युः । व्यथिः । इत्येकादश क्रोधनामानि ॥१३॥

वर्त्तते । अयते । लोटते । लोठते । स्यन्दते (१२) । कसति ।

(१) वाजः इत्यधिकं क्वचित् पुस्तके ॥ (२) त्वर्त्तः, इति पु० ॥ (३) विट्, इति पाठान्तरम् ॥ (४) धर्णसि, इति प्रधानं पाठः ॥ (५) मोल्हम्, इति क्वचित् पु० ॥ (६) शवः । इत्यधिकं क्वचित् ॥ (७) ऋतम् । विरप्शम् । इतिपु० ॥ (८) अढितिः । इति पुस्तकान्तरपाठः ॥ (९) अस्यैव स्थाने हृणीयते, इति क्वचित् पु० ॥ (१०) घृणिः, इति चपु० ॥ (११) यरः, इति तस्यैव स्थाने पुस्त० । (१२) स्यन्दति । इति पु० ॥

सर्पति । स्यमति । स्रवति (१)। स्रंसति । अवति । स्रोतति । ध्वंसति । वेनति । मार्ष्टि । भुरण्यति । शवति । कालयति । पेलयति । कण्टति । पिस्यति । विस्यति । मिस्यति । प्रवते । प्लवते । च्यवते । कवते । गवते । नवते (२)। चोदति । नक्षति । सक्षति । म्यक्षति (३)। सचति (४)। ऋच्छति । तुरीयति । चतति । अतति । गाति । इयक्षति । सश्चति । त्सरति । रंहति । यतते । भ्रमति । ध्रजति । रजति । लजति । च्चियति । धमति । मिनाति (५)। ऋण्वति (६)। ऋणोति । स्वरति । सिसक्ति । विविष्टि (७)। योषिष्टि (८)। रिणाति (९)। रीयते । रेजति । दघ्रति (१०)। दभ्नोति (११)। युध्यति (१२)। धन्वति । अरुषति (१३)। आर्यति (१४)। सीयते (१५)। तकति (१६)। दीयति । ईषति । फणति (१७)। हनति (१८)॥ अर्दति । मर्दति । सस्रते । नसते । हर्यति । इयक्ति । ईङ्खति । ईङ्खते । ज्वयति । श्वात्रति । गन्ति । आगनीगन्ति । जगन्ति (१९)।

---

(१) स्रंसते । इति पाठश्च। (२) अवते। इत्यपि क्वचित् पु०॥ (३) मियक्षति । इत्यपि पु०॥ (४) अचति। इत्यपि०॥ (५)। मिनोति । च्चिणोति। इतिपु०॥ (६) रिखति । इत्यपि पु० ॥ (७) वेविष्टि। वेविष्टि। इति क्वचित् पु०॥ (८) योशिष्टि। इति च पु० ॥ (९) ऋणाति । ऋणति । ऋणक्ति। इति भेदः पुस्तकान्तरे॥ (१०) दध्यति । इतिभेदः। नख्यति। इत्यधिकं पु०॥ (११) दभ्नोति । इति पु० ॥ (१२) युध्यते । इति क्वचित् पाठः॥ (१३) अरुष्यति । अरर्षति। इतिपा०॥ (१४)। अलर्यति । अलर्षति । इति पाठान्तरम् ॥ (१५) डीयते । इति बहुमतः पाठः ॥ (१६) दीयते। इत्यपि क्वचित् पा०॥ (१७) अन कणति। इत्यपि क्वचित् पा०॥ (१८) सस्रति। सिस्रति । धवति । धावति । हम्मति । हस्यति । हर्यति इत्येतेऽधिकाः पुस्तकान्तरे॥ (१९) जङ्गन्ति इत्यपि पु० ॥

जिन्वति (१) । जसति । गमति । भ्रति । भ्राति । भ्रपति (२) । वहते (३) । रघर्यति । जेहते (४) । ष्वःकति (५) । च्युम्पति (६) । प्साति।वाति । याति । इषति (७) । द्राति (८) । द्रूक्ति । एजति । जमति । जवति । वञ्चति अनिति । पवते (९) । हन्ति । सेधति । अगन् । अजगन् । जिगाति । पतति । इन्वति । द्रमति (१०) । द्रवति (११) । वेति । हयन्तात् (१२) । एति । जगायात् । अयथुः (१३) ॥ इति द्वाविंशशतं गतिकर्माणः ॥ १४ ॥

नु । सच्चु । द्रवत् । ओषम् । जीराः (१४) । जूर्णिः (१५) । शूर्त्तोः । शूघनासः (१६) । शीभम् । तृषु (१७) । तूर्यम् (१८) । तूर्णिः (१९) । अजिरम् (२०) । भुरण्युः । शु (२१) । आशु । प्राशुः (२२) । तूतुजिः (२३) । तूतुजानः (२४) । तुज्यमानासः ।

---

(१) जगाति । जगति । इत्यपि कुचित् पु० ॥ (२) ध्रुवति इति पाठान्तरम् ॥ (३) । वल्गूयति । अघर्यति । इत्यधिकं क्वचित् पु० ॥ (४) जेहति, इतिभेदः । षर्दति । राति । रूल्हति इत्यधिकं कुचित् पुस्तकान्तरपाठः ॥ (५) षःकति । ष्वक्ति इति पु० ॥ (६) च्चिम्पति । इति पु० ॥ (७) । जायति इत्यधिकं क्वचित् पु० ॥ (८) पतयति इत्यप्यधिकं क्वचित् पु० ॥ (९) प्लवति इति पु० ॥ (१०) व्रजति इत्यधिकं कुचित् पु० ॥ (११) दूवति । द्रुमति । इति पाठान्तरम् ॥ (१२) यकाराभावे । हन्तात् । इति पु० ॥ (१३) अयुधुः । अयुधुः । इति तस्यैव भेदेन पाठः (१४) । जिरा इति पु० ॥ (१५) जूर्णीः । इति ङीष्भेदेन दीर्घान्तः पु० ॥ (१६) शूघनसाः । शूधनाः । शूघनाशः । इति तस्यैव भेदेन पाठान्तरम् ॥ (१७) त्रिपु । इति पु० (१८) । तीयम् । इति पा० (१९) । तूर्णि इति लिङ्गभेदेन पा० ॥ (२०) अजिरम् । इत्याद्युदात्तस्वरभेदेन क्वचित् पाठः ॥ (२१) शूः । आशुः । इति पूर्वापरयोर्भेदः पु० ॥ (२२) प्राशुचित् । प्राशुवित् । इति पाठान्त० ॥ (२३) । तूतुजित् इतिपाठान्तरम् ॥ (२४) तूतुजानासः । इति पा० ॥

अज्राः (१) साचिवित् । (२) द्युगत् (३) । ताजत्
तुरण्यः । वातरंहाः । इति षड्विंशतिः क्षिप्रनामानि ॥ १५ ॥

तळित् (४)। आसात् (५)। अम्बरम्। तुर्वशे (६
अस्तमीके। आके। उपाके। अर्वाके (७)। अन्तमानाम्
अवमे। उपमे। इत्येकादशान्तिकनामानि ॥ १६ ॥

रणः । विवाक् । विखादः । नदनुः । भरे । आक्रन्दे । आहवे
आजौ । पृतनाज्यम् । अभीके । समीके । ममसत्यम् । नेमधि
ता (८) सङ्काः । समितिः । समनम् । मीळ्हे । पृतनाः
स्पृधः । मृधः । पृत्सु । समत्सु । समर्ये । समरणे । समोहे । (९)समीथ
(१०) सङ्ख्ये । सङ्गे । संयुगे (११)। सङ्गथे । सङ्गमे
वृत्रतूर्ये । पृक्षे । आणौ (१२) शूरसातौ । वाजसातौ । समनीके
खले । खजे । पौंस्ये । महाधने । वाजे । अज्म । सद्म (१३
संयत् । संवतः (१४) इति षट्चत्वारिंशत्संग्रामनामानि॥ १७

इन्वति । नक्षति । (१५) आक्षाणः । आनट् । आष्ट
(१६)आपानः । अशत् । नशत् । आनशे । अश्नुते । इति दश
व्याप्तिकर्माणः ॥ १८ ॥

---

(१) अजराः।इति पा०॥ (२)साचीवित् । साचीवत्।इति पुस्तकान्त०॥ (३) युगत्
इति पु० ॥ (४) तलित् इति पा० ॥ (५) आसा । इति तकाराभावे तस्यैव भेदः
(६)तुर्वशः । इति पा० ॥ (७) अर्वाकः । इति पु० ॥(८) नेमधितिः । इति पा
(९) सम्मोहे इति पु० ॥ (१०) समिथे । सङ्खे इति पूर्वापरयोर्भेदेन पाठः
(११) इत्यस्मात् पूर्वं संयत् । इत्यधिकं क्वचित् पुस्तके ॥ (१२) मधने । इत्यधि
क्वचित् पु० ॥ (१३) अग्मन् । सग्मन् । स्पग्मन् । इत्येते ऽधिकाः पु० ॥ (१४
संवतम् । इति पाठान्तरम् ॥ (१५) ननक्षे इति पा० ॥ (१६) आष्ठ । आष्ट
आष्ठः । इति तस्यैव भेदः ॥

दभ्नोति (१)। श्नथयति। ध्वरति। धूर्वति। वृणक्ति। वृश्चति। क्षणोति (२)। कृन्तति। श्वसिति (३)। नभते (४)। अर्दयति। स्तृणाति। स्नेहयति (५) यातयति (६)। स्फुरति स्फुलति। निर्वपन्तु। अवतिरति। वियातः। आतिरत्। तळित् आखण्डल। दृणाति। रम्णाति। शृणाति। शम्नाति। तृणेढि। तार्ढि। निताशते (७)। निबर्हयति (८)। मिनाति। मिनोति। धमति (९)। इति त्रयस्त्रिंशद्वधकर्माणः॥ १९॥

दिद्युत्। नेमिः। हेतिः। नमः। पविः। सृकः। वृकः। वधः वज्रः। अर्कः (१०)। कुत्सः। कुलिशः। तुजः। तिग्मम् (११)। मेनिः। स्वधितिः। सायकः। परशुः। इत्यष्टादश वज्रनामानि॥ २०॥

इरज्यति। पत्यते। क्षयति (१२)। राजति। इति चत्वार ऐश्वर्यकर्माणः॥ २१॥

राष्ट्री। अर्यः। नियुत्वान्। इनइनः। इति चत्वारीश्वरनामानि॥ २२॥

अप्रस्तुङ्मनुष्यापत्यगुर्वो वशस्यन्त्यत्रोव यत्योजोमघमघ्न्यं रेक्ते हिक्गोवर्त्तते नुतळिद्दृणद्वन्वतिदभ्नोति दिद्युदिरज्यति राष्ट्रीति द्वाविंशतिः॥

॥ इति निघण्टौ द्वितीयाध्यायः समाप्तः॥

(१) श्नथति इत्यधिकं क्वचित् पु०। श्नयति। इति परस्य पाठान्तरम्॥ (२) क्षणस्ति। क्ष्णस्ति। इति पु०॥ (३) श्वसति। इति पा०॥ (४) नभति इति पु०॥ (५) स्नेहति इति पूर्वस्यैव भेदपाठः। अर्दति। मर्दति। इत्यधिकं क्वचित्॥ (६) यार्चति। यावति। इति पुस्तकान्तरपाठः॥ (७) नितोशते। नितोशयति इति भेदेन क्वचित् पाठः॥ (८) वर्हयति पु०॥ (९) जूर्वति। इत्यधिकं क्वचित्॥ (१०) अल्कः। इति पु०॥ (११) तुञ्जः। तिग्मः। इति पाठान्तरम्॥ (१२) क्षियति। इति क्वचित्पाठः।

अथ तृतीयाध्यायारम्भः ।

उरु । तुवि । पुरु । भूरि । शश्वत् । विश्वम् । परीणसा । व्यानशिः । शतम् । सहस्रम् । सलिलम् (१) । कुवित् । इति द्वादश बहुनामानि ॥ १ ॥

ऋहन् (२) ह्रस्वः । निघृष्वः । (३) मायुकः । प्रतिष्ठा । कृधु (४) । वम्रकः । दभ्रम् (५) । अर्भकः । क्षुल्लकः । अल्पः (६) । इत्येकादश ह्रस्वनामानि ॥ २ ॥

महत् (७) । ब्रध्नः । ऋष्वः । बृहत् (८) । उक्षितः । तवसः । तविषः । महिषः । अभ्वः । ऋभुक्षाः । उक्षाः । विहायाः । यह्वः । ववक्षिथ । ववक्षसे । अम्भृणः । माहिनः । गभीरः । ककुहः (९) । रभसः । व्राधन् (१०) । विरप्शी । अद्भुतम् (११) । वंहिष्ठः (१२) । बर्हिषत् (१३) । इति पञ्चविंशतिर्महन्नामानि ॥ ३ ॥

गयः । कृदरः । गर्त्तः । हर्म्यम् । अस्तम् । पस्त्यम् । दुरोणे । नीळम् । दुर्य्याः । स्वसराणि । अमा । दमे । कृत्तिः । योनिः । सद्म । शरणम् । वरूथम् । छर्दिः । छदिः । छाया । शर्म । अज्म (१४) । इति द्वाविंशतिर्गृहनामानि ॥ ४ ॥

---

(१) सरिरम् । इति पुस्तकान्तरपाठः ॥ (२) रिहम् । ऋहम् । ऋहत् । इति पा० ॥ (३) त्रषमः । त्रिषमः । इत्यधिकौ पु० ॥ (४) क्रधुकः । ऋधुकः । इति पुस्तकान्तरपाठः ॥ (५) दहरकः । देहरकः । इमावधिकौ पु० ॥ (६) अल्पकम् । इति पा० ॥ (७) महः । इति पु० ॥ (८) तुग्रः । इत्यधिकः पु० ॥ (९) ककुहस्तिना । इति पाठभेदः ॥ (१०) व्राधम् । व्राधत् । इति पु० ॥ (११) अद्भुतः । इति लिंगभेदः ॥ (१२) बर्हिष्ठः । इति पु० ॥ (१३) बर्हिषि । इतिपु० ॥ (१४) वर्म । इति पु० ॥

दूरज्यति (१)। विधेम। सपर्यति। नमस्यति। दुवस्यति।
ऋध्नोति। ऋणद्धि। ऋच्छति। सपति (२)। विवासति।
इति दश परिचरणकर्माणः ॥ ५ ॥

शिम्बाता। शतरा। शातपन्ता। शर्म (३)। स्यूमकम्।
शेवृधम्। मयः। सुग्म्यम्। सुदिनम्। शूषम्। शुनम्। शग्मम्। (४)
भेषजम्। जलाषम्। स्योनम्। सुम्नम्। शेवम्। शिवम्। शम्।
कम्। इति विंशतिः सुखनामानि। ६ ॥

निर्णिक्। वव्रिः। वर्पः। वपुः (५)। अमतिः। अप्सः (६)।
प्सुः। अप्नः। पिष्टम्। पेशः। कृशनम्। मरुत्। (७) अर्जुनम्।
ताम्रम्। अरुषम्। शिल्पम् (८)। इतिषोडश रूपनामानि ॥ ७ ॥

अस्रेमा। अनेमा। अनेद्यः। (९) अनवद्यः। अनभिशस्ताः
(१०)। उक्थ्यः। सुनीथः। पाकः। वामः। वयुनम्। इति दश
प्रशस्यनामानि ॥ ८ ॥

केतः। केतुः। (११) चेतः। चित्तम्। क्रतुः। असुः। धीः।
शची। माया। वयुनम्। अभिख्या। इत्येकादशप्रज्ञानामानि ॥९॥

वट्। श्रत्। सत्रा। अद्धा। इत्था। ऋतम्। इति षट्
सत्यनामानि ॥ १० ॥

चिक्यत् (१२)। चाकनत् (१३)। आचक्ष्म (१४)। चष्टे। विचष्टे।
विचर्षणिः। विश्वचर्षणिः। अवचाकशत्। इत्यष्टौपश्यतिकर्माणः॥११॥

---

(१) इरध्यति। इतिपा० ॥ (२) शर्वति। इतिपा० ॥ (३) शिल्गुः। इति बहुमतः पा० ॥ (४) शग्म्यम्। इतिपा० ॥ (५) अपुः। इत्यधिकं क्वचित् ॥ (६) वप्सः। इतिपा० ॥ (७) प्सरः। इतिपा० ॥ (८) शर्ध्यम्। शिर्ध्यम्। इति पा० ॥ (९) अनिन्द्यः। इत्यधिकं पु० ॥ (१०) अनभिशस्तिः। इति सम्मतः पाठः ॥ (११) कुतुः। इतिपु०। (१२) चिक्येम्। पा०। (१३) चना। इतिपा० ॥ (१४) चाक्ष्म। अचक्ष्म। इतितस्यैव भेदः ॥

ह्निकम् । नुकम् । सुकम् । आह्निकम् । आकीम् । (१) नकिः । माकिः । नकीम् । आकृतम् । इति नवोत्तराणि पदानि सर्वपदसमाम्नायः ॥ १२ ॥

इदमिव । इदंयथा । अग्निर्न ये । चतुरश्चिद्दमानात् । ब्राह्मणाव्रतचारिणः । वृक्षस्य नु ते पुरुहूतवयाः । जारआभगम् । मेषोभूतो ३ भियन्नयः । तद्रूपः । तद्वर्णः । तद्वत् । तथा । इत्युपमाः ॥ १३ ॥

अर्चति । गायति । रेभति । स्तोभति । गूर्धयति गृणाति । जरते (२)। ह्वयते (३)। नदति । पृच्छति । रिहति । धमति । कृपायति (४)। कृपण्यति । पनस्यति (५)। पनायते । वल्गूयति । मन्दते । भन्दति । छन्दति । छदयते (६)। शशमानः रञ्जयति । रजयति । शंसति । स्तौति । यौति । रौति । नौति । भनति (७)। पणायति (८)। पणते । सपति (९)। पपृक्षाः (१०) महयति । वाजयति । पूजयति । मन्यते (११)। मदति । रसति । स्वरति । वेनति । मन्द्रयते (१२)। जल्पति (१३)। इतिचतुश्चत्वारिंशदर्चतिकर्माणः ॥ १४ ॥

---

(१) आकिम् । इति पाठान्तरम् ॥ (२) जरति । इति पु० ॥ (३) ह्वयति । पा० ॥ (४) कृपा । इति पा० ॥ (५) पणस्यति । पणायते । इति पूर्वापरयोर्भेदः ॥ (६) छदयति । इति पा० ॥ (७) भणति । इति णत्वभेदः ॥ (८) भणायते । इति भेदः ॥ (९) स्वपिति । इति पा० ॥ (१०) पिपृक्षाः । इति पा० ॥ (११) स्वदति । इत्यधिकं पु० ॥ (१२) कल्पते । इत्यधिकं पु० ॥ (१३) मन्त्रयते । वन्दते । इमावधिकौ पुस्तकान्तरे ॥

विप्रः । विग्रः । गृत्सः । धीरः । वेनः । वेधाः (१) । कण्वः । ऋभुः । नवेदाः । कविः । मनीषी । मन्धाता । विधाता । विपः । सनश्चित् । विपश्चित् । विपन्यवः । (२) । आकेनिपः (३) । उशिजः । कीस्तासः । अद्धातयः । मतयः । मतुथाः (४) । वाघतः (५) । इति चतुर्विंशति मेधाविनामानि ॥ १५ ॥

रेभः । जरिता । कारुः । नदः । स्तामुः (६) । कीरिः । गौः । सूरिः । नादः । छन्दः । स्तुप् (७) । रुद्रः । कृपण्युः । इति त्रयोदशस्तोतृनामानि ॥ १६ ॥

यज्ञः । वेनः अध्वरः । मेधः । विदथः । नार्यः । सवनम् (८) । होत्रा । इष्टिः । देवताता । मखः । विष्णुः । इन्दुः । प्रजापतिः । घर्मः । इति पंचदशयज्ञनामानि ॥ १७ ॥

भरताः (९) कुरवः । वाघतः । वृक्तबर्हिषः । यतस्रुचः । मरुतः । सबाधः । देवयवः इत्यष्टावृत्विङ्नामानि ॥ १८ ॥

ईमहे । यामि । मन्महे । दद्धि । शग्धि (१०) पूर्द्धि । रिरिड्ढि । मिमिड्ढि । मिमीहि । रिरीहि । पीपरत् । यन्तारः । यन्धि (११) इषुध्यति । मदेमहि । मनामहे । मायते । इति सप्तदश याच्ञाकर्माणः ॥ १९ ॥

---

(१) मेधः । इत्यधिकः पु० ॥ (२) विपन्युः । इति पु० ॥ (३) केनिपः । अयमधिकः पु० ॥ (४) मनुथाः ॥ (५) मेधाविनः । इत्यधिकं पु० ॥ (६) तानुः । इति पाठान्तरम् ॥ (७) सुत् इति पाठान्तरम् ॥ (८) नारी । अयमधिकः पु० ॥ (९) भारताः । इति पाठभेदः ॥ (१०) दुग्धि । इति पा० ॥ (११) यन्ति । इति पाठान्तरम् ॥

दाति । दाशति । दासति । राति । रासति । पृर्णा
पृणाति (२) । शिक्षति । तुञ्जति । मंहते । इति द
र्माणः ॥ २० ॥

परिस्रव (३) । पवस्व । अभ्यर्ष । आशिषः । इति
ऽध्येषणाकर्माणः ॥ २१ ॥

स्वपिति । सस्ति (४) । इति द्वौ स्वपितिकर्माणौ

कूपः । कातुः । कर्तः । वव्रः । काटः । खातः (५
क्रिविः (६) सूदः । उत्सः । ऋश्यदात् । कारोतरा
कुशयः । कीवटः । इति चतुर्दशकूपनामानि ॥ २३ ॥

तृपुः (८) । तक्वा (९) । रिभ्वा (१०) । रिपुः
रिहायः । तायुः । तस्करः । वनर्गुः । हुरश्चित् । मुषीवान्
चः । अघशंसः । वृकः । इति चतुर्दशैव स्तेननामानि ।

निण्यम् । सस्वः । सनुतः । ह्विरुक् । प्रतीच्यं
अपीच्यम् । इति षण् निर्णीतान्तर्हितनामधेयानि ॥

आके । पराके । पराचैः । आरे । परावतः । इति
नामानि ॥ २६ ॥

(१) पृर्णक्ति । इति पा० ॥ (२) इस्यति । इत्यधिकं पु० ॥ (
इति शकारभेदेन पाठः ॥ (४) स्वस्ति । इतिपा० ॥ (५
अयमधिकः पुस्तकान्तरे ॥ (६) क्रविः । इति पाठः ॥ (७
इति पाठः॥ (८) त्रिपुः । इति पाठः ॥ (९) रितक्वा । चि
इति पुस्तकान्तरपाठः ॥ (१०) रिह्वा । इतिपाठान्तरम् ॥ (११
इति पा० ॥

प्रत्नम् । प्रदिवः । प्रवयाः । सनेमि । पूर्व्यम् (१) । अह्नाय । इति षट् पुराणनामानि ॥ २७ ॥

नवम् । नूतम् । नूतनम् । नव्यम् । इदा । इदानीम् । इति षडेव नवनामानि ॥ २८ ॥

प्रपित्वे । अभीके । दभ्रम् । अर्भकम् । तिरः । सतः । त्वः । नेमः । ऋक्षाः । स्तृभिः । वम्रीभिः । उपजिह्विका । ऊर्दरम् । कृदरम् । रम्भः । पिनाकम् । मेना । ग्नाः । शेपः । वैतसः । अया । एना । सिषक्तु (२) । सचते । भ्यसते (३) रेजते । इति षड्विंशतिर्द्विश उत्तराणि नामानि ॥ २९ ॥

स्वधे (४) पुरन्धी । धिषणे । रोदसी (५) । क्षोणी । अम्भसी । नभसी । रजसी । सदसी । सद्मनी । घृतवती । बहुले । गभीरे । गम्भीरे । ओण्यौ । चम्वौ (६) पार्श्वौ (७) मही । उर्वी । पृथ्वी (८) । अदिती । अह्नी । दूरेअन्ते । अपारेअपारे । इति चतुर्विंशतिर्द्यावापृथिवीनामधेयानि ॥ ३० ॥

उर्व्यृ१ हन्महद्गयद्रज्यतिशिम्बातानिर्णिगस्मेमाकितुर्वट्चिक्यद्विकमिदसिवार्चतिविप्रोरेभोयक्षोभरताईमहेदातिपरिस्रवस्वपितिकूपस्तृपुर्निण्यमाकिप्रत्नन्नवम्प्रपित्वेस्वधेत्रिंशत् ॥

इति निघण्टौ तृतीयाऽध्यायः समाप्तः ॥

(१) पूर्वा । इति पा० ॥ (२) सिषक्ति । इति पा० ॥ (३) नंसते । इत्यधिकं पु० ॥ (४) सुधे । इति पु० ॥ (५) रोधसी । इति वर्णभेदेनाधिकं वा पु० ॥ (६) अतः पूर्वं नप्त्री । इत्यधिकं क्वचित् । अतोऽग्रे च चुम्वी । इति भेदपाठः ॥ (७) पार्श्वे । इति पा० ॥ (८) बृहती । इत्यधिकमत्र पुस्तकान्तरे ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायारम्भः ॥

—०※०—

जहा । निधा । शितोम । मेहना । दमूनाः । मूषः (१) । दूषिरेवा । कुरुतनं । जठरे । तितउ । शिप्रे । मध्या । मन्दू । ईर्मान्तासः । कायमानः । लोधम् । शीरम् । विद्रधे । द्रुपदे । तुग्वनि । नंसन्ते । नसंतः (२) । आहनसः । अद्मसत् । इरिम्बगाः । वाहः । परितक्म्या । सुविते । दयते । नूचित् । नूच । द्रावने । अकूपारस्य । शिशीते । सुतुकः । सुप्रायणाः । अप्रायुवः । च्यवनः । रजः । हरः । जुहुरे । व्यन्तः । क्राणाः । वाशी । विषुणः । जामिः । पिता । शंयोः । अदितिः । एरिरे । जसुरिः । जरते । मन्दिने । गौः । गातुः । दंसयः । तूताव । चयसे । वियुते । ऋधक् । अस्याः । अस्य । इति द्विषष्टिः पदानि ॥ १ ॥

सस्निम् । वाहिष्ठः । दूतः । वावशानः । वार्यम् । अन्धः । असश्चन्ती । वनुष्यति । तरुष्यति । भन्दनाः । आहनः । नदः । सोमो अक्षाः । श्वात्रम् । ऊतिः । हासमाने । पद्भिः । सुदत्रम् । ह्विता । वाः । वराहः । स्वसराणि । शर्याः । अर्कः । पविः । वक्षः । धन्वा । सिनम् । इत्था । सचा । चित् । आ । द्युम्नम् । पवित्रम् । तोदः । स्वञ्चाः । शिपिविष्टः । विष्णुः । आघृणिः । पृथुज्रयाः । अध्वर्युम् । काणुका । अध्रिगुः । आङ्गूषः । आपान्तमन्युः । श्मशा । उर्वशी ।

---

(१) दूषिरः । इत्यधिकं ज० ॥ (२) नसन्तः इत्यप्यधिकं क्वचित् ॥

वयुनम् । वाजपस्त्यम् । वाजगन्ध्यम् । गध्यम् (१) । गधिता । कौरयाणः । तौरयाणः । अह्रयाणः (२) । आरितः । वन्दी । निष्षपी । तूर्णाशम् । क्षुम्पम् । निचुम्पुणः । पदिम् । पादुः । वृकः । जोषवाकम् । कृत्तिः । श्वघ्नी । समस्य । कुटस्य । चर्षणिः । शम्बः । केपयः । तूतुमाकृषे । अंसत्रम् । काकुदम् । बीरिटे । अच्छ । परि । ईम् । सीम् । एनम् । एनाम् । सृणिः । इति चतुरुत्तरमशीतिः पदानि ॥ २॥

आशुशुक्षणिः । आशाभ्यः । काशिः । कुणारुम् । अलातृणः । सललूकम् । कत्पयम् । विस्रुहः । वीरुधः । नक्षद्दाभम् । अस्कृधोयुः । शृम्भाः । वृबदुक्थम् । ऋदूदरः । ऋदूपे । पुलुकामः । असिन्वती । कपना । भार्ऋजीकः । रुजानाः । जूर्णिः । ओमना । उपलप्रक्षिणी । उपसि । प्रकलवित् । अभ्यर्धयज्वा । ईक्षे । क्षोणस्य । अस्मे । पाथः । सवीमनि । सप्रथाः । विदथानि । श्रायन्तः । आशीः । अग्नीगः । अमूरः । शशमानः । देवोदेवाच्या । कृपा । विजामातुः । ओमासः । सोमानम् । अनवायम् । किमीदिने (१) अमवान् । अमीवा । दुरितम् । अप्वा । अमतिः । श्रुष्टी । पुरन्धिः । रुशत् । रिशादसः । सुदत्रः । सुविदत्रः । आनुषक् । तुर्वणिः । गिर्वणसे । असूर्त्ते सूर्त्ते । अम्यक् । यादृश्मिन् । जारयायि । अग्रिया । चनः । पचता । शुरुधः । अमिनः । जज्झती । अप्रतिष्कुतः । शाशदानः । सुप्रः । सुशिप्रः । शिप्रे । रंसु । द्विबर्हाः । अक्रः । उराणः । स्तियानाम् । स्तिपाः । जबारु । जरूथम् ।

---

(१) गध्यति । इत्यधिकमत्र पुस्तकान्तरे ॥ (२) हरयाणः । इति पुस्तकान्तरपाठः ॥

(३) अध्रः । अमः । इत्यधिकौ क्वचित् पुस्तकान्तरे ॥

कुलिशः। तुञ्जः। बर्हणा। ततनुष्टिम्। इलीबिशः। कियेधाः। भृमिः। विष्पितः। तुरीपम्। रास्पिनः। ऋञ्जतिः। ऋजुनीती। प्रतद्वसू। हिनोत चोष्कूयमाणः। चोष्कूयते। सुमत्। दिविष्टिषु दूतः। जिन्वति। अमत्रः। ऋचीषमः। अनर्शरातिम्। अनर्वा। असामि। गल्दया जल्हवः। बकुरः। बेकनाटान्। अभिधेतन। अंहुरः। बतः। वाताप्यम्। चाकन्। रथर्यति। असक्राम्। आधवः। अनवब्रवः। सदान्वे। शिरिम्बिठः। पराशरः। क्रिविर्दती। करूळती। दनः। शरारुः। इदंयुः। कीकटेषु। बुन्दः। वृन्दम्। किः। उल्बम्। ऋबीसमृबीसमिति पञ्चविंशच्छतं पदानि॥ ३॥

जहा ससि माशुशुक्षणिस्त्रीणि॥ ३॥

॥ इति नैघण्टुके चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः॥

अथ पञ्चमाध्यायारम्भः॥

———*———

अग्निः। जातवेदाः। वैश्वानरः। इति त्रीणि पदानि॥ १।

द्रविणोदाः। इध्मः। तनूनपात्। नराशंसः। इळः। बर्हिः। द्वारः। उषासानक्ता। दैव्याहोतारा। तिस्रो देवीः। त्वष्टा। वनस्पतिः। स्वाहाकृतय इति त्रयोदश पदानि॥ २॥

अश्वः। शकुनिः। मण्डूकाः। अक्षाः। ग्रावाणः। नाराशंसः (१)। रथः। दुन्दुभिः। इषुधिः। हस्तघ्नः। अभीशवः। धनुः। ज्या। इषुः। अश्वाजनी। उलूखलम्। वृषभः। द्रुघणः। पितुः। नद्यः। आपः। ओषधयः।

(१) नराशंसः। इति पुस्तकान्तर पाठः॥

रात्रिः । अरण्यानी । श्रद्धा । पृथिवी । अप्वा । अग्नायी । उलूखल मुसले । हविर्धाने । द्यावापृथिवी । विपाट्छुतुद्री । आर्त्नी । शुनासीरौ । देवीजोष्ट्री । देवीऊर्जाहुतीति षट्विंशत्पदानि ॥ ३ ॥

वायुः । वरुणः । रुद्रः । इन्द्रः । पर्जन्यः । बृहस्पतिः । ब्रह्मणस्पतिः । क्षेत्रस्यपतिः । वास्तोष्पतिः । वाचस्पतिः । अपांनपात् । यमः । मित्रः । कः । सरस्वान् । विश्वकर्म्मा । तार्क्ष्यः । मन्युः । दधिक्राः । सविता । त्वष्टा । वातः । अग्निः । वेनः । असुनीतिः । ऋतः । इन्दुः । प्रजापतिः । अहिः । अहिर्बुध्न्यः । सुपर्णः । पुरूरवा । इति द्वात्रिंशत्पदानि ॥ ४ ॥

श्येनः । सोमः । चन्द्रमाः । मृत्युः । विश्वानरः । धाता । विधाता । मरुतः । रुद्राः । ऋभवः । अङ्गिरसः । पितरः । अथर्वाणः । भृगवः । (१) आप्त्याः । अदितिः । सरमा । सरस्वती । वाक् । अनुमतिः । राका । सिनीवाली । कुहूः । यमी । उर्वशी । पृथिवी । इन्द्राणी । गौरी । गौः । धेनुः । अघ्न्या । पथ्या । स्वस्तिः । उषाः । इळा । रोदसी । इति षट्विंशत्पदानि ॥ ५ ॥

अश्विनौ । उषाः । सूर्या । वृषाकपायी । सरण्यूः । त्वष्टा । सविता । भगः । सूर्यः । पूषा । विष्णुः । विश्वानरः । वरुणः । केशी । केशिनः । वृषाकपिः । यमः । अजएकपात् । पृथिवी । समुद्रः । अथर्वा । मनुः । दध्यङ् । आदित्याः । सप्तऋषयः । देवाः । विश्वेदेवाः । साध्याः । वसवः । वाजिनः । देवपत्न्यो देवपत्न्य इत्येकत्रिंशत्पदानि ॥ ६ ॥

अग्निर्द्रविणोदा अश्वो वायुः श्येनोऽश्विनौ षट् ॥ ६ ॥

इति नैघण्टुके पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ नैघण्टुकं समाप्तम् ॥

(१) ऋषयः । इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

ओ३म्

॥ अथ निघण्टोः शब्दानुक्रमणिका ॥



अध्याय	खण्ड	अकारादयः	विषयः
४	३	अक्नः	पदनाम
१	११	अक्षरम्	वाङ्नाम
१	१२	अक्षरः	उदकनाम
१	१२	अक्षरा	”
२	१४	अगन्	गतिकर्मा
२	१७	अग्मन्	संग्रामनाम
२	२४	अघशंसः	स्तेननाम
४	२	अच्छ	पदनाम
२	१४	अच्चति	गतिकर्मा
३	११	अचष्ट	पश्यतिकर्मा
५	६	अजएकपात्	पदनाम
२	१४	अजगमन्	गतिकर्मा
२	१७	अज्म	संग्रामनाम
३	४	अज्म	गृहनाम
२	१५	अजराः	क्षिप्रनाम
२	५	अण्व्यः	अङ्गुलिनाम
२	२०	अत्कः	वज्रनाम
२	१४	अतति	गतिकर्मा
२	१६	अतमीके	अन्तिकनाम
१	१४	अत्यः	अश्वनाम
२	५	अथर्यः	अङ्गुलिनाम
२	१४	अथर्यति	गतिकर्मा
२	५	अथर्याः	अङ्गुलिनाम
२	५	अथर्यवः	”
४	२	अथर्युम्	पदनाम
५	६	अथर्वा	”
५	५	अथर्वाणः	”
४	१	अद्मसत्	”
१	३	अध्वरम्	अन्तरिक्षनाम
३	१७	अध्वरः	यज्ञनाम
४	२	अन्धः	पदनाम
२	७	अन्धः	अन्ननाम
२	१६	अन्तमानाम्	अन्तिकनाम
१	१२	अन्नम्	उदकनाम
१	३	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्षनाम
२	३	अनवः	मनुष्यनाम
३	८	अनभिशस्ताः	प्रशस्यनाम
३	८	अनभिशस्तिः	”
३	८	अनवद्यः	”
४	३	अनर्वा	पदनाम
४	३	अनवायम्	”
४	३	अनवब्रवः	”
४	३	अनर्शरातिम्	”
१	१२	अपः	उदकनाम
२	१	अपः	कर्मनाम
२	२	अपत्यम्	अपत्यनाम
४	३	अप्रतिष्कुतः	पदनाम
२	१	अप्नः	कर्मनाम

अध्यायः	खण्डः	अकारादयः	विषयः	अध्यायः	खण्डः	अकारादयः	विषयः
३	७	अप्नः	रूपनाम	१	१२	अर्णः	उदकनाम
४	३	अप्नः	पदनाम	५	३	अरण्यानि	पदनाम
२	२	अप्नः	अपत्यनाम	२	१४	अर्हति	गतिकर्मा
२	४	अप्नवाना	बाहुनाम	२	१९	अर्हति	वधकर्मा
३	७	अप्सः	रूपनाम	२	१९	अर्हयति	”
१	१०	अभ्रम्	मेघनाम	३	२	अर्भकः	ह्रस्वनाम
३	३	अभ्वः	महन्नाम	३	२९	अर्भकम्	उत्तराणिपदानि
१	१२	अभ्वम्	उदकनाम	२	२२	अर्यः	ईश्वरनाम
१	१०	अभ्वम्	मेघनाम	१	१२	अररिदानि	उदकनाम
४	३	अभ्यर्द्धयज्वा	पदनाम	१	१२	अररिन्दानि	”
३	२१	अभ्यर्ध	अध्येषणाकर्मा	२	१४	अरर्षति	गतिकर्मा
४	३	अमः	पदनाम	३	२	अल्पम्	ह्रस्वनाम
३	७	अमतिः	रूपनाम	३	२	अल्पः	”
४	३	अमतिः	पदनाम	२	१४	अलर्यति	गतिकर्मा
१	१२	अम्भः	उदकनाम	२	१४	अलर्षति	”
४	३	अमत्रः	पदनाम	२	७	अवः	अन्ननाम
१	३	अम्बरम्	अन्तरिक्षनाम	३	११	अवचाकशत्	पश्यतिकर्मा
२	१६	अम्बरम्	अन्तिकनाम	३	२३	अवटः	कूपनाम
४	३	अम्यक्	पदनाम	३	२३	अवतः	”
४	३	अमवान्	”	२	१४	अवति	गतिकर्मा
३	३०	अम्भसी	द्यावापृथिवी	२	१९	अवतिरति	वधकर्मा
१	२	अयः	हिरण्यनाम	२	१४	अवते	गतिकर्मा
२	१४	अयते	गतिकर्मा	१	१३	अवत्यः	नदीनाम
२	१४	अयथुः	”	१	१३	अवनयः	”
२	३	अयवः	मनुष्यनाम	२	५	अवनयः	अङ्गुलिनाम
२	७	अर्कः	अन्ननाम	१	१	अवनिः	पृथिवीनाम
२	२०	अर्कः	वज्रनाम	१	१४	अव्यथयः	अश्वनाम
४	३	अर्कः	पदनाम	२	१६	अवमे	अन्तिकनाम
३	१४	अर्चति	अर्चतिकर्मा	२	६	अववेति	कान्तिकर्मा

अध्यायः	खण्डः	अकारादयः	विषयः	अध्यायः	खण्डः	अकारादयः	विषयः
४	२	अध्रिगुः	पदनाम	१	७	अक्तुः	रात्रिनाम
२	१४	अनिति	गतिकर्मा	१	१३	अग्रुवः	नदीनाम
३	८	अनिन्द्यः	प्रशस्यनाम	२	५	अग्रुवः	अङ्गुलिनाम
३	९	अभिख्या	प्रज्ञानाम	३	३	अद्भुतम्	महन्नाम
४	३	अभिधेतन	पदनाम	३	३	अद्भुतः	„
४	३	अमिनः	„	१	११	अनुष्टुप्	वाङ्नाम
३	३	अभ्वः	महन्नाम	५	५	अनुमतिः	पदनाम
१	१७	अर्चिः	ज्वलतोनाम	३	७	अप्नः	रूपनाम
२	८	अविष्यन्	अत्तिकर्मा	३	७	अप्सः	„
५	६	अश्विनौ	पदनाम	१	१२	अम्बु	उदकनाम
१	७	असिक्नी	रात्रिनाम	१	१२	अम्बुः	„
४	३	असिन्वती	पदनाम	२	१४	अयुथुः	गतिकर्मा
१	१०	अहिः	मेघनाम	२	१४	अयुधुः	„
१	१२	अहिः	उदकनाम	३	७	अर्जुनम्	रूपनाम
५	४	अहिः	पदनाम	१	८	अर्जुनी	उषोनाम
५	४	अहिर्बुध्न्यः	„	१	१५	अरुण्योगाव उषसाम्	आदिष्टोपयोजनानि
४	३	अजीगः	„				
३	२५	अपीच्यम्	निर्णीतान्तर्हितनाम	३	७	अरुषम्	रूपनाम
				१	१४	अरुषः	अश्वनाम
२	१७	अभीके	संग्रामनाम	२	१४	अरुषति	गतिकर्मा
३	२९	अभीके	उत्तराणिप०	२	१४	अरुष्यति	„
१	५	अभीशवः	रश्मिनाम	१	८	अरुषी	उषोनाम
२	५	अभीशवः	अङ्गुलिनाम	२	१८	अश्नुते	व्याप्तिकर्मा
५	३	अभीशवः	पदनाम	३	९	असुः	प्रज्ञानाम
२	४	अभीशू	बाहुनाम	५	४	असुनीतिः	पदनाम
४	३	अमीवा	पदनाम	१	१०	असुरः	मेघनाम
२	११	अही	गोनाम	४	३	अंहुरः	पदनाम
३	३०	अही	द्यावापृथिवी	४	१	अकूपारस्य	„

अध्याय	खण्ड	अकारादयः	विषयः
४	३	अमूरः	„
१	८	अरूषी	उषोनाम
४	३	असूर्त्तसूर्त्ते	पदनाम
१	२	अमृतम्	हिरण्यनाम
१	१२	अमृतम्	उदकनाम
४	३	अश्वधोयुः	पदनाम
३	८	अनेद्यः	प्रशस्यनाम
३	८	अनेमा	„
४	३	अस्मे	पदनाम
३	८	अस्तेमा	प्रशस्यनाम
		आ	
४	२	आ	पदनाम
२	१७	आक्रन्दे	संग्रामनाम
२	१९	आखण्डल	वधकर्मा
२	१४	आगनीगन्ति	गतिकर्मा
३	११	आचच्म	पश्यतिकर्मा
२	६	आचके	कान्तिकर्मा
४	३	आधवः	पदनाम
२	१८	आनट्	व्याप्तिकर्मा
२	१८	आनशे	„
१	३	आपः	अन्तरिक्षनाम
१	१२	आपः	उदकनाम
५	३	आपः	पदनाम
२	४	आयती	बाहुनाम
२	३	आयवः	मनुष्यनाम
२	१४	आर्पति	गतिकर्मा
१	१२	आवयाः	उदकनाम
२	८	आवयति	अत्तिकर्मा
२	१८	आष्ट	व्याप्तिकर्मा

अध्याय	खण्ड	आकारादयः	विषयः
२	१८	आष्टः	„
२	१८	आष्ठ	„
२	१८	आष्ठः	„
४	१	आहनसः	पदनाम
४	२	आहनः	„
२	१७	आहवे	संग्रामनाम
१	३	आकाशम्	अन्तरिक्षनाम
२	१८	आक्षाणः	व्याप्तिकर्मा
१	६	आताः	दिङ्नाम
५	५	आत्थाः	पदनाम
२	१८	आपानः	व्याप्तिकर्मा
४	२	आपान्तमन्युः	पदनाम
१	६	आशाः	दिङ्नाम
४	३	आशाभ्यः	पदनाम
१	६	आष्ठाः	दिङ्नाम
२	१६	आसा	अन्तिकनाम
२	१६	आसात्	„
३	१२	आकिम्	सर्वपदसमाम्ना०
२	१९	आतिरत्	वधकर्मा
५	६	आदित्याः	पदनाम
४	२	आरितः	„
३	२१	आशिषः	अध्येषणाकर्मा
३	१२	आहिकम्	सर्वपदसमा०
३	१२	आकीम्	„
५	३	आर्त्नी	पदनाम
४	३	आशीः	„
४	३	आनुषक्	„
२	७	आयुः	अन्ननाम

अध्यायः	खण्डः	आकारादयः	विषयः	अध्यायः	खण्डः	इकारादयः	विषयः
१	१२	आयुधानि	उदकनाम	२	१४	इयर्ति	गतिकर्मा
१	१४	आशुः	अश्वनाम	२	१४	इषति	”
२	१५	आशु	क्षिप्रनाम	२	७	इषम्	अन्ननाम
२	१५	आशुः	”	१	१	इळा	पृथिवीनाम
४	३	आशुशुक्षणिः	पदनाम	१	११	इळा	वाङ्नाम
४	२	आङ्गूषः	”	२	७	इळा	अन्ननाम
३	१२	आम्नातम्	सर्वपदसमाम्नायः	२	११	इळा	गोनाम
४	२	आघृणिः	”	५	५	इळा	पदनाम
२	१६	आके	अन्तिकनाम	३	१०	इत्था	सत्यनाम
३	२६	आके	दूरनाम	४	२	इत्था	पदनाम
३	१५	आकेनियः	मेधाविनाम	३	२८	इदा	नवीननाम
३	२६	आरे	दूरनाम	३	२८	इदानीम्	”
२	१७	आजौ	संग्रामनाम	५	५	इन्द्राणी	पदनाम
२	१७	आणौ	”	२	७	इरा	अन्ननाम
		इ		१	१३	इरावत्यः	नदीनाम
५	२	इळः	पदनाम	२	१०	इन्द्रियम्	धननाम
१	१२	इदम्	उदकनाम	३	१७	इष्टिः	यज्ञनाम
३	१३	इदमिव	उपमा	४	१	इष्मिणः	पदनाम
३	१३	इदंयथा	”	४	१	इणिरः	”
४	३	इदंयुः	पदनाम	४	१	इषिरेण	”
५	२	इध्मः	”	४	३	इलीविशः	”
२	२२	इनइनः	ईश्वरनाम	१	१२	इन्दुः	उदकनाम
५	४	इन्द्रः	पदनाम	३	१७	इन्दुः	यज्ञनाम
२	१४	इन्वति	गतिकर्मा	५	४	इन्दुः	पदनाम
२	१८	इन्वति	व्याप्तिकर्मा	५	३	इषुः	”
२	१४	इयक्षति	गतिकर्मा	५	३	इषुधिः	”
३	५	इरज्यति	परिचरणकर्मा	३	१९	इषुध्यति	याच्ञाकर्मा
२	२१	इरज्यति	ऐश्वर्यकर्मा			ई	
३	१५	इरध्यति	परिचरणकर्मा	२	१४	ईङ्खते	गतिकर्मा
				१	१२	ईम्	उदकनाम

अध्यायः	खण्डः	ककारादयः	विषयः
		क	
५	४	कः	पदनाम
१	६	ककुभः	दिङ्नाम
२	५	कक्ष्याः	अङ्गुलिनाम
३	३	ककुहः	महन्नाम
३	३	ककुहस्तिना	”
२	१४	कंटति	गतिकर्मा
२	१४	कणति	”
३	१५	कण्वः	मेधाविनाम
२	१९	कण्वति	वधकर्मा
४	३	कत्पयम्	पदनाम
१	२	कनकम्	हिरण्यनाम
२	६	कनति	कान्तिकर्मा
४	३	कपना	पदनाम
१	१२	कबन्धम्	उदकनाम
१	१२	कम्	”
३	६	कम्	सुखनाम
२	१२	कम्पते	क्रुध्यतिकर्मा
२	१	करणम्	कर्मनाम
२	१	करणानि	”
३	२३	कर्तः	कूपनाम
२	१	क्रतुः	कर्मनाम
३	९	क्रतुः	प्रज्ञानाम
२	१	करन्ति	कर्मनाम
२	१	करन्ती	”
२	१	कर्त्तवै	”
२	१	कर्त्तुम्	”
२	१	कर्त्त्वम्	”
२	१	कर्वरम्	”
२	४	करस्नौ	बाहुनाम
२	१	करांसि	कर्मनाम
२	१	करिक्रत्	”
४	३	करूळती	पदनाम
३	१४	कल्पते	अर्चतिकर्मा
१	१७	कल्मलीकिन	ज्वलतोनाम
२	१४	कवते	गतिकर्मा
१	१२	कवन्धम्	उदकनाम
३	१५	कविः	मेधाविनाम
१	१२	कशः	उदकनाम
१	११	कशा	वाङ्नाम
१	१२	क्षत्रम्	उदकनाम
२	१०	क्षत्रम्	धननाम
१	१२	क्षद्म	उदकनाम
२	७	क्षद्म	अन्ननाम
२	७	क्षद्मः	”
१	१२	क्षपः	उदकनाम
२	२१	क्षपति	ऐश्वर्यकर्मा
१	७	क्षपा	रात्रिनाम
१	१	क्षमः	पृथिवीनाम
१	१	क्षमा	”
१	१२	क्षम्न	उदकनाम
२	१४	कसति	गतिकर्मा
१	११	काकुत्	वाङ्नाम
४	२	काकुदम्	पदनाम
१	११	काकुप्	वाङ्नाम
१	२	काञ्चनम्	हिरण्यनाम

अध्यायाः	खण्डाः	ककारादयः	विषयः	अध्यायाः	खण्डाः	ककारादयः	विषयः
३	२३	काटः	कूपनाम	२	१४	क्षिपन्ति	गतिकर्मा
४	२	काण्डुका	पदनाम	२	४	क्षिपन्ती	बाहुनाम
४	२	काणुका	"	२	४	क्षिपस्ती	"
२	२३	कातुः	कूपनाम	२	१४	क्षिप्पति	गतिकर्मा
२	६	कानिषत्	कान्तिकर्मा	२	१४	क्षिपति	"
४	१	कायमानः	पदनाम	२	२१	क्षिपति	ऐश्वर्य्यकर्मा
४	१	क्राणः	"	४	२	कीकटेषु	पदनाम
३	१६	कारुः	स्तोतृनाम	३	१६	कीरिः	स्तोतृनाम
३	२३	कारोतरः	कूपनाम	२	७	कीलालम्	अन्ननाम
३	२३	कारोतरात्	"	१	१२	क्षीरम्	उदकनाम
२	१४	कालयति	गतिकर्म्मा	३	१५	कीस्तासः	मेधाविनाम
४	३	काशिः	पदनाम	४	२	कुटस्य	पदनाम
१	१	क्षा	पृथिवीनाम	४	३	कुणारुम्	"
१	६	काष्ठाः	दिशोनाम	३	९	क्रतुः	प्रज्ञानाम
१	१	क्ष्मा	पृथिवीनाम	२	२०	कुत्सः	वज्रनाम
१	१	क्षाम	"	३	१८	कुरवः	ऋत्विङ्नाम
१	१	क्षामः	"	४	१	कुरुतन	पदनाम
१	१	क्षामा	"	१	१३	कुल्याः	नदीनाम
४	३	किः	पदनाम	२	२०	कुलिशः	वज्रनाम
४	३	किमीदिने	"	४	३	कुलिशः	पदनाम
४	३	कियेधाः	"	३	२३	कुशयः	कूपनाम
१	५	किरणाः	रश्मिनाम	३	१	कुवित्	बहुनाम
३	२३	क्रिविः	कूपनाम	२	७	क्षु	अन्ननाम
४	३	क्रिविर्दती	पदनाम	२	७	क्षुत्	"
२	१४	क्षिणोति	गतिकर्म्मा	२	७	क्षुमत्	"
१	१	क्षितिः	पृथिवीनाम	४	२	क्षुम्पम्	पदनाम
२	३	क्षितयः	मनुष्यनाम	२	१४	क्षुम्पति	गतिकर्मा
२	५	क्षिपः	अङ्गुलिनाम	३	२	क्षुल्लकः	ह्रस्वनाम
२	४	क्षिपती	बाहुनाम	५	५	कुरूः	पदनाम

अध्यायः	खण्डः	जकारादयः	विषयः
१	१२	जन्म	उदकनाम
१	१७	जनत्	ज्वलतीनाम
२	१४	जमति	गतिकर्म्मा
२	१४	जयति	”
३	१४	जरति	अर्चतिकर्म्मा
३	१४	जरते	”
४	१	जरते	पदनान
३	१६	जरिता	स्तोतृनाम
४	३	जरूथम्	पदनाम
२	१४	जृयति	गतिकर्मा
३	१४	जल्पति	अर्चतिकर्म्मा
१	१२	जलम्	उदकनाम
१	१२	जलाषम्	”
३	६	जलाषम्	सुखनाम
४	३	जल्हवः	पदनाम
२	१४	जवति	गतिकर्मा
४	३	जवारु	पदनाम
१	१२	जह्म	उदकनाम
४	१	जहा	पदनाम
२	१४	जसति	गतिकर्म्मा
४	१	जसुरिः	पदनाम
२	२	जाः	अपत्यनाम
१	२	जातरूपम्	हिरण्यनाम
५	१	जातवेदाः	पदनाम
१	१	ज्मा	पृथिवीनाम
२	५	जामयः	अङ्गुलिनाम
१	१२	जामि	उदकनाम
१	१२	जामिः	”
१	१२	जामिवत्	”

अध्यायः	खण्डः	जकारादयः	विषयः
४	१	जामि	पदनाम
५	३	ज्या	”
२	१४	जायति	गतिकर्मा
३	१३	जारआभ-गोमेषोभू-तोऽभियन्नय	उपमानाम
४	३	जारयायि	पदनाम
२	१४	जिगाति	गतिकर्मा
२	१४	जिन्वति	”
४	३	जिन्वति	पदनाम
२	१६	जिरा	अन्तिकनाम
१	११	जिह्वा	वाङ्नाम
२	१५	जीराः	क्षिप्रनाम
२	६	जुषते	कान्तिकर्मा
४	१	जुहुरे	पदनाम
२	१३	जूर्णिः	क्रोधनाम
२	१५	जूर्णिः	क्षिप्रनाम
४	३	जूर्णिः	पदनाम
२	१५	जूर्णीः	क्षिप्रनाम
२	१९	जूर्वति	वधकर्मा
२	१४	जेहते	गतिकर्मा
१	१६	ज्योतते	ज्वलतिकर्मा
४	२	जोषवाकम्	पदनाम
		ड	
२	१४	डीयते	गतिकर्म्मा
		त	
२	१४	तकति	गतिकर्म्मा
२	२	तक्म	अपत्यनाम
३	२४	तक्वा	स्तेननाम

अध्यायः	खण्डः	दकारादयः	विषयः	अध्यायः	खण्डः	धकारादयः	विषयः
२	१२	दोधति	क्रुध्यतिकर्मा	२	१४	धावति	”
१	८	द्योतना	उषोनाम	२	७	धासिः	अन्ननाम
१	१६	द्योतते	ज्वलतिकर्मा	१	११	धिषणा	वाङ्नाम
१	७	दोषा	रात्रिनाम	३	३०	धिषणे	द्यावापृथिवी
१	९	द्यौः	अहर्नाम	२	१	धीः	कर्म्मनाम
१	१४	दौर्गहः	अश्वनाम	३	९	धीः	प्रज्ञानाम
		ध		२	५	धीतयः	अङ्गुलिनाम
५	३	धनुः	पदनाम	३	१५	धीरः	मेधाविनाम
१	३	धन्व	अन्तरिक्षनाम	१	१३	धुनयः	नदीनाम
४	२	धन्व	पदनाम	२	५	धुरः	अङ्गुलिनाम
२	१४	धन्वति	गतिकर्मा	२	१४	ध्रुवति	गतिकर्मा
२	१४	धमति	”	२	१९	ध्रुवति	वधकर्मा
२	१९	धमति	वधकर्मा	२	१९	धूर्वति	”
३	१४	धमति	अर्चतिकर्मा	२	१४	धृजति	गतिकर्मा
१	११	धमनिः	वाङ्नाम	१	११	धेना	वाङ्नाम
२	१४	ध्रजति	गतिकर्म्मा	१	११	धेनुः	”
२	९	धर्णसि	बलनाम	५	५	धेनुः	पदनाम
२	९	धर्णसिः	”			न	
१	१२	धरुणम्	उदकनाम	१	७	नक्ता	रात्रिनाम
२	१४	ध्रति	गतिकर्म्मा	२	१४	नक्षति	गतिकर्मा
२	१४	ध्रयति	”	२	१८	नक्षति	व्याप्तिकर्मा
२	१४	धवति	”	४	३	नक्षद्दाभम्	पदनाम
२	३	धवाः	मनुष्यनाम	३	१२	नकिः	सर्वपदसमाम्नायः
२	१९	ध्वरति	वधकर्मा	३	१२	नकीम्	
१	१२	ध्वस्मन्वत्	उदकनाम	२	१४	नख्यति	गतिकर्मा
२	१४	ध्वंसति	गतिकर्मा	१	११	नग्ना	वाङ्नाम
५	५	धाता	पदनाम	३	१६	नदः	स्तोतृनाम
१	११	धारा	वाङ्नाम	४	२	नदः	पदनाम
२	१४	धाति	गतिकर्मा	३	१४	नदति	अर्चतिकर्मा

अध्यायः	खण्डः	नकारादयः	विषयः	अध्यायः	खण्डः	नकारादयः	विषयः
२	१७	नदनुः	सङ्ग्रामनाम	४	१	नसतः	पदनाम
१	१३	नद्यः	नदीनाम	२	१४	नसते	गतिकर्मा
५	३	नद्यः	पदनाम	४	१	नसन्तः	पदनाम
२	१८	ननक्षे	व्याप्तिकर्मा	३	२९	नंसते	उत्तरपदनाम
१	११	नना	वाङ्नाम	४	१	नंसन्ते	पदनाम
२	२	नपात्	अपत्यनाम	२	३	नहुषः	मनुष्यनाम
३	३०	नप्त्री	द्यावापृथिवी	२	३	नहुषाः	”
१	४	नभः	साधारणनाम	१	४	नाकः	साधारणनाम
१	१२	नभः	उदकनाम	१	४	नाका	”
१	१३	नभन्वः	नदीनाम	१	११	नाळ्हीः	वाङ्नाम
१	१३	नभन्वाः	”	३	१६	नादः	स्तोतृनाम
२	१९	नभति	वधकर्मा	१	१२	नाम	उदकनाम
२	१९	नभते	”	३	१७	नार्यः	यज्ञनाम
३	३०	नभसी	द्यावापृथिवी	५	३	नाराशंसः	पदनाम
२	७	नमः	अन्ननाम	३	१७	नारी	यज्ञनाम
२	२०	नमः	वज्रनाम	१	११	नालिः	वाङ्नाम
१	७	नम्या	रात्रिनाम	३	२	निचृष्वः	ह्रस्वनाम
३	५	नमस्यति	परिचरणकर्मा	४	२	निचुम्पुणः	पदनाम
१	१४	नरः	अश्वनाम	३	२५	निण्यम्	निर्णितान्तर्हितनाम
२	३	नरः	मनुष्यनाम	४	१	निधा	पदनाम
२	३	नराः	”	२	१९	नितोशयति	वधकर्मा
५	२	नराशंसः	पदनाम	२	१९	नितोशते	”
५	३	नराशंसः	”	२	१९	नितोषते	”
३	२८	नवम्	नवनाम	२	१९	निबर्हयति	”
२	१४	नवते	गतिकर्मा	१	१५	नियुतो वायोः	आदिष्टोपयोजनानि
३	२८	नव्यम्	नवनाम	२	२१	नियुत्वान्	ईश्वरनाम
३	१५	नवेदाः	मेधाविनाम	१	१	निर्ऋतिः	पृथिवीनाम
२	१८	नशत्	व्याप्तिकर्मा				

अध्यायः	खण्डः	पकारादयः	विषयः
३	२७	प्रत्नम्	पुराणनाम
३	२५	प्रतीच्यर्थम्	निर्णीतान्तर्हितनाम
३	२	प्रतिष्ठा	ह्रस्वनाम
३	२५	प्रतीच्यम्	निर्णीतान्तर्हि०
४	२	परि	पदनाम
४	१	परितक्म्या	„
३	२७	प्रदिवः	पुराणनाम
२	१७	प्रधने	संग्रामनाम
३	२९	प्रपित्वे	उत्तरपदनाम
१	१२	प्रयः	उदकनाम
२	७	प्रयः	अन्ननाम
१	१०	पर्वतः	मेघनाम
२	१४	प्रवते	गतिकर्मा
३	२७	प्रवयाः	पुराणनाम
३	२६	परावतः	दूरनाम
१	१०	पर्शानः	मेघनाम
४	३	पराशरः	पदनाम
३	२१	परिश्रव	अध्येषणाकर्मा
२	२०	परशुः	वज्रनाम
३	२१	परिस्रव	अध्येषणाकर्मा
२	१४	प्लवति	गतिकर्मा
२	१४	प्लवते	„
२	१४	पवते	„
३	२१	पवस्व	अध्येषणाकर्मा
१	११	पविः	वाङ्नाम
४	२	पविः	पदनाम
२	२०	पविः	वज्रनाम
१	१२	पवित्रम्	उदकनाम

अध्यायः	खण्डः	पकारादयः	विषयः
४	२	पवित्रम्	पदनाम
३	४	पस्त्यम्	गृहनाम
३	७	प्सरः	रूपनाम
३	८	पाकः	प्रशस्यनाम
२	७	पाजः	अन्ननाम
२	९	पाजः	बलनाम
४	३	पाथः	पदनाम
४	२	पादुः	„
१	१३	पार्वत्यः	नदीनाम
२	१५	प्राशुः	क्षिप्रनाम
२	१५	प्राशुवित्	„
३	३०	पार्श्वौ	द्यावापृथिवी
३	३०	पाश्व्यौ	„
२	१५	प्राशुक्षित्	क्षिप्रकर्मा
२	१४	प्साति	गतिकर्मा
४	१	पिता	पदनाम
२	७	पितः	अन्ननाम
५	५	पितरः	पदनाम
५	३	पितुः	„
३	२९	पिनाकम्	उत्तरपदनाम
३	१४	पिपृक्षाः	अर्चतिकर्मा
१	१२	पिप्पलम्	उदकनाम
२	१४	पिस्यति	गतिकर्मा
३	७	पिष्टम्	रूपनाम
३	१९	पीपरत्	याञ्चाकर्मा
४	३	पुरन्धिः	पदनाम
३	३०	पुरन्धि	द्यावापृथिवी
१	१२	पुरीषम्	उदकनाम
३	१	पुरु	बहुनाम

अध्याय	खण्ड	बकारादयः	विषयः
२	१०	ब्रह्म	धननाम
५	४	ब्रह्मणस्पतिः	पदनाम
४	३	बर्हणा	”
२	१९	बर्हयति	वधकर्मा
१	३	बर्हिः	अन्तरिक्षनाम
१	१२	बर्हिः	उदकनाम
५	२	बर्हिः	पदनाम
३	३	बर्हिषत्	महन्नाम
३	३	बर्हिष्ठः	”
३	३	बर्हिषि	”
१	१०	बलाहकः	मेघनाम
३	३	बंहिष्ठः	महन्नाम
३	३०	बहुले	द्यावापृथिवी
२	९	बाधः	बलनाम
३	१३	ब्राह्मणाव्रत-चारिणः	उपमानाम
२	४	बाहू	बाहुनाम
२	१४	बिस्मति	गतिकर्मा
४	३	बिष्पितः	पदनाम
२	२	बीजम्	अपत्यनाम
४	२	बीरिटे	पदनाम
४	३	बुन्दः	”
१	१२	बुबुरः	उदकनाम
१	१२	बुबुरम्	”
१	१२	बुसम्	”
४	३	बृबदुक्थम्	पदनाम
१	१२	बृबूकम्	उदकनाम
३	३	बृहत्	महन्नाम
३	३०	बृहती	द्यावापृथिवी

अध्याय	खण्ड	भकारादयः	विषयः
५	४	बृहस्पतिः	पदनाम
४	३	बेकनाटान्	”
१	११	बेकुः	वाङ्नाम
१	११	बेकुरा	”
		भ	
२	१०	भगः	धननाम
५	६	भगः	पदनाम
३	१४	भणति	अर्चतिकर्मा
३	१४	भणायते	”
४	२	भन्दनाः	पदनाम
१	१६	भन्दते	ज्वलतिकर्मा
३	१४	भन्दति	अर्चतिकर्मा
३	१४	भनति	”
३	२९	भ्यसते	उत्तरपदनाम
२	१७	भरे	संग्रामनाम
३	१८	भरताः	ऋत्विङ्नाम
२	४	भरित्रे	बाहुनाम
१	२	भर्म	हिरण्यनाम
२	१४	भ्रमति	गतिकर्मा
२	८	भर्वति	अत्तिकर्मा
१	१२	भविष्यत्	उदकनाम
२	८	भसथः	अत्तिकर्मा
४	३	भाऋजीकः	पदनाम
१	९	भातुः	अहर्नाम
२	१३	भामः	क्रोधनाम
२	१२	भामते	क्रुध्यतिकर्मा
१	१६	भ्राजते	ज्वलतिकर्मा
३	१८	भारताः	ऋत्विङ्नाम
१	११	भारती	वाङ्नाम

अध्यायः	खण्डः	मकारादयः	विषयः	अध्यायः	खण्डः	यकारादयः	विषयः
३	१७	मेधः	यज्ञनाम	२	१९	याचति	वधकर्मा
२	१०	मेधा	धननाम	२	१४	याति	गतिकर्मा
३	१५	मेधाविनः	मेधाविनाम	२	१९	यातयति	वधकर्मा
१	११	मेना	वाङ्नाम	१	१२	यादः	उदकनाम
३	२८	मेना	उत्तरपदनाम	१	१२	यादुः	,,
२	२०	मेनिः	वज्रनाम	४	३	याद्दश्मिन्	पदनाम
४	१	मेहना	पदनाम	३	१९	यामि	याच्ञाकर्मा
१	७	मोकी	रात्रिनाम	२	१९	यावति	वधकर्मा
		य		२	१५	युगत्	क्षिप्रनाम
३	१७	यज्ञः	यज्ञनाम	२	१४	युध्यति	गतिकर्मा
२	१४	यतते	गतिकर्मा	२	१४	युध्यते	,,
३	१८	यतस्रुचः	ऋत्विङ्नाम	२	५	योक्त्राणि	अङ्गुलिनाम
२	३	यदवः	मनुष्यनाम	२	५	योजनानि	,,
३	१९	यन्तारः	याच्ञाकर्मा	१	१२	योनिः	उदकनाम
३	१९	यन्ति	,,	३	४	योनिः	गृहनाम
३	१९	यन्धि	,,	२	१४	योशिष्टि	गतिकर्मा
५	४	यमः	पदनाम	२	१४	योषिष्टि	,,
५	६	यमः	,,	३	१४	यौति	अर्चतिकर्मा
१	७	यम्या	रात्रिनाम			**र**	
५	५	यमी	पदनाम	१	७	रजः	रात्रिनाम
१	१३	यव्याः	नदीनाम	४	१	रजः	पदनाम
३	३	यह्वः	महन्नाम	२	१४	रजति	गतिकर्मा
१	१२	यशः	उदकनाम	३	१४	रजयति	अर्चतिकर्मा
२	७	यशः	अन्ननाम	३	१४	रञ्जयति	,,
२	१०	यशः	धननाम	३	३०	रजसी	द्यावापृथिवी
१	१२	यहः	उदकनाम	२	१७	रणः	संग्रामनाम
२	९	यहः	बलनाम	२	१०	रत्नम्	धननाम
२	२	यहुः	अपत्यनाम	५	३	रथः	पदनाम
१	१३	यह्वरः	नदीनाम	२	१४	रथर्यति	गतिकर्मा

अध्याय	खण्ड	रेफादयः	विषयः
३	२८	रेजति	उत्तरपदनाम
२	१२	रेळते	क्रुध्यतिकर्मा
१	१२	रेतः	उदकनाम
३	१६	रेभः	स्तोतृनाम
३	१४	रेभति	अर्चतिकर्मा
१	१३	रेवत्यः	नदीनाम
१	१०	रैवतः	मेघनाम
१	१६	रोचते	ज्वलतिकर्मा
५	५	रोदसी	पदनाम
३	३०	रोदसी	द्यावापृथिवी
१	१३	रोधचक्राः	नदीनाम
३	३०	रोधसी	द्यावापृथिवी
१	१३	रोधस्वत्यः	नदीनाम
१	१३	रोहितः	”
२	५	रोहितः	अङ्गुलिनाम
१	१५	रोहितोऽग्नेः	आदिष्टोपयोजनानि
३	१४	रौति	अर्चतिकर्मा
१	१०	रौहिणः	मेघनाम
		ल	
२	१४	लजति	गतिकर्मा
२	१४	लोटते	”
२	१४	लोठते	”
४	१	लोधम्	पदनाम
१	२	लोहम्	हिरण्यनाम
		व	
४	२	वचः	पदनाम
१	१३	वक्षणाः	नदीनाम

अध्याय	खण्ड	वकारादयः	विषयः
१	११	वग्नुः	वाङ्नाम
२	२०	वज्रः	वज्रनाम
२	१४	वञ्चति	गतिकर्मा
२	२०	वधः	वज्रनाम
२	९	वधः	बलनाम
१	१३	वध्वः	नदीनाम
३	१४	वन्दते	अर्चतिकर्मा
१	५	वनम्	रश्मिनाम
१	१२	वनम्	उदकनाम
३	२४	वनर्गुः	स्तेननाम
५	२	वनस्पतिः	पदनाम
४	२	वनुष्यति	”
२	१२	वनुष्यति	क्रुध्यतिकर्मा
२	६	वनोति	कान्तिकर्मा
३	७	वपुः	रूपनाम
३	२	वम्रकः	ह्रस्वनाम
३	२९	वम्रीभिः	उत्तरपदनाम
२	७	वयः	अन्ननाम
२	१३	व्यथिः	क्रोधनाम
१	१४	व्यथ्ययः	अश्वनाम
४	१	व्यन्तः	पदनाम
३	८	वयुनम्	प्रशस्यनाम
३	९	वयुनम्	प्रज्ञानाम
४	२	वयुनम्	पदनाम
२	१३	वरः	क्रोधनाम
२	९	वर्गः	बलनाम
२	७	वर्चः	अन्ननाम
१	१०	वृत्रः	मेघनाम
२	१४	व्रजति	गतिकर्मा

अध्याय	खण्ड	वकारादयः	विषयः
५	४	वरुणः	पदनाम
५	६	वरुणः	,,
२	१	व्रतम्	कर्मनाम
२	१४	वर्त्तते	गतिकर्मा
३	४	वरूथम्	गृहनाम
४	२	वृन्दी	पदनाम
३	७	वर्पः	रूपनाम
३	४	वर्म	गृहनाम
१	१३	वर्य्यः	नदीनाम
२	१०	वरिवः	धननाम
१	१०	वराहः	मेघनाम
४	२	वराहः	पदनाम
१	१०	वलः	मेघनाम
१	१०	वलिशानः	,,
१	११	वल्गुः	वाङ्नाम
२	१४	वल्गूयति	गतिकर्मा
३	१४	वल्गूयति	अर्चतिकर्मा
३	२३	वव्रः	कूपनाम
३	७	वव्रिः	रूपनाम
२	६	वश्मि	कान्तिकर्मा
२	६	वष्टि	,,
१	७	वस्ती	रात्रिनाम
१	७	वसु	,,
२	१०	वसु	धननाम
१	५	वसवः	रश्मिनाम
५	६	वसवः	पदनाम
१	७	वस्ता	रात्रिनाम
१	७	वस्वी	,,
१	९	वस्तो	अहर्नाम

अध्याय	खण्ड	वकारादयः	विषयः
२	१४	वञ्चति	गतिकर्मा
२	१४	वहते	,,
१	१४	वह्निः	अश्वनाम
१	१२	वाः	उदकनाम
१	११	वाक्	वाङ्नाम
५	५	वाक्	पदनाम
३	१५	वाघतः	मेधाविनाम
३	१८	वाघतः	ऋत्विङ्नाम
५	४	वाचस्पतिः	पदनाम
२	७	वाजः	अन्ननाम
२	९	वाजः	बलनाम
१	१४	वाजी	अश्वनाम
२	१७	वाजे	संग्रामनाम
४	२	वाजगन्ध्यम्	पदनाम
५	६	वाजिनः	,,
१	८	वाजिनिवती	उषोनाम
१	८	वाजिनी	,,
१	८	वाजिनीवती	,,
४	२	वाजपस्त्यम्	पदनाम
३	१४	वाजयति	अर्चतिकर्मा
२	१७	वाजसातौ	संग्रामनाम
२	१६	वाञ्छति	कान्तिकर्मा
१	११	वाणः	वाङ्नाम
१	११	वाणी	,,
१	११	वाणीची	,,
५	४	वाताः	पदनाम
२	१४	वाति	गतिकर्मा
४	२	वताप्यम्	पदनाम
२	१५	वातरंहाः	क्षिप्रनाम

अध्याये	खण्डे	वकारादयः	विषयः	अध्याये	खण्डे	वकारादयः	विषयः
५	६	विश्वेदेवाः	पदनाम	२	९	वृजनम्	बलनाम
५	५	विश्वानरः	"	२	१९	वृणक्ति	वधकर्मा
५	६	विश्वानरः	"	२	१०	वृतम्	धननाम
१	१५	विश्वरूपा बृहस्पतेः	आदिष्टोपयोजनानि	२	१०	वृत्रम्	"
				१	१०	वृत्रः	मेघनाम
१	१२	विषम्	उदकनाम	२	१७	वृत्रतूर्य्ये	संग्रामनाम
१	४	विष्टपम्	साधारणनाम	४	३	वृन्दम्	पदनाम
२	१	विष्टी	कर्मनाम	२	५	वृशः	अङ्गुलीनाम
२	१	विष्ट्वी	"	२	१९	वृश्चति	वधकर्मा
३	१७	विष्णुः	यज्ञनाम	३	२०	वृश्चति	दानकर्मा
४	२	विष्णुः	पदनाम	५	६	वृषाकपिः	पदनाम
५	६	विष्णुः	"	५	६	वृषाकपायी	"
४	१	विषुणः	"	१	१०	वृषन्धिः	मेघनाम
१	१०	विषन्धिः	मेघनाम	५	३	वृषभः	पदनाम
२	१४	विषिष्टि	गतिकर्मा	२	६	वेति	कान्तिकर्मा
१	४	विष्टपम्	साधारणनाम	२	८	वेति	अत्तिकर्मा
२	६	विसति	कान्तिकर्मा	२	१४	वेति	गतिकर्मा
४	३	विस्रुहः	पदनाम	२	१०	वेदः	धननाम
३	३	विहायाः	महन्नाम	२	१४	वेदति	गतिकर्मा
२	२	वीजम्	अपत्यनाम	३	१५	वेधाः	मेधाविनाम
२	९	वीळु	बलनाम	३	१५	वेनः	"
४	२	वीरिटे	पदनाम	३	१७	वेनः	यज्ञनाम
४	३	वीरुधः	"	५	४	वेनः	पदनाम
२	९	वृक्	बलनाम	२	६	वेनति	कान्तिकर्मा
२	२०	वृकः	वज्रनाम	२	१४	वेनति	गतिकर्मा
३	२४	वृकः	स्तेननाम	३	१४	वेनति	अर्चतिकर्मा
४	२	वृकः	पदनाम	२	१	वेपः	कर्मनाम
३	१८	वृक्तबर्हिषः[वयाः	ऋत्विङ्नाम	२	८	वेवेष्टि	अत्तिकर्मा
३	१३	वृचस्यनुतेपुरुहूत	उपमानाम	२	१	वेशः	कर्मनाम

अध्यायः	खण्डः	अकारादयः	विषयः	अध्यायः	खण्डः	अकारादयः	विषयः
२	१४	शवति	गतिकर्मा	३	७	शिल्पम्	रूपनाम
३	५	शवति	परिचरणकर्मा	३	६	शिवम्	सुखनाम
२	१९	श्वसति	वधकर्मा	३	६	शिंवाता	"
२	१९	श्वसिति	"	४	१	शिशीते	पदनाम
३	१४	शशमानः	अर्चतिकर्मा	३	७	शिष्यम्	रूपनाम
४	३	शशमानः	पदनाम	२	१५	शीभम्	क्षिप्रनाम
३	१	शश्वत्	बहुनाम	४	१	शीरम्	पदनाम
३	७	शष्यम्	रूपनाम	१	७	शीणा	रात्रिनाम
३	१४	शंसति	अर्चतिकर्मा	२	१५	शु	क्षिप्रनाम
२	६	शंसनत्	कान्तिकर्मा	१	१२	शुक्रम्	उदकनाम
२	५	शाखाः	अङ्गुलिनाम	२	१५	शुवनसाः	क्षिप्रनाम
३	६	शातयन्ता	सुखनाम	३	६	शुनम्	सुखनाम
१	१५	श्यावाःसवितुः	आदिष्टोपयोज-	५	३	शुनासीरौ	पदनाम
४	३	श्यायन्तः	पदनाम [नानि	१	१२	शुभम्	उदकनाम
२	१०	श्वात्रम्	धननाम	२	१५	शुरण्युः	क्षिप्रनाम
४	२	श्वात्रम्	पदनाम	४	३	शुरुधः	पदनाम
२	१४	श्वात्रति	गतिकर्मा	४	३	श्रुष्टी	"
१	७	श्वावी	रात्रिनाम	२	९	शुष्णम्	बलनाम
४	३	शाशदानः	पदनाम	२	९	शुष्मम्	"
३	२०	शिक्षति	दानकर्मा	२	१५	शूः	क्षिप्रनाम
४	१	शिताम	पदनाम	२	१५	शूघनाः	क्षिप्रनाम
४	१	शिप्रे	"	२	१५	शूघनाशः	"
४	३	शिप्रे	"	२	१५	शूघनासः	"
२	१	शिमी	कर्मनाम	२	१५	शूर्ताः	"
४	२	शिपिविष्टः	"	२	१७	शूरसातौ	संग्रामनाम
१	७	शिरिणा	रात्रिनाम	२	९	शूषम्	बलनाम
४	३	शिरिम्बिठः	पदनाम	३	६	शूषम्	सुखनाम
३	६	शिलगुः	सुखनाम	१	१७	शृङ्गाणि	ज्वलतोनाम
२	१	शिल्पम्	कर्मनाम	२	१९	शृणाति	वधकर्मा

अध्यायः	खण्डः	शकारादयः	विषयः
४	३	शृम्भाः	पदनाम
३	२९	शेपः	उत्तरपदनाम
५	५	श्येनः	पदनाम
१	१४	श्येनासः	अश्वनाम
३	६	शेवम्	सुखनाम
१	८	श्वित्या	उषोनाम
३	६	शेवृधम्	सुखनाम
२	२	शेपः	अपत्यनाम
१	७	शोकी	रात्रिनाम
२	१४	श्चोतति	गतिकर्मा
१	१६	शोचति	ज्वलतिकर्मा
१	१७	शोचिः	ज्वलतीनाम
१	११	श्लोकः	वाङ्नाम
		ष	
२	१४	षःकति	गतिकर्मा
२	१४	ष्वःकति	”
२	१४	ष्वष्कति	”
		स	
२	१४	सश्चति	गतिकर्मा
२	१७	सग्मन्	संग्रामनाम
३	१९	सविध	याच्ञाकर्मा
१	३	सगरम्	अन्तरिक्षनाम
१	३	सगरः	”
२	१७	सङ्खे	संग्रामनाम
२	१७	संङ्ख्ये	”
२	१७	संयुगे	”
२	१७	संङ्गथे	”
२	१७	सङ्गमे	”
२	१७	सङ्गाः	”

अध्यायः	खण्डः	सकारादयः	विषयः
२	१४	सचति	गतिकर्मा
३	२९	सचते	उत्तरपदनाम
४	२	सचा	पदनाम
२	६	संछत्	कान्तिकर्मा
१	१२	सत्	उदकनाम
३	२९	सतः	उत्तरपदनाम
३	१०	सत्रा	सत्यनाम
१	१२	सतिनम्	उदकनाम
१	१२	सतीकम्	”
१	१२	सतीनम्	”
१	१२	सत्यम्	”
१	१२	सदनम्	”
१	१२	सद्म	”
२	१७	सद्म	संग्रामनाम
३	४	सद्म	गृहनाम
३	३०	सद्मनी	द्यावापृथिवी
३	३०	सदसी	”
४	३	सदान्वे	पदनाम
३	३०	सधे	द्यावापृथिवी
२	५	सनाभयः	अंगुलिनाम
३	२५	सनुतः	निर्णीतान्तर्हितनाम
३	२७	सनेमि	पुराणनाम
१	१७	स्यामन्	संग्रामनाम
१	५	सप्तऋषयः	रश्मिनाम
५	६	सप्तऋषयः	पदनाम
१	१४	सप्तिः	अश्वनाम
३	५	सपति	परिचरणकर्मा
३	१४	सपति	अर्चतिकर्मा

अध्यायः	खण्डः	सकारादयः	विषयः	अध्यायः	खण्डः	सकारादयः	विषयः
२	९	सन्द्रासः	बलनाम	२	१४	सर्पति	गतिकर्मा
४	३	सप्रथाः	पदनाम	१	१२	सर्पिः	उदकनाम
३	५	सपर्यति	परिचरणकर्मा	५	५	सरमा	पदनाम
३	१८	सबाधः	ऋत्विङ्नाम	३	१	सरिरम्	बहुनाम
२	१७	समत्सु	संग्रामनाम	१	१२	सर्वम्	उदकनाम
२	१७	समनम्	”	२	१४	स्रवति	गतिकर्मा
२	१७	समनीके	”	१	१३	स्रवन्त्यः	नदीनाम
२	१७	समरणे	”	१	१३	सरस्वत्यः	”
२	१७	समर्ये	”	१	११	सरस्वती	वाङ्नाम
४	२	समस्य	पदनाम	५	५	सरस्वती	पदनाम
२	१७	समितिः	संग्रामनाम	५	४	सरस्वान्	”
२	१७	समिथे	”	२	१४	स्रंसति	गतिकर्मा
२	१७	समीके	”	२	१४	स्रंसते	”
२	१७	समीथे	”	२	१४	सर्त्ते	”
१	३	समुद्रः	अन्तरिक्षनाम	१	१२	सलिलम्	उदकनाम
५	६	समुद्रः	पदनाम	३	१	सलिलम्	बहुनाम
२	१७	समोहे	संग्रामनाम	४	३	सललूकम्	पदनाम
२	१७	सम्मोहे	”	१	४	स्वः	साधारणना
२	१७	संयत्	”	१	१२	स्वः	उदकनाम
२	१७	संयुगे	”	४	२	स्वश्वाः	पदनाम
२	१४	स्यन्दते	गतिकर्मा	२	१७	संवतम्	संग्रामनाम
२	१४	स्यन्दयति	”	२	१७	संवतः	”
२	१४	स्यमति	”	५	४	सविता	पदनाम
१	११	सरः	वाङ्नाम	५	६	सविता	”
१	१२	सरः	उदकनाम	३	१४	स्वदति	अर्चतिकर्मा
१	१२	सर्गाः	”	१	१२	स्वधा	उदकनाम
१	१२	सर्णीकम्	”	२	७	स्वधा	अन्ननाम
५	६	सरण्यूः	पदनाम	२	२०	स्वधितिः	वज्रनाम
१	१३	सरितः	नदीनाम	३	३०	स्वधे	द्यावापृथिवी

इति

अथ निघण्टोः शुद्धिपत्रम् ॥

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम
१	१३	०	में
१	१८	योगिक	यौगिक
८	८	सर्वम्	सर्व म्
८	१०	पवित्रम्	पवित्रम्
९	१	सस्तुतः	सस्तुतः
९	८	ह्वार्याणाम्	ह्वार्याणाम्
९	१	ऋतावर्थ्यः	ऋतावर्थ्यः(नोट)
१०	१५	अभीशु	अभीशू
१०	२	कत्तुम्	कत्तु म् (नोट)
११	०	अ० १।	अ० २।
११	३	जामयः	जामयः
११	२	सस्तुतः	सस्तुतः (नोट)
११	७	सुतम्	सुतम् (नोट)
१२	०	अ० १	अ० २
१२	५	वैलि	वैल
१२	८	वृन्द्रियम्	वृन्द्रियम्
१२	१७	१२	१३
१२		ायते	हृणीयते (नोट)
१३		ति	दभ्नोति (नोट)
१५		मीके	अतमीके
१५			पृत्सु

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१७	८	वर्वचसे	विवचसे
१७	१२	दुरोणे	दुरोणे
१८	५	भगम्	भगो
१८	११	भन्दति	भन्दते
२०	१२	बर्हिषः	बर्हिषः
२०	२	मनुष्याः	मनुष्याः (
२१	१२	अद्य	अघ
२१	१	ह्वर्वति	ह्वर्वति (न
२२	१	सिषक्ति	सिषक्ति (न
२३	३	मध्या	मध्या
२४	८	शृम्भाः	निशृम्भाः
२४	८	ऋदरः	ऋदूदरः
२४	१६	रिशादसः	रिशादसः
२४	७	सूर्त्ते	सूर्त्ते
२६	२	अश्व	अश्वा
२७	७	२ २४	३ २४
२८	२८	४ ३	४ २
२८	४१	अल्पम्	अल्पकम्
३२	०	क्रमिका	क्रमषिक
३८	७	द्दनात्	द्दमाना
४०	७	नान	नाम

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
४०	२५	त्रय	त्रयः
४१	११	चिप्रकर्मा	चिप्रनाम
४२	३६	२।१४	२।१८
४२	३७	२।१८दष्यति	२।१४दष्यति
४३	२०	१।६	१।८
४३	२१	„	पदनाम
४५	१८	निर्पि	निर्णी
४७	२७	पुरन्धि	पुरन्धौ
४८	१८	पृ़णाति	पृणाति
५८	४२	सुनासीरौ	शुनासीरौ
५८	४४	सुरखुः	शुरखुः
५८	४५	सुरुधः	शुरुधः
६०	५२	स्यामन्	स्यमन्
६४	२०	अङ्गुल	अङ्गुलि

इति